रायचंद्रजैनशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ग्रंथोंकी सूची

१ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (भाषाटीका)—यह प्रसिद्धशास्त्र दूसरीवार छपाया गया है । न्यों० १ रु०

२ पंचास्तिकाय सं० भा० टी०—इसमें दो संस्कृत टीकायें और एक हिंदी भाषा टीका है । यह भी दूसरी वार छपाया गया है । न्यों० २ रु०.

३ ज्ञानार्णव भा० टी०—इसमें ब्रह्मचर्यका व ध्यान करनेका विस्तारसे कथन है । यह भी दूसरी वार छपाया गया है । न्यों० ४ रु०

४ सप्तभंगीतरंगिणी भा० टी०—यह भी दूसरी वार छपाई गई है । न्यों० १ रु०.

५ वृहद्रव्यसंग्रह सं० भा० टी०—इसमें जीवादि द्रव्योंका उत्तम कथन है । यह भी दूसरीवार छपाया है । न्यों० २ रु०

६ द्रव्यानुयोगतर्कणा भा० टी०— इसमे नयोंका कथन है । न्यों० २ रु०

७ सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र भा० टी०—इसकी थोड़ी प्रतिया रहीं हैं । न्यों० २ रु०

८ स्याद्वादमंजरी सं० भा० टी०—इसमें छहों मतोंका तथा ईश्वरकर्तृत्वखंडनका विवेचन किया है । न्यों० ४ रु०.

९ गोंमटसार—(जीवकांड) संस्कृतछाया और संक्षिप्त हिंदी भाषाटी० । न्यों० २॥ रु.

१० गोंमटसार (कर्मकाड) संस्कृत छाया और संक्षिप्त हिंदी भाषा टी० । न्यों० २ रु.

११ लब्धिसार (क्षपणासारगर्भित) संस्कृत छाया और संक्षिप्त हिंदी भाषाटीकासहित है । न्यों० १॥ रु०

१२ परमात्मप्रकाश सं० भा० टी०—इसमें परमात्माका निर्णय किया गया है । न्यों० ३ रु०.

१३ प्रवचनसार सं० भा० टी०—इसमें दो संस्कृत टीकायें और एक हिंदी भाषाटीका है । न्यों० ३ रु०.

१४ समयसार सं० भा० टी०— यह भी दो संस्कृत टीका और एक हिंदी भाषाटीका सहित छपाया गया है । पहले इसकी सं० टी०—पौनेतीन रुपयेमें और जैपुरी भाषा चार रुपयेमें मिलती थी । अब वर्तमान भाषामें परिवर्तन होकर भाषाटीका और दो संस्कृतटीका गाथासूची विषयसूची सहित लागतके लगभग इस ग्रंथका मूल्य ४ चार रुपये ही रक्खा गया है, जिससे कि स्वाध्याय प्रेमियोंको लेनेका सुभीता हो । न्यों० ४ रु०

गुजराती भाषामें छपे ग्रंथ

१५ मोक्षमाला—यह ग्रंथ श्रीमद् रायचंद्रजीकृत है । न्यों० १२ आना ।

१६ भावनाबोध—यह ग्रंथभी उक्त महान् पुरुषकृत है । न्यों० ४ आना ।

ग्रंथोंके मिलनेका पता—

मैंनेजर—श्रीपरमश्रुतप्रभावकजैनमंडल,
जोंहरी बाज़ार खाराकुवा पो० नं० २ बंबई.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge at the "Nirnaya-sagar" Press,
23, Kolbhat Lane, Bombay.

Published by Sha. Revashankar Jagajivan Javeri Hon. Vyavasthapak Shree Paramashruta-Prabhavak Jain Mandal, Javeri Bazar, Kharakuva, Bombay. No. 2

—॥ प्रस्तावना ॥—



प्रियविज्ञपाठको ! मैं श्रीजिनेंद्रदेवकी कृपासे आज आपके सन्मुख श्रीसमयसार भी तीन टीकाओं सहित उपस्थित करता हूं । यह भी प्रसिद्ध नाटकत्रयीमेंसे सम्यग्ज्ञानकी प्रधानताका निरूपक ग्रंथ है और वह द्वितीय श्रुतस्कंधके नामसे प्रसिद्ध है । इसीसे जैनसंप्रदायमें परम आदरणीय है ।

इस ग्रंथके होनेका संबंध भाषाकारने ऐसा लिखा है—"श्रीवर्धमानस्वामी अंतिम तीर्थंकर देव सर्वज्ञ वीतराग परमभट्टारकके निर्वाण जानेके वाद पांच श्रुतकेवली हुए, उनमें अंतके श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी हुए । वहांतक तो द्वादशांगशास्त्रके प्ररूपणसे व्यवहार निश्चयात्मक मोक्षमार्ग यथार्थ प्रवर्तता ही रहा, पीछे कालदोषसे अंगोंके ज्ञानकी व्युच्छित्ति होती गई । कितने ही मुनि शिथिलाचारी हुए उनमें श्वेतपट हुए । उनोंने शिथिलाचार पोषनेको जुदे सूत्र वनाये । उनमें शिथिलाचार पोषनेकी अनेक कथायें लिख अपना संप्रदाय दृढ किया । वह अबतक प्रसिद्ध है । और जो जिन-सूत्रकी आज्ञामें रहे, उनका आचार भी यथावत् रहा प्ररूपणा भी यथावत् रही वे दिगंवर कह लाये । उनके संप्रदायमें श्रीवर्धमानको निर्वाण (मोक्ष) पधानेपर छहसौ तिरासी वर्ष वाद दूसरे भद्रबाहुस्वामी आचार्य हुए । उनकी परिपाटीमें कितने एक वर्ष वाद मुनि हुए, उन्होंने सिद्धांतोंकी प्रवृत्ति की । उसे लिखते हैं—

एक तो धरसेन नामा मुनि हुए, उनको आग्रायणी पूर्वके पांचवें वस्तु अधिकारके महाकर्मप्रकृति नामा चौथे प्राभृतका ज्ञान था । यह प्राभृत भूतबली और पुष्पदंत नामके दो मुनियोंको पढाया । पश्चात् उन दोनों मुनियोंने आगामी कालदोषसे बुद्धिकी मंदता जान उस प्राभृतके अनुसार षट्खंडसूत्र रच पुस्तकरूप लिखाकर उनकी प्रवृत्ति की । उसके वाद जो मुनि हुए उन्होंने उन्हीं सूत्रोंको पढकर उनकी टीका विस्तार रूप कर धवल, महाधवल, जयधवल आदि सिद्धांत रचे । उनको पढकर श्रीनेमिचंद्र आदि आचार्योंने गोंमटसार, लब्धिसार क्षपणासार आदि शास्त्रोंकी प्रवृत्ति की । यह तो प्रथम सिद्धांतकी उत्पत्ति है । इनमें तो जीव और कर्मके संयोगसे हुआ जो आत्माका संसार पर्याय उसका विस्तार गुणस्थान मार्गणारूप संक्षेपकर वर्णन है । यह तो पर्यायार्थिक नयको प्रधानकर कथन है । इसी नयको अशुद्धद्रव्यार्थिक भी कहते हैं तथा अध्यात्मभाषाकर अशुद्धनिश्चय व व्यवहार कहते हैं ।

दूसरे गुणधर नामा मुनि हुए । उनको ज्ञानप्रवादपूर्वके दशम वस्तुके तीसरे प्राभृतका ज्ञान था । उस प्राभृतको नागहस्ती नामा मुनिने पढा । उन दोनों मुनियोंसे यतिनायक नामा मुनिने उस प्राभृतको पढ उसकी चूर्णिका रूप छह हजार सूत्रोंका

शास्त्र रचा । उसकी टीका समुद्धरण नामा मुनिने बारह हजार प्रमाण रची । इस तरह आचार्योंकी परंपरासे कुंदकुंदमुनि उन सिद्धांतोंके ज्ञाता हुये । ऐसें इस द्वितीय सिद्धांतकी उत्पत्ति है ॥ इसमें ज्ञानको प्रधानकर शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे कथन है। अध्यात्मभाषाकर आत्माका ही अधिकार है। इसको शुद्धनिश्चय तथा परमार्थ कहते हैं। इसमें पर्यायार्थिकनयको गौणकर व्यवहार कह असत्यार्थ कहा है। सो जबतक पर्याय बुद्धि रहे तबतक इस जीवके संसार है। और जब शुद्धनयका उपदेश पाकर द्रव्यबुद्धि हो, अपने आत्माको अनादि अनंत एक सब परद्रव्य परभावोंके निमित्तसे हुए अपने भावोंसे भिन्न जाने, अपने शुद्धस्वरूपका अनुभवकर शुद्धोपयोगमें लीन हो तब कर्मका अभाव करके निर्वाणको पाता है। इस प्रकार इस द्वितीय शुद्धनयके उपदेशके पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, परमात्मप्रकाश आदि शास्त्र प्रवर्ते हैं। उनमें यह समय प्राभृत (सार) नामा शास्त्र है, वह श्रीकुंदकुंदाचार्यकृत प्राकृतभाषामय गाथाबद्ध है। उसकी आत्मख्यातिनामा संस्कृतटीका अमृतचंद्र आचार्यने की है, सो काल दोषसे जीवोंकी बुद्धि मंद होती जाती है उसके निमित्तसे प्राकृत संस्कृतके अभ्यास करनेवाले विरले रह गये हैं। और गुरुओंकी परंपराका उपदेश भी विरला होगया, इस लिये मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार ग्रंथोंका अभ्यासकर इस ग्रंथकी देशभाषामय वचनिका करनेका प्रारंभ किया है। जो भव्यजीव बाचेंगे पढेंगे सुनेंगे उसका तात्पर्य धारेंगे उनके मिथ्यात्वका अभाव होजायगा, सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगी। ऐसा अभिप्राय है कुछ पंडिताईका तथा मानलोभ आदिका अभिप्राय नहीं है। इसमें कही बुद्धिकी मंदतासे तथा प्रमादसे हीनाधिक अर्थ लिखूं तो बुद्धिके धारक जनो! मूलग्रंथ देख शुद्ध कर बांचना, हास्य नहीं करना, क्योंकि सत्पुरुषोंका स्वभाव गुणग्रहण करनेका ही है। यह मेरी परोक्ष प्रार्थना है ॥

यहां कोई कहे कि "इस समयसारग्रंथकी तुम वचनिका करते हो, यह अध्यात्म ग्रंथ है इसमें शुद्धनयका कथन है, अशुद्धनय व्यवहारनय है उसको गौणकर असत्यार्थ कहा है। वहांपर व्यवहार चारित्रको और उसके फल पुण्यबंधको अत्यंत निषेध किया है। मुनिव्रत भी पाले उसके भी मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा कहा है। सो ऐसे ग्रंथ तो प्राकृत संस्कृत ही चाहिये। इनकी वचनिका होनेपर सभी प्राणी वांचेगे। तब व्यवहार चारित्रको बिष्प्रयोजन जानेंगे, अरुचि आनेसे अंगीकार नहीं करेंगे तथा पहले कुछ अंगीकार किया है उससे भी भ्रष्ट होके स्वच्छंद हुए प्रमादी हो जायंगे। श्रद्धानका विपर्यय होगा यह बड़ा दोष आयेगा। यह ग्रंथ तो—जो पहले मुनि हुए हों, दृढ चारित्र पालते हों, शुद्ध आत्मस्वरूपके सन्मुख न हों और व्यवहारमात्रसे ही सिद्धि होनेका आशय हो उनको शुद्धात्माके सन्मुख करनेके लिये है, उन्हीके सुननेका है। इसलिये देशभाषामय वचनिका करना ठीक नहीं है"? उसका उत्तर कहते हैं—यह बात तो सच है कि इसमें शुद्धनयका ही

कथन है परंतु जहां जहां अशुद्धनयरूप व्यवहारनयका गौणतासे कथन है वहा आचार्य ऐसाभी कहते आये हैं कि पहिली अवस्थामें यह व्यवहारनय हस्तावलंबरूप है अर्थात् ऊपर चढनेको पैड़ीरूप है इसलिये कथंचित् कार्यकारी है। इसको गौण करनेसे ऐसा मत जानना कि आचार्य व्यवहारको सर्वथा ही छुड़ाते हैं, आचार्य तो ऊपर चढनेके लिये नीचली पैडी छुड़ाते हैं। जब अपने स्वरूपकी प्राप्ति होजायगी तब तो शुद्ध अशुद्ध दोनोंही नयोंका आलंबन छूट जायगा । नयका आलंबन तो साधक अवस्थामें है। ऐसें ग्रंथमें जहां जहां कथन है उसको यथार्थ समझनेसे श्रद्धानका विपर्यय नहीं होगा। जो यथार्थ समझेंगे उनके व्यवहार चारित्रसे अरुचि नही होगी। और जिनकी होनहार (भवितव्य) ही खोटी है वे तो शुद्धनय सुनें अथवा अशुद्धनय सुनें विपरीत ही समझेंगे। उनको तो सब ही उपदेश निष्फल है।

यहां तीन प्रयोजन मनमें विचारके प्रारंभ किया है। प्रथम तो अज्ञमति वेदांती तथा सांख्यमती आत्माको सर्वथा एकांतपक्षसे शुद्ध नित्य अभेदरूप एक ऐसे विशेषणोंकर कहते हैं, और ऐसा कहते हैं कि जैनी कर्मवादी हैं इनके आत्माकी कथनी नहीं है। आत्मज्ञानके विना वृथा कर्मका क्लेश करते हैं आत्माको विना जाने मोक्ष नहीं हो सकती। जो कर्ममें ही लीन हैं उनके संसारका दुःख कैसे मिट सकता है? । तथा ईश्वरवादी नैयायिक कहते हैं कि ईश्वर सदा शुद्ध है नित्य है सब कार्योंके प्रति एक निमित्त कारण है उसके विना जाने व उसको भक्तिभावसे विना ध्याये संसारी जीवकी मोक्ष नही, ईश्वरका शुद्ध ध्यानकर उसीसे लय लगाये तभी मोक्ष हो सकती है, जैनी ईश्वरको तो मानते ही नही हैं जीवको ही मानते हैं सो जीव तो अज्ञानी है असमर्थ है आप ही अहंकारसे ग्रस्त है सो अहकारको छोडके ईश्वरका ध्यावना जैनियोंके नही है इसलिये इनके मोक्ष ही नहीं इत्यादिक कहते हैं। सो लौकिकजन उनके मतके हैं उनमें यह प्रसिद्धि कर रक्खी है। वे जिनमतकी स्याद्वादकथनीको तो समझे ही नहीं हैं परंतु प्रसिद्ध व्यवहार देख निषेध करते हैं। उनका निषेध (खंडन) शुद्धनयकी कथनीके प्रगट हुए विना नही हो सकता । यदि यह कथनी प्रगट न हो तो भोले जीव अन्यमतियोंका कथन सुनें तब भ्रम उत्पन्न होजाय श्रद्धानसे चिगजांय इस लिये यह कथन प्रगट किया है इसके प्रगट होनेसे श्रद्धानसे नहीं चिग सकते। एक तो यह प्रयोजन है।

दूसरा यह है—कि इस ग्रंथकी वचनिका पहले भी हुई है उसके अनुसार बनारसीदास कविवरने कलशोंके कवित्त भाषामें बनाये हैं वे स्वमत परमतमें प्रसिद्ध हुए हैं परतु उनमें सामान्य अर्थ ही लोक समझते हैं विशेष समझे विना किसीके पक्षपात भी हो जाता है। तथा उन कवित्तोंको अन्यमती पढकर अपने मतके अर्थमें मिला लेते हैं। सो विशेष अर्थ समझे विना यथार्थ होता नहीं भ्रम मिटता नहीं । इसलिये इस वच-

निकामें कहीं कहीं नयविभागका अर्थ स्पष्ट (खुलासा) किया गया है इससे भ्रम न रहे ॥ तथा तीसरा प्रयोजन यह है कि कालदोषसे बुद्धिकी मंदतासे प्राकृतसंस्कृतके पढनेवाले तो विरले हैं उनमें भी स्वपरमतका विभाग (भेद) समझ यथार्थ तत्त्वके अर्थको समझने वाले थोड़े हैं। और जैनग्रंथोंकी गुरु आम्नाय कम रह गई है स्याद्वादके मर्मकी बात कहनेवाले गुरुओंकी व्युच्छित्ति (हीनता) दीखती है। इस कारण शुद्ध-नयका मर्म स्याद्वादविद्याको समझकर समझे तभी यथार्थ तत्त्वज्ञान हो सकता है। अत एव इस ग्रंथकी वचनिका विशेष अर्थरूप हो तो सभी वाचैं पढैं तथा पहली वच-निकाके सामान्य अर्थमें कुछ भ्रम हुआ हो वह मिट जाय इस शास्त्रका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो अर्थमें विपर्यय नहीं हो सकेगा। ऐसें तीन प्रयोजन मनमें धारण कर वच-निकाका प्रारंभ किया गया है।

एक प्रयोजन यह भी है कि जैनमतमें मोक्षमार्गके वर्णनमें पहले सम्यग्दर्शन मुख्य (प्रधान) कहा गया है सो व्यवहार नयकर तो सम्यग्दर्शन भेदरूप अन्यग्रंथोंमें अनेक प्रकार कहा है वह प्रसिद्ध ही है। परंतु इस ग्रंथमें शुद्धनयका विषय जो शुद्ध-आत्मा उसीके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार नियमसे कहा गया है। सो लोकमें यह कथन बहुधा प्रसिद्ध नहीं है इसलिये व्यवहारको लोक समझते हैं। पहले लोकोंके अशुभ व्यवहार था उसको निषेधकर व्यवहारनय शुभमें प्रवर्ताती है सो लोक अशुभकी पक्षको छोड़ शुभमें प्रवर्तते हैं। कदाचित् शुभका ही पक्ष पकड़ इसीका एकांत किया जाय तो पहले अशुभकी पक्षका एकांत था अब शुभका एकांत हुआ, इसीको मोक्षमार्ग माना तब मिथ्यात्व ही दृढ हुआ। इसलिये शुभकी पक्ष छुड़ानेको शुद्धनयके आलंब-नका उपदेश है। इसीको निश्चयनय कह सत्यार्थ कहा है, अशुद्धनयको व्यवहार कह असत्यार्थ कहा है। क्योंकि व्यवहार शुभाशुभरूप है बंधका कारण है, इसमें तो प्राणी अनादिकालसे ही प्रवर्त रहा है शुद्धनयरूप कभी हुआ नहीं, इसलिये इसका उपदेश सुन इसमें लीन होके व्यवहारका आलंबन छोड़े तब बंधका अभाव करसकता है। तथा स्वरूपकी प्राप्ति होनेके बाद शुद्ध अशुद्ध दोनोंही नयोंका आलंबन नहीं रहता। नयका आलंबन तो साधक अवस्थामें ही प्रयोजनवान है। सो इस ग्रंथमें ऐसा वर्णन है। इस-लिये इसको खुलासाकर स्पष्ट अर्थ वचनिकारूप लिखा जाय तो सर्वथा एकांत की पक्ष मिट जाय, स्याद्वादका मर्म यथार्थ समझे, यथार्थ श्रद्धान होवे तब मिथ्यात्वका नाश हो, यह भी वचनिका बनानेका प्रयोजन है। तथा ऐसा भी जानना कि स्वरूपकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है, प्रथम तो यथार्थ ज्ञान होकर श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन होना सो यह तो अविरतसम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवालेके भी होता है वहां बाह्य व्यवहार तो अविरतरूप ही है वहां व्यवहारका आलंबन है ही, और अंतरंग सब नयोंके पक्षपातरहित अनेकांत तत्त्वार्थकी श्रद्धा होती है। जब संयम धार प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनि होय

जबतक साक्षात् शुद्धोपयोगकी प्राप्ति न होय श्रेणी न चढे तबतक तो शुभरूप व्यवहारका भी बाह्य आलंबन रहता है। तथा दूसरा साक्षात् शुद्धोपयोगरूप वीतराग चारित्रका होना है वह अनुभवमें शुद्धोपयोगकी साक्षात् प्राप्ति है उसमें व्यवहारका भी आलंबन नहीं है और शुद्धनयका भी आलंबन नहीं, क्योंकि आप साक्षात् शुद्धोपयोगरूप हुआ तब नयका आलंबन कैसा? । नयका आलंबन तो जबतक राग अंश था तबतक ही था। इस तरह अपने स्वरूपकी प्राप्तिके होनेबाद पहले तो श्रद्धामें नयपक्ष मिट जाता है पीछे साक्षात् वीतराग होय तब चारित्रका पक्षपात मिटता है। ऐसा नहीं है कि, साक्षात् वीतराग तो हुआ नहीं और शुभ व्यवहारको छोड़ स्वच्छंद प्रमादी हो प्रवर्ते। ऐसा हो तो नयविभागमें समझा ही नहीं उलटा मिथ्यात्व ही दृढ किया। इस प्रकार मंद बुद्धियोंके भी यथार्थ ज्ञान होनेका प्रयोजन जान इस ग्रंथकी भाषावचनिकाका प्रारंभ किया गया है ऐसा जानना ॥"

भाषाकारकी भूमिकासे यह तो सिद्ध ही है कि इसके मूलकर्ता श्रीकुंदकुंदाचार्य हैं। वे पट्टावलियोंके अनुसार वि० सं० ४९ में हुए हैं। इस ग्रंथकी दो संस्कृत टीकायें और एक भाषाटीका इसतरह तीन टीकायें मिलतीं हैं उनमेंसे एक आत्मख्याति नामकी संस्कृत टीका अमृतचंद्राचार्यकृत है, दूसरी तात्पर्यवृत्ति संस्कृत टीका जयसेनाचार्यकी है, तीसरी भाषाटीका पं० जयचंद्रजीकृत है वह आजकलकी प्रचलित भाषामें अन्वय सहित परिवर्तित कीगई है। पहले जैपुरी भाषामें छपीथी। इन तीनों टीकाओंका सर्व साधारणमें प्रचार होनेके लिये मूल्य भी लागतके लग भग ४) चार रुपये जिल्द सहित रक्खा गया है और गाथासूची विषयसूची भी साथमें लगादी गई है जिससे कि पाठकोंको सुभीता हो। इसका उद्धार **श्रीरायचंद्रजीद्वारा** स्थापित परमश्रुतप्रभावक मंडलकी तरफसे हुआ है अतः उनकार्य कर्ताओंको कोटिशः धन्यवाद देता हूं। तथा श्रीमान् सेठ **भैरूंदानजी** लाडनूं निवासीने जो ५० पचास रुपये इसकी सहायतार्थ भेजे हैं इसलिये उनको भी शतशः धन्यवाद है। अंतमें यह प्रार्थना है कि यदि प्रमादसे, दृष्टिदोषसे कहींपर अशुद्धियां रह गई हों तो पाठकगण मेरे ऊपर क्षमा करके शुद्ध करते हुए पढें क्योंकि अल्पबुद्धिसे अशुद्धियोंका रहजाना संभव है। इसतरह धन्यवादपूर्वक प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं। अलं विज्ञेषु।

जैनग्रंथउद्धारककार्यालय
खत्तरगली हौदावाडी
पो० गिरगांव—बंबई.
माघवदि ६ वी० सं० २४४५

जैनसमाजका सेवक—
पं० मनोहरलाल
पाढम (मैनपुरी) निवासी

—॥ इति प्रस्तावना ॥—

अथ समयसारस्य विषयानुक्रमणिका

इति विषयानुक्रमणिका



श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः ।

समयसारः ।



(टीकात्रयसहितः)

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृता आत्मख्यातिः ।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ॥ १ ॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः ।

वीतरागं जिनं नत्वा ज्ञानानंदैकसंपदम् ।
वक्ष्ये समयसारस्य वृत्तिं तात्पर्यसंज्ञिकाम् ॥ १ ॥

अथ शुद्धपरमात्मतत्त्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन विस्तररुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं श्रीकुंदकुंदाचार्यदेव-

---

पण्डित श्रीजयचंद्रकृत आत्मख्यातिवचनिका भाषाटीका ।

दोहा—श्रीपरमातमकूं प्रणमि, सारद सुगुरु मनाय ।
समयसार शासन करूं, देशवचनमय भाय ॥ १ ॥
शब्दब्रह्मपरब्रह्मके, वाचकवाच्यनियोग ।
मंगलरूप प्रसिद्ध है, नमों धर्म धन भोग ॥ २ ॥
नयनय लहइ सार शुभवार, पयपय दहइ मार दुखकार ।
लय लय गहइ पार भवधार, जय जय समयसार अविकार ॥ ३ ॥
शब्द अर्थ अरु ज्ञान समयत्रय आगम गाये
मतसिद्धांतरुकालभेदत्रय नाम वताये ।
इनहिं आदि शुभ अर्थसमयवचके सुनिये बहु
अर्थ समयमें जीव नाम है सार सुनहु सहु

अनंतधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यगात्मनः ।
अनेकांतमयीमूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥ २ ॥

निर्मिते समयसारप्राभृतग्रंथे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिकासहितव्याख्यानं क्रियते । तत्रादौ "वंदित्तु सव्वसिद्धे" इति नमस्कारगाथामादिं कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण प्रथमस्थले स्वतंत्रगाथाषट्कं भवति । तदनतरं द्वितीयस्थले भेदाभेदरत्नत्रयप्रतिपादनरूपेण 'ववहारेणुवदिस्सदि'इत्यादि गाथा-

---

तातें जु सार विनकर्ममल शुद्ध जीव शुध नय कहै ।
इस ग्रंथ मांहि कथनी सवै समयसार बुधजन गहै ॥ ४ ॥
नामादिक छह ग्रंथमुख, तामे मंगलसार ।
विघन हरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार ॥ ५ ॥
समयसार जिनराज है, स्यादवाद जिनवैन ।
मुद्रा जिन निरग्रंथता, नमूं करै सव चैन ॥ ६ ॥

इसतरह मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकर श्रीकुंदकुंद नामा आचार्यकृत गाथावंध समयप्राभृत ग्रंथकी जो संस्कृतटीका श्रीअमृतचंद्र आचार्यकृत आत्मख्याति नामा है उसकी देश भाषामय वचनिका लिखते (प्रारंभ करते) है ॥ अब संस्कृत टीकाकार श्रीमान् अमृतचंद्र नामा आचार्य ग्रंथकी आदिमें मंगलकेलिये इष्टदेवको नमस्कार करते हैं–"नमः"इत्यादि । इसका अर्थ–'समय' अर्थात् जीव नामा पदार्थ उसमें 'सार' जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा उसके लिये मेरा नमस्कार हो । कैसा है वह ? । 'भावाय' अर्थात् शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है । इस विशेषणपदसे सर्वथा अभाववादी नास्तिकोंका मत खंडित हुआ । फिर कैसा है ? 'चित्स्वभावाय'–जिसका स्वभाव चेतनागुणरूप है । इस विशेषणसे गुण गुणीका सर्वथा भेद माननेवाले नैयायिकका निषेध हुआ । फिर कैसा है ? 'स्वानुभूत्या चकासते'–अपनी ही अनुभवनरूप क्रियासे प्रकाश करता है अर्थात् अपनेको अपनेकर ही जानता है, प्रगट करता है । इस विशेपणसे आत्माको तथा ज्ञानको सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमिनीय–भट्ट–प्रभाकर भेदवाले मीमांसकोंका व्यवच्छेद हुआ । तथा ज्ञान अन्यज्ञानकर जाना जाता है आप अपनेको नहीं जानता ऐसा माननेवाले नैयायिकोंका प्रतिषेध होता है । फिर कैसा है ? 'सर्वभावांतरच्छिदे' जो अपनेसे अन्य सब जीव अजीव चराचर पदार्थ उनको सब क्षेत्रकालसंबंधी सब विशेषणोंकर सहित एक ही समय जाननेवाला है । इस विशेषणसे सर्वज्ञका अभाव माननेवाले मीमांसक आदिका निराकरण है ॥ इसतरहके विशेपणोंकर (गुणोंकर) अपना इष्टदेव सिद्धकर नमस्कार किया है । **भावार्थ**–यहां मंगलकेलिये शुद्ध आत्माको नम-

---

१ इससे आगेका "तहा इसग्रंथ" इत्यादि पाठ प्रस्तावना और विषयसूचीमें लिखा जाना आवश्यक समझ छोड़दिया है, पाठकगण प्रस्तावना और विषयसूचीमें उक्त पाठको देख लें ।

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥ ३ ॥

द्वयम् । अथ तृतीयस्थले निश्चयव्यवहारश्रुतकेवलिव्याख्यानमुख्यत्वेन 'जो हि सुदेण' इत्यादि सूत्रद्वयं । अतःपरं चतुर्थस्थले भेदाभेदरत्नत्रयभावनार्थं तथैव भावनाफलप्रतिपादनार्थं च 'णाणम्हि भावणा'इत्यादि सूत्रद्वयं । तदनंतरं पंचमस्थले निश्चयव्यवहारनयद्वयव्याख्यानरूपेण 'ववहारो

स्कार किया है । यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि इष्टदेवका नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ? उसका समाधान इसप्रकार है–यह अध्यात्मग्रंथ है, इसलिये इष्टदेवका सामान्य स्वरूप सर्व कर्मरहित सर्वज्ञ वीतराग शुद्ध आत्मा ही है, इसलिये समयसार कहनेसे इष्टदेव आगया । एक ही नाम लेनेमें अन्यमतवादी मतपक्षका विवाद करते हैं उन सबका निराकरण इन कहेहुए विशेषणोंसे बतलाया गया है । अन्यवादी अपने इष्टदेवका नाम लेते हैं उसमें इष्ट शब्दका अर्थ नहीं घटता बाधायें आती है, और स्याद्वादी जैनियोंके सर्वज्ञ वीतराग शुद्ध आत्मा इष्ट है उसके नाम कथंचित् सभी सत्यार्थ संभवते है । इष्टदेवको परमात्मा कहो, परमज्योति कहो, परमेश्वर, शिव, निरंजन, निष्कलंक, अक्षय, अव्यय, शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी, अनुपम, अच्छेद्य, अभेद्य, परमपुरुष, निराबाध, सिद्ध, सत्यात्मा, चिदानंद, सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हत्, जिन, आप्त, भगवान्, समयसार–इत्यादि हजारों नामोंसे कहो कुछ विरोध नहीं । परंतु सर्वथा एकात वादियोंके यहां भिन्न नाममें विरोध है । इसलिये अर्थ यथार्थ समझना चाहिये । "प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप । सब ग्याता लखिके नमौं समयसार सब भूप ॥" ॥ १ ॥ आगे सरस्वतीको नमस्कार करते हैं–"अनंत"इत्यादि । **अर्थ**–जिसमें अनेक अंत–धर्म हैं ऐसा जो ज्ञान तथा वचन उसमई मूर्ति नित्य सदा ही प्रकाशतां अर्थात् प्रकाशरूप हो । वह मूर्ति ऐसी है कि जिसमें अनंत धर्म हैं ऐसा और प्रत्यक्–परद्रव्योंसे, परद्रव्यके गुणपर्यायोंसे भिन्न तथा परद्रव्यके निमित्तसे हुए अपने विकारोंसे कथंचित् भिन्न एकाकार ऐसा जो आत्मा उसके तत्त्वको अर्थात् असाधारण सजातीय विजातीय द्रव्योंसे विलक्षण निजस्वरूपको पश्यंती–अवलोकन करती (देखती) है । **भावार्थ**—यहां सरस्वतीकी मूर्तिको आशीर्वचनरूप नमस्कार किया है । जो लौकिकमें सरस्वतीकी मूर्ति प्रसिद्ध है वह यथार्थ नहीं है इसलिये उसका यथार्थ वर्णन किया है । जो सम्यग्ज्ञान है वह सरस्वतीकी सत्यार्थ मूर्ति है । उसमें भी संपूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है कि जिसमें सब पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं वही अनंत धर्मोंसहित आत्मतत्त्वको प्रत्यक्ष देखता है । और उसीके अनुसार श्रुतज्ञान है वह परोक्ष देखता है इसलिये यह भी उसीकी मूर्ति है । तथा द्रव्यश्रुत वचन-

अथ सूत्रावतारः—

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते ।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं ॥ १ ॥

वंदित्वा सर्वसिद्धान् ध्रुवामचलामनौपम्यां गतिं प्राप्तान् ।
वक्ष्यामि समयप्राभृतमिदं अहो श्रुतकेवलिभणितम् ॥ १ ॥

भूदत्थो'इत्यादिसूत्रद्वयं । एवं चतुर्दशगाथाभिः स्थलपंचकेन समयसारपीठिकाव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ प्रथमतस्तावद्गाथायाः पूर्वार्धेन मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारमुत्तरार्धेन तु समयसारव्याख्यानं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—"वंदित्तु"मित्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते । **वंदित्तु** निश्चयनयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभावरूपेण

रूप है सो यह भी उसीकी मूर्ति है क्योंकि वचनों द्वारा अनेक धर्मवाले आत्माको यह बतलाती है। इसतरह सब पदार्थोंके तत्त्वको जतानेवाली ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकांतमयी सरस्वतीकी मूर्ति है। इसीकारण सरस्वतीके नाम 'वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी' इत्यादि बहुतसे कहे जाते हैं। यह अनंत धर्मोंको स्यात्पदसे एक धर्मीमें अविरोधरूप साधती है इसलिये सत्यार्थ है। अन्यवादी कितने ही सरस्वतीकी मूर्ति अन्यथा स्थापन करते हैं वह पदार्थको सत्यार्थ कहनेवाली नहीं है। यदि कोई यहां पूछे कि आत्माका जो अनंतधर्मा विशेषण दिया है उसमें अनंत धर्म कौन कौन है? उसका उत्तर कहते हैं—जो वस्तुमें सत्पना, वस्तुपना, प्रमेयपना, प्रदेशपना, चेतनपना, अचेतनपना, मूर्तीकपना, अमूर्तीकपना इत्यादि धर्म तो गुण है और उन गुणोंका तीनों कालोंमें समय समयवर्ती परिणमन होना पर्याय हैं, वे अनंत हैं। तथा एकपना, अनेकपना, नित्यपना, अनित्यपना, भेदपना, अभेदपना, शुद्धपना, अशुद्धपना, आदि अनेक धर्म है वे सामान्यरूप तो वचनगोचर हैं और विशेषरूप वचनके अविषय है, ऐसे वे अनंत हैं सो ज्ञानगम्य हैं। ऐसा होनेपर आत्मा भी वस्तु है उसमें भी अपने धर्म अनंत है। उनमेंसे चेतनपना असाधारण है, दूसरी अचेतनद्रव्यमें नहीं है। और सजातीय जीवद्रव्य अनंत हैं उनमें भी चेतनपना है तौभी निजस्वरूपसे जुदा जुदा कहा है। क्योंकि हर एक द्रव्यके प्रदेश भेद हैं इसलिये किसीका किसीमें नहीं मिलता । यह चेतनपना अपने अनंतधर्मोंमें व्यापक है इसकारण इसीको आत्माका तत्त्व कहा है उसको यह सरस्वतीकी मूर्ति देखती है और दिखाती है। इसलिये इस सरस्वतीको आशीर्वादरूप वचन कहा है—जो सदा प्रकाशरूप रहो। इसीसे सब प्राणियोंका कल्याण होता है ऐसा जानना॥ २ ॥

आगे टीकाकार इस ग्रंथके व्याख्यान करनेके फलको चाहते हुए प्रतिज्ञा करते हैं—'पर' इत्यादि । अर्थ—श्रीमान् अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं कि जो इस समयसार (शुद्धात्मा तथा ग्रंथ) की व्याख्या (कथनी—टीका) से ही मेरी अनुभूति—अनुभवनरूप

'वंदित्तु'इत्यादि । अथ प्रथमत एव स्वभावभावभूततया ध्रुवत्वमवलंबमानामनादिभावांतरपरपरिवृत्तिविश्रांतिवशेनाचलत्वमुपगतामखिलोपमानविलक्षणाद्भुतमाहात्म्यत्वेनाविद्यमानौपम्यामपवर्गसंज्ञिकां गतिमापन्नान् भगवतः सर्वसिद्धान् सिद्धत्वेन साध्यस्यात्मनः प्रतिच्छंदस्थानीयान् भावद्रव्यस्तवाभ्यां स्वात्मनि परात्मनि च निधायानादिनिधनश्रुतप्रकाशितत्वेन निखिलार्थसार्थसाक्षात्कारिश्रुतकेवलिप्रणीतत्वेन श्रुतकेवलिभिः स्वयमनुभवद्भिर-

---

निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन भावनमस्कारेण, व्यवहारेण तु वचनात्मकद्रव्यनमस्कारेण वंदित्वा । कान् । **सव्वसिद्धे** स्वात्मोपलब्धिसिद्धिलक्षणसर्वसिद्धान् । किंविशिष्टान् । **पत्ते** प्राप्तान् । कां । **गदिं** सिद्धगतिं सिद्धपरिणतिं । कथंभूतां । **धुवं** टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवामविनश्वरां । **अमलं** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितत्वेन शुद्धस्वभावसहितत्वेन च निर्मलां । अथवा **अचलं** इति पाठांतरे द्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारभ्रमणरहितत्वेन स्वस्वरूपनिश्चलत्वेन च चलनरहितामचलां । **अणोवमं** निखिलोपमारहितत्वेन निरुपमां स्वभावसहितत्वेन अनुपमा । एवं पूर्वार्धेन नमस्कारं कृत्वा परार्धेन संबंधाभिधेयप्रयोजनसूचनार्थं प्रतिज्ञां करोति । **वोच्छामि** वक्ष्यामि । किं । **समयपाहुडं** समयप्राभृतं सम्यक् अयः बोधो यस्य स भवति समय आत्मा, अथवा सम एकीभावेनायन गमन समयः । प्राभृतं सारं सारः शुद्धावस्था समयस्यात्मनः प्राभृत समयप्राभृत, अथवा समय एव प्राभृत समयप्राभृत । **इणं** इदं प्रत्यक्षीभूत **ओ** अहो भव्याः । कथभूतं । **सुदकेवलीभणिदं** प्राकृतलक्षणबलात्केवलीशब्ददीर्घत्वं । श्रुते परमागमे

परिणति उसकी परमविशुद्धि—समस्त रागादि विभावपरिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता हो । यह मेरी परिणति ऐसी है कि परपरिणतिका कारण जो मोहनामा कर्म उसका अनुभाव–उदयरूप विपाक उससे जो अनुभाव्य—रागादिकपरिणामोंकी व्याप्ति है उसकर निरंतर कल्माषित–मैली है । और मैं ऐसा हूं कि द्रव्यदृष्टिकर शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूं । **भावार्थ**—आचार्य कहते हैं कि शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिकर तो मैं शुद्धचैतन्यमात्र मूर्ति हूं । परंतु मेरी परिणति मोहकर्मके उदयका निमित्त पाकर मैली है—रागादिस्वरूप हो रही है । इसलिये इस शुद्ध आत्माकी कथनीरूप जो यह समयसार ग्रंथ है उसकी टीका करनेका फल यह चाहता हूं कि मेरी परिणति रागादिकसे रहित होकर शुद्ध हो, मेरे शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति हो, दूसरा कुछ भी ख्याति लाभ पूजादिक नहीं चाहता । इसप्रकार आचार्यने टीकाकरनेकी प्रतिज्ञागर्भित इसके फलकी प्रार्थना की है ॥ आगे मूलगाथासूत्रकार श्रीकुंदकुंदाचार्य ग्रंथकी आदिमे मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं;—आचार्य कहते हैं, मै [**ध्रुवां**] ध्रुव [**अचलां**] अचल और [**अनौपम्यां**] अनुपम इन तीन विशेषणोंकर युक्त [**गतिं**] गतीको [**प्राप्तान्**] प्राप्त हुए ऐसे [**सर्वसिद्धान्**] सब सिद्धोंको [**वंदित्वा**] नमस्कार कर [**अहो**] हे भव्यो [**श्रुतकेवलिभणितं**] श्रुतकेवलियोंकर कहे हुए [**इदं**] इस [**समयप्राभृतं**]

भिहितत्वेन च प्रमाणतामुपगतस्यास्य समयप्रकाशकस्य प्राभृताह्वयस्यार्हत्प्रवचनावयवस्य स्वपरयोरनादिमोहप्रहाणाय भाववाचा द्रव्यवाचा च परिभाषणमुपक्रम्यते ॥ १ ॥

केवलिभिः सर्वज्ञैर्भणितं श्रुतकेवलिभणितं । अथवा श्रुतकेवलिभणित गणधरदेवकथितमिति । संबंधाभिधेयप्रयोजनानि कथ्यंते—व्याख्यानं वृत्तिग्रंथः व्याख्येयं व्याख्यानतत्प्रतिपादकसूत्रमिति तयोस्संबंधो व्याख्यानव्याख्येयसंबंधः । सूत्रमभिधानं सूत्रार्थोऽभिधेयः तयोः संबंधोऽभिधानाभिधेयसंबंधः । निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन शुद्धात्मपरिज्ञान प्राप्तिर्वा प्रयोजनमित्यभिप्रायः

समयसार नामा प्राभृतको [**वक्ष्यामि**] कहूंगा ॥ **टीका**—यहा अथ शब्द मंगलके अर्थको सूचन करता है और प्रथमत एव अर्थात् ग्रंथकी आदिमें सब सिद्धोंको भावद्रव्यस्तुतिकर—अपने आत्मामें और परके आत्मामें स्थापनकर इस समयनामा प्राभृतका भाववचन और द्रव्यवचनकर परिभाषण आरंभ करते हैं। इसप्रकार श्रीकुंदकुंदाचार्य कहते हैं। वे सिद्धभगवान् सिद्धनामसे साध्य जो आत्मा उसके प्रतिच्छंदके स्थान है। जिनका स्वरूप संसारी भव्यजीव चिंतवनकर—उन समान अपने स्वरूपको ध्यायकर उन्हींके समान होजाते हैं। और चारों गतियोंसे विलक्षण जो पंचमगति मोक्ष उसे पाते है। जो पंचमगति स्वभावसे उत्पन्न हुई है इसलिये ध्रुवपनेका अवलंबन करती है। इस विशेपणकर चारों गतियां परनिमित्तसे होती हैं इसलिये ध्रुव नहीं है विनाशीक है इसलिये चारों गतिओंसे पृथक्पना सिद्ध हुआ। फिर वह गति कैसी है ? अनादिकालसे अन्य (पर) भावके निमित्तसे हुआ जो परमे भ्रमण उसकी विश्रांति (अभाव) के वश अचलपनेको प्राप्त हुई है। इस विशेषणसे चारों गतियोंमें परनिमित्तसे भ्रमण होनेका व्यवच्छेद हुआ। फिर वह कैसी है ? जगतमे समस्त जो उपमायोग्य पदार्थहैं उनसे विलक्षण है—अद्भुत माहात्म्यकर जिसमे किसीकी उपमा नहीं पासकते। इस विशेपणसे चारों गतियोंमें आपसमे कथंचित् समानपना भी पाया जाता है उसका निराकरण हुआ। फिर कैसी है ? जिसका नाम अपवर्ग है। इस विशेषणसे धर्म अर्थ काम इनको त्रिवर्ग कहा जाता है इसलिये वह मोक्षगति इस वर्गमें न होनेसे अपवर्ग कही गई है। ऐसी पंचमगतिको सिद्ध भगवान प्राप्त हुए है। कैसा है समय प्राभृत ?। अनादिनिधन परमागम शब्द—ब्रह्मकर प्रकाशितपना होनेसे तथा सब पदार्थोंके समूहके साक्षात् करनेवाले केवली भगवान सर्वज्ञकर प्रणीतपना होनेसे और केवलियोंके निकटवर्ती साक्षात् सुननेवाले आप अनुभव करनेवाले ऐसे श्रुतकेवली गणधर देवोंकर कहे जानेसे प्रमाणपनेको प्राप्त हुआ है। अन्यथा—अन्यवादियोंके आगमकी तरह छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) का ही कल्पना किया हुआ नहीं है जिससे कि अप्रमाण हो। तथा समय अर्थात् सर्व पदार्थ अथवा जीव पदार्थ उसका प्रकाशक है। और अरहंत भगवानके परमागमका अवयव (अंश) है। ऐसे समयप्राभृतका, अनादिकालसे उत्पन्न हुए अपने और परके मोह अज्ञान मि-

तत्र तावत्समय एवाभिधीयते;—

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ॥ २ ॥

जीवः चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः तं हि स्वसमयं जानीहि।
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम् ॥ २ ॥

योयं नित्यमेव परिणामात्मनि स्वभावे अवतिष्ठमानत्वात् उत्पादव्ययध्रौव्यैक्यानुभूति-

---

॥ १ ॥ अथ गाथापूर्वार्द्धेन स्वसमयमपरार्धेन परसमयं च कथयामीत्यभिप्रायं मनसि सप्रधार्य

थ्यात्वके नाश होनेके लिये मैं परिभाषण (व्याख्यान) करूंगा ॥ **भावार्थ**—यहांपर गाथासूत्रमें आचार्यने "वक्ष्यामि" क्रिया कही है, उसका अर्थ टीकाकारने "वच परिभाषणे" धातुसे परिभाषण लेकर किया है। उसका आशय ऐसा सूचित होता है कि जो चौदहपूर्वमें ज्ञानप्रवाद नामा छठे पूर्वके बारह 'वस्तु' अधिकार हैं, उनमें भी एक एकके वीस २ प्राभृत अधिकार है, उनमे दशवें वस्तुमें समय नामा जो प्राभृत है उसका परिभाषण आचार्य करते हैं। सूत्रोंकी दश जातियां कहीं गईं हैं उनमें एक परिभाषा जाति भी है। जो अधिकारके यथास्थानमें सूचन करे वह परिभाषा कही जाती है। इस समय नामा प्राभृतके मूलसूत्रों (शब्दों) का ज्ञान तो पहले बड़े आचार्योंको था और उसके अर्थका ज्ञान आचार्योंकी परिपाटीके अनुसार श्रीकुंदकुंदाचार्यको था। इसलिये उन्होंने ये समयप्राभृतके परिभाषासूत्र बांधे हैं। वे उस प्राभृतके अर्थको ही सूचित करते है। ऐसा जानना। जो मंगलके लिये सिद्धोंको नमस्कार किया था और उनका 'सर्व' ऐसा विशेषण दिया, इससे वे सिद्ध अनंत हैं ऐसा अभिप्राय दिखलाया और 'शुद्ध आत्मा एक ही है' ऐसा कहनेवाले अन्यमतियोंका व्यवच्छेद किया। संसारीके शुद्ध आत्मा साध्य है वह शुद्धात्मा साक्षात् सिद्ध हैं उनको नमस्कार करना उचित ही है। किसी इष्ट देवका नाम नहीं कहा उसकी बाबत जैसा टीकाकारके मंगलपर कहा गया है वैसा यहां भी जानना। श्रुतकेवली शब्दके अर्थमें श्रुत तो अनादिनिधन प्रवाहरूप आगम कहा और केवली शब्दसे सर्वज्ञ तथा परमागमके जाननेवाले श्रुतकेवली केवली कहे, उनसे समयप्राभृतकी उत्पत्ति कही है। इससे ग्रंथकी प्रमाणता दिखलाई और अपनी बुद्धिसे कल्पित कहनेका निषेध किया। अन्यवादी छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) अपनी बुद्धिसे पदार्थका स्वरूप किसी प्रकारसे कहकर विवाद करते हैं उनका असत्यार्थपना बतलाया। इस ग्रंथके अभिधेय संबंध प्रयोजन तो प्रगट ही हैं। अभिधेय तो शुद्ध आत्माका स्वरूप है, उसके वाचक इस ग्रंथमें शब्द हैं उनका वाच्यवाचकरूप संबंध है और शुद्धात्माके स्वरूपकी प्राप्ति होना प्रयोजन है। इसतरह प्रथम गाथासूत्रका तात्पर्यार्थ जानना ॥ १ ॥ आगे प्रथमगाथामें समयके प्राभृत कहनेकी प्रतिज्ञा की। वहां यह आकांक्षा हुई कि समय क्या है इसलिये प्रथम ही

लक्षणया सत्तयानुस्यूतश्चैतन्यस्वरूपत्वान्नित्योदितविशददृशिज्ञप्तिज्योतिरनंतधर्माधिरूढैक-धर्मित्वादुद्योतमानद्रव्यत्वः क्रमाक्रमप्रवृत्तिविचित्रभावस्वभावत्वादुत्संगितगुणपर्यायः स्वपरा-कारावभासनसमर्थत्वादुपात्तवैश्वरूप्यैकरूपः प्रतिविशिष्टावगाहगतिस्थितिवर्त्तनानिमित्तरूप-त्वाभावादसाधारणचिद्रूपतास्वभावसद्भावाच्चाकाशधर्माधर्मकालपुद्गलेभ्यो भिन्नोऽत्यंतमनंत-द्रव्यसंकरेपि स्वरूपादप्रच्यवनात् टंकोत्कीर्णचित्स्वभावो जीवो नाम पदार्थः स समयः, समयत एकत्वेन युगपज्जानाति गच्छति चेति निरुक्तेः । अयं खलु यदा सकलस्वभाव-भासनसमर्थविद्यासमुत्पादकविवेकज्योतिरुद्गमनात्समस्तपरद्रव्यात्प्रच्युत्य दृशिज्ञप्तिस्वभाव-नियतवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकत्वगतत्वेन वर्त्तते तदा दर्शनज्ञानचारित्रस्थितत्वात्स्वमेकत्वेन युग-पज्जानन् गच्छंश्च स्वसमय इति । यदा त्वनाद्यविद्याकंदलीमूलकंदायमानमोहानुवृत्तितया दृशि-

---

सूत्रमिद निरूपयति;—'जीवो चरित्त'इत्यादि । **जीवो** शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभाव-निश्चयप्राणेन तथैवाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकाशुद्धभावप्राणैरसद्भूतव्यवहारेण यथासंभवद्-व्यप्राणैश्च जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः । **चरित्तदंसणणाणट्ठिद तं हि ससमयं जाण** स च जीवश्चारित्रदर्शनज्ञानस्थितो यदा भवति तदा काले तमेव जीव हि स्फुटं स्वसमयं जानीहि । तथाहि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मनि यद्रुचिरूपं सम्यग्द-र्शनं तत्रैव रागादिरहितस्वसंवेदनं ज्ञानं तथैव निश्चलानुभूतिरूपं वीतरागचारित्रमित्युक्तलक्षणेन निश्चयरत्नत्रयेण परिणतजीवपदार्थं हे शिष्य स्वसमय जानीहि । **पुग्गलकम्मुवदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं** पुद्गलकर्मोपदेशस्थितं च तमेव जानीहि परसमय । तद्यथा—पुद्गलकर्मो-

---

समयका स्वरूप कहते हैं;—हे भव्य जो **[जीवः]** जीव **[चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः]** दर्शन ज्ञान चारित्रमें स्थित हो रहा है **[तं]** उसे **[हि]** निश्चयकर **[स्वसमयं]** स्वसमय **[जानीहि]** जान । **[च]** और जो जीव **[पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं]** पुद्ग-लकर्मके प्रदेशोंमें तिष्ठा हुआ है **[तं]** उसे **[परसमय]** परसमय **[जानीहि]** जान । **टीका**—जो यह जीव नामा पदार्थ है वो ही समय है। क्योंकि समयशब्दका ऐसा अर्थ है—'सम्' तो उपसर्ग है और 'अय गतौ' धातु है उसका गमन अर्थ भी है तथा ज्ञान अर्थ भी है, उपसर्गका अर्थ एकपना है इसलिये एककालमें ही जानना और परिणमन करना—ये दो क्रियायें जिसमे हों वह समय है । यह जीव नामा पदार्थ एक कालमें ही परिणमता भी है और जानता भी है इसलिये यही समय है । इसतरह दो क्रियायें एक कालमें जानना । वह समय नामा जीव कैसा है ? । नित्य ही परिणमनस्वभावमें रहनेसे उत्पा-दव्ययध्रौव्यकी एकतारूप अनुभूति लक्षणवाली सत्ताकर सहित है । इस विशेषणसे जीव-की सत्ता नहीं माननेवाले नास्तिक वादियोंका मत खंडित हुआ । तथा पुरुषको (जीवको) अपरिणामी माननेवाले सांख्यमतियोंका व्यवच्छेद परिणमन स्वभाव कहनेसे हुआ । नैयायिक वैशेषिकमती सत्ताको नित्य ही मानते है-तथा बौद्धमती सत्ताको क्षणिक ही

ज्ञप्तिस्वभावनियतवृत्तिरूपादात्मतत्त्वात्प्रच्युत्य परद्रव्यप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावैकगतत्वेन वर्त्तते तदा पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितत्वात्परमेकत्वेन युगपज्जानन् गच्छंश्च परसमय इति प्रतीयते। एवं किल समयस्य द्वैविध्यमुद्धावति ॥ २ ॥

दयेन जनिता ये नारकाद्युपदेशव्यपदेशा. संज्ञाः पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रयाभावात्तत्र यदा स्थितो भवत्ययं

मानते हैं, उन दोनोंका निराकरण उत्पादव्ययध्रौव्यरूप कहनेसे हुआ। फिर वह कैसा है? चैतन्यस्वरूपपनेसे नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शन ज्योतिःस्वरूप है–चैतन्यका परिणमन दर्शन ज्ञानस्वरूप है। इस विशेषणसे चैतन्यको ज्ञानाकारस्वरूप नहीं माननेवाले सांख्यमतियोंका निराकरण हुआ। फिर वह कैसा है?। अनंतधर्मोंमें रहनेवाला जो एक धर्मीपना उससे जिसका द्रव्यपना प्रगट हुआ है, अनंतधर्मोंकी एकता वही द्रव्यपना है। इस विशेषणकर वस्तुको धर्मोंसे रहित माननेवाले बौद्धमतीका निषेध हुआ। फिर वह कैसा है?। क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवृत्त हुए जो अनेकभाव उस स्वभावपनेसे जिसने गुणपर्याय अंगीकार किये हैं। पर्याय तो क्रमवर्ती हैं और गुण सहवर्ती होते हैं इसलिये सहवर्तीको अक्रमवर्ती भी कहते हैं। इस विशेषणसे पुरुषको निर्गुण माननेवाले सांख्यादिकोंका निरास हुआ। फिर कैसा है?। अपने और अन्य द्रव्योंके आकारके प्रकाशन करनेमें समर्थपना होनेसे जिसने समस्तरूपके झलकानेवाला एकरूपपना पालिया है अर्थात् जिसमें अनेक वस्तुओंका आकार झलकता है ऐसे एक ज्ञानके आकाररूप है। इस विशेपणकर ज्ञान अपनेको ही जानता है परको नहीं जानता ऐसा एकाकार माननेवालेका तथा अपनेको नहीं जानता परको जानता है ऐसे अनेकाकार ही माननेवालेका व्यवच्छेद हुआ। फिर कैसा है? जुदे जुदे जो अवगाहनगतिस्थिति हेतुपना तथा रूपीपनास्वरूप जो द्रव्योंके गुण उनके अभावसे और असाधारण चैतन्यरूपपने स्वभावके सद्भावसे आकाश धर्म अधर्म काल पुद्गल–इन पाच द्रव्योंसे भिन्न (अलग) है। इस विशेपणसे एक ब्रह्मवस्तुको ही माननेवालेका व्यवच्छेद हुआ। फिर कैसा है? अनंत अन्यद्रव्योंसे अत्यंत एकक्षेत्रावगाहरूप होनेपर भी अपने स्वरूपसे न छूटनेसे टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। इस विशेषणसे वस्तुस्वभावका नियम बतलाया है॥ ऐसा जीवनामा पदार्थ **समय** है। जब यह सब पदार्थोंके स्वभाव प्रकाशनेमें समर्थ ऐसे केवलज्ञानके उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योतिके उदय होनेसे सब परद्रव्योंसे छूट दर्शनज्ञानमें निश्चितप्रवृत्तिरूप आत्मतत्त्वसे एकपनेरूप लीन हो प्रवृत्ति करता है, तब दर्शन ज्ञान चारित्रमें ठहरनेसे अपने स्वरूपको एकतारूपकर एक कालमें जानता तथा परिणमता हुआ **स्वसमय** कहलाता है॥ और जब यह अनादि अविद्यारूप मूलवाले कंदके समान मोहके उदयके अनुसार प्रवृत्तिके आधीनपनेसे दर्शन ज्ञान स्वभावमें निश्चितवृत्तिरूप आत्मस्वरूपसे छूट परद्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न मोहरागद्वेषादिभावोंमें एकता-

अथैतद्बाध्यते;—

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥ ३ ॥

एकत्वनिश्चयगतः समयः सर्वत्र सुंदरो लोके ।
बंधकथैकत्वे तेन विसंवादिनी भवति ॥ ३ ॥

समयशब्देनात्र सामान्येन सर्व एवार्थोऽभिधीयते। समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान् गच्छतीति निरुक्तेस्ततः सर्वत्रापि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्यात्मनि लोके ये यावंतः

जीवस्तदा तं जीवं परसमयं जानीहीति स्वसमयपरसमयलक्षणं ज्ञातव्यं ॥ २ ॥ अथ स्वगुणैकत्वनिश्चयगतशुद्धात्मैवोपादेयः कर्मबंधेन सहैकत्वगतो हेय इति, अथवा स्वसमय एव शुद्धात्मनः स्वरूपं न पुनः परसमय इत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा, अथवास्य सूत्रस्यानंतरं सूत्रमिदमुचितं भवतीति निश्चित्य विवक्षितसूत्रं प्रतिपादयति;—इति पातनिकालक्षणं सर्वत्र ज्ञातव्यं । **एयत्तणिच्छयगदो** स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणतः, अभेदरत्नत्रयपरिणतो वा एकत्वनिश्चयगतः **समओ** समयशब्देनात्मा, कस्माद्धेतोः।सम्यगयते गच्छति परिणमति। कान्। स्वकीयगुणपर्यायानिति व्युत्पत्तेः । **सव्वत्थसुंदरो** सर्वत्र समीचीनः । क । **लोगे** लोके अथवा सर्वत्रैकेंद्रियाद्यवस्थासु शुद्धनिश्चयनयेन सुदर उपादेय इति । **बंधकहा** कर्मबंधजनितगुणस्था-

---

रूप लीन हो प्रवर्तता है तब पुद्गलकर्मके कार्मणस्कंधरूप प्रदेशोंमें ठहरनेसे परद्रव्यको अपनेसे एकपनाकर एक कालमे जानता तथा रागादिरूप परिणमता हुआ **परसमय** ऐसा प्रतीतिरूप किया जाता है। इसतरह इस जीवनामा पदार्थके स्वसमय परसमय ऐसे दो भेदपना प्रगट होता है ॥ **भावार्थ**—जीवनामा वस्तुको पदार्थ कहा है । वह ऐसे है कि पद तो 'जीव' ऐसे अक्षरसमूहरूप है और इस पदसे जो द्रव्यपर्यायरूप अनेकांतस्वरूपपना निश्चित किया जाय वह पदार्थ है। ऐसा पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है। दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है, अनंतधर्मस्वरूप द्रव्य है और द्रव्य है वह वस्तु है । गुणपर्यायवाला है, स्वपरप्रकाशकज्ञान अनेकाकाररूप एक है, आकाशादिकसे भिन्न असाधारण चैतन्यगुणस्वरूप है और अन्यद्रव्योंसे एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठता है तौभी अपने स्वरूपको नहीं छोड़ता । ऐसा जीवनामा पदार्थ समय है । जब यह अपने स्वभावमें स्थित होता है तब तो स्वसमय है और परस्वभाव रागद्वेषमोहस्वरूप होके तिष्ठता है तब परसमय है । ऐसे इस जीवके दोभेदपना आता है ॥ २ ॥ आगे आचार्य कहते हैं कि समयका द्विविधपना होना ठीक नहीं है क्योंकि यह बाधा सहित है इसलिये बाधा जाता है;—[**एकत्वनिश्चयगतः**] एकत्वनिश्चयमें प्राप्त जो [**समयः**] समय है वह [**सर्वत्र लोके**] सब लोकमें [**सुंदरः**] सुंदर है [**तेन**] इसलिये [**एकत्वे**] एकत्वमें [**बंधकथा**] दूसरेके साथ बंधकी कथा [**विसंवादिनी**] निंदा कराने-

केऽप्यर्थास्ते सर्वे एव स्वकीयद्रव्यांतर्मग्नानंतस्वधर्मचक्रचुंबिनोपि परस्परमचुंबंतोत्यंतप्रत्यया-सत्तावपि नित्यमेव स्वरूपादपतंतः पररूपेणापरिणमनादविनष्टानंतव्यक्तित्वाट्टंकोत्कीर्ण इव तिष्ठंतः समस्तविरुद्धाविरुद्धकार्यहेतुतया शश्वदेव विश्वमनुगृह्णतो नियतमेकत्वनिश्चयगतत्वेनैव सौंदर्यमापद्यंते। प्रकारांतरेण सर्वसंकरादिदोषापत्तेः। एवमेकत्वे सर्वार्थानां प्रतिष्ठिते सति जीवाह्वयस्य समयस्य बंधकथाया एव विसंवादत्वापत्तिः। कुतस्तन्मूलपुद्गलकर्मप्रदेशस्थितत्वमूलपरसमयोत्पादितमेतस्य द्वैविध्यं। अतः समयस्यैकत्वमेवावतिष्ठते ॥ ३ ॥

तथैतदसुलभत्वेन विभाव्यते;—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥ ४ ॥

नादिपर्यायाः। **एयत्ते** एकत्वे तन्मयत्वे या बंधकथा प्रवर्तते **तेण** तेन पूर्वोक्तजीवपदार्थेन सह सा **विसंवादिणी** विसंवादी कोर्थः[२] विसंवादिनीकथा। प्राकृतलक्षणबलात् पुल्लिंगे स्त्रीलिंगनिर्देशः। विसंवादिनी असत्या **होदि** भवति। शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्वरूप न भवतीत्यर्थः। ततः स्थितं स्वसमय एवात्मनः स्वरूपमिति ॥ ३ ॥ अथैकत्वपरिणतं शुद्धात्म-

---

वाली [भवति] है। **टीका**—यहां समयशब्दसे सामान्यकर सभी पदार्थ कहे जाते हैं क्योंकि समय शब्दका अक्षरार्थ ऐसा है कि 'समयते' अर्थात् एकीभावकर अपने गुणपर्यायोंको प्राप्त हुआ जो परिणमन करे वह समय है। इसलिये सब ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव द्रव्यस्वरूप लोकमें जो कुछ पदार्थ हैं वे सभी अपने द्रव्यमें अंतर्मग्न हुए अपने अनंत धर्मोंको चूंवते—स्पर्शते हैं तौभी आपसमें एक दूसरेको नहीं स्पर्श करते। और अत्यंत निकट एकक्षेत्रावगाहरूप तिष्ठ रहे हैं तौभी सदाकाल निश्चयकर अपने स्वरूपसे नहीं चिगते, इसीलिये विरुद्धकार्य—स्वभावसे विपरीत कार्य और अविरुद्धकार्य—स्वभावरूपकार्य इन दोनों हेतुओंसे हमेशा सब आपसमें उपकार करते हैं। परंतु निश्चयकर एकत्वनिश्चयपनेको प्राप्तहुए ही सुंदरता पाते हैं। क्योंकि जो अन्य प्रकार होजायँ तो संकर व्यतिकर आदि सभी दोष उसमें आजावें। इसतरह सब पदार्थोंके भिन्न २ एकपना सिद्ध होनेपर जीव नामा समयको बंधकी कथासे विसंवादकी आपत्ति होती है। क्योंकि बंधकथाका मूलकारण जो पुद्गलकर्मके प्रदेशोंमें तिष्ठनेरूप परसमयपना उससे उत्पन्न हुआ जीवमें परसमय स्वसमयरूप द्विविधपना आता है। इसलिये समयका एकपना होना ही सिद्ध होता है और ये ही प्रशंसा करने योग्य है ॥ **भावार्थ**—निश्चयसे सब पदार्थ अपने २ स्वभावमें ठहरते हुए शोभा पाते हैं। परंतु जीव नामा पदार्थकी अनादिकालसे पुद्गलकर्मके साथ निमित्तरूप बंधअवस्था है उससे इस जीवमें विसंवाद खड़ा होता है, इसलिये शोभा नहीं पाता। इसकारण वास्तवमें विचारा जाय तो एकपना होना ही अच्छा है उसीसे यह जीव शोभा पासकता है ॥ ३ ॥ आगे

श्रुतपरिचितानुभूता सर्वस्यापि कामभोगबंधकथा ।
एकत्वस्योपलंभः केवलं न सुलभो विभक्तस्य ॥ ४ ॥

इह सकलस्यापि जीवलोकस्य संसारचक्रक्रोडाधिरोपितस्याश्रांतमनंतद्रव्यक्षेत्रकालभवभावपरावर्तैः समुपक्रांतभ्रांतेरेकच्छत्रीकृतविश्वतया महता मोहग्रहेण गोरिव वाह्यमानस्य प्रसभोज्जृंभिततृष्णातंकत्वेन व्यक्तांतराधेरुत्तम्योत्तम्य मृगतृष्णायमानं विषयग्राममुपरुंधानस्य परस्परमाचार्यत्वमाचरतोऽनंतशः श्रुतपूर्वानंतशः परिचितपूर्वानंतशोऽनुभूतपूर्वा चैकत्वविरु-

---

स्वरूपं सुलभं न भवतीत्याख्याति–"सुदपरिचिदाणुभूदा" इत्यादि । **सुदा** श्रुता अनंतशो भवति । **परिचिदा** परिचिता सपूर्वानंतशो भवति । **अणुभूदा** अनुभूतानंतशो भवति । कस्य । **सव्वस्सवि** सर्वस्यापि जीवलोकस्य । कासौ । **कामभोगबंधकहा** कामरूपभोगाः कामभोगाः अथवा कामशब्देन स्पर्शनरसनेंद्रियं भोगशब्देन घ्राणचक्षुःश्रोत्रत्रयं तेषां कामभोगानां बंधः संबंधस्तस्य कथा । अथवा बंधशब्देन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधस्तत्फलं च नरनारकादि-

---

कहते हैं कि इस एकपनेको पा लेना ही अच्छा है,–**[सर्वस्य अपि]** सब ही लोकोंको **[कामभोगबंधकथा]** काम भोग विषयक बंधकी कथा तो **[श्रुतपरिचितानुभूता]** सुननेमे आगई है, परिचयमें आगई है और अनुभवमेभी आयी हुई है इसलिये सुलभ है । **[नवरि]** लेकिन केवल **[विभक्तस्य]** भिन्न आत्माका **[एकत्वस्य उपलंभः]** एकपना होना कभी न सुना, न परिचयमे आया और न अनुभवमें आया इसलिये **[न सुलभः]** एक यही सुलभ नही है ॥ **टीका**—इस समस्त जीवलोकको कामभोगविषयक कथा एकपनेकर विरुद्धता होनेसे अत्यंत विसंवाद करानेवाली है–आत्माका अत्यंत बुरा करनेवाली है तौभी अनंतवार पहले सुननेमे आई है, अनंतवार परिचयमें आई है और अनंतवार अनुभवमे भी आचुकी है । कैसा है जीवलोक ? संसाररूपी चक्रके मध्यमे स्थित है, निरंतर अनंतवार द्रव्य क्षेत्र काल भव भावरूप पलटनेकर जिसने भ्रमण किया है, समस्तलोकको एकछत्रराज्यसे वश करनेवाले बलवान मोहरूपी पिशाचसे गायकी तरह अथवा बैलकी तरह जोता गया है, जबरदस्तीसे बढी हुई तृष्णारूपी रोगके दाहपनेकर जिसके अंतरंगमें पीडा प्रगट हुई है, मृगकी तृष्णाके समान उछल २ कर इंद्रियोंके विषयोंके स्थानोंको अपने करता है । इतना ही नहीं आपसमें आचार्यपना भी करता है अर्थात् दूसरेको भी कहकर अंगीकार (स्वीकार) कराता है । इसलिये काम भोगकी कथा तो सबको सुलभ (सुखसे प्राप्त) है । तथा भिन्न आत्माका जो एकपना है वह सदा प्रगटपनेकर अंतरंगमे प्रकाशमान है तौभी कषायोंकर एकरूपसरीखा होरहा है इसलिये अत्यंत तिरोभाव होरहा (ढक रहा) है–आच्छादित है । इसकारण अपनेमे अनात्मज्ञपना होनेसे कभी अपनेको आप नहीं जाना और दूसरे आत्माके जाननेवालोंकी संगति–सेवा भी नही की । इसलिये कभी न सुननेमे

द्धत्वेनात्यंतविसंवादिन्यपि कामभोगानुबद्धा कथा । इदं तु नित्यव्यक्ततयांतःप्रकाशमानमपि कषायचक्रेण सहैकीक्रियमाणत्वादत्यंततिरोभूतं सत्स्वस्यानात्मज्ञतया परेषामात्मज्ञानामनुपासनाच्च न कदाचिदपि श्रुतपूर्वं न कदाचिदपि परिचितपूर्वं न कदाचिदप्यनुभूतपूर्वं च निर्मलविवेकालोकविविक्तं केवलमेकत्वं । अत एकत्वस्य न सुलभत्वम् ॥ ४ ॥

अथ एवैतस्य उपदर्श्यते;–

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेतव्वं ॥ ५ ॥

तमेकत्वविभक्तं दर्शयेहमात्मनः स्वविभवेन ।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलितं छलं न गृहीतव्यम् ॥ ५ ॥

रूपं भण्यते । कामभोगबंधाना कथा कामभोगबंधकथा यतः पूर्वोक्तप्रकारेण श्रुतपरिचितानुभूता भवति ततो न दुर्लभा किन्तु सुलभैव । **एयत्तस्स** एकत्वस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपनिर्विकल्पसमाधिबलेन स्वसंवेद्यशुद्धात्मस्वरूपस्य तस्यैकत्वस्य **उवलंभो** उपलंभः प्राप्तिर्लाभ **णवरि** केवलं अथवा नवरि किंतु **ण सुलभो** नैव सुलभः। कथभूतस्यैकत्वस्य। **विभत्तस्स** विभक्तस्य रागादिरहितस्य । कथ न सुलभ इति चेत्, श्रुतपरिचितानुभूतत्वाभावादिति ॥ ४ ॥ अथ यस्मादेकत्वं सुलभं न भवति तस्मात्तदेव कथ्यते,–**तं** तत्पूर्वोक्त **एयत्तविभत्तं** एकत्वविभक्तं अभेदरत्नत्रयैकपरिणत मिथ्यात्वरागादिरहितं परमात्मस्वरूपमित्यर्थः । **दाएहं** दर्शयेहं ।

आया, न परिचयमे आया और न कभी अनुभवमें ही आया । कैसा है एकपना ? निर्मल भेदज्ञानरूप प्रकाशकर प्रगट देखनेमे आता है तौभी पूर्वोक्त कारणोंसे इस भिन्न आत्माका एकपना पाना दुर्लभ है ॥ **भावार्थ**—इस लोकमें सभी जीव संसाररूप चक्रपर चढे पांच परावर्तनरूप भ्रमण करते हैं । वहांपर मोहकर्मके उदयरूप पिशाचसे जोते जाते है, इसीकारणसे विषयोंकी तृष्णारूप दाहकर पीडित होते हैं उसमें भी उस दाहका इलाज (उपाय) इंद्रियोंके रूपादि विषयोंको जान उनपर दौड़ते हैं । और आपसमें भी विषयोंका ही उपदेश करते हैं । इसलिये काम (विषयोंकी इच्छा) तथा भोग (उनका भोगना) इन दोनोंकी कथा तो अनंतवार सुनी, परिचयमें की और अनुभवमें आई इसकारण सुलभ है । तथा सब परद्रव्योंसे भिन्न चैतन्य चमत्कारस्वरूप अपने आत्माकी कथाका आप तो स्वयमेव ज्ञान कभी हुआ नहीं और जिन्होंके हुआ उनकी सेवा कभी की नहीं इसलिये इसकी कथा (बात) न कभी सुनी, न परिचय की और न अनुभवमें ही आई । इसकारण इसका पाना सुलभ नहीं है, दुर्लभ है ॥ ४ ॥ अब आचार्य कहते है कि इस भिन्न आत्माका एकपना हम आत्माके पास ही दिखलाते हैं,–[**तं**] उस [**एकत्वविभक्तं**] एकत्वविभक्त आत्माको [**अहं**] मैं [**आत्मनः**] आत्माके [**स्वविभवेन**] निज विभवकर [**दर्शये**] दिखलाता हूं [**यदि**] जो मैं

इह किल सकलोद्भासिस्यात्पदमुद्रितशब्दब्रह्मोपासनजन्मा समस्तविपक्षक्षोदक्षमातिनिस्तुषयुक्त्यवलंबनजन्मा निर्मलविज्ञानघनांतर्निमग्नपरापरगुरुप्रसादीकृतशुद्धात्मतत्त्वानुशासनजन्मा अनवरतस्यंदिसुंदरानंदमुद्रितामंदसंविदात्मकस्वसंवेदनजन्मा च यः कश्चनापि ममात्मनः स्वो विभवस्तेन समस्तेनापि यमेकत्वविभक्तमात्मानं दर्शयेहमिति बद्धव्यवसायोस्मि । किंतु यदि दर्शयेयं तदा स्वयमेव स्वानुभवप्रत्यक्षेण परीक्ष्य प्रमाणीकर्त्तव्यं । यदि तु स्खलेयं तदा तु न छलग्रहणजागरूकैर्भवितव्यम् ॥ ५ ॥

केन । **अप्पणो सविहवेण** आत्मनः स्वकीयमिति विभवेन आगमतर्कपरमगुरूपदेशस्वसंवेदनप्रत्यक्षेणेति । **जदि दाएज्ज** यदि दर्शयेयं तदा **पमाणं** स्वसंवेदनज्ञानेन परीक्ष्य प्रमाणीकर्त्तव्यं भवद्भिः । **चुक्किज्ज** यदि च्युतो भवामि **छलं ण घित्तव्वं** तर्हि छलं न ग्राह्यं दुर्ज-

---

[दर्शयेयं] दिखलाऊं तो उसे **[प्रमाणं]** प्रमाण (स्वीकार) करना **[स्खलितं]** और जो कहींपर चूक (भूल) जाऊं तो **[छलं]** छल **[न]** नहीं **[गृहीतव्यम्]** ग्रहण करना । **टीका**—आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्माका निजविभव है उस सबसे मैं इस एकत्व विभक्त आत्माको दिखलाऊंगा, ऐसा उद्यम किया है । कैसा है मेरे आत्माका निजविभव ? इस लोकमें प्रगट समस्त वस्तुओंको प्रकाश करनेवाला और स्यात् पदसे चिह्नित जो शब्दब्रह्म—अरहंतका परमागम उसकी उपासनाकर जिसका जन्म है । यहां 'स्यात्' इस पदका तो कथंचित् अर्थ है अर्थात् किसीप्रकारसे कहना और सामान्य धर्मसे वचनगोचर सब धर्मोंका नाम आता है तथा वचनके अगोचर जो कोई विशेषधर्म हैं उनका अनुमान कराता है । इसतरह सब वस्तुओंका प्रकाशक है । इस कारण सर्वव्यापी कहा जाता है और इसीसे अरहंतके परमागमको शब्दब्रह्म कहते हैं । उसकी उपासनाकर ज्ञानविभव उत्पन्न (प्रगट) हुआ है । फिर कैसा है ? समस्त जो विपक्ष—अन्यवादियोंकर ग्रहण कीगई सर्वथा एकांतरूप नयपक्ष उनके निराकरणमें समर्थ जो अतिनिस्तुष निर्बाधयुक्ति उसके अवलंबनसे जिसका जन्म है । फिर कैसा है ? निर्मलविज्ञानघन जो आत्मा उसमें अंतर्निमग्न परमगुरु सर्वज्ञ देव अपरगुरु गणधरादिकसे लेकर हमारे गुरुपर्यंत—उनकर प्रसादरूपसे दिया गया जो शुद्धात्मतत्त्वका अनुग्रहपूर्वक उपदेश, तथा पूर्वाचार्योंके अनुसार उपदेश उससे जिसका जन्म है । फिर कैसा है ? निरंतर झरता आस्वादमे आया और सुंदर जो आनंद उससे मिला हुआ जो प्रचुरसंवेदन स्वरूप स्वसंवेदन उसकर जिसका जन्म है । ऐसा जिस तिस प्रकारसे मेरे ज्ञानका विभव है उस समस्त विभवसे दिखलाता हूं । जो यह दिखलाऊं तो स्वयमेव अपने अनुभव प्रत्यक्षकर परीक्षाकर प्रमाण करना । यदि कहीं अक्षर मात्रा अलंकार युक्ति आदि प्रकरणोंमें चिग (भूल) जाऊं तो छल (दोष) ग्रहण करनेमें सावधान न होना । क्योंकि शास्त्रसमुद्रके प्रकरण बहुत हैं इसकारण यहां स्वसंवेदनरूप अर्थ

कोऽसौ शुद्ध आत्मेति चेत्;—

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो ज़ाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥ ६ ॥

नापि भवत्यप्रमत्तो न प्रमत्तो ज्ञायकस्तु यो भावः।
एवं भणंति शुद्धं ज्ञातो यःस तु स चैव ॥ ६ ॥

यो हि नाम स्वतःसिद्धत्वेनानादिरनंतोनित्योद्योतो विशदज्यो तिर्ज्ञायक एको भावः स संसारावस्थायामनादिबंधपर्यायानिरूपणया क्षीरोदकवत्कर्मपुद्गलैः सममेकत्वेपि द्रव्यस्वभावनिरूपणया दुरंतकषायचक्रोदयवैचित्र्यवशेन प्रवर्त्तमानानां पुण्यपापनिर्वर्त्तकानामुपात्त-

---

नवदिति ॥ ५ ॥ अथ कोयं शुद्धात्मेति पृष्ठे प्रत्युत्तरं ददाति,–**णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो** शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुभाशुभपरिणमनाभावान्न भवत्यप्रमत्तः प्रमत्तश्च। प्रमत्तशब्देन मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तातानि षड्गुणस्थानानि, अप्रमत्तशब्देन पुनरप्रमत्ताद्ययोग्यंतान्यष्टगुणस्थानानि गृह्यते। स कः कर्त्ता। **जाणगो दु जो भावो** ज्ञायको ज्ञानस्वरूपो योऽसौ

प्रधान है। इसलिये अर्थकी परीक्षा करना ॥ **भावार्थ**—आचार्य आगमका सेवन, युक्तिका अवलंवन, परापरगुरुका उपदेश और स्वसंवेदन इन चार वातोंकर उत्पन्न हुए अपने ज्ञानके विभवसे एकत्व विभक्त शुद्ध आत्माका स्वरूप दिखलाते हैं। उसे सुननेवाले हे श्रोताओ! अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्षकर प्रमाण करो। कहीं–किसी प्रकरणमें भूलूं तो उतना दोप ग्रहण नहीं करना। यहां अपना अनुभव प्रधान है इसीसे शुद्ध स्वरूपका निश्चय करो, ऐसा कहनेका आशय है ॥ ५ ॥ आगे ऐसा शुद्ध आत्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये? ऐसे प्रश्नका उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं,–**[यः तु]** जो **[ज्ञायकः भावः]** ज्ञायक भाव है वह **[अप्रमत्तः अपि]** अप्रमत्त भी **[न]** नहीं है और **[न प्रमत्तः]** न प्रमत्त ही है **[एवं]** इस तरह **[शुद्धं]** उसे शुद्ध **[भणंति]** कहते हैं **[च यः]** और जो **[ज्ञातः]** ज्ञायकभावकर जानलिया **[सः]** वह **[स एव तु]** वही है अन्य (दूसरा) कोई नहीं ॥ **टीका**—जो एक ज्ञायक भाव है वह अपने आपसे ही सिद्ध है किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ। उस भावसे तो अनादिसत्तारूप है और कभी उस ज्योतिका विनाश नहीं होता इसलिये अनंत है, नित्य उद्योतरूप है इसकारण क्षणिक नहीं है। ऐसी स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। वह संसारकी अवस्थामें अनादिबंधपर्यायकी निरूपणा (अपेक्षा) से कर्मरूप पुद्गलद्रव्यकर सहित दूधजलकी तरह होनेपर भी द्रव्यके स्वभावकी अपेक्षासे देखा जाय तब तो जिसका मिटना कठिन है ऐसे कषायोंके उदयकी वित्रितासे प्रवर्ते हुए जो पुण्यपापके उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभ अशुभभाव उनके स्वभावकर नहीं परिणमती। ज्ञायक भावसे जड़भावरूप नहीं होती। इसलिये प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है। ये ही

वैश्वरूप्याणां शुभाशुभभावानां स्वभावेनापरिणमनात्प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च न भवत्येष एवाशेषद्रव्यांतरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते । न चास्य ज्ञेयनिष्ठत्वेन ज्ञाय-

---

भावः पदार्थः शुद्धात्मा । **एवं भणंति सुद्धा** - शुद्धनयावलंबिनः, तर्हि किं भणति । **णादा**

समस्त अन्य द्रव्योंके भावोंकर भिन्नपनेसे सेवित हुआ 'शुद्ध' ऐसा कहा जाता है । और इसको ज्ञेयाकार होनेसे ज्ञायकपना प्रसिद्ध है । जैसे दाहने योग्य जो दाह्य ईंधन उसके आकार अग्नि होती है इसलिये अग्निको दहन कहते हैं तौभी अग्नि तो अग्नि ही है, ईंधन अग्नि नहीं है । उसीतरह ज्ञेयरूप आप नहीं है, आप तो ज्ञायक ही है । इस तरह उस ज्ञेयकर किया हुआ भी इस आत्माके अशुद्धपना नहीं है क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्थामें भी ज्ञायकभावकर जाना गया जो अपना ज्ञायकपना वही स्वरूपप्रकाशनकी--जाननेकी अवस्थामे भी ज्ञायकरूप ही है ज्ञेयरूप नहीं हुआ । क्योकि अभेदविवक्षासे कर्ता तो आप ज्ञायक और कर्म अपनेको जाना--ये दोनों एक आप ही है अन्य नहीं है । जैसे दीपक घट पटादिको प्रकाशित करता है उनके प्रकाशनेकी अवस्थामें भी दीपक ही है और वही अपनी ज्योतिरूप लौके प्रकाशनेकी अवस्थामें भी दीपक ही है कुछ दूसरा नहीं है । ऐसा जानना ॥ **भावार्थ**—अशुद्धपना परद्रव्यके संयोगसे आता है । वहां मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप होता ही नहीं, कुछ परद्रव्यके निमित्तसे अवस्था मलिन हो जाती है । उस जगह द्रव्य दृष्टिसे तो द्रव्य जो है वो ही है और पर्याय (अवस्था) दृष्टिसे देखा जाय तब मलिन ही दीखता है । उसीतरह आत्माका स्वभाव ज्ञायकपना मात्र है और उसकी अवस्था पुद्गलकर्मके निमित्तसे रागादिरूप मलिन है वह पर्याय है । उसकी दृष्टिसे देखा जाय तब मलिन ही दीखता है और द्रव्य दृष्टिसे देखाजाय तब ज्ञायकपना तो ज्ञायकपना ही है कुछ जड़पना नहीं हुआ । यहांपर द्रव्यदृष्टिको प्रधानकर कहा है । जो प्रमत्त अप्रमत्तका भेद है वह तो परद्रव्यके संयोगजनित पर्याय है । यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टिमें गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है । द्रव्यदृष्टि शुद्ध है अभेदरूप है निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है । इसलिये आत्मा ज्ञायक है इसमें भेद नहीं है इसकारण प्रमत्त अप्रमत्त नहीं कहा जाता । 'ज्ञायक' ऐसा नाम भी ज्ञेयके जाननेसे कहा जाता है क्योंकि ज्ञेयका प्रतिबिंब जब झलकता है तब वैसा ही अनुभवमें आता है । सो यह भी अशुद्धपना इसके नहीं कहा जासकता क्योंकि जैसे ज्ञेय ज्ञानमें प्रतिभासित हुआ वैसे ज्ञायकका ही अनुभव करनेपर ज्ञायक ही है यह मैं जाननेवाला हूं सो मैं ही हूं दूसरा कोई नहीं है—ऐसा अपना अपने अभेदरूप अनुभव हुआ तब उस जाननेरूप क्रियाका कर्ता आप ही है और जिसको जाना सो कर्मभी आप ही है । ऐसे एक ज्ञायकपनेमात्र आप शुद्ध है—यह शुद्धनयका विषय है । अन्य परसंयोगजनित भेद हैं वे सब भेदरूप अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके विषय है । शुद्ध

कत्वप्रसिद्धेः दाह्यनिष्कनिष्ठदहनस्येवाशुद्धत्वं यतो हि तस्यामवस्थायां ज्ञायकत्वेन यो ज्ञातः स स्वरूपप्रकाशनदशायां प्रदीपस्येव कर्तृकर्मणोरनन्यत्वात् ज्ञायक एव ॥ ६ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रवत्त्वेनाशुद्धत्वमिति चेत्;—

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥ ७ ॥

व्यवहारेणोपदिश्यते ज्ञानिनश्चारित्रं दर्शनं ज्ञानम्।
नापि ज्ञानं न चारित्रं न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः ॥ ७ ॥

आस्तां तावद्बंधप्रत्ययात् ज्ञायकस्याशुद्धत्वं दर्शनचारित्राण्येव न विद्यंते । यतोनंत-

---

जो सो दु सो चेव ज्ञाता शुद्धात्मा यः कथ्यते स तु स चैव ज्ञातैवेत्यर्थः ॥ ६ ॥ इति स्वतंत्रगाथाषट्केन प्रथमस्थलं गतं। अथानंतरं तथा प्रमत्तादिगुणस्थानविकल्पा जीवस्य व्यवहारनयेन विद्यंते शुद्धद्रव्यार्थिकनिश्चयेन न विद्यते तथा दर्शनज्ञानचारित्रविकल्पोपीत्युपदिशति;— **ववहारेण** सद्भूतव्यवहारनयेन **उवदिस्सदि** उपदिश्यते कथ्यते। कस्य। **णाणिस्स** ज्ञानिनो जीवस्य। किं। **चरित्त दंसणं णाणं** चारित्रदर्शनज्ञानस्वरूपं। **णवि णाणं ण चरित्तं**

द्रव्यकी दृष्टिमें यह भी पर्यायार्थिक ही है इसलिये व्यवहारनय ही है—ऐसा आशय जानना। यहां ऐसा भी जानना कि जिनमतका कथन स्याद्वादरूप है इसलिये शुद्धता और अशुद्धता दोनों वस्तुके धर्म हैं। अशुद्धनयको सर्वथा असत्यार्थ ही मानना। जो वस्तुधर्म है वह वस्तुका सत्त्व है, परद्रव्यके संयोगसे हुआ ही भेद है। यहां अशुद्धनयको हेय कहा है उस अशुद्धनयका विषय संसार है। उसमें आत्मा क्लेश भोगता है। जब आप परद्रव्यसे भिन्न होवे तब संसार मिटे और तभी क्लेश मिटे। इसतरह दुःख मेंटनेको शुद्धनयका प्रधान उपदेश है। और अशुद्धनयको असत्यार्थ कहनेसे ऐसा तो नहीं समझना कि यह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं आकाशके फूलकी तरह है। ऐसे सर्वथा एकांत समझनेसे मिथ्यात्व आता है। इसलिये स्याद्वादका शरण ले शुद्धनयका आलंबन करना चाहिये, स्वरूपकी प्राप्ति होनेवाद शुद्धनयका भी अवलंबन नहीं रहता। जो वस्तुस्वरूप है वह है—यह प्रमाणदृष्टि है। इसका फल वीतरागता है ऐसा निश्चय करना योग्य है। यहांपर जो "प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है" ऐसा कहा गया है वह गुणस्थानकी परिपाटीमें छठे गुणस्थानतक तो प्रमत्त कहा जाता है और सातवेंसे लेकर अप्रमत्त है। सो ये सभी गुणस्थान अशुद्धनयकी कथनीमें हैं, शुद्धनयसे आत्मा ज्ञायक ही है ॥ ६ ॥

आगे फिर कहते है जो दर्शन ज्ञान चारित्र—ये आत्माके धर्म कहे गये हैं सो ये तीन भेद हुए इसलिये इन भेदरूप भावोंकर भी इसके अशुद्धपना आसकता है? ऐसे प्रश्नका उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं,—[**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके [**चरित्रं दर्शनं ज्ञानं**] चारित्र, दर्शन, ज्ञान—ये तीन भाव [**व्यवहारेण**] व्यवहारकर [**उपदिश्यते**]

धर्मण्येकस्मिन् धर्मिणि निष्णातस्यांतेवासिजनस्य तदवबोधायिभिः कैश्चिद्धर्मैस्तमनुशासतां सूरीणां धर्मधार्मिणां स्वभावतोऽभेदेपि व्यपदेशतो भेदमुत्पाद्य व्यवहारमात्रेणैव ज्ञानिनो दर्शनं ज्ञानं चारित्रमित्युपदेशः । परमार्थतस्त्वेकद्रव्यनिष्पीतानंतपर्यायतयैकं किंचिन्मिलि-

---

ण दंसणं शुद्धनिश्चयनयेन न पुनर्ज्ञानं न चारित्रं न दर्शनं । तर्हि किमस्तीति चेत् । **जाणगो** ज्ञायकः शुद्धचैतन्यस्वभावः । **सुद्धो** शुद्ध एव रागादिरहित इति । अयमत्रार्थः । यथा निश्चय-नयेनाभेदरूपेणाग्निरेक एव पश्चाद्भेदरूपव्यवहारेण दहतीति दाहकः पचतीति पाचकः प्रकाशं करोतीति प्रकाशकः इति व्युत्पत्त्या विषयभेदेन त्रिधा भिद्यते । तथा जीवोपि निश्चयरू-

---

कहे जाते हैं । निश्चयकर **[ज्ञानं अपि न]** ज्ञान भी नहीं है **[चारित्रं न]** चारित्र भी नहीं और **[दर्शनं न]** दर्शन भी नहीं है । ज्ञानी तो एक **[ज्ञायकः]** ज्ञायक ही है इसीलिये **[शुद्धः]** शुद्ध कहा गया है । **टीका**—इस ज्ञायक आत्माके बंधप-र्यायके निमित्तसे अशुद्धपना है वह तो दूर ही रहो, इसके दर्शन ज्ञान चारित्र भी विद्यमान नहीं हैं । क्योंकि निश्चयकर अनंतधर्मा जो एक धर्मी वस्तु उसको जिसने नहीं जाना ऐसे निकटवर्ती शिष्यजनको उस अनंतधर्म स्वरूप धर्मीके वतलानेवाले जो कोई धर्म उनकर शिष्यजनोंको उपदेश करते हुए आचार्योंका ऐसा कथन है कि धर्म और धर्मीका यद्यपि स्वभावसे अभेद है तौभी नामसे भेद होनेके कारण व्यवहार मात्रकर ज्ञानीके दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है । परंतु परमार्थसे देखाजाय तो एक द्रव्यकर पिये गये अनंतपर्यायपनेकर एकमेक मिले हुए अभेदस्वभाव वस्तुको अनुभव करनेवाले पंडित पुरुषोंके दर्शन भी नहीं ज्ञान भी नहीं और चारित्रभी नहीं, एक ज्ञायक हो वोही शुद्ध है ॥ **भावार्थ**—इस शुद्ध आत्माके कर्मबंधके निमित्तसे अशुद्धपना आता है यह बात तो दूर ही रहे, इसके दर्शन ज्ञान चारित्रका भी भेद नहीं है । क्योंकि वस्तु अनंतधर्म-रूप एकधर्मी है । परंतु व्यवहारी जन धर्मोंको ही समझते हैं धर्मीको नहीं जानते इस-लिये वस्तुके कुछ असाधारण धर्मोंको उपदेशमें लेकर अभेदरूप वस्तुमें भी धर्मोंके नाम-रूप भेदको उत्पन्न करके ऐसा उपदेश करते है कि ज्ञानीके दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है । अभेदमें भेद करनेसे यह व्यवहार है । परमार्थसे विचारा जाय तो अनंत पर्यायोंको एकद्रव्य अभेदरूप पिये हुए बैठा है इसकारण भेद नहीं है । यहां कोई कहे कि पर्याय भी द्रव्यका ही भेद है अवस्तु तो नहीं है उसे व्यवहार किसतरह कहसकते हैं ? उसका समाधान । यह तो सच है परंतु यहां द्रव्यदृष्टिकर अभेदको प्रधानकर उपदेश है इस-लिये अभेद दृष्टिमें भेद गौण कहनेसे ही अभेद अच्छीतरह मालूम होसकता है, इस-कारण भेदको गौणकर व्यवहार कहा है । यहां ऐसा अभिप्राय है कि भेद दृष्टिमें निर्वि-कल्प दशा नहीं होती और सरागीके जबतक रागादिक दूर नहीं होवे तबतक विकल्प बना रहता है । इसकारण भेदको गौणकर अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया

तास्वादमभेदमेकस्वभावमनुभवतो न दर्शनं न ज्ञानं न चारित्रं ज्ञायक एवैकः शुद्धः॥७॥
तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत्;—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥ ८ ॥
यथा नापि शक्योऽनार्योऽनार्यभाषां विना तु ग्राहयितुम् ।
तथा व्यवहारेण विना परमार्थोपदेशनमशक्यम् ॥ ८ ॥

यथा खलु म्लेच्छः स्वस्तीत्यभिहिते सति तथाविधवाच्यवाचकसंबंधावबोधबहिष्कृतत्वान्न किंचिदपि प्रतिपद्यमानो मेष इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः प्रेक्षत एव । यदा तु स एव तदेतद्भाषासंबंधैकार्थज्ञेनान्येन तेनैव वा म्लेच्छभाषां समुदाय स्वस्तिपदस्याविनाशो भवतो भवत्वित्यभिधेयं प्रतिपाद्यते तदा सद्य एवोद्यदमंदानंदमयाश्रुजलझलज्झलल्लोचनपात्रस्तत्प्रति-

---

रूपाभेदनयेन शुद्धचैतन्यरूपोपि भेदरूपव्यवहारनयेन जानातीति ज्ञानं, पश्यतीति दर्शनं चरतीति चारित्रमिति व्युत्पत्त्या विषयभेदेन त्रिधा भिद्यते इति ॥ ७ ॥ अथ यदि शुद्धनिश्चयेन जीवस्य दर्शनज्ञानचारित्राणि न संति तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्यो न व्यवहार इति चेत्तन्न;— **जह णवि सक्कं** यथा न शक्यः । कोसौ । **अणज्जो** अनार्यो म्लेच्छः । किं कर्तुं । **गाहेदुं** अर्थग्रहणरूपेण संबोधयितुं । कथं । **अणज्जभासं विणा** अनार्यभाषा म्लेच्छभाषा तां विना । दृष्टांतो गतः । इदानीं दार्ष्टांतमाह—**तह** तथा **ववहारेण विणा** व्यवहारनयेन विना **परमत्थुवदेसणमसक्कं** परमार्थोपदेशनं कर्तुमशक्य इति । अयमत्राभिप्रायः । यथा कश्चि-

---

है । वीतराग होनेके बाद भेदाभेदरूप वस्तुका ज्ञाता हो जाता है वहां नयका अवलंबन ही नहीं रहता ॥ ७ ॥ आगे फिर प्रश्न उठता है कि जो ऐसा है तो एक परमार्थका ही उपदेश क्यों नहीं करते व्यवहार क्यों कहते हैं ? उसका उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं;— **[यथा]** जैसे **[अनार्यः]** म्लेच्छ जनोंको **[अनार्यभाषां विना तु]** म्लेच्छभाषाके विना तो **[ग्राहयितुं]** कुछ भी वस्तुका स्वरूप ग्रहणकरानेको **[नापि शक्यः]** कोई पुरुष नहीं समर्थ होसकता **[तथा]** उसीतरह **[व्यवहारेण विना]** व्यवहारके विना **[परमार्थोपदेशनं]** परमार्थका उपदेश करना **[अशक्यम्]** बहुत कठिन है अर्थात् कोई समर्थ नहीं है ॥ **टीका**—जैसे किसी म्लेच्छको देख किसी ब्राह्मणने "स्वस्ति हो" ऐसा शब्द कहा । वह म्लेच्छ उस शब्दके वाच्यवाचक संबंधके ज्ञानसे रहित है इसकारण उसका अर्थ कुछ भी न समझ ब्राह्मणके सामने मैंढेकी तरह टकटकी लगाकर देखता रहा कि इसने क्या कहा है । तब उस ब्राह्मणकी भाषा तथा म्लेच्छकी भाषा–इन दोनोंका अर्थ जाननेवाले अन्य किसी पुरुषने उसे म्लेच्छ भाषामें समझाया कि स्वस्तिशब्दका अर्थ "तेरा अविनाशीकल्याण हो" ऐसा है । उस समय उत्पन्न हुए अत्यंत आनंदमयी आंसुओंसे उस म्लेच्छके नेत्रभर आये, ऐसे वह म्लेछ उस स्वस्ति शब्दका

पद्यत एव । तथा किल लोकोप्यात्मेत्यभिहिते सति यथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानबहिष्कृतत्वान्न किंचिदपि प्रतिपद्यमानो मेष इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः प्रेक्षत एव । यदा तु स एव व्यवहारपरमार्थपथप्रस्थापितसम्यग्बोधमहारथरथिनान्येन तेनैव वा व्यवहारपथमास्थाय दर्शनज्ञानचारित्राण्यततीत्यात्मेत्यात्मपदस्याभिधेयं प्रतिपाद्यते तदा सद्य एवोद्यदमंदानंदतः सुंदरबंधुरबोधतरंगस्तत्प्रतिपद्यत एव । एवं म्लेच्छभाषास्थानीयत्वेन परमार्थप्रतिपादकत्वादुपन्यसनीयोऽथ च ब्राह्मणो न म्लेच्छितव्य इति वचनाद्व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः ॥ ८ ॥

कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत्;—

जो हि सुएणहिगच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पईवयरा ॥ ९ ॥

ब्राह्मणो यतिर्वा म्लेच्छपल्ल्या गतः तेन नमस्कारे कृते सति ब्राह्मणेन यतिना वा स्वस्तीति भणिते स्वस्त्यर्थमविनश्वरत्वमजानन्सन् निरीक्ष्यते मेष इव । तथायमज्ञानिजनोप्यात्मेतिभणिते सत्यात्मशब्दस्यार्थमजानन्सन् भ्रांत्या निरीक्ष्यत एव । यदा पुनर्निश्चयव्यवहारज्ञपुरुषेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि जीवशब्दस्यार्थ इति कथ्यते तदा संतुष्टो भूत्वा जानातीति । एवं भेदाभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यतया गाथाद्वयेन द्वितीय स्थल गतं ॥ ८ ॥ अथ पूर्वगाथाया भणितव्यव-

---

अर्थ समझता ही है। उसीतरह व्यवहारीजन भी "आत्मा" ऐसा शब्द कहनेसे जैसा आत्मशब्दका अर्थ है उस अर्थके ज्ञानसे रहित है । इसकारण आत्मशब्दका अर्थ कुछ भी नहीं समझता हुआ मैंढेकी तरह टकटकी लगाकर देखता ही रहता है। और जब कोई व्यवहार परमार्थ मार्गपर सम्यग्ज्ञानरूप महारथको चलानेवाले सारथीके समान आचार्य तथा अन्य कोई विद्वान् व्यवहारमार्गमें रहकर "दर्शन ज्ञान चारित्रको हमेशा जो प्राप्त हो वह आत्मा है" ऐसा आत्म शब्दका अर्थ कहता है तब उसी समय उत्पन्न हुए अत्यंत आनंदवाले हृदयमें सुंदर और ज्ञानरूप तरंगोंके उछलनेसे वह व्यवहारीजन उस आत्मशब्दका अर्थ अच्छीतरह समझ जाता है । इसप्रकार यहां जगत तो म्लेच्छ स्थानीय जानना और व्यवहारनय म्लेच्छ भाषाके समान जानना । इसलिये व्यवहारको परमार्थका कहनेवाला समझ स्थापन करना योग्य है । अथवा ब्राह्मणको म्लेच्छ न होना इस वचनसे व्यवहारनयको कथंचित् उपादेय मान अंगीकार करना तथा सर्वथा उपादेय नहीं मानना ॥ **भावार्थ**—लोक शुद्धनयको तो जानते ही नहीं हैं क्योंकि शुद्धनयका विषय अभेद एकरूप वस्तु है । तथा अशुद्ध नयको ही जानते हैं क्योंकि इसका विषय भेदरूप अनेक प्रकार है इसलिये व्यवहारके द्वारा ही शुद्धनयरूप परमार्थको समझ सकते हैं । इसकारण व्यवहारनयको परमार्थका कहनेवाला जान उसका उपदेश किया जाता है । यहांपर ऐसा न समझना कि व्यवहारका आलंबन कराते है बल्कि यहां तो व्यवहारका आलंबन छुड़ाके परमार्थको पहुंचाते है ऐसा जानना ॥ ८ ॥ आगे प्रश्न उत्पन्न होता है

जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुयकेवली तह्मा ॥ १० ॥

यो हि श्रुतेनाभिगच्छति आत्मानमिमं तु केवलं शुद्धम्।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणंति लोकप्रदीपकराः ॥ ९ ॥
यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति श्रुतकेवलिनं तमाहुर्जिनाः।
ज्ञानमात्मा सर्वं यस्माच्छ्रुतकेवली तस्मात् ॥ १० ॥

यः श्रुतेन केवलं शुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति तावत्परमार्थो यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति व्यवहारः। तदत्र सर्वमेव तावत् ज्ञानं निरूप्यमाणं कि-

---

हारेण परमार्थो ज्ञायते ततस्तमेवार्थं कथयति;—**जो** यः कर्त्ता **हि** स्फुटं **सुदेण** भावश्रुतेन स्वसंवेदनज्ञानेन निर्विकल्पसमाधिना करणभूतेन **अभिगच्छदि** अभि समंताज्जानात्यनुभवति। क। **अप्पाणं** आत्मानं **इणं** इमं प्रत्यक्षीभूतं **तु** पुनः। किं विशिष्टं। **केवलं** असहायं **सुद्धं** रागादिरहितं **तं** पुरुषं **सुदकेवलिं** निश्चयश्रुतकेवलिनं **इसिणो** परम ऋषयः **भणंति** कथयति **लोगप्पदीवयरा** लोकप्रदीपकराः लोकप्रकाशका इति। अनया गाथया निश्चयश्रुतकेवलिलक्षणं। अथ "जो सुदणाण"मित्यादि—**जो** यः कर्त्ता **सुदणाणं** द्वादशांगद्रव्यश्रुतं **सव्वं** सर्वं परिपूर्णं **जाणदि** जानाति **सुदकेवलिं** व्यवहारश्रुतकेवलिनं **तमाहु जिणा** तं पुरुषं आहुः ब्रुवंति। के ते। जिनाः सर्वज्ञाः। कस्मादिति चेत्। **जह्मा** यस्मात्कार-

---

कि व्यवहारनय परमार्थका प्रतिपादक (कहनेवाला) किसतरह है ? उसका उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं;–[**यः**] जो जीव [**हि**] निश्चयकर [**श्रुतेन**] श्रुतज्ञानसे [**तु इमं**] इस अनुभव गोचर [**केवलं शुद्धं**] केवल एक शुद्ध [**आत्मानं**] आत्माको [**अभिगच्छति**] संमुख हुआ जानता है [**तं**] उसे [**लोकप्रदीपकराः**] लोकके प्रगट जाननेवाले [**ऋषयः**] ऋषीश्वर [**श्रुतकेवलिनं**] श्रुतकेवली [**भणंति**] कहते हैं॥ [**यः**] जो जीव [**सर्वं**] सब [**श्रुतज्ञानं**] श्रुतज्ञानको [**जानाति**] जानता है [**तं**] उसे [**जिनाः**] जिनदेव [**श्रुतकेवलिनं**] श्रुतकेवली [**आहुः**] कहते हैं [**यस्मात्**] क्योंकि [**सर्वं ज्ञानं**] सब ज्ञान [**आत्मा**] आत्मा ही है [**तस्मात्**] इसकारण आत्माको ही जाननेसे [**श्रुतकेवली**] श्रुतकेवली कहा जासकता है॥ **टीका**–जो श्रुतकर केवल शुद्ध आत्माको जानता है वह श्रुतकेवली है यह तो प्रथम परमार्थ है, और जो सब श्रुतज्ञानको जानता है वह श्रुतकेवली है यह व्यवहार है। यहांपर दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं–यह कहा हुआ सब ही ज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ? उनमेंसे जो अनात्माका पक्ष लिया जावे तो ठीक नहीं क्योंकि जड़रूप अनात्मा आकाशादि पांचद्रव्य हैं उनका ज्ञानके साथ तादात्म्य बनता ही नहीं क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध ही नही। इसलिये अन्यपक्षका अभाव होनेसे ज्ञान आत्मा

मात्मा किमनात्मा? न तावदनात्मा समस्तस्याप्यनात्मनश्चेतनेतरपदार्थपंचतयस्य ज्ञानतादात्म्यानुपपत्तेः । ततो गत्यंतराभावात् ज्ञानमात्मेत्यायात्यतः श्रुतज्ञानमप्यात्मैव स्यात् । एवं सति यः आत्मानं जानाति स श्रुतकेवलीत्यायाति स तु परमार्थ एव । एवं ज्ञानज्ञानिनो भेदेन व्यपदिश्यता व्यवहारेणापि परमार्थमात्रमेव प्रतिपद्यते न किंचिदप्यतिरिक्तं । अथ च यः श्रुतेन केवलशुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति परमार्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वाद्यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति व्यवहारः परमार्थप्रतिपादकत्वेनात्मानं प्रतिष्ठापयति ॥ ९ ॥ १० ॥

कुतो व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य इति चेत् ;—

ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥ ११ ॥

णात् **सुदणाणं** द्रव्यश्रुताधारेणोत्पन्नं भावश्रुतज्ञानं **आदा** आत्मा भवति । कथंभूतं । **सव्वं** आत्मसंवित्तिविषयं परपरिच्छित्तिविषयं वा **तह्मा** तस्मात्कारणात् **सुदकेवली** द्रव्यश्रुतकेवली स भवतीति । अयमत्रार्थः । यो भावश्रुतरूपेण स्वसंवेदनज्ञानेन शुद्धात्मानं जानाति स निश्चयश्रुतकेवली भवति । यस्तु स्वशुद्धात्मानं न संवेदयति न भावयति बहिर्विषयं द्रव्यश्रुतार्थं जानाति स व्यवहारश्रुतकेवली भवतीति । ननु तर्हि स्वसंवेदनज्ञानबलेनास्मिन् कालेपि श्रुतकेवली भवति । तन्न । यादृशं पूर्वपुरुषाणां शुक्लध्यानरूपस्वसंवेदनज्ञानं तादृशमिदानीं नास्ति किंतु धर्म्यध्यानं योग्यमस्तीत्यर्थः । एवं निश्चयव्यवहारश्रुतकेवलिव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतं ॥ ९–१० ॥ अथ गाथायाः पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामुत्तरार्द्धेनाभेदरत्नत्रयभावनां च प्रतिपादयति ;—

ही है ऐसा पक्ष सिद्ध हुआ । श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है ऐसा होनेपर जो आत्माको जानता है वह श्रुतकेवली है ऐसा ही सिद्ध होता है । वह परमार्थ ही है । इसतरह ज्ञान और ज्ञानीको भेदसे कहनेवाला जो व्यवहार उससे भी परमार्थमात्र ही कहा जाता है उससे भिन्न अधिक कुछ नहीं कहता । अथवा जो श्रुतकर केवल शुद्ध आत्माको जानता है वह श्रुतकेवली है । इसतरह परमार्थका लक्षण कहे विना कहनेका असमर्थपना है । इसलिये जो सब श्रुतज्ञानको जानता है वह श्रुतकेवली है ऐसा व्यवहार है वह परमार्थको कहनेसे आत्माको प्रगटरूप स्थापन करता है ॥ **भावार्थ**—जो शास्त्रज्ञानसे अभेदरूप ज्ञायकमात्र शुद्ध आत्माको जानता है वह श्रुतकेवली है यह तो परमार्थ (निश्चयकथन) है और वो ही सब शास्त्रज्ञानको जानता है । ज्ञान है वही आत्मा है ऐसा ज्ञानको जाना उसने आत्माको ही जाना यही परमार्थ है । इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानीके भेद कहनेवाले व्यवहारने भी परमार्थ ही कहा अन्य कुछ नहीं कहा । यहां ऐसा है कि परमार्थका विषय तो कथंचित् वचनगोचर नहीं भी है इसलिये व्यवहार नय ही आपको प्रगटपनेसे कहता है ऐसा जानना ॥ ९ ॥ १० ॥ आगे फिर प्रश्न उठता है

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः ।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः ॥ ११ ॥

व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वादभूतमर्थं प्रद्योतयति । तथाहि । यथा प्रबलपंकसंवलनतिरोहितसहजैकार्थभावस्य पयसोनुभवितारः पुरुषाः पंकपयसोर्विवेकमकुर्वंतो बहवोनर्थमेव तदनुभवंति । केचित्तु स्वकरविकीर्णकतकनिपातमात्रोपजनितपंकपयोविवेकतया स्वपुरुषाकाराविर्भावितसहजैकार्थभावत्वादर्थमेव तदनुभवंति । तथा प्रबलकर्मसंवलनति-

---

णाणह्मि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य ।
ते पुण तिण्णिवि आदा तह्मा कुण भावणं आदे ॥

ज्ञाने भावना खलु कर्तव्या दर्शने चारित्रे च । तानि पुनस्त्रीण्यपि आत्मा तस्मात् कुरु भावना आत्मनि॥ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयभावना खलु स्फुटं कर्त्तव्या भवति । पुनस्त्रीण्यपि निश्चयेनात्मैव यतः कारणात् तस्मात् कुरु भावना शुद्धात्मनीति ॥ अथ भेदाभेदरत्नत्रयभावनाफलं दर्शयति,—

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥

यः आत्मभावनामिमा नित्योद्यतः मुनिः समाचरति । सः सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥ यः कर्ता आत्मभावनामिमां नित्योद्यतः सन् मुनिः तपोधनः समाचरति सम्यगाचरति भावयति स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण स्तोककालेनेत्यर्थः । इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयभावनाफलव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन चतुर्थस्थलं गतं । अथ यथा कोपि ब्राह्मणादिविशिष्टो जनो म्लेच्छप्रतिबोधनकाले एव म्लेच्छभाषां ब्रूते न च शेषकाले तथैव ज्ञानीपुरुषोप्यज्ञानिप्रतिबोधनकाले व्यवहारमाश्रयति न च शेषकाले । कस्मादभूतार्थत्वादिति प्रकाशयति;—

ववहारो व्यवहारनयः **अभूदत्थो** अभूतार्थः असत्यार्थो भवति । **भूदत्थो** भूतार्थः सत्यार्थः **देसिदो** देशितः कथितः दु पुनः कोसौ **सुद्धणओ** शुद्धनयः निश्चयनयः । तर्हि केन नयेन सम्यग्दृष्टिर्भवतीति चेत् । **भूदत्थं** भूतार्थं सत्यार्थं निश्चयनयं **अस्सिदो** आश्रितो गतः स्थितः खलु स्फुटं **सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** सम्यग्दृष्टिर्भवति जीव इति टीकाव्याख्यानं । द्वितीयव्याख्यानेन पुनः **ववहारो अभूदत्थो** व्यवहारोऽभूतार्थो **भूदत्थो**

पहले कहा था कि व्यवहारको अंगीकार नहीं करना परंतु जब यह परमार्थका कहनेवाला है तो ऐसे व्यवहारको क्यों नहीं अंगीकार करना ? उसके उत्तरका गाथासूत्र कहते हैं;–[**व्यवहारः**] व्यवहारनय [**अभूतार्थः**] अभूतार्थ है [**तु**] और [**शुद्धनयः**] शुद्धनय [**भूतार्थः**] भूतार्थ है ऐसा [**दर्शितः**] ऋषीश्वरोंने दिखलाया है । [**जीवः**] जो जीव [**भूतार्थं**] भूतार्थको [**आश्रितः**] आश्रित करता है वह जीव [**खलु**] निश्चयकर [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**भवति**] है । **टीका**—व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है क्योंकि वह अविद्यमान असत्य अभूतार्थको प्रगट करती

रोहितसहजैकज्ञायकभावस्यात्मनोऽनुभवितारः पुरुषा आत्मकर्मणोर्विवेकमकुर्वंतो व्यवहारविमोहितहृदयाः प्रद्योतमानभाववैश्वरूप्यं तमनुभवंति । भूतार्थदर्शिनस्तु स्वमतिनिपातितशुद्धनयानुबोधमात्रोपजनितात्मकर्मविवेकतया स्वपुरुषाकाराविर्भावितसहजैकज्ञायकस्व-

---

भूतार्थश्च **देसिदो** देशितः कथितः न केवलं व्यवहारो देशितः **सुद्धणओ** शुद्धनिश्चयनयोपि । दु शब्दादय शुद्धनिश्चयनयोपीतिव्याख्यानेन भूताभूतार्थभेदेन व्यवहारोपि द्विधा, शुद्धनिश्चयाशुद्धनिश्चयभेदेन निश्चयनयोपि द्विधा इति नयचतुष्टयं । इदमत्र तात्पर्यं । यथा कोपि ग्राम्यजनः सकर्दमं नीरं पिबति, नागरिकः पुनः विवेकीजनः कतकफलं निक्षिप्य निर्मलोदकं

है और शुद्धनय एक होनेसे भूतार्थ है इसलिये विद्यमान सत्य भूत अर्थको प्रगट करती है । इस वातको दृष्टांतसे दिखलाते है । जैसे प्रवल कीचड़के मिलनेसे जिसका निर्मल स्वभाव आच्छादित होगया है ऐसे जलके पीनेवाले पुरुष वहुतसे तो ऐसे हैं कि जल और कीचड़का भेद न करके उस मैले जलको ही पीते हैं और कोई जीव अपने हाथसे निर्मली औषध डालकर कर्दम और जलको जुदा जुदा करनेसे जिसमें अपना पुरुषाकार दिखलाई दे ऐसे स्वाभाविक निर्मलस्वभावरूप जलको पीते है । उसीतरह प्रवलकर्मके संयोग होनेसे जिसका स्वाभाविक एक ज्ञायकभाव आच्छादित होगया है ऐसे आत्माके अनुभव करनेवाले जो पुरुष हैं वे आत्मा और कर्मका भेद नहीं करके व्यवहारमें विमोहितचित्त हुए जिसके भावोंका अनेकरूपपना प्रगट है ऐसे अशुद्ध आत्माका ही अनुभव करते हैं और जो शुद्धनयके देखनेवाले जीव हैं वे अपनी वुद्धिसे पातनकी गई शुद्धनयके अनुसार ज्ञान होनेमात्रसे हुआ जो आत्मा और कर्मका भेद उससे अपने पुरुषाकाररूप स्वरूपकर प्रगट हुए स्वाभाविक एक ज्ञायकभावपनेसे जिसमें एक ज्ञायक भाव प्रकाशमान है ऐसे शुद्ध आत्माका अनुभव करते है । इसलिये जो पुरुष शुद्धनयको आश्रय करते हैं वे ही सम्यक् अवलोकन करते हुए सम्यग्दृष्टि है और दूसरे जो अशुद्ध नयको सर्वथा आश्रय करते हैं वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं । यहां शुद्धनय निर्मलीद्रव्यके समान जानना इसकारण कर्मसे भिन्न आत्माको जो देखना चाहते हैं उन्हे व्यवहारनय अंगीकार नहीं करनी चाहिये ॥ **भावार्थ**—यहां व्यवहारनयको अभूतार्थ और शुद्धनयको भूतार्थ कहा है । जिसका विषय विद्यमान न हो असत्यार्थ हो उसे अभूतार्थ कहते हैं । उसका अभिप्राय ऐसा है कि शुद्धनयका विषय अभेद एकाकाररूप नित्यद्रव्य है इसकी दृष्टिमें भेद नहीं दीखता । इसलिये इसकी दृष्टिमें भेद अविद्यमान असत्यार्थ ही कहना चाहिये । ऐसा न समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं है । यदि ऐसा माना जाय तो वेदांतमतवाले जैसे भेदरूप अनित्यको देख अवस्तु मायास्वरूप कहते हैं और सर्व व्यापक एक अभेद नित्य शुद्धब्रह्मको वस्तु कहते हैं वैसा हो जायगा। इसलिये सर्वथा एकांत शुद्धनयकी पक्षरूप मिथ्यादृष्टिका ही प्रसंग आजायगा। इसका-

भावत्वात् प्रद्योतमानैकज्ञायकभावं तमनुभवंति । तदत्र ये भूतार्थमाश्रयंति त एव सम्यक् पश्यंतः सम्यग्दृष्टयो भवंति न पुनरन्ये कतकस्थानीयत्वात् शुद्धनयस्यातः प्रत्यगात्मदर्शिभिर्व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः ॥ ११ ॥

अथ च केषांचित्कदाचित्सोपि प्रयोजनवान् । यतः—

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥ १२ ॥

शुद्धः शुद्धादेशो ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभिः ।
व्यवहारदेशिताः पुनर्ये त्वपरमे स्थिता भावे ॥ १२ ॥

ये खलु पर्यंतपाकोत्तीर्णजात्यकार्त्तस्वरस्थानीयपरमं भावमनुभवंति तेषां प्रथमद्वितीया-

---

पिबति । तथा स्वसंवेदनरूपभेदभावनाशून्यजनो मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामसहितमात्मानमनुभवति, सद्दृष्टिजनः पुनरभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिबलेन कतकफलस्थानीयं निश्चयनयमाश्रित्य शुद्धात्मानमनुभवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ अथ पूर्वगाथायां भणितं भूतार्थनयाश्रितो जीवः सम्यग्दृष्टिर्भवति । अत्र तु न केवलं भूतार्थो निश्चयनयो निर्विकल्पसमाधिरताना प्रयोजनवान् भवति । किंतु निर्विकल्पसमाधिरहिताना पुनः षोडशवर्णिकासुवर्णलाभाभावे अधस्तनवर्णिकासु-

---

रण यहां ऐसा समझना कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है प्रयोजनके वशसे नयको मुख्य गौण करके कहती है । भेदरूप व्यवहारकी पक्ष तो प्राणियोंको अनादिकालसे ही है और उसका उपदेश भी बहुधा सभी प्राणी आपसमे करते हैं । जिनवाणीमें व्यवहारका उपदेश शुद्धनयका हस्तावलंबन (सहायक) जान बहुत किया है । परंतु उसका फल संसार ही है । और शुद्धनयकी पक्ष इस जीवको कभी आई नहीं तथा उसका उपदेश भी कहीं २ है इसलिये उपकारी श्रीगुरुने शुद्धनयके ग्रहणका फल मोक्ष जानकर इसीका उपदेश प्रधानता (मुख्यता) से दिया है कि शुद्धनय भूतार्थ है सत्यार्थ है इसीको आश्रय करनेसे सम्यग्दृष्टि होसकता है, इसके जाने विना व्यवहारमे जबतक मग्न है तबतक आत्माका ज्ञान श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं होसकता—ऐसा जानना ॥११॥ आगे कहते हैं कि यह व्यवहारनय भी किसी २ को किसी कालमें प्रयोजनवाली है सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है इसलिये इसका उपदेश है;—**[परमभावदर्शिभिः]** जो शुद्धनयतक पहुंच श्रद्धावान हुए तथा पूर्णज्ञान चारित्रवान होगये उनको तो **[शुद्धादेशः]** शुद्धका उपदेश (आज्ञा) करनेवाली **[शुद्धः]** शुद्धनय **[ज्ञातव्यः]** जानने योग्य है । यहां शुद्ध आत्माका प्रकरण है इसलिये शुद्ध नित्य एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानना । **[पुनः]** और **[ये तु]** जो जीव **[अपरमे भावे]** अपरमभाव अर्थात् श्रद्धाके तथा ज्ञान चारित्रके पूर्ण भावको नहीं पहुंचसके साधक अवस्थामें ही **[स्थिताः]** ठहरे हुए हैं वे **[व्यवहारदेशिताः]** व्यवहारद्वारा उपदेश करने योग्य

द्यनेकपाकपरंपरापच्यमानकार्त्तस्वरानुभवस्थानीयापरमभावानुभवनशून्यत्वाच्छुद्धद्रव्यादेशितया समुद्योतितास्खलितैकस्वभावैकभावः शुद्धनय एवोपरितानेकप्रतिवर्णिकास्थानीयत्वात्प-

वर्णलाभवत्केषाचित्प्राथमिकानां कदाचित् सविकल्पावस्थायां मिथ्यात्वविषयकपायदुर्ध्यानवंचनार्थं व्यवहारनयोपि प्रयोजनवान् भवतीति प्रतिपादयति—**सुद्धो** शुद्धनयः निश्चयनयः । कथभूतः ।

हैं ॥ **टीका**—यहां दृष्टांतसे कहते है कि, जो पुरुष अंतके पाकसे उतरे हुए शुद्ध सोंनेके समान वस्तुके उत्कृष्ट असाधारण भावोंको अनुभवते है उनको प्रथम द्वितीय आदि अनेकपाकोंकी परंपरासे पच्यमान अशुद्ध सुवर्णके समान जो अनुत्कृष्ट मध्यमभाव उसका अनुभव नहीं होता । इसलिये शुद्धद्रव्यके ही कहनेवाली होनेसे जिसने अचलित अखंड एकस्वभावरूप एकभाव प्रगट किया है ऐसी शुद्धनय ही दूर हुए अनेकवर्णोंवाली एक शुद्ध सुवर्णावस्थाके समान जानी हुई प्रयोजनवान है ॥ और जो पुरुप प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकोंकी परंपरासे पच्यमान उस अशुद्ध सुवर्णके समान वस्तुके अनुत्कृष्ट मध्यम भावको अनुभवते है उनको अंतके पाककर उतरे हुए शुद्धसुवर्णके समान वस्तुके उत्कृष्टभावका अनुभव न होनेसे उसकालमे जाना हुआ व्यवहारनय ही प्रयोजनवान है । कैसा है व्यवहारनय ? जिसने अशुद्धद्रव्यके कहनेसे जुदे २ एक भावस्वरूप अनेकभाव दिखलाये है तथा विचित्र अनेकवर्णमालाके समान है । इसतरह अपने २ समयमे दोनों ही नय कार्यकारी हैं । क्योंकि तीर्थ और तीर्थके फलकी ऐसी ही व्यवस्थिति है । जिससे तिरा जावे वह तीर्थ है ऐसा तो व्यवहार धर्म है और जो पार होना वह व्यवहार धर्मका फल है अथवा अपने स्वरूपका पाना वह तीर्थफल है । ऐसा ही दूसरी जगह भी "जो जिणमयं" इत्यादि गाथासे कहा गया है । उसका अर्थ ऐसा है। आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! जो तुम जिनमतको प्रवर्ताना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय—इन दोनों नयोंको मत छोड़ो क्योंकि एक व्यवहार नयके विना तो तीर्थ—व्यवहार मार्गका नाश हो जायगा और दूसरी निश्चयनयके विना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायगा ॥ **भावार्थ**—लोकमे सोंनेके सोलह वान (ताव) प्रसिद्ध है उनमे पंद्रह वान तक चूरी आदि परसंयोगकी कालिमा रहती है तब तक अशुद्ध कहते है और फिर ताव देते २ अंतके तावसे उतरे तब सोलहवान शुद्ध सुवर्ण कहलाता है । जिन जीवोंको सोलहवानके सोंनेका ज्ञान श्रद्धान तथा उसकी प्राप्ति हुई उनको पंद्रहवानतकका कुछ प्रयोजनवान नहीं है । और जिनको सोलहवानके शुद्ध सुवर्णकी प्राप्ति जबतक नहीं हुई तबतक पंद्रहवानतकका भी प्रयोजनवान् है ॥ उसीतरह यह जीव नामा पदार्थ है वह पुद्गलके संयोगसे अशुद्ध अनेक रूप हो रहा है उसका सब परद्रव्योंसे भिन्न एक ज्ञायकपनेमात्रका जिनको ज्ञान श्रद्धान तथा आचरणरूप प्राप्ति ये तीनों होगये उनको तो पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपपनेको कहनेवाला अशुद्धनय कुछ प्रयोजनवान् (किसी

रिज्ञायमानः प्रयोजनवान् । अन्ये तु प्रथमद्वितीयाद्यनेकपाकपरंपरापच्यमानकार्त्तस्वरस्थानीयमपरमं भावमनुभवंति तेषां पर्यंतपाकोत्तीर्णजात्यकार्त्तस्वरस्थानीयपरमभावानुभवनशून्य-

सुद्धादेसो शुद्धद्रव्यस्यादेशः कथनं यत्र स भवति शुद्धादेशः । **णादव्वो** ज्ञातव्यः भावयितव्यः । कैः । **परमभावदरसीहिं** शुद्धात्मभावदर्शिभिः । कस्मादिति चेत् । यतः षोडशवर्णि-

मतलबका) नहीं । और जबतक शुद्धभावकी प्राप्ति न हुई तबतक जितना अशुद्ध नयका कथन है उतना यथापदवी प्रयोजनवाला है । जबतक यथार्थ ज्ञान श्रद्धानकी प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न हुई हो तबतक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है ऐसे जिनवचनोंका सुनना, धारण करना तथा जिनवचनके कहनेवाले श्रीजिनगुरुकी भक्ति जिनबिंबका दर्शन इत्यादि व्यवहारमार्गमें प्रवृत्त होना प्रयोजनवान है । और जिसके श्रद्धान ज्ञान तो हुआ तथा साक्षात्प्राप्ति न हुई तबतक पूर्वकथित कार्य, परद्रव्यका आलंबनछोड़नेरूप अणुव्रत महाव्रतका ग्रहण, समिति गुप्ति पंचपरमेष्ठीका ध्यानरूप प्रवर्तन, उसीतरह प्रवर्तनेवालोंकी संगति करना और विशेष जाननेकेलिये शास्त्रोंका अभ्यास करना इत्यादि व्यवहारमार्गमें आप प्रवर्तना तथा अन्यको प्रवर्ताना ऐसे व्यवहारनयका उपदेश अंगीकार करना प्रयोजनवान् है । व्यवहार नयको कथंचित् असत्यार्थ कहा गया है, यदि सब असत्यार्थ जानकर छोड़ दे तो शुभोपयोगरूप व्यवहार छोडे और शुद्धोपयोगकी साक्षात् प्राप्ति हुई नहीं इसलिये उलटा अशुभोपयोगमें ही आकर भ्रष्ट हुआ यथाकथंचित् स्वेछारूप प्रवर्ते तब नरकादिगति तथा परंपरा निगोदको प्राप्त होकर संसारमें ही भ्रमण करता है । इसकारण साक्षात् शुद्धनयका विषय जो शुद्ध आत्मा उसकी प्राप्ति जबतक न हो तबतक व्यवहार भी प्रयोजनवान् है । ऐसा स्याद्वादमतमें श्रीगुरुओंका उपदेश है ॥ इसी अर्थका कलशरूप काव्य टीकाकार कहते हैं—"उभय" इत्यादि । उसका **अर्थ**—निश्चय व्यवहाररूप जो दो नय उनके विषयके भेदसे आपसमें विरोध है । उस विरोधके दूर करनेवाला स्यात्पदकर चिह्नित जो जिन भगवानका वचन उसमें जो पुरुष रमते हैं—प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं वे पुरुष विना कारण अपने आप मिथ्यात्व कर्मके उदयका वमनकर इस अतिशयरूप परमज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्माको शीघ्र ही अवलोकन करते हैं । कैसा है समयसार रूप शुद्ध आत्मा? नवीन नहीं उत्पन्न हुआ है—पहले कर्मसे आच्छादित था वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है । फिर कैसा है? सर्वथा एकांतरूप कुनयकी पक्षकर खंडित नहीं होता—निर्बाध है ॥ **भावार्थ**—जिनवचन स्याद्वादरूप है, जहां दो नयोंके विषयका विरोध है अर्थात् जैसे जो सद्रूप है वह असद्रूप नहीं होता, एक है वह अनेक नहीं होता, नित्य है वह अनित्य नहीं होता, भेदरूप है वह अभेदरूप नहीं होता, शुद्ध है वह अशुद्ध नहीं होता इत्यादि नयोंके विषयोंमें विरोध है, वहां जिन वचन कथंचित्

त्वादशुद्धद्रव्यादेशितयोपदर्शितप्रतिविशिष्टैकभावानेकभावो व्यवहारनयो विचित्रवर्णमालिकास्थानीयत्वात्परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्, तीर्थतीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्वात् ।

फाकार्त्तस्वरलाभवदभेदरत्नत्रयस्वरूपसमाधिकाले सप्रयोजनो भवति । निःप्रयोजनो न भवतीत्यर्थः । **ववहारदेसिदो** व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण देशितः कथित इति व्यवहा-

---

विवक्षासे सत् असद्रूप, एक अनेकरूप, नित्य अनित्यरूप, भेद अभेदरूप, शुद्ध अशुद्ध रूप जिस तरह विद्यमान वस्तु है उसी तरह कहकर विरोध मिटा देता है झूठी कल्पना नहीं करता । इसलिये द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोनों नयोंमे प्रयोजनके वश शुद्ध द्रव्यार्थिकको मुख्यकर निश्चय कहता है और अशुद्ध द्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिकको गौणकर व्यवहार कहता है । इस प्रकार जिनवचनमें जो पुरुष रमण करते हैं वे इस शुद्ध आत्माको यथार्थ पाते हैं, अन्य सर्वथा एकांती सांख्यादिक नहीं पाते । क्योंकि वस्तु सर्वथा एकांतपक्षका विषय नही है तौभी एक धर्ममात्रको ही ग्रहणकर वस्तुकी असत्य कल्पना करते हैं । सो असत्यार्थ ही है बाधासहित मिथ्यादृष्टि है ऐसा जानना ॥ इसतरह बारह गाथाओंमें पीठबंध (भूमिका) है । आगे आचार्य शुद्धनयको प्रधानकर निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप कहते हैं क्योंकि अशुद्धनय (व्यवहारनय) की प्रधानतामें जीवादि तत्त्वोंके श्रद्धानको सम्यक्त्व कहा है । उसी जगह उन जीवादिकोंको शुद्धनयकर जाननेसे सम्यक्त्व होता है ऐसा कहते हैं । वहां टीकाकार उसकी सूचनिकारूप तीन श्लोक कहते है । उनमेंसे पहले श्लोकमे यह कहते है कि व्यवहारनयको कथंचित् प्रयोजनवान् कहा तौ भी यह कुछ वस्तुभूत नहीं है ॥ "व्यवहरण" इत्यादि । **अर्थ**—जो व्यवहार नय है वह यद्यपि इस पहली पदवीमें (जबतक शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति न हुई हो तबतक) जिन्होंने अपना पैर रखा है ऐसे पुरुषोंको हस्तावलंब तुल्य कहा है, सो बड़ा खेद है । तौभी जो पुरुष चैतन्यचमत्कार मात्र, परद्रव्यभावोंसे रहित परम अर्थ (शुद्धनयका विषयभूत) को अंतरंगमें अवलोकन करते है उसका श्रद्धान करते हैं तथा उस स्वरूप लीन हुए चारित्रभावको प्राप्त होते है उनके यह व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान् नहीं है ॥ **भावार्थ**—शुद्धस्वरूपका ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरण हुए बाद अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनकारी नहीं है ॥ अब आगेके श्लोकमे निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप कहते है—"एकत्वे" इत्यादि । **अर्थ**—जो इस आत्माको अन्य द्रव्योंसे जुदा देखना श्रद्धान करना वोही नियमसे सम्यग्दर्शन है । कैसा है आत्मा ? अपने गुणपर्योयोंमें व्यापनेवाला है । फिर कैसा है ? शुद्धनयसे एकपनेमें निश्चित किया गया है । फिर कैसा है ? पूर्ण ज्ञानघन है और जितना यह सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है । इसलिये आचार्य प्रार्थना करते हैं कि इस नवतत्त्वकी परिपाटीको छोड यह आत्मा ही हमें प्राप्त होवै ॥ **भावार्थ**—सब स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप गुणप-

उक्तं च। "जइ जिणमयं पवजह ता मा ववहारणिच्छए मुयए। एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥"

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके जिनवचसि रमंते ये स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैरनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव॥ ४॥
व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित्॥ ५॥

"एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक्। सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमि-

---

रदेशितो व्यवहारनयः **पुण** पुनः अधस्तनवर्णिकसुवर्णलाभवत्प्रयोजनवान् भवति। केषां। **जे** ये पुरुषाः **दु** पुनः **अपरमे** अशुद्धे असंयतसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया श्रावकापेक्षया वा सरागसम्य-

---

र्यायभेद उनमें व्यापनेवाला यह आत्मा शुद्धनयकर एकपनेमें निश्चित किया—शुद्धनयसे ज्ञायक मात्र एक आकार दिखलाया उसको सब अन्यद्रव्य और अन्यद्रव्योंके भावोंसे न्यारा देखना श्रद्धान करना वह नियमसे सम्यग्दर्शन है। व्यवहारनय आत्माको अनेक भेदरूप कहकर सम्यग्दर्शनको अनेकभेदरूप कहता है उसजगह व्यभिचार (दोष) आता है नियम नहीं रहता। शुद्ध नयकी हद पहुंचते व्यभिचार नहीं रहता इसलिये नियम रूप है। कैसा है शुद्ध नयका विषयभूत आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है—सब लोकालोकका जाननेवाला ज्ञान स्वरूप है ऐसे आत्माका श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन है वह कुछ जुदा पदार्थ नहीं है आत्माका ही परिणाम है। इसलिये आत्मा ही है। इसकारण सम्यग्दर्शन है वह आत्मा है अन्य नहीं है॥ यहांपर इतना और जानना कि नय है वे श्रुतप्रमाणके अंश हैं इसलिये शुद्धनय भी श्रुत प्रमाणका ही अंश हुआ। श्रुतप्रमाण है वह परोक्षप्रमाण है क्योंकि वस्तुको सर्वज्ञके आगमके वचनसे जाना है। यह शुद्धनय भी परोक्ष सब द्रव्योंसे जुदे सब आत्माकी पर्यायोंमें व्याप्त पूर्ण चैतन्य केवल ज्ञानरूप सब लोकालोकके जाननेवाले असाधारण चैतन्य धर्मको दिखलाता है, उसको यह व्यवहारी छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) जीव आगमको प्रमाणकर पूर्ण आत्माका श्रद्धान करे वही श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है। जबतक व्यवहारनयके विषयभूत जीवादिक भेदरूप तत्त्वोंका केवल श्रद्धान रहता है तबतक निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि इन तत्त्वोंकी संतति (परिपाटी) को छोडकर शुद्धनयका विषयभूत एक यह आत्मा ही हमको प्राप्त हो दूसरा कुछ नहीं चाहते। यह वीतराग अवस्थाकी प्रार्थना है कुछ नयपक्ष नहीं है। जो सर्वथा नयोंका पक्षपात ही हुआ करे तो मिथ्यात्व ही है। यहांपर कोई प्रश्न करे कि यह अनुभवमें चैतन्यमात्र आना इतना ही आत्माको मान श्रद्धान करे तो सम्यग्दर्शन है कि नहीं? उसका समाधान। जो चैतन्य-

मामात्मायमेकोस्तु नः ॥ ६ ॥" "अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् । नवतत्त्वगतत्वेपि यदेकत्वं न मुंचति ॥ ७ ॥" ॥ १२ ॥

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥ १३ ॥

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च ।
आस्रवसंवरनिर्जरा बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम् ॥ १३ ॥

अमूनि हि जीवादीनि नवतत्त्वानि भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं संपद्यंत एवामीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तमभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जरावंधमो-

---

ग्दृष्टिलक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्तसंयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे वा **ठिदा** स्थिताः । कस्मिन् स्थिताः । **भावे** जीवपदार्थे तेषामिति भावार्थः ॥ १२ ॥ एव निश्चयव्यवहारनयव्याख्यानप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयेन पंचमं स्थलं गत । इति चतुर्दशगाथाभिः स्थलपंचकेन पीठिका समाप्ता । अथ कश्चिदासन्नभव्यः पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्वं परिज्ञाय विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं निजस्वरूप भावयति । विस्तररुचिः पुनर्नवभिरधिकारैः समयसारं ज्ञात्वा पश्चाद्भावना करोति । तद्यथा—विस्तररुचिशिष्य प्रति जीवादिनवपदार्थाधिकारैः समयसारव्याख्यानं क्रियते । तत्रादौ नवपदार्थाधिकारगाथाया आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षणनिर्विकल्पसामायिकस्थिताना यच्छुद्धात्मरूपस्य दर्शनमनुभवनमवलोकनमुपलब्धिः सवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिरनुभूतिस्तदेव निश्चयनयेन निश्चयचारित्राविनाभावि निश्चयसम्यक्त्वं वीतरागसम्यक्त्वं भण्यते । तदेव च गुणगुण्यभेदरूपनिश्चयनयेन शुद्धात्मस्वरूप भवतीत्येका पातनिका । अथवा नवपदार्था भूतार्थेन ज्ञाताः संतस्त एव भेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वाद् व्यवहारसम्यक्त्वनिमित्तं भवंति, निश्चयनयेन तु स्वकीयशुद्धपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति द्वितीया चेति पातनिकाद्वय मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्ररूपयति;—**भूदत्थेण** भूतार्थेन निश्चयनयेन शुद्धनयेन **अभिगदा** अभिगता निर्णीता नि-

---

मात्र तो नास्तिक विना सभी मतवाले आत्माको मानते हैं इतने ही श्रद्धानको सम्यक्त्व कहा जाय तो सभीके सम्यक्त्व सिद्ध हो जायगा । इसलिये सर्वज्ञकी वाणीमें जैसा पूर्ण आत्माका स्वरूप कहा है वैसा श्रद्धान होनेसे निश्चय सम्यक्त्व होता है ॥ अब चौथे श्लोकमें सूत्रकार आचार्य ऐसा कहते हैं कि इसके वाद शुद्ध नयके आधीन सर्व द्रव्योंसे भिन्न आत्मज्योति प्रगट हो जाती है—"अतः" इत्यादि । **अर्थ**—इसके वाद शुद्ध नयके आधीन आत्मज्योति प्रगट होती है । नवतत्त्वमें प्राप्त होनेपर भी जो अपने एकपनेको नहीं छोड़ती । **भावार्थ**—नवतत्त्वमें प्राप्त हुआ आत्मा अनेकरूप दीखता है यदि इसका भिन्न स्वरूप विचारा जाय तो अपनी चैतन्य चमत्कार मात्र ज्योतिको नहीं छोड़ता ॥ १२ ॥ ऐसा ही शुद्धनयकर जानना वही सम्यक्त्व है, ऐसा सूत्रकार गाथामें कहते हैं;—**[भूतार्थेन अभिगता]** भूतार्थ नयकर जाने हुए **[जीवाजीवौ]** जीव,

क्षलक्षणेषु नवतत्त्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापितस्यात्मनोनुभूतेरात्मख्यातिलक्षणायाः संपद्यमानत्वात्ततो विकार्यविकारकोभयं पुण्यं तथा पापं। आस्राव्यास्रावकोभयमास्रवः, संवार्यसंवारकोभयं संवरः निर्जर्यनिर्जरकोभयं निर्जरा बंध्यबंधकोभयं बंधः मोच्यमोचकोभयं मोक्षः। स्वयमेकस्य पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षानुपपत्तेः। तदुभयं च जीवाजीवाविति। बहिर्दृष्ट्या नवतत्त्वान्यमूनि जीवपुद्गलयोरनादिबंधपर्यायमुपेत्यैकत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि, अथचैकजीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीषु नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते। तथांतर्दृष्ट्या

श्रिता ज्ञाताः सतः। के ते। **जीवाजीवा य पुण्णपावं च आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य** जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षस्वरूपा नव पदार्थाः **सम्मत्तं** त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वात्कारणत्वात्सम्यक्त्वं भवति। निश्चयेन परिणाम एव सम्यक्त्व-

---

अजीव [**च**] और [**पुण्यपापं**] पुण्य, पाप [**च**] तथा [**आस्रवसंवरनिर्जराः**] आस्रव, संवर, निर्जरा [**बंधः**] बंध और [**च**] [**मोक्षः**] मोक्षः [**सम्यक्त्वं**] ये नवतत्त्व सम्यक्त्व हैं। **टीका**—जो जीवादि नौ तत्त्व हैं वे भूतार्थ नयसे जाने हुए सम्यग्दर्शन ही हैं यह नियम कहा, क्योंकि जीव अजीव पुण्य पाप आस्रव संवर निर्जरा बंध मोक्ष लक्षणवाले व्यवहार धर्मकी प्रवृत्तिके अर्थ ये जीवादि नवतत्त्व अभूतार्थ (व्यवहार) नयकर कहे हुए हैं। उनमें एकपना प्रगट करनेवाले भूतार्थ नयकर एकपना प्राप्त कर शुद्ध नयपनेसे स्थापन किये गये आत्माकी ख्याति लक्षणवाली अनुभूतिका प्राप्तपना है क्योंकि शुद्धनयकर नव तत्त्वको जाननेसे आत्माकी अनुभूति होती है। उनमेंसे विकारी होने योग्य और विकार करनेवाला—ये दोनों पुण्य भी हैं और पाप भी हैं तथा आस्राव्य व आस्रव करनेवाले ये दोनों आस्रव हैं, संवार्य (संवररूप होने योग्य), संवारक (संवरकरनेवाले) ये दोनों संवर हैं। निर्जरने योग्य, निर्जरा करनेवाला ये दोनों निर्जरा हैं। बंधने योग्य, बंधन करनेवाला ये दोनों बंध हैं और मोक्ष होने योग्य, मोक्ष करनेवाला ये दोनों मोक्ष है। क्योंकि एकके ही अपने आप पुण्य पाप आस्रव संवर निर्जरा बंध मोक्षकी उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती। तथा वे जीव और अजीव दोनों मिलकर सब नौ तत्त्व हैं। इनको बाह्य दृष्टिकर देखाजाय तब जीव पुद्गलकी अनादि बंध पर्यायको प्राप्तकर एकपनेसे अनुभव करनेपर तो ये नौ भूतार्थ है सत्यार्थ हैं तथा एक जीव द्रव्यके ही स्वभावको लेकर अनुभव किये गये अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं। जीवके एकाकार स्वरूपमें ये नहीं हैं। इसलिये इन तत्त्वोंमें भूतार्थ नयकर जीव एकरूप ही प्रकाशमान है। उसी तरह अंतर्दृष्टिसे देखा जाय तब ज्ञायकभाव जीव है और जीवके विकारका कारण अजीव है। पुण्य पाप आस्रव संवर निर्जरा बंध मोक्ष जिसका लक्षण है ऐसा केवल अकेले जीवका विकार नहीं है पुण्य आदि ये सातों पदार्थ केवल एक अजीवके

ज्ञायको भावो जीवो जीवस्य विकारहेतुरजीवः । केवलजीवविकाराश्च पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षलक्षणाः, केवलाजीवविकारहेतवः पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षा इति । नवतत्त्वान्यमून्यपि जीवद्रव्यस्वभावमपोह्य स्वपरप्रत्ययैकद्रव्यपर्यायत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि, अथ च सकलकालमेवास्खलंतमेकं जीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थानि । ततोऽमीष्वपि नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते । एवमसावेकत्वेन द्योतमानः शुद्धनयत्वेनानुभूयत एव । यात्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्श-

---

मिति । नव पदार्थाः भूतार्थेन ज्ञाताः संतः सम्यक्त्वं भवंतीत्युक्तं भवद्भिस्तत्कीदृशं भूतार्थपरिज्ञानमिति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह । यद्यपि नव पदार्थाः तीर्थवर्त्तनानिमित्तं प्राथमिकशिष्यापेक्षया भू-

---

विकारसे जीवके विकारको कारण हैं । ऐसे ये नव तत्त्व है वे जीवके स्वभावको छोड़कर आप और पर कारणवाले एक द्रव्य पर्यायपनेसे अनुभव किये गये तो भूतार्थ हैं तथा सब कालमे नहीं चिगते एक जीव द्रव्यके स्वभावको अनुभव करनेपर ये अभूतार्थ है—असत्यार्थ हैं । इसलिये इन नौ तत्त्वोंमे भूतार्थ नयकर देखा जाय तब जीव तो एक रूप ही प्रकाशमान है । ऐसे यह जीवतत्त्व एकपनेसे प्रगट प्रकाशमान हुआ शुद्धनयपनेसे अनुभव किया जाता है । यह अनुभवन ही आत्मख्याति है, आत्माका ही प्रकाश है जो आत्मख्याति है वही सम्यग्दर्शन है । इस प्रकार यह सब कथन निर्दोष है—बाधारहित है ॥ **भावार्थ—**इन नव तत्त्वोंमे शुद्धनयसे देखा जाय तब जीव ही एक चैतन्य चमत्कारमात्र प्रकाशरूप प्रकट हो रहा है । इसके विना जुदे २ नव तत्त्व देखे जायँ तो कुछभी नहीं । जबतक इसतरह जीवतत्त्वका जानना नहीं है तबतक व्यवहार दृष्टिमें होकर जुदे २ नव तत्त्वोंको मानता है । जीव पुद्गलकी बंधपर्यायरूप दृष्टिकर ये पदार्थ जुदे २ दीखते हैं और जब शुद्धनयकर जीव पुद्गलका निजस्वरूप जुदा २ देखाजायँ तब ये पुण्यपाप आदि सात तत्त्व कुछभी वस्तु नहीं दीखते निमित्त नैमित्तिक भावसे हुए थे सो निमित्तनैमित्तिक भाव जब मिट गया तब जीव पुद्गल जुदे २ होनेसे दूसरा कोई पदार्थ सिद्ध नहीं हो सकता । वस्तु तो द्रव्य है सो द्रव्यके निजभाव द्रव्यके ही साथ रहते हैं और नैमित्तिक भावका तो अभाव ही होता है इसलिये शुद्धनयकर जीवको जाननेसे ही सम्यग्दृष्टि प्राप्त होसकती है । सबको जुदा २ जानता है । जबतक आत्माको नहीं जाना तबतक पर्याय बुद्धि है ॥ यहांपर इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते है । **"चिरं"** इत्यादि । **अर्थ—**इस प्रकार नौ तत्त्वोंमें बहुत कालसे छुपी हुई यह आत्मज्योति शुद्धनयसे निकालकर प्रगट की है । जैसे वर्णों(रंग)के समूहमें सुवर्णके छुपे हुए एकाकारको निकालते हैं उसीतरह यह आत्मज्योति समझना । सो अब हे भव्यजीवो! इसको हमेशा अन्य द्रव्योंसे तथा उनसे हुए नैमित्तिक भावोंसे भिन्न एकरूप देखो । यह हरएक पर्यायमें एकरूप चिच्चमत्कारमात्र उद्योतमान है ।

नमेवेति समस्तमेव निरवद्यं। "चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे। अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥८॥"

अथैवमेकत्वेन द्योतमानस्यात्मनोऽधिगमोपायाः प्रमाणनयनिक्षेपाः ये ते खल्वभूतार्थास्तेष्वप्ययमेक एव भूतार्थः। प्रमाणं तावत्परोक्षं प्रत्यक्षं च तत्रोपात्तानुपात्तपरद्वारेण प्रवर्तमानं परोक्षं केवलात्मप्रतिनियतत्वेन वर्त्तमानं प्रत्यक्षं च तदुभयमपि प्रमातृप्रमाणप्रमेयभेदस्यानुभूयमानतायां भूतार्थमथ च व्युदस्तसमस्तभेदैकजीवस्वभावस्यानुभूयमानताया-

---

तार्था भण्यते तथाप्यभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले अभूतार्था असत्यार्था शुद्धात्मस्वरूप न भवंति। तस्मिन् परमसमाधिकाले नवपदार्थमध्ये शुद्धनिश्चयनयेनैक एव शुद्धात्मा प्रद्यो-

---

भावार्थ—यह आत्मा सब अवस्थाओंमें नानारूप दीखता था उसे शुद्धनयने एक चैतन्य चमत्कार मात्र दिखलाया है सो अब सदा एकाकार ही अनुभवन करो पर्यायबुद्धिका एकांत मत रखो, ऐसा श्रीगुरुओंका उपदेश है। और जैसे नव तत्त्वोंमें एक जीवका ही जानना भूतार्थ कहा उसी तरह एकपनेसे प्रकाशमान आत्माके अधिगमके उपाय जो प्रमाणनय निक्षेप हैं वे भी निश्चयसे अभूतार्थ हैं उनमें भी एक आत्मा ही भूतार्थ है, क्योंकि ज्ञेय और वचनके भेदसे वे प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं। उनमेंसे पहले प्रमाण दो प्रकार है परोक्ष और प्रत्यक्ष। जो इंद्रियोंसे भिडकर (संबंधित होकर) प्रवर्ते और जो विनाभिडे मनसे ही प्रवर्ते इस तरह दो परद्वारोंकर प्रवर्तमान हो वह परोक्ष है। तथा आत्मा ही से प्रति निश्चितपनेसे प्रवर्तमान हो वह प्रत्यक्ष है॥

भावार्थ—प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पांच प्रकारका है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। उनमेंसे मति और श्रुत ये दो ज्ञान परोक्ष हैं, अवधि मनःपर्यय ये दो विकल प्रत्यक्ष है। और केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। ये दोनों तरहके ही प्रमाण हैं। ये दो भेद प्रमाता प्रमाण प्रमेयके भेदको अनुभवते हुए तो भूतार्थ हैं सत्यार्थ हैं और जिसमें सब भेद गौण हो गये हैं ऐसे एक जीवके स्वभावका अनुभव किये हुए अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं। नय दो प्रकार है—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक। उनमेंसे जो द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तुको द्रव्यपनेकी मुख्यतासे अनुभव करावे वह द्रव्यार्थिक नय है और पर्यायकी मुख्यतासे अनुभव करावे वह पर्यायार्थिकनय है। ये दोनों ही नय द्रव्यपर्यायको भेदरूप पर्यायकर अनुभव कराते हुए तो भूतार्थ हैं सत्यार्थ हैं और द्रव्य पर्याय इन दोनोंको ही नहीं छूता हुआ ऐसे शुद्ध वस्तुमात्र जीवके स्वभाव चैतन्य मात्रका अनुभव करनेपर भेदरूप अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं॥ निक्षेप भी नाम स्थापना द्रव्य भावके भेद से चार तरहका है॥ जिसमें गुण तो हो नहीं और व्यवहारकेलिये उसकी संज्ञा करना वह नाम निक्षेप है, अन्य वस्तुमें अन्यकी प्रतिमारूप स्थापना करना कि यह वोही है वह स्थापना निक्षेप है, वर्तमानपर्यायसे अन्य अतीत अनागत पर्यायरूप वस्तुको

मभूतार्थं । नयस्तु द्रव्यार्थिकश्च पर्यायार्थिकश्च । तत्र द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतयानुभावयतीति द्रव्यार्थिकः, पर्यायमुख्यतयानुभावयतीति पर्यायार्थिकः, तदुभयमपि द्रव्यपर्याययोः पर्यायेणानुभूयमानतायां भूतार्थं । अथ च द्रव्यपर्यायानालीढशुद्धवस्तुमात्रजीवस्वभावस्यानुभूयमानतायामभूतार्थं । निक्षेपस्तु नाम स्थापना द्रव्यं भावश्च । तत्रातद्गुणे वस्तुनि संज्ञाकरणं नाम । सोयमित्यन्यत्र प्रतिनिधिव्यवस्थापनं स्थापना । वर्त्तमानतत्पर्यायादन्यद् द्रव्यं, वर्त्तमानतत्पर्यायो भावस्तच्चतुष्टयं स्वस्वलक्षणवैलक्षण्येनानुभूयमान-

---

तते प्रकाशयते प्रतीयते अनुभूयत इति । या चानुभूतिःप्रतीतिःशुद्धात्मोपलब्धिः सा चैव निश्चयसम्यक्त्वमिति सा चैवानुभूतिर्गुणगुणिनोर्निश्चयनयेनाभेदविवक्षायां शुद्धात्मस्वरूपमिति तात्पर्यं ।

वर्तमानपर्यायसे कहना वह द्रव्य निक्षेप है और वर्तमानपर्यायरूप वस्तुको वर्तमानमें कहना वह भावनिक्षेप है । ये चारों ही निक्षेप अपने २ लक्षण भेदसे जुदे २ विलक्षणरूप अनुभव किये गये भूतार्थ है सत्यार्थ हैं और भिन्न लक्षणसे रहित एक अपने चैतन्य लक्षणरूप जीवके स्वभावका अनुभव करनेपर चारों ही अभूतार्थ है असत्यार्थ हैं । इस तरह इन प्रमाण नय निक्षेपोंमें भूतार्थपनेसे एक जीव ही प्रकाशमान है । इन प्रमाणनयनिक्षेपोंका विस्तारसे व्याख्यान इनके प्रकरण ग्रंथोंमेंसे जानना । इन्हींसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तुकी सिद्धि है । ये साधकअवस्थामें सत्यार्थ ही हैं क्योंकि ये ज्ञानके ही विशेष हैं इनके विना वस्तुको यथाकथंचित् (मनमाना) साधा जाय तब विपर्यय हो जाता है । अवस्थाके व्यवहारके अभावकी तीन रीतियां हैं । एक तो यथार्थवस्तुको जान ज्ञान श्रद्धानकी सिद्धि करना । ज्ञान श्रद्धान सिद्ध होनेके वाद प्रमाणादिकसे श्रद्धान करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है । दूसरी अवस्था विशेषज्ञान और राग द्वेष मोह कर्मका सर्वथा अभावरूप यथाख्यात चारित्रका होना है इसीसे केवलज्ञानकी प्राप्ति है, इसके होनेके वाद प्रमाणादिकका आलंबन नहीं रहता । उसके वाद तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है वहां पर भी कुछ आलंबन नहीं है इसलिये सिद्ध अवस्थामें भी प्रमाणनयनिक्षेपका अभाव ही है ॥ इसी अर्थका कलशरूप "उदयति" इत्यादि श्लोक कहते हैं । **अर्थ**—आचार्य शुद्ध नयका अनुभव कर कहते हैं कि इन सब भेदोंको गौण करनेवाला जो शुद्ध नयका विषयभूत चैतन्यचमत्कारमात्र तेजःपुंज आत्मा उसको अनुभवमें आनेपर नयोंकी लक्ष्मी उदयको नहीं प्राप्त होती । प्रमाण अस्तको प्राप्त हो जाता है और निक्षेपोंका समूह भी कहां चला जाता है ये हम नहीं जानते । इससे अधिक क्या कहैं द्वैत ही नहीं प्रतिभासित होता ॥ **भावार्थ**—भेदको अत्यंत गौणकर कहा है । शुद्ध अनुभव होनेपर प्रमाण नयादिक भेदकी तो वात क्या है द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता । इस विषयमें विज्ञानाद्वैतवादी तथा वेदांती कहते हैं कि परमार्थमें (असलमें) तो अद्वैतका ही अनुभव हुआ यही हमारा मत है तुमने विशेष

तायां भूतार्थ । अथ च निर्विलक्षणस्वलक्षणैकजीवस्वभावस्यानुभूयमानतायामभूतार्थ अथै-वममीषु प्रमाणनयनिक्षेपेषु भूतार्थत्वेनैको जीव एव प्रद्योतते ।

"उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रं । किम-परमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥ ९ ॥" "आत्मस्व-भावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यंतविमुक्तमेकम् । विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्ध-नयोऽभ्युदेति ॥ १० ॥" ॥ १३ ॥

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १४ ॥

किं च,ये च प्रमाणनयनिक्षेपाः परमादितत्त्वविचारकाले सहकारिकारणभूतास्तेपि सविकल्पावस्थाया-मेव भूतार्थाः । परमसमाधिकाले पुनरभूतार्थास्तेषु मध्ये भूतार्थेन शुद्धजीव एक एव प्रतीयत ॥१३॥ इति नवपदार्थाधिकारगाथा गता । ततो नवाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावदष्टाविंशतिगाथा-

---

क्या कहा ? उसका उत्तर कहते हैं । तुमारे मतमें सर्वथा अद्वैत मानते हैं, यदि सर्वथा माना जाय तो बाह्यवस्तुका अभाव ही होजाय सो ऐसा अभाव प्रत्यक्ष विरुद्ध है । हमारे मतमें नयविवक्षा है वह बाह्यवस्तुका लोप नहीं करती । शुद्ध अनुभवसे वि-कल्प मिट जाता है तब आत्मा परमानंदको प्राप्त होजाता है इसलिये अनुभव करा-नेको ऐसा कहा गया है । यदि बाह्यवस्तुका लोप किया जावे तो आत्माका भी लोप होजाय तब शून्यवादका प्रसंग आसकता है । इसलिये तुमारे कहनेसे वस्तुस्वरूप-की सिद्धि नहीं होसकती और वस्तुस्वरूपकी यथार्थ श्रद्धाके विना जो शुद्ध अनुभव भी किया जाय वह भी मिथ्यारूप है । ऐसा होनेसे शून्यका प्रसंग आता है तब आ-काशके फूलके समान अनुभव होजायगा ॥ आगे जो शुद्धनयका उदय होता है उसकी सूचनाका श्लोक कहते हैं । "आत्मस्वभावं" इत्यादि । **अर्थ—**शुद्धनय आत्माके स्वभावको प्रगट करता हुआ उदयरूप होता है । कैसा प्रगट करता है ? परद्रव्य, परद्रव्यके भाव तथा परद्रव्यके निमित्तसे हुए अपने विभाव इस तरहके परभावोंसे जुदा प्रगट करता है । फिर समस्तपनेसे पूर्ण सब लोकालोकके जाननेवाले स्वभावको प्रगट करता है, क्योंकि ज्ञानमें भेद कर्मसंयोगसे है शुद्धनयमें कर्म गौण हैं । तथा आदि अंतकर रहित (कुछ आदि लेकर किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ और न कभी किसीसे नाश है) ऐसे पारिणामिकभावको प्रगट करता है । एक सब भेदभावोंसे (द्वैत-भावोंसे)रहित एकाकार तथा जिसमें समस्त संकल्पविकल्पके समूह विलय (नाश) होगये हैं ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है । द्रव्यकर्म भाव कर्म नोकर्म आदि पुद्गल-द्रव्योंमें अपनी कल्पना करना उसे **संकल्प** कहते हैं और ज्ञेयोंके भेदसे ज्ञानमें भेद मालूम होना उसे **विकल्प** कहते हैं ॥ १३ ॥ इसतरहकी शुद्धनयको गाथासूत्रसे

यः पश्यति आत्मानं अबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतं ।
अविशेषमसंयुक्तं तं शुद्धनयं विजानीहि ॥ १४ ॥

या खल्वबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूतिः स शुद्धनयःसात्वनुभूतिरात्मैवेत्यात्मकै एव प्रद्योतते । कथं यथोदितस्यात्मनोनुभूतिरिति चेद्बद्धस्पृष्टत्वादीनामभूतार्थत्वात्तथाहि—यथा खलु विसिनीपत्रस्य सलिलनिमग्नस्य सलिलस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां सलिलस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकांततः सलिलास्पृश्यं विसिनीपत्रस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं । तथात्मनोनादिबद्धस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां बद्धस्पृ-

---

पर्यंतं जीवाधिकार' कथ्यते । तथाहि—सहजानंदैकस्वभावशुद्धात्मभावनामुख्यतया **जो पस्सदि अप्पाण**मित्यादि सूत्रपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथात्रयं । तदनंतरं दृष्टांतदार्ष्टांतद्वारेण भेदाभेदरत्नत्रयभावनामुख्यतया **दंसणणाणचरित्ताणि** इत्यादि द्वितीयस्थले गाथात्रयं । ततः परं जीवस्याप्रतिबुद्धत्वकथनेन प्रथमगाथा, बंधमोक्षयोग्यपरिणामकथनेन द्वितीया, जीवो निश्चयेन रागादिपरिणामाणामेव कर्त्तेति तृतीया, चेत्येव **कम्मे णोकम्मा हि य** इत्यादि तृतीयस्थले परस्परसंबंधनिरपेक्षस्वतंत्रगाथात्रयं । तदनंतरमिंधनाग्निदृष्टांतेनाप्रतिबुद्धलक्षणकथनार्थं

कहते हैं;—[**यः**] जो नय [**आत्मानं**] आत्माको [**अबद्धस्पष्टं**] बंधरहित परके स्पर्शरहित [**अनन्यं**] अन्यपनेरहित [**नियतं**] चलाचलतारहित [**अविशेषं**] विशेषरहित [**असंयुक्तं**] अन्यके संयोगरहित—ऐसे पांच भावरूप [**पश्यति**] अवलोकन करता (देखता) है [**तं**] उसे हे शिष्य तू [**शुद्धनयं**] शुद्धनय [**विजानीहि**] जान । **टीका**—जो निश्चयसे अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त—ऐसा आत्माका अनुभव करना वही शुद्धनय है । यह अनुभूति निश्चयसे आत्मा ही है । ऐसा आत्मा ही एक प्रकाशमान है ॥ **भावार्थ**—चाहें शुद्धनय कहो या आत्माकी अनुभूति कहो या आत्मा कहो एक ही अभिप्राय है जुदा नहीं है । यहां शिष्य पूछता है कि जैसा कहा वैसे आत्माकी अनुभूति इन पांच भावोंमे कैसी है ? उसका समाधान । जो बद्धस्पृष्टत्व आदि पांच भाव हैं उनमें अभूतार्थपना है—असत्यार्थपना है इसलिये शुद्धनय ही आत्माकी अनुभूति है । यही बात दृष्टांतसे प्रगट करते हैं । जैसे कमलिनीका पत्र जलमें डूबा हुआ है उसका जलके स्पर्शनेरूप अवस्थाकर अनुभव किये जानेपर जलका स्पर्शनपना भूतार्थ है—सत्यार्थ है तौ भी एक अपेक्षा वास्तवमे जलके स्पर्शन योग्य नहीं ऐसा कमलिनीका पत्र स्वभावको लेकर अनुभव किया जानेपर जलका स्पर्शनपना अभूतार्थ है—असत्यार्थ है । उसी तरह आत्माके अनादि पुद्गलकर्मसे बद्धस्पर्शपनेकी अवस्थाकर अनुभव किये जानेपर बद्धस्पृष्टपना भूतार्थ है—सत्यार्थ है । वास्तवमे पुद्गलके स्पर्शने योग्य नहीं ऐसे आत्मस्वभावको लेकर अनुभव किये जानेपर बद्धस्पृष्टपना असत्यार्थ है ॥

ष्टत्वं भूतार्थमप्येकांततः पुद्गलास्पृश्यमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं । यथा च मृत्तिकायाः कस्ककरीरकर्करीकपालादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोप्यस्खलंतमेकं मृत्तिकास्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनो नारकादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोप्यस्खलंतमेकमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं । तथा च वारिधेर्वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्य-

---

अहमेदमित्यादि चतुर्थस्थले सूत्रत्रय । अतःपरं शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिलक्षणाभेदरत्नत्रयभावनाविषये योऽसावप्रतिबुद्धस्तत्प्रतिबोधनार्थं **अण्णाणमोहिदमदी** इत्यादि पंचमस्थले सूत्रत्रय । अथ निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धात्मतत्त्वमजानन् देह एवात्मेति योऽसौ पूर्वपक्षं करोति तस्य स्वरूपकथनार्थं **जदि जीवो** इत्यादि पूर्वपक्षरूपेण गाथैका । तदनंतरं व्यवहारेण देहस्तवन निश्चयेन शुद्धात्मस्तवनमिति नयद्वयविभागप्रतिपादनमुख्यत्वेन **ववहारेण**

और जैसे मृत्तिका (मट्टी) के बनेहुए ढकना कपालआदि पर्यायभेदोंकर अनुभव करनेसे अन्यपना सत्यार्थ है तौ भी सब पर्यायोंके भेदरूप नहीं होते हुए एक मट्टीके स्वभावको अनुभवन करनेसे पर्यायभेद अभूतार्थ हैं—असत्यार्थ है । उसी तरह आत्माको नारकआदि पर्यायभेदोंकर अनुभवन करनेसे पर्यायोंका अन्यपना सत्यार्थ है तौ भी सब पर्यायभेदोंमें अचल एक चैतन्याकार आत्मस्वभावको लेके अनुभव करनेसे अन्यपना अभूतार्थ है असत्यार्थ है । जैसे समुद्रको वृद्धिहानिअवस्थाकर अनुभव करनेसे अनियतपना (अनिश्चितपना) भूतार्थ है तौ भी नित्य ठहरे हुए समुद्र स्वभावको अनुभवन करनेसे अनियतपना अभूतार्थ है असत्यार्थ है । उसीतरह आत्माका वृद्धिहानिपर्यायभेदोंकर अनुभव करनेसे अनियतपना भूतार्थ है सत्यार्थ है तौ भी नित्य ठहरे हुए निश्चल आत्माके स्वभावका अनुभव करनेसे अनियतपना अभूतार्थ है असत्यार्थ है ॥ जैसे सुवर्णका चीकना भारी पीला आदि गुणरूप भेदोंसे अनुभव करनेपर विशेषपना सत्यार्थ है तौ भी जिसमें सब विशेष विलय होगये हैं ऐसे सुवर्णस्वभावको लेके अनुभव करनेसे विशेषपना अभूतार्थ है असत्यार्थ है । उसी तरह आत्माका ज्ञान दर्शन आदि गुणरूपभेदोंसे अनुभव करनेपर विशेषपना भूतार्थ है—सत्यार्थ है तौ भी जिसमें सब विशेष विलय होगये हैं ऐसे चैतन्यमात्र आत्मस्वभावको लेकर अनुभव करनेसे विशेषपना अभूतार्थ है असत्यार्थ है ॥ जैसे अग्निके निमित्तसे उत्पन्न उष्णपनेसे मिलेहुए जलका तप्तपनेरूप अवस्थाकर अनुभव करनेसे जलमें उष्णपनारूप संयुक्तपना भूतार्थ है—सत्यार्थ है तौ भी वास्तवमें शीतलस्वभावको लेकर जलका अनुभव करनेसे उष्णसंयोग अभूतार्थ है असत्यार्थ है । उसीतरह कर्मनिमित्तवाली मोहसंयुक्तपनेरूप अवस्थाकर आत्माका अनुभव करनेसे संयुक्तपना भूतार्थ है सत्यार्थ है तौ भी वास्तवमें आत्मबोधका बीजरूप स्वभाव ऐसे चैतन्यभावको लेकर

व्यवस्थितं वारिधिस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनो वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्यव्यवस्थितमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं । यथा च कांचनस्य स्निग्धपीतगुरुत्वादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषकांचनस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनो ज्ञानदर्शनादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषमात्मस्वभावमु-

---

तु भासदि इत्यादि परिहारसूत्रचतुष्टयं । अथ परमोपेक्षालक्षणशुद्धात्मसंवित्तिरूपनिश्चयस्तुतिमुख्यत्वेन **जो इंदिए जिणित्ता** इत्यादि सूत्रत्रयं । एवं गाथाष्टकसमुदायेन षष्ठस्थलं । ततःपरं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानमेव विषयकषायादिपरद्रव्याणां प्रत्याख्यानमिति कथनेन **णाणं सव्वे भावा** इत्यादि सप्तमस्थले गाथाचतुष्टयं । तदनंतरमनंतज्ञानादिलक्षणशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकस्वसंवेदनमेव भावितात्मनः स्वरूपमित्युपसंहारमुख्यतया अ-

---

अनुभव करनेसे मोहसंयुक्तपना अभूतार्थ है असत्यार्थ है ॥ **भावार्थ**—आत्मा पांच तरहसे अनेकरूप दीखता है । पहले तो अनादिकालसे कर्मपुद्गलके संबंधसे बंधाहुआ कर्मपुद्गलसे स्पर्शरूप दीखता है तथा कर्मके निमित्तसे हुए नरनारकादिपर्यायोंमें भिन्न २ स्वरूप दीखता है । शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद (अंश) घटते भी हैं बढते भी हैं, यह वस्तुका स्वभाव है । इसलिये नित्यनियत एकरूप नहीं दीखता । दर्शन ज्ञान आदि अनेकगुणोंसे विशेषरूप दीखता है । कर्मके निमित्तसे उत्पन्न हुए मोह राग द्वेषादिक परिणामोंकर सहित सुखदुःखरूप दीखता है । यह सब अशुद्ध द्रव्यार्थिकरूप व्यवहारनयका विषय है । उस दृष्टि (अपेक्षा) से देखा जाय तो सब ही सत्यार्थ है परंतु आत्माका एकस्वभाव नयसे ग्रहण नहीं होता और एकस्वभावके विना जाने यथार्थ आत्माको कैसे जानसके, इसकारण दूसरे नयको—इसके प्रतिपक्षी शुद्ध द्रव्यार्थिकको ग्रहणकर एक असाधारणज्ञायक मात्र आत्माका भाव लेकर सब परद्रव्योंसे भिन्न, सब पर्यायोंमें एकाकार, हानिवृद्धिसे रहित विशेषोंसे रहित नैमित्तिक भावोंसे रहित शुद्धनयकी दृष्टिसे देखा जाय तब सभी (पांच) भावोंकर अनेक प्रकारपना है वह अभूतार्थ है—असत्यार्थ है । यहां ऐसा जानना कि वस्तुका स्वरूप जो अनंतधर्मात्मक है वह स्याद्वादसे यथार्थ सिद्ध होता है । आत्मा भी अनंतधर्मा है उसके कितने ही धर्म तो स्वाभाविक हैं और कितनेही पुद्गलके संयोगसे होते हैं । जो कर्मके संयोगसे होते हैं उनसे तो आत्माके संसारकी प्रवृत्ति होती है उससंबंधी सुखदुःखादिक होते हैं उनको भोगता है । यह इस आत्माके अनादि अज्ञानसे पर्यायबुद्धि है, अनादि अनंत एक आत्माका ज्ञान नहीं है । उसको बतलानेवाला सर्वज्ञका आगम है । उसमें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर यह बतलाया है कि आत्माका एक असाधारण चैतन्यभाव है वह अखंड है नित्य है अनादिनिधन है । इसीके जाननेसे पर्यायबुद्धिका पक्षपात मिट

पेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं । यथा वापां सप्तार्चिःप्रत्ययोष्णसमाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थमप्येकांततः शीतस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं तथात्मनः कर्मप्रत्ययमोहसमाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थमप्येकांततः स्वयं बोधबीजस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं ।

इमेक्को खलु सुद्धो इत्यादि सूत्रमेकं । एवं दंडकान्विहायाष्टाविंशतिसूत्रैः सप्तभिरंतरस्थलैर्जीवाधिकारसमुदायपातनिका । तद्यथा-अथ प्रथमगाथायामबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतमविशेषसयुक्तं संसारावस्थायामपि शुद्धनयेन बिसिनीपत्रमृत्तिकावार्द्धिसुवर्णोष्णरहितजलवत्पंचविशेषणविशिष्टं शुद्धात्मानं कथयति,-**जो पस्सदि** यः कर्त्ता पश्यति जानाति । कं। **अप्पाणं** शुद्धात्मानं । कथभूतं । **अबद्ध-**

जाता है । परद्रव्योंसे तथा उनके भावोंसे अथवा उनके निमित्तसे हुए अपने विभावोंसे अपने आत्माको जान इसका अनुभव करे तब परद्रव्यके भावोंस्वरूप नहीं परिणमता । उस समय कर्म नहीं बंधते, संसारसे निवृत्ति होजाती है । इसलिये पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनयको गौणकर अभूतार्थ (असत्यार्थ) कहकर शुद्धनिश्चयनयको सत्यार्थ कह आलंबन दिया है । वस्तुस्वरूपकी प्राप्ति होनेके बाद उसका भी आलंबन (सहायता) नहीं रहता । इस कथनसे ऐसा नहीं समझलेना कि शुद्धनयको जो सत्यार्थ कहा है इसकारण वह अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है । ऐसा माननेसे वेदांतमतवाले संसारको सर्वथा अवस्तु मानते हैं उनकी सर्वथा एकांत पक्ष आजायगी तब मिथ्यात्व आजायगा उस समय इस शुद्धनयका भी आलंबन उन वेदांतियोंकी तरह मिथ्यादृष्टि होजायगा । इसलिये सभी नयोंको कथंचित्‌रीतिसे सत्यार्थपनेका श्रद्धान करनेपर ही सम्यग्दृष्टि होता है । इसतरह स्याद्वादको समझ जिनमतका सेवन करना, मुख्य गौण कथन सुनके सर्वथा एकांतपक्ष न पकड़ लेना । इसीप्रकार इस गाथासूत्रका व्याख्यान टीकाकारने किया है कि आत्मा व्यवहारनयकी दृष्टिमें जो बद्धस्पृष्ट आदिरूप दीखता है वह इस दृष्टिमे तो सत्यार्थ ही है परंतु शुद्धनयकी दृष्टिमें बद्धस्पृष्ट आदिरूप असत्यार्थ है । इस कथनमें स्याद्वाद बतलाया है ऐसा जानना ॥ यहां ऐसा जानना कि जो ये नय हैं वे श्रुतज्ञानप्रमाणके अंश हैं । वह श्रुतज्ञान वस्तुको परोक्ष बतलाता है और ये नय भी परोक्ष ही बतलातीं हैं । बद्ध स्पृष्ट आदि पांच भावोंसे रहित आत्मा शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका विषय चैतन्यशक्तिमात्र है वह शक्ति तो परोक्ष ही है और उसकी व्यक्तियां कर्मसंयोगसे मति श्रुत आदि ज्ञानरूप हैं वे कथंचित् अनुभव गोचर हैं उनको प्रत्यक्षरूप भी कहते हैं । तथा संपूर्णज्ञान जो केवलज्ञान वह छद्मस्थके (अल्पज्ञानीके) प्रत्यक्ष नहीं है तौ भी यह शुद्धनय आत्माका केवलज्ञानरूप परोक्ष बतलाती है । जबतक इसनयको नहीं जानें तबतक आत्माके पूर्णरूपका ज्ञान श्रद्धान नहीं होता । इसलिये श्रीगुरुने इस शुद्धनयको प्रगटकर दिखलाया है कि बद्धस्पृष्ट आदि पांच भावोंसे रहित

"न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोमी स्फुटमुपरितरंतोप्येत्य यत्र प्रतिष्ठां । अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंतात् जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावं ॥११॥" भूतं भांतमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बंधं सुधीर्यद्यंतः किल कोप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात् । आत्मात्मानुभवै-

---

पुट्ठं द्रव्यकर्मनोकर्मभ्यामसंस्पृष्टं जले विसिनीपत्रवत् । अणण्णयं अनन्यकं नरनारकादिपर्यायेषु द्रव्यरूपेण तमेव स्थासकोशकुशूलघटादिपर्यायेषु मृत्तिकाद्रव्यवत् णियदं नियतमवस्थितं निस्त-रंगोत्तरंगावस्थासु समुद्रवत् अविसेसं अविशेषमभिन्नं ज्ञानदर्शनादिभेदरहितं गुरुत्वस्निग्धत्व-

---

पूर्ण ज्ञानघन स्वभाव आत्माको जान श्रद्धान करना, पर्यायबुद्धि न रहना यह उपदेश है । यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दीखता नहीं है और विना देखे श्रद्धान करना झूठा श्रद्धान है । उसको उत्तर देते हैं—देखे हुएका ही श्रद्धान करना यह तो नास्तिकमत है । जिनमतमे प्रत्यक्ष परोक्ष दोनोंही प्रमाण माने गये हैं सो आगमप्रमाण परोक्ष है उसका भेद शुद्धनय है । इस शुद्धनयकी दृष्टि-कर शुद्ध आत्माका श्रद्धान करना, केवल व्यवहार-प्रत्यक्षका ही एकांत न करलेना । यहां इस शुद्धनयको मुख्यकर कलशरूप काव्य **"न हि विदधति"** इत्यादि कहते हैं । उसका **अर्थ**—टीकाकार उपदेश करते हैं कि हे जगतके प्राणियो ! तुम उस स-म्यक्त्व स्वभावका अनुभव करो जिसमे ये बद्धस्पृष्ट आदि भाव प्रगटपनेसे इस स्वभा-वके ऊपर तरते है तौ भी प्रतिष्ठा नहीं पाते । क्योंकि द्रव्यस्वभाव नित्य है एकरूप है और ये भाव अनित्य हैं अनेकरूप है । पर्याय है वह द्रव्य स्वभावमें प्रवेश नहीं करती ऊपर ही रहती है । यह शुद्धस्वभाव सब अवस्थाओंमें प्रकाशमान है । ऐसे स्व-भावको मोहरहित होके अनुभव करो क्योंकि मोहकर्मके उदयसे उत्पन्न मिथ्यात्वरूप अज्ञान जबतक रहता है तबतक यह अनुभव यथार्थ नहीं होता । **भावार्थ**—शुद्ध-नयका विषयरूप आत्माका अनुभव करो यह उपदेश है ॥ आगे इसी अर्थका कलश-रूप काव्य **"भूतं"** इत्यादि कहते है कि ऐसा अनुभव करनेपर आत्मदेव प्रगट प्रतिभा-समान होता है ॥ **अर्थ**—जो कोई सुबुद्धि सम्यग्दृष्टि भूत (पहले हुआ), भांत (वर्त-मान) और अभूत (आगामी होनेवाला) ऐसे तीनों कालके कर्मोंके बंधको अपने आत्मासे तत्काल (शीघ्र) जुदा करके तथा उस कर्मके उदयके निमित्तसे हुए मिथ्या-त्वरूप अज्ञानको अपने बल (पुरुषार्थ) से अलगकर अंतरंगमें अभ्यास करै देखै तो यह आत्मा, अपने अनुभवकर ही जानने योग्य जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा व्यक्त अनुभव गोचर निश्चल शाश्वत (नित्य) कर्म कलंक कर्दम (कीचड़) से रहित ऐसा आप स्तुति करनेयोग्य देव विराजमान होरहा है ॥ **भावार्थ**—शुद्ध नयकी दृष्टिकर देखा जाय तो सब कर्मोंसे रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अंतरंगमें आप विराज रहा है । यह प्राणी पर्यायबुद्धि बहिरात्मा इसको बाहर ढूंढता है सो बड़ा अज्ञान

कगम्यमहिमा व्यक्तोयमास्ते ध्रुवं नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥" "आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा । आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंपमेकोस्ति नित्यमवबोधघनः समंतात् ॥ १३ ॥" ॥ १४ ॥

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं ।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥ १५ ॥

यः पश्यति आत्मानं अबद्धस्पृष्टमनन्यमविशेषम् ।
अपदेशसूत्रमध्यं पश्यति जिनशासनं सर्वम् ॥ १५ ॥

येयमबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोनुभूतिः सा खल्वखिलस्य जिनशासनस्यानुभूतिः श्रुतज्ञानस्य स्वयमात्मत्वात्ततो ज्ञानानुभूतिरेवात्मानुभूतिः किंतु तदानीं सामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यामनुभूयमानमपि ज्ञानमबुद्धलुब्धानां न स्वदते । तथाहि—यथा विचित्रव्यंजनसंयोगोपजातसामान्यविशेषतिरोभावाविर्भावाभ्याम-

---

पीतत्वादिधर्मेषु सुवर्णवत् **असंजुत्तं** असंयुक्तमसवद्ध रागादिविकल्परूपभावकर्मरहितं निश्चयनयेनोष्णरहितजलवदिति **तं सुद्धणयं वियाणीहि** तं पुरुषमेवाभेदनयेन शुद्धनयविषयत्वाच्छुद्धात्मसाधकत्वाच्छुद्धाभिप्रायपरिणतत्वाच्च शुद्धं विजानीहीति भावार्थः॥१४॥अथ द्वितीयगाथायां या पूर्वं भणिता शुद्धात्मानुभूतिः सा चैव निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानानुभूतिरिति प्रतिपादयति;-**जो पस्सदि** यः कर्ता पश्यति जानात्यनुभवति। कं। **अप्पाणं** शुद्धात्मानं। किंविशिष्टं। **अबद्धपुट्ठं** अबद्धस्पृष्टं। अत्र बंधशब्देन संश्लेषरूपबंधो ग्राह्यः । स्पृष्टशब्देन तु संयोगमात्रमिति । द्रव्यकर्मनोकर्मभ्यामसंस्पृष्टं जले बिसिनीपत्रवत् । **अणण्णं** अनन्यं मृत्तिकाद्रव्यवत् । **अविसेसं** अविशेषमभिन्नं सुवर्णवत् नियतमवस्थितं समुद्रवत् असंयुक्तं परद्रव्यसंयोगरहितं निश्चयनयेनोष्णरहितजलवदिति । नियतासंयुक्तविशेषणद्वयं सूत्रे नास्ति । कथं लभ्यत इति चेत् सामर्थ्यात् । तदपि कथं, श्रुतप्रकृतसामर्थ्ययुक्तो हि भवति सूत्रार्थः इति वचनात् ।

है ॥ आगे शुद्ध नयका विषयभूत आत्माकी अनुभूति है वही ज्ञानकी अनुभूति है ऐसा आगेकी गाथाकी सूचनाके अर्थरूप काव्य कहते हैं "आत्मानु" इत्यादि । **अर्थ**—इसप्रकार जो पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आत्माकी अनुभूति (अनुभव) है वही इस ज्ञानकी अनुभूति है ऐसा अच्छीतरह जानकर तथा आत्मामें आत्माको निश्चल स्थापनकर सदा सवतरफ एक ज्ञानघन आत्मा है-ऐसा देखना ॥ **भावार्थ**—पहले सम्यग्दर्शनको प्रधानकर कहा था अब ज्ञानको मुख्यकर कहते हैं कि यह शुद्धनयके विषयस्वरूप आत्माकी अनुभूति है वही सम्यग्ज्ञान है ॥ १४ ॥

इसी अर्थरूप गाथा कहते हैं;-[**यः**] जो पुरुष [**आत्मानं**] आत्माको [**अबद्धस्पृष्टं**] अबद्धस्पृष्ट [**अनन्यं**] अनन्य [**अविशेषं**] अविशेष तथा उपलक्षणसे नियत असंयुक्त इन स्वरूप [**पश्यति**] देखता है वह [**सर्वं**

नुभूयमानं लवणं लोकानामबुद्धानां व्यंजनलुब्धानां स्वदते न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजातसामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यां । अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं लवणं तदेव सामान्याविर्भावेनापि तथा विचित्रज्ञेयाकारकरंबितत्वोपजातसामान्यविशेषतिरोभावाविर्भावाभ्यामनुभूयमानं ज्ञानमबुद्धानां ज्ञेयलुब्धानां स्वदते न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजात-

---

स पुरुषः **पस्सदि** पश्यति जानाति । किं तत् । **जिणसासणं** जिनशासनं अर्थसमयरूपं जिनमतं **सव्वं** सर्व द्वादशांगपरिपूर्णं । कथंभूतं । **अपदेससुत्तमज्झं** अपदेशसूत्रमध्यं अपदिश्यतेऽर्थो येन स भवत्यपदेशशब्दो द्रव्यश्रुतमिति यावत् सूत्रपरिच्छित्तिरूपं भावश्रुतं ज्ञानसमय इति तेन शब्दसमयेन वाच्यं ज्ञानसमयेन परिच्छेद्यमपदेशसूत्रमध्य भण्यते इति । अयमत्र भावः । यथा लवणखिल्य एकरसोपि फलशाकपत्रशाकादिपरद्रव्यसंयोगेन भिन्नभिन्नास्वादः प्रतिभात्य-

---

जिनशासनं] सब जिनशासनको [**पश्यति**] देखता है । वह जिनशासन [**अपदेशसांतमध्यं**] बाह्यद्रव्यश्रुत और अभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है ॥

टीका—जो अबद्धस्पृष्ट अनन्य नियत अविशेष असंयुक्त-ऐसे पांच भावोंस्वरूप आत्माकी अनुभूति वही निश्चयसे सब जिनशासनकी अनुभूति है । क्योंकि श्रुतज्ञान आप आत्मा ही है इसलिये यह आत्माकी अनुभूति वही ज्ञानकी अनुभूति है । यहांपर यह विशेषता है कि सामान्यज्ञानका तो प्रगटपना और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञानका आच्छादन उससे ज्ञानमात्र ही जब अनुभव किया जाय तब ज्ञान प्रगट अनुभवमें आता है तौ भी जो अज्ञानी हैं ज्ञेयों (पदार्थों)मे आसक्त हैं उनको स्वादरूप नहीं होता । यही प्रगट दृष्टांतसे दिखलाते है—जैसे अनेकतरहके शाक आदि भोजनोंके संबंधसे उत्पन्न सामान्यलवणका तिरोभाव तथा विशेष लवणका आविर्भाव (प्रगटपना) उससे अनुभवमे आनेवाला जो सामान्यलवणका तिरोभावरूप लोंण तथा लोंणका विशेषभावरूप व्यंजनोंका ही स्वाद अज्ञानी (व्यंजनोंके लोभी) मनुष्योंको आता है। परंतु अन्यके संबंधरहितपनेसे उत्पन्न हुआ जिसमे सामान्यका आविर्भाव तथा विशेषका तिरोभाव ऐसे भावकर एकाकार अभेदरूप लोंनका स्वाद नहीं आता। और जब परमार्थसे देखा जाय तब जो विशेषके आविर्भावसे अनुभवमें आया क्षार रसरूप लोंन है वही सामान्यके आविर्भावकर अनुभवमें आयाहुआ क्षार रसरूप लोंन है ॥ उसीतरह अनेकाकार ज्ञेयोंके आकारोंसे मिश्ररूपपनेसे जिसमे सामान्यका तिरोभाव और विशेषका आविर्भाव ऐसे भावकर अनुभवमें आया जो ज्ञान वह अज्ञानियों (ज्ञेयोंमें आसक्तों) को विशेषभावरूप भेदरूप अनेकाकाररूप स्वादमें आता है परंतु अन्यज्ञेयाकारके संयोगकर रहितपनेसे उत्पन्न जिसमें सामान्यका आविर्भाव और विशेषका तिरोभाव ऐसा एकाकार अभेदरूप ज्ञानमात्र अनुभवमे स्वादरूप नहीं आता है । और परमार्थसे विचाराजाय तब जो विशेषके आविर्भावकर

सामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यां । अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं ज्ञानं तदेव सामान्याविर्भावेनाप्यलुब्धबुद्धानां यथा सैंधवखिल्योन्यद्रव्यसंयोगाव्यच्छेदेन केवल एवानुभूयमानः सर्वतोप्येकलवणरसत्वाल्लवणत्वेन स्वदते तथात्मापि परद्रव्यसंयोगव्यवच्छेदेन केवल एवानुभूयमानः सर्वतोप्येकविज्ञानघनत्वात् ज्ञानत्वेन स्वदते।

ज्ञानिना। ज्ञानिना पुनरेकरस एव तथात्माप्यखंडज्ञानस्वभावोऽपि स्पर्शरसगंधशब्दनीलपीतादिवर्णज्ञेयपदार्थविषयभेदेनाज्ञानिना निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टाना खंडखंडज्ञानरूपः प्रतिभाति ज्ञानिना पुनरखंडकेवलज्ञानस्वरूपमेव इति हेतोरज्ञानरूपे शुद्धात्मनि ज्ञाते सति सर्वं जिनशासनं ज्ञातं भवतीति मत्वा समस्तमिथ्यात्वरागादिपरिहारेण तत्रैव शुद्धात्मनि भावना कर्त्तव्येति। किं च मिथ्यात्वशब्देन दर्शनमोहो रागादिशब्देन चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यं। अथ तृतीयगाथाया सम्यग्ज्ञानादिकं सर्वशुद्धात्मभावनामध्ये लभ्यत इति निरूपयति।

ज्ञान अनुभवमे आता है वही सामान्यके आविर्भावकर ज्ञानियोंके (जो ज्ञेयमे आसक्त नहीं हैं उनके) अनुभवमे आता है। जैसे लोंनकी डली (कंकडी) अन्यद्रव्यके संयोगके अभावकर केवल (एक लोंनमात्र) अनुभव किये जानेपर एक लोंन रस क्षारपनेकर स्वादमें आता है उसी तरह आत्मा भी पर द्रव्यके संयोगसे जुदे केवल एक भावकर अनुभव करनेपर सब तरफसे एक विज्ञानघन स्वभावसे ज्ञानपनेकर स्वादमें आता है॥ **भावार्थ**—यहां आत्माकी अनुभूति ही ज्ञानकी अनुभूति कही गई है अज्ञानीजन इंद्रियज्ञानके विषयोंमें ही लुब्ध हो रहे हैं सो उनसे अनेकाकार हुए ज्ञानको ही ज्ञेयमात्र आस्वादते हैं परंतु ज्ञेयोंसे भिन्न ज्ञानमात्रका आस्वाद नहीं लेते। और जो ज्ञानी हैं ज्ञेयोंमें आसक्त नहीं हैं वे एकाकार ज्ञेयोंसे जुदा ज्ञानका ही आस्वाद लेते हैं। जैसे व्यंजनों (भोजनों)से जुदी लोंनकी डलीका क्षारमात्र स्वाद आवे उस तरह आस्वाद लेते हैं। क्योंकि ज्ञान है वही आत्मा है और आत्मा है वही ज्ञान है। इसतरह गुणीगुणकी अभेद दृष्टिमें आया जो सब परद्रव्योंसे जुदा अपने पर्यायोंमें एकरूप निश्चल अपने गुणोंमें एकरूप, परनिमित्तसे उत्पन्नहुए भावोंसे भिन्न अपने स्वरूपका अनुभवन है वही ज्ञानका अनुभव है। यही अनुभव भावश्रुतज्ञानरूप जिनशासनका अनुभव है। शुद्धनयसे इसमें कुछ भेद नहीं है॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते है **"अखंडितं"** इत्यादि। **अर्थ**—आचार्य कहते हैं कि वह उत्कृष्ट तेज प्रकाशरूप हमे होवे जो सदाकाल चैतन्यके परिणमनकर भराहुआ है। जैसे लोंनकी डली एक क्षाररसकी लीलाको आलंवन करती है उसीतरह एक ज्ञानरसस्वरूपको आलंवन करता है। वह तेज अखंडित है जिसमें ज्ञेयोंके आकार खंडित नहीं होते. अनाकुल है जिसमे कर्मके निमित्तसे हुए रागादिकोंसे उत्पन्न आकुलता नहीं है, अविनाशीपनेसे अंतरंग तो चैतन्यभावकर दैदीप्यमान अनुभवमे आता है

"अखंडितमनाकुलं ज्वलदनंतमंतर्बहिर्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा ।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालंबते यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितं ॥ १४ ॥
"एष ज्ञानघनो नित्यमात्मसिद्धिमभीप्सुभिः । साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यतां" ॥ १५ ॥

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं ।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥ १६ ॥

दर्शनज्ञानचरित्राणि सेवितव्यानि साधुना नित्यं ।
तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यप्यात्मानमेव निश्चयतः ॥ १६ ॥

येनैव हि भावेनात्मा साध्यं साधनं च स्यात्तेनैवायं नित्यमुपास्य इति स्वयमाकूय

"आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणं चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥

आत्मा स्फुटं मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्रे च । आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे संवरे योगे ॥ **आदा** शुद्धात्मा **खु** स्फुट **मज्झ** मम भवति । क्व विषये । **णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे** सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रप्रत्याख्यानसंवरयोगभावना विषये । योगे कोऽर्थः ? निर्विकल्पसमाधौ परमसामायिके परमध्याने चेत्येको भावः भोगाकांक्षानिदानबंधशल्यादिभावरहिते शुद्धात्मनि ध्याते सर्वं सम्यग्ज्ञानादिकं लभ्यत इत्यर्थः । एवं शुद्धनयव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथात्रयं गत ॥ १५ ॥ इत ऊर्ध्वं भेदाभेदरत्नत्रयमुख्यत्वेन गाथात्रयं कथ्यते—तद्यथा प्रथमगाथायां पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामपरार्द्धेन चाभेदरत्नत्रयभावनां

और बाह्य वचनकायकी क्रियाकर प्रगट दैदीप्यमान होता है जानाजाता है । स्वभावसे हुआ है किसीने रचा नहीं है और हमेशा जिसका विलास उदयरूप है एकरूप प्रतिभासमान है ॥ **भावार्थ**—आचार्यने प्रार्थना की है कि यह ज्योतिस्वरूप ज्ञानानंदमय एकाकार हमे सदा प्राप्त होवे । ऐसा जानना ॥ आगे आगेकी गाथाकी सूचनाका **"एष ज्ञान"** इत्यादि श्लोक कहते हैं । **अर्थ**—यह पूर्वकथित ज्ञानस्वरूप नित्य आत्मा है वह स्वरूपकी प्राप्तिके इच्छक पुरुषोंकर साध्यसाधक भावके भेदसे दोतरहका होनेपर भी एक ही सेवने योग्य है उसे सेवन करो । **भावार्थ**—आत्मा तो ज्ञानस्वरूप एक ही है परंतु इसका पूर्णरूप साध्यभाव है और अपूर्णरूप साधकभाव है ऐसे भावभेदकर दोतरहसे एक ही सेवना ॥ १५ ॥

आगे दर्शनज्ञानचारित्ररूप साधक भाव है यही गाथामें कहते हैं;—**[साधुना]** साधुपुरुषोंको **[दर्शनज्ञानचरित्राणि]** दर्शन ज्ञान चारित्र **[नित्यं]** निरंतर **[सेवितव्यानि]** सेवन करने योग्य हैं **[पुनः]** और **[तानि त्रीणि अपि]** वे तीन हैं तौ भी **[निश्चयतः]** निश्चयनयसे **[आत्मानं एव]** एक आत्मा ही **[जानीहि]** जानो ॥ **टीका**—यह आत्मा जिसभावकर साध्य तथा साधक हो

परेषां व्यवहारेण साधुना दर्शनज्ञानचारित्राणि नित्यमुपास्यानीति प्रतिपाद्यते । तानि पुनस्त्रीण्यपि परमार्थेनात्मैक एव वस्त्वंतराभावात् यथा देवदत्तस्य कस्यचित् ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं च देवदत्तस्य स्वभावानतिक्रमाद्देवदत्त एव न वस्त्वंतरं तथात्मन्यप्यात्मनो ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं चात्मस्वभावानतिक्रमादात्मैव न वस्त्वंतरं तत आत्मा एक एवोपास्य इति स्वयमेव प्रद्योतते स किल "दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयं । मेचको मेचकश्चापि

कथयति;—**दंसणणाणचारित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवितव्यानि साधुना व्यवहारनयेन नित्य सर्वकाल **ताणि पुण जाण तिण्णवि** तानि

उसी भावकर नित्य सेवने योग्य है ऐसा आप विचारकर दूसरोंको व्यवहारसे कथन करते हैं कि साधुपुरुषोंकर दर्शनज्ञानचारित्र सदा सेवने योग्य हैं और परमार्थकर देखाजाय तब ये तीनों ही एक आत्मा ही है क्योंकि ये अन्यवस्तु नहीं है आत्माके ही पर्याय हैं । जैसे कोई देवदत्तनामा पुरुषके ज्ञान श्रद्धान आचरण हैं वे उसके स्वभावको उलंघन नहीं करते इसलिये वे देवदत्त पुरुष ही हैं अन्यवस्तु नहीं है उसीतरह आत्मामें भी आत्माके ज्ञान श्रद्धान आचरण आत्माके स्वभावको नहीं उलंघन करते इसकारण आत्मा ही है अन्य वस्तु नहीं है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है । यह अपने आप ही प्रकाशमान होता है ॥ **भावार्थ**—दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों आत्माके ही पर्याय हैं कुछ जुदी वस्तु नहीं है इसलिये साधु पुरुषोंको एक आत्माका ही सेवन करना यह निश्चय है और व्यवहारकर अन्यको भी यही उपदेश करना ॥ आगे इसी अर्थका कलशरूप श्लोक कहते हैं । **"दर्शन"** इत्यादि । **अर्थ**—यह आत्मा प्रमाण दृष्टिकर देखाजाय तब एक कालमें अनेक अवस्थारूप भी है और एक अवस्थारूप भी है । क्योंकि इसके दर्शनज्ञानचारित्रकर तो तीनपना है और आपकर अपने एकपना है ॥ **भावार्थ**—प्रमाणदृष्टिमें तीनकाल स्वरूप वस्तु द्रव्यपर्यायरूप देखी जाती है इसलिये आत्मा भी एक कालमें एकानेकस्वरूप देखना ॥ आगे नयविवक्षा कहते हैं । **"दर्शन"** इत्यादि । **अर्थ**—व्यवहारदृष्टिकर देखा जाय तब आत्मा एक है तौ भी तीन स्वभावपनेसे अनेकाकाररूप है क्योंकि दर्शनज्ञानचारित्र इन तीन भावोंसे परिणमता है । **भावार्थ**—शुद्धद्रव्यार्थिक नयकर आत्मा एक है इस नयको प्रधानकर कहाजाय तब पर्यायार्थिकनय गौण हुआ । सो एकको तीनरूप परिणमता कहना यही व्यवहार हुआ असत्यार्थ भी हुआ । ऐसे व्यवहारनयकर दर्शन ज्ञान चारित्र परिणामसे मेचक कहा है ॥ अब परमार्थनयकर कहते हैं । **"परमार्थे"** इत्यादि । **अर्थ**—शुद्ध निश्चयनयकर देखा जाय तब प्रगट ज्ञायकज्योतिमात्रकर आत्मा एकस्वरूप है क्योंकि इसका शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकर सभी अन्यद्रव्यके स्वभाव तथा अन्यके निमित्तसे हुए विभावोंका दूरकरनेरूप

सममात्मा प्रमाणतः ॥ १६ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः । एकोपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥ परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः । सर्वभावांतरध्वंसिस्वभावत्वादमेचकः ॥ १८ ॥ आत्मा नश्चिंतयैवालं मेचकामेचकत्वयोः । दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥ १९ ॥ (॥ १६ ॥)

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि ।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥ १७ ॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥ १८ ॥

यथा नाम कोपि पुरुषो राजानं ज्ञात्वा श्रद्दधाति ।
ततस्तमनुचरति पुनरर्थार्थिकः प्रयत्नेन ॥ १७ ॥
एवं हि जीवराजो ज्ञातव्यस्तथैव श्रद्धातव्यः ।
अनुचरितव्यश्च पुनः स चैव तु मोक्षकामेन ॥ १८ ॥

यथा हि कश्चित्पुरुषोऽर्थार्थी प्रयत्नेन प्रथममेव राजानं जानीते ततस्तमेव श्रद्धत्ते ततस्त-

---

पुनर्जानीहि त्रीण्यपि **अप्पाणं चेव** शुद्धात्मानं चैव **णिच्छयदो** निश्चयतः शुद्धनिश्चयतः । अयमत्रार्थः—पंचेद्रियविषयक्रोधकपायादिरहितनिर्विकल्पसमाधिमध्ये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमस्तीति ॥ १६ ॥ अथ गाथाद्वयेन तामेव भेदाभेदरत्नत्रयभावना दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति;— **जह** यथा **णाम** अहो स्फुट वा **कोवि** कोपि कश्चित् **पुरिसो** पुरुषः **रायाणं**

स्वभाव है । इसलिये अमेचक है शुद्ध एकाकार है ॥ **भावार्थ**—भेददृष्टिको गौणकर अभेददृष्टिकर देखाजाय तब आत्मा एकाकार ही है वही अमेचक है । आगे प्रमाणनयकर मेचक अमेचक कहा सो इस चिंताको मेंट जैसे साध्यकी सिद्धि हो वैसे करना यह **“आत्मन”** इत्यादिसे कहते हैं । **अर्थ**—यह आत्मा मेचक है भेदरूप अनेकाकार है तथा अमेचक है अभेदरूप एकाकार है । ऐसी चिंताकर तो पूरा पड़े । साध्य आत्माकी सिद्धि तो दर्शन ज्ञान चारित्र-इन तीनोंभावोंकर ही है दूसरीतरह नहीं यह नियम है ॥ **भावार्थ**—आत्माकी शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर सिद्धि हुई । ऐसा शुद्ध स्वभाव साध्य है वह पर्यायार्थिकस्वरूप व्यवहारनयकर ही साधा जाता है इसलिये ऐसा कहा है कि भेदाभेदकी कथनीसे क्या जिसतरह साध्यकी सिद्धि हो वैसे करना । व्यवहारी लोक पर्यायमें ही समझते है । इसकारण दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों परिणाम ही आत्मा है । इसतरह भेद प्रधानकर अभेदकी सिद्धि करना कहा है ॥ १६ ॥

आगे इसी प्रयोजनको दो गाथाओंमें दृष्टांतकर कहते है,—**[यथा नाम]** जैसे **[कोपि]** कोई **[अर्थार्थिकः पुरुषः]** धनका चाहनेवाला पुरुष **[राजानं]** राजाको **[ज्ञात्वा]** जानकर **[श्रद्दधाति]** श्रद्धान करता है

मेवानुचरति। तथात्मना मोक्षार्थिना प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः ततः स एव श्रद्धातव्यः ततः सएवानुचरितव्यश्च साध्यसिद्धेस्तथान्यथोपपत्त्यनुपपत्तिभ्यां । तत्र यदात्मनोनुभूयमानानेकभावसंकरेपि परमविवेककौशलेनायमहमनुभूतिरित्यात्मज्ञानेन संगच्छमानमेव तथेतिप्रत्ययलक्षणं श्रद्धानं चरणमुत्प्लवमानमात्मानं साधयतीति साध्यसिद्धेस्तथोपपत्तेः यदात्वाबालगोपालमेव सकलकालमेव स्वयमेवानुभूयमानेपि भगवत्यनुभूत्यात्मन्यनादिबंधवशात् परैः

राजानं **जाणिऊण** छत्रचामरादिराजचिह्नैर्ज्ञात्वा **सद्दहदि** श्रद्धत्ते अयमेव राजेति निश्चिनोति **तो** ततो ज्ञानश्रद्धानानतरं **तं** तं राजान **अणुचरदि** अनुचरति आश्रयत्याराधयति । कथंभूतः सन् । **अत्थत्थीओ** अर्थार्थिको जीवितार्थी **पयत्तेण** सर्वतात्पर्येणेति दृष्टांतगाथा गता । **एवं** अनेन प्रकारेण **हि** स्फुट **जीवराया** शुद्धजीवराजा **णादव्वो** निर्विकारस्वसं-

---

[ततः] उसके वाद **[तं]** उसकी **[प्रयत्नेन अनुचरति]** अच्छी तरह सेवा करता है **[एवं हि]** इसीतरह **[मोक्षकामेन]** मोक्षको चाहनेवाला **[जीवराजः]** जीवरूप राजाको **[ज्ञातव्यः]** जाने **[पुनः च]** और फिर **[तथैव]** उसीतरह **[श्रद्धातव्यः]** श्रद्धान करे **[तु च स एव]** उसके वाद **[अनुचरितव्यः]** उसका अनुचरण करना अर्थात् अनुभवकर तन्मय हो जाय ।

टीका—निश्चयकर जैसे कोई धनको चाहनेवाला पुरुष बहुत उद्यमसे पहले तो राजाको जाने कि यह राजा है पीछे उसीका श्रद्धान करे कि यह अवश्य राजा ही है इसका सेवन किये जानेपर अवश्य धनकी प्राप्ति होगी, उसके बाद उसीका सेवन करे आज्ञामें रहे उसको प्रसन्न करे । उसीतरह मोक्षका चाहनेवाला पहले तो आत्माको जाने, वाद उसका श्रद्धान करे कि यही आत्मा है इसका आचरण करनेसे अवश्य कर्मोंसे छूट सक्ते हैं । उसके वाद उसीका अनुचरण करना-अनुभवकर उसमें लीन होना चाहिये । क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप उसकी इसीतरह उपपत्ति है (सिद्धि है) अन्यथा अनुपपत्ति है । जिससमय आत्माके अनुभवमें आये हुए जो अनेक पर्यायरूप भेदभाव उनसे मिश्रितपना होनेपर भी सब प्रकार भेदज्ञान प्रवीणपनेकर यह अनुभूति है कि "वही मैं हूं" ऐसे आत्मज्ञानकर प्राप्तहुआ यह आत्मा जैसा जाना तैसा ही है ऐसी प्रतीतिस्वरूप श्रद्धान उदय होता है उसीसमय समस्त अन्यभावोंका भेद होनेसे निःशंक ठहरनेको समर्थ होनेसे आत्माका आचरण उदय हुआ आत्माको साधता है । इसतरह तो साध्य आत्माकी सिद्धि की । तथा उपपत्ति वह है कि जो उसी तरह हो । जिससमय ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा वाल गोपालतक सदाकाल आप ही अनुभवमें आता हुआ भी अनादिबंधके वशसे परद्रव्योंसहित एकपनेका निश्चयकर अज्ञानीके "वह मैं हूं" ऐसा अनुभूति रूप आत्मज्ञान नहीं उदय होता । उसके अभावसे विना जानेका श्रद्धान गधेके सींगके

सममेकत्वाध्यवसायेन विमूढस्यायमहमनुभूतिरित्यात्मज्ञानं नोत्प्लवते तदभावादज्ञानखरशृंगश्रद्धानसमानत्वाच्छ्रद्धानमपि नोत्प्लवते तदा समस्तभावांतरविवेकेन निःशंकमेवास्थातुमशक्यत्वादात्मानुचरणमनुत्प्लवमानं नात्मानं साधयीति साध्यसिद्धेरन्यथानुपपत्तिः ।

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।
सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नं न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

ननु ज्ञानतादात्म्यादात्मात्मानं नित्यमुपास्त एव कुतस्तदुपास्यत्वेनानुशास्यत इति चेन्न

वेदनज्ञानेन ज्ञातव्यः । **तह य** तथैव **सद्दहेव्वदव्वो** अयमेव नित्यानंदैकस्वभावो रागादिरहितः शुद्धात्मेति निश्चेतव्यः **अणुचरिदव्वो य** अनुचरितव्यश्च निर्विकल्पसमाधिनानुभवनीयः । पुनः **सो एव** स एव शुद्धात्मा **दु** पुनः **मोक्खकामेण** मोक्षार्थिना पुरु-

---

समान है । इसतरह श्रद्धानका भी उदय नहीं होता । उससमय समस्त अन्यभावोंका भेद न होनेसे निःशंक आत्मामें ठहरनेके असमर्थपनेसे आत्माका आचरण न होने पर आत्माको नहीं साध सकता । इस तरह साध्य आत्माकी सिद्धिकी अन्यथा अनुपपत्ति अर्थात् दूसरीतरह असिद्धि है ॥ **भावार्थ**—साध्य आत्माकी सिद्धि दर्शनज्ञानचारित्रकर ही है दूसरीतरह नहीं । क्योंकि पहले तो आत्माको जाने कि यह जाननेवाला अनुभवमें आता है "वह मैं हूं" उसके वाद इसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है । विना जाने श्रद्धान किसका ? । फिर समस्त अन्यभावोंसे भेद करके अपनेमें स्थिर होवे ऐसी सिद्धि है । जब जानेगा ही नहीं तब श्रद्धान भी नहीं हो सकेगा । तव स्थिरता किसमे कर सकता है । इसलिये दूसरी तरह सिद्धि नहीं है ऐसा निश्चय है । अव इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते है । **"कथमपि"** इत्यादि । **अर्थ**—आचार्य कहते हैं कि इस आत्मज्योतिको हम निरंतर अनुभवते हैं । जो आत्मज्योति, अनंत अविनश्वर चैतन्य चिन्हवाली है क्योंकि इसके अनुभवविना अन्यरीतिसे साध्य आत्माकी सिद्धि नहीं है । जिस आत्मज्योतिने किसीतरह तीनपना अंगीकार किया है तौभी वह एकपनेसे रहित नहीं हुई तथा निर्मल उदयको प्राप्त हुई है । **भावार्थ**—आचार्य कहते हैं कि जिसके किसीतरह पर्यायदृष्टिकर तीनपना प्राप्त है तौ भी शुद्धद्रव्यदृष्टिकर जो एकपनेसे रहित नहीं हुई तथा अनंतचैतन्यस्वरूप निर्मल उदयको प्राप्त हुई ऐसी आत्मज्योतिका हम निरंतर अनुभव करते हैं । ऐसा कहनेसे यह आशय भी जानना कि जो सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं वे ऐसे ही अनुभव करें कि जैसे हम अनुभव करते हैं । अव कोई प्रश्न करे कि आत्मा तो ज्ञानसे तादात्म्यस्वरूप है जुदा नहीं है इसलिये ज्ञानको नित्य सेवै ही है फिर ज्ञानकी ही उपासना करनेकी शिक्षा क्यों दी जाती है ? उसका समाधान आचार्य कहते हैं—यह कहना ठीक नहीं यद्यपि आत्मा ज्ञानसे तादात्म्यरूप है तौ भी एक क्षणमात्र भी ज्ञानको नहीं सेवता । इसके ज्ञानकी उत्पत्ति आप ही जाननेसे अथवा

यतो न खल्वात्मा ज्ञानतादात्म्येपि क्षणमपि ज्ञानमुपास्ते स्वयंबुद्ध-बोधितबुद्धत्वकारणपूर्वकत्वेन ज्ञानस्योत्पत्तेः। तर्हि तत्कारणात्पूर्वमज्ञान एवात्मा नित्यमेवाप्रतिबुद्धत्वादेवमेतत् ॥ १७ ॥ १८ ॥ तर्हि कियंतं कालमयमप्रतिबुद्धो भवतीत्यभिधीयतां;—

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥ १९ ॥

कर्मणि नोकर्मणि चाहमित्यहकं च कर्म नोकर्म।
यावदेषा खलु बुद्धिरप्रतिबुद्धो भवति तावत् ॥ १९ ॥

यथा स्पर्शरसगंधवर्णादिभावेषु पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गलस्कंधेषु घटोयमिति घटे च स्पर्शरसगंधवर्णादिभावाः पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गलस्कंधाश्चामी इति वस्त्वभेदेनानुभूतिस्तथा कर्मणि मोहादिष्वंतरंगेषु, नोकर्मणि शरीरादिषु बहिरंगेषु चात्मतिरस्कारिषु

षेणेति दार्ष्टांतः। इदमत्र तात्पर्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनारूपया परमात्मचिंतयैव पूर्यतेऽस्माकं किं विशेषेण शुभाशुभरूपविकल्पजालेनेति। एवं भेदाभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयं द्वितीयस्थले गतं ॥१७॥१८॥ अथ स्वतंत्रव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयं कथ्यते। तद्यथा—स्वपरभेदविज्ञानाभावे जीवस्तावदज्ञानी भवति परं किंतु कियत्कालपर्यंत इति न ज्ञायते एवं पृष्टे सति प्रथमगाथाया प्रत्युत्तरं ददाति;—**कम्मे** कर्मणि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि रागादिभावकर्मणि च **णोकम्मह्मि य** शरीरादिनोकर्मणि च **अहमिदि** अहमिति प्रतीतिः **अहकं च कम्म णोकम्मं** अहकं च कर्म नोकर्मेति प्रतीतिः यथा घटे वर्णादयो गुणा घटाकारपरिणतपुद्गलस्कंधाश्च वर्णादिषु घट इत्यभेदेन **जा** यावंतं कालं **एसा** एषा प्रत्यक्षीभूता **खलु** स्फुटं **बुद्धी** कर्मनोकर्मणा सह शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजपरमात्मवस्तुनः

दूसरेके बतलानेसे होती है। क्योंकि या तो काललब्धि आये तब आप ही जानलेता है या कोई उपदेश देनेवाला मिले तब जानसकता है। जैसे सोया हुआ पुरुष या तो आप ही जाग जाता है या कोई जगावे तब जाग सकेगा। फिर कोई प्रश्न करता है कि यदि इसतरह है तो जाननेके कारणके पहले आत्मा अज्ञानी ही है क्योंकि सदा ही इसके अप्रतिबुद्धपना है? उसका उत्तर आचार्य कहते हैं—यह बात ऐसे ही है कि वह अज्ञानी ही है ॥ १७ ॥ १८ ॥

आगे फिर पूछते हैं कि यह आत्मा कितने समयतक अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) रहता है? उसके उत्तरका गाथासूत्र कहते हैं;—[**यावत्**] जबतक इस आत्माके [**कर्मणि**] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भावकर्म [**वा**] और [**नोकर्मणि**] शरीरआदि नोकर्ममें [**अहं कर्म नोकर्म**] मैं कर्म नोकर्म हूं [**अहकं इति च**] और ये कर्म नोकर्म मेरे हैं [**एषा खलु**] ऐसी निश्चय [**मतिः**] बुद्धि है [**तावत्**] तबतक [**अप्रतिबुद्धः**] यह आत्मा अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) [**भवति**] है ॥ **टीका—**

पुद्गलपरिणामेष्वहमित्यात्मनि च कर्ममोहादयोंऽतरंगा नोकर्मशरीरादयो बहिरंगाश्चात्मतिरस्कारिणः पुद्गलपरिणामा अमी इति वस्त्वभेदेन यावंतं कालमनुभूतिस्तावंतकालमात्मा भवत्यप्रतिबुद्धः । यदा कदाचिद्यथा रूपिणो दर्पणस्य स्वपराकारावभासिनी स्वच्छतैव वह्नेरौष्ण्यं ज्वाला च तथा नीरूपस्यात्मनः स्वपराकारावभासिनी ज्ञातृतैव पुद्गलानां कर्म नोकर्म चेति स्वतःपरतो वा भेदविज्ञानमूलानुभूतिरुत्पस्यति तदैव प्रतिबुद्धो भवि-

---

एका बुद्धिः **अप्पडिबुद्धो** अप्रतिबुद्धः स्वसंवित्तिशून्यो बहिरात्मा **हवदि** भवति **ताव** तावत्कालमिति । अत्र भेदविज्ञानमूल शुद्धात्मानुभूतिः स्वतः स्वयंबुद्धापेक्षया परतो वा बोधित-

---

जैसे स्पर्श रस गंध वर्ण आदि भावोंमें चौड़ा नीचे अवगाहरूप उदरआदिके आकार परिणत हुए पुद्गलके स्कंधों (समूह) मे यह घट है और घटमे स्पर्श रस गंध वर्णादि भाव हैं तथा पृथु बुध्नोदर आदिके आकार परिणत पुद्गल स्कंध हैं ऐसे वस्तुके अभेदकर अनुभूति है, उसीतरह कर्म जो मोह आदि अंतरंग परिणाम और नोकर्म जो शरीर आदि बाह्य वस्तु ये सब पुद्गलके परिणाम है और आत्माके तिरस्कार करनेवाले हैं । उनमे ये कर्म नोकर्म मैं हूं तथा मोहादिक अंतरंग शरीरादि बहिरंग कर्म आत्माके तिरस्कार करनेवाले पुद्गल परिणाम वे मेरे आत्माके हैं इसतरह वस्तुके अभेदकर जबतक अनुभूति है तबतक आत्मा अप्रतिबुद्ध है अज्ञानी है। और जब किसीसमय जैसे रूपी दर्पणकी स्वपरके आकारको प्रतिभासकरनेवाली स्वच्छता ही है तथा उष्णता और ज्वाला अग्निकी है उसी तरह अरूपी आत्माकी अपने परके जाननेवाली ज्ञातृता (ज्ञातापना) ही है और कर्म नोकर्म पुद्गलके ही हैं ऐसी अपने आप ही तथा दूसरेके उपदेशसे भेदविज्ञान कारणवाली अनुभूति उत्पन्न हो जायगी तब ही यह आत्मा प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) होगा। **भावार्थ**—यह आत्मा जब तक ऐसा जानता है कि जैसे स्पर्शआदिक पुद्गलमें हैं और पुद्गल स्पर्शादिमय है उसीतरह जीवमें कर्म नोकर्म हैं और कर्मनोकर्ममय जीव है तब तक तो अज्ञानी है। और जब यह जान ले कि आत्मा तो ज्ञाता ही है और कर्मनोकर्म पुद्गलके ही हैं तभी यह ज्ञानी होता है। जैसे दर्पणमे अग्निकी ज्वाला दीखती हो वहां ऐसा जाने कि ज्वाला तो अग्निमे ही है आरसेमें नहीं बैठी। जो आरसेमें दीख रही है वह दर्पणकी स्वच्छता ही है। इसीतरह कर्म नोकर्म अपने आत्मामें नहीं बैठे आत्माके ज्ञानकी स्वच्छता ऐसी ही है जिसमे ज्ञेयका प्रतिबिंब दीखता है इसप्रकार कर्मनोकर्म ज्ञेय हैं वे प्रतिभासते हैं ऐसा अनुभव आत्माका भेदज्ञानरूप या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेशसे हो तब ही ज्ञानी होता है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं। **"कथमपि"** इत्यादि। **अर्थ**—जो पुरुष आपसे ही अथवा परके उपदेशसे किसीतरह भेदविज्ञानरूप मूलकारणवाली अविचल निश्चल अपने आत्माकी अनुभूतिको पाते हैं वे ही पुरुष दर्पणकी तरह अपने आत्मामे प्रतिबिंबित हुए अनंतभावोंके

ष्यति। "कथमपि हि लभंते भेदविज्ञानमूलामचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा। प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावैर्मुकुरवदविकाराः संततं स्युस्त एव॥ २१॥" ॥ १९॥

ननु कथमयमप्रतिबुद्धो लक्ष्येत;—

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्तमिस्सं वा॥ २०॥
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि।
होहिदि पुणोवि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि॥ २१॥
एयत्तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो॥ २२॥

अहमेतदेतदहं अहमेतस्यास्मि ममैतत्।
अन्यद्यत्परद्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रं वा॥ २०॥
आसीन्मम पूर्वमेतदेतत् अहमिदं चापि पूर्वकाले।
भविष्यति पुनरपि मम अहमिदं चैव पुनर्भविष्यामि॥ २१॥
एतत्त्वसद्भूतमात्मविकल्पं करोति संमूढः।
भूतार्थं जानन्न करोति तु तमसंमूढः॥ २२॥

यथाग्निरिंधनमस्तींधनमग्निरस्त्यग्नेरिंधनमस्तींधनस्याग्निरस्त्यग्नेरिंधनं पूर्वमासीदिंधनस्या-

---

बुद्ध्यपेक्षया ये लभंते ते पुरुषाः शुभाशुभबहिर्द्रव्येषु विद्यमानेष्वपि मुकुरुदवदविकारा भवतीति भावार्थः॥ १९॥ अथ शुद्धजीवे यदा रागादिरहितपरिणामस्तदा मोक्षो भवति। अजीवे देहादौ यदा रागादिपरिणामस्तदा बंधो भवतीत्याख्याति;—

जीवेव अजीवे वा संपदि समयम्हि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बंध मोक्खो होदि समासेण णिद्दिट्ठो॥

जीवे वा अजीवे वा सप्रतिसमये यत्रोपयुक्तः। तत्रैव बधः मोक्षो भवति समासेन निर्दिष्टः॥ **जीवेव** स्वशुद्धजीवे वा **अजीवे वा** देहादौ वा **संपदिसमयह्मि** वर्तमानकाले **जत्थ उवजुत्तो** यत्रोपयुक्तः तन्मयत्वेनोपादेयबुद्ध्या परिणतः **तत्थेव** तत्रैव अजीवे जीवे वा **बंधमोक्खो** अजीवदेहादौ बंधो, जीवे शुद्धात्मनि मोक्षः **हवदि** भवति **समासेण**

स्वभावोंकर निरंतर विकाररहित होते है ज्ञानमें जो ज्ञेयोंके आकार प्रतिभासते हैं उनकर रागादि विकारको नहीं प्राप्त होते॥ १९॥

आगे शिष्य प्रश्न करता है कि यह अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) किसतरह पहचाना जा सकता है उसके चिन्ह बतलाओ उसका उत्तररूप गाथा कहते है,—[**"यः"**] जो पुरुष[**अन्यत् यत् परद्रव्यं**] अपनेसे अन्य जो परद्रव्य [**सचित्ताचित्त-मिश्रं वा**] सचित्त स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक, मिश्र ग्रामनगरादिक—इनको

ग्निः पूर्वमासीदग्नेरिंधनं पुनर्भविष्यतींधनस्याग्निः पुनर्भविष्यतीतींधन एवासद्भूताग्निविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धः कश्चिल्लक्ष्येत तथाहमेतदस्म्येतदहमस्ति ममैतदस्त्येतस्याहमस्मि ममैतत्पूर्वमासीदेतस्याहं पूर्वमासं ममैतत्पुनर्भविष्यत्येतस्याहं पुनर्भविष्यामीति परद्रव्य एवासद्भूतात्मविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धो लक्ष्येतात्मा । नाग्निरिंधनमस्ति नेंधनमग्निरस्त्यग्निरग्निरस्तींधनमिंधनमस्ति । नाग्नेरिंधनमस्ति नेंधनस्याग्निरस्त्यग्नेरग्निरस्तींधनस्येधनमस्ति । नाग्नेरिं-

---

णिद्दिट्ठो संक्षेपेण सर्वज्ञैर्निर्दिष्ट इति । अत्रैवं ज्ञात्वा सहजानंदैकस्वभावनिजात्मनि रतिः कर्त्तव्या । तद्विलक्षणे परद्रव्ये विरतिरित्यभिप्रायः ॥ अथाशुद्धनिश्चयेनात्मा रागादिभावकर्मणां कर्त्ता अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्रव्यकर्मणामित्यावेदयति;—

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
णिच्छयदो ववहारा पोग्गलकम्माण कत्तारं ॥

यं करोति भावं आत्मा कर्त्ता स भवति तस्य भावस्य । निश्चयतः व्यवहारात् पुद्गलकर्मणां कर्त्ता ॥ **जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स** यं करोति रागादिभावमात्मा स तस्य भावस्य परिणामस्य कर्त्ता भवति । **णिच्छयदो** अशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्धभावाना शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावाना कर्त्तेति भावानां परिणमनमेव कर्तृत्वं । **ववहारा** अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयात् **पोग्गलकम्माण** पुद्गलद्रव्यकर्मादीना **कत्तारं** कर्त्तेति । कर्तारं इति कर्मपदं कर्त्तेति कथ भवतीति चेत् प्राकृते क्वापि कारकव्यभिचारो लिंगव्यभिचारश्च । अत्र रागादीनां जीवः कर्त्तेति भणित ते च संसारकारण ततः संसार-

---

ऐसा समझे कि [**अहं एतत्**] मै यह हूं [**एतत् अहं**] ये द्रव्य मुझस्वरूप हैं [**एतस्य अहं**] मैं इनका हूं [**एतत मम अस्ति**] ये मेरे है [**एतत् मम पूर्वं आसीत्**] ये मेरे पूर्व थे [**एतस्य अहमपि पूर्वं आसं**] इनका मै भी पहले था [**पुनः**] तथा [**एतत् मम भविष्यति**] ये मेरे आगामी होंगे [**अहमपि एतस्य भविष्यामि**] मै भी इनका आगामी होऊंगा [**एतत्तु असद्भूतं**] ऐसा झूठा [**आत्मविकल्पं**] आत्मविकल्प करता है वह [**असंमूढः**] मूढः है मोही है अज्ञानी है [**तु**] और जो पुरुष [**भूतार्थं**] परमार्थ वस्तुस्वरूपको [**जानन्**] जानता हुआ [**तं**] ऐसा झूठा विकल्प [**न करोति**] नहीं करता है वह [**असंमूढः**] मूढ नहीं है ज्ञानी है । **टीका—** पहले दृष्टांत कहते हैं । जैसे कोई पुरुष ईंधन और अग्निको मिलाहुआ देख ऐसा झूठा विकल्प करता है कि अग्नि है वह ईंधन है तथा ईंधन है वह अग्नि है, अग्निका ईंधन पहले था ईंधनकी अग्नि पहले थी, अग्निका ईंधन आगामी होगा ईंधनकी अग्नि आगामी होगी । इस तरह ईंधनमें ही अग्निका विकल्प करता है वह झूठा है । इसीसे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहचाना जाता है । उसीतरह दार्ष्टांत है । जैसे जो कोई परद्रव्यमें

धनं पूर्वमासीन्नेंधनस्याग्निः पूर्वमासीदग्नेरग्निः पूर्वमासीदिंधनस्येंधनं पूर्वमासीन्नाग्नेरिंधनं पुनर्भविष्यति नेधनस्याग्निः पुनर्भविष्यत्यग्नेरग्निः पुनर्भविष्यतींधनस्येंधनं पुनर्भविष्यतीति कस्यचिदग्नावेव सद्भूताग्निविकल्पवन्नाहमेतदस्मि नैतदहमस्त्यहमहमस्म्येतदेतदस्ति न ममैतदस्ति नैतस्याहमस्मि ममाहमस्म्येतस्यैतदस्ति न ममैतत्पूर्वमासीन्नैतस्याहं पूर्वमासं

भयभीतेन मोक्षार्थिना समस्तरागादिविभावरहिते शुद्धद्रव्यगुणपर्याये स्वरूपे निजपरमात्मनि भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः । एवं स्वतंत्रव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गत ॥ अथ यथा कोप्यप्रतिबुद्ध' अग्निरिंधनं भवति इंधनमग्निर्भवति अग्निरिंधनमासीत् इंधनमग्निरासीत् अग्निरिंधन भविष्यति इंधनमग्निर्भविष्यतीति वदति तथा यः कालत्रयेपि देहरागादिपरद्रव्यमात्मनि योजयति सोऽप्रतिबुद्धो बहिरात्मा मिथ्याज्ञानी भवतीति प्ररूपयति'–**अहमेदं एदमहं** अहं इद परद्रव्यं इदं अहं भवामि । **अहमेदस्सेव हि होमि मम एदं** अहमस्य संबंधी भवामि मम संबंधीदं । **अण्णं जं परद्रव्वं** देहादन्यद्भिन्न पुत्रकलत्रादि यत्परद्रव्य **सच्चित्ताच्चित्तमिस्सं वा** सचित्ताचित्तमिश्रं वा । तच्च गृहस्थापेक्षया सचित्त स्त्र्यादि, अचित्त सुवर्णादि, मिश्र साभरणस्त्र्यादि । अथवा तपोधनापेक्षया सचित्त छात्रादि, अचित्तं पिच्छकमडलुपुस्तकादि मिश्रमुपकरणसहितछात्रादि । अथवा सचित्त रागादि अचित्त पुद्गलादि पंचद्रव्यरूप मिश्र गुणस्थानजीवमार्गणादिपरिणतसंसारिजीवस्वरूपमिति वर्त्तमानकालापेक्षया गाथा गता । **आसी**त्यादि । **आसि मम पुव्वमेदं** आसीत् मम पूर्वमेतत् **अहमेदं**

असत्यार्थ आत्मविकल्प करे कि मैं यह परद्रव्य हूं और यह परद्रव्य है वह मैं हूं, यह मेरा परद्रव्य है इस परद्रव्यका मैं हूं, मेरा यह पहले था मैं इसका पहले था, मेरा यह आगामी होगा मैं इसका आगामी होऊंगा । ऐसे झूठे विकल्पकर अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) पहचाना जाता है। तथा अग्नि है वह ईंधन नहीं है ईंधन है वह अग्नि नहीं है, अग्नि है वह अग्नि ही है ईंधन है वह ईंधन ही है, अग्निका ईंधन नहीं है ईंधनकी अग्नि नहीं है अग्निकी ही अग्नि है ईंधनका ईंधन है, अग्निका ईंधन पहले हुआ नहीं ईंधनकी अग्नि पहले हुई नहीं अग्निकी अग्नि पहले थी, ईंधनका ईंधन पहले था । तथा अग्निका ईंधन आगामी नहीं होगा, ईंधनकी अग्नि आगामी नहीं होगी अग्निकी अग्नि ही आगामी होगी, ईंधनका ईंधन ही आगामी होगा । इसतरह किसीके अग्निमें ही सत्यार्थ अग्निका विकल्प जिसप्रकार हो जाता है उसीतरह मैं यह परद्रव्य नहीं हू परद्रव्यका परद्रव्य ही है तथा यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है मैं तो मैं ही हूं परद्रव्य है वह परद्रव्य ही है तथा मेरा यह परद्रव्य नहीं है इस परद्रव्यका मैं नहीं हूं अपना ही मैं हू परद्रव्यका परद्रव्य है। तथा इस परद्रव्यका मैं पहले नहीं हुआ यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था, अपना मैं ही पूर्व था परद्रव्यका परद्रव्य पहले था । तथा यह परद्रव्य मेरा आगामी न होगा उसका मैं आगामी न होऊंगा मैं अपना ही आगामी

ममाहं पूर्वमासमेतस्यैतत्पूर्वमासीन्न ममैतत्पुनर्भविष्यति नैतस्याहं पुनर्भविष्यामि ममाहं पुनर्भविष्याम्येतस्यैतत्पुनर्भविष्यतीति स्वद्रव्य एव सद्भूतात्मविकल्पस्य प्रतिबुद्धलक्षणस्य भावात् । "त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् । इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिं २२॥" ॥२०॥२१॥२२॥

चावि पुव्वकालह्मि अहमिदं चैव पूर्वकाले **होहिदि पुणोवि मज्झं** भविष्यति पुनरपि मम **अहमेदं चावि होस्सामि** अहमिदं चैव पुनर्भविष्यामि इति भूतभाविकालापेक्षया गाथा गता । **एद्**मित्यादि । **एदं** इमं तु पुनः **असंभूदं** असद्भूतं कालत्रयपरद्रव्यसंबंधिमिथ्यारूपं **आदवियप्पं** आत्मविकल्पं अशुद्धनिश्चयेन जीवपरिणामं **करेदि** करोति **संमूढो** सम्यङ्मूढः अज्ञानी बहिरात्मा **भूदत्थं** भूतार्थं निश्चयनयं **जाणंतो** जानन् सन् **ण करेदि** न करोति **दु** पुनः कालत्रयपरद्रव्यसंबंधिमिथ्याविकल्पं **असंमूढो** असंमूढः सम्यग्दृष्टिरंतरात्मा ज्ञानी भेदाभेदरत्नत्रयभावनारतः । किं च यथा कोप्यज्ञानी अग्निरिंधनं इंधनमग्निः कालत्रये निश्चयेनैकांतेनाभेदेन वदति तथा देहरागादिपरद्रव्यमिदानीमहं भवामि पूर्वमहमासं पुनरग्रे भविष्यामीति यो वदति सोऽज्ञानी बहिरात्मा तद्विपरीतो ज्ञानी सम्यग्दृष्टिरंतरात्मेति । एवं अज्ञानी ज्ञानी जीवलक्षणं ज्ञात्वा निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणे भेदज्ञाने स्थित्वा भावनां कर्त्तेति तामेव भावनां दृढयति । यथा कोपि राजसेवकपुरुषो राजशत्रुभिः सह संसर्गं कुर्वाणः सन् राजाराधको न भवति तथा परमात्माऽराधकपुरुषस्तत्प्रतिपक्षभूतमिथ्यात्वरागादिभिः परिणममाणः परमात्माराधको न भवतीति भावार्थः । एवमप्रतिबुद्धलक्षणकथनेन चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतं ॥२०।२१।२२॥

होऊंगा इस (परद्रव्य)का यह (परद्रव्य) आगामी होगा । ऐसा जो स्वद्रव्यमे ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है । यही प्रतिबुद्ध ज्ञानीका लक्षण है इसीसे ज्ञानी पहचाना जाता है ॥ **भावार्थ**—जो परद्रव्यमे आत्माका विकल्प करता है वह तो अज्ञानी है । और अपने आत्माको ही अपना मानता है वह ज्ञानी है । ऐसा अग्नि ईंधनके दृष्टांतकर दृढ किया है ॥ आगे इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं । **त्यजतु** इत्यादि । **अर्थ**—लोक है वह अनादि संसारसे लेकर अवतक अनुभव किये मोहको अब तो छोड़ै और रसिकजनोंको रुचनेवाला उदय हुआ जो ज्ञान उसे आस्वादन करे क्योंकि इस लोकमें आत्मा है वह परद्रव्यकर सहित किसी समयमें प्रगट रीतिसे एकपनेको किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता । इसलिये आत्मा एक है वह अन्य द्रव्यकर एकतारूप नहीं होता ॥ **भावार्थ**—आत्मा परद्रव्यसे किसीप्रकार किसीकालमें एकताके भावको नहीं प्राप्त होता । इसलिये आचार्यने ऐसी प्रेरणा की है कि अनादिसे लगाहुआ जो परद्रव्यसे मोह है उस एकपनेरूप मोहको अभी छोड़ो और ज्ञानको आस्वादो । मोह है वह वृथा है झूठा है दुःखका कारण है । ऐसा भेदविज्ञान बतलाया है ॥ २०।२१।२२॥

अथाप्रतिबुद्धबोधनाय व्यवसायः—

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं ।
बद्धमवद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥ २३ ॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं ।
किह सो पुग्गलदव्वी-भूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥ २४ ॥
जदि सो पुग्गलदव्वी-भूदो जीवत्तमागदं इदरं ।
तो सत्तो वत्तुं जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं ॥ २५ ॥

अज्ञानमोहितमतिर्ममेद भणति पुद्गलं द्रव्यं ।
बद्धमबद्धं च तथा जीवो बहुभावसंयुक्तः ॥ २३ ॥
सर्वज्ञज्ञानदृष्टो जीव उपयोगलक्षणो नित्यं ।
कथं स पुद्गलद्रव्यीभूतो यद्भणसि ममेदं ॥ २४ ॥
यदि स पुद्गलद्रव्यीभूतो जीवत्वमागतमितरत् ।
तच्छक्तो वक्तुं यन्ममेदं पुद्गलं द्रव्यं ॥ २५ ॥

युगपदनेकविधस्य बंधनोपाधेः सन्निधानेन प्रधावितानामस्वभावभावानां संयोगवशाद्विशेपाश्रयोपरक्तः स्फटिकोपल इवात्यंततिरोहितस्वभावभावतया अस्तमितसमस्तविवेकज्योति-

---

अथाप्रतिबुद्धसंबोधनार्थं व्यवसायः क्रियते,—अण्णाणेत्यादि व्याख्यान क्रियते । **अण्णाणमोहिदमदी** अज्ञानमोहितमति· **मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं** ममेद भणति पुद्गल द्रव्य । कथंभूतं । **बद्धमबद्धं च** बद्ध संबध देहरूपं अबद्धं च असबधं देहाद्भिन्न पुत्रकलत्रादि **तहा** तथा **जीवे** जीवद्रव्ये **बहुभावसंजुत्ते** मिथ्यात्वरागादिबहुभावसयुक्ते । अज्ञानी जीवो देहपुत्रकलत्रादिक परद्रव्य ममेद भणतीत्यर्थः ।

आगे अप्रतिबुद्धके समझानेके लिये उपाय कहते है,—[**अज्ञानमोहितमतिः**] जिसकी मति अज्ञानसे मोहित है ऐसा [**जीवः**] जीव इसतरह [**भणति**] कहता है कि [**इदं**] यह [**बद्धं च अबद्धं**] शरीरादि बद्धद्रव्य, धनधान्यादि अबद्ध परद्रव्य [**मम**] मेरा है । वह जीव [**बहुभावसंयुक्तः**] मोह राग द्वेषादि बहुतभावोंकर सहित है ॥ आचार्य कहते हैं जो [**जीवः**] जीव [**सर्वज्ञज्ञानदृष्टः**] सर्वज्ञके ज्ञानकर देखा गया [**नित्यं**] नित्य [**उपयोगलक्षणः**] उपयोगलक्षणवाला है [**सः**] वह [**पुद्गलद्रव्यीभूतः**] पुद्गलद्रव्यरूप [**कथं**] कैसे होसकता है ? [**यत्**] जो तू [**भणसि**] कहता है कि [**इदं मम**] यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ॥ [**यदि**] जो [**सः**] जीवद्रव्य [**पुद्गलद्रव्यीभूतः**] पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय तो [**इतरत्**] पुद्गलद्रव्य भी [**जीवत्वं**] जीवपनेको [**आगतं**] प्राप्त हो जायगा । यदि ऐसा हो जाय [**तत्**] तो [**वक्तुं शक्तः**] तुम कह सकते हो [**यत्**] कि

मैहता स्वयमज्ञानेन विमोहितहृदयो भेदमकृत्वा तानेवास्वभावभावान् स्वीकुर्वाणः पुद्गलद्रव्यं ममेदमित्यनुभवति किलाप्रतिबुद्धो जीवः । अथायमेव प्रतिबोध्यते रे दुरात्मन् आत्मपंसन् जहीहि जहीहि परमाविवेकघस्मरसतृणाभ्यवहारित्वं । दूरनिरस्तसमस्तसंदेहविपर्यासानध्यवसायेन विश्वैकज्योतिषा सर्वज्ञज्ञानेन स्फुटीकृतं किल नित्योपयोगलक्षणं जीवद्रव्यं । तत्कथं पुद्गलद्रव्यीभूतं येन पुद्गलद्रव्यं ममेदमित्यनुभवसि यतो यदि कथंच-

---

इति प्रथमगाथा गता । अथास्य वहिरात्मनः सबोधनं क्रियते—रे दुरात्मन् **सव्वण्हु** इत्यादि **सव्वण्हुणाणदिट्ठो** सर्वज्ञज्ञानदृष्ट. **जीवो** जीवपदार्थः । कथभूतो दृष्टः । **उवओगलक्खणो** केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणः **णिच्चं** नित्य सर्वकालं **कह** कथं **सो** स जीवः **पुग्गलदव्वीभूदो** पुद्गलद्रव्य जातः न कथमपि । **जं** येन कारणेन **भणसि** भणसि त्वं **मज्झमिणं** ममेद पुद्गलद्रव्य । इति द्वितीया गाथा गता । **जदि** इत्यादि—**जदि** यदि

[इदं पुद्गलद्रव्यं] यह पुद्गलद्रव्य **[मम]** मेरा है । ऐसा नहीं है ॥ **टीका**—अज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्यको "यह मेरा है" ऐसा अनुभव करता है । वह अज्ञानी कैसा है ? अत्यंत आच्छादित हुए अपने स्वभावभावपनेकर जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त होगई है । फिर कैसा है ? महा अज्ञानकर जिसका हृदय अपने आप ही विमोहित है, भेदज्ञानके विना अपना और परका भेद नहीं करके जो अपने स्वभाव नहीं है ऐसे विभावोंको अपने करता है । क्योंकि परभावोंके संबंधसे अपना स्वभाव अत्यंत छिप गया है । कैसे हैं परभाव ? एक समयमे अनेक प्रकारके बंधनकी उपाधिके अतिनिकटपनेसे प्राप्तहुए हैं । जैसे स्फटिकपाषाणमें अनेक तरहके वर्णकी निकटताकर अनेकरूपपना दीखता है स्फटिकका निज श्वेत निर्मलभाव नहीं दीखता । उसीतरह कर्मकी उपाधिसे आत्माका शुद्ध स्वभाव आच्छादित होरहा है वह नहीं दीखता । इसीकारण पुद्गलद्रव्यको अपना मानता है । ऐसे अज्ञानीको समझाते हैं कि रे दुरात्मन् आत्माका घात करनेवाला तू परम अविवेककर जैसे तृणसहित सुंदर आहारको हस्तीआदि पशु खाता है उसी तरहके खानेका स्वभाव छोड़ छोड़ । जो सर्वज्ञज्ञानकर प्रगट किया नित्य उपयोग स्वभावरूप जीवद्रव्य वह कैसे पुद्गलरूप हो गया जिससे कि तू "यह पुद्गलद्रव्य मेरा है" ऐसा अनुभवता है । कैसा है सर्वज्ञका ज्ञान ? जिसने समस्त संदेहविपर्यय अनध्यवसाय दूर कर दिये है । फिर कैसा है ? समस्त वस्तुके प्रकाशनेको एक अद्वितीय ज्योति है । ऐसे ज्ञानकर दिखलाया है । और कदाचित् किसीतरह जैसे लोंन तो जलरूप हो जाता है तथा जल लोंनरूप हो जाता है उसीतरह जीवद्रव्य तो पुद्गलरूप होवे तथा पुद्गलद्रव्य जीवरूप होवे तो तेरी "पुद्गलद्रव्य मेरा है" ऐसी अनुभूति बन सकती है । ऐसा तो किसीतरह भी द्रव्यस्वभाव बदल नहीं सकता ।

---

१ आत्मविनाशक ।

नापि जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यीभूतं स्यात्। पुद्गलद्रव्यं च जीवद्रव्यीभूतं स्यात् तदैव लवणस्योदकमिव ममेदं पुद्गलद्रव्यमित्यनुभूतिः किल घटेत तत्तु न कथंचनापि स्यात्। तथाहि—यथा क्षारत्वलक्षणं लवणमुदकीभवत् द्रवत्वलक्षणमुदकं च लवणीभवत् क्षारत्वद्रवत्वसहवृत्त्यविरोधादनुभूयते न तथा नित्योपयोगलक्षणं जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यीभवत् नित्यानुपयोगलक्षणं पुद्गलद्रव्यं च जीवद्रव्यीभवत् उपयोगानुपयोगयोः प्रकाशतमसोरिव सह-

---

नैव **सो** न जीवः **पुग्गलदव्वीभूदो** पुद्गलद्रव्यतां गतः **जीवो** जीवः **जीवत्तं** जीवत्वं **आगदं** आगतं प्राप्तं **इदरं** इतरत् शरीरपुद्गलद्रव्यं **तो सक्का वुत्तुं** ततः शक्यं वक्तुं **जे** यो अथवा यत्कारणात् **मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं** ममेदं पुद्गलद्रव्यमिति। ननु यथा वर्षासु लवणमुदकीभवति ग्रीष्मकाले जलं लवणीभवति। तथा यदि चैतन्यं विहाय जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यरूपेण परिणमति पुद्गलद्रव्यं च मूर्तत्वमचेतनत्वं विहाय चिद्रूपं चामूर्तत्वं च भजति तदा भवदीयवचनं सत्यं भवति। न च दृश्यते न च तथा, प्रत्यक्षविरोधात्। ततो जीवद्रव्य

नहीं इसतरह अनुभव कराते हैं, जैसे क्षारपने स्वभाववाला लोंन तो जलरूप हुआ दीखता है और द्रवत्वलक्षणवाला जल लोंनरूप हुआ देखा जाता है क्योंकि लोंनका क्षारपना तथा जलका द्रवपना इन दोनोंके साथ रहनेमें अविरोध है इसमें कोई बाधा नहीं है। उसी तरह नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य तो पुद्गलद्रव्य हुआ नहीं दीखनेमें आता और नित्य अनुपयोग (जड) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हुआ नहीं दीखता क्योंकि प्रकाश तथा अंधकार इन दोनोंकी तरह उपयोग तथा अनुपयोगके साथ रहनेका विरोध है, जड चेतन ये दोनों किसी समय भी एक नहीं हो सकते। इसलिये तू सबतरहसे प्रसन्न हो अर्थात् अपना चित्त उज्वलकर सावधान हो, अपने ही द्रव्यको अपने अनुभवरूप कर, ऐसा श्रीगुरुओंका उपदेश है॥ **भावार्थ**—यह अज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्यको अपना मानता है उसको उपदेशकर सावधान किया है कि सर्वज्ञने ऐसा देखा है जो जड और चेतनद्रव्य ये दोनों सर्वथा जुदे २ हैं कदाचित् किसतरहसे भी एकरूप नहीं होते। इसकारण हे अज्ञानी तू परद्रव्यको एकपनेकर मानना छोड़ दे ऐसा वृथा माननेमें कुछ लाभ नहीं है॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं। **अयि** इत्यादि। **अर्थ**—"अयि" ऐसा कोमल आमंत्रण (संबोधन) अर्थमें अव्यय है। उससे कहते हैं कि हे भाई तू किसीतरह भी महान् कष्टसे अथवा मरणावस्थाको प्राप्तहुआ भी तत्त्वोंका कौतूहली हुआ इस शरीरादि मूर्तद्रव्यका एक मुहूर्त (दो घड़ी) पडोसी होकर आत्माका अनुभव कर, जिससे कि अपने आत्माको विलासरूप सर्व परद्रव्योंसे जुदा देखकर इस शरीरादि मूर्तीक पुद्गलद्रव्यके साथ एकपनेके मोहको शीघ्र ही छोड़ सकेगा॥ **भावार्थ**—जो यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्यसे भिन्न अपने शुद्धस्वरूपका अनुभव

वृत्तिविरोधादनुभूयते । तत्सर्वथा प्रसीद विबुध्य स्वद्रव्यं ममेदमित्यनुभव । "अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन् अनुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्त । पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहं ॥ २३ ॥" २३ । २४ । २५ ॥

अथाहाप्रतिबुद्धः;—

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव ।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥ २६ ॥

यदि जीवो न शरीरं तीर्थकराचार्यसंस्तुतिश्चैव ।
सर्वापि भवति मिथ्या तेन तु आत्मा भवति देहः ॥ २६ ॥

यदि य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यं न भवेत्तदा—"कांत्यैव स्नपयंति ये दशदिशो

देहाद्भिन्नममूर्तं शुद्धबुद्धैकस्वभावं सिद्धमिति । एवं देहात्मनोर्भेदज्ञानं ज्ञात्वा मोहोदयोत्पन्नसमस्तविकल्पजालं त्यक्त्वा निर्विकारचैतन्यचमत्कारमात्रे निजपरमात्मतत्त्वे भावना कर्त्तव्येति तात्पर्य । इत्यप्रतिबुद्धसंबोधनार्थं पंचमस्थले गाथात्रयं गतं ॥ २३ । २४ । २५ ॥ अथ पूर्वपक्षपरिहाररूपेण गाथाष्टक कथ्यते, तत्रैकगाथायां पूर्वपक्षः गाथाचतुष्टये निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण परिहारः । गाथात्रये निश्चयस्तुतिरूपेण परिहार इति षष्ठस्थले समुदायपातनिका । तद्यथा प्रथमतस्तावत् यदि जीवशरीरयोरेकत्वं न भवति तदा तीर्थकराचार्यस्तुतिर्वृथा भवतीत्यप्रतिबुद्धशिष्यः पूर्वपक्षं करोति;— **जदि जीवो ण सरीरं** हे भगवन् यदि जीवः शरीरं न भवति **तित्थयरायरियसंथुदी चेव** तर्हि "द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलावित्यादि" तीर्थकरस्तुतिः "देसकुलजाइसुद्धा"

करे (उसमें लीन होवे) परीषह (कष्ट) आनेपर भी चिगै नहीं तो घातिकर्मका नाशकर केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्षको प्राप्त होसकता है । आत्मानुभवका ऐसा माहात्म्य है तब मिथ्यात्वका नाशकर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना तो सुगम है । इसलिये श्रीगुरुओंने यही प्रधानतासे उपदेश किया है ॥ २३।२४।२५ ॥

आगे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) जीव कहता है उसकी गाथा कहते हैं;—अप्रतिबुद्ध कहता है कि [**यदि**] जो [**जीवः**] जीव है वह [**शरीरं न**] शरीर नहीं है तो [**तीर्थकराचार्यसंस्तुतिः**] तीर्थकर और आचार्योंकी स्तुति करना है वह [**सर्वापि**] सब ही [**मिथ्या भवति**] मिथ्या (झूठ) हो जाय [**तेन तु**] इसलिये हम समझते हैं कि [**आत्मा**] आत्मा [**देहः चैव**] यह देह ही [**भवति**] है ॥ **टीका**—जो आत्मा है वह पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर ही है । ऐसा न हो तो तीर्थंकर व आचार्योंकी जो स्तुति कीगई है वह सब मिथ्या हो जायगी । वह स्तुति इसतरह है । **कांत्यैव** इत्यादि । **अर्थ**—वे तीर्थंकर व आचार्य वंदने योग्य हैं। कैसे हैं वे ? अपने शरीरकी कांतिकर दशों दिशाओंको धोते हैं निर्मल करते हैं और अपने तेजकर उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादिकके तेजको भी छिपा देते हैं । वे अपने रूपसे

धाम्ना निरुंधंति ये धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णंति रूपेण ये । दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ॥२४॥"॥२६॥

ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो ॥ २७ ॥

व्यवहारनयो भाषते जीवो देहश्च भवति खल्वेकः ।
न तु निश्चयस्य जीवो देहश्च कदाप्येकार्थः ॥ २७ ॥

इह खलु परस्परावगाढावस्थायामात्मशरीरयोः समवर्तितावस्थायां कनककलधौतयोरेकस्कंधव्यवहारवद्व्यवहारमात्रेणैवैकत्वं न पुनर्निश्चयतः । निश्चयतो ह्यात्मशरीरयोरुपयो-

---

इत्याचार्यस्तुतिश्च **सव्वावि हवदि मिच्छा** सर्वापि भवति मिथ्या **तेण दु आदा हवदि देहो** तेन त्वात्मा भवति देहः । इति ममैकांतिकी प्रतिपत्तिः । एवं पूर्वपक्षगाथा गता ॥ २६ ॥ हे शिष्य यदुक्तं त्वया तन्न घटते यतो निश्चयव्यवहारनयपरस्परसाध्यसाधकभावं न जानासि त्वमिति;—**ववहारणयो भासदि** व्यवहारनयो भाषते ब्रूते । किं ब्रूते । **जीवो देहो य हवदि खलु इक्को** जीवो देहश्च खल्वेकः **ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो** न तु निश्चयस्याभिप्रायेण जीवो देहश्च

लोकोंका मन हरलेते हैं और दिव्यध्वनि (वाणी)कर भव्योंके कानोंमें साक्षात् सुख अमृत वरसाते हैं तथा एक हजार आठ लक्षणोंको धारण करते हैं ऐसे हैं । इत्यादिक तीर्थंकरोंकी स्तुति है वह सभी मिथ्या ठहरेगी । इसलिये हमारे तो यही एकांतसे निश्चय है कि आत्मा है वह शरीर ही है पुद्गलद्रव्य ही है । ऐसा अप्रतिबुद्धने कहा । उसको आचार्य उत्तर देते हैं कि इसतरह नहीं है तूने नयविभाग नहीं समझा है ॥ २६ ॥

वह नयविभाग ऐसा है उसको गाथामें कहते हैं;–**[व्यवहारनयः]** व्यवहारनय तो **[भाषते]** ऐसा कहती है कि **[जीवः च देहः]** जीव और देह **[एकः खलु]** एक ही **[भवति]** है **[च]** और **[निश्चयनयस्य]** निश्चयनयका कहना है कि **[जीवः देहः तु]** जीव और देह ये दोनों तो **[कदापि]** कभी **[एकार्थः]** एकपदार्थ **[न]** नहीं हो सकते ॥ **टीका**—जैसे इस लोकमें सुवर्ण और चादीको गलाकर एक करनेसे एक पिंडका व्यवहार होता है उसी तरह आत्माके और शरीरके परस्पर एक जगह रहनेकी अवस्था होनेसे एकपनेका व्यवहार होता है । इसतरह व्यवहारमात्रकर ही आत्मा और शरीरका एकपना है परंतु निश्चयसे एकपना नहीं है क्योंकि पीले और सफेद स्वभाववाले सोना चांदी हैं उनको जब निश्चयसे विचारा जाय तब अत्यंत भिन्नपना होनेसे एक पदार्थपनेकी असिद्धि है, इसलिये अनेकपना ही है । उसीतरह आत्मा और शरीर उपयोग तथा अनुपयोगस्वभाव हैं । उन दोनोंके अत्यंत भिन्नपना होनेसे एक पदार्थपनेकी प्राप्ति नहीं है इसलिये अनेकपना

गातुपयोगस्वभावयोः कनककलधौतयोः पीतपांडुरत्वादिस्वभावयोरिवात्यंतव्यतिरिक्तत्वेनै-कार्थत्वानुपपत्तेः नानात्वमेव हि किल नयविभागः । ततो व्यवहारनयेनैव शरीरस्तवने-नात्मस्तवनमुपपन्नं ॥ २७ ॥

तथाहि;—

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी ।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥ २८ ॥

इदमन्यत् जीवाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनिः ।
मन्यते खलु संस्तुतो वंदितो मया केवली भगवान् ॥ २८ ॥

यथा कलधौतगुणस्य पांडुरत्वस्य व्यपदेशेन परमार्थतोऽतत्स्वभावस्यापि कार्त्तस्वरस्य व्यवहारमात्रेणैव पांडुरं कार्त्तस्वरमित्यस्ति व्यपदेशः । तथा शरीरगुणस्य शुक्लोहितत्वादेः

कदाचित्काले एकार्थः एको भवति । यथा कनककलधौतयोः समावर्त्तितावस्थायां व्यवहारेणै-कत्वेपि निश्चयेन भिन्नत्वं तथा जीवदेहयोरिति भावार्थः । ततःकारणात् व्यवहारनयेन देह-स्तवनेनात्मस्तवन युक्तं भवतीति नास्ति दोषः ॥ २७ ॥ तथाहि;—**इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी** इदमन्यद्भिन्नं जीवात्सकाशाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनिः । **मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं** पश्चाद्व्यवहारेण मन्यते सस्तुतो

ही है । ऐसा यह प्रगट नयविभाग है इसकारण व्यवहारनयकर शरीरकी स्तुति कर-नेसे ही आत्माकी स्तुति होसकती है । **भावार्थ**—व्यवहारनय तो आत्मा और शरी-रको एक कहती है और निश्चयनय भिन्न कहती है इसलिये व्यवहारनयकर शरीरके स्तवन करनेसे आत्माका स्तवन माना जाता है ॥ २७ ॥

यही वात आगेकी गाथामें कहते हैं,–[**जीवात् अन्यं**] जीवसे भिन्न [**इमं पुद्गलमयं देहं**] इस पुद्गलमयी देहकी [**स्तुत्वा**] स्तुतिकरके [**मुनिः**] साधु [**मन्यते खलु**] असलमें ऐसा मानता है कि [**मया**] मैंने [**केवली-भगवान्**] केवलीभगवानकी [**स्तुतः**] स्तुति की और [**वंदित**] वंदना (नमस्कार) की ॥ **टीका**—जैसे रूपा (चांदी) का गुण श्वेतपना उसके नामसे सुवर्णको भी श्वेत नामसे कहते हैं सो व्यवहारमात्रसे कहते हैं । परमार्थ (वास्तव) में विचाराजाय तब सुवर्णका स्वभाव सफेद नहीं है पीला है उसी तरहसे शुक्ल रक्तपना आदिक शरीरके गुण है उसके स्तवनसे तीर्थंकर केवली पुरुषोंको "शुक्ल हैं रक्त है" ऐसा स्तवनद्वारा कहाजाता है सो यह स्तवन व्यवहारमात्रकर है । परमार्थसे विचारा-जाय तब शुक्लरक्तपना तीर्थंकर केवलीपुरुषका स्वभाव नहीं है । इसकारण निश्चय-नयकर शरीरका स्तवन करनेसे आत्माका स्तवन नहीं वन सकता । यहां कोई प्रश्न करे कि व्यवहारनय तो असत्यार्थ कहा है और शरीर जड़ है सो व्यवहारके आश्रय

स्तवनेन परमार्थतोऽतत्स्वभावस्यापि तीर्थकरकेवलिपुरुषस्य व्यवहारमात्रेणैव शुक्ललोहितस्तीर्थकरकेवलिपुरुष इत्यस्ति स्तवनं । निश्चयनयेन तु शरीरस्तवेन नात्मस्तवनमनुपपन्नमेव ॥ २८ ॥

तथाहि;—

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।
केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥ २९ ॥

तन्निश्चयेन न युज्यते न शरीरगुणा हि भवंति केवलिनः ।
केवलिगुणान् स्तौति यः स तत्त्वं केवलिनं स्तौति ॥ २९ ॥

यथा कार्तस्वरस्य कलधौतगुणस्य पांडुरत्वस्याभावान्न निश्चयतस्तद्व्यपदेशेन व्यपदेशः कार्तस्वरगुणस्य व्यपदेशेनैव कार्तस्वरस्य व्यपदेशात्, तथा तीर्थकरकेवलिपुरुषस्य शरीर-

---

वंदितो मया केवली भगवानिति । यथा सुवर्णरजतैकत्वे सति शुक्लं सुवर्णमिति व्यवहारो न निश्चयः तथा शुक्लरक्तोत्पलवर्णः केवलिपुरुष इत्यादिदेहस्तवने व्यवहारेणात्मस्तवनं भवति न निश्चयनयेनेति तात्पर्यार्थः ॥ २८ ॥ अथ निश्चयनयेन शरीरस्तवने केवलिस्तवनं न भवतीति दृढयति,— **तं णिच्छये ण जुज्जदि** तत्पूर्वोक्तदेहस्तवने सति केवलिस्तवनं निश्चयेन न युज्यते । कथमिति चेत् । **ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो** यतः कारणाच्छरीरगुणा शुक्लकृष्णादयः केवलिनो न भवति । तर्हि कथं केवलिनः स्तवनं भवति ? **केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि** केवलिगुणान् अनतज्ञाना-

---

जड़की स्तुतिका कहां फल है । उसका उत्तर । व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है निश्चयको प्रधानकर असत्यार्थ कही है छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) को अपना परका आत्मा साक्षात् दीखता नही है शरीर ही दीखता है उसकी शांतरूप मुद्राको देख अपने भी शांतभाव हो जाते हैं । ऐसा उपकार जान शरीरके आश्रयसे भी स्तुति करता है तथा शांतमुद्रा देख अंतरंगमें वीतरागभावका निश्चय होता है यह भी उपकार है ॥ २८ ॥

ऊपरकी बातको गाथासे कहते हैं,–[**तत्**] वह स्तवन [**निश्चये**] निश्चयमें [**न युज्यते**] ठीक नहीं है [**हि**] क्योंकि [**शरीरगुणाः**] शरीरके गुण [**केवलिनः**] केवलीके [**न भवंति**] नहीं हैं । [**यः**] जो [**केवलिगुणान्**] केवलीके गुणोंकी [**स्तौति**] स्तुति करता है [**स**] वही [**तत्त्वं**] परमार्थसे [**केवलिनं**] केवलीकी [**स्तौति**] स्तुति करता है ॥ **टीका**—जैसे सुवर्णमे चांदीके सफेद गुणका अभाव है इसलिये निश्चयसे सफेदपनेके नामसे सोनेका नाम नहीं बनता, सुवर्णके गुण जो पीतपना आदि हैं उनके ही नामसे सुवर्णका नाम होता है । उसीतरह तीर्थंकर केवली पुरुषमें शरीरके शुक्ल रक्तपना आदि गुणोंका अभाव है, इसलिये

गुणस्य शुक्ललोहितत्वादेरभावान्न निश्चयतस्तत्स्तवनेन स्तवनं तीर्थंकरकेवलिपुरुषगुणस्य स्तवनेनैव तीर्थंकरकेवलिपुरुषस्य स्तवनात् ॥ २९ ॥

कथं शरीरस्तवनेन तदधिष्ठातृत्वादात्मनो निश्चयेन स्तवनं न युज्यते इति चेत्;—

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥ ३० ॥

नगरे वर्णिते यथा नापि राज्ञो वर्णना कृता भवति ।
देहगुणे स्तूयमाने न केवलिगुणाः स्तुता भवंति ॥ ३० ॥

तथाहि—"प्राकारकवलितांवरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलं । पिवतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालं ॥ २५ ॥" इति नगरे वर्णितेपि राज्ञः तदधिष्ठातृत्वेपि प्राकारोपवनपरिखादिमत्त्वाभावाद्वर्णनं न स्यात् । तथैव—"नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यं । अक्षोभमिव समुद्रं जिनेंद्ररूपं परं जयति ॥ २६ ॥"

दीन् स्तौति यः स तत्त्वं वास्तवं स्फुटं वा केवलिनं स्तौति । यथा शुक्लवर्णरजतशब्देन सुवर्णं भण्यते तथा शुक्लादिकेवलिशरीरस्तवनेन चिदानंदैकस्वभावं केवलिपुरुषस्तवनं निश्चयनयेन न भवतीत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥ अथ शरीरप्रभुत्वेपि सत्यात्मनः शरीरस्तवनेनात्मस्तवनं न भवति निश्चयनयेन । तत्र दृष्टांतमाह यथा प्राकारोपवनखातिकादिनगरवर्णने कृतेपि नैव राज्ञो वर्णना

निश्चयसे शरीरके गुणोंके स्तवन करनेसे तीर्थंकर केवली पुरुषका स्तवन नहीं होता । तीर्थंकर केवली पुरुषके गुणोंके स्तवनकरनेसे ही केवलीका स्तवन होता है ॥ २९ ॥

आगे शिष्यका प्रश्न है कि आत्मा तो शरीरके ही आधार है इसलिये शरीरकी स्तुति करनेसे आत्माका स्तवन निश्चयकर क्यों ठीक नहीं है ऐसे प्रश्नका उत्तररूप गाथा दृष्टांतसहित कहते हैं,—[**यथा**] जैसे [**नगरे**] नगरका [**वर्णिते**]वर्णन करनेपर [**राज्ञः वर्णना**] राजाका वर्णन [**नापि कृता**] नहीं किया [**भवंति**] होता उसीतरह [**देहगुणे स्तूयमाने**] देहके गुणोंका स्तवन होनेसे [**केवलिगुणाः**] केवलीके गुण [**स्तुता न**] स्तवनरूप किये नहीं [**भवंति**] होते । इसी अर्थका टीकामें काव्य कहा गया है । **प्राकार** इत्यादि । **अर्थ**—यह नगर ऐसा है कि जिसने कोट (परकोटा) कर आकाशको ग्रस लिया है अर्थात् इसका कोट बहुत ऊंचा है । वगीचोंकी पंक्तियोंसे जिसने भूमितलको निगल लिया है अर्थात् चारों ओर वागोंसे पृथ्वी ढक गई है । कोटके चारों तरफ खाईके घेरेसे मानों पातालको पी रहा है अर्थात् खाई बहुत गहरी है । ऐसे नगरका वर्णन करते हैं यद्यपि इसके आधार राजा है तो भी कोट बाग खाई आदि सहित राजा नहीं है इसलिये इससे राजाका वर्णन नहीं हो सकता ॥ उसीतरह तीर्थंकरका स्तवन शरीरकी स्तुति करनेसे नहीं होसकता ॥ उसका श्लोक भी कहते हैं । **नित्य** इत्यादि । **अर्थ**—

इति शरीरे स्तूयमानेपि तीर्थकरकेवलिपुरुषस्य तदधिष्ठातृत्वेपि सुस्थितसर्वांगत्वलावण्यादिगुणाभावात्स्तवनं न स्यात् ॥ ३० ॥

अथ निश्चयस्तुतिमाह तत्र ज्ञेयज्ञायकसंकरदोषपरिहारेण तावत्;—

जो इंदिये जिणत्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥ ३१ ॥

यः इंद्रियाणि जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानं ।
तं खलु जितेंद्रियं ते भणंति ये निश्चिताः साधवः ॥ ३१ ॥

यः खलु निरवधिबंधपर्यायवशेन प्रत्यस्तमितसमस्तस्वपरविभागानि निर्मलभेदाभ्यासकौशलोपलब्धांतःस्फुटातिसूक्ष्मचित्स्वभावावष्टंभवलेन शरीरपरिणामापन्नानि द्रव्येंद्रियाणि

कृता भवति तथा शुक्लादिदेहगुणस्तूयमानेप्यनंतज्ञानादिकेवलिगुणाः स्तुता न भवतीत्यर्थः । इति निश्चयव्यवहाररूपेण गाथाचतुष्टयं गतं ॥ ३० ॥ अथानंतरं यदि देहगुणस्तवनेन निश्चयस्तुतिर्न भवति तर्हि कीदृशी भवतीति पृष्टे सति द्रव्येंद्रियभावेंद्रियपचेंद्रियविषयान् स्वसंवेदनलक्षणज्ञानेन जित्वा योसौ शुद्धमात्मान सचेतयते स जिन इति जितेंद्रिय इति सा चैव निश्चयस्तुतिपरिहारं ददाति । **जो इंदिये जिणत्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं** यः कर्त्ता द्रव्येंद्रियभावेंद्रियपंचेद्रियविषयान् जित्वा शुद्धज्ञानचेतनागुणेनाधिक परिपूर्ण शुद्धात्मान मनुते जानात्यनुभवति संचेतयति **तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू** तं पुरुष खलु स्फुटं जितेंद्रियं भणति ते साधवः ।

जिनेंद्रका रूप (मूर्ति) सबसे उत्कृष्ट जयवंत हो । कैसा है ? हमेशा अविकार है अच्छी तरह सुखरूप सर्वांग जिसमें स्थित है, अपूर्व है, स्वाभाविक अर्थात् जन्मसे ही लेकर जिसमें लावण्य उत्पन्न है यानी सबको प्रिय लगता है, समुद्रकी तरह क्षोभ रहित है चलाचल नहीं है ॥ इस प्रकार शरीरकी स्तुति कही । यद्यपि तीर्थंकर केवली पुरुषके शरीरका अधिष्ठातापना है तौ भी सुस्थित सर्वांगपना लावण्यपना आत्माका गुण नहीं है । इसलिये तीर्थंकर केवली पुरुषके इन गुणोंका अभाव होनेसे उनकी स्तुति नहीं हो सकती ॥ ३० ॥

अब जिसतरह तीर्थंकर केवलीकी निश्चयस्तुति हो सकती है उसरीतिसे कहते हैं उसमें भी पहले ज्ञेय ज्ञायकके संकरदोषका परिहारकर स्तुति कहते हैं,— [**यः**] जो [**इंद्रियाणि**] इंद्रियोंको [**जित्वा**] जीतकर [**ज्ञानस्वभावाधिकं**] ज्ञानस्वभावकर अन्यद्रव्यसे अधिक [**आत्मानं**] आत्माको [**जानाति**] जानता है [**तं खलु**] उसको नियमसे [**ये निश्चिताः साधवः**] जो निश्चयनयमें स्थित साधुलोक हैं [**ते**] वे [**जितेंद्रिय**] जितेंद्रिय ऐसा [**भणंति**] कहते हैं ॥

टीका—जो मुनि द्रव्येंद्रिय, भावेंद्रिय तथा इंद्रियोंके विषयोंके पदार्थ इन तीनोंको ही

प्रतिविशिष्टस्वस्वविषयव्यवसायितया खंडशः आकर्षति प्रतीयमानाखंडैकचिच्छक्तितया भावेंद्रियाणि ग्राह्यग्राहकलक्षणसंबंधप्रत्यासत्तिवशेन सह संविदा परस्परमेकीभूतानि च चिच्छक्तेः स्वयमेवानुभूयमानासंगतया भावेंद्रियावगृह्यमाणान् स्पर्शादीनिंद्रियार्थांश्च सर्वथा स्वतः पृथक्करणेन विजित्योपरतसमस्तज्ञेयज्ञायकसंकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं विश्वस्याप्यस्योपरि तरता प्रत्यक्षोद्योततया नित्यमेवांतःप्रकाशमानेनानपायिना स्वतः सिद्धेन परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन सर्वेभ्यो द्रव्यांतरेभ्यः परमार्थतोतिरिक्तमात्मानं संचेतयते

के ते । ये निश्चिताः निश्चयज्ञा इति । किंच ज्ञेयाः स्पर्शादिपंचेंद्रियविषयाः ज्ञायकानि स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियभावेंद्रियाणि तेषां योसौ जीवेन सह संकरः संयोगः संबंधः स एव दोषः तं

अपनेसे जुदाकर सब अन्य द्रव्योंसे भिन्न अपने आत्माको अनुभवता है वह निश्चयसे जितेंद्रिय है । कैसे हैं द्रव्येंद्रिय ? अनादि अमर्यादरूप बंधपर्यायके वशसे जिन कर समस्त स्वपरका विभाग नष्ट होगया है और जो शरीरपरिणामको प्राप्त हुए हैं अर्थात् आत्मासे ऐसे एक होरहे हैं कि भेद नहीं दीखता । उनको तो निर्मल भेदके अभ्यासकी चतुराईसे प्राप्त जो अंतरंगमें प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्य स्वभाव उसके अवलंबनसे (सहायतासे) अपनेसे जुदे किये है यही जीतना हुआ । कैसे हैं भावेंद्रिय ? जुदे जुदे विशेषोंको लिये हुए जो अपने विषय उनमें व्यापारपनेसे विषयोंको खंडखंड ग्रहण करते हैं अर्थात् ज्ञानको खंड खंडरूप जनाते है उनको प्रतीतिमें आती हुई अखंड एक चैतन्यशक्तिकर अपनेसे जुदे जानता है । इनका यही जीतना हुआ । इंद्रियोंके विषभूत पदार्थ कैसे हैं ? ग्राह्य ग्राहक स्वरूप संबंधीकी निकटताके वशसे अपने संवेदन (अनुभव) कर सहित परस्पर एक सरीखे होगये हों ऐसे दीखते हैं, उनको अपनी चैतन्य शक्तिके अपने आप अनुभवमें आता हुआ जो असंगपना (अमिलमिलाप)' उसकर भावेंद्रियसे ग्रहण किये हुए स्पर्शादिक पदार्थोंको अपनेसे जुदा किया है । इनका यही जीतना । इसतरह इंद्रिय ज्ञानके और विषयभूत पदार्थोंके ज्ञेय ज्ञायकका संकर नामा दोष आता था उसके दूर होनेसे आत्मा एकपनेमें टंकोत्कीर्ण स्थित हुआ । जैसे टांकीसे उकीरी पत्थरमें मूर्ति एकाकार जैसीकी तैसी ठहरती है उसीतरह ठहरा यह ऐसा कैसे मालूम हुआ ? समस्त पदार्थोंके ऊपर तरता जानता हुआ भी उनरूप नहीं होता प्रत्यक्ष उद्योतपनेकर नित्य ही अंतरंगमें प्रकाशमान, अविनश्वर, आपहीसे सिद्ध हुआ और परमार्थरूप ऐसा भगवान ज्ञानस्वभावकर सब अन्यद्रव्योंसे परमार्थकर जुदा जाना । क्योंकि ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतनद्रव्योंमें नहीं है इसलिये सबसे अधिक जुदा ही है । ऐसे आत्माको जो जानें वह जितेंद्रिय जिन है । इसप्रकार एक निश्चयस्तुति तो यह हुई । यहां ज्ञेय तो इंद्रियोंके विषयभूत पदार्थ और ज्ञायक आप आत्मा इन दोनोंका विषयोंकी आसक्ततासे अनुभव एकसा होता था सो भेदज्ञानकर भिन्नपना जाना तब ज्ञेय ज्ञायक संकर दोष दूर हुआ

स खलु जितेंद्रियो जिन इत्येका निश्चयस्तुतिः ॥ ३१ ॥

अथ भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण;—

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥ ३२ ॥

यो मोहं तु जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानं।
त जितमोह साधुं परमार्थविज्ञायका विंदंति ॥ ३२ ॥

यो हि नाम फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकत्वेन भवंतमपि दूरत एव तदनुवृत्तेरात्मनो भाव्यस्य व्यावर्तनेन हठान्मोहं न्यक्कृत्योपरतसमस्तभाव्यभावकसंकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं विश्वस्याप्यस्योपरि तरता प्रत्यक्षोद्योतितया नित्यमेवांतःप्रकाशमानेनानपायिना स्वतः सिद्धेन परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन द्रव्यांतरस्वभावभाविभ्यः

दोष परमसमाधिबलेन योसौ जयति सा चैव प्रथमा निश्चयस्तुतिरिति भावार्थ. ॥ ३१ ॥ अथ तामेव स्तुतिं द्वितीयप्रकारेण भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण कथयति। अथवा उपशमश्रेण्यपेक्षया जितमोहरूपेणाह;—**जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं** यः पुरुषः उदयागत मोह सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यरूपनिर्विकल्पसमाधिबलेन जित्वा शुद्धज्ञानगुणेनाधिक परिपूर्णमात्मानं मनुते जानाति भावयति **तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति** तं साधु जितमोह रहितमोहं परमार्थविज्ञायका ब्रुवंति कथयं-

---

ऐसा जानना ॥ ३१ ॥

आगे भाव्य भावक संकर दोष दूरकर स्तुति कहते हैं;—**[यः तु]** जो मुनि **[मोहं]** मोहको **[जित्वा]** जीतकर **[आत्मानं]** अपने आत्माको **[ज्ञानस्वभावाधिकं]** ज्ञानस्वभावकर अन्यद्रव्यभावोंसे अधिक **[जानाति]** जानता है **[तं साधुं]** उस मुनिको **[परमार्थविज्ञायकाः]** परमार्थके जाननेवाले **[जितमोहं]** जितमोह ऐसा **[विंदंति]** जानते हैं कहते हैं। **टीका**—जो मुनि फल देनेकी सामर्थ्यकर प्रगट उदयरूप होके भावकपनेसे प्रगट हुआ जो मोहकर्म उसे और जिसकी प्रवृत्ति उसीके अनुसार है ऐसा जो अपना आत्मा भाव्य उसको भेद ज्ञानके बलसे दूर हीसे जुदा करनेसे मोहको जुदा कर तथा तिरस्कार करनेसे जिसमें समस्त भाव्यभावक संकरदोष दूर हो गया है उस भावकर एकपना होनेपर टंकोत्कीर्ण निश्चल एक अपने आत्माको अनुभवता है वह मोहको जीतनेवाला होनेसे जिन कहलाता है। कैसा है आत्मा ? समस्त लोकके ऊपर तैरता, प्रत्यक्ष उद्योतपनेकर नित्य ही अंतरगमें प्रकाशमान, अविनाशी और आपसे ही सिद्ध हुआ परमार्थरूप भगवान् ऐसा जो ज्ञानस्वभाव उससे अन्यद्रव्यके स्वभावकर होनेवाले सब ही अन्यभावोंसे परमार्थकर

---

१ तदनुकूलस्य। २ भेदबलेन।

सर्वेभ्यो भावांतरेभ्यः परमार्थतोतिरिक्तमात्मानं संचेतयते स खलु जितमोहो जिन इति द्वितीया निश्चयस्तुतिः । एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायसूत्राण्येकादश पंचानां श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिंद्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्यातत्वाद्व्याख्येयानि । अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि ॥ ३२ ॥

अथ भाव्यभावकभावाभावेन;—

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥ ३३ ॥

जितमोहस्य तु यदा क्षीणो मोहो भवेत्साधोः ।
तदा खलु क्षीणमोहो भण्यते स निश्चयविद्भिः ॥ ३३ ॥

इह खलु पूर्वप्रक्रांतेन विधानेनात्मनो मोहं न्यक्कृत्य यथोदितज्ञानस्वभावानतिरिक्ता-

---

तीति । इय द्वितीया स्तुतिरिति । किंच भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण द्वितीया स्तुतिर्भवतीति पातनिकायां भणितं भवद्भिस्तत्कथं घटते—भाव्यो रागादिपरिणत आत्मा, भावको रंजक उदयागतो मोहस्तयोर्भाव्यभावकयोः शुद्धजीवेन सह संकरः संयोगः संबंधः स एव दोषः । तं दोषं स्वसंवेदनज्ञानबलेन योसौ परिहरति सा द्वितीया स्तुतिरिति भावार्थः । एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायसूत्राण्यैकादश पंचानां श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिंद्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्यातत्वाद्व्याख्येयानि । अनेनैव प्रकारेणान्यान्यप्यसंख्येयलोकमात्रविभावपरिणामरूपाणि ज्ञातव्यानि ॥ ३२ ॥ अथवा भाव्यभावकभावाभावरूपेण तृतीया निश्चयस्तुतिः कथ्यते । अथवा तामेव क्षपणकश्रेण्यपेक्षया क्षीणमोहरूपेणाह,—**जियमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स** पूर्वगाथाकथित-

---

अधिक है जुदा है क्योंकि ऐसा ज्ञानस्वभाव अन्य पदार्थोंमें नहीं है । ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्माको अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—ऐसे अपना आत्मा भावकरूप मोहके अनुसार प्रवृत्तिसे भाव्यरूप होकर भेदज्ञानके बलसे उसे जुदा अनुभवता है वह जितमोह जिन है । इसतरह भाव्य भावक भावके संकरदोषको दूरकर दूसरी निश्चयस्तुति है । यहां पर ऐसा आशय है कि जो श्रेणी चढनेपर मोहका उदय अनुभवमें न रहे अपने बलसे उपशमादिकर आत्माको अनुभवता है उसको जितमोह कहा है । यहांपर मोहको जीता है उसका नाश नहीं हुआ जानना । इस गाथासूत्रमें एक मोहका ही नाम लिया है इससे मोहके पदको बदलकर उसकी जगह राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय ये ग्यारह तो इस सूत्रकर और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्श ये पांच इंद्रियसूत्रकर ऐसे सोलह पद पलटनेसे सोलह सूत्र जुदे २ व्याख्यानरूप करने चाहिये और इसी उपदेशसे अन्य भी विचार लेना ॥ ३२ ॥

आगे भाव्य भावक भावके अभावकर निश्चय स्तुति कहते हैं;—[**जितमोहस्य तु**

त्मसंचेतनेन जितमोहस्य सतो यदा स्वभावभावभावनासौष्ठवावष्टंभात्तत्संतानात्यंतविनाशेन पुनरप्रादुर्भावाय भावकः क्षीणो मोहः स्यात्तदा स एव भाव्यभावकभावाभावेनैकत्वे टंकोत्कीर्णपरमात्मानमवाप्तः क्षीणमोहो जिन इति तृतीया निश्चयस्तुतिः । एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि । अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि । "एकत्वं व्यवहारतो

क्रमेण जितमोहस्य सतो जातस्य यदा निर्विकल्पसमाधिकाले क्षीणो मोहो भवेत् । कस्य । साधोः शुद्धात्मभावकस्य **तहिया हु खीणमोहो भणदि सो णिच्छयविदूहिं** तदा तु गुप्तिसमाधिकाले स साधुः क्षीणमोहो भण्यते । कैर्निश्चयविद्भिः परमार्थज्ञायकैर्गणधरदेवादिभि. । इयं तृतीया निश्चयस्तुतिरिति । भाव्यभावकभावाभावरूपेण कथं जाता स्तुतिरिति

साधोः] जिसने मोहको जीत लिया है ऐसे साधुके [**यदा**] जिससमय [**क्षीणो मोहः**] मोह क्षीण हुआ सत्तामेंसे नाश [**भवेत्**] होता है [**तदा**] उस समय [**निश्चयविद्भिः**] निश्चयके जाननेवाले [**खलु**] निश्चयकर [**सः**] उस साधुको [**क्षीणमोहः**] क्षीणमोह ऐसे नामसे [**भण्यते**] कहते है । **टीका**—इस निश्चय स्तुतिमें पूर्वोक्तविधानकर आत्मासे मोहका तिरस्कार कर जैसा कहा वैसे ज्ञान स्वभावकर अन्य द्रव्यसे अधिक आत्माका अनुभव करनेसे जितमोह हुआ, उसके जिस समय- अपने स्वभावभावकी भावनाका अच्छीतरह अवलंबन करनेसे मोहकी संतानका अत्यंत विनाश ऐसा हो जाता है कि जो फिर उसका उदय नहीं होता। ऐसा भावकरूप मोह जिससमय क्षीण होता है उस समय (भावक मोहका क्षय होने पर) आत्माके विभावरूप भाव्यभावका भी अभाव हो जाता है । इस तरह भाव्यभावकभावके अभावसे एकपना होनेपर टंकोत्कीर्ण (निश्चल) परमात्माको प्राप्त हुआ "क्षीणमोह जिन" ऐसा कहा जाता है ॥ यह तीसरी निश्चय स्तुति है ॥ **भावार्थ**—जिस समय साधु पहले अपने बलसे उपशमभावकर मोहको जीत पीछे जिससमय अपनी बड़ी सामर्थ्यसे मोहका सत्तामेंसे नाशकर ज्ञानस्वरूप परमात्माको प्राप्त होता है तब क्षीणमोह जिन कहा जाता है । यहा भी पूर्व कहा था उसीतरह मोहपदको पलटकर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन,—ये पद रखकर सोलह सूत्र पढना और व्याख्यान करना तथा इसी प्रकार उपदेशकर अन्य भी विचारना ॥ अब यहां इस निश्चय व्यवहाररूप स्तुतिके अर्थके कलशरूप काव्य कहते हैं। **एकत्वं** इत्यादि । **अर्थ**—शरीरके और आत्माके व्यवहारनयकर एकपना है तथा निश्चयनयकर एकपना नहीं है । इसीलिये शरीरके स्तवनसे आत्मा पुरुषका स्तवन व्यवहारनयकर हुआ कहा जाता है और निश्चयनयसे नहीं । निश्चयसे तो चैतन्यके स्तवनसे ही चैतन्यका स्तवन होता है । वह चैतन्यका

न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चयान्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः । स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवेन्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥ २७ ॥" "इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां नयविभजनयुक्त्यात्यंतमुच्छादितायां । अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥ २८ ॥" इत्यप्रतिबुद्धोक्तिनिरासः ॥ ३३ ॥

एवमयमनादिमोहसंताननिरूपितात्मशरीरैकत्वं संस्कारतयात्यंतमप्रतिबुद्धोपि प्रसभोज्जृंभिततत्त्वज्ञानज्योतिर्नेत्रविकारीव प्रकटोद्घाटितपटलष्टसितिप्रतिबुद्धः । साक्षात् द्रष्टारं स्वं स्वयमेव हि विज्ञाय श्रद्धाय च तं चैवानुचरितकामः स्वात्मारामस्यास्यान्यद्रव्याणां प्रत्याख्यानं किं स्यादिति पृच्छन्नित्थं वाच्यः—

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं ।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं ॥ ३४ ॥

सर्वान् भावान् यस्मात्प्रत्याख्याति परानिति ज्ञात्वा ।
तस्मात्प्रत्याख्यानं ज्ञानं नियमात् ज्ञातव्यं ॥ ३४ ॥

चेत्—भाव्यो रागादिपरिणत आत्मा भावको रजक उदयगतो मोहस्तयोर्भाव्यभावकयोर्भावः स्वरूपं तस्याभावः क्षयो विनाशः सा चैव तृतीया निश्चयस्तुतिरित्यभिप्रायः । एवं रागद्वेष इत्यादि दंडको ज्ञातव्यः ॥ ३३ ॥ इति प्रथमगाथायां पूर्वपक्षस्तदनतरं गाथाचतुष्टये निश्चय-

---

स्तवन यहांपर जितेंद्रिय, जितमोह, क्षीणमोह—ऐसे कहा वैसा है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जो अज्ञानीने तीर्थकरके स्तवनका प्रश्न किया था उसका यह नयविभागकर उत्तर दिया । उसके बलसे आत्माके और शरीरके एकपना निश्चयसे नहीं है ॥ अब फिर इसी अर्थके जाननेसे भेदज्ञानकी सिद्धि होती है ऐसा अर्थरूप काव्य कहते हैं । **इति परिचित** इत्यादि । **अर्थ**—इसतरह जिसने वस्तुका यथार्थस्वरूप परिचयरूप किया है ऐसे मुनिने आत्मा और शरीरके एकपनेको नयके विभागकी युक्तिकर अत्यंत निषेधा है । इसके होनेसे उस समयका ज्ञान यथार्थपनेको किस पुरुषके अवतार नहीं धरता (प्रगट नहीं होता) अवश्य प्रगट होता ही है । कैसा होकर ? अपने निजरसके वेगकर खेंचाहुआ एकस्वरूप होकर प्रगट होता है ॥ **भावार्थ**—निश्चय व्यवहारनयके विभागकर आत्माका और परका अत्यंत भेद दिखलाया है इसको जानकर ऐसा कौन पुरुष है कि जिसके भेदज्ञान नहीं हो ? होता ही है । क्योंकि ज्ञान अपने स्वरसकर आप अपना स्वरूप जानता है तब अवश्य आप जुदा ही अपने आत्माको जनाता है । यहां कोई दीर्घसंसारी ही होवे तो उसकी कुछ बात नहीं । इसप्रकार अप्रतिबुद्धने जो "हमें तो यह निश्चय है कि जो देह है वही आत्मा है" ऐसा कहा था उसका निराकरण (समाधान) किया ॥ ३३ ॥

आगे कहते हैं कि इसतरह यह अज्ञानी जीव अनादिके मोहकी संतानकर निरूपण

यतो हि द्रव्यांतरस्वभावभाविनोऽन्यानखिलानपि भावान् भगवज्ज्ञातृद्रव्यं स्वस्वभावभावाव्याप्यतया परत्वेन ज्ञात्वा प्रत्याचष्टे ततो य एव पूर्वं जानाति स एव पश्चात्प्रत्याचष्टे न पुनरन्य इत्यात्मनि निश्चित्य प्रत्याख्यानसमये प्रत्याख्येयोपाधिमात्रप्रवर्त्तितक-

---

व्यवहारसमर्थनरूपेण परिहारस्ततश्च गाथात्रये निश्चयस्तुतिकथनरूपेण च परिहार इति पूर्वपक्षपरिहारगाथाष्टकसमुदायेन पष्ठस्थलं गत । अथ रागादिविकल्पोपाधिरहितं स्वसवेदनज्ञानलक्षणप्रत्याख्यानविवरणरूपेण गाथाचतुष्टयं कथ्यते । तत्र स्वसवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानमिति कथनरूपेण प्रथमगाथा प्रत्याख्यानविपये दृष्टातरूपेण द्वितीया चेति गाथाद्वयं । तदनंतरं मोहपरित्यागरूपेण प्रथमगाथा ज्ञेयपदार्थपरित्यागरूपेण द्वितीया चेति गाथाद्वयं । एवं सप्तमस्थले समुदायपातनिका । तथाहि—तीर्थकराचार्यस्तुतिर्निरर्थिका भवतीति पूर्वपक्षबलेन जीवदेहयोरेकत्वं कर्तुं नायातीति ज्ञात्वा शिष्य इदानीं प्रतिबुद्धः सन् हे भगवन् रागादीनां किं प्रत्याख्यानमिति पृच्छति । इति पृच्छति कोर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति । एव प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्य' । **णाणं सव्वे भावे पचक्खाई परेत्ति णादूण** जानातीति व्युत्पत्त्या स्वसवेदनज्ञानमात्मेति भण्यते त ज्ञानं कर्तृ मिथ्यात्वरागादिभाव परस्व-

---

किया जो आत्मा और शरीरका एकपना उसके संस्कारपनेकर अत्यंत अप्रतिबुद्ध था सो अब तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योतिके प्रगट उदय होनेसे नेत्रके विकारीकी तरह (जैसे किसी पुरुषके नेत्रमें विकार था तब वर्णादिक अन्यथा दीखते थे जब विकार मिट गया तब जैसेका तैसा दीखने लगा) अच्छीतरह उघड़ गया है पटलरूप आवरणकर्म जिसका ऐसा प्रतिबुद्ध हुआ तब साक्षात् देखनेवाला अपनेको अपनेसे ही जान श्रद्धानकर उसके आचरण करनेका इच्छक हुआ पूछता है कि इस आत्मारामके अन्य द्रव्योंका प्रत्याख्यान (त्यागना) क्या है उसका समाधान आचार्य कहते हैं;–[**यस्मात्**] जिस कारण [**सर्वान् भावान्**] अपने सिवाय सभी पदार्थ [**परान्**] पर हैं [**इति ज्ञात्वा**] ऐसा जानकर [**प्रत्याख्याति**] त्यागता है [**तस्मात्**] इसकारण [**ज्ञानं**] पर हैं यह जानना ही [**प्रत्याख्यानं**] प्रत्याख्यान है [**नियमात्**] यह नियमसे जानना । अपने ज्ञानमें त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है दूसरा कुछ नहीं है ॥ **टीका**—जिसकारण यह ज्ञाता द्रव्य आत्मा भगवान् है वह अन्यद्रव्यके स्वभावसे हुए अन्य समस्त परभावोंको अपने स्वभावभावकर नहीं व्याप्त होनेसे परपनेरूप जानकर त्यागता है इसकारण जिसने पहले जाना है वही पीछे त्याग करता है दूसरा तो कोई त्यागनेवाला नहीं है। ऐसें त्यागभाव आत्मामे ही निश्चयकर, त्यागके समय प्रत्याख्यान करने योग्य जो परभाव उनकी उपाधि मात्र प्रवर्तो जो त्यागके कर्तापनेका नाम उसके होनेपर भी परमार्थसे देखा जाय तब परभावके त्यागकर्तापनेका नाम अपनेको नहीं है । आप तो इस नामसे रहित है ज्ञानस्वभावसे नहीं छूटा है इसलिये प्रत्या-

र्तृत्वव्यपदेशत्वेपि परमार्थेनाव्यपदेश्यज्ञानस्वभावादप्रच्यवनात्प्रत्याख्यानं ज्ञानमेवेत्यनुभवनीयम् ॥ ३४ ॥

अथ ज्ञातुः प्रत्याख्याने को दृष्टांत इत्यत आह;—

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि ।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी ॥ ३५ ॥

यथा नाम कोपि पुरुषः परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति ।
तथा सर्वान् परभावान् ज्ञात्वा विमुंचति ज्ञानी ॥ ३५ ॥

यथा हि कश्चित्पुरुषः संभ्रांत्या रजकात्परकीयं चीवरमादायात्मीयप्रतिपत्त्या परिधाय शयानः स्वयमज्ञानी सन्नन्येन तदंचलमालंब्य बलान्नग्नीक्रियमाणो मंक्षु प्रतिबुध्यस्वार्पय

रूपमिति ज्ञात्वा प्रत्याख्याति त्यजति निराकरोति **तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं** तस्मात्कारणात् निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यान नियमान्निश्चयात् मंतव्यं ज्ञातव्यमनुभवनीयमिति । इदमत्र तात्पर्य्यं—परमसमाधिकाले स्वसंवेदनज्ञानबलेन शुद्धमात्मात्मानमनुभवति तदेवानुभवनं निश्चयप्रत्याख्यानमिति ॥ ३४ ॥ अथ प्रत्याख्यानविषये दृष्टातमाह;— **जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि** यथा नाम अहो स्फुट वा कश्चित्पुरुषो वस्त्राभरणादिकं परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति **तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी** तथा तेन प्रकारेण सर्वान् मिथ्यात्वरागादिपरभावान् पर्यायान् स्वसंवेदनज्ञा-

---

ख्यान ज्ञान ही है ऐसा अनुभव करना चाहिये ॥ **भावार्थ**—आत्माको परभावके त्यागका कर्तापना है वह नाम मात्र है । आप तौ ज्ञानस्वभाव है । परद्रव्यको पर जाना फिर परभावका ग्रहण नहीं यही त्याग है । ऐसा जानना ही प्रत्याख्यान है । ज्ञानके सिवाय कुछ भी दूसरा भाव नहीं है ॥ ३४ ॥

आगे पूछते हैं कि ज्ञाताके प्रत्याख्यान ज्ञान ही कहा है इसका दृष्टांत क्या है ? उसके उत्तररूप दृष्टांतदार्ष्टांतकी गाथा कहते हैं;–[**यथा नाम**] जैसे लोकमे [**कोपि पुरुषः**] कोई पुरुष [**परद्रव्यं इति ज्ञात्वा**] परवस्तुको ऐसा जानता है कि यह परवस्तु है तब ऐसा जान [**त्यजति**] परवस्तुको त्यागता है [**तथा**] उसी तरह [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**सर्वान्**] सब [**परभावान्**] परद्रव्योंके भावोंको [**ज्ञात्वा**] ये परभाव हैं ऐसा जानकर [**विमुंचति**] उनको छोड़ता है ॥ **टीका**-जैसे कोई पुरुष धोबीके घरसे दूसरेका वस्त्र लाकर उसे भ्रमसे अपना समझ ओढकर सोगया । आप ऐसा नहीं जाना कि यह दूसरेका है । उसके बाद दूसरेने उस वस्त्रका पल्ला (कोंना) पकड खेंचकर उघाड़के नंगा किया और कहा कि "तू शीघ्र जाग सावधान हो मेरा वस्त्र बदलेमे आगया है सो मेरा मुझे दे" ऐसा बारंबार (बहुतबार)

---

१ कोऽपि इत्यपि ग. पुस्तके पाठ । २ सुप्यमान. । ३ झटिति ।

परिवर्त्तितमेतद्वस्त्रं मामकमित्यसकृद्वाक्यं शृण्वन्नखिलैश्चिन्हैः सुष्ठु परीक्ष्य निश्चितमेतत्परकीयमिति ज्ञात्वा ज्ञानी सन्मुंचति तच्चीवरमचिरात् तथा ज्ञातापि संभ्रांत्या परकीयान्भावानादायात्मीयप्रतिपत्त्यात्मन्यध्यास्य शयानः स्वयमज्ञानी सन् गुरुणा परभावविवेकं कृत्वैकीक्रियमाणो मंक्षु प्रतिबुध्यस्वैकः खल्वयमात्मेत्यसकृच्छ्रौतं वाक्यं शृण्वन्नखिलैश्चिह्नैः सुष्ठु परीक्ष्य निश्चितमेते परभावा इति ज्ञात्वा ज्ञानी सन् मुचति सर्वान्भावानचिरात्। "अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यंतवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः। झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥ २९ ॥" ॥ ३५ ॥

नवलेन विशेषेण त्रिशुद्ध्या विमुचति त्यजति स्वसंवेदनज्ञानीति। अयमत्र भावार्थः—यथा कश्चिद्देवदत्तः परकीयचीवरं भ्रांत्या मदीयमिति मत्वा रजकगृहादानीय परिधाय च शयानः सन् पश्चादन्येन वस्त्रस्वामिना वस्त्रांचलमादायाच्छोद्य नग्नीक्रियमाणः सन् वस्त्रलाच्छनं निरीक्ष्य परकीयमिति मत्वा तद्वस्त्रं मुंचति तथाय ज्ञानी जीवोऽपि निर्विण्णेन गुरुणा मिथ्यात्वरागादिविभावा एते भवदीयस्वरूपं न भवति एक एव त्वमिति प्रतिबोध्यमानः सन् परकीयानिति ज्ञात्वा मुचति शुद्धात्मानुभूतिमनुभवतीति। एवं गाथाद्वय गत ॥ ३५ ॥ अथ कथ शुद्धात्मानुभूतिमनुभवतीति

वचन कहा। सो सुनता हुआ उस वस्त्रके चिह्न सब देख परीक्षाकर ऐसा जाना कि 'यह वस्त्र तो दूसरेका ही है' ऐसा जानकर ज्ञानी हुआ उस दूसरेके कपड़ेको शीघ्र ही त्यागता है। उसीतरह ज्ञानी भी भ्रमसे परद्रव्यके भावोंको ग्रहणकर अपने जान आत्मामें एकरूपकर सोता है, वेखवर हुआ आपहीसे अज्ञानी हो रहा है। जब श्रीगुरु इसको सावधान करे परभावका भेद ज्ञान कराके एक आत्मभावरूप करैं और कहैं कि "तू शीघ्र जाग सावधान हो यह तेरा आत्मा है वह एक ज्ञानमात्र है अन्य सब परद्रव्यके भाव हैं." तब वारंवार यह आगमके वाक्य सुनता हुआ समस्त अपने परके चिन्होंसे अच्छीतरह परीक्षाकर ऐसा निश्चयकर सकता है कि मैं एक ज्ञानमात्र हूं अन्य सब परभाव हैं। ऐसें ज्ञानी होकर सब परभावोंको तत्काल छोड़ देता है॥ **भावार्थ**—जबतक परवस्तुको भूलकर अपनी जानता है तबतक ही ममत्व रहता है और जब यथार्थ ज्ञान हो जानेसे परको पराई जाने तब दूसरेकी वस्तुसे ममत्व नहीं रहता यह बात प्रसिद्ध है॥ अब इसी अर्थका कलशरूपकाव्य कहते हैं। **अवतरति** इति। **अर्थ**—यह परभावके त्यागके दृष्टांतकी दृष्टि जिसतरह पुरानी न पड़ै उसतरह अत्यंतवेगसे जबतक प्रवृत्तिको नहीं प्राप्त हो उसके पहले ही तत्काल सकल अन्यभावोंकर रहित आप ही यह अनुभूति तो प्रगट हो जाती है। **भावार्थ**—यह परभावके त्यागका दृष्टांत कहा उसपर दृष्टि पड़ै उससे पहले सब अन्यभावोंसे रहित अपने स्वरूपका अनुभव तो तत्काल हो ही जाता है क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जब वस्तुको परकी जान ली तब उसके वाद ममत्व नहीं रहता॥ ३५॥

अथ कथमनुभूतेः परभावविवेको भूत इत्याशंक्य भावकभावविवेकप्रकारमाह;—

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥ ३६ ॥

नास्ति मम कोपि मोहो बुध्यते उपयोग एवाहमेकः ।
तं मोहनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायकाः विंदंति ॥ ३६ ॥

इह खलु फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकेन सता पुद्गलद्रव्येणाभिनिर्वर्त्यमानष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावभावस्य परमार्थतः परभावेन भावयितुमशक्यत्वात्कतमोपि न नाम मम मोहोस्ति किंचैतत्स्वयमेव च विश्वप्रकाशचंचुरविकस्वरानवरतप्रतापसंपदा चिच्छक्तिमात्रेण स्वभावभावेन भगवानात्मैवावबुध्यते । यत्किलाहं खल्वेकः ततः समस्तद्रव्याणां

पृष्टे सति मोहादिपरित्यागप्रकारमाह;—**णत्थि मम कोवि मोहो** नास्ति न विद्यते मम शुद्धनिश्चयेन टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावस्य सतो रागादिपरभावेन कर्तृभूतेन भावयितुं रंजयितुमशक्यत्वात्कश्चिदद्रव्यभावरूपो मोहः । **बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को** बुध्यते जानाति । स कः कर्त्ता । ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मैव । किं बुध्यते ? यतःकारणादहमेकः ततो मोह प्रति निर्ममत्वोस्मि निर्मोहो भवामि । अथवा बुध्यते जानाति । कि जानाति । विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग एवाहमेकः । **तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति** त निर्मोहशुद्धात्मभावनास्वरूपं निर्ममत्व ब्रुवति वदंति जानंति वा । के ते । समयस्य शुद्धात्मस्वरू-

---

आगे इस अनुभूतिसे परभावका भेदज्ञान किसतरह हुआ ऐसी आशंकाकर प्रथम भावक जो मोहकर्मके उदयरूप भाव उनके भेदज्ञानका प्रकार कहते हैं,—**[बुध्यते]** जो ऐसा जानें कि **[मोहः मम कोपि नास्ति]** मोह मेरा कोई भी संबंधी नहीं **[एकः उपयोग एव अहं]** एक उपयोग है वही मै हूं **[तं]** ऐसे जाननेको **[समयस्य]** सिद्धातके अथवा आपपरस्वरूपके **[विज्ञायकाः]** जाननेवाले **[मोहनिर्ममत्वं]** मोहसे निर्ममत्वपना **[विंदंति]** समझते हैं कहते हैं। **टीका**—नाम यह अव्ययपद सत्यार्थको जनाता है । अब कहते हैं कि मै सत्यार्थपनेसे ऐसा जानता हूं कि यह मोह है वह मेरा कुछ भी नहीं लगता । कैसा है यह ? इस मेरे अनुभवमें फल देनेकी सामर्थ्यकर प्रगट होके भावकरूप हुआ जो पुद्गलद्रव्य उसकर रचा हुआ है । सो यह मेरा नहीं है क्योंकि मैं तो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव हूं, यह जड़ है । सो परमार्थसे परके भावको दूसरेके भावसे चितवन नहीं कर सकते । यहां क्या समझना ? कि स्वयमेव सब वस्तुओंके प्रकाश करनेमें चतुर विकाशरूप हुई और जिसमें निरंतर हमेशा प्रतापसंपदा पायी जाती है ऐसी चैतन्यशक्ति उसमात्र स्वभावभावकर भगवान् आत्माको ही समझना जानना कि मैं परमार्थकर एक चित् शक्तिमात्र हूं । सब द्रव्योंके परस्पर साधारण एक क्षेत्रावगाह होनेसे मेरा आत्मा जडके साथ

परस्परसाधारणावगाहस्य निवारयितुमशक्यत्वान्मज्जितावस्थायामपि दधिखंडावस्थायामिव परिस्फुटस्वदमानस्वादभेदतया मोहं प्रति निर्ममत्वोस्मि। सर्वदैवात्मैकत्वगतत्वेन समयस्यैवमेव स्थितत्वात्। इतीत्थं भावकभावविवेको भूतः। "सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं। नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि॥ ३०॥" एवमेव मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्रा-

---

पस्य विज्ञायकाः पुरुषा इति। किंच विशेषः। यत्पूर्वं स्वसंवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानं व्याख्यात तस्यैवेदं निर्मोहत्वं विशेषव्याख्यानमिति। एवमेव मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनेन प्रकारे-

---

शिखरनिकी तरह एकमेक हो रहा है अर्थात् जैसे दही और शक्कर मिलानेसे शिखरन होती है उसमें दही खांड एकसे मालूम पड़ते हैं तौ भी प्रगटरूप खट्टे मीठे स्वादके भेदसे जुदे २ जाने जाते हैं उसी तरह द्रव्योंके लक्षणभेदसे जड़ चेतनका स्वरूप अनुभव करनेमें जुदा २ प्रगट मालूम हो जाता है कि मोहकर्मके उदयका स्वाद रागादिक हैं वे चैतन्यके निजस्वभावके स्वादसे जुदे ही हैं। इसलिये मोहके प्रति मैं निर्मम ही हूं। क्योंकि यह आत्मा सदा काल ही अपने एकरूपपनेको प्राप्तहुआ अपने स्वभावरूप समय महलमें विराज रहा है। इसतरह भावकभावरूप मोहके उदयसे भेदज्ञान हुआ जानना। **भावार्थ**—यह मोहकर्म जड़ पुद्गल द्रव्य है इसका उदय कलुष (मलिन) भावरूप है सो इसका भाव भी पुद्गलका विकार है यही भावकका भाव है। जब यह चैतन्यके उपयोगके अनुभवमें आता है तब उपयोग भी विकारी हुआ रागादिरूप मलिन दीखता है। और जब इसका भेदज्ञान होवे कि चैतन्यकी शक्तिकी व्यक्ति तो ज्ञानदर्शनोपयोग मात्र है तथा यह कलुषता राग द्वेष मोहरूप हैं वह द्रव्य कर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्यकी है। ऐसा भेदज्ञान हो जाय तब भावकभाव जो द्रव्य कर्मरूप मोहके भाव उनसे भेदभाव अवश्य हो सकता है और आत्मा भी अपने चैतन्यके अनुभवरूप ठहरै ही ऐसा जानना॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं। **सर्वतः** इत्यादि। **अर्थ**—मैं इस लोकमें आपहीसे अपने एक आत्मस्वरूपको अनुभवता हूं। जो मेरा स्वरूप सर्वांगकर अपने निजरसरूप चैतन्यके परिणमनकर पूर्ण (भराहुआ) भाववाला है इसीकारण यह मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता अर्थात् इसका और मेरा कुछ भी नाता नहीं है। मैं तो शुद्ध चैतन्यका समूहरूप तेजःपुंजका निधि हूं। इसतरह भावकभावका अनुभव करे। इसी प्रकार गाथामे जो मोहपद है उसे पलटकर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन ये सोलह जुदे

---

१ असंख्येयेष्वपि प्रदेशेषु स्वरसेन ज्ञानेन निर्भरं संपूर्णो भाव स्वरूप यस्य।

णरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि । अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि ॥ ३६ ॥

अथ ज्ञेयभावविवेकप्रकारमाह;—

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥ ३७ ॥

नास्ति मम धर्मादिर्बुध्यते उपयोग एवाहमेकः ।
तं धर्मनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायका विंदंति ॥ ३७ ॥

अमूनि हि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवांतराणि स्वरसविजृंभितानिवारितप्रसरविश्वघस्मरप्रचंडचिन्मात्रशक्तिकवलिततयात्यंतमंतर्मग्नानीवात्मनि प्रकाशमानानि टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावत्वेन तत्त्वतोंतस्तत्त्वस्य तदतिरिक्तस्वभावतया तत्त्वतो वहिस्तत्त्वरूपतां परित्यक्तुमशक्यत्वान्न नाम मम संति । किंचैतत्स्वयमेव च नित्यमेवोपयुक्तस्तत्त्वत एवैकम-

---

णान्यान्यप्यसंख्येयलोकमात्रप्रमितानि विभावपरिणामरूपाणि ज्ञातव्यानि ॥ ३६ ॥ अथ धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्था अपि मम स्वरूपं न भवंतीति प्रतिपादयति;—**णत्थि मम धम्म आदी** न संति न विद्यते धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्था ममेति **बुज्झदि** बुध्यते ज्ञानी । तर्हि किमहं । **उवओग एव अहमिक्को** विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग एवाहं अथवा ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादित्यभेदेनोपयोग एवात्मा स जानाति । केन रूपेण, यतोहं टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभाव एकः ततो दधिखण्डशिखिरिणीवत् व्यवहारेणैकत्वेपि शुद्धनिश्चयनयेन मम स्वरूपं न भवंतीति परद्रव्यं प्रति निर्ममत्वोस्मि **तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति**

---

२ सोलह गाथा सूत्रोंकर व्याख्यान करने और इसी उपदेशसे अन्य भी विचार लेने ॥३६॥

आगे ज्ञेयभावसे भेदज्ञान करनेकी रीति कहते हैं,—[**बुद्ध्यते**] ऐसा जाने कि [**धर्मादिः**] ये धर्म आदि द्रव्य [**मम नास्ति**] मेरे कुछ भी नहीं लगते मैं ऐसा जानता हूं कि [**एक उपयोग एव**] एक उपयोग है वही [**अहं**] मैं हूं [**तं**] ऐसा जाननेको [**समयस्य विज्ञायकाः**] सिद्धात वा स्वपरसमयरूप समयके जाननेवाले [**धर्मनिर्ममत्वं**] धर्मद्रव्यसे निर्ममत्वपना [**विंदंति**] कहते हैं । **टीका**—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, अन्यजीव ये सब ही परद्रव्य हैं वे आत्मामें प्रकाशमान हैं । कैसे हैं वे ? अपने निजरसकर प्रगट और निवारण नहीं कियाजाय ऐसा जिसका फैलाव है तथा समस्तपदार्थोंके ग्रसनेका जिसका स्वभाव है ऐसी जो प्रचंड चिन्मात्रशक्ति उसकर ग्रासीभूत होनेसे मानों अत्यंत निमग्न हो रहे है, तौ भी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावपनेकर परमार्थसे अंतरंग तत्त्व तो मैं हूं और अपने स्वरूपके अभावकर ज्ञानमें आप नहीं वैठे इस कारण वे परद्रव्य उस मेरे स्वभावसे भिन्नपना होनेकर परमार्थसे वाह्य तत्त्वपनेके छोड़नेको असमर्थ हैं धर्मआदि मेरे संवंधी नहीं है । यहां ऐसा समझना कि यह आत्मा चैतन्यसे आप ही

नाकुलमात्मानं कलयन् भगवानात्मैवावबुध्यते। यत्किलाहं खल्वेकः ततः संवेद्यसंवेदक-भावमात्रोपजातेतरेतरसंवलनेपि परिस्फुटस्वदमानस्वभावभेदतया धर्माधर्माकाशकालपुद्गल-जीवांतराणि प्रति निर्ममत्वोस्मि। सर्वदैवात्मैकत्वगतत्वेन समयस्यैवमेव स्थितत्वात् इतीत्थं ज्ञेयभावविवेको भूतः। "इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके स्वसमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं। प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः॥ ३१॥" ॥ ३७॥

अथैवं दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतस्यात्मनः कीदृक् स्वरूपसंचेतनं भवतीत्यावेदयन्नुपसंहरति;—

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि॥ ३८॥

अहमेकः खलु शुद्धो दर्शनज्ञानमयः सदारूपी।
नाप्यस्ति मम किंचिदप्यन्यत्परमाणुमात्रमपि॥ ३८॥

यो हि नामानादिमोहोन्मत्ततयात्यंतमप्रतिबुद्धः सन् निर्विण्णेन गुरुणानवरतं प्रतिबो-

---

त शुद्धात्मभावनास्वरूप परद्रव्यनिर्ममत्व समयस्य शुद्धात्मनो विज्ञायकाः पुरुषा ब्रुवंति कथ-यतीति। किंच इदमपि परद्रव्यनिर्ममत्वं यत्पूर्वं भणित स्वसंवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानं तस्यैव विशेषव्याख्यानं ज्ञातव्यं॥ ३७॥ इति गाथाद्वय गतं। एव गाथाचतुष्टयसमुदायेन सप्तमस्थलं समाप्त। अथ शुद्धात्मैवोपादेय इति श्रद्धानं सम्यक्त्वं तस्मिन्नेव शुद्धात्मनि स्वसंवेदनं सम्यग्ज्ञानं

उपयुक्त हुआ परमार्थसे अनाकुल हो उसतरह सब आकुलतासे रहित होकर एक आ-त्माका ही अभ्यास करता है सो आत्माकर आत्मा ही जाना जाता है कि मैं प्रगट निश्चयकर एक ही हूं। इसलिये ज्ञेय ज्ञायक भावमात्रसे उत्पन्न जो परद्रव्योंसे परस्पर मिलना उसके होनेपर भी प्रगट स्वादमें आताहुआ जो स्वभावका भेद उसपनेकर धर्म अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, अन्यजीव-उनके प्रति मैं निर्मम हूं। क्योंकि सदा काल ही अपनेमें एकपनेकर प्राप्त होनेसे पदार्थोंकी ऐसी ही व्यवस्था है कि अपने स्वभावको कोई नहीं छोड़ता। ऐसे अनुभव करनेसे ज्ञेयभावोंसे भेदज्ञान हुआ कहा जाता है। यहांपर इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहा है। **इति सति** इत्यादि। **अर्थ**—इसतरह पूर्वकथितरीतिसे भावकभाव और ज्ञेयभावोंसे भेदज्ञान होनेसे सभी अन्यभावोंसे जब भिन्नता हुई तब यह उपयोग आपही अपने एक आत्माको ही धारता हुआ। और जिनका परमार्थ प्रगट हुआ है ऐसे जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उनकर जिसने परिण-मन किया है ऐसा होता हुआ अपने आत्मारूपी बाग (क्रीड़ावन) मे प्रवृत्ति करता है अन्य जगह नहीं जाता। **भावार्थ**—सब परद्रव्योंसे तथा उनसे उत्पन्नहुए भावोंसे जब भेद जाना तब उपयोगको रमनेके लिये अपना आत्मा ही रहा दूसरा ठिकाना नहीं रहा। इसतरह दर्शन ज्ञान चारित्रसे एकरूप हुआ आत्मामें ही रमण करता है। ऐसा जानना॥ ३७॥

आगे इसतरह दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप परिणत हुए आत्माके स्वरूपका संचेतन कैसा होता है ऐसा कहते हुए आचार्य इस कथनको संकोचते है;—जो दर्शन ज्ञान चारित्ररूप

ध्यमानः कथंचनापि प्रतिबुध्य निजकरतलविन्यस्तविस्मृतचामीकरावलोकनन्यायेन परमेश्वरमात्मानं ज्ञात्वा श्रद्धायानुचर्य च सम्यगेकात्मारामो भूतः स खल्वहमात्मात्मप्रत्यक्षं चिन्मात्रं ज्योतिः । समस्तक्रमाक्रमप्रवर्तमानव्यावहारिकभावैश्चिन्मात्राकारेणाभिद्यमानत्वादेको नारकादिजीवविशेषाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षलक्षणव्यावहारिकनवतत्त्वे-

---

तत्रैव निजात्मनि वीतरागस्वसंवेदननिश्चलरूपं चारित्रमिति निश्चयरत्नत्रयपरिणतजीवस्य कीदृशं स्वरूपं भवतीत्यावेदयन्सन् जीवाधिकारमुपसंहरति;—**अहं** अनादिदेहात्मैक्यभ्रात्याज्ञानेन पूर्वमप्रतिबुद्धोपि करतलविन्यस्तसुप्तविस्मृतपश्चान्निद्राविनाशस्मृतचामीकरावलोकनन्यायेन परमगुरुप्रसादेन प्रतिबुद्धो भूत्वा शुद्धात्मनि रतो यः सोहं वीतरागचिन्मात्रं ज्योतिः । पुनरपि कथंभूतः । **इक्को** यद्यपि व्यवहारेण नरनारकादिरूपेणानेकस्तथापि शुद्धनिश्चयेन टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वादेकः । **खलु** स्फुटं । पुनरपि किंरूपः । **सुद्धो** व्यावहारिकनवपदार्थेभ्यः शुद्धनिश्चयनयेन भिन्नः, अथवा रागादिभावेभ्यो भिन्नोहमिति शुद्धः । पुनरपि किंविशिष्टः ।

परिणत हुआ आत्मा वह ऐसा जानता है कि **[अहं]** मैं **[एकः]** एक हूं **[शुद्धः]** शुद्ध हूं **[सदा अरूपी खलु]** निश्चयकर सदा काल अरूपी हूं **[अन्यत्]** अन्य परद्रव्य **[परमाणुमात्रमपि]** परमाणुमात्र भी **[मम किंचित्]** मेरा कुछ **[नापि अस्ति]** नहीं लगता है यह निश्चय है। **टीका**—सत्यार्थपनेसे निश्चयकर ऐसा है कि यह आत्मा अनादि कालसे लेकर मोहरूपी अज्ञानसे उन्मत्तपनेकर अत्यंत अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) था सो इसे अनुरागी गुरुने हमेशा समझाया तब किसीतरह वड़े भाग्यसे समझा सावधान हुआ । उस समय "जैसे किसीके हाथकी मुट्ठीमे पहले सुवर्ण रक्खा हो । उसे भूलकर फिर यादकर देखे" इस न्यायकर अपने परमेश्वर (सर्वसामर्थ्यके धारण करनेवाले) आत्माको भूल रहा था सो उसे जान श्रद्धानकर और उसीका आचरणरूप उससे तन्मय होकर अच्छीतरह आत्माराम हुआ। तव ऐसा जाना कि मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूं सो मैं अपनेही अनुभवसे प्रत्यक्ष जानता हूं—समस्त क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तते हुए जो व्यवहारिक भाव उनसे चिन्मात्र आकारकर तो भेदरूप नहीं हुआ इसलिये मैं एक हूं। तथा नर नारक आदि जीवके विशेष, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, वंध, मोक्षस्वरूप जो व्यावहारिक नौ तत्त्व उनसे टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावरूप भावकर अत्यंत जुदापना होनेसे मैं शुद्ध हूं। चिन्मात्रपनेसे सामान्य विशेष उपयोगको उलंघन नहीं करनेसे मैं दर्शन ज्ञानमय हूं। स्पर्श रस गंध वर्ण जिसको निमित्त है ऐसे संवेदनरूप परिणमा हूं तौभी स्पर्श आदिरूप सदाआपही परिणमनेसे वास्तवमें सदा ही अरूपी हूं। ऐसें सवसे जुदे स्वरूपको अनुभवता हुआ मैं प्रतापसहित हूं। ऐसे प्रतापरूप हुए मुझमें वाह्य अनेकप्रकार स्वरूपकी संपदाकर समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं तौ भी परमाणु-

भ्यष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावभावेनात्यंतविविक्तत्वाच्छुद्धः । चिन्मात्रतया सामान्यविशेषोपयोगात्मकतानतिक्रमणाद्दर्शनज्ञानमयः स्पर्शरसगंधवर्णनिमित्तसंवेदनपरिणतत्वेपि स्पर्शादिरूपेण स्वयमपरिणमनात्परमार्थतः सदैवारूपीति प्रत्यगहं स्वरूपं संचेतयमानः प्रतयामि । एवं प्रत्ययतश्च मम बहिर्विचित्रस्वरूपसंपदा विश्वे परिस्फुरत्यपि न किंचनाप्य-

---

दंसणणाणमइओ केवलदर्शनज्ञानमयः । पुनरपि किंरूपः । **सदारूवी** निश्चयनयेन रूपरसगंधस्पर्शाभावात्सदाप्यमूर्तः । **णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं**

मात्र द्रव्यभी मुझे अपने भावकर नहीं प्रतिभासती जिससे कि मेरे भावकपनेसे तथा ज्ञेयपनेसे मुझसे एक होकर फिर मोह उत्पन्न करे । क्योंकि मेरे निजरससे ही ऐसा महान् ज्ञान प्रगट हुआ है जिसने मोहको मूलसे उखाड़कर दूर किया है जो फिर उसका अंकुर न उपजे ऐसा नाश किया है ॥ **भावार्थ**—आत्मा अनादिकालसे लेकर मोहके उदयसे अज्ञानी था सो श्रीगुरुओंके उपदेशसे और अपनी काललब्धिसे (अच्छी होंनहारसे) ज्ञानी हुआ, अपने स्वरूपको परमार्थसे जाना कि मैं एक हू शुद्ध हूं अरूपी हूं दर्शनज्ञानमय हूं । ऐसा जाननेसे मोहका समूल नाश हुआ, भावकभाव और ज्ञेयभाव उनसे भेदज्ञान हुआ, अपनी स्वरूपसंपदा अनुभवमें आई तब फिर मोह क्यों उत्पन्न होगा नहीं होसकता ॥ अब ऐसा आत्माका अनुभव हुआ उसकी महिमा आचार्य कहके प्रेरणारूप श्लोक कहते है कि ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मामें समस्त लोक मग्न होवे ॥ **मज्जंतु** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञानसमुद्र भगवान् आत्मा विभ्रमरूप आडी चादरको समूलसे डुवोकर (दूरकर) आप सर्वांग प्रकट हुआ है सो अब समस्तलोक इसके शांतरसमें एकही समय अतिशयकर मग्न होवौ । कैसा है शांतरस ? समस्त लोकपर्यंत उछल रहा है ॥ **भावार्थ**—जैसे समुद्रकी आड़में कुछ आजाय तब जल नहीं दीखता और जब आड़ दूर होजाय तब प्रगट दीखता हुआ लोकको प्रेरणा योग्य होजाता है कि इस जलमें सब लोक स्नान करो । उसीतरह यह आत्मा विभ्रमकर आच्छादित था तब इसका रूप नहीं दीखता था अब विभ्रम दूर हुआ तब यथास्वरूप प्रगट हुआ । अब इसके वीतराग विज्ञानरूप शांतरसमें एक काल सब लोक मग्न होवो ऐसी आचार्यने प्रेरणा की है । अथवा ऐसा भी अर्थ है कि जब आत्माका अज्ञान दूर होवे तब केवलज्ञान प्रकट होवे तब समस्त लोकमें ठहरेहुए पदार्थ एकही समय ज्ञानमें आय झलकते हैं उसको सब लोक देखो । इसतरह इस समयप्राभृतग्रंथमें पहले जीवाजीवाधिकारमें टीकाकारने **पूर्वरंगस्थल** कहा ॥ यहां टीकाकारका ऐसा आशय है कि इस ग्रंथको अलंकारकर नाटकरूप वर्णन किया है सो नाटकमें पहले रंगभूमि (अखाडा) रची जाती है, वहां देखनेवाला नायक तथा सभा होती है और नृत्य करनेवाले होते हैं वे अनेक स्वांग रखते हैं तथा शृंगारादिक आठ रसका रूप दिखलाते हैं । उस जगह

न्यत्परमाणुमात्रमप्यात्मीयत्वेन प्रतिभाति । यद्भावकत्वेन ज्ञेयत्वेन चैकीभूय भूयो मोहमुद्भावयति स्वरसत एवापुनःप्रादुर्भावाय समूलं मोहमुन्मूल्यं महतो ज्ञानोद्योतस्य प्रस्फुरितत्वात् । "मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ताः । आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीभरेण प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिंधुः ॥ ३२ ॥" ॥ ३८ ॥

इति श्रीसमयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ पूर्वरंगः समाप्तः ।

पि । इत्थंभूतस्य सतः नैवास्ति ममान्यत्परमाणुमात्रमपि परद्रव्यं किमपि । यदेकत्वेन रंजकत्वेन वा पुनरपि मम मोहमुत्पादयति । कस्मात्? परमविशुद्धज्ञानपरिणतत्वात् ॥ ३८ ॥

इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ स्थलसप्तकेन **जो पस्सदि अप्पाण**मित्यादि सप्तविंशतिगाथा तदनंतरमुपसंहारसूत्रमेकमिति समुदायेनाष्टाविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारः समाप्तः । इति प्रथमरंगः ।

शृंगार, हास्य, रौद्र, करुणा, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत—ये आठ जो रस हैं वे लौकिकरस हैं । नाटकमे इनका ही अधिकार है । नवमां शांतिरस है वह अलौकिक है । सो नृत्यमे उसका अधिकार नहीं है । इन रसोंके स्थायीभाव, सात्त्विकभाव, अनुभाविभाव, व्यभिचारिभाव और इनकी दृष्टि आदिका वर्णन रसग्रंथोंमें है वहांसे जानलेना । तथा सामान्यपनेसे रसका यह स्वरूप है कि ज्ञानमे जो ज्ञेय आया उससे ज्ञान तदाकार होजाय उससे पुरुषका भाव लीन होजाय अन्य ज्ञेयकी इच्छा न रहे वह रस है । सो नृत्यकरनेवाले नृत्यमे आठरसका रूप दिखलाते हैं और इनका वर्णन जब कवीश्वर करें तब अन्य रसको अन्य रसके समान कर भी वर्णन करते हैं तब अन्यरसका अन्यरस अंगभूत होनेसे तथा रसोंके अन्यभाव अंग होनेसे रसवत् आदि अलंकारकर नृत्यके रूपसे वर्णन किया जाता है । इसजगह पहले रंगभूमिस्थल कहा, वहां देखनेवाला तो सम्यग्दृष्टिपुरुष है और अन्य मिथ्यादृष्टिपुरुषोंकी सभा है उनको दिखलाते हैं । नृत्य करनेवाले जीव अजीव पदार्थ हैं और दोनोंका एकपना, कर्ताकर्मपना आदि उनके स्वांग हैं । उनमे परस्पर अनेकरूप होते हैं वे आठरसरूप होके परिणमते हैं यही नृत्य है । वहां सम्यग्दृष्टि देखनेवाला जीव अजीवके भिन्नस्वरूपको जानता है वह तो इन सब स्वांगोंको कर्मकृत जान शांतरसमे ही मग्न है और मिथ्यादृष्टि जीव अजीवका भेद नहीं जानते इसलिये इन स्वांगोंको सच्चा जान इनमें लीन हो जाते हैं । उनको सम्यग्दृष्टि यथार्थ दिखलाय उनका भ्रम मेंट शांतरसमें उन्हे लीनकर सम्यग्दृष्टि करता है । उसकी सूचनारूप रंगभूमिके अंतमें आचार्यने **"मज्जंतु"** इत्यादि श्लोक रचा है वह आगे जीव अजीवका स्वांगवर्णन करेंगें उसकी सूचनारूप है ऐसा आशय मालूम होता है । सो यहांतक तो रंगभूमिका वर्णन किया । **दोहा**—"नृत्यकुतूहल तत्त्वको, मरियवि देखो धाय । निजानंद रसकों छको, आन सबै छिटकाय ॥" ॥ ३८ ॥

इस प्रकार जीवाजीवाधिकारमे **पूर्वरंग** समाप्त हुआ ॥

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदानासंसारनिबद्धबंधनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् । आत्मारामममनंतधामसहसाध्यक्षेण नित्योदितं धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ल्हादयत् ॥ ३३ ॥;—

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई ।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति ॥ ३९ ॥
अवरे अज्झवसाणे-सु तिव्वमंदाणुभावगं जीवं ।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति ॥ ४० ॥
कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभायमिच्छंति ।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥ ४१ ॥
जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति ।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥ ४२ ॥
एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा ।
ते ण परमट्ठवाइहिं णिच्छयवाईहिं णिद्दिट्ठा ॥ ४३ ॥

आत्मानमजानंतो मूढास्तु परात्मवादिनः केचित् ।
जीवमध्यवसानं कर्म च तथा प्ररूपयंति ॥ ३९ ॥
अपरेध्यवसानेषु तीव्रमंदानुभागगं जीवं ।
मन्यंते तथाऽपरे नोकर्म चापि जीव इति ॥ ४० ॥
कर्मण उदय जीवमपरे कर्मानुभागमिच्छंति ।
तीव्रत्वमंदत्वगुणाभ्यां यः स भवति जीवः ॥ ४१ ॥
जीवकर्मोभयं द्वे अपि खलु केचिज्जीवमिच्छंति ।
अपरे संयोगेन तु कर्मणां जीवमिच्छंति ॥ ४२ ॥
एवंविधा बहुविधाः परमात्मानं वदंति दुर्मेधसः ।
ते न परात्मवादिनः निश्चयवादिभिर्निर्दिष्टाः ॥ ४३ ॥

इह खलु तदसाधारणलक्षणाकलनात्क्लीवत्वेनात्यंतविमूढाः संतस्तात्त्विकमात्मानमजा-

---

अथानंतर शृंगारसहितपात्रवजीवाजीवावेकीभूतौ प्रविशतः । तत्र स्थलत्रयेण त्रिंशद्गाथापर्यंतमजीवाधिकारः कथ्यते । तेषु प्रथमस्थले शुद्धनयेन देहरागादिपरद्रव्य जीवस्वरूपं न भवतीति

आगे जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य ये दोनों एक होकर रंगभूमिमें प्रवेश करते हैं वहां आदिमें मंगलका अभिप्राय लेकर आचार्य ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं कि जो सब वस्तुओंका जाननेवाला यह ज्ञान है वह जीव अजीवके सब स्वांगोंको अच्छीतरह पहचानता है ऐसा सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है । इसीके अर्थरूप श्लोक कहते हैं— **जीवाजीव** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञान है वह मनको आनंदरूप करता हुआ प्रगट होता

नंतो बहवो बहुधा परमप्यात्मानमिति प्रलपंति । नैसर्गिकरागद्वेषकल्माषितमध्यवसानमेव जीवस्तथाविधाध्यवसानात् अंगारस्येव काष्ण्यदितिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । अनाद्यनंतपूर्वापरीभूतावयवैकसंसरणक्रियारूपेण क्रीडत्कर्मैव जीवः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । तीव्रमंदानुभयभिद्यमानदुरंतरागरसनिर्भ-

---

निषेधमुख्यत्वेन **अप्पाणमयाणंता** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथादशकपर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्र गाथादशकमध्ये परद्रव्यात्मवादे पूर्वपक्षमुख्यत्वेन गाथापंचकं तदनंतरं परिहारमुख्यत्वेन सूत्रमेकं । अथाष्टविधं कर्म पुद्गलद्रव्यं भवतीति कथनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं । ततश्च व्यवहारनयसमर्थनद्वारेण गाथात्रयं कथ्यत इति समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ देहरागादिपरद्रव्यं निश्चयेन जीवो भवतीति पूर्वपक्षं करोति;—**अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई** आत्मानमजानंतः मूढास्तु परद्रव्यमात्मानं वदंतीत्येवंशीलाः केचन परात्मवादिनः **जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति** यथागारात् काष्ण्यं भिन्नं नास्ति तथा रागादिभ्यो भिन्नो जीवो नास्तीति रागाद्यध्यवसानं कर्म च जीवं वदंतीति । अथ **अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभावगं जीवं मण्णंति** अपरे केचनैकांतवादिनः रागाद्यध्यवसानेषु तीव्रमंदतारतम्यानुभावस्वरूपं शक्तिमाहात्म्यं

है । कैसा है ? जीवअजीवके स्वांगको देखनेवाले महान् पुरुषोंको जीव अजीवका भेद देखनेवाली बड़ी उज्वल निर्दोष दृष्टिकर भिन्न द्रव्यकी प्रतीति उपजाता हुआ है । अनादिसंसारसे जिनका बंधन दृढ वंध रहा है ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मोंके नाशसे विशुद्ध हुआ है स्फुट हुआ है । जैसे फूलकी कली फूलै उसतरह विकाशरूप है । फिर कैसा है ? जिसके रमनेका क्रीड़ावन आत्मा ही है अर्थात् जिसमे अनंत ज्ञेयों (पदार्थों) के आकार आके झलकते हैं तौभी आप आपने स्वरूपमे ही रमता है । जिसका प्रकाश अनंत है । प्रत्यक्ष तेजकर नित्य उदयरूप है । फिर कैसा है ? धीर है, उत्कट है इसीसे अनाकुल है सब इच्छाओंसे रहित निराकुल है । यहां धीर उदात्त अनाकुल ये तीन विशेषण शांतरूप नृत्यके आभूषण जानने। ऐसा ज्ञान विलास करता है । **भावार्थ**—यह ज्ञानकी महिमा कही । सो जीव अजीव एक होके रंगभूमिमें प्रवेश करते हैं उनको यह ज्ञान ही भिन्न जानता है । जैसे कोई नृत्यमें स्वांग आजाय उसे यथार्थ जो जाने उसको स्वांग करनेवाला नमस्कार कर अपना जैसाका तैसा रूप करलेता है उसीतरह यहां भी जानना । ऐसा ज्ञान सम्यग्दृष्टि पुरुषोंके होता है मिथ्यादृष्टि यह भेद नहीं जानता । आगे जीव अजीवका एकरूप वर्णन करते है,—जो [**आत्मानं अजानंतः**] आत्माको नहीं जानते हुए [**परात्मवादिनः**] परको आत्मा कहनेवाले [**केचित् मूढाः तु**] कोई मोही अज्ञानी तो [**अध्यवसानं**] अध्यवसानको [**तथाच**] और कोई [**कर्म**] कर्मको [**जीवं प्ररूपयंति**] जीव कहतें हैं। [**अपरे**]

राध्यवसानसंतान एव जीवस्ततोऽतिरिक्तस्यान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । नवपुराणावस्थादिभावेन प्रवर्तमानं नोकर्मैव जीवः शरीरादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । विश्वमपि पुण्यपापरूपेणाक्रामन् कर्मविपाक एव जीवः शुभाशुभभावादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । सातासातरूपेणाभिव्याप्तसमस्ततीव्रमंदत्व-

---

गच्छतीति तीव्रमंदानुभावगस्तं जीव मन्यंते । **तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति** तथैवावरे चार्वाकादयः कर्मनोकर्मरहितपरमात्मभेदविज्ञानशून्याः शरीरादिनोकर्म चापि जीव मन्यंते । अथ—**कम्मस्सुदयं जीवं अवरे** अपरे कर्मण उदयं जीवमिच्छंति **कम्माणुभागमिच्छंति** अपरे च कर्मानुभागं लतादार्वस्थिपाषाणरूप जीवमिच्छति । कथंभूतः स चानुभागः । **तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो** तीव्रत्वमंदत्वगुणाभ्या वर्त्तते यः स जीवो भवतीति । अथ—**जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि**

अन्य कोई [**अध्यवसानेषु**] अध्यवसानोंमें [**तीव्रमंदानुभागगं**] तीव्रमंद अनुभागगतको [**जीवं मन्यंते**] जीव मानते है । [**तथा**] और [**परे**] अन्य कोई [**नोकर्म अपि च**] नोकर्मको [**जीव इति**] जीव मानते हैं [**अपरे**] अन्य कोई [**कर्मण उदयं**] कर्मके उदयको [**जीवं**] जीव मानते है, कोई [**कर्मानुभागं**] कर्मके अनुभागको [**यः**] जो अनुभाग [**तीव्रत्वमंदत्वगुणाभ्यां**] तीव्रमंदपनेंरूप गुणोंकर भेदको प्राप्त होता है [**सः**] वह [**जीवः भवति**] जीव है [**इच्छंति**] ऐसा इष्ट करते हैं [**केचित्**] कोई [**जीवकर्मोभयं**] जीव और कर्म [**द्वे अपि**] दोनों मिले हुए को [**खलु**] ही [**जीवं इच्छंति**] जीव मानते हैं [**तु**] और [**अपरे**] अन्य कोई [**कर्मणां संयोगेन**] कर्मोंके संयोगकर ही [**जीवं इच्छंति**] जीव मानते है । [**एवंविधा**] इसप्रकार तथा [**बहुविधा**] अन्यभी वहुत प्रकार [**दुर्मेधसः**] दुर्बुद्धि मिथ्यादृष्टि [**परं**] परको [**आत्मानं**] आत्मा [**वदंति**] कहते हैं [**ते न परमार्थवादिनः**] वे परमार्थ (सत्यार्थ) कहनेवाले नहीं हैं ऐसा [**निश्चयवादिभिः**] निश्चय (सत्यार्थ) वादियोंने [**निर्दिष्टाः**] कहा है ॥ **टीका—**इस जगतमें आत्माके असाधारण लक्षण नहीं जाननेसे नपुंसकपनेकर अत्यंत विमूढ हुए अज्ञानीजन परमार्थभूत आत्माको नहीं जाननेवाले वहुत हैं । वे बहुतप्रकार परको ही आत्मा है ऐसा बकते हैं । कोई तो स्वाभाविक स्वयमेव हुआ रागद्वेषकर मैला जो अध्यवसान अर्थात् आशयरूप विभावपरिणाम वही जीव है ऐसा कहते हैं । उसका हेतु कहते हैं कि जैसे अंगारकी कालिमा है वैसे अध्यवसानसे अन्य कोई जीव दीखता नहीं है इस हेतुसे साधते है । कोई कहते हैं कि पूर्व पश्चात् अनादिसे लेकर और आगामी अनंतकालतक अवयवरूप एक भ्रमण क्रियारूपकर क्रीडा करता हुआ जो कर्म वही जीव है क्योंकि इस कर्मसे जुदा कुछ

गुणाभ्यां भिद्यमानः कर्मानुभव एव जीवः सुखदुःखातिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । मज्जितावदुभयात्मकत्वादात्मकर्मोभयमेव जीवः कात्स्न्र्यतः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् । अर्थक्रियासमर्थः कर्मसंयोग एव जीवः कर्मसंयोगात्खट्वाया इवाष्टकाष्ठसंयोगादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित् ।

जीवमिच्छंति जीवकर्मोभयं द्वे अपि जीवकर्मणी शिखरिणीवत् खलु स्फुटं जीवमिच्छंति । **अवरे संयोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ।** अपरे केचन अष्टकाष्ठखट्वावदष्टकर्मणां संयोगेनापि जीवमिच्छंति । कस्मात् । अष्टकर्मसंयोगादन्यस्य शुद्धजीवस्यानुपपत्तेः । अथ **एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा** एवंविधा बहुविधा बहुप्रकारा देहरागादिपरद्रव्यमात्मानं वदंति दुर्मेधसो दुर्बुद्धयः **तेण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहिं णि-**

अन्य जीव देखनेमें नहीं आया ऐसा मानते हैं । कोई कहते है कि तीव्र मंद अनुभवकर भेदरूप हुआ और जिसका अंत दूर है ऐसे रागरूप रसकर भरा जो अध्यवसानका संतान (परिपाटी) वही जीव है क्योंकि इससे अन्यकोई जुदा जीव देखनेमें नहीं आया ऐसा मानते हैं । कोई कहते है कि नवीन और पुरानी जो अवस्था इत्यादि भावकर प्रवर्तमान जो नोकर्म वही जीव है क्योंकि इस शरीरसे अन्य जुदा कुछ जीव देखनेंमें नहीं आता ऐसा मानते है । ४ । कोई ऐसा कहते हैं कि समस्त लोकको पुण्य पाप रूपकर व्यापता कर्मका विपाक वही जीव है क्योंकि शुभाशुभभावसे अन्य जुदा कोई जीव देखनेमे नहीं आया ऐसा मानते हैं । ५ । कोई कहते हैं कि साता असातारूपकर व्याप्त समस्त तीव्रमंदपने गुणकर भेदरूप हुआ जो कर्मका अनुभव वही जीव है क्योंकि सुखदुःखसे अन्य जुदा कुछ जीव देखनेंमें नहीं आया। ६ । कोई कहते है कि सिखरनिकी तरह दोरूप मिला जो आत्मा और कर्म ये दोनों मिले ही जीव है क्योंकि समस्तपनेकर कर्मसे जुदा कुछ जीव देखनेमें नहीं आया ऐसा मानते हैं । ७ । कोई कहते हैं कि कर्मके संयोगरूप अर्थ क्रियामे समर्थ होता है वही जीव है क्योंकि कर्मके संयोगसे अन्य (जुदा) कुछ जीव देखनेमें नहीं आया, जैसे आठ काठके टुकड़े मिलकर खाट हुई तव अर्थक्रियामे समर्थ हुई इसीतरह यहांभी जानना ऐसा मानते हैं । । ८ । इसतरह आठ प्रकार तो ये कहे और अन्यभी अनेक प्रकार परको आत्मा कहते हैं वे दुर्बुद्धि है उनको परमार्थके जाननेवाले सत्यार्थवादी नहीं कहते ॥ **भावार्थ—** जीव अजीव दोनोंही अनादि कालसे एक क्षेत्रावगाह संयोगरूप मिलरहे हैं और अनादिसे ही पुद्गलके संयोगसे जीवकी विकारसहित अनेक अवस्थायें होरहीं है । जो परमार्थ दृष्टिकर देखाजाय तव जीव तो अपने चैतन्यपने आदि भावको नहीं छोड़ता और पुद्गल अपने मूर्तीक जड़पने आदिको नही छोड़ता । लेकिन जो परमार्थको नहीं जानते हैं वे संयोगसे हुए भावोंको ही जीव कहते हैं । परमार्थसे जीवका स्वरूप पुद्गलसे भिन्न

एवमेवंप्रकारा इतरेपि बहुप्रकारा परमात्मेति व्यपदिशंति दुर्मेधसः किंतु न ते परमार्थवादिभिः परमार्थवादिनः इति निर्दिश्यंते ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

कुतः—

एए सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वच्चंति ॥ ४४ ॥

एते सर्वे भावाः पुद्गलद्रव्यपरिणामनिष्पन्नाः ।
केवलिजिनैर्भणिताः कथं ते जीव इत्युच्यंते ॥ ४४ ॥

यतः एतेऽध्यवसानादयः समस्ता एव भावा भगवद्भिर्विश्वसाक्षिभिरर्हद्भिः पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वेन प्रज्ञप्ताः संतश्चैतन्यशून्यात्पुद्गलद्रव्यादतिरिक्तत्वेन प्रज्ञाप्यमानं चैतन्यस्वभावं जीवद्रव्यं भवितुं नोत्सहंते ततो न खल्वागमयुक्तिस्वानुभवैर्बाधितपक्षत्वात् तदात्मवादिनः परमार्थवादिनः एतदेव सर्वज्ञवचन तावदागमः । इयं तु स्वानुभवगर्भिता

दिट्ठा तेन कारणेन तु पुनः देहरागादिकं परद्रव्यमात्मान वदंतीत्येवंशीलाः परात्मवादिनो निश्चयवादिभिः सर्वज्ञैर्निर्दिष्टा इति पचगाथाभिः पूर्वपक्षः कृतः ॥ ३९॥४०॥४१॥४२॥४३ ॥ अथ परिहारं वदति;—**एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा** एते सर्वे देहरागादयः कर्मजनितपर्यायाः पुद्गलद्रव्यकर्मोदयपरिणामेन निष्पन्नाः । **केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवोत्ति उच्चंति** केवलिजिनैः सर्वज्ञैः कर्मजनिता इति भणिताः कथ

सर्वज्ञको दीखता है तथा सर्वज्ञकी परंपराके आगमसे जाना जाता है । जिनके मतमें सर्वज्ञ नहीं माना वेही अपनी बुद्धिसे अनेक कल्पना कर कहते हैं । उनमेंसे वेदांती, मीमांसक, सांख्य, योग, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, चार्वाक मतोंके आशय लेकर आठ तो प्रगट हैं और अन्यभी अपनी अपनी बुद्धिसे अनेक कल्पना कर कहते हैं उनको कहांतक कहा जावे ॥ ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ ॥

ऐसा कहनेवाले सत्यार्थवादी नहीं हैं सो क्यों नहीं? उसका उत्तर कहते हैं;—**[एते]** ये पूर्व कहेहुए अध्यवसान आदिक **[सर्वे भावाः]** भाव हैं वे सभी **[पुद्गलद्रव्यपरिणामनिष्पन्नाः]** पुद्गलद्रव्यके परिणमनसे उत्पन्न हुए हैं ऐसा **[केवलिजिनैः]** केवली सर्वज्ञजिनदेवने **[भणिताः]** कहा है **[ते जीवः]** उनको जीव **[इति कथं उच्यंते]** ऐसा कैसे कह सकते हैं? नहीं कह सकते ॥ **टीका**—ये अध्यवसानादिक भाव हैं उन सबको सब पदार्थोंके साक्षात् देखनेवाले भगवान वीतराग सर्वज्ञ अरहंतदेवने पुद्गल द्रव्यके परिणाममयपनेकर कहा है इस कारण वे चैतन्य भावकर शून्य जो पुद्गल द्रव्य उससे भिन्नपनेकर कहे गये चैतन्य स्वभावमय जीव द्रव्य होनेको समर्थ नहीं हैं इसलिये निश्चयसे आगम, युक्ति और स्वानुभव इन तीनोंकर बाधित पक्षपनेसे जो इन अध्यवसानादिकोंको जीव कहते हैं वे परमार्थवादी (सत्यार्थवादी) नहीं हैं। उनमेंसे ये जीव

युक्तिः न खलु नैसर्गिकरागद्वेषकल्माषितमध्यवसानं जीवस्तथाविधाध्यवसानात्कार्तस्वरस्येव श्यामिकायातिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात् । न खल्वनाद्यनंतपूर्वापरीभूतावयवैकसंसरणलक्षणक्रियारूपेण क्रीडत्कर्मैव जीवः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात् । न खलु तीव्रमंदानुभवभिद्यमानदुरंतरागरसनिर्भराध्यवसानसंतानो जीवस्ततोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात् । न खलु नवपुराणावस्थादिभेदेन प्रवर्तमानं नोकर्म जीवः शरीरादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात् । न खलु विश्वमपि पुण्यपापरूपेणाक्रामत्कर्मविपाको जीवः शुभाशुभभावादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्व-

---

ते निश्चयनयेन जीवा इत्युच्यते न कथमपि । किंच विशेषः । अंगारात् कार्ष्ण्यवद्रागादिभ्यो भिन्नो जीवो नास्तीति यद्भणितं तदयुक्त । कथमिति चेत् । रागादिभ्यो भिन्नः शुद्धजीवोस्तीति पक्षः परमसमाधिस्थपुरुषैः शरीररागादिभ्यो भिन्नस्य चिदानंदैकस्वभावशुद्धजीवस्योपलब्धेरिति हेतुः किट्टकालिकास्वरूपात् सुवर्णवदिति दृष्टांतः । किं च अंगारदृष्टांतोपि न घटते । कथमिति चेत् । यथा सुवर्णस्य पीतत्वं अग्नेरुष्णत्व स्वभावस्तथांगारस्य कृष्णत्वस्वभावस्य तु पृथक्त्व कर्तुं नायाति ।

नहीं है ऐसा सर्वज्ञका वचन है वह तो आगम है । और यह स्वानुभवगर्भित युक्ति है उसे कहते हैं—जो स्वयमेव उत्पन्न हुआ ऐसा रागद्वेषकर मलिन अध्यवसान है वह जीव नहीं है क्योंकि जैसे सुवर्ण कालिमासे जुदा है उसीतरह चित्स्वभावरूप ऐसे अध्यवसानसे जुदा जीवभेद ज्ञानियोंको प्राप्त होता है वे प्रत्यक्ष चैतन्यभावको जुदा अनुभव करते हैं ।१। अनाद्यनंत पूर्वापरीभूत एक संरक्षण क्रियारूप क्रीडा करता कर्म है वहभी जीव नहीं है क्योंकि कर्मसे जुदा अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर प्राप्त है वे प्रत्यक्ष अनुभवते हैं । २ । तीव्र मंद अनुभवकर भेदरूप हुआ दुरंत रागरसकर भरा अध्यवसानका संतान भी जीव नहीं है क्योंकि उस संतानसे अन्य जुदा चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर प्राप्त है वे प्रत्यक्ष अनुभवते हैं । ३ । नई पुरानी अवस्थादिके भेदकर प्रवर्त हुआ जो नोकर्म वह भी जीव नहीं है क्योंकि शरीरसे अन्य जुदा चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर स्वयमेव प्राप्त है वे आप प्रत्यक्ष अनुभवते है । ४ । समस्त जगतको पुण्यपापरूपकर व्यापता कर्मका विपाक है वह भी जीव नहीं है क्योंकि शुभाशुभ भावसे अन्य जुदा चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर प्राप्त है वे आप प्रत्यक्ष अनुभवते हैं । ५ । साता असाता रूपकर व्याप्त जो समस्त तीव्रमंदपनेरूप गुण उनकर भेदरूप हुआ जो कर्मका अनुभव वह भी जीव नहीं है क्योंकि सुखदुःखसे जुदा अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर स्वयं प्राप्त होता है वे आप प्रत्यक्ष अनुभवते है । ६ । सिखरिनिकी तरह दो स्वरूपपनेकर मिले आत्मा और कर्म दोनोंही जीव नहीं हैं क्योंकि समस्तपने कर्मसे जुदा अन्य चैतन्य-

भावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु सातासातरूपेणाभिव्याप्तसमस्ततीव्रमंदत्वगुणाभ्यां भिद्यमानः कर्मानुभावो जीवः सुखदुःखातिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु मज्जितावदुभयात्मकत्वादात्मकर्मोभयं जीवः कार्त्स्न्यतः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खल्वर्थक्रियासमर्थः कर्मसंयोगो जीवः कर्मसंयोगात्खट्वाशायिनः पुरुषस्येवाष्टकाष्ठसंयोगादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वादिति। इह खलु पुद्गलभिन्नात्मोपलब्धिं प्रति विप्रतिपन्नः साम्नैवैवमनुशास्यः। "विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकं। हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो ननु कि-

---

रागादयस्तु विभावाः स्फटिकोपाधिवत् ततस्तेषा निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिबलेन पृथक्कर्तुं शक्यते इति। यदप्युक्तमष्टकाष्ठसयोगखट्वावदष्टकर्मसयोग एव जीवस्तदप्यनुचितं अष्टकर्मसयोगात् भिन्नः शुद्धजीवोस्तीति पक्षवचन अष्टकाष्ठसयोगखट्वाशायिनः पुरुषस्येव परमसमाधिस्थपुरुषैरष्टकर्मसंयोगात् पृथग्भूतस्य शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवस्योपलब्धेरिति दृष्टांतसहितहेतुः। किं च देहात्मनोरत्यत

स्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर स्वयं प्राप्त है वे प्रत्यक्ष आप अनुभवते हैं। ७। अर्थक्रियामें समर्थ कर्मका संयोगभी जीव नहीं है क्योंकि "जैसे आठ काठके टुकड़ोंरूप खाटका सोनेवाला पुरुप अन्य है" उसीतरह कर्मसंयोगसे जुदा अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीवका भेद ज्ञानियोंकर स्वयं प्राप्त है वे आप प्रत्यक्ष अनुभवते हैं। ८। इसीतरह अन्य कोई दूसरे प्रकार कहें वहां भी यही युक्ति जानना॥ **भावार्थ—**चैतन्यस्वभावरूप जीव सब परभावोंसे जुदा भेद ज्ञानियोंके अनुभवगोचर है इस कारण जिसतरह अज्ञानी मानते हैं उसतरह नहीं है। अब यहांपर पुद्गलसे भिन्न जो आत्माकी उपलब्धि उसको अन्यथा ग्रहण करनेवाला पुद्गलको ही आत्मा जाननेवाला जो पुरुष उसको हितरूप मिलापकी बात कहकर समभावसे ही उपदेश कहना चाहिये ऐसा श्लोकमें कहते हैं। **विरम** इत्यादि। **अर्थ—**हे भव्य तुझे निकम्मे कोलाहलकरनेसे क्या लाभ है उस कोलाहलसे तू विरक्त हो और एक चैतन्य मात्र वस्तुको आप निश्चल लीन होके देख। इस प्रकार छह महीना अभ्यासकर। ऐसा करनेसे अपने हृदयसरोवरमें जिसका तेज प्रताप प्रकाश पुद्गलसे भिन्न है ऐसे आत्माकी क्या प्राप्ति नहीं होसकेगी अवश्य होगी॥ **भावार्थ—**जो अपने स्वरूपका अभ्यास करे सो उसकी प्राप्ति अवश्य होवे परवस्तुकी प्राप्ति तो नहीं होसकती। अपना स्वरूप तो मौजूद है परंतु भूल रहा है सो चेतकर देखे तो पास ही है। यहां छह महीनेका अभ्यास कहा सो ऐसा नहीं समझना कि इतनेमे ही होवे इसका होना तो अंतर्मुहूर्तमात्रमें ही है परंतु शिष्यको बहुत कठिन मालूम पड़े तब उसका निषेध है। यदि बहुतकाल समझनेमें लगेगा तो छह महीनेसे अधिक नहीं लगेगा। इसलिये अन्य निष्प्रयोजन कोलाहलको छोड इसमें लगनेसे शीघ्र रूपकी प्राप्ति

मनुपलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः ॥ ३४ ॥ "॥ ४४ ॥

कथंचिदन्वयप्रतिभासेप्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावा इति चेत्;—

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति।
जस्स फलं तं वुच्चइ दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥ ४५ ॥

अष्टविधमपि च कर्म सर्वं पुद्गलमयं जिना विंदंति ।
यस्य फलं तदुच्यते दुःखमिति विपच्यमानस्य ॥ ४५ ॥

अध्यवसानादिभावनिर्वर्तकमष्टविधमपि च कर्म समस्तमेव पुद्गलमयमिति किल सकलज्ञज्ञप्तिः । तस्य तु यद्विपाककाष्ठामधिरूढस्य फलत्वेनाभिलप्यते तदनाकुलत्वलक्षणसौख्याख्यात्मस्वभावविलक्षणत्वात्किल दुःखं, तदंतःपातिन एव किलाकुलत्वलक्षणा अध्य-

---

भेदः इति पक्षः भिन्नलक्षणलक्षितत्वादिति हेतुः जलानलवदिति दृष्टान्तः ॥ ४४ ॥ इति परिहारगाथा गता । अथ चिद्रूपप्रतिभासेपि रागाद्यध्यवसानादयः कथं पुद्गलस्वभावा भवंतीति चेत् ;— **अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति** सर्वमष्टविधमपि कर्म पुद्गलमयं भवतीति जिना वीतरागसर्वज्ञा ब्रुवंति कथयंति । कथंभूतं यत्कर्म । **जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खंति विपच्चमाणस्स** यस्य कर्मणः फलं तत्प्रसिद्धमुच्यते किं व्याकुलत्वस्वभावत्वाद्दुःखमिति । कथंभूतस्य कर्मणः । विशेषेण पच्यमानस्योदयागतस्य । इदमत्र तात्पर्यं । अष्टविधकर्मपुद्गलस्य कार्यमनाकुलत्वलक्षणपरमार्थसुखविलक्षणमाकुलत्वोत्पादकं दुःखं रागादयो-

---

होसकेगी ऐसा उपदेश है ॥ ४४ ॥

आगे शिष्य पूछता है कि ये अध्यवसानादिक भाव तो जीव नहीं बतलाये अन्यचैतन्यस्वभावको जीव कहा सो ये भाव भी तो चैतन्यसे ही संबंध रखनेवाले मालूम होते हैं चैतन्यके विना जडके तो दीखते नहीं इनको पुद्गलके कैसे कहा? ऐसा पूछनेपर उत्तरका गाथासूत्र कहते हैं,–[**अष्टविधमपि च**] आठ तरहके [**कर्म**] कर्म हैं वे [**सर्वं**] सभी [**पुद्गलमयं**] पुद्गलस्वरूप हैं ऐसा [**जिनाः**] जिन भगवान् सर्वज्ञ देव [**विंदंति**] कहते है । [**यस्य विपच्यमानस्य**] जिस पचकर उदयमें आनेवाले कर्मका [**फलं**] फल [**तत्**] प्रसिद्ध [**दुःखं**] दुःख है [**इति उच्यते**] ऐसा कहा है ॥ **टीका**—जिस कारण ये अध्यवसान आदि समस्त भाव उनके उत्पन्न करनेवाले आठ प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्म हैं वे सभी पुद्गलमय हैं ऐसा सर्वज्ञका वचन है। उस कर्मका उदय हदको पहुंचे ऐसा उसका फल अनाकुलस्वरूप सुखनामा आत्माके स्वभावसे विलक्षण आकुलतामय है इसलिये दुःख है । उस दुःखमें आपड़े जो अनाकुलतास्वरूप अध्यवसान आदिक भाव हैं वे भी दुःख ही हैं इसलिये वे चैतन्यसे संबंध होनेका भ्रम उत्पन्न करते हैं तौ भी वे आत्माके स्वभाव नहीं है पुद्गलस्वभाव ही हैं ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा कर्मके उदय आनेपर दुःखरूप परिणमता है और जो

वसानादिभावाः । ततो न ते चिदन्वयविभ्रमेप्यात्मस्वभावाः किंतु पुद्गलस्वभावाः ॥ ४५ ॥

यद्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावास्तदा कथं जीवत्वेन सूचिता इति चेत्;—

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥ ४६ ॥

व्यवहारस्य दर्शनमुपदेशो वर्णितो जिनवरैः ।
जीवा एते सर्वेऽध्यवसानादयो भावाः ॥ ४६ ॥

सर्वे एवैतेऽध्यवसानादयो भावाः जीवा इति यद्भगवद्भिः सकलज्ञैः प्रज्ञप्तं तदभूतार्थस्यापि व्यवहारस्यापि दर्शनं । व्यवहारो हि व्यवहारिणां म्लेच्छभाषेव म्लेच्छानां परमार्थप्रति-

---

प्याकुलत्वोत्पादकदुःखलक्षणास्ततः कारणात्पुद्गलकार्यत्वात् शुद्धनिश्चयनयेन पौद्गलिका इति ॥ ४५ ॥ अष्टविध कर्म पुद्गलद्रव्यमेवेति कथनरूपेण गाथा गता । अथ यद्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावास्तर्हि रागी द्वेषी मोही जीव इति कथं जीवत्वेन ग्रंथांतरे प्रतिपादिता इति प्रश्ने प्रत्युत्तर ददाति,—**ववहारस्स दरीसणं** व्यवहारनयस्य स्वरूप दर्शित यत्किं कृत । **उवएसो वण्णिओ जिणवरेहिं** उपदेशो वर्णितः कथितो जिनवरैः । कथंभूतः । **जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा** जीवा एते सर्वे अध्यवसानादयो भावाः परिणामा भण्यंत इति । किं च विशेषः । यद्यप्ययं व्यवहारनयो बहिर्द्रव्यावलंबत्वेनाभूतार्थस्तथापि रागादि-

---

दुःखरूप भाव है वह अध्यवसान है इसलिये दुःखरूप भावमे चेतनपनेका भ्रम उपजता है । परमार्थसे दुःखरूपभाव चेतन नहीं है कर्मजन्य है इस कारण जड ही है ॥ ४५ ॥

आगे पूछता है कि ये अध्यवसानादि भाव हैं वे पुद्गलस्वभाव है तो सर्वज्ञके आगममें इनको जीवके भावकर कैसे कहा ? उसके उत्तरका गाथासूत्र कहते है;–**[एते सर्वे]** ये सब **[अध्यवसानादयः भावाः]** अध्यवसानादिक भाव हैं **[जीवाः]** वे जीव हैं ऐसा **[जिनवरैः]** जिनवरदेवने **[उपदेशः वर्णितः]** जो उपदेश दिया है वह **[व्यवहारस्य दर्शनं]** व्यवहारनयका मत है । **टीका**–ये सब अध्यवसानादिक भाव 'जीव हैं' ऐसा जो भगवान् सर्वज्ञदेवने कहा है वह अभूतार्थ असत्यार्थरूप जो व्यवहारनय उसका मत है । क्योंकि व्यवहार व्यवहारी जीवोंको परमार्थका कहनेवाला है । जैसे म्लेच्छभाषा म्लेच्छोंको वस्तुस्वरूपको बतलाती है उसीतरह यह नय है । इसलिये अपरमार्थभूत होनेपरभी धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनेकेलिये व्यवहारनयका वर्णन होना ठीक है । उस व्यवहारको नहीं कहैं और परमार्थनय जीवको शरीरसे भिन्न कहता है उसका ही एकांत किया जाय तो त्रस स्थावर जीवोंका घात निःशंकपनेसे करना सिद्ध होसकता है । जैसे भस्मके मर्दन करनेमें हिंसाका अभाव है उसीतरह उनके मारनेमें भी हिंसा नहीं सिद्ध होगी किंतु हिंसाका अभाव ठहरेगा तब उनके घात होनेसे बधका भी अभाव ठहरेगा । और उसीतरह रागी द्वेषी मोही जीव कर्मसे बंधता है उसको छुड़ाना

पादकत्वादपरमार्थोपि तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयितुं न्याय्य एव । तमंतरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात्त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशंकमुपमर्दनेन हिंसाभावाद्भवत्येव बंधस्याभावः । तथा रक्तद्विष्टविमूढो जीवो वध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेषमोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभावात् भवत्येव मोक्षस्याभावः ॥ ४६ ॥

अथ केन दृष्टांतेन प्रवृत्तो व्यवहार इति चेत्;—

राया हु णिग्गदो त्तिय एसो वलसमुदयस्स आदेसो ।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेको णिग्गदो राया ॥ ४७ ॥
एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं ।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेको णिच्छिदो जीवो ॥ ४८ ॥

राजा खलु निर्गत इत्येष बलसमुदयस्यादेशः ।
व्यवहारेण तूच्यते तत्रैको निर्गतो राजा ॥ ४७ ॥
एवमेव च व्यवहारोध्यवसानाद्यन्यभावानां ।
जीव इति कृतः सूत्रे तत्रैको निश्चितो जीवः ॥ ४८ ॥

वहिर्द्रव्यावलंबनरहितविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्यावलंबनसहितस्य परमार्थस्य प्रतिपादकत्वाद्दर्शयितुमुचितो भवति । यदा पुनर्व्यवहारनयो न भवति तदा शुद्धनिश्चयनयेन त्रसस्थावरजीवा न भवंतीति मत्वा निःशंकोपमर्दनं कुर्वंति जनाः । ततश्च पुण्यरूपधर्माभाव इत्येकं दूषणं, तथैव शुद्धनयेन रागद्वेषमोहरहितः पूर्वमेव मुक्तो जीवस्तिष्ठतीति मत्वा मोक्षार्थमनुष्ठानं कोपि न करोति ततश्च मोक्षाभाव इति द्वितीयं च दूषणं । तस्माद्व्यवहारनयव्याख्यानमुचितं भवतीत्यभिप्रायः ॥ ४६ ॥ अथ केन दृष्टांतेन प्रवृत्तो व्यवहार इत्याख्याति;—**राया हु णिग्गदो त्तिय एसो बलसमुदयस्स आदेसो** राजा हु स्फुटं निर्गत एव बलसमुदयस्यादेशः कथनं

कहा गया है वह भी परमार्थसे राग द्वेष मोहसे जीव भिन्न दिखानेकर मोक्षके उपायका उपदेश व्यर्थ होजायगा तब मोक्षका भी अभाव ठहरेगा । इसलिये व्यवहारनय कही है ॥ **भावार्थ**—परमार्थनय तो जीवको शरीर और राग द्वेष मोहसे भिन्न कहती है । यदि इसीका एकांत किया जाय तब शरीर तथा राग द्वेष मोह पुद्गलमय ठहरें तब पुद्गलके घातसे हिंसा नहीं होसकती और राग द्वेष मोहसे बंध नहीं होसकता । इस तरह परमार्थसे संसार मोक्ष दोनोंका अभाव होजायगा । ऐसा एकांतस्वरूप वस्तुका स्वरूप नहीं है । अवस्तुका श्रद्धान ज्ञान आचरण मिथ्या अवस्तु रूप ही है । इसलिये व्यवहारका उपदेश न्यायप्राप्त है । इसतरह स्याद्वादकर दोनों नयोंका विरोध मेट श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥ ४६ ॥

आगे शिष्य पूछता है कि यह व्यवहारनय किस दृष्टांतसे प्रवृत्त हुआ ? उसका उत्तर कहते हैं;—**[राजा निर्गतः]** जैसे कोई राजा सेनासहित निकला वहां **[खलु]**

यथैष राजा पंच योजनान्यभिव्याप्य निष्क्रामतीत्येकस्य पंचयोजनान्यभिव्याप्तुमशक्यत्वाद्व्यवहारिणां बलसमुदाये राजेति व्यवहारः। परमार्थतस्त्वेक एव राजा। तथैष जीवः समग्रं रागग्राममभिव्याप्य प्रवर्तित इत्येकस्य समग्रं रागग्राममभिव्याप्तुमशक्यत्वाद्व्यवहारिणामध्यवसानादिष्वन्यभावेषु जीव इति व्यवहारः। परमार्थतस्त्वेक एव जीवः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

यद्येवं तर्हि किं लक्षणोसावेकष्टंकोत्कीर्णः परमार्थजीव इति पृष्टः प्राह;—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ४९ ॥

ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया बलसमूह दृष्टांतः । पंच योजनानि व्याप्य राजा निर्गतः इति व्यवहारेणोच्यते। निश्चयनयेन तु तत्रैको राजा निर्गत इति दृष्टांतो गतः। इदानीं दार्ष्टांतमाह—**एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं** एवमेव राजदृष्टांतप्रकारेणैव व्यवहारः । केषां । अध्यवसानादीनां जीवाद्भिन्नभावादीनां रागादिपर्यायाणां **जीवो त्ति कदो सुत्ते** कथंभूतो व्यवहारः। रागादयो भावाः व्यवहारेण जीव इति कृत भणितं सूत्रे परमागमे **तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो** तत्र तेषु रागादिपरिणामेषु मध्ये निश्चितो ज्ञातव्यः। कोसौ। जीवः। कथंभूतः। शुद्धनिश्चयनयेनैको भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितशुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवपदार्थः। इति व्यवहारनयसमर्थनरूपेण गाथात्रयं गतं ॥४७॥४८॥ एवमजीवाधिकारमध्ये शुद्धनिश्चयनयेन देहरागादिपरद्रव्यं जीवस्वरूपं न भवतीति कथनमुख्यतया गाथादशकेन

निश्चयकर [**बलसमुदयस्य**] सेनाके समूहको [**इत्येष आदेशः**] ऐसा कहना है। वह [**व्यवहारेण तु उच्यते**] व्यवहार नयसे है कि यह राजा निकला [**तत्र**] उस सेनामें तो वास्तवमें [**एकः**] एक [**राजा निर्गतः**] ही राजा निकला है [**एवमेव च**] इसीतरह [**अध्यवसानाद्यन्यभावानां**] इन अध्यवसान आदि अन्य भावोंको [**सूत्रे**] परमागममें [**जीव इति**] ये जीव हैं ऐसा [**व्यवहारः कृतः**] व्यवहार नयसे कहा है [**तत्र निश्चितः**] निश्चयसे विचारा जाय तो उन भावोंमे [**जीवः एकः**] जीव तो एक ही है॥ **टीका**—जैसे ऐसा कहते हैं कि यह राजा पांच योजनके फैलावसे निकल रहा है वहां निश्चयकर विचारा जाय तो एक राजाको पांच योजनमे व्यापना असंभव है तौ भी व्यवहारी जनोंका सेनाके समुदायमे राजा कहनेका व्यवहार है। परमार्थसे तो राजा एक ही है सेना राजा नहीं। उसीतरह यह जीव सब रागके स्थानोंको व्यापकर प्रवर्त रहा है परंतु निश्चयकर विचारा जाय तो एकका समस्त रागके ठिकानोंमे फैलावसे रहना असंभव है तौ भी व्यवहारी लोकोंका अध्यवसानादिक अन्य भावोंमें ये जीव हैं ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है परमार्थसे तो जीव एक ही है अध्यवसान आदि भाव जीव नहीं है ॥ ४७ । ४८ ॥

आगे शिष्य पूछता है कि ये अध्यवसानादिक भाव हैं वे जीव नहीं है तो एक

अरसमरूपमगंधमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दं ।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥ ४९ ॥

यः खलु पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानरसगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमरसगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावात् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनारसनात् स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाद्भावेंद्रियावलंबेनारसनात्, सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात्केवलरसवेदनापरिणामापन्नत्वेनारसनात्, सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाद्रसपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं रसरूपेणापरिणमनाच्चारसः । तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानरूपगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमरूपगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावात् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनारूपणात्, स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद्भावेंद्रियावलंबेनारूपणात्सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात्केवलरूपवेदनापरिणामापन्नत्वे-

---

प्रथमोत्तराधिकारो व्याख्यातः । अथानंतरं वर्णरसादिपुद्गलस्वरूपरहितोऽनंतज्ञानादिगुणस्वरूपश्च शुद्धजीव एव उपादेय इति भावनामुख्यतया द्वादशगाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्र द्वादशगाथासु मध्ये परमसामायिकभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानंदसुखसमरसीभावपरिणतशुद्धजीव एवोपादेय इति मुख्यत्वेन **अरसमरूव** इत्यादिसूत्रगाथैका । अथाभ्यंतरे रागादयो वहिरंगे वर्णादयश्च शुद्धजीवस्वरूप न भवतीति तस्यैव गाथासूत्रस्य विशेषविवरणार्थं **जीवस्स णत्थि वण्णो** इत्यादिसूत्रपट्कं । ततः परत एव रागादयो वर्णादयश्च व्यवहारेण संति शुद्धनिश्चयनयेन न संतीति परस्परसापेक्षनयद्वयविवरणार्थं **ववहारेण दु** इत्यादि सूत्रमेकं । तदनंतरमेतेषां रागादीना व्यवहारनयेनैव जीवेन सह क्षीरनीरवत्संबंधो न च निश्चयनयेनेति समर्थनरूपेण **एदेहि य संबंधो** इत्यादि सूत्रमेकं । ततश्च तस्यैव व्यवहारनयस्य पुनरपि व्यक्तार्थं दृष्टातदार्ष्टांतसमर्थनरूपेण **पंथे मुस्संतं** इत्यादि गाथात्रय । इति द्वितीयस्थले समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ यदि निश्चयेन रागादिरूपो जीवो न भवति तर्हि कथंभूतः शुद्धजीव उपादेयस्वरूप इत्यत्राह;—**अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं** निश्चयनयेन रसरूपगंधस्पर्शशब्दरहित मनोगतकामक्रोधादिविकल्पविषयरहितत्वेनाव्यक्त सूक्ष्मं । पुनरपि किं विशिष्टं । शुद्धचेतनागुणं । पुनश्च कि रूपं । **जाणमलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं** निश्चयनयेन स्वसवेदनज्ञानविपयत्वादलिंगग्रहण समचतुरस्रा-

---

टंकोत्कीर्ण परमार्थ स्वरूप जीव कैसा है उसका क्या लक्षण है? इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं;—हे भव्य तू **[जीवं]** जीवको **[जानीहि]** ऐसा ज़ान कि वह **[अरसं]** रसरहित है **[अरूपं]** रूपरहित है **[अगंधं]** गंधरहित है **[अव्यक्तं]** इंद्रियोंके गोचर **[व्यक्त]** नहीं है **[चेतनागुणं]** जिसके चेतना गुण है **[अशब्दं]** शब्दरहित है **[अलिंगग्रहणं]** किसी चिन्हकर जिसका ग्रहण नहीं होता **[अनिर्दिष्टसंस्थानं]** जिसका आकार कुछ कहनेमे नहीं आता—ऐसा जीव जानना ॥

नारूपणात्, सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाद्रूपपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं रूपरूपेणापरिणमनाच्चारूपः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानगंधगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमगधगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावाद् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनागंधनात्, स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद्भावेंद्रियावलंबेनागंधनात् सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात्केवलगंधवेदनापरिणामापन्नत्वेनागंधनात् सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाद्गंधपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं गधरूपेणापरिणमनाच्चागंधः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानस्पर्शगुणत्वात् पुद्गलद्रव्यगुणेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमस्पर्शगुणत्वात् परमार्थतः पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावाद् द्रव्येंद्रियावष्टंभेनास्पर्शनात् स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावात् भावेंद्रियावलंबनास्पर्शनात्सकलसाधारणैकसवेदनपरिणामस्वभावत्वात् केवलस्पर्शवेदनापरिणामापन्नत्वेनास्पर्शनात् सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधात् स्पर्शपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं स्पर्शस्वरूपेणापरिणमनाच्चास्पर्शः। तथा पुद्गलद्रव्यादन्यत्वेनाविद्यमानशब्दपर्यायत्वात् पुद्गलद्रव्यपर्यायेभ्यो भिन्नत्वेन स्वयमशब्दपर्यायत्वात् परमार्थतः

दिपट्संस्थानरहितं च य पदार्थ तमेव गुणविशिष्ट शुद्धजीवमुपादेयमिति हे शिष्य जानीहि। इदमत्र तात्पर्यं। शुद्धनिश्चयनयेन सर्वपुद्गलद्रव्यसबधिवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायरहितः सर्वद्रव्येंद्रियभावेंद्रियमनोगतरागादिविकल्पाविषयो धर्माधर्माकाशकालद्रव्यशेपजीवातरभिन्नोनंतज्ञानदर्श-

---

टीका—जो जीव है वह निश्चयकर पुद्गल द्रव्यके गुणोंसे भी भिन्न है उसमें रस गुण विद्यमान नहीं इसकारण अरस है। पुद्गल द्रव्यके गुणोंसेभी भिन्न है इसलिये आप रसगुण नहीं होनेसे भी अरस कहा जाता है। परमार्थसे पुद्गल द्रव्यका स्वामीपना भी इसके नहीं है इसलिये द्रव्येंद्रियके आलंवनकर आप रसरूप नहीं परिणमता इस कारण भी अरस है। अपने स्वभावकी दृष्टिसे देखा जाय तो क्षायोपशमिक भावका भी इसके अभाव है इसलिये भावेंद्रियके अवलंबनकर भी इसके रसरूप परिणामका अभाव है इसकारणभी अरस है। ४। इसका संवेदन परिणाम तो एक ही है वह सकलविषयोंके विशेषोंमें साधारण है उस स्वभावमे केवल एक रसवेदना परिणामकी प्राप्तिरूप ही नहीं है इसकारण भी अरस है। ५। इसके समस्त ही ज्ञेयोंका ज्ञान होता है परंतु ज्ञेय ज्ञायकके एकरूप होनेका निपेध ही है इसलिये रसके ज्ञानरूप परिणमने पर भी आप रसरूप नहीं परिणमता इस कारणभी अरस है। ६। इसतरह छह प्रकारकर रसके निषेधसे अरस है। इसीतरह अरूप अगंध अस्पर्श अशब्द इन चारों विशेषणोंका छह छह हेतुओंकर निषेध किया है सो इसी कथित रीतिसे जानलेना॥ अव अनिर्दिष्ट संस्थानको कहते है। पुद्गलद्रव्यकर रचे हुए संस्थानों (आकारों) कर कहा नहीं जाता कि ऐसा आकार है। १। अपने नियत स्वभावकर अनियत संस्थानरूप अनंत शरीरोंमें वर्तता है इसलिये भी आकार कहा नहीं जाता। २। सस्थान नामकर्मका

पुद्गलद्रव्यस्वामित्वाभावात् द्रव्येंद्रियावष्टंभेन शब्दाश्रवणात् स्वभावतः क्षायोपशमिकभावाभावाद्भावेंद्रियावलंबेन शब्दाश्रवणात् सकलसाधारणैकसंवेदनपरिणामस्वभावत्वात् केवलशब्दवेदनापरिणामापन्नत्वेन शब्दाश्रवणात् सकलज्ञेयज्ञायकतादात्म्यस्य निषेधाच्छब्दपरिच्छेदपरिणतत्वेपि स्वयं शब्दरूपेणापरिणमनाच्चाशब्दः । द्रव्यांतरारब्धशरीरसस्थानेनैव संस्थान इति निर्देष्टुमशक्यत्वात् नियतस्वभावेनानियतसंस्थानानंतशरीरवर्तित्वात्संस्थाननामकर्मविपाकस्य पुद्गलेषु निर्दिश्यमानत्वात् प्रतिविशिष्टसंस्थानपरिणतसमस्तवस्तुतत्त्वसंवलितसहजसंवेदनशक्तित्वेपि स्वयमखिललोकसंवलनशून्योपजायमाननिर्मलानुभूतितयात्यंतमसंस्थानत्वाच्चानिर्दिष्टसंस्थानः । षड्द्रव्यात्मकलोकाद् ज्ञेयाद्व्यक्तादन्यत्वात्कषायचक्राद्भावकाद्व्यक्तादन्यत्वाच्चित्सामान्यनिमग्नसमस्तव्यक्तित्वात् क्षणिकव्यक्तिमात्राभावात् व्यक्ताव्यक्तविमिश्रप्रतिभासेपि व्यक्तास्पर्शत्वात् स्वयमेव हि बहिरंतःस्फुटमनुभूयमानत्वेपि व्यक्तोपेक्षणेन प्रद्योतमानत्वाच्चाव्यक्तः । रसरूपगंधस्पर्शशब्दसंस्थानव्यक्तत्वाभावेपि स्वसंवेदनबलेन नित्यमात्मप्रत्यक्षत्वे सत्यनुमेयमात्रत्वाभावादलिंगग्रहणः । समस्तविप्रतिपत्तिप्रमा-

---

नसुखवीर्यश्च यः स एव शुद्धात्मा समस्तपदार्थसर्वदेशसर्वकालब्राह्मणक्षत्रियादिनानावर्णभेदभिन्नजनसमस्तमनोवचनकायव्यापारेषु दुर्लभः स एवापूर्वः सचैवोपादेय इति मत्वा निर्विकल्पनि-

---

विपाक (फल) है वह भी पुद्गलद्रव्यमें ही है उसके निमित्तसे भी आकार नहीं कह सकते । ३ । जुदे जुदे आकाररूप परिणमते जो समस्त वस्तु उनके स्वरूपसे तदाकार हुआ जो अपना स्वभावरूप संवेदन उस शक्तिरूपपना इसमें होनेपर भी आप समस्त लोकके मिलापकर शून्य हुई जो अपनी निर्मल ज्ञानमात्र अनुभूति उस अनुभूतिपनेकर किसी भी आकाररूप नहीं है इस कारण भी अनिर्दिष्ट संस्थान है । ४ । ऐसे चार हेतुओंसे संस्थानका निषेध कहा ॥ अब अव्यक्त विशेषणको सिद्ध करते हैं—छह द्रव्य स्वरूप लोक है वह ज्ञेय है व्यक्त है ऐसे व्यक्तरूपसे जीव अन्य है इसलिये अव्यक्त है । १ । कषायका समूह जो भावकभाव वह व्यक्त है उससे जीव अन्य है इस कारण भी अव्यक्त है । २ । चित्सामान्यमें चैतन्यकी सब व्यक्तियां अंतर्भूत है इसलिये भी अव्यक्त है । ३ । क्षणिक व्यक्तिमात्र भी न होनेसे भी अव्यक्त कहना चाहिये । ४ । व्यक्त, अव्यक्त और दोनों मिले हुए मिश्र भाव इसके प्रतिभासमे आते है तौ भी केवल व्यक्त भाव ही नहीं स्पर्शता इस कारण भी अव्यक्त है । ५ । और आप ही बाह्य अभ्यंतर प्रगट अनुभूयमान है तौ भी व्यक्त भावसे उदासीन (दूरवर्ती) प्रद्योतमान है इस कारण भी अव्यक्त कहा जाता है । ६ । इसतरह छह हेतुओंकर अव्यक्तभाव सिद्ध किया ॥ इसीतरह रूप, रस, गंध स्पर्श, शब्द, संस्थान व्यक्तपनाका अभाव स्वरूप होनेपर भी स्वसंवेदनके बलकर आप प्रत्यक्ष गोचर होनेसे अनुमान गोचरमात्रपनेके अभावसे अलिंगग्रहण कहा जाता है । अपने अनुभवमें आवे ऐसे चेतना गुणकर सदा

थिना विवेचकजनसमर्पितसर्वस्वेन सकलमपि लोकालोकं कवलीकृत्यात्यंतसौहित्यमंथरेणेव सकलकालमेव मनागप्यविचलितानन्यसाधारणतया स्वभावभूतेन स्वयमनुभूयमानेन चेतनागुणेन नित्यमेवांतःप्रकाशमानत्वात् चेतनागुणश्च स खलु भगवानमलालोक इहैकटंकोत्कीर्णः प्रत्यग्ज्योतिर्जीवः "सकलमपि विहायाह्णाय चिच्छक्तिरिक्तं स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रं। इममुपरि चरंतं चारुविश्वस्य साक्षात् कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतं ॥ ३५ ॥ चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानय। अतोतिरिक्ताः सर्वेपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥ ३६ ॥" ॥ ४९ ॥

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।
णवि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ॥ ५० ॥

मोहनिरजननिजशुद्धात्मसमाधिसजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे स्थित्वा सर्वतात्पर्येण ध्यातव्य इति। एव सूत्रगाथा गता ॥ ४९ ॥ अथ बहिरंगे वर्णाद्यभ्यंतरे रागादिभावाः पौद्गलिकाः शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूप न भवतीति प्रतिपादयति;—वर्णगधरसस्पर्शास्तु रूप-

---

अतरगमे प्रकाशमान है इसकारण चेतनगुणवाला है। जो चेतनागुण समस्त विप्रतिपत्तियोंका (जीवको अन्य प्रकार माननेका) निषेध करनेवाला है, जिसने अपना सर्वस्व भेदज्ञानी जीवोंको सोंपदिया है, जो समस्त लोकालोकको ग्रासीभूत कर अत्यंत सुखी हो उसतरह सदा किंचित्मात्र भी चलायमान नहीं होता और अन्य द्रव्यसे साधारण नहीं है इसलिये असाधारण स्वभावभूत है। ऐसे चैतन्यरूप परमार्थस्वरूप जीव है। जिसका प्रकाश निर्मल है ऐसा यह भगवान् इस लोकमे टंकोत्कीर्ण भिन्न ज्योतीरूप विराजमान है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहकर इसके अनुभवकी प्रेरणा करते हैं। **सकल** इत्यादि। **अर्थ**—हे भव्य आत्माओ अपने एक केवल आत्माको आत्मामें ही अभ्यास करो अनुभव करो। ऐसा अनुभव करो कि चिच्छक्तिसे रहित अन्य सकल भावोंको मूलसे छोडकर और अच्छीतरह अपने चिच्छक्तिमात्र भावको अवगाहनकर यह आत्मा समस्त पदार्थसमूहरूप लोकके ऊपर प्रवर्त रहा है, उसका साक्षात् अनुभव करो। जो आत्मा अनंत तथा अविनाशी है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा परमार्थसे समस्त अन्य भावोंसे रहित चैतन्य शक्तिमात्र है उसके अनुभवका अभ्यास करो ऐसा उपदेश है ॥ आगे चिच्छक्तिसे अन्य जो भाव हैं वे सब पुद्गलद्रव्यसंबंधी हैं ऐसी आगेके गाथाकी सूचनिकारूप श्लोक कहते हैं—**चिच्छक्ति** इत्यादि। **अर्थ**—चैतन्य शक्तिकर व्याप्त जिसका सर्वस्वसार है ऐसा यह जीव इतने मात्र है इस चिच्छक्तिसे शून्य जो भाव हैं वे सभी पुद्गलजन्य है वे पुद्गलके ही है ॥ ४९ ॥

ऐसे उन भावोंका व्याख्यान छह गाथाओंमें करते हैं,—**[जीवस्य]** जीवमें **[वर्णः]** रूप **[नास्ति]** नहीं है **[नापि गंधः]** गंध भी नहीं है **[रसः अपि**

जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥ ५१ ॥
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥ ५२ ॥
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥ ५३ ॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥ ५४ ॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥ ५५ ॥

जीवस्य नास्ति वर्णो नापि गंधो नापि रसो नापि च स्पर्शः ।
नापि रूपं न शरीरं नापि संस्थानं न संहननं ॥ ५० ॥
जीवस्य नास्ति रागो नापि द्वेषो नैव विद्यते मोहः ।
नो प्रत्यया न कर्म नोकर्म चापि तस्य नास्ति ॥ ५१ ॥
जीवस्य नास्ति वर्गो न वर्गणा नैव स्पर्द्धकानि कानिचित् ।
नो अध्यात्मस्थानानि नैव चानुभागस्थानानि ॥ ५२ ॥
जीवस्य न संति कानिचिद्योगस्थानानि न बधस्थानानि वा ।
नैव चोदयस्थानानि न मार्गणास्थानानि कानिचित् ॥ ५३ ॥
नो स्थितिबंधस्थानानि जीवस्य न संक्लेशस्थानानि वा ।
नैव विशुद्धस्थानानि नो संयमलब्धिस्थानानि वा ॥ ५४ ॥
नैव च जीवस्थानानि न गुणस्थानानि वा संति जीवस्य ।
येन त्वेते सर्वे पुद्गलद्रव्यस्य परिणामाः ॥ ५५ ॥

यः कृष्णो हरितः पीतो रक्तः श्वेतो वर्णः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः सुरभिर्दुरभिर्वा गंधः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य

रसगधवर्णवती मूर्त्तिश्च औदारिकादिपच शरीराणि समचतुरस्रादिपट्संस्थानानि वज्रर्पभनाराचादिषट्संहननानि चेति । एते वर्णादयो धर्मिणः शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न संतीति साध्यो धर्मश्चेति धर्मधर्मिसमुदयलक्षणः पक्षः आस्था संधा प्रतिज्ञेति यावत् पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति

न] रस भी नहीं है [**च**] और [**स्पर्शः अपि न**] स्पर्श भी नहीं है [**रूपं अपि न**] रूप भी नहीं है [**न शरीरं**] शरीर भी नहीं है [**संस्थानं अपि न**] संस्थान भी नहीं हैं [**संहननं न**] संहनन भी नहीं है । [**जीवस्य**] तथा जीवमें [**रागः नास्ति**] राग भी नहीं है [**द्वेषः नापि**] द्वेष भी नहीं है [**मोहः**

पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः कटुकः कषायः तिक्तोऽम्लो मधुरो वा रसः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः स्निग्धो रूक्षः शीत' उष्णो गुरुर्लघुर्मृदुः कठिनो वा स्पर्शः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यत्स्पर्शादिसामान्यपरिणाममात्रं रूपं तन्नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यदौदारिकं वैक्रियिकमाहारकं तैजसं कार्मणं वा शरीर तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यत्समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमंडलं स्वाति कुब्जं वामनं हुंडं वा संस्थानं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यद्वज्रर्षभनाराचं वज्रनाराचं नाराचमर्द्धनाराचं कीलिका असंप्राप्तासृपाटिका वा संहननं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः प्रीतिरूपो रागः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। योऽप्रीतिरूपो द्वेषः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यस्तत्त्वाप्रतिप-

---

शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वादिति हेतुः। एवमत्र व्याख्याने पक्षहेतुरूपेणागद्वयमनुमान ज्ञातव्य। अथ रागद्वेपमोहमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकपाययोगरूपपचप्रत्ययमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मौदारिकवैक्रियकाहारकशरीरत्रयहारादिपट्पर्याप्तिरूपनोकर्माणि इत्यस्य जीवस्य शुद्धनिश्चयनयेन सर्वाण्येतानि न सति कस्मात्पुद्गलपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्। अथ परमाणोरविभागपरिच्छेदरूपशक्तिसमूहो वर्ग इत्युच्यते। वर्गाणा समूहो वर्गणा भण्यते। वर्गणासमूलक्षणानि स्पर्द्धकानि च कानिचिन्न सति। अथवा कर्मशक्तेः क्रमेण विशेपवृद्धिः स्पर्द्धकलक्षण। तथा चोक्तं वर्गवर्गणास्पर्द्धकाना त्रयाणा लक्षणं—"वर्गः शक्तिसमूहोऽणोर्बहूना वर्गणोदिता। वर्गणाना समूहस्तु स्पर्द्धकं स्पर्द्धकापहैः" ॥ शुभाशुभरागादिविकल्परूपाध्यवसानानि भ-

---

एव] मोह भी [**न विद्यते**] नहीं विद्यमान है [**प्रत्यया नो**] आस्रव भी नहीं हैं [**कर्म न**] कर्म भी नहीं हैं [**च नो कर्म अपि**] और नो कर्म भी [**तस्य नास्ति**] उसके नहीं हैं [**जीवस्य**] जीवके [**वर्गो नास्ति**] वर्ग नहीं हैं [**वर्गणा न**] वर्गणा नहीं है [**कानिचित् स्पर्धकानि**] कोई स्पर्धक भी [**नैव**] नहीं हैं [**अध्यात्मस्थानानि नो**] अध्यात्मस्थान भी नहीं हैं [**च**] और [**अनुभागस्थानानि**] अनुभागस्थान भी [**नैव**] नहीं है [**जीवस्य**] जीवके [**कानिचित् योगस्थानानि**] कोई योगस्थान भी [**न संति**] नहीं हैं [**वा**] अथवा [**वंधस्थानानि**] वंधस्थान भी [**न**] नहीं हैं [**च**] और [**उदयस्थानानि**] उदयस्थान भी [**नैव**] नहीं है [**कानिचित् मार्गणास्थानानि**] कोई मार्गणा स्थान भी [**न**] नहीं हैं [**जीवस्य**] जीवके [**स्थितिबंधस्थानानि नो**] स्थिति वंध स्थान भी नहीं हैं [**वा**] अथवा [**संक्लेशस्थानानि**] संक्लेशस्थान भी

त्तिरूपो मोहः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । ये मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणाः प्रत्ययास्ते सर्वेपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यद् ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायरूपं कर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यत्षट्पर्याप्तित्रिशरीरयोग्यवस्तुरूपं नोकर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यः शक्तिसमूहलक्षणो वर्गः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । या वर्गसमूहलक्षणा वर्गणा सा सर्वापि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि मंदतीव्ररसकर्मदलविशिष्टन्यासलक्षणानि स्पर्द्धकानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि स्वपरैकत्वाध्यासे सति विशुद्धचित्परिणामातिरिक्तत्वलक्षणान्यध्यात्मस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणामम-

ण्यंते तानि न संति । लतादार्वस्थिपाषाणशक्तिरूपाणि घातिकर्मचतुष्टयानुभागस्थानानि भण्यंते । गुडखंडशर्करामृतसमानानि शुभाघातिकर्मानुभागस्थानानि भण्यंते । निंवकाजीरविपहालाहलसदृशान्यशुभाघातिकर्मानुभागस्थानानि च तान्येतानि सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सति । कस्मात्, पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात् । अथ वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितमनोवचनकायवर्गणावलंवनकर्मादानहेतुभूतात्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणानि योगस्थानानि प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपचतुर्विधबंधस्थानानि सुखदुःखानुभवरूपाण्युदयस्थानानि गत्यादिमार्गणास्थानानि च सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न संति । कस्मात्, पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे

[**न**] नहीं है [**विशुद्धिस्थानानि**] विशुद्धि स्थान भी [**नैव**] नहीं हैं [**वा**] अथवा [**संयमलब्धिस्थानानि**] संयमलब्धि स्थान भी [**नो**] नहीं है [**च**] और [**जीवस्य**] जीवके [**जीवस्थानानि**] जीवस्थान भी [**नैव**] नहीं है [**वा**] अथवा [**गुणस्थानानि**] गुणस्थान भी [**न संति**] नहीं हैं [**येन तु**] क्योंकि [**एते सर्वे**] ये सभी [**पुद्गलद्रव्यस्य**] पुद्गल द्रव्यके [**परिणामाः**] परिणाम हैं ॥ **टीका**—जो काला हरा पीला लाल सफेद वर्ण (रंग) है वे सभी जीवके नहीं है क्योंकि पुद्गलद्रव्यके परिणमनमयपनेको प्राप्त हुए ये वर्ण अपनी अनुभूतिसे भिन्न हैं । १ । सुगंध दुर्गंध भी जीवके नहीं है, क्योंकि ये पुद्गल परिणाममय हैं इसलिये अपनी अनुभूतिसे भिन्न हैं । २ । कटुक (कडुआ) कसैला तिक्त (चर्परा) खट्टा मीठा ये सब रस भी जीवके नहीं है, क्योंकि०... । ३ । चिकना रूखा ठंडा गर्म भारी हलका कोमल कठोर—ये सब स्पर्श भी जीवके नहीं है क्योंकि०.... । ४ । स्पर्शादि सामान्य परिणाममात्ररूप भी जीवके नहीं है, क्योंकि०.... । ५ । औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण शरीर ये सभी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०....

यत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिरसपरिणामलक्षणान्यनुभागस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि कायवाङ्मनोवर्गणापरिस्पंदलक्षणानि योगस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिपरिणामलक्षणानि बंधस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि स्वफलसंपादनसमर्थकर्मावस्थालक्षणान्युदयस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि गतीन्द्रियकाययोगवेदकषायज्ञानसंयमदर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्वसंज्ञाहारलक्षणानि मार्गणास्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिकालांतरसहत्वलक्षणानि स्थितिबंधस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य

सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात् । अथ—जीवेन सह कालांतरावस्थानरूपाणि स्थितिबंधस्थानानि कषायोद्रेकरूपाणि संक्लेशस्थानानि कषायमंदोदयरूपाणि विशुद्धस्थानानि कषायक्रमहानिरूपाणि संयमलब्धिस्थानानि च सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न संति । कस्मात्, पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात् । अथ—जीवस्य शुद्धनिश्चयनयेन "बादरसुहमेइंदी बितिचउरिंदी असण्णि सण्णीण । पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चउदसा होंति" इति गाथाकथितक्र-

---

। ६ । समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सातिक, कुब्जक, वामन हुंडक—ये सब संस्थान भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । ७ । वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन ये भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । ८ । प्रीतिरूप राग भी जीवका नहीं है, क्योंकि यह पुद्गलपरिणाममय है इसलिये अपनी अनुभूतिसे भिन्न है । ९ । अप्रीतिरूप द्वेष भी जीवका नहीं है, क्योंकि० .. । १० । यथार्थ तत्त्वकी अप्राप्तिरूप मोह भी जीवका नहीं है, क्योंकि०. .. । ११ । मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद, योगस्वरूप प्रत्यय (आस्रव) भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । १२ । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतरायस्वरूप कर्म भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । १३ । छह पर्याप्तियोंसहित शरीरयोग्य वस्तुरूप पुद्गलस्कंध नोकर्म भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । १४ । कर्मके रसकी शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेदोंका समूहरूप वर्ग भी जीवका नहीं है, क्योंकि०.... । १५ । वर्गोंका समूहरूप वर्गणा भी जीवकी नहीं है, क्योंकि० ... । १६ । जो मंद तीव्ररसरूप कर्मके समूहकर विशिष्ट वर्गोंकी वर्गणाका स्थापनरूप स्पर्धक है वे भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । १७ । स्वपरके एकपनेका निश्चय आशय होनेपर विशुद्ध चैतन्य परिणामसे जिनका जुदापना लक्षण हैं ऐसे अध्यात्म स्थान भी जीवके नहीं हैं क्योंकि०.... । १८ । जुदे जुदे विशेषरूप प्रकृतियोंके रसरूप जिनका लक्षण है ऐसे अनुभाग स्थान भी जीवके

पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि कषायविपाकोद्रेकलक्षणानि संक्लेशस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणामायत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि कषायविपाकानुद्रेकलक्षणानि विशुद्धस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि चारित्रमोहविपाकक्रमनिवृत्तिलक्षणानि संयमलब्धिस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि पर्याप्तापर्याप्तवादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रियलक्षणानि जीवस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । यानि मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्तसंयतांप्रमत्तसयतापूर्वकरणोपशमकक्षपकानिवृत्तिवादरसांपरायोपशमक-

---

मेण बादरैकेंद्रियादिचतुर्दशजीवस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानानि सर्वाण्यपि न संति पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात् । कुतः इति चेत्, यतः कारणादेते वर्णादिगुणस्थानांताः परिणामाः शुद्धनिश्चयनयेन पुद्गलद्रव्यस्य पर्याया इति । अयमत्रभावार्थः—, सिद्धातादिशास्त्रे अशुद्धपर्यायार्थिकनयेनाभ्यंतरे रागादयो बहिरंगे शरीरवर्णापेक्षया वर्णादयोपि

नहीं हैं क्योंकि०.. । १९ । काय, वचन, मनोरूप वर्गणाका चलना जिनका लक्षण है ऐसे योगस्थान भी जीवके नहीं है, क्योंकि०.... । २० । जुदे जुदे विशेषोंको लिये प्रकृतियोंके परिणाम जिनका लक्षण है ऐसे बंधस्थान भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । २१ । अपने फलके उत्पन्न करनेमे समर्थ कर्मकी अवस्था जिनका स्वरूप है ऐसे उदयस्थान भी जीवके नहीं है, क्योंकि०.... । २२ । गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञा, आहार जिनका स्वरूप है ऐसे मार्गणास्थान भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । २३ । जुदे जुदे विशेषोंको लिये प्रकृतियोंका कालांतरमें साथ रहना जिनका लक्षण है ऐसे स्थितिबंधके स्थान भी जीवके नहीं है, क्योंकि०.... । २४ ॥ कषायके विपाकका उत्कृष्टपना जिनका लक्षण है ऐसे संक्लेशस्थान भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । २५ । कषायके विपाकका मंदपना जिनका लक्षण है ऐसे विशुद्धिस्थान भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... । २६ । चारित्र मोहके उदयकी क्रमसे निवृत्ति जिनका लक्षण है ऐसे संयमलब्धिस्थान भी जीवके नहीं है, क्योंकि० ... । २७ । पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर, सूक्ष्म, एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, पंचेंद्रिय जिनका लक्षण है ऐसे जीवस्थान भी जीवके नहीं हैं, क्योंकि०.... ।२८। मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अविरतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, संयोगकेवली, अयोगकेवली, जिनका लक्षण है ऐसे सब गुणस्थान भी जीवके नहीं है, क्योंकि ये पुद्गल द्रव्यके परिणाममय है इसलिये अपनी अनुभूतिसे भिन्न है । २९ । इस

क्षपकसूक्ष्मसांपरायोपशमकक्षपकोपशांतकषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोगकेवलिलक्षणानि गुणस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात् । "वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः । तेनैवांतस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥ ३७ ॥" ॥ ५० ॥ ५१ ॥५२॥५३॥५४॥५५॥

ननु वर्णादयो यद्यमी न संति जीवस्य तदा तन्त्रांतरे कथं संतीति प्रज्ञाप्यते इति चेत्;—

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया ।
गुणठाणंताभावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥ ५६ ॥

व्यवहारेण त्वेते जीवस्य भवंति वर्णाद्याः ।
गुणस्थानांता भावा न तु केचिन्निश्चयनयस्य ॥ ५६ ॥

इह हि व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रितत्वाज्जीवस्य पुद्गलसंयोगवशादनादिप्रसिद्धबंधपर्यायस्य कुसुंभरक्तस्य कार्पासिकवाससः इवौपाधिकं भावमवलंब्योत्प्लवमानः परभाव परस्य

जीवाः इत्युक्ताः अत्र पुनरध्यात्मशास्त्रे शुद्धनिश्चयनयेन निषिद्धा इत्युभयत्रापि नयविभागविवक्षया नास्ति विरोध इति वर्णाद्यभावस्य विशेषव्याख्यानरूपेण सूत्रषट्कं गत ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अथ यदुक्त पूर्वं सिद्धांतादौ जीवस्य वर्णादयो व्यवहारेण कथिताः अत्र तु प्राभृतग्रंथे निश्चयनयेन निषिद्धाः तमेवार्थं दृढयति;—व्यवहारनयेन त्वेते

प्रकार ये सभी पुद्गलद्रव्यके परिणाममय भाव हैं वे सब जीवके नहीं है । जीव तो परमार्थसे चैतन्य शक्तिमात्र है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते है । **वर्णाद्या** इत्यादि । **अर्थ**—वर्णादिक अथवा रागमोहादिक कहेहुए सभी भाव इस पुरुष (आत्मा) से भिन्न हैं इसीकारण अंतर्दृष्टिसे देखनेवालेको ये सब नहीं दीखते केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दीखता है । **भावार्थ**—परमार्थनय अभेद ही है इसलिये उस दृष्टिसे देखनेपर भेद नहीं दीखता, उस नयकी दृष्टिमें चैतन्यमात्र पुरुष (आत्मा) ही दीखता है इस कारण वे वर्णादिक तथा रागादिक पुरुषसे भिन्न ही हैं । वर्णको आदि लेकर गुणस्थानपर्यंत भावोंका स्वरूप विशेषतासे जानना हो तो **गोंमटसार** आदि ग्रंथोंसे जान लेना ॥ ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ ॥

आगे शिष्य पूछता है कि वर्णादिक भाव जो कहे वे यदि जीवके नहीं है तो अन्य सिद्धांतग्रंथोंमें 'ये जीवके हैं' ऐसा क्यों कहा गया ? उसका उत्तर गाथामें कहते हैं,—

[एते] ये **[वर्णाद्याः गुणस्थानांताः भावाः]** वर्णआदि गुणस्थानपर्यंत भाव कहे गये हैं वे **[व्यवहारेण तु]** व्यवहार नयसे तो **[जीवस्य भवंति]** जीवके ही होते हैं, इसलिये सूत्रमें कहे है **[तु]** परंतु **[निश्चयनयस्य]** निश्चयनयके मतसे **[केचित् न]** इनमेंसे कोई भी जीवके नहीं है ॥ **टीका**—यहांपर व्यवहारनय, पर्यायाश्रित होनेसे पुद्गलके संयोगवश अनादिकालसे प्रसिद्ध जिसकी बंध-

विदधाति । निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्केवलस्य जीवस्य स्वाभाविकं भावमवलंब्योत्प्लवमानः परभावं परस्य सर्वमेव प्रतिषेधयति । ततो व्यवहारेण वर्णादयो गुणस्थानांता भावा जीवस्य संति निश्चयेन न संतीति युक्ता प्रज्ञप्तिः ॥ ५६ ॥

कुतो जीवस्य वर्णादयो निश्चयेन न संतीति चेत्;—

एएहि य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो ।
ण य हुंति तस्स ताणि दु उवओग गुणाधिगो जम्हा ॥ ५७ ॥

एतैश्च संबंधो यथैव क्षीरोदकं ज्ञातव्यः ।
न च भवंति तस्य तानि तूपयोगगुणाधिको यस्मात् ॥ ५७ ॥

यथा खलु सलिलमिश्रितस्य क्षीरस्य सलिलेन सह परस्परावगाहलक्षणे संबंधे सत्यपि स्वलक्षणभूतक्षीरत्वगुणव्याप्यतया सलिलादधिकत्वेन प्रतीयमानत्वादग्नेरुष्णगुणेनेव सह

जीवस्य भवति वर्णाद्या गुणस्थानांता भावाः पर्याया न तु कोपि निश्चयनयेनेति ॥ ५६ ॥ एवं निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण गाथा गता । अथ कस्माज्जीवस्य निश्चयेन वर्णादयो न संतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—**एदेहि य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो** एतैः वर्णादिगुणस्थानातैः पूर्वोक्तपर्यायैः सह संबंधो यथैव क्षीरनीरसंश्लेषस्तथा मंतव्यः । न चाग्न्युष्णत्वयोरिव तादात्म्यसंबंधः । कुत इति चेत्, **ण य हुंति तस्स ताणि दु** न च भवंति तस्य जीवस्य ते तु वर्णादिगुणस्थानांता भावाः पर्यायाः। कस्मात्, **उवओगगुणाधिगो जम्हा** यस्मादुष्णगुणेनाग्निरिव केवलज्ञानदर्शनगुणेनाधिकः परिपूर्ण इति । ननु वर्णादयो वहिरंगास्तत्र

पर्याय है ऐसे जीवके "कसूमके लाल रंगसे रंगे हुए सफेद वस्त्रकी तरह" औपाधिक वर्णादिभावोंको आलंवनकर प्रवर्तती है इसलिये वह व्यवहारनय दूसरेके भावोंको दूसरोंके कहती है । और निश्चयनय है वह द्रव्यके आश्रय होनेसे केवल एक जीवके स्वाभाविक भावको अवलंवनकर प्रवर्तती है सो सब परभावोंको परके नहीं कहती निषेध करती है । इसलिये वर्णको आदि लेकर गुणस्थानपर्यंत जो भाव हैं वे जीवके हैं ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है । और निश्चयनयकर जीवके नहीं है ऐसा कहा जाता है । इसतरह भगवानका कथन स्याद्वादकर सहित है ॥ ५६ ॥

आगे फिर पूछता है कि ये वर्णादिक निश्चयकर जीवके क्यों नहीं हैं ? उसका कारण कहो ऐसे प्रश्नका उत्तर कहते हैं;—[**एतैश्च संबंधः**] इन वर्णादिक भावोंके साथ जीवका संबंध [**क्षीरोदकं यथैव**] जल और दूधके एक क्षेत्रावगाहरूप संबंधसरीखा [**ज्ञातव्यः**] जानना [**च**] और [**तानि**] वे [**तस्य तु न भवंति**] उस जीवके नहीं हैं [**यस्मात्**] इसकारण जीव [**उपयोगगुणाधिकः**] इनसे उपयोग गुणकर अधिक है । इस उपयोग गुणकर जुदा जाना जाता है । **टीका—** जैसे जलसे मिलाहुआ दूध जलके साथ परस्पर अवगाहस्वरूपसंबंध होनेपर भी

तादात्यलक्षणसंबंधाभावान्न निश्चयेन सलिलमस्ति। तथा वर्णादिपुद्गलद्रव्यपरिणाममिश्रितस्यास्यात्मनः पुद्गलद्रव्येण सह परस्परावगाहलक्षणे सबंधे सत्यपि स्वलक्षणभूतोपयोगगुणव्याप्यतया सर्वद्रव्येभ्योधिकत्वेन प्रतीयमानत्वात् अग्नेरुष्णगुणेनेव सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावान्न निश्चयेन वर्णादिपुद्गलपरिणामाः संति ॥ ५७ ॥

कथं तर्हि व्यवहारो विरोधक इति चेत्;—

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥ ५८ ॥
तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ॥ ५९ ॥
गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥ ६० ॥

पथि मुष्यमाणं दृष्ट्वा लोका भणंति व्यवहारिणः।
मुष्यते एप पंथा न च पंथा मुष्यते कश्चित् ॥ ५८ ॥
तथा जीवे कर्मणां नोकर्मणां च दृष्ट्वा वर्णं।
जीवस्यैप वर्णो जिनैर्व्यवहारत उक्तः ॥ ५९ ॥
गंधरसस्पर्शरूपाणि देहः संस्थानादयो ये च।
सर्वे व्यवहारस्य च निश्चयद्रष्टारो व्यपदिशंति ॥ ६० ॥

व्यवहारेण क्षीरनीरवत्संश्लेषसबधो भवतु नचाभ्यंतराणा रागादीनां तत्राशुद्धनिश्चयेन भवितव्यमिति। नैवं द्रव्यकर्मबंधापेक्षया योसौ असद्भूतव्यवहारस्तदपेक्षया तारतम्यज्ञापनार्थं रागादीनामशुद्धनिश्चयो भण्यते। वस्तुतस्तु शुद्धनिश्चयापेक्षया पुनरशुद्धनिश्चयोपि व्यवहार एवेति भावार्थः ॥ ५७ ॥ अथ तर्हि कृष्णवर्णोय धवलवर्णोयं पुरुष इति व्यवहारो विरोध प्राप्नोती-

---

अपने स्वलक्षणभूत दूधपने गुणकर व्याप्तपनेसे जलसे अधिकपनेकर प्रतीत होता है क्योंकि उसके और दूधके तादात्म्यस्वरूपसंबंधका अभाव है। जैसे अग्निका और उष्णपनेका तादात्म्यसंबंध है उसतरह इनका नहीं है इसकारण निश्चयसे दूधका जल नहीं है। उसीतरह वर्णादिक पुद्गलद्रव्यके परिमाणोंसे मिला हुआ आत्मा पुद्गलद्रव्यके साथ परस्पर अवगाह स्वरूपसंबंध होनेपर भी अपने लक्षणसहित उपयोग गुणके व्याप्तपनेकर सब द्रव्योंसे अधिकपनेकर प्रतीत होता है। जैसे अग्निका और उष्णपनेका तादात्म्यस्वरूपसंबंध है उसतरह आत्माका और वर्णादिकोंका तादात्म्यसंबंध नहीं है। इसलिये निश्चयनयकर वर्णादिक पुद्गलके परिणाम हैं वे जीवके नहीं हैं ॥ ५७ ॥

आगे फिर पूछता है कि इसतरहसे तो व्यवहारनय और निश्चयनयका विरोध

---

१ तात्पर्यवृत्तौ तु 'एव रसगध' इत्यादि टीकास्थितपाठ।

यथा पथि प्रस्थितं कंचित्सार्थं मुष्यमाणमवलोक्य तात्स्थ्यात्तदुपचारेण मुष्यत एष पंथा इति व्यवहारिणां व्यपदेशेपि न निश्चयतो विशिष्टाकाशदेशलक्षणः कश्चिदपि पंथा मुष्येत । तथा जीवे बंधपर्यायेणावस्थितकर्मणो नोकर्मणो वर्णमुत्प्रेक्ष्य तात्स्थ्यात्तदुपचारेण जीवस्यैष वर्ण इति व्यवहारतोर्हद्देवानां प्रज्ञापनेपि न निश्चयतो नित्यमेवामूर्त्तस्वभावस्योपयोगगुणाधिकस्य जीवस्य कश्चिदपि वर्णोस्ति । एवं गंधरसस्पर्शरूपशरीरसंस्थानसंहननरागद्वेषमोहप्रत्ययकर्मनोकर्मवर्गवर्गणास्पर्द्धकाध्यात्मस्थानानुभागस्थानयोगस्थानबंधस्थानो-

---

त्येवं पूर्वपक्षे कृते सति व्यवहाराविरोध दर्शयतीत्येका पातनिका । द्वितीया तु तस्यैव पूर्वोक्तव्यवहारस्य विरोधं लोकप्रसिद्धदृष्टांतद्वारेण परिहरति,—**पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी** पथि मार्गे मुष्यमाणं सार्थं दृष्ट्वा व्यवहारिलोका भणंति । किं भणंति, **मुस्सदि एसो पंथो** मुष्यत एषः प्रत्यक्षीभूतः पंथाश्चौरैः कर्तृभूतैः **ण य पंथो मुस्सदे कोई** न च विशिष्टशुद्धाकाशलक्षणः पंथा मुष्यते कश्चिदपि किंतु पंथानमाधारीकृत्य तदाधेयभूता जना मुष्यंत इति दृष्टांतगाथा गता । **तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च परिसदुं वण्णं** तथा तेन पथि सार्थदृष्टातेन जीवेधिकरणभूते कर्मनोकर्मणां शुक्लादिवर्णं दृष्ट्वा **जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो** जीवस्य एष वर्णो जिनैर्व्यवहारतो भणित इति दार्ष्टांतगाथा गता । **एवं रसगंधफासा संठाणादीय जे समुद्दिट्ठा** एवमनेनैव दृष्टांतदार्ष्टांतन्यायेन रसगंधस्पर्शसंस्थानसंहननरागद्वेषमोहादयो ये पूर्वगाथाषट्केन समुद्दिष्टाः **सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति** ते सर्वे व्यवहारनयस्या-

---

आता है अविरोध किस तरहसे कहा जासकता है ? उसका उत्तर दृष्टांतद्वारा तीन गाथाओंसे कहते हैः—**[पथि मुष्यमाणं]** जैसे मार्गमें चलतेहुएको लुटा हुआ **[दृष्ट्वा]** देखकर **[व्यवहारिणः]** व्यवहारी **[लोकाः]** जन **[भणंति]** कहते हैं कि **[एष पंथा]** यह मार्ग **[मुष्यते]** लूटता है वहां परमार्थसे विचारा जाय तो **[कश्चित् पंथा]** कोई मार्ग **[न च मुष्यते]** नहीं लूटता, जातेहुए लोक ही लूटते हैं **[तथा]** उसीतरह **[जीवे]** जीवमें **[कर्मणां नोकर्मणां च]** कर्मोंका और नोकर्मोंका **[वर्णं]** वर्ण **[दृष्ट्वा]** देखकर **[जीवस्य]** जीवका **[एषः वर्णः]** यह वर्ण है ऐसा **[जिनैः]** जिनदेवने **[व्यवहारतः]** व्यवहारसे **[उक्तः]** कहा है **[एवं]** इसीतरह **[गंधरसस्पर्शरूपाणि]** गंध रस स्पर्श रूप **[देहः संस्थानादयः]** देह संस्थान आदिक **[ये च सर्वे]** जो सब हैं **[व्यवहारस्य]** वे व्यवहारसे है **[निश्चयद्रष्टारः]** ऐसा निश्चयनयके देखनेवाले **[व्यपदिशंति]** कहते हैं ॥ **टीका**—जैसे मार्गमें जातेहुए साथको लुटताहुआ देख कोई कहता है कि यह मार्ग लूटता है वहां उस मार्गमें लुटनेसे मार्गको लूटनेका उपचार कहा जाता है । ऐसा व्यवहारी लोकोंका कहना है । निश्चयसे देखा जाय तो

दयस्थानमार्गणास्थानस्थितिबंधस्थानसंक्लेशस्थानविशुद्धिस्थानसंयमलब्धिस्थानजीवस्थानगुणस्थानान्यपि व्यवहारतोर्हद्देवानां प्रज्ञापनेति निश्चयतो नित्यमेवामूर्तस्वभावस्योपयोगगुणेनाधिकस्य जीवस्य सर्वाण्यपि न संति तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावात् ॥५८॥५९॥६०॥

भिप्रायेण निश्चयज्ञा व्युपदिशति कथयंतीति नास्ति व्यवहारविरोधः । इति दृष्टांतदार्ष्टांताभ्या व्यवहारनयसमर्थनरूपेण गाथात्रयं गत ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ एवं शुद्धजीव एवोपादेय

मार्ग आकाशके प्रदेशोंका विशेष है सो मार्ग तो कोई लूटता नहीं है । उसीतरह जीवमें बंधपर्यायकर अवस्थित जो कर्मका और नोकर्मका वर्ण उसे देखकर जीवमें स्थित होनेसे उसका उपचार कर जीवका यह वर्ण है ऐसे व्यवहारसे भगवान् अरहंतदेव प्रज्ञापन करते हैं प्रगट करते हैं तौ भी निश्चयसे जीव नित्य ही अमूर्तस्वभाव है और उपयोग गुणकर अन्य द्रव्यसे अधिक है भिन्न है इसलिये उसके कोई वर्ण नहीं है । इसीतरह गंध रस स्पर्श रूप शरीर संस्थान संहनन राग द्वेष मोह प्रत्यय कर्म नोकर्म वर्ग वर्गणा स्पर्धक अध्यात्मस्थान अनुभागस्थान योगस्थान बंधस्थान उदयस्थान मार्गणास्थान स्थितिबंधस्थान संक्लेशस्थान विशुद्धिस्थान संयमलब्धिस्थान जीवस्थान गुणस्थान–ये सभी व्यवहारसे जीवके अरहंतदेवने कहे हैं तौभी निश्चयसे जीव नित्य ही अमूर्तस्वभाव है–और उपयोगगुणकर अन्यसे अधिक है भिन्न है इसलिये उसके ये सब नहीं हैं क्योंकि इन वर्णादिभावोंके और जीवके तादात्म्यलक्षणसंबंधका अभाव है ॥ **भावार्थ**—ये जो वर्णसे लेकर गुणस्थानपर्यंत भाव कहे हैं वे सिद्धांतमे जीवके कहे हैं सो व्यवहारनयकर कहेगये हैं निश्चयनयकर जीवके नहीं है । क्योंकि जीव तो परमार्थकर उपयोगस्वरूप है । यहां ऐसा जानना कि पहले व्यवहारनयको असत्यार्थ कहा है वहां ऐसा नहीं समझना कि सर्वथा असत्यार्थ है कथंचित् असत्यार्थ जानना । क्योंकि जब एक द्रव्यको जुदा पर्यायोंसे अभेदरूप असाधारण गुणमात्रको प्रधानकर कहा जाय तब परस्पर द्रव्योंका निमित्तनैमित्तिकभाव, तथा निमित्तसे हुए पर्याय ये सब गौण हो जाते हैं उस एक अभेदद्रव्यकी दृष्टिमें उनका प्रतिभास नहीं होता । इसलिये वे सब उस द्रव्यमे नहीं हैं। इसतरह कथंचित् निषेध किया जाता है । यदि उस द्रव्यमें कहा जाय तो व्यवहारनयसे कहसकते हैं । ऐसा नयविभाग है । सो यहां शुद्धद्रव्यकी दृष्टिकर कथन है इसलिये उन सभीको व्यवहारनयकर जीवका कहा है ऐसा सिद्ध किया है । और निमित्तनैमित्तिकभावकी दृष्टिकर देखा जाय तो कथंचित् सत्यार्थ भी कहसकते हैं । यदि सर्वथा असत्यार्थ ही कहें तो सब व्यवहारका लोप होजाय तब परमार्थका भी लोप हो जायगा । इसलिये जिनदेवका उपदेश स्याद्वादरूप ही समझना सम्यग्यज्ञान है, सर्वथा एकांत करना मिथ्यात्व है ॥ ५८ । ५९ ६० ॥

कुतो जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधो नास्तीति चेत्;—

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी ।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥ ६१ ॥

तत्र भवे जीवानां संसारस्थानां भवंति वर्णादयः ।
संसारप्रमुक्तानां न संति खलु वर्णादयः केचित् ॥ ६१ ॥

यत्किल सर्वास्वप्यवस्थासु यदात्मकत्वेन व्याप्तं भवति तदात्मकत्वव्याप्तिशून्यं न भवति तस्य तैः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधः स्यात् । ततः सर्वास्वप्यवस्थासु वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्याभवतश्च पुद्गलस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधः स्यात् । संसारावस्थायां कथंचिद्वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्य भवतो वर्णा-

---

इति प्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वादशगाथाभिः द्वितीयांतराधिकारो व्याख्यातः । अतः परं जीवस्य निश्चयेन वर्णादितादात्म्यसंबंधो नास्तीति पुनरपि दृढीकरणार्थं गाथाष्टकपर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्रादौ संसारिजीवस्य व्यवहारेण वर्णादितादात्म्य भवति मुक्तावस्थायां नास्तीति ज्ञापनार्थं **तत्थभवे** इत्यादिसूत्रमेकं । ततःपरं जीवस्य वर्णादितादात्म्यमस्तीति दुरभिनिवेशे सति जीवाभावो दूषणं प्राप्नोतीति कथनमुख्यत्वेन **जीवो चेवहि** इत्यादिगाथात्रयं । तदनंतरमेकेंद्रियादिचतुर्दशजीवसमासानां जीवेन सह शुद्धनिश्चयनयेन तादात्म्यं नास्तीति कथनार्थं तथैव वर्णादितादात्म्यनिषेधार्थं च **एकं च दोण्णि** इत्यादिगाथात्रयं । ततश्च मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानानामपि जीवेन सह शुद्धनिश्चयनयेन तादात्म्यनिराकरणार्थं तथैवाभ्यंतरे रागादितादात्म्यनिषेधार्थं च **मोहणकम्म** इत्यादिसूत्रमेकं । एवमष्टगाथाभिस्तृतीयस्थले समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ कथं जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणसंबंधो नास्तीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—**तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी** तत्र विवक्षिताविवक्षितभवे संसारस्थानां जीवानामशुद्धनयेन वर्णादयो भवंति **संसारपमुक्काणं** संसारप्रमुक्ताना **णत्थि दु वण्णादओ केई** पुद्गलस्य वर्णादितादात्म्यसंबंधाभावात् । केवलज्ञानादि-

---

आगे पूछते हैं कि वर्णादिके साथ जीवका तादात्म्य संबंध क्यों नहीं है? उसका उत्तर कहते हैं,—**[वर्णादयः]** वर्ण आदिक हैं वे **[संसारस्थानां जीवानां]** संसारमें तिष्ठते हुए जीवोंके **[तत्र भवे]** उस संसारमें **[भवंति]** होते हैं **[संसारप्रमुक्तानां]** संसारसे छूटे हुए (मुक्त हुए) जीवोंके **[खलु]** निश्चयकर **[वर्णादयः केचित्]** वर्णादिक कोईभी **[न संति]** नहीं हैं । इसलिये तादात्म्यसंबंध भी नहीं है ॥ **टीका**—जो निश्चयकर सब अवस्थाओंमें तत्स्वरूपकर व्याप्त हो और उस स्वरूपकी व्याप्तिकर रहित न हो उस वस्तुके साथ उन भावोंका तादात्म्यसंबंध है । इसलिये सब ही अवस्थाओंमें वर्णादि स्वरूप पनेकर व्याप्त होता है और वर्णादिककी व्याप्तिकर शून्य न होता जो पुद्गल द्रव्य उसका वर्णादिक भावोंके साथ तादा-

द्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्याभवतश्चापि मोक्षावस्थायां सर्वथा वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्याभवतश्च जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः संबंधो न कथंचनापि स्यात् ॥ ६१ ॥

जीवस्य वर्णादितादात्म्यदुरभिनिवेशे दोषश्चायं;—

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावात्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥ ६२ ॥

जीवश्चैव ह्येते सर्वे भावा इति मन्यसे यदि हि।
जीवस्याजीवस्य च नास्ति विशेषस्तु ते कश्चित् ॥ ६२ ॥

यथा वर्णादयो भावाः क्रमेण भाविताविर्भावतिरोभावाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यक्तिभिः पुद्गलद्रव्यमनुगच्छंतः पुद्गलस्य वर्णादितादात्म्यं प्रथयंति। तथा वर्णादयो भावाः क्रमेण भाविताविर्भावतिरोभावाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यक्तिभिर्जीवमनुगच्छंतो जीवस्य वर्णादितादात्म्यं प्रथयंतीति

गुणसिद्धत्वादिपर्यायैः सह यथा तादात्म्यसंबंधोस्ति तथा वा तादात्म्यसंबंधाभावादशुद्धनयेनापि न संति पुनर्वर्णादयः केपि ॥६१॥ इति वर्णादितादात्म्यनिषेधरूपेण गाथा गता। अथ जीवस्य वर्णादितादात्म्यदुराग्रहे सति दोषं दर्शयति,—**जीवो चेव हि एदे सव्वे भावत्ति मण्णसे जदि हि** यथानंतज्ञानाव्याबाधसुखादिगुणा एव जीवो भवति वर्णादिगुणा एव पुद्गलस्तथा जीव एव हि स्फुटमेते वर्णादयः सर्वे भावा मनसि मन्यसे यदि चेत् **जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो हि दे कोई** तदा किं दूषणं, विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावजीवस्य जड-

---

त्म्यलक्षण संबंध है। और संसारअवस्थामें कथंचित् वर्णादिस्वरूपपनेसे हुआ तथा वर्णादिकस्वरूपपनेकी व्याप्तिकर शून्य न हुआ जो जीव उसका मोक्षअवस्थामें सब तरहसे वर्णादिस्वरूपपनेकी व्याप्तिकर शून्य होनेसे तथा वर्णादिस्वरूपपनेकर व्याप्त न होनेसे वर्णादिभावोंकर तादात्म्यलक्षण संबंध किसीतरह भी नहीं है॥ **भावार्थ**—जो वस्तु जिन भावोंकर सब अवस्थाओंमें व्यापै उसके उन भावोंकर तादात्म्यसंबंध कहा जाता है। सो वर्णादिकसे पुद्गल तो सब अवस्थाओंमें व्यापक है और जीवके संसारअवस्थामे तो वर्णादिक किसीतरह कह सकते हैं परंतु मोक्ष अवस्थामे सर्वथा ही नहीं। इसलिये जीवका वर्णादिकके साथ तादात्म्यसंबंध नहीं है ऐसा न्याय है॥ ६१ ॥

आगे जीवका वर्णादिकके साथ तादात्म्य ही है ऐसा मिथ्या अभिप्राय करे उसमें यह दोष है उसे कहते है,—वर्णादिकके साथ जीवका तादात्म्य माननेवालेको कहते हैं कि हे मिथ्याअभिप्रायवाले! **[यदि हि]** जो तू **[इति मन्यसे]** ऐसा मानेगा कि **[एते भावाः]** ये वर्णादिक भाव **[सर्वे हि जीवा एव]** सभी जीव हैं **[तु ते]** तेरे मतमें **[जीवस्य च अजीवस्य]** जीव और अजीवका **[कश्चित्]** कुछ **[विशेषः]** भेद **[नास्ति]** नहीं रहेगा॥ **टीका**—जैसे वर्णादिकभाव हैं वे अनुक्रमसे भावित प्रगट होना उपजना और छिपना नाशहोनारूप उन उन व्यक्तियों (पर्यायों) कर

यस्याभिनिवेशः तस्य शेषद्रव्यासाधारणस्य वर्णाद्यात्मकत्वस्य पुद्गललक्षणस्य जीवेन स्वीकरणाज्जीवपुद्गलयोरविशेषप्रसक्तौ सत्यां पुद्गलेभ्यो भिन्नस्य जीवद्रव्यस्याभावाद्भवत्येव जीवाभावः ६२

संसारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यमित्यभिनिवेशेप्ययमेव दोषः—

जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी ।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥ ६३ ॥
एवं पुग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी ।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥ ६४ ॥

अथ संसारस्थानां जीवानां तव भवंति वर्णादयः ।
तस्मात्संसारस्था जीवा रूपित्वमापन्नाः ॥ ६३ ॥
एवं पुद्गलद्रव्यं जीवस्तथालक्षणेन मूढमते ।
निर्वाणमुपगतोपि च जीवत्वं पुद्गलः प्राप्तः ॥ ६४ ॥

यस्य तु संसारावस्थायां जीवस्य वर्णादितादात्म्यमस्तीत्यभिनिवेशस्तस्य तदानीं स जीवो रूपित्वमवश्यमवाप्नोति । रूपित्वं च शेषद्रव्यसाधारणं कस्यचिद् द्रव्यस्य लक्षण-

---

त्वादिलक्षणाजीवस्य च तस्यैव मते कोपि विशेषो भेदो नास्ति । ततश्च जीवाभावदूषणं प्राप्नोतीति सूत्रार्थः ॥६२॥ अथ संसारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यसंबंधोस्तीति दुरभिनिवेशेपि जीवाभाव एव दोष इत्युपदिशति,—**जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी** यदि चेत्संसारस्थजीवानां पुद्गलस्येव वर्णादयो गुणास्तव मतेन तवाभिप्रायेणैकातेन भवंतीति **तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा** ततः किं दूषणं, संसारस्थजीवा अमूर्तमनं-

---

पुद्गलद्रव्यको अन्वयरूप प्राप्त हुए पुद्गलद्रव्यके ही तादात्म्यस्वरूपको विस्तारते हैं उसीतरह वर्णादिक भाव क्रमकर भावित आविर्भावतिरोभाववालीं पर्यायोंकर जीवको अन्वयरूप प्राप्तहुए जीवके वर्णादिकके साथ तादात्म्यस्वरूपको विस्तारते हैं ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके अन्य शेषद्रव्योंसे असाधारण वर्णादिस्वरूपपनारूप जो पुद्गलद्रव्यका लक्षण उसको जीवकर अंगीकार करनेसे जीव और पुद्गलमें अविशेषका प्रसंग होगा। ऐसा होनेसे पुद्गलसे जुदा जीवद्रव्यका अभाव होगा । तब जीवद्रव्यका ही अभाव हो जायगा ॥ **भावार्थ**—जैसे वर्णादि पुद्गलद्रव्यके साथ तादात्म्यस्वरूप हैं उसीतरह जीवके साथ भी तादात्म्यस्वरूप होंय तो जीव पुद्गलमें कुछभी भेद न रहै तब जीवका भी अभाव हो जाय । यह बड़ा दोष आजाय ॥ ६२ ॥

आगे संसारअवस्थामें ही जीवको वर्णादिकसे तादात्म्य है ऐसा अभिप्राय होनेपर भी यही दोष आता है ऐसा कहते हैं;—[**अथ**] अथवा [**संसारस्थानां जीवानां**] संसारमें तिष्ठते हुए जीवोंके [**तव**] तेरे मतमें [**वर्णादयः**] वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप [**भवंति**] हैं [**तस्मात्**] तो इसीकारण [**संसारस्थाः जीवाः**] संसारमें स्थित जीव [**रूपित्वं आपन्नाः**] रूपीपनेको प्राप्त होगये । [**एवं**] ऐसा

मस्ति । ततो रूपित्वेन लक्ष्यमाणं यत्किंचिद्भवति स जीवो भवति । रूपित्वेन लक्ष्यमाणं पुद्गलद्रव्यमेव भवति । एव पुद्गलद्रव्यमेव स्वयं जीवो भवति न पुनरितरः कतरोपि । तथा च सति मोक्षावस्थायामपि नित्यस्वलक्षणलक्षितस्य द्रव्यस्य सर्वास्वप्यवस्थास्वनपायित्वादनादिनिधनत्वेन पुद्गलद्रव्यमेव स्वयं जीवो भवति न पुनरितरः कतरोपि । तथा च सति तस्यापि पुद्गलेभ्यो भिन्नस्य जीवद्रव्यस्याभावात् भवत्येव जीवाभावः । एवमेतत् स्थितं

तज्ज्ञानादिचतुष्टयस्वभावलक्षणं त्यक्त्वा शुक्लकृष्णादिलक्षणं रूपित्वमापन्ना भवति । अथ— **एवं पुग्गलदव्वं जीवो तह लक्खणेण मूढमई** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवस्य रूपित्वे सति पुद्गलद्रव्यमेव जीवः नान्यः कोपि विशुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रस्तव लक्षणेन तवाभिप्रायेण हे मूढमते न केवलं संसारावस्थायां पुद्गल एव जीवत्वं प्राप्तः **णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो** निर्वाणमुपगतोपि पुद्गल एव जीवत्वं प्राप्तः नान्यः कोपि चिद्रूपः । कस्मादिति चेत्, वर्णादितादात्म्यस्य पुद्गलद्रव्यस्येव निपेधयितुमशक्यत्वादिति भवत्येव जीवाभावः । किं च संसारावस्थायामेकांतेन वर्णादितादात्म्ये सति मोक्ष एव न घटते, कस्मादिति चेत्? केवलज्ञानादिचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्यैव मोक्षसंज्ञा सा च जीवस्य पुद्गलत्वे सति न संभ-

---

होनेपर [**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्य ही [**जीवः**] जीव सिद्ध हुआ [**तथालक्षणेन**] पुद्गलके लक्षणके समान जीवका लक्षण होनेसे [**मूढमते**] हे मूढबुद्धि [**निर्वाणं**] निर्वाणको [**उपगतोपि च**] प्राप्तहुआ [**पुद्गलः**] पुद्गल ही [**जीवत्वं**] जीवपनेको [**प्राप्तः**] प्राप्त हुआ ॥ **टीका**—जिसके मतमें संसारअवस्थामें जीवके वर्णादिभावोंकर सहित तादात्म्यसंबंध है ऐसा अभिप्राय है उसके संसारअवस्थाके समय वह जीव रूपीपनेको अवश्य प्राप्त होता है । और रूपीपना किसी द्रव्यका असाधारण अन्यद्रव्योंसे जुदा लक्षण है । इसलिये रूपीपने लक्षणमात्रसे जो कुछ है वही जीव है इसतरह रूपीपनेसे लक्ष्यमाण पुद्गलद्रव्य ही है । इसप्रकार पुद्गलद्रव्य ही आप जीव है अन्य कोई नहीं है । ऐसा होनेपर मोक्षअवस्थामे भी पुद्गलद्रव्य ही आप जीव होता है । क्योंकि जो द्रव्य है वह नित्य अपने लक्षणकर लक्षित है वह सभी अवस्थाओंमें अविनाशस्वभाव है इसलिये अनादिनिधन है इसकारण पुद्गल ही जीव है अन्य कोई जुदा नहीं है । ऐसा होनेपर पुद्गलोंसे भिन्न जीवद्रव्यका अभाव होनेसे जीवका अभावही सिद्ध हुआ । इसलिये यह निश्चित हुआ कि वर्णादिकभाव हैं वे जीव नहीं हैं ॥ **भावार्थ**—जो कोई वर्णादिभावोंकर जीवके संसारअवस्थामें भी तादात्म्यसंबंध मानता है उसके भी जीवका अभाव ही आता है क्योंकि वर्णादिक मूर्तीकद्रव्यके लक्षण हैं ऐसा मूर्तीक पुद्गलद्रव्य है । वह वर्णादिकरूप जीव माना जाय तब जीव भी पुद्गल ही ठहरे । जब जीव मोक्ष होय तब वहां भी पुद्गल ही ठहरे तब पुद्गलसे जुदा तो जीव नहीं सिद्ध हो । इसतरह जीवका अभाव आवे । इसलिये वर्णादिक जीवके नहीं हैं ऐसा

यद्वर्णादयो भावा न जीव इति ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा ।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥ ६५ ॥
एदेहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणाउ करणभूदाहिं ।
पयडीहिं पुग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ॥ ६६ ॥

एकं वा द्वे त्रीणि च चत्वारि च पंचेन्द्रियाणि जीवाः ।
बादरपर्याप्तेतराः प्रकृतयो नामकर्मणः ॥ ६५ ॥
एताभिश्च निर्वृत्तानि जीवस्थानानि करणभूताभिः ।
प्रकृतिभिः पुद्गलमयीभिस्ताभिः कथं भण्यते जीवः ॥ ६६ ॥

निश्चयतः कर्मकरणयोरभिन्नत्वात् यद्येन क्रियते तत्तदेवेति कृत्वा यथा कनकपत्रं कनकेन क्रियमाणं कनकमेव न त्वन्यत् । तथा जीवस्थानानि बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्ताभिधानाभिः पुद्गलमयीभिः नामकर्मप्रकृतिभिः क्रियमाणानि पुद्गल

वतीति भावार्थः ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ एवं जीवस्य वर्णादितादात्म्ये सति जीवाभावदूषणद्वारेण गाथात्रयं गत । अथैवं स्थितं बादरसूक्ष्मैकेंद्रियादिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्यंतचतुर्दशजीवस्थानानि शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंति तथा देहगता वर्णादयोपीत्यावेदयति;—एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिबादरपर्याप्तेतराभिधानाः प्रकृतयो भवंति । कस्य संबंधिन्यो नामकर्मण इति । अथ—एताभिरमूर्त्तातींद्रियनिरंजनपरमात्मतत्त्वविलक्षणाभिर्नामकर्मप्रकृतिभिः पुद्गलमयीभिः पु-

---

निश्चय है ॥ ६३।६४ ॥

आगे इसी अर्थका विशेष कहते हैं;—[**एकं वा**] एकेंद्रिय [**द्वे**] द्वींद्रिय [**त्रीणि च**] त्रींद्रिय [**चत्वारि च**] चतुरिंद्रिय [**पंचेंद्रियाणि**] पंचेंद्रिय [**जीवाः**] जीव तथा [**बादरपर्याप्तेतराः**] बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त ये जीव हैं वे [**नामकर्मणः**] नामकर्मकी [**प्रकृतयः**] प्रकृतिया हैं [**एताभिः च**] इन प्रकृतियोंकर ही [**करणभूताभिः**] करणस्वरूप होकर [**जीवस्थानानि**] जीवसमास [**निर्वृत्तानि**] रचेगये हैं [**ताभिः**] उन [**पुद्गलमयीभिः**] पुद्गलमय [**प्रकृतिभिः**] प्रकृतियोंसे रचेहुएको [**जीवः**] जीव [**कथं**] कैसे [**भण्यते**] कह सकते हैं । **टीका**—निश्चयनयकर कर्म और करणमें अभेदभाव है इस न्यायकर जो जिसकर कियाजाय वह वही है। ऐसा होनेपर जैसे सुवर्णका पत्र सुवर्णकर किया सो वह पत्र सुवर्ण ही है अन्य तो कुछ नहीं उसीतरह ये जीवस्थान हैं वे बादर सूक्ष्म एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय वे सब पर्याप्त अपर्याप्त हैं वे सभी पुद्गलमयी नामकर्मकी प्रकृतियां हैं वे करणरूप हैं उनकर किये गये हैं इसलिये पुद्गल ही है वे जीव नहीं हैं । तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंके पुद्गलमयपना आगममें प्रसिद्ध है । और जो प्रत्यक्ष देखनेमें आनेवाले शरीरआदि मूर्तीकभाव है वे पुद्गल कर्मप्रकृतियोंके कार्य

एव न तु जीवः। नामकर्मप्रकृतीनां पुद्गलमयत्वं चागमप्रसिद्धं दृश्यमानशरीराकारादिमूर्तकार्यानुमेयं च। एवं गंधरसस्पर्शरूपशरीरसंस्थानसंहननान्यपि पुद्गलमयनामकर्मप्रकृतिनिर्वृत्तत्वे सति तदव्यतिरेकाज्जीवस्थानैरेवोक्तानि। ततो न वर्णादयो जीव इति निश्चयसिद्धांतः। "निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेव तत्स्यान्न कथं च नान्यत्। रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यंति रुक्मं न कथंचनासिं ॥ ३८॥" "वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य। ततोस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा यतः स विज्ञानघनस्ततोन्यः ॥ ३९॥" ॥ ६५॥ ६६॥

शेषमन्यद्व्यवहारमात्रं;—

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता॥ ६७॥

पर्याप्तापर्याप्ता ये सूक्ष्मा बादराश्च ये चैव।
देहस्य जीवसंज्ञाः सूत्रे व्यवहारतः उक्ताः॥ ६७॥

यत्किल बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्ता इति शरीरस्य संज्ञाः सूत्रे

र्वोक्ताभिर्निर्वर्तितानि चतुर्दशजीवस्थानानि निश्चयनयेन कथं जीवा भवति? न कथमपि। तथाहि–यथा रुक्मेण करणभूतेन निर्वृत्तमसिकोश रुक्मैव भवति तथा पुद्गलमयप्रकृतिभिर्निष्पन्नानि जीवस्थानानि पुद्गलद्रव्यस्वरूपाण्येव भवति न च जीवस्वरूपाणि। तथा तेनैव जीवस्थानदृष्टांतेन तदाश्रिता वर्णादयोपि पुद्गलस्वरूपा भवति न च जीवस्वरूपा इत्यभिप्रायः॥ ६५॥ ६६॥ अथ—ग्रंथांतरे पर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मजीवाः कथ्यंते तत्कथ घटत इति पूर्वपक्षे परिहारं ददाति,—**पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव** पर्याप्तापर्याप्ता ये जीवाः

हैं उनकर अनुमानप्रमाणसे ही सिद्ध है। इसीतरह गंध रस स्पर्श रूप शरीर संस्थान संहनन–ये भी नामकर्मकी प्रकृतियोंकर कियेहुए हैं इसलिये उस पुद्गलसे अभेदरूप हैं इसीकारण जीवस्थान पुद्गलमय कहने चाहिये। इसकारण ये वर्णादिक जीव नहीं हैं ऐसा निश्चयनयका सिद्धांत है॥ यहां इसी अर्थका कलशरूप काव्य है। **निर्वर्त्यते** इत्यादि। **अर्थ**—जिस वस्तुकर जो कुछ भाव बने वह भाव वस्तु ही है कुछ अन्य वस्तु नहीं है। जैसे रूपे सोनेकर खड्गका (तलवारका) कोश बना उसे लोक रूपा सोना ही देखते है खड्गको तो किसीतरहभी नहीं देखते॥ **भावार्थ**—वर्णादिक पुद्गलसे बने हैं वे पुद्गलही हैं जीव नहीं हैं॥ अब दूसरा कहते हैं। **वर्णादि** इत्यादि। **अर्थ**—भो ज्ञानी जनो! ये वर्णादिक गुणस्थानपर्यंत भाव है वे सभी एक पुद्गलके रचे हैं ऐसा तुम जानो इसलिये ये पुद्गल ही हों आत्मा न हों। क्योंकि आत्मा तो विज्ञानघन है ज्ञानका पुंज है। इसकारण इन वर्णादिकोंसे अन्य ही है॥ ६५।६६॥

आगे कहते हैं कि इस ज्ञानघन आत्माके सिवाय अन्य कुछ है उनको जीव कहना सो सब ही व्यवहारमात्र है,—[**ये**] जो [**पर्याप्तापर्याप्ताः**] पर्याप्त अपर्याप्त,

जीवसंज्ञात्वेनोक्ताः अप्रयोजनार्थः परप्रसिद्ध्या घृतघटवद्व्यवहारः । यथा हि कस्यचिदाजन्मप्रसिद्धैकघृतकुंभस्य तदितरकुंभानभिज्ञस्य प्रबोधनाय योऽयं घृतकुंभः स मृण्मयो न घृतमय इति तत्प्रसिद्ध्या कुंभे घृतकुंभव्यवहारः तथास्याज्ञानिनो लोकस्य संसारप्रसिद्ध्याशुद्धजीवस्य शुद्धजीवानभिज्ञस्य प्रबोधनाय योयं वर्णादिमान् जीवः स ज्ञानमयो न वर्णादिमयः इति तत्प्रसिद्ध्या जीवे वर्णादिमद्व्यवहारः । "घृतकुंभाभिधानेपि कुंभो

कथिताः सूक्ष्मवादराश्चैव ये कथिताः **देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता** पर्याप्तापर्याप्तदेहं दृष्ट्वा पर्याप्तापर्याप्तवादरसूक्ष्मविलक्षणपरमचिज्ज्योतिर्लक्षणशुद्धात्मस्वरूपात्पृथग्भूतस्य देहस्य सा जीवसंज्ञा कथिता । क्व, सूत्रे परमागमे । कस्मात्, व्यवहारादिति नास्ति दोषः । एवं जीवस्थानानि जीवस्थानाश्रिता वर्णादयश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति कथनरूपेण

[ये चैव] और जो **[सूक्ष्मा वादराश्च]** सूक्ष्म वादर आदि जितनी **[देहस्य]** देहकी **[जीवसंज्ञाः]** जीवसंज्ञा कहीं हैं वह सभी **[सूत्रे]** सूत्रमें **[व्यवहारतः]** व्यवहारनयकर **[उक्ताः]** कहीं हैं ॥ **टीका**—निश्चयकर यह जानना कि वादर सूक्ष्म एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे शरीरको सूत्रमें जीवसंज्ञापनेकर कहा है । वहां परकी प्रसिद्धिकर घृतके घडेकी तरह व्यवहार है । यह व्यवहार अप्रयोजनभूत है । उसको प्रगट कहते हैं—जैसे कोई पुरुष ऐसा था कि जिसने जन्मसे लेकर घीका ही घड़ा देखाथा घृतसे रीता जुदा घट नहीं देखा उसके समझानेके लिये ऐसा कहते हैं कि यह घृतका घट है वह मट्टीमय है घृतमय नहीं है ऐसे उस पुरुषके घृतके घटकी प्रसिद्धिसे समझानेवाला भी घृतका घट कहता है ऐसा व्यवहार है । उसीतरह इस अज्ञानी लोकके अनादि संसारसे लेकर अशुद्ध जीव ही प्रसिद्ध है शुद्ध जीवको नहीं जानता उसको शुद्ध जीवका ज्ञान करानेके लिये ऐसा सूत्रमें कहा है कि यह वर्णादिमान् जीव कहा जाता है वह ज्ञानमय है वर्णादिमय नहीं है इसतरह उस अज्ञानी लोकके वर्णादिमान् प्रसिद्ध है । उस प्रसिद्धिकर जीवमें वर्णादिमानपनेका व्यवहार सूत्रमें किया है । अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं । **घृतकुंभा** । इत्यादि । **अर्थ**—घृतका कुंभ है ऐसा कहनेपर भी कुंभ है वह घृतमय नहीं है मृत्तिकाहीका है उसीतरह जीव वर्णादिमान् है ऐसा कहनेपर भी वर्णादिमान् नहीं है ज्ञानघनही है । **भावार्थ**—जिसने पहले घटको मृत्तिकाका नहीं जाना और घृतके भरे घटको लोक घृतका घट कहते हैं ऐसा सुना वहां यही जाना कि घट घृतका ही कहा जाता है उसको समझानेके लिये मृत्तिकाका घट जाननेवाला मृत्तिकाका घट कहकर समझाता है । उसीतरह ज्ञानस्वरूप आत्माको तो जिसने जाना नहीं और वर्णादिकके संबंधरूप ही जीवको जाना उसके समझानेको सूत्रमें भी कहा है कि यह वर्णादिमान् है सो जीव है ऐसा व्यवहार है निश्चयसे वर्णादिमान् पुद्गल है जीव नहीं है । जीव

घृतमयो न चेत् । जीवो वर्णादिमज्जीवजल्पनेपि न तन्मयः ॥ ४० ॥" ६७ ॥

एतदपि स्थितमेव यद्रागादयो भावा न जीवा इति;—

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ॥ ६८ ॥

मोहनकर्मण उदयात्तु वर्णितानि यानीमानि गुणस्थानानि ।
तानि कथं भवंति जीवा यानि नित्यमचेतनान्युक्तानि ॥ ६८ ॥

मिथ्यादृष्टयादीनि गुणस्थानानि हि पौद्गलिकमोहकर्मप्रकृतिविपाकपूर्वकत्वे सति नित्यमचेतनत्वात् कारणानुविधायीनि कार्याणीति कृत्वा यवपूर्वका यवा यवा एवेति न्यायेन पुद्गल एव न तु जीवः । गुणस्थानानां नित्यमचेतनत्वं चागमाच्चैतन्यस्वभावव्याप्तस्यात्मनोतिरिक्तत्वेन विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वाच्च प्रसाध्यं । एवं रागद्वेषमोहप्रत्ययकर्मनोकर्मवर्ग-

---

गाथात्रयं गतं ॥ ६७ ॥ अथ न केवलं वहिरंगवर्णादयो शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंति अभ्यतरमिथ्यात्वादिगुणस्थानरूपरागादयोपि न भवंतीति स्थित;—**मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा** निर्मोहपरमचैतन्यप्रकाशलक्षणपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतानाद्यविद्याकंदलीकदायमानसंतानागतमोहकर्मोदयात्सकाशात् यानीमानि वर्णितानि कथितानि गुणस्थानानि । तथा चोक्तं "गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा" **ते कह हवंति जीवा** तानि कथं भवंति जीवा न कथमपि । कथभूतानि, **ते णिच्चमचेदणा उत्ता** यद्यप्यशुद्ध-

---

तो ज्ञानघन है ऐसा जानना ॥ ६७ ॥

आगे कहते हैं कि जैसे वर्णादिकभाव जीव नहीं हैं उसीतरह यह भी स्थितहुआ कि रागादिकभाव भी जीव नहीं हैं,–[**यानि इमानि**] जो ये [**गुणस्थानानि**] गुणस्थान हैं वे [**मोहनकर्मण उदयात् तु**] मोहकर्मके उदयसे होते हैं ऐसे [**वर्णितानि**] सर्वज्ञके आगममें वर्णन कियेगये हैं [**तानि**] वे [**जीवाः**] जीव [**कथं**] कैसे [**भवंति**] हो सकते हैं ? नहीं होसकते क्योंकि [**यानि**] जो [**नित्यं**] हमेशा [**अचेतनानि**] अचेतन [**उक्तानि**] कहे हैं ॥ **टीका**—जो ये मिथ्यादृष्टिआदि गुणस्थान हैं वे पुद्गलरूप मोहकर्मकी प्रकृतिके उदय होनेसे होते हैं इसलिये नित्य ही अचेतन हैं क्योंकि जैसा कारण होता है उसीके अनुसार कार्य होता है । जैसे जौ होते हैं वे यव हीं हैं इसन्यायकर वे पुद्गल ही हैं जीव नहीं हैं । यहां गुणस्थानोंको नित्य अचेतनपना आगमसे सिद्ध है और चैतन्यस्वभावकर व्याप्त आत्मासे भिन्नपनेकर भेद 'ज्ञानी पुरुषोंकर स्वयं प्राप्यमान है' इस हेतुसे सिद्ध करना । चैतन्यमात्र आत्माके अनुभवसे ये वाह्य हैं इसलिये अचेतन ही हैं । इसीतरह राग द्वेष मोह प्रत्यय कर्म नोकर्म वर्ग वर्गणा स्पर्धक अध्यात्मस्थान अनुभागस्थान योगस्थान बंधस्थान उदयस्थान मार्गणास्थान स्थितिबंधस्थान संक्लेशस्थान विशुद्धिस्थान संयमलब्धिस्थान ये सभी पुद्गलकर्मपूर्वक होनेसे नित्य अचेतनपनेकर पुद्गल ही हैं, जीव नहीं है ऐसा

वर्गणास्पर्द्धकाध्यात्मस्थानानुभागस्थानयोगस्थानबंधस्थानोदयस्थानमार्गणास्थानस्थितिबंधस्थानसंक्लेशस्थानविशुद्धस्थानसंयमलब्धिस्थानान्यपि पुद्गलपूर्वकत्वे सति नित्यमचेतनत्वात्पुद्गल एव न तु जीव इति स्वयमायातं। ततो रागादयो भावा न जीव इति सिद्धं। तर्हि को जीव इति चेत्। "अनाद्यनंतमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटं। जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥ ४१ ॥ वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो नामूर्त्तत्वमुपास्य

निश्चयेन चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयेन नित्यं सर्वकालमचेतनानि। अशुद्धनिश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्यकर्मापेक्षयाभ्यंतररागादयश्चेतना इति मत्वा निश्चयसंज्ञा लभते तथापि शुद्धनिश्चया-

---

स्वयं (अपने आप) सिद्धहुआ इसलिये रागादिकभाव जीव नहीं है ऐसा भी सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ—**पुद्गलकर्मके उदयके निमित्तसे हुए चैतन्यके विकार भी पुद्गल ही हैं क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे चैतन्य अभेदरूप है और इसके परिणाम भी स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन है इसकारण परनिमित्तसे जो विकार होते हैं वे चैतन्यसरीखे दीखते है तौभी चैतन्यकी सर्व अवस्थाओंमें व्यापक नहीं है इसलिये चैतन्य शून्य (जड़) है। इसतरह जो जड़ है वह पुद्गल है ऐसा निश्चय हुआ ॥ आगे पूछते हैं कि वर्णादिक और रागादिक जीव नहीं हैं तो जीव कौन है ? उसका उत्तररूप श्लोक कहते हैं। **अनाद्य** इत्यादि। **अर्थ—**जीव है वह चैतन्य है यह अपने आप अतिशयकर चमत्काररूप प्रकाशमान है। अनादि है किसी समयमें नया नहीं उत्पन्न हुआ। अनंत है जिसका किसी कालमें विनाश नहीं है। अचल है चैतन्यपनेसे अन्यरूप (चलाचल) कभी नहीं होता। स्वसंवेद्य है, आपही कर जाना जाता है और प्रगट है छिपाहुआ नहीं है ॥ आगे दूसरे लक्षणके अव्याप्ति अतिव्याप्ति दूषणोंको दूर करनेलिये काव्य कहते हैं– **वर्णाद्यैः** इत्यादि। **अर्थ—**यदि जीवका लक्षण अमूर्तीकपना कहा जाय तो अजीवपदार्थ भी दो प्रकार हैं धर्म अधर्म आकाश काल–ये तो वर्णादिभावसे रहित हैं और पुद्गल वर्णादिसहित है इसलिये अमूर्तीकपनेको ग्रहणकर लोक जीवके यथार्थस्वरूपको नहीं देखता। इसमें अतिव्याप्ति दोष आता है। वर्णादिकसे रागादिका भी ग्रहण है सो रागादिक जीवका लक्षण कहा जाय तो उनकी व्याप्ति पुद्गलसे ही है जीवकी सब अवस्थाओंमें व्याप्ति नहीं इसलिये अव्याप्ति दोष आता है। इसतरह भेदज्ञानी पुरुषोंने परीक्षाकर अतिव्याप्ति अव्याप्ति दोषसे रहित चेतनपना ही लक्षण कहा है वही ठीक है। उसीने जीवका यथार्थस्वरूप प्रगट किया है। जीवसे कभी चलाचल नहीं है सदा मौजूद है। इसलिये जगत् इसी लक्षणको अवलंबन करे इसीसे यथार्थ जीवका ग्रहण होता है ॥ आगे ऐसे लक्षणकर जीव प्रगट है तौ भी अज्ञानी लोकोंको इसका अज्ञान किसतरह रहता है ? उसको आचार्य आश्चर्य तथा खेदसहित कहते है– **जीवाद्** इत्यादि। **अर्थ—**इसतरह पूर्वकथित लक्षणसे जीवसे अजीव भिन्न है सो ज्ञानीजन उसे अपने आप प्रगट उघडता अनुभव करते हैं तौभी अज्ञानी जनोंके यह

पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः । इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा व्यक्तं व्यंजितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालंब्यतां ॥ ४२ ॥ जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं ज्ञानी जनोनुभवति स्वयमुल्लसंतं । अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृंभितोयं मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति ॥ ४३ ॥ नानट्यतां तथापि—"अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः । रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥ ४४ ॥" "इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा जीवाजीवौ स्फुट-

---

पेक्षया व्यवहार एव । इति व्याख्यान निश्चयव्यवहारनयविचारकाले सर्वत्र ज्ञातव्यं । एवमभ्यंतरे यथा मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानानि जीवस्वरूपं न भवंति तथा रागादयोपि शुद्धजीवस्वरूप न भव-

---

अमर्यादरूप मोह (अज्ञान) प्रगट फैलता हुआ क्यों अत्यंत नृत्य करता है ? यह हमको बड़ा अचंभा है तथा खेद है ॥ फिर भी इसका निषेध करते हैं कि मोह नृत्य करता है तो करे तौ भी यह ऐसा है-**अस्मिन्** इत्यादि । **अर्थ**—यह अनादि कालका बड़ा अविवेकका नृत्य है उसमें वर्णादिमान् पुद्गल ही नृत्य करता है अन्य कोई नहीं है । अभेदज्ञानमें पुद्गल ही अनेकप्रकार दीखता है जीव तो अनेक प्रकार नहीं है । यह जीव, रागादिक जो कि पुद्गलसे हुए विकार हैं उनसे विलक्षण शुद्ध चैतन्य धातुमय मूर्ति है । **भावार्थ**—रागादि चैतन्यविकारको देख ऐसा भ्रम न करना कि ये भी चैतन्य ही हैं क्योंकि चैतन्यकी सब अवस्थाओंमें व्यापकर रहे तब चैतन्यके कहे जायं सो ऐसा नहीं है मोक्षअवस्थामें इनका अभाव है । तथा इनका अनुभव भी आकुलतामय दुःखरूप है । चैतन्यका अनुभव निराकुल है वही जीवका स्वभाव है ऐसा जानना ॥ आगे भेदज्ञानकी प्रवृत्तिपूर्वक यह ज्ञाता द्रव्य आप प्रगट होता है ऐसे महिमा कहकर अधिकार पूर्ण करते हैं । उसका कलशरूप काव्य कहते हैं । **इत्थं** इत्यादि । **अर्थ**—इसप्रकार ज्ञानरूप करोंतकी कलनाका वारंवार अभ्यास करना उसको नचाकर जीव और अजीव दोनों प्रगटपनेसे जबतक जुदे न हुए तबतक यह ज्ञाता द्रव्य आत्मा, समस्त पदार्थोंमें व्यापकर तथा प्रगट विकासरूप हुई चैतन्यमात्र शक्तिकर अपने आप अतिवेगसे अतिशयसे प्रगट होता हुआ ॥ **भावार्थ**—जीव अजीव दोनों अनादिकालसे संयोगरूप हैं सो अज्ञानसे एकसरीखे दीखते हैं । वहां भेदज्ञानके अभ्याससे जबतक प्रगट जुदे न हुए अर्थात् जीव कर्मोंसे छूट मोक्षको प्राप्त न हुआ तबतक यह ज्ञाताद्रव्य जीव अपनी ज्ञानशक्तिकर समस्त वस्तुओंको जानकर अतिवेगसे आप प्रगट हुआ । यहां ऐसा तात्पर्य है कि सम्यग्दृष्टि होनेके बाद जबतक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता तबतक तो सर्वज्ञके आगमसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकर समस्त वस्तुओंका संक्षेप तथा विस्तारसे परोक्षज्ञान होता है उस ज्ञानस्वरूप आत्माका जो अनुभव होता है वही इसका प्रगट होना है । और जब घातिया कर्मोंके नाशसे केवल ज्ञान प्रगट हो जाता है तब सब वस्तुओंको साक्षात् प्रत्यक्ष

विघटनं नैव यावत्प्रयातः । विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥ ४५ ॥" इति जीवाजीवौ पृथग्भूत्वा निष्क्रांतौ ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ जीवाजीवप्ररूपकः प्रथमोंकः ॥ १ ॥

तीति कथनरूपेणाष्टमगाथा गता ॥ ६८ ॥ एवमष्टगाथाभिस्तृतीयातराधिकारो व्याख्यातः । ननु रागादयो जीवस्वरूपं न भवंतीति जीवाधिकारे व्याख्यातं अस्मिन्नजीवाधिकारेपि तदेवेति पुनरुक्तमिदं । तन्न, विस्तररुचिशिष्यं प्रति नवाधिकारैः समयसार एव व्याख्यायते न पुनरन्यदिति प्रतिज्ञावचनं । तत्रापि समयसारव्याख्यानमत्रापि समयसारव्याख्यानमेव । यदि पुनः समयसारं त्यक्त्वान्यद्व्याख्यायते तदा प्रतिज्ञाभंग इति नास्ति पुनरुक्तं । अथवा भावनाग्रंथे समाधिशतकपरमात्मप्रकाशादिग्रंथवद्रागिणां शृंगारकथावत् पुनरुक्तदोषो नास्ति । अथवा तत्र जीवस्य मुख्यता अत्राजीवस्य मुख्यता। विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । अथवा तत्र सामान्यव्याख्यानमत्र तु विस्तरेण । अथवा तत्र रागादिभ्यो भिन्नो जीवो भवतीति विधिमुख्यतया व्याख्यानं अत्र तु रागादयो जीवस्वरूपं न भवंतीति निषेधमुख्यतया व्याख्यानं। किंवत्, एकत्वान्यत्वानुप्रेक्षाप्रस्तावे विधिनिषेधव्याख्यानवदिति परिहारपंचकं ज्ञातव्य । एवं जीवाजीवाधिकाररंगभूमौ शृंगारसहितपात्रवद्व्यवहारेणैकीभूतौ प्रविष्टौ निश्चयेन तु शृंगाररहितपात्रवत्पृथग्भूत्वा निष्क्रांताविति ।

इति श्री**जयसेनाचार्य**कृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतलक्षणायां **तात्पर्यवृत्तौ** स्थलत्रयसमुदायेन त्रिंशद्गाथाभि**रजीवाधिकारः** समाप्तः ॥ १ ॥

जानता है ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्माका साक्षात् अनुभव करता है वही इसका प्रगट होना है। इसतरह मोक्ष होनेके पहले ही आत्मा प्रकाशमान होता है । यह भी जीव अजीवके जुदे होनेकी रीति है । इसप्रकार जीव अजीवका पहला अधिकार पूर्ण हुआ । उसमें टीकाकारने पहले रंगभूमिका स्थल जुदा कह उसके बाद यह कहा था कि नृत्यके अखाडेमें जीव अजीव दोनों एक होकर प्रवेश करते हैं दोनोंने एकपनेका स्वांग बनाया है उस अवसरमें भेदज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुषने अपने सम्यग्ज्ञानसे दोनोंको लक्षण भेदसे परीक्षाकर दो जानलिये तब स्वांग होचुका दोनों जुदे जुदे होके अखाड़ेमेंसे बाहर हुए। ऐसा अलंकारकर वर्णन किया है ॥ ६८ ॥

"जीव अजीव अनादि संयोग मिलै लखि मूढ न आतम पावैं
सम्यक् भेद विज्ञान भये पुन भिन्न गहै निजभाव सुदावैं ।
श्रीगुरुके उपदेश सुनैरु भले दिन पाय अज्ञान गमावैं
ते जगमांहि महंत कहाय वसैं शिव जाय सुखी नित थावैं ॥ १ ॥"

इति श्री**पंडितजयचंद्र**कृत समयसारग्रंथकी आत्मख्यातिटीकाकी भाषावचनिकामें पहला **जीवाजीवाधिकार** पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

अथ कर्तृकर्माधिकारः ॥ २ ॥

अथ जीवाजीवावेव कर्तृकर्मवेषेण प्रविशतः ॥ एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिं । ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यंतधीरं साक्षात्कुर्वन्निरुपधिपृथग्द्रव्यनिर्भासि विश्वं ॥ ४६ ॥;—

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्णंपि ।
अण्णाणी तावदु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥ ६९ ॥
कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदी ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं ॥ ७० ॥

यावन्न वेत्ति विशेषांतरं त्वात्मास्रवयोर्द्वयोरपि ।
अज्ञानी तावत्स क्रोधादिषु वर्त्तते जीवः ॥ ६९ ॥
क्रोधादिषु वर्त्तमानस्य तस्य कर्मणः संचयो भवति ।
जीवस्यैवं बंधो भणितः खलु सर्वदर्शिभिः ॥ ७० ॥

यथायमात्मा तादात्म्यसिद्धसंबंधयोरात्मज्ञानयोरविशेषाद्भेदमपश्यन्नविशंकमात्मतया

अथ पूर्वोक्तजीवाधिकाररंगभूमौ जीवाजीवावेव यद्यपि शुद्धनिश्चयेन कर्तृकर्मभावरहितौ तथापि व्यवहारनयेन कर्तृकर्मवेषेण शृंगारसहितपात्रवत्प्रविशत इति दंडकान्विहायाष्टाधिकसप्ततिगाथापर्यंतं नवभिः स्थलैर्व्याख्यान करोतीति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण तृतीयाधिकारे समुदाय पातनिका । अथवा **जो खलु संसारत्थो जीवो** इत्यादिगाथात्रयेण पुण्यपापा-

---

अब कर्तृकर्माधिकार कहते हैं—**दोहा**—"कर्ताकर्मविभावकूं, मेंटि ज्ञानमय होय । कर्म नाशि शिवमें बसे, तिन्हें नमूं मद खोय ॥ १ ॥ अब टीकाकारके वचन कहते हैं कि, जीव अजीव दोनों एक कर्ता कर्मका वेषकर प्रवेश करते हैं । जैसे दो पुरुष आपसमें कुछ एक स्वांगकर नृत्यके अखाड़ेमें प्रवेश करें उसीतरह यहां अलंकार जानना । उसमें पहले उस स्वांगको ज्ञान यथार्थ जान लेता है उसकी महिमाका काव्य कहते हैं—**एकः** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानज्योति प्रगट स्फुरायमान होती है । क्या करती हुई ? जो अज्ञानी जीवोंके ऐसी कर्ता कर्मकी प्रवृत्ति है कि इस लोकमें मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा तो एक कर्ता हूं और ये क्रोधादिकभाव मेरे कर्म हैं. इसतरह कर्ता कर्मकी प्रवृत्तिको यह ज्ञानज्योति शमन करती (मिटाती) हुई । जो ज्ञानज्योति उत्कृष्ट उदात्त है किसीके आधीन नहीं है,. अत्यंत धीर है अर्थात् किसीतरह आकुलतारूप नहीं है, और दूसरेकी सहायताके विना जुदे जुदे द्रव्योंका प्रकाशित करनेका जिसका स्वभाव है इसीकारण समस्त लोकालोकको साक्षात् (प्रत्यक्ष) करती है जानती है । **भावार्थ**—ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा परद्रव्य तथा परभावोंके कर्ताकर्मपनेके अज्ञानको

ज्ञाने वर्तते तत्र वर्तमानश्च ज्ञानक्रियायाः स्वभावभूतत्वेनाप्रतिषिद्धत्वाज्जानाति तथा संयोगसिद्धसंबंधयोरप्यात्मक्रोधाद्यास्रवयोः स्वयमज्ञानेन विशेषमजानन् यावद्भेदं न पश्यति तावदशंकमात्मतया क्रोधादौ वर्तते । तत्र वर्तमानश्च क्रोधादिक्रियाणां परभावभूतत्वात्प्रतिषिद्धत्वेपि स्वभावभूतत्वाध्यासात्क्रुध्यति रज्यते मुह्यति चेति । तदत्र योयमात्मा स्वयमज्ञानभवने ज्ञानभवनमात्रसहजोदासीनावस्थात्यागेन व्याप्रियमाणः प्रतिभाति स कर्त्ता । यत्तु ज्ञानभवनव्याप्रियमाणत्वेभ्यो भिन्नं क्रियमाणत्वेनांतरुत्प्लवमानं प्रतिभाति

दिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिवृत्ता न च शुद्धनिश्चयेन शुद्धजीवस्वरूपमिति पंचास्तिकायप्राभृते यत्पूर्वं संक्षेपेण व्याख्यातं व्यक्त्यर्थं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकासमुदायकथनं तात्पर्यं कथ्यत इति द्वितीयपातनिका । प्रथमतस्तावत् **जाव ण वेदि विसेसंतरं** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाषट्कपर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्र गाथाद्वयमज्ञानीजीवमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं सज्ञानीजीवमुख्यत्वेन कथ्यत इति प्रथमस्थले समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ क्रोधाद्यास्रवशुद्धात्मनोर्यावत्कालं भेदविज्ञानं न जानाति तावदज्ञानीभवतीत्यावेदयति;—**जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हंपि** यावत्कालं न वेत्ति न जानाति विशेषांतरं भेदज्ञानं शुद्धात्मक्रोधाद्यास्रवस्वरूपयोर्द्वयोः **अण्णाणी ताव दु सो** तावत्कालपर्यंतमज्ञानी बहिरात्मा भवति। स जीवः। अज्ञानी सन्किं करोति। **कोधादिसु वट्टदे जीवो** यथा ज्ञानमहं इत्यभेदेन वर्तते तथा क्रोधाद्यास्रवरहितनिर्मलात्मानुभूतिलक्षणनिजशुद्धात्मस्वभावात्पृथग्भूतेषु क्रोधादिष्वपि क्रोधोहमित्यभेदेन वर्तते परिणमतीति । अथ—**कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स** उत्तमक्षमादिस्वरूपपरमात्मविलक्षणेषु क्रोधादिषु वर्तमानस्य तस्य जीवस्य। किं फलं भवति, **कम्मस्स संचओ होदी** परमात्मप्रच्छादककर्मणः संचयः आस्रव आगमनं भवति । **जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं** तैलम्रक्षिते धूलिसमागमव-

---

दूरकर आप प्रगट प्रकाशमान होता है ॥ आगे कहते है कि यह जीव जबतक आस्रवके और आत्माके विशेषको (भेदको) नहीं जाने तबतक अज्ञानी हुआ आस्रवोंमें आप लीन होके कर्मोंका बंध करता है,—[**जीवः**] यह जीव [**यावत्**] जबतक [**आत्मास्रवयोः द्वयोः अपि तु**] आत्मा और आस्रव इन दोनोंके [**विशेषांतरं**] भिन्न लक्षण [**न वेत्ति**] नहीं जानता [**तावत्**] तबतक [**स अज्ञानी**] वह अज्ञानी हुआ [**क्रोधादिषु**] क्रोधादिक आस्रवोंमें [**वर्तते**] प्रवर्तता है। [**क्रोधादिषु**] क्रोधादिकोंमें [**वर्तमानस्य तस्य**] वर्तते हुए उसके [**कर्मणः**] कर्मोंका [**संचयः भवति**] संचय होता है [**एवं**] इसप्रकार [**जीवस्य**] जीवके [**बंधः**] कर्मोंका बंध [**सर्वदर्शिभिः**] सर्वज्ञदेवोंने [**भणितः खलु**] निश्चयसे कहा है ॥ **टीका**—जिसतरह यह आत्मा अपने और ज्ञानके सिद्ध तादात्म्यसंबंध होनेके कारण भेद न होनेसे भेदको नहीं देखताहुआ निःशंक ज्ञानमेंही आ-

क्रोधादि तत्कर्म। एवमियमनादिरज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिः। एवमस्यात्मनः स्वयमज्ञानात्कर्तृकर्मभावेन क्रोधादिषु वर्त्तमानस्य तमेव क्रोधादिनिवृत्तिरूपं परिणामं निमित्तमात्रीकृत्य स्वयमेवपरिणममानं पौद्गलिकं कर्म संचयमुपयाति। एवं जीवपुद्गलयोः परस्परा-

---

दास्रवे सति ततो मलादितैलसंबधेन मलबंधवत्प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशलक्षणः स्वशुद्धात्मावाप्तिस्वरूपमोक्षविलक्षणो बंधो भवति। जीवस्यैवं खलु स्फुट भणितं सर्वदर्शिभि. सर्वज्ञैः। किं च यावत्क्रोधाद्यास्रवेभ्यो भिन्नं शुद्धात्मस्वरूप स्वसवेदनज्ञानबलेन न जानाति तावत्कालमज्ञानी भवति। अज्ञानी सन् अज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिं न मुचति तस्माद्बधो भवति। बंधात्संसारं

त्मपनेकर प्रवर्तता है वहां प्रवर्तनेवालेके ज्ञानकी क्रियारूप प्रवृत्तिके स्वभावभूतपना है परके निमित्तसे न होनेकर उसका निषेध नहीं है। इसलिये उस ज्ञानक्रियासे जानता है यह विभावपरिणति नहीं है। सो जिसतरह ज्ञानक्रियारूप परिणमता है उसीतरह संयोगसिद्धसंबंधरूप जो आत्मा और क्रोधादिक आस्रव उनमें भी अपने अज्ञानभावकर विशेष (भेद) नहीं जानताहुआ जबतक भेद नहीं देखता तबतक निःशंकपनेसे क्रोधादिमें आत्मपनेकर प्रवर्तता है। वहां प्रवर्ततेहुएके जो क्रोधादि क्रिया है वह परभावसे हुई है इसलिये वे क्रोधादि प्रतिषेधरूप हैं तौ भी उनमें स्वभावसे हुएका इसके निश्चय है इसकारण आप क्रोधरूप परिणमता है रागरूप परिणमता है मोहरूप परिणमता है। सो यहां आत्मा अपने अज्ञानभावसे ज्ञानभवनमात्र स्वभावसे हुई उदासीन ज्ञाता द्रष्टा मात्र अवस्थाका त्यागकर क्रोधादिव्यापाररूप परिणमता हुआ प्रतिभासता है प्रवर्तता है इसलिये कर्मोंका कर्ता होता है। तथा जो ज्ञानभवनव्यापाररूप प्रवर्तनेसे जुदे कियेगये अंतरगमें उत्पन्न क्रोधादिक प्रतिभासनेमें आते हैं वे उस कर्ताके कर्म हैं। इसतरह यह अनादिकालसे हुई इस आत्माकी कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है। ऐसे अपने अज्ञानभावसे कर्ताकर्मभावकर क्रोधादिकोंमें वर्तमान जो यह आत्मा उसके क्रोधादिककी प्रवृत्तिरूप परिणामको निमित्तमात्रकर आप अपने भावोंकर परिणमताहुआ पुद्गलमय कर्म संचयको प्राप्त होता है। इसतरह जीवके और पुद्गलके परस्पर अवगाहलक्षण संबंधस्वरूप बंध सिद्ध होता है। वही बंध अनेक वस्तुका एकरूप हो संतानपनेकर इतरेतराश्रय दोषरहित है। वही बंध कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिका निमित्त जो अज्ञान उसका निमित्तकारण है॥ **भावार्थ**—यह आत्मा जैसे अपने ज्ञानस्वभावरूप परिणमता है उसीतरह क्रोधादिरूप भी परिणमता है ज्ञानमें और क्रोधादिकमें जबतक भेद नहीं जानता तबतक इसके कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है क्रोधादिरूप परिणमता आप तो कर्ता है और वे क्रोधादिक इसके कर्म हैं। अनादि अज्ञानसे कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है और कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिसे बंध है तथा उसकी संतानसे अज्ञान है। इसतरह अनादि संतान है। इसप्रकार इसमें इतरेतराश्रय दोष भी नहीं है। ऐसे जबतक आत्मा

वगाहलक्षणसंबंधात्मा बंधः सिध्येत् । सचानेकात्मकैकसंतानत्वेन निरस्तेतरेतराश्रयदोषः कर्तृकर्मप्रवृत्तिनिमित्तस्याज्ञानस्य निमित्तं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

कदास्याः कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तिरिति चेत्;—

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥ ७१ ॥

यदानेन जीवेनात्मनः आस्रवाणां च तथैव ।
ज्ञातं भवति विशेषांतरं तु तदा न बंधस्तस्य ॥ ७१ ॥

इह किल स्वभावमात्रं वस्तु, स्वस्य भवनं तु स्वभावः तेन ज्ञानस्य भवनं खल्वात्मा । क्रोधादेर्भवनं क्रोधादिः । अथ ज्ञानस्य यद्भवनं तत्र क्रोधादेरपि भवनं यतो यथा ज्ञानभवने ज्ञानं भवद्विभाव्यते न तथा क्रोधादेरपि । यत्तु क्रोधादेर्भवनं तत्र ज्ञानस्यापि भवनं यतो क्रोधादिभवने क्रोधादयो भवंतो विभाव्यंते न तथा ज्ञानमपि इत्यात्मनः

परिश्रमतीत्यभिप्रायः । एवमज्ञानिजीवस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ अथ कदा कालेऽस्याः कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तिरित्येवं पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—**जइया** यदा श्रीधर्मलब्धिकाले **इमेण जीवेण** अनेन प्रत्यक्षीभूतेन जीवेन **अप्पणो आसवाण य तहेव णादं होदि विसेसंतरं तु** यथा शुद्धात्मनस्तथैव कामक्रोधाद्यास्रवाणां च ज्ञातं भवति विशेषांतरं भेदज्ञानं **तइया** तदा काले सम्यग्ज्ञानी भवति । सम्यग्ज्ञानी सन् किं करोति, अहं

क्रोधादिक कर्मका कर्ता होके परिणमता है तबतक कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति है और तभीतक कर्मका बंध होता है ॥ ६९ । ७० ॥

आगे पूछते हैं कि इसके कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिका अभाव किस काल होता है उसका उत्तर कहते हैं;—[**यदा**] जिस समय [**अनेन जीवेन**] इस ज़ीवको [**आत्मानः**] अपना [**तथैव च**] और [**आस्रवाणां**] आस्रवोंका [**विशेषांतरं**] भिन्नलक्षण [**ज्ञातं भवति**] मालूम होजाता है [**तदा तु**] उसीसमय [**तस्य**] उसके [**बंधः न**] बंध नहीं होता ॥ **टीका**—इस लोकमें वस्तु अपने स्वभावमात्र है और अपने भावका होना ही स्वभाव है इसलिये यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानका जो होना परिणमना वह आत्मा है तथा क्रोधादिकका होना परिणमना क्रोधादिक है । ऐसा होनेसे जो ज्ञानका परिणमन है वह क्रोधादिका परिणमन नहीं है क्योंकि जैसे ज्ञान होनेपर ज्ञान ही हुआ मालूम होता है क्रोधादिक नहीं मालूम होते । जो क्रोधादिकका परिणमना है वह ज्ञानका परिणमन नहीं है क्योंकि क्रोधादिक होनेपर क्रोधादिक हुए ही प्रतीत होते हैं ज्ञान हुआ मालूम नहीं होता । इसतरह क्रोधादिक और ज्ञान इन दोनोंके निश्चयसे एकवस्तुपना नहीं है । इसप्रकार आत्मा और आस्रवोंका भेद देखनेसे जिससमय भेद जानता है उससमय इसके (आत्मा) के अनादिकालसे उत्पन्न हुई

क्रोधादीनां च न खल्वेकवस्तुत्वं इत्येवमात्मात्मास्रवयोर्विशेषदर्शनेन यदा भेदं जानाति तदास्यानादिरप्यज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिर्निवर्तते तन्निवृत्तावज्ञाननिमित्तं पुद्गलद्रव्यकर्मबंधोपि निवर्त्तते । तथा सति ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोधः सिद्ध्येत् ॥ ७१ ॥

कथं ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोध इति चेत् ;—

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥ ७२ ॥

ज्ञात्वा आस्रवाणामशुचित्वं च विपरीतभावं च ।
दुःखस्य कारणानीति च ततो निवृत्तिं करोति जीवः ॥ ७२ ॥

जले जंबालवत्कलुषत्वेनोपलभ्यमानत्वादशुचयः खल्वास्रवाः भगवानात्मा तु नित्यमेवातिनिर्मलचिन्मात्रत्वेनोपलंभकत्वादत्यंतं शुचिरेव । जडस्वभावत्वे सति परचेतकत्वादन्यस्वभावाः खल्वास्रवाः भगवानात्मा तु नित्यमेव विज्ञानघनस्वभावत्वे सति स्वयं ।

कर्त्ता भावक्रोधादिरूपमतरंगं मम कर्मेत्यज्ञानजा कर्तृकर्मप्रवृत्तिं मुंचति । ततः कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तौ सत्या निर्विकल्पसमाधौ सति **ण बंधो** न बंधो भवति **से** तस्य जीवस्येति ॥ ७१ ॥ अथ कथं ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोध इति पूर्वपक्षे कृते परिहारं ददाति ;—क्रोधाद्यास्रवाणां संबंधि कालुष्यरूपमशुचित्वं जडत्वरूपं विपरीतभावं व्याकुलत्वलक्षण दुःखकारणत्व च ज्ञात्वा

परमें कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति निवृत्त होजाती है । और उसकी निवृत्ति होनेपर अज्ञानके निमित्तसे हुआ जो पुद्गलद्रव्यकर्मका बंध है वह भी निवृत्त होजाता है । ऐसा होनेपर ज्ञानमात्रसे ही बंधका निरोध सिद्ध होता है ॥ **भावार्थ**—क्रोधादिक और ज्ञान जुदे २ वस्तु हैं ज्ञानमें क्रोधादिक नहीं हैं क्रोधादिकमे ज्ञान नहीं है इसप्रकार इनका भेद ज्ञान हो जाय तब एकपनेका अज्ञान मिटजाय तभी कर्मका बंध भी न हो । इसतरह ज्ञानसे ही बंधका निरोध होता है ॥ ७१ ॥

आगे पूछते हैं कि ज्ञानमात्रसे ही बंधका निरोध किसतरह है ? उसका उत्तर कहते हैं,—[**आस्रवाणां च**] आस्रवोंका [**अशुचित्वं**] अशुचिपना [**च विपरीतभावं**] और विपरीतपना [**च दुःखस्य कारणानि इति**] तथा ये दुःखके कारण हैं ऐसा [**ज्ञात्वा**] जानकर [**जीवः**] यह जीव [**ततो निवृत्तिं**] उनसे निवृत्ति [**करोति**] करता है ॥ **टीका**—ये आस्रव हैं वे मलिन हैं क्योंकि जैसे जलमें सेवाल मलिन होनेसे जलको मैला दिखलाती है उसीतरह ये आस्रव भी कलुषपने (मलिनपने) कर प्राप्यमान हैं आप मलिन हैं इसलिये आत्माको भी मलिन अनुभव कराते हैं । आत्मा ज्ञानवान् है वह सदा अतिनिर्मल चैतन्यभावसे उसका ज्ञापक है इसकारण अत्यंत पवित्र है उज्वल है । और आस्रव हैं वे आत्मासे भिन्नस्वभाव हैं ज्ञेय हैं अर्थात् जड़स्वभावपना होनेसे परकर जानने योग्य हैं । जो जड़ होता है वह अपनेको तथा

चेतकत्वादनन्यस्वभाव एव । आकुलत्वोत्पादकत्वाद् दुःखस्य कारणानि खल्वास्रवाः भगवानात्मा तु नित्यमेवानाकुलत्वस्वभावेनाकार्यकारणत्वाद् दुःखस्याकारणमेव । इत्येवं विशेषदर्शनेन यदैवायमात्मास्रवयोर्भेदं जानाति तदैव क्रोधादिभ्य आस्रवेभ्यो निवर्त्तते । तेभ्योऽनिवर्त्तमानस्य पारमार्थिकतद्भेदज्ञानासिद्धेः । ततः क्रोधाद्यास्रवनिवृत्त्यविनाभाविनो ज्ञानमात्रादेवाज्ञानजस्य पौद्गलिकस्य कर्मणो बंधनिरोधः सिद्ध्येत् । किं च यदिदमात्मास्रवयोर्भेदज्ञानं तत्किमज्ञानं किं वा ज्ञानं? यद्यज्ञानं तदा तदभेदज्ञानान्न तस्य विशेषः ।

तथैव निजात्मनः संबधि निर्मलात्मानुभूतिरूपं शुचित्वं सहजशुद्धाखंडकेवलज्ञानरूपं ज्ञातृत्वमनाकुलत्वलक्षणानंतसुखत्वं च ज्ञात्वा ततश्च स्वसंवेदनज्ञानानंतरं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यपरिणतिरूपे परमसामयिके स्थित्वा क्रोधाद्यास्रवाणा निवृत्तिं करोति जीवः । इति ज्ञानमात्रादेव बंध-

---

परको नहीं जानता उसको दूसरा ही जानता है और आत्मा जो है वह सदा ही विज्ञानघनस्वभाव है इसलिये आप ज्ञाता है आस्रवोंसे अन्य स्वभाव है अपनेको परको जानता है । आस्रव हैं वे दुःखके कारण हैं इसलिये आत्माको आकुलताके उपजानेवाले है और भगवान् आत्मा सदा ही निराकुल स्वभाव है इसकारण किसीका न तो कार्य है और न किसीका कारण है इसलिये दुःखका कारण नहीं हैं । इसतरह आत्मा और आस्रवोंके तीन विशेषणोंकर भेद देखनेसे जिस समय भेद जान लिया उसीसमय क्रोधादिक आस्रवोंसे निवृत्त होजाता है । और उनसे जब तक निवृत्त नहीं हो तबतक उस आत्माके पारमार्थिक सच्ची भेदज्ञानकी सिद्धि नहीं होती । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि क्रोधादिक आस्रवोंकी निवृत्तिसे अविनाभावी जो ज्ञान उसीसे अज्ञानकर हुआ पुद्गलीककर्मके बंधका निरोध होता है । यहां यह विशेष जानना कि यह आत्मा और आस्रवका भेद है वह अज्ञान है कि ज्ञान? यदि अज्ञान है तो आस्रवसे अभेद हुआ विशेष नहीं हुआ, तथा यदि ज्ञान है तो आस्रवोंमें प्रवर्तता है कि उनसे निवृत्तिरूप है? यदि आस्रवोंमें प्रवर्तता है तो ज्ञान आस्रवोंसे अभेदरूप अज्ञान ही है इससे भी विशेषता नहीं हुई और जो आस्रवोंसे निवृत्तिरूप है तो ज्ञानसे ही बंधका निरोध क्यों नहीं सिद्ध हुआ कहसकते? सिद्ध ही हुआ कह सकते हैं । ऐसा सिद्ध होनेसे अज्ञानका अंश ऐसी क्रियानयका खंडन हुआ । तथा जो आत्मा और आस्रवोंका भेद ज्ञान है वह भी आस्रवोंसे निवृत्त न हुआ तो वह ज्ञान ही नहीं है ऐसा कहनेसे ज्ञानका अंश ऐसे ज्ञाननयका निराकरण हुआ ॥ **भावार्थ**—आस्रव अशुचि हैं जड़ हैं दुःखके कारण हैं और आत्मा पवित्र है ज्ञाता है सुखस्वरूप है । ऐसें दोनोंको लक्षणभेदसे भिन्न जानकर आत्मा आस्रवोंसे निवृत्त होता है उसके कर्मका बंध नहीं होता क्योंकि यदि ऐसा ज़ाननेसे भी निवृत्त न हो तो वह ज्ञान ही नहीं है अज्ञान ही है । यहां कोई प्रश्न करे कि अविरत सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व अनंतानुबंधी प्रकृतियोंका तो आस्रव नहीं

ज्ञानं चेत् किमास्रवेषु प्रवृत्तं किंवास्रवेभ्यो निवृत्तं । आस्रवेषु प्रवृत्तं चेत्तदपि तदभेदज्ञानान्न तस्य विशेषः । आस्रवेषु निवृत्तं चेत्तर्हि कथं न ज्ञानादेव बंधनिरोधः इति निरस्तो ज्ञानांशः क्रियानयः । यत्त्वात्मास्रवयोर्भेदज्ञानमपि नास्रवेभ्यो निवृत्तं भवति तज्ज्ञानमेव न भवतीति ज्ञानांशो ज्ञाननयोपि निरस्तः । "परपरणतिमुज्झत् खंडयद्भेदवादानिदमुदितमखंडं ज्ञानमुच्चंडमुच्चैः । ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्तेरिह भवति कथं वा पौद्गलः

निरोधो भवति नास्ति साख्यादिमतप्रवेशः । किं च यच्चात्मास्रवयोः सबंधि भेदज्ञानं तद्रागाद्यास्रवेभ्यो निवृत्त न वेति निवृत्तं चेत्तर्हि तस्य भेदज्ञानस्य मध्ये पानकवदभेदनयेन वीतरागचारित्रं वीतरागसम्यक्त्वं च लभ्यत इति सम्यग्ज्ञानादेव बधनिरोधसिद्धिः । यदि रागादिभ्यो निवृत्तं न

होता परंतु अन्य प्रकृतियोंका तो आस्रवपूर्वक बंध होता है उसको ज्ञानी कहना कि अज्ञानी ? उसका समाधान—जो इसके प्रकृतियोंका बंध होता है वह अभिप्रायपूर्वक नहीं है सम्यग्दृष्टि हुए बाद परद्रव्यका स्वामीपनेका अभाव है इसकारण जबतक इसके चारित्र मोहका उदय है तबतक उसके उदयके अनुसार आस्रवबंध होते हैं उसका स्वामित्व नहीं है वह अभिप्रायमें निवृत्त होना ही चाहता है इसलिये ज्ञानी ही कहा जाता है । यहां बंध मिथ्यात्वसंबंधी ही अनंत संसारका कारण है वही प्रधानतासे विवक्षित है । जो अविरतादिकसे बंध होता है वह अल्पस्थिति अनुभागरूप है दीर्घसंसारका कारण नहीं है इसलिये प्रधान नहीं गिना जाता । अथवा ज्ञान बंधका कारण नहीं है जबतक ज्ञानमे मिथ्यात्वका उदय था तबतक अज्ञान कहलाता था मिथ्यात्व चले जानेके बाद अज्ञान नहीं, ज्ञान ही है । इसमें जो कुछ चारित्रमोह संबंधी विकार है उसका स्वामी ज्ञानी नहीं बनता इसीकारण ज्ञानीके बंध नहीं है । विकार बंधरूप है वह बंधकी पद्धतिमें है ज्ञानकी पद्धतिमें नहीं है । इसी अर्थका समर्थनरूप कथन आगेकी गाथामे होगा । यहांपर कलशरूप काव्य कहा है । **परपरिणति** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञान है वह प्रत्यक्ष उदयको हुआ प्राप्त है । कैसा होके ? जिसमें ज्ञेयके निमित्तसे तथा क्षयोपशमके विशेषसे अनेकखंडरूप आकार प्रतिभासमें जो आते थे उनसे रहित ज्ञानमात्र आकार अनुभवमें आया इसीसे 'अखंड' ऐसा विशेषण कहा है । जो मतिज्ञान आदि अनेक भेद कहे जाते थे उनको दूर करता उदय हुआ है इसीसे "अखंड" विशेषण है । फिर कैसा है ? परके निमित्तसे रागादिरूप परिणमता था उस परिणतिको छोड़ता हुआ उदय हुआ है । तथा अतिशयकर प्रचंड है परके निमित्तसे रागादिरूप नहीं परिणमता, बलवान है । ऐसा होनेपर आचार्य कहते हैं कि अहो ऐसे ज्ञानमे परद्रव्यके कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिका अवकाश कैसे हो सकता है तथा पौद्गलिक कर्मबंध भी कैसे हो सकता है ? नहीं होता ॥ **भावार्थ**—कर्मबंध तो अज्ञानसे हुई कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिसे था जब भेदभावको और परपरिणतिको दूरकर एकाकार ज्ञान प्रगट हुआ तब

कर्मबंधः ॥ ४७ ॥" ॥ ७२ ॥

केन विधिनायमास्रवेभ्यो निवर्त्तत इति चेत्;—

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि ॥ ७३ ॥

अहमेकः खलु शुद्धः निर्ममतः ज्ञानदर्शनसमग्रः ।
तस्मिन् स्थितस्तच्चित्तः सर्वानेतान् क्षयं नयामि ॥ ७३ ॥

अहमयमात्मा प्रत्यक्षमक्षुण्णमनंतं चिन्मात्रं ज्योतिरनाद्यनंतनित्योदितविज्ञानघनस्वभावभावत्वादेकः । सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः । पुद्गलस्वामिकस्य क्रोधादिभाववैश्वरूपस्य स्वस्य स्वामित्वेन नित्यमेवापरिणमनान्निर्ममतः । चिन्मात्रस्य महसो वस्तुस्वभावत एव सामान्यविशेषाभ्यां सकलत्वाद् ज्ञानदर्शनसमग्रः । गगना-

---

भवति तदा तत्सम्यग्भेदज्ञानमेव न भवतीति भावार्थः ॥ ७२ ॥ अथ केन भावनाप्रकारेणायमात्मा क्रोधाद्यास्रवेभ्यो निवर्त्तते इति चेत्;—**अहं** निश्चयनयेन स्वसंवेदनज्ञानप्रत्यक्षं शुद्धचिन्मात्रज्योतिरहं **इक्को** अनाद्यनंतटंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वादेकः **खलु** स्फुटं **शुद्धो य** कर्तृकर्मकरणसंप्रदानापादानाधिकरणषट्कारकविकल्पचक्ररहितत्वाच्छुद्धश्च **णिम्ममो** निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणमोहोदयजनितक्रोधादिकषायचक्रस्वामित्वाभावात् ममत्वरहितः । **णाणदंसणसमग्गो** प्रत्यक्षप्रतिभासमयविशुद्धज्ञानदर्शनाभ्यां समग्रः परिपूर्णः । एवं गुणविशिष्टपदार्थविशेषोस्मि भवामि । **तह्मि ठिदो** तस्मिन्नुक्तलक्षणे शुद्धात्मस्वरूपे स्थितः । **तच्चित्तो** तच्चित्तः सहजानंदैकलक्षणसुखसमरसीभावेन तन्मयो भूत्वा **सव्वे एदे खयं णेमि** सर्वानेतान्निरास्रवपर-

---

भेदरूप कारककी प्रवृत्ति मिट गई तब कैसे बंध होसकता है ? नहीं हो सकता ॥ ७२ ॥

आगे पूछते है कि किसतरह आस्रवोंसे निवृत्ति होती है ? उसका उत्तररूप गाथा कहते है,—ज्ञानी विचारता है कि [**अहं**] मैं [**खलु एकः**] निश्चयसे एक हूं [**शुद्धः**] शुद्ध हूं [**निर्ममत्वः**] ममतारहित हूं [**ज्ञानदर्शनसमग्रः**] ज्ञानदर्शनकर पूर्ण हूं [**तस्मिन् स्थितः**] ऐसे स्वभावमे तिष्ठता [**तच्चित्तः**] उसी चैतन्य अनुभवमे लीन हुआ [**एतान्**] इन [**सर्वान्**] क्रोधादिक सब आस्रवोंको [**क्षयं**] क्षय [**नयामि**] कर देता हूं ॥ **टीका**—यह मैं आत्मा हूं सो प्रत्यक्ष अखंड अनंत चैतन्यमात्र ज्योति हूं । अनादि अनंत नित्य उदयरूप विज्ञानघन स्वभावपनेसे तो एक हूं और समस्त कर्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरणस्वरूप जो कारकोंका समूह उसकी प्रक्रियाकर पार उतरा दूरवर्ती निर्मल चैतन्य अनुभूतिमात्रपनेसे शुद्ध हूं । जिनका पुद्गलद्रव्य स्वामी है ऐसे जो क्रोधादि भाव उनका विश्वरूपपना समस्तपना उसका स्वामीपनाकर सदा ही अपने नहीं परिणमनेसे उनसे निर्ममत्व हूं । तथा वस्तुका स्वभाव सामान्य विशेष स्वरूप है इसलिये चैतन्यमात्र तेजःपुंज भी वस्तु

दिवत्पारमार्थिको वस्तुविशेषोस्मि तदहमधुनास्मिन्नेवात्मनि निखिलपरद्रव्यप्रवृत्तिनिवृत्त्या निश्चलमवतिष्ठमानः सकलपरद्रव्यनिमित्तकविशेषचेतनचंचलकल्लोलनिरोधेनेममेव चेतयमानः स्वाज्ञानेनात्मन्युत्प्लवमानानेतान् भावानखिलानेव क्षपयामीत्यात्मनि निश्चित्य चिरसंगृहीतमुक्तपोतपात्रः समुद्रावर्त्त इव झगित्येवोद्वांतसमस्तविकल्पोऽकल्पितमचलितममलमात्मानमालंबमानो विज्ञानघनभूतः खल्वयमात्मास्रवेभ्यो निवर्त्तते ॥ ७३ ॥

कथं ज्ञानास्रवनिवृत्त्योः समकालत्वमिति चेत्;—

जीवणिबद्धा एए अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफलात्ति य णादूण णिवत्तए तेहिं ॥ ७४ ॥

जीवनिबद्धा एते अध्रुवा अनित्यास्तथा अशरणाश्च ।
दुःखानि दुःखफला इति च ज्ञात्वा निवर्त्तते तेभ्यः ॥ ७४ ॥

जतुपादपवद्वध्यघातकस्वभावत्वाज्जीवनिबद्धाः खल्वास्रवाः, न पुनरविरुद्धस्वभावत्वाभावाज्जीव एव । अपस्माररयवद्वर्द्धमानहीयमानत्वादध्रुवाः खल्वास्रवाः ध्रुवश्चिन्मात्रो जीव

मात्मपदार्थपृथग्भूतांस्तान् कामक्रोधाद्यास्रवान् क्षयं विनाशं नयामि प्रापयामीत्यर्थः ॥७३॥ अथ यस्मिन्नेव काले स्वसंवेदनज्ञानं तस्मिन्नेव काले रागाद्यास्रवनिवृत्तिरिति समानकालत्वं दर्शयति;— **एदे जीवणिबद्धा** एते क्रोधाद्यास्रवा जीवेन सह निबद्धा संबद्धा औपाधिकाः । न पुनः

है इसकारण सामान्यविशेष स्वरूप जो ज्ञान दर्शन उनकर पूर्ण हूं । ऐसा आकाशादि द्रव्यकी तरह परमार्थ स्वरूप वस्तुविशेष हूं । इसलिये मैं इसी आत्मस्वभावमें समस्त परद्रव्यसे निवृत्तिकर निश्चल तिष्ठता हुआ समस्त परद्रव्यके निमित्तसे जो विशेषरूप चैतन्यमें चंचल कल्लोलें होतीं थीं उनके निरोधसे इस चैतन्यस्वरूपको ही अनुभवता हुआ अपने ही अज्ञानकर आत्मामें उत्पन्न जो ये क्रोधादिक भाव उन सबोंको क्षयको प्राप्त करता हूं ऐसा आत्मामें निश्चय कर तथा जैसे बहुत कालका ग्रहण किया जो जिहाज था वह जिसने छोड़दिया है ऐसे समुद्रके भमरकी तरह शीघ्र ही दूर किये है समस्त विकल्प जिसने ऐसा निर्विकल्प अचलित निर्मल आत्माको अवलंबन करता विज्ञान घन हुआ यह आत्मा आस्रवोंसे निवृत्त होता है ॥ **भावार्थ**—शुद्धनयकर ज्ञानीने आत्माका ऐसा निश्चय किया कि मैं एक हूं शुद्ध हूं परद्रव्यसे निर्ममत्व हूं ज्ञान दर्शनकर पूर्ण वस्तु हूं सो जब ऐसे अपने स्वरूपमें तिष्ठनेसे उसीका अनुभवरूप हो तब क्रोधादिक आस्रव क्षय हो सकते हैं । जैसे समुद्रके आवर्तने बहुतकालसे जिहाजको पकड़ रक्खाथा पीछे किसी कालमें आवर्त पलटै तब जिहाजको छोड़ देता है उसीतरह आत्मा आस्रवोंको छोड़ देता है ॥ ७३ ॥

आगे पूछते हैं कि ज्ञान होनेका और आस्रवोंकी निवृत्तिका समकाल किसतरह है? उसका उत्तररूप गाथा कहते हैं;—[एते] ये आस्रव हैं वे [जीवनिबद्धाः]

एव । शीतदाहज्वरावेशवत् क्रमेणोज्जृंभमाणत्वादनित्याः खल्वास्रवाः, नित्यो विज्ञानघनस्वभावो जीव एव । बीजनिर्मोक्षक्षणक्षीयमाणदारुणस्मरसंस्कारवत् त्रातुमशक्यत्वादशरणाः खल्वास्रवाः, सशरणः स्वयं गुप्तः सहजचिच्छक्तिर्जीव एव । नित्यमेवाकुलस्वभावत्वाद् दुःखानि खल्वास्रवाः, अदुःखं नित्यमेवानाकुलस्वभावो जीव एव । आयत्यामाकुलत्वोत्पादकस्य पुद्गलपरिणामस्य हेतुत्वाद् दुःखफलाः खल्वास्रवाः अदुःखफलः सकलस्यापि

निरुपाधिस्फटिकवच्छुद्धजीवस्वभावाः । **अधुवा** विद्युच्चमत्कारवदध्रुवा अतीवक्षणिकाः । ध्रुवः शुद्धजीव एव । **अणिच्चा** शीतोष्णज्वरावेशवदध्रुवापेक्षया क्रमेण स्थिरत्वं न गच्छंतीत्यनित्या विनश्वराः नित्यश्चिच्चमत्कारमात्रशुद्धजीव एव । **तहा असरणा य** तथा तेनैव प्रकारेण तीव्रकामोद्रेकवत् त्रातु धर्तुं रक्षितुं न शक्यंत इत्यशरणाः शरणो निर्विकारबोधस्वरूपः शुद्धजीव एव । **दुक्खा** आकुलत्वोत्पादकत्वाद् दुःखानि भवंति कामक्रोधाद्यास्रवाः अनाकुलत्वलक्षणत्वात्पारमार्थिकसुखस्वरूपशुद्धजीव एव । **दुक्खफलाणि य** आगामिनारकादिदुःखफलकारणत्वाद् दुःखफलाः खल्वास्रवाः वास्तवसुखफलस्वरूपशुद्धजीव एव । **णादूण णिवत्तदे तेसु** इति भेदविज्ञानानंतरमेव इत्थंभूतान्मिथ्यात्वरागाद्यास्रवान् ज्ञात्वास्रवेभ्यो यस्मिन्नेव क्षणे मेघपटलर-

---

जीवके साथ निबद्ध हैं [**अध्रुवाः**] अध्रुव हैं [**तथा**] और [**अनित्याः**] अनित्य हैं [**च**] तथा [**अशरणाः**] अशरण हैं [**दुःखानि**] दुःखरूप है [**च**] और [**दुःखफलाः**] जिनका फल दुःख ही है [**इति ज्ञात्वा**] ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष [**तेभ्यः**] उनसे [**निवर्तते**] निवृत्ति करता है ॥ **टीका**—ये आस्रव हैं वे लाख वृक्ष इन दोनोंकी तरह बध्य घातक स्वभाव हैं । जैसे पीपल आदिके वृक्षमें लाख उत्पन्न होती है उससे वृक्ष बंध जाता है बादमें उसके निमित्तसे वृक्षका नाश हो जाता है । इसी तरह बध्य घातक स्वभावरूप जीवसहित बंधे हैं और विरुद्ध स्वभाववाले हैं इस कारण जीव ही नहीं हैं ऐसे आस्रव हैं वे मृगीके वेगकी तरह बढते जाते हैं फिर घटते हैं इसतरह अध्रुव हैं, जीव तो चैतन्य भावमात्र है सो ध्रुव है । वे आस्रव शीतदाहज्वरके स्वभावकी तरह क्रमसे उत्पन्न होते हैं इसलिये अनित्य है और जीव विज्ञानघन स्वभाव है इसकारण नित्य है । वे आस्रव अशरण हैं जैसे कामसेवनमें वीर्यका बंध छूटे उसीसमय अत्यंत कामका संस्कार क्षीण होजाता है किसीसे नहीं रोका जाता उसीतरह उदयकाल आनेके बाद आस्रव झड़ जाते हैं रोके नहीं जासकते इसलिये अशरण हैं, और जीव अपनी स्वाभाविक चित्शक्तिरूप कर आप ही रक्षा रूप है इसलिये शरण सहित है । वे आस्रव सदा ही आकुलता स्वभावको लिये हुए है इसलिये दुःखरूप हैं, और जीव सदा ही निराकुलस्वभाव रूप है इसकारण सुखरूप है । आस्रव हैं वे आगामी कालमें आकुलताके उत्पन्न करानेवाले पुद्गलपरिणामके कारण हैं इसलिये वे दुःखफल स्वरूप हैं और

पुद्गलपरिणामस्याहेतुत्वाज्जीव एव । इति विकल्पानंतरमेव शिथिलितकर्मविपाको विघटितघनौघघटनो दिगाभोग इव निरर्गलप्रसरः सहजविजृंभमाणचिच्छक्तितया यथा यथा विज्ञानघनस्वभावो भवति तथा तथास्रवेभ्यो निवर्त्तते । यथा यथास्रवेभ्यश्च निवर्त्तते तथा तथा विज्ञानघनस्वभावो भवतीति । तावद्विज्ञानघनस्वभावो भवति यावत्सम्यगास्रवेभ्यो निवर्त्तते । तावदास्रवेभ्यश्च निवर्त्तते यावत्सम्यग्विज्ञानघनस्वभावो भवतीति ज्ञानास्रवनिवृत्त्योः समकालत्वं । "इत्येवं विरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां स्वं विज्ञानघनस्व-

---

हितादित्यवन्निवर्त्तते तस्मिन्नेव क्षणे ज्ञानी भवतीति भेदज्ञानेन सहास्रवनिवृत्तेः समानकालत्वं सिद्धमिति । ननु पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकाव्याख्यानं क्रियत इति पूर्वं प्रतिज्ञा कृता भवद्भिः व्याख्यानं पुनः अज्ञानीसज्ज्ञानीजीवस्वरूपमुख्यत्वेन कृतं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकाव्याख्यानं कथं घटत इति । तन्न । जीवाजीवौ यदि नित्यमेकांतेनापरिणामिनौ भवतस्तदा द्वावेव पदार्थौ जीवाजीवाविति । यदि च एकांतेन परिणामिनौ तन्मयौ भवतस्तदैक एव पदार्थः । किंतु कथंचित्परिणामिनौ भवतः । कथंचित्कोर्थः? यद्यपि जीवः शुद्धनिश्चयेन स्वरूपं न त्यजति तथापि व्यवहारेण कर्मोदयवशाद्रागाद्युपाधिपरिणामं गृह्णाति । यद्यपि रागाद्युपाधिपरिणामं गृह्णाति तथापि स्वरूपं न त्यजति स्फटिकवत् । तत्रैवं कथंचित्परिणामित्वे सति अज्ञानी बहिरात्मा मिथ्यादृष्टिर्जीवो विषयकषायरूपाशुभोपयोगपरिणामं करोति । कदाचित्पुनश्चिदानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानं त्यक्त्वा भोगाकांक्षानिदानस्वरूपं शुभोपयोगपरिणामं च करोति । तदा काले द्रव्यभावरूपाणां पुण्यपापास्रवबंधपदार्थानां कर्तृत्वं घटते । तत्र ये भावरूपाः पुण्यपापादयस्ते जीवपरिणामा द्रव्यरूपास्ते चाजीवपरिणामा इति । यः पुनः सम्यग्दृष्टिरंतरात्मा स ज्ञानी जीवः स मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगबलेन निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा निर्विकल्पसमाधिरूपपरिणामपरिणतिं करोति तदा तेन परिणामेन संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां द्रव्यभावरूपाणां कर्त्ता भवति ।

जीव है वह समस्त पुद्गलपरिणामका कारण नहीं है इसलिये दुःखफल स्वरूप नहीं है । ऐसा आस्रवोंका और जीवका भेदज्ञान होनेसे जिसके कर्मका उदय शिथिल होगया है और जैसे दिशा वादलेकी रचनाके अभाव होनेसे निर्मल होजाती है, उसतरह अमर्याद फैलावरूप हुआ तथा स्वभावकर ही उदयवान हुई चिच्छक्तिपनेकर जैसा जैसा विज्ञान घन स्वभाव होता है वैसा वैसा आस्रवोंसे निवृत्त होता जाता है तथा जैसा जैसा आस्रवोंसे निवृत्त होता जाता है वैसा वैसा विज्ञान घन स्वभाव होता जाता है । ऐसा वहांतक विज्ञानघन स्वभाव होता है जहांतक अच्छी तरह विज्ञानघन स्वभाव है । इसतरह ज्ञान और आस्रवकी निवृत्तिके समकालपना हैं ॥ **भावार्थ—**आस्रव और आत्माका पूर्वकथितरीतिसे भेद जाननेके वाद जितना अंश जिस जिस तरह आस्रवोंसे निवृत्त होता है उस उसप्रकार उतना अंश विज्ञान घन स्वभाव होता जाता है । जब समस्त आस्रवोंसें निवृत्त हो जाता है तब संपूर्ण ज्ञानघन स्वभाव आत्मा होता है ।

भावमभयादास्तिघ्नुवानः परं । अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान् ॥" ७४ ॥

कथमात्मा ज्ञानीभूतो लक्ष्यत इति चेत् ;—

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥७५॥

कदाचित्पुनः निर्विकल्पसमाधिपरिणामाभावे सति विषयकषायवंचनार्थं शुद्धात्मभावनासाधनार्थं बहिर्बुद्ध्या ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबंधरहितः सन् शुद्धात्मलक्षणार्हत्सिद्धशुद्धात्माराधकप्रतिपादकसाधकाचार्योपाध्यायसाधूनां गुणस्मरणादिरूपं शुभोपयोगपरिणामं च करोति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाहुः । यथा कश्चिद्देवदत्तः स्वकीयदेशांतरस्थितस्त्रीनिमित्तं तत्समीपागतपुरुषाणां सन्मानं करोति, वार्तां पृच्छति, तत्स्त्रीनिमित्तं तेषां स्वीकारं स्नेहदानादिकं च करोति । तथा सम्यग्दृष्टिरपि शुद्धात्मस्वरूपोपलब्धिनिमित्तं शुद्धात्माराधकप्रतिपादकाचार्योपाध्यायसाधूनां गुणस्मरणं दानादिकं च स्वयं शुद्धात्माराधनारहितः सन् करोति । एवमज्ञानीसज्ञानीजीवस्वरूपव्याख्याने कृते सति पुण्यपापादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ता इति पीठिकाव्याख्यानं घटते । नास्ति विरोधः । एवं सज्ञानीजीवव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं । इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकाधिकारे गाथाषट्केन प्रथमांतराधिकारो व्याख्यातः ॥ ७४ ॥ अतः परं यथाक्रमेणै-

---

ऐसे आस्रवकी निवृत्तिका और ज्ञानके होनेका एक काल जानना । इस आस्रवका अभाव और संवरका होना गुणस्थानोंकी परिपाटीरूप तत्त्वार्थ सूत्रकी टीका आदि सिद्धांत ग्रंथोंमें है वहांसे जान लेना यहां सामान्य प्रकरण है इसलिये सामान्य कर कहा है । और यहा विज्ञानघन स्वभाव होना कहा सो जहांतक मिथ्यात्व है वहांतक तो ज्ञानको अज्ञान कहा जाता है और मिथ्यात्व जानेके बाद अज्ञान संज्ञा नहीं है विज्ञान संज्ञा है । वह ज्ञान कर्मके क्षय तथा उपशमकी अपेक्षा हीन अधिक होता है सो जैसी जैसी आस्रवोंकी निवृत्ति होती है वैसा वैसा ज्ञान वढता जाता है उसीका विज्ञान नाम कहा जाता है । थोडा ज्ञान मिथ्यात्वके विना अज्ञान नहीं कहा जासकता ऐसा जानना ॥ अव इसी अर्थका कलशरूप तथा आगेके कथनकी सूचनारूप काव्य कहते हैं । **इत्येवं** इत्यादि । **अर्थ**—इसके वाद पुराण पुरुष आत्मा जगतका साक्षीभूत, ज्ञाता, द्रष्टा आप ही ज्ञानी हुआ प्रकाशमान होता है । वह इसतरह है—पहले कही हुई रीतिसे परद्रव्यसे उत्कृष्ट सब प्रकार निवृत्तिकर और विज्ञान घन स्वभावरूप केवल अपने आत्माको निःशंक आस्तिक्यभावरूप स्थिरीभूत करता हुआ अज्ञानसे हुई कर्ता कर्मकी प्रवृत्तिके अभ्याससे हुए क्लेशोंसे निवृत्त हुआ प्रकाशमान होता है ॥ ७४ ॥

आगे पूछते हैं कि ऐसा आत्मा ज्ञानी हुआ कैसे पहचाना जा सकता है उसके चिह्न

कर्मणश्च परिणामं नोकर्मणश्च तथैव परिणामं ।
न करोत्येनमात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी ॥ ७५ ॥

यः खलु मोहरागद्वेषसुखदुःखादिरूपेणांतरुत्प्लवमानं कर्मणः परिणामं स्पर्शरसगंधवर्णशब्दबंधसंस्थानस्थौल्यसौक्ष्म्यादिरूपेण बहिरुत्प्लवमानं नोकर्मणः परिणामं च समस्तमपि परमार्थतः पुद्गलपरिणामपुद्गलयोरेव घटमृत्तिकयोरिव व्याप्यव्यापकभावसद्भावात्पुद्गलद्रव्येण कर्त्रा स्वतंत्रव्यापकेन स्वयं व्याप्यमानत्वात्कर्मत्वेन क्रियमाणं पुद्गलपरिणामात्मनोर्घटकुंभकारयोरिव व्याप्यव्यापकभावाभावात् कर्तृकर्मत्वासिद्धौ न नाम करोत्यात्मा । किं तु परमार्थतः पुद्गलपरिणामज्ञानपुद्गलयोर्घटकुंभकारवद्व्याप्यव्यापकभावाभावात् कर्तृ-

---

कादशगाथापर्यंत पुनरपि सज्ञानीजीवस्य विशेषव्याख्यानं करोति । तत्रैकादशगाथासु मध्ये जीवः कर्त्ता मृत्तिकाकलशमिवोपादानरूपेण निश्चयेन कर्म नोकर्म च न करोतीति जानन् सन् शुद्धात्मानं स्वसंवेदनज्ञानेन जानाति यः स ज्ञानी भवतीति कथनरूपेण **'कम्मस्स य परिणामं,** इत्यादिप्रथमगाथा । ततः परं पुण्यपापादिपरिणामान् व्यवहारेण करोति निश्चयेन न करोतीति मुख्यत्वेन सूत्रमेकं । अथ कर्मत्व स्वपरिणामत्वं सुखदुःखादिकर्मफलं चात्मा जानन्नप्युदयागतपरद्रव्यं न करोतीति प्रतिपादनरूपेण **'णवि परिणमदि'** इत्यादिगाथात्रय । तदनंतरं पुद्गलोपि वर्णादिस्वपरिणामस्यैव कर्त्ता न च ज्ञानादिजीवपरिणामस्येति कथनरूपेण **णवि परिणमदि'** इत्यादिसूत्रमेकं । अतः परं जीवपुद्गलयोरन्योन्यनिमित्तकर्तृत्वेपि सति परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्तीति कथनमुख्यतया **'जीवपरिणाम'** इत्यादि गाथात्रयं । तदनंतरं निश्चयेन जीवस्य

कहने चाहिये ? उसका उत्तररूप गाथा कहते हैं,—[**यः**] जो [**आत्मा**] जीव [**एनं**] इस [**कर्मणः परिणामं च**] कर्मके परिणामको [**तथैव च**] उसीतरह [**नोकर्मणः परिणामं**] नोकर्मके परिणामको [**न करोति**] नहीं करता परंतु [**जानाति**] जानता है [**सः**] वह [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**भवति**] है ॥ **टीका—** निश्चयकर मोह राग द्वेष सुखदुःख आदि स्वरूपकर अंतरंगमें उत्पन्न होता है वह तो कर्मका परिणाम है । और स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द बंध संस्थान स्थौल्य सूक्ष्म आदि रूपकर बाहर उत्पन्न होता है वह नोकर्मका परिणाम है । इसप्रकार ये सभी परमार्थसे पुद्गल परिणामके और पुद्गलके ही हैं । जैसे घड़ेके और मट्टीके व्याप्यव्यापक भावके सद्भावसे कर्ताकर्मपना है उसीतरह पुद्गल द्रव्य कर स्वतंत्र व्यापक कर्ता होके किये गये हैं और वे आप अंतरंग व्याप्य रूप होकर व्यापे हैं इसकारण पुद्गलके कर्म हैं । परंतु पुद्गल परिणाम और आत्माका घट और कुम्हारकी तरह व्याप्यव्यापकपना नहीं है इसलिये कर्ता कर्मपनेकी असिद्धि है इसीकारण कर्म नोकर्म परिणामको आत्मा नहीं करता । उस जगह यह विशेषता है कि परमार्थसे पुद्गलपरिणामका ज्ञानके और पुद्गलके घट और कुंभारकी तरह व्याप्य व्यापक भावके अभावसे कर्ता कर्मपनेकी सिद्धि

कर्मत्वासिद्धावात्मपरिणामात्मनोर्घटमृत्तिकयोरिव व्याप्यव्यापकभावसद्भावादात्मद्रव्येण कर्त्रा स्वतंत्रव्यापकेन स्वयं व्याप्यमानत्वात्पुद्गलपरिणामज्ञानं कर्मत्वेन कुर्वन्तमात्मानं जानाति सोत्यंतविविक्तज्ञानीभूतो ज्ञानी स्यात् । न चैवं ज्ञातुः पुद्गलपरिणामो व्याप्यः पुद्गलात्मनोर्ज्ञेयज्ञायकसंबंधव्यवहारमात्रे सत्यपि पुद्गलपरिणामनिमित्तकस्य ज्ञानस्यैव ज्ञातुर्व्याप्यत्वात् । "व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः । इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिंदंस्तमो ज्ञानीभूय तदा

स्वपरिणामैरेव सह कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्चेति प्रतिपादनरूपेण **'णिच्छयणयस्स'** इत्यादिसूत्रमेकं । ततश्च व्यवहारेण जीवः पुद्गलकर्मणां कर्त्ता भोक्ता चेति कथनरूपेण **'ववहारस्स दु'** इत्यादिसूत्रमेकं । एवं ज्ञानीजीवस्य विशेषव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथाभिर्द्वितीयस्थले समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ कथमात्मा ज्ञानीभूतो लक्ष्यत इति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—
कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ण करेदि एदमादा जो जाणदि यथा मृत्तिका कलशमुपादानरूपेण करोति तथा कर्मणः नोकर्मणश्च परिणामं पुद्गलेनोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं न करोत्यात्मेति यो जानाति **सो हवदि णाणी** स

न होनेपर आत्मपरिणामके और आत्माके घट मृत्तिकाकी तरह व्याप्य व्यापक भावके सद्भावसे आत्मद्रव्यकर्ताने आप स्वतंत्र व्यापक होके ज्ञान नामा कर्म किया है इसलिये वह ज्ञान आप ही आत्मासे व्याप्यरूप होके कर्मरूप हुआ है इसी कारण पुद्गलपरिणामके ज्ञानको कर्मपनेकर कर्ता आत्मा उसे आप जानता है । ऐसा आत्मा पुद्गलपरिणामरूप कर्म नोकर्मसे अत्यंत भिन्न ज्ञानी हुआ ज्ञानी ही है । कर्ता नहीं है । ऐसा होनेपर ज्ञाता पुरुषके पुद्गलपरिणाम व्याप्य स्वरूप नहीं हैं क्योंकि पुद्गल और आत्माका ज्ञेय ज्ञायक संबंध व्यवहार मात्रकर होता हुआ भी जिसको पुद्गल परिणाम निमित्त है ऐसा पुद्गलपरिणामका ज्ञान वही ज्ञाताके व्याप्य है । इसलिये वह ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म है ॥ अब इसी अर्थके समर्थनका कलशरूप काव्य कहते है । **व्याप्य** इत्यादि । **अर्थ—** व्याप्यव्यापकपना है वह तत्स्वरूपके ही होता है अतत्स्वरूपमें नहीं होता और व्याप्य व्यापक भावके संभवविना कर्ता कर्मकी स्थिति क्या है ? कुछ भी नहीं । ऐसे उदार विवेकरूप और समस्तको ग्रासीभूत करनेका स्वभाव जिसका है ऐसे ज्ञानस्वरूप प्रकाशके भारकर अज्ञानरूप अंधकारको भेदता हुआ यह आत्मा ज्ञानी होकर उससमय कर्तापनेसे रहित हुआ शोभता है ॥ **भावार्थ—**जो सब अवस्थाओंमें व्यापै वह तो व्यापक है और अवस्थाके विशेष हैं वे व्याप्य हैं । ऐसा होनेपर द्रव्य तो व्यापक है सो द्रव्यपर्याय अभेदरूप ही है । जो द्रव्यका आत्मा वही पर्यायका आत्मा ऐसा व्याप्य व्यापकभाव तत्स्वरूपमें ही होता है अतत्स्वरूपमें नहीं होता । वहां ऐसा सिद्ध होता है कि व्याप्य व्यापक भावके विना कर्ता कर्मभाव नहीं होता इसतरह जो जानता है

स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥ ४९ ॥" ७५ ॥

पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य सह पुद्गलेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवतीति चेत्;—

णवि परिणमइ ण गिह्णइ उपज्जइ ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥ ७६ ॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये ।
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्गलकर्मानेकविधं ॥ ७६ ॥

यतो यं प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं पुद्गलपरिणामं कर्म पुद्गलद्रव्येण स्वयमंतर्व्यापकत्वेन भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तं गृह्णता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाणं जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमंतर्व्यापको भूत्वा बहिःस्थस्य परद्रव्यस्य परिणामं

निश्चयशुद्धात्मानं परमसमाधिबलेन भावयन्सन् ज्ञानी भवति ॥ ७५ ॥ इति ज्ञानीभूतजीवलक्षणकथनरूपेण गाथा गता । अथ पुण्यपापादिपरिणामान् व्यवहारेण करोतीति प्ररूपयति;—

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण ।
धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥

कर्त्ता आत्मा भणितः न च कर्त्ता केन स उपायेन । धर्मादीन् परिणामान् यः जानाति स भवति ज्ञानी ॥ **कत्ता आदा भणिदो** कर्त्तात्मा भणितः **ण य कत्ता सो** न च कर्त्ता भवति स आत्मा **केण उवायेण** केनाप्युपायेन नयविभागेन । केन नयविभागेनेति चेत्, निश्चयेन अकर्त्ता व्यवहारेण कर्त्तेति । कान् । **धम्मादी परिणामे** पुण्यपापादिकर्म-

---

वह पुद्गलके और आत्माके कर्ता कर्म भावको नहीं जानता तभी ज्ञानी होता है । कर्ताकर्मभावकर रहित होके ज्ञाता द्रष्टा जगतका साक्षीभूत होता है ॥ ७५ ॥

आगे पूछते हैं कि जो जीव पुद्गलकर्मको जानता है उसका पुद्गलके साथ कर्ता कर्मभाव है कि नहीं है ? उसका उत्तर कहते हैं;—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**अनेकविधं**] अनेक प्रकार [**पुद्गलकर्म**] पुद्गलद्रव्यके पर्यायरूप कर्मोंको [**जानन् अपि**] जानता है तौभी [**खलु**] निश्चयकर [**परद्रव्यपर्याये**] परद्रव्यके पर्यायोंमें [**न परिणमति**] उन स्वरूप नहीं परिणमता [**न गृह्णाति**] ग्रहण भी नहीं करता और [**न उत्पद्यते**] उनमें उत्पन्न भी नहीं होता ॥ **टीका**—यह ज्ञानी पुद्गलके परिणामस्वरूप कर्मको जानता भी है । कर्मका स्वरूप सामान्यपनेसे तीन प्रकार है— प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य । जिस सिद्ध हुएको ग्रहण करना वह प्राप्य है, वस्तुकी अवस्था पलटना विकाररूप होना वह विकार्य है, और जो अवस्था पहले तो नहीं थी फिर उत्पन्न हो उसे निर्वर्त्य कहते हैं । ऐसा कर्मका स्वरूप है वह पुद्गलका परिणाम तीनों ही स्वरूपकर पुद्गलद्रव्यके व्यापने योग्य है सो पुद्गलद्रव्य आप अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंत तीनों भावोंमें व्यापकर उसको ग्रहण करता है उसरूप परिणमता है उस

मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेपु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथोत्पद्यते च। ततः प्राप्यं विकार्य निर्वर्त्य च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य पुद्गलकर्म जानतोपि ज्ञानिनः पुद्गलेन सह न कर्तृकर्मभावः ॥ ७६ ॥

जनितोपाधिपरिणामान् **जो जाणदि सो हवदि णाणी** ख्यातिपूजालाभादिसमस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधौ स्थित्वा यो जानाति स ज्ञानी भवति । इति निश्चयनयव्यवहाराभ्यामकर्तृत्वकर्तृत्वकथनरूपेण गाथा गता । अथ पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन सह तादात्म्यसंबंधो नास्तीति निरूपयति;—**पुग्गलकम्मं अणेयविहं** कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्येणोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं पुद्गलकर्मानेकविधं मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं **जाणंतो वि हु** विशिष्टभेदज्ञानेन जानन्नपि हु स्फुटं सः । कः कर्त्ता, **णाणी** सहजानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मरागाद्यास्रवयोर्भेदज्ञानी **णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये** तत्पूर्वोक्तं परद्रव्यपर्यायरूपं कर्म निश्चयेन मृत्तिकाकलशरूपेणेव न परिणमति न तादात्म्यरूपतया गृह्णाति न च तदाकारेणोत्पद्यते । कस्मादिति चेत्, मृत्तिकाकलशयोरिव तेन पुद्गलकर्मणा सह तादात्म्यसंबंधाभावात् । तत एतदायाति पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति ॥ ७६ ॥

स्वरूपकर उपजता है इसतरह वह परिणाम पुद्गल द्रव्यकर ही किया गया है ऐसेको ज्ञानी जानता है तौभी आप उसमे अंतर्व्यापक होके बाह्य तिष्ठे परद्रव्यके परिणामको आदि मध्य अंतमें व्यापकर उसरूप नहीं परिणमता । उसको आप ग्रहण नहीं करता उसमे उपजता भी नहीं है । जैसे मट्टी घटरूप होती है उसको ग्रहण करती है उसको उपजाती है उसतरह नहीं है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जो प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यस्वरूप व्याप्य लक्षण परद्रव्यका परिणाम स्वरूप कर्म है उसे नहीं करता किंतु उसे जानता हुआ जो ज्ञानी उसका पुद्गलके साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है ॥ **भावार्थ**—पुद्गल कर्मको जीव जानता है तौभी उसका पुद्गलके साथ कर्ताकर्मभाव नहीं है क्योंकि कर्म तीन प्रकारसे कहा जाता है । या तो उस परिणामरूप आप परिणमें वह परिणाम । या आप किसीको ग्रहण करै वह वस्तु । या किसीको आप उपजावै वह वस्तु । ऐसें तीनों ही तरहसे जीव अपनेसे जुदे पुद्गलद्रव्यरूप परमार्थसे नहीं परिणमता क्योंकि आप चेतन है पुद्गल जड़ है चेतन जड़रूप नहीं परिणमता । पुद्गलको ग्रहण भी परमार्थसे नहीं करता क्योंकि पुद्गल मूर्तीक है आप अमूर्तीक है अमूर्तीकका ग्रहण योग्य नहीं है । तथा पुद्गलको आप परमार्थसे उपजाता भी नहीं क्योंकि चेतन जड़को किसतरह उपजा सकता है ? इसतरह पुद्गल जीवका कर्म नहीं है और जीव उसका कर्ता नहीं । जीवका स्वभाव ज्ञाता है वह आप ज्ञानरूप परिणमता उसको जानता है । ऐसे जाननेवालेका परके साथ कर्ताकर्मभाव कैसे होसकता है ? नहीं होसकता ॥ ७६ ॥

स्वपरिणामं जानतो जीवस्य सह पुद्गलेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवति इति चेत्;—

णवि परिणमदि ण गिह्लदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं॥ ७७॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
ज्ञानी जानन्नपि खलु स्वकपरिणाममनेकविधं॥ ७७॥

यतो यं प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणमात्मपरिणामं कर्म आत्मना स्वयमंतर्व्यापकेन भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तं गृह्णता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाणं जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमंतर्व्यापको भूत्वा बहिःस्थस्य परद्रव्यस्य परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथोत्पद्यते च। ततः

अथ स्वपरिणाम संकल्पविकल्परूप जानतो जीवस्य तत्परिणामनिमित्तेनोदयागतकर्मणा सह तादात्म्यसंबधो नास्तीति दर्शयति;—**सगपरिणामं अणेयविहं** क्षायोपशमिक संकल्पविकल्परूपं स्वेनात्मनोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं स्वपरिणाममनेकविध **णाणी जाणंतो वि हु** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानी जीवः स्वपरमात्मनो विशिष्टभेदज्ञानेन जानन्नपि हु स्फुटं **णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये** तस्य पूर्वोक्तस्वकीयपरिणामस्य निमित्तभूतसमुदायागतं पुद्गलकर्मपर्यायरूप मृत्तिकाकलशरूपेणेव शुद्धनिश्चयनयेन न परिणमति न तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते च। कस्मात् मृत्तिकाकलशयोरिव तेन पुद्गलकर्मणा

आगे पूछते हैं कि अपने परिणामोंको जानता हुआ जो जीव उसका पुद्गलके साथ कर्ताकर्मभाव है कि नहीं? उसका उत्तर कहते हैं,—**[ज्ञानी]** ज्ञानी **[स्वकपरिणामं]** अपने परिणामोंको **[अनेकविधं]** अनेक प्रकार **[जानन् अपि]** जानता हुआ भी **[खलु]** निश्चयकर **[परद्रव्यपर्याये]** परद्रव्यके पर्यायमें **[नापि परिणमति]** न तो परिणता है **[न गृह्णाति]** न उसको ग्रहण करता है **[न उत्पद्यते]** और न उपजता है इसलिये उसके साथ कर्ता कर्मभाव नहीं है॥ **टीका**—जिसकारण यह ज्ञानी, प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य इसतरह जिसका लक्षण व्याप्य है ऐसा तीन प्रकार कर्म आत्मके अपना परिणाम ही है उसे अपने आप अपनेकर अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंतमें व्याप्यकर उसीको ग्रहण करता है उसीरूप परिणमता है उसी तरह उत्पन्न होता है। इसप्रकार उसी अपने परिणामरूप कर्मको करता हुआ है। उसको आप जानता हुआ भी बाह्य तिष्ठे हुए परद्रव्यके परिणामको 'जैसे मट्टी कलशको व्यापकर करती है उसीतरह' आप उस परद्रव्यके परिणाममें आदि मध्य अंतमें व्यापकर न तो उसे ग्रहण करता है न उसरूप परिणमता है और न उसतरह उपजता है इसकारण प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य तीन प्रकार व्याप्य लक्षण परद्रव्यका परिणामरूप कर्म

प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य स्वपरिणामं जानतोपि ज्ञानिनः पुद्गलेन सह न कर्तृकर्मभावः ॥ ७७ ॥

पुद्गलकर्मफलं जानतो जीवस्य सह पुद्गलेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवतीति चेत्;—

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंतं ॥ ७८ ॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये ।
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्गलकर्मफलमनंतं ॥ ७८ ॥

यतो यं प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं सुखदुःखादिरूपं पुद्गलकर्मफलं कर्म पुद्गलद्रव्येण स्वयमंतर्व्यापकेन भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तद्गृह्णता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाणं जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमंतर्व्यापको भूत्वा बहिःस्थस्य परद्रव्यस्य

सह परस्परोपादानकारणाभावादिति । एतावता किमुक्तं भवति स्वकीयक्षायोपशमिकपरिणामनिमित्तमुदयागतं कर्म जानतोपि जीवस्य तेन सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति ॥ ७७ ॥ अथ पुद्गलकर्मफलं जानतो जीवस्य पुद्गलकर्मफलनिमित्तेन द्रव्यकर्मणा सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति कथयति;—**पुग्गलकम्मफलमणंतं** उदयागतद्रव्यकर्मणोपादानकारणभूतेन क्रियमाण सुखदुःखरूपशक्त्यपेक्षयानतकर्मफलं **णाणी जाणंतो वि हु** वीतरागशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसतृप्तो भेदज्ञानी निर्मलविवेकभेदज्ञानेन जानन्नपि हि स्फुटं **ण परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये** वर्तमानसुखदुःखरूपं शक्त्यपेक्षानिमित्तमुदयागतं परपर्यायरूपं पुद्गलकर्म मृत्तिकाकलशरूपेणेव शुद्धनयेन न परिणमति

उसे नहीं करता यह ज्ञानी है वह अपने परिणामको जानता हुआ प्रवर्तता है । उसका पुद्गलके साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है ॥ **भावार्थ**—पहली गाथामें कहा है वही जानना विशेष इतना है कि यहां अपने परिणामको जानता हुआ ज्ञानी कहा है ॥ ७७ ॥

आगे पूछते हैं कि "पुद्गलकर्मके फलको जानते हुए जीवका पुद्गलके साथ कर्तृकर्मभाव है या नहीं ?" उसका उत्तर कहते हैं;—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**अनंतं**] अनंत [**पुद्गलकर्मफलं**] पुद्गल कर्मको फलोंको [**जानन् अपि**] जानता हुआ प्रवर्तता है तौ भी [**खलु**] निश्चयसे [**परद्रव्यपर्याये**] परद्रव्यके पर्यायमें [**नापि**] नहीं [**परिणमति**] परिणमता है [**न गृह्णाति**] उसमें कुछ ग्रहण नहीं करता तथा [**न उत्पद्यते**] उसमे उपजता भी नहीं है । इसप्रकार उसमे इसके कर्तृकर्मभाव नहीं है । **टीका**—जिसकारण प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य ऐसें जिसका लक्षण व्याप्य है ऐसा तीन प्रकारका सुखदुःखादिरूप पुद्गलकर्मका फल उसे पुद्गल द्रव्यने अंतर्व्यापक होकर आदि मध्य अंतमें व्यापकर ग्रहण करता, उसीतरह परिणमता तथा उसीतरह उत्पन्न

परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न तथा परिणमति न तथो-त्पद्यते च । ततः प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य सुखदुःखादिरूपं पुद्गलकर्मफलं जानतोपि ज्ञानिनः पुद्गलेन सह न कर्तृकर्मभावः ॥७८॥

जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं चाजानतः पुद्गलद्रव्यस्य सह जीवेन कर्तृकर्मभावः किं भवति किं न भवतीति चेत्;—

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥ ७९ ॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये ।
पुद्गलद्रव्यमपि तथा परिणमति स्वकैर्भावैः ॥ ७९ ॥

यतो जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं चाप्यजानन् पुद्गलद्रव्यं स्वयमंतर्व्यापकं भूत्वा परद्रव्यस्य परिणामं मृत्तिकाकलशमिवादिमध्यांतेषु व्याप्य न तं गृह्णाति न

न तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते च । कस्मादिति चेत्, मृत्तिकाकलशयोरिव तेन द्रव्यकर्मणा सह तादात्म्यलक्षणसवंधाभावादिति । किं च विशेषः । यदि पुद्गलकर्मरूपेण न परिणमति न गृह्णाति न तदाकारेणोत्पद्यते तर्हि किं करोति ज्ञानी जीवः, मिथ्यात्वविषयकषाय-ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधशल्यादिविभावपरिणामकर्तृत्वभोक्तृत्वविकल्पशून्यं पूर्णकलशवच्चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थ शुद्धात्मान निर्विकल्पसमाधौ ध्यायतीति भावार्थः ॥ ७८ ॥ एवमात्मा निश्चयेन द्रव्यकर्मादिकं परद्रव्यं न परिणमतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन, गाथात्रयं गतं । अथ जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं च जडस्वभावत्वादजानतः पुद्गलस्य निश्चयेन जीवेन सह कर्तृकर्मभावो नास्तीति प्रतिपादयति;—**णवि परिणमदि ण गिह्णदि**

हुएकर किया है उसे जानता यह ज्ञानी आप अंतर्व्यापक होके बाह्य तिष्ठता परद्रव्यके परिणामको मट्टी और घड़ेकी तरह आदि मध्य अंतमें व्यापकर नहीं ग्रहण करता, उसतरह परिणमता भी नहीं तथा उसतरह उपजता भी नहीं है । तो क्या है ? प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्य लक्षण अपना स्वभावरूप कर्म उसको आप अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंतमें व्याप उसीको ग्रहण करता है उसीतरह परिणमता है और उसी-तरह उपजता है । इसकारण प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्यलक्षण परद्रव्यके परिणामरूप कर्मको नहीं करता सुखदुःखरूप कर्मके फलको जानता है तौभी ज्ञानीके पुद्गलके साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है । **भावार्थ**—पहली गाथामें कहा वही जानना ॥ ७८ ॥

आगे पूछते हैं कि जीवके परिणामको तथा अपने परिणामको और अपने परिणामके फलको नहीं जानता ऐसे पुद्गल द्रव्यका जीवके साथ कर्तृकर्मभाव है कि नहीं उसका उत्तर कहते हैं,—**[पुद्गलद्रव्यं अपि]** पुद्गल द्रव्य भी **[परद्रव्ये पर्याये]** परद्रव्यके पर्यायमें **[तथा]** उसतरह **[नापि]** नहीं **[परिणमति]** परिण-

तथा परिणमति न तथोत्पद्यते । किं तु प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं स्वभावं कर्म स्वयमंतर्व्यापकं भूत्वादिमध्यांतेषु व्याप्य तमेव गृह्णाति तथैव परिणमति तथैवोत्पद्यते च । ततः प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षणं परद्रव्यपरिणामं कर्माकुर्वाणस्य जीवपरिणामं स्वपरिणामं स्वपरिणामफलं चाजानतः पुद्गलद्रव्यस्य जीवेन सह न कर्तृकर्मभावः । "ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन् व्याप्तृव्याप्यत्वमंतः कलयितुमसहो नित्यमत्यंतभेदात् । अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावत् विज्ञा-

---

उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए यथा जीवो निश्चयेनानंतसुखादिस्वरूपं त्यक्त्वा पुद्गलद्रव्यरूपेण न परिणमति न च तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते । **पुग्गलदव्वं पि तहा** तथा पुद्गलद्रव्यमपि स्वयमतर्व्यापकं भूत्वा मृत्तिकाद्रव्यकलशरूपेणेव चिदानंदैकलक्षणजीवस्वरूपेण न परिणमति न च जीवस्वरूपं तन्मयत्वेन गृह्णाति न च जीवपर्यायेणोत्पद्यते । तर्हि किं करोति **परिणमइ सएहिं भावेहिं** परिणमति स्वकीयैर्वर्णादिस्वभावैः परिणामैर्गुणैर्धर्म्मै-

---

मता है, **[न गृह्णाति]** उसको ग्रहण भी नहीं करता और **[न उत्पद्यते]** न उत्पन्न होता है क्योंकि **[स्वकैः भावैः]** अपने भावोंसे ही **[परिणमति]** परिणमता है । **टीका**—जिसकारण पुद्गल द्रव्य जीवके परिणामको अपने परिणामको तथा अपने परिणामके फलको नहीं जानता हुआ वर्तता है । परद्रव्यके परिणाम रूप कर्मको मृत्तिका कलशकी तरह आप अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंतमें व्यापकर नहीं ग्रहण करता उसीतरह परिणमता भी नहीं है तथा उपजताभी नहीं है परंतु प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्य लक्षण अपने स्वभावरूप कर्मको अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंतमें व्याप्य उसीको ग्रहण करता है उसीतरह परिणमता है तथा उसीतरह उपजता है । इसकारण प्राप्य विकार्य निर्वर्त्यरूप व्याप्य लक्षण परद्रव्यके परिणामस्वरूप कर्मको नहीं करता जो पुद्गलद्रव्य वह जीवके परिणामको, अपने परिणामको तथा अपने परिणामके फलको नहीं जानता उसका जीवके साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है । **भावार्थ**—कोई जाने कि पुद्गल जड़ है सो किसीको जानता नहीं उसका जीवके साथ कर्तृकर्म भाव होगा सो यह भी नहीं है । परमार्थसे परद्रव्यके साथ किसीके कर्तृकर्मभाव नहीं है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं । **ज्ञानी** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानी तो अपनी और परकी दोनोंकी परिणतिको जानता हुआ प्रवृत्त होता है तथा पुद्गलद्रव्य अपनी और परकी दोनों ही परिणतियोंको नहीं जानता हुआ प्रवर्तता है इसलिये वे दोनों परस्पर अंतरंग व्याप्यव्यापक भावको प्राप्त होनेको असमर्थ हैं क्योंकि दोनों भिन्न द्रव्य हैं सदाकाल उनमें अत्यत भेद है । ऐसा होनेपर इनके कर्तृकर्मभाव मानना भ्रमबुद्धि है । सो यह जबतक इन दोनोंमे करोंतकी तरह निर्दय होके उसीसमय भेदको उपजाके भेदज्ञान प्रकाशवाला ज्ञान प्रकाशित नहीं होता तभीतक है ॥

नार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥ ५० ॥" ॥ ७९ ॥

जीवपुद्गलपरिणामयोरन्योन्यनिमित्तमात्रत्वमस्ति तथापि न तयोः कर्तृकर्मभाव इत्याह;—

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८० ॥
णवि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोह्णंपि ॥ ८१ ॥
एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८२ ॥

जीवपरिणामहेतुं कर्मत्वं पुद्गलाः परिणमंति ।
पुद्गलकर्मनिमित्तं तथैव जीवोपि परिणमति ॥ ८० ॥
नापि करोति कर्मगुणान् जीवः कर्म तथैव जीवगुणान् ।
अन्योन्यनिमित्तेन तु परिणामं जानीहि द्वयोरपि ॥ ८१ ॥
एतेन कारणेन तु कर्त्ता आत्मा स्वकेन भावेन ।
पुद्गलकर्मकृतानां न तु कर्त्ता सर्वभावानां ॥ ८२ ॥

यतो जीवपरिणामं निमित्तीकृत्य पुद्गलाः कर्मत्वेन परिणमंति पुद्गलकर्मनिमित्तीकृत्य जीवोपि परिणमतीति जीवपुद्गलपरिणामयोरितरेतरहेतुत्वोपन्यासेपि जीवपुद्गलयोः परस्परं

रिति । कस्मादिति चेत्, मृत्तिकाकलशयोरिव जीवेन सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावादिति ॥७९॥ एवं पुद्गलद्रव्यमपि जीवेन सह न परिणमतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ यद्यपि जीवपुद्गलपरिणामयोरन्योन्यनिमित्तमात्रत्वमस्ति तथापि निश्चयनयेन तयोर्न कर्तृकर्मभावं इत्यावेदयति;—**जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति** यथा कुंभकारनिमित्तेन मृत्तिका घटरूपेण परिणमति तथा जीवसंबंधिमिथ्यात्वरागादिपरिणामहेतुं लब्ध्वा कर्मवर्गणायोग्यं पुद्गलद्रव्यं कर्मत्वेन परिणमति **पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि** यथैव च घटनिमित्तेन एवं घटं करोमीति कुंभकारः परिणमति तथैवोदयागतपुद्गलकर्महेतुं कृत्वा जीवोपि निर्विकारचिच्चमत्कारपरिणतिमलभमानः सन् मिथ्यात्वरागादिविभावेन परिणमतीति । अथ— **णवि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो** यद्यपि परस्परनिमित्तेन परिणमति तथापि निश्चयनयेन जीवो

भावार्थ—भेदज्ञान होनेके वाद पुद्गल और जीवके कर्तृकर्मभावकी बुद्धि नहीं रहती क्योंकि जवतक भेदज्ञान नहीं होता तभीतक अज्ञानसे कर्तृकर्मभावकी बुद्धि है ॥७९॥

आगे कहते हैं कि जीवके परिणाममे और पुद्गलके परिणाममें परस्पर निमित्त मात्रपना है तौभी उन दोनोंमें कर्तृकर्म तो हैही नहीं,—[**पुद्गलाः**] पुद्गल [**जीवपरिणामहेतुं**] जिसको जीवके परिणाम निमित्त है ऐसे [**कर्मत्वं**] कर्मपनेरूप [**परिणमंति**] परिणमते हैं [**तथैव**] उसीतरह [**जीवः अपि**] जीव भी

व्याप्यव्यापकभावाभावाज्जीवस्य पुद्गलपरिणामानां पुद्गलकर्मणोपि जीवपरिणामानां कर्तृकर्मत्वासिद्धौ निमित्तनैमित्तिकभावमात्रस्याप्रतिषिद्धत्वादितरेतरनिमित्तमात्रीभवनेनैव द्वयोरपि परिणामः । ततः कारणान्मृत्तिकया कलशस्येव स्वेन भावेन स्वस्य भावस्य करणाज्जीवः स्वभावस्य कर्त्ता कदाचित्स्यात् । मृत्तिकया वसनस्येव स्वेन भावेन परभावस्य कर्तुमशक्यात्वात्पुद्गलभावानां तु कर्ता न कदाचिदपि स्यादिति निश्चयः । ततःस्थितमेतज्जीवस्य

वर्णादिपुद्गलकर्मगुणान्न करोति । **कम्मं तहेव जीवगुणे** कर्म च तथैवानंतज्ञानादिजीवगुणान्न करोति **अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि** यद्यप्युपादानरूपेण न करोति तथाप्यन्योन्यनिमित्तेन घटकुंभकारयोरिव परिणामं जानीहि द्वयोरपि जीवपुद्गलयोरिति । अथ—**एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण** एतेन कारणेन पूर्वसूत्रद्वयव्याख्यानरूपेण तु निर्मलात्मानुभूतिलक्षणपरिणामेन शुद्धोपादानकारणभूतेनाव्याबाधानंतसुखादिशुद्धभावानां कर्ता । तद्विलक्षणेनाशुद्धोपादानकारणभूतेन रागाद्यशुद्धभावानां कर्ता भवत्यात्मा । कथं । यथा मृत्तिकाकलशस्येति **पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं** पुद्गलकर्मकृतानां न तु कर्ता सर्वभावानां ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मपर्यायाणा-

---

[पुद्गलकर्मनिमित्तं] जिसको पुद्गलकर्मनिमित्त है ऐसे कर्मपनेरूप **[परिणमति]** परिणमता है । **[जीवः]** जीव **[कर्मगुणान्]** कर्मके गुणोंको **[नापि]** नहीं **[करोति]** करता **[तथैव]** उसीतरह **[कर्म]** कर्म **[जीवगुणान्]** जीवके गुणोंको नहीं करता । **[तु]** किंतु **[द्वयोरपि]** इन दोनोंके **[अन्योन्यनिमित्तेन]** परस्पर निमित्तमात्रसे **[परिणामं]** परिणाम **[जानीहि]** जानो **[एतेन कारणेन तु]** इसी कारणसे **[स्वकेन भावेन]** अपने भावोंकर **[आत्मा]** आत्मा **[कर्ता]** कर्ता कहा जाता है **[तु]** परंतु **[पुद्गलकर्मकृतानां]** पुद्गलकर्म कर किये गये **[सर्वभावानां]** सब भावोंका **[कर्ता न]** कर्ता नहीं है ॥ **टीका**—जिस कारण जीवपरिणामको निमित्तमात्रकर पुद्गल कर्मभावसे परिणमते हैं और पुद्गलकर्मको निमित्तमात्रकर जीव भी परिणमता है । ऐसे जीवके परिणामका तथा पुद्गलके परिणामका परस्पर हेतुपनेका स्थापन होनेपर भी जीव और पुद्गलके परस्पर व्याप्यव्यापक भावके अभावसे जीवके तो पुद्गलपरिणामोंका और पुद्गलकर्मके जीवके परिणामोंके कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि होनेपर निमित्तनैमित्तिकभावमात्रका निषेध नहीं है क्योंकि परस्पर निमित्तमात्र होनेकर ही दोनोंका परिणाम है इस कारण मृत्तिकाके कलशकी तरह अपने भावकर अपने भावके करनेसे जीव अपने भावका कर्ता सदाकाल होता है । तथा मृत्तिका जैसे कपड़ेकी कर्ता नहीं है वैसे अपने भावकर परके भावोंके करनेके असमर्थपनेसे पुद्गलके भावोंका तो कर्ता कभी नहीं है ऐसा निश्चय है ॥ **भावार्थ**—जीव और पुद्गलपरिणामोंका परस्परनिमित्तमात्रपना है तौभी

स्वपरिणामैरेव सह कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्च ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

णिच्छयणयस्य एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८३ ॥

निश्चयनयस्यैवमात्मात्मानमेव हि करोति ।
वेदयते पुनस्तं चैव जानीहि आत्मा त्वात्मानं ॥ ८३ ॥

यथोत्तरंगनिस्तरंगावस्थयोः समीरसंचरणासंचरणनिमित्तयोरपि समीरपारावारयोर्व्याप्यव्यापकभावाभावात्कर्तृकर्मत्वासिद्धौ पारावार एव स्वयमंतर्व्यापको भूत्वादिमध्यांतेषूत्तरंगनिस्तरंगावस्थे व्याप्योत्तरंगं निस्तरंगं त्वात्मानं कुर्वन्नात्मानमेकमेव कुर्वन् प्रतिभाति न पुनरन्यत् । यथा स एव च भाव्यभावकभावाभावात्परभावस्य परेणानुभवितुमशक्यत्वादुत्तरंगं निस्तरंगं त्वात्मानमनुभवन्नात्मानमेकमेवानुभवन् प्रतिभाति न पुनरन्यत् । तथा सं-

---

मिति । एवं जीवपुद्गलपरस्परनिमित्तकारणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ अथ तत एतदायाति—जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह निश्चयनयेन कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्च भवति;—**णिच्छयणयस्य एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि** यथा यद्यपि समीरो निमित्तं भवति तथापि निश्चयनयेन पारावार एव कल्लोलान् करोति परिणमति च । एवं यद्यपि द्रव्यकर्मोदयसद्भावासद्भावात् शुद्धाशुद्धभावयोर्निमित्तं भवति तथापि निश्चयेन निर्विकारपरमस्वसंवेदनज्ञानपरिणतः केवलज्ञानादिशुद्धभावान् तथैवाशुद्धपरिणतस्तु सांसारिक-

---

परस्पर कर्तृकर्मभाव नहीं है । परके निमित्तसे जो अपने भाव हुए थे उनका कर्ता तो अज्ञानदशामें कदाचित् कह भी सकते हैं लेकिन परभावका कर्ता कभी नहीं होसकता ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

आगे कहते हैं कि इस हेतुसे यह सिद्ध हुआ कि जीवका अपने परिणामोंके ही साथ कर्तृकर्मभाव और भोक्तृभोग्य भाव है,—[**निश्चयनयस्य**] निश्चयनयका [**एवं**] यह मत है कि [**आत्मा**] आत्मा [**आत्मानं एव हि**] अपनेको ही [**करोति**] करता है [**तु पुनः**] फिर [**आत्मा**] वह आत्मा [**तं चैव आत्मानं**] अपनेको ही [**वेदयते**] भोगता है ऐसा हे शिष्य तू [**जानीहि**] जान ॥ **टीका**—वहां प्रथम दृष्टांत—जैसे पवनका चलना और न चलना जिनको निमित्त है ऐसी समुद्रकी तरंगोंका उठना और विलय होनारूप दो अवस्था उनके पवन और समुद्रके व्याप्य व्यापक भावके अभावसे कर्ता कर्मपनेकी असिद्धि होनेपर समुद्र ही आप उन अवस्थाओंमें अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंतमें उन अवस्थाओंमें व्यापकर उत्तरंगनिस्तरंगरूप अपनेको एकको ही करता हुआ प्रतिभासता है किसी दूसरेको नहीं करता है । उसी तरह वही समुद्र उस पवन और समुद्रके भाव्यभावक भावके अभावसे परभावको पर कर अनुभव करनेके असमर्थपनेसे उत्तरंगनिस्तरंगस्वरूप अपनेको ही अनुभवता हुआ

सारनिःसंसारावस्थयोः पुद्गलकर्मविपाकसंभवासंभवनिमित्तयोरपि पुद्गलकर्मजीवयोर्व्याप्य-व्यापकभावाभावात्कर्तृकर्मत्वासिद्धौ जीव एव स्वयमंतर्व्यापको भूत्वादिमध्यांतेषु ससंसार-निःसंसारावस्थे व्याप्य ससंसारं निःसंसारं वात्मानं कुर्वन्नात्मानमेकमेव कुर्वन् प्रतिभातु मा पुनरन्यत् । तथायमेव च भाव्यभावकभावाभावात् परभावस्य परेणानुभवितुमशक्यत्वा-त्ससंसारं निःसंसारं वात्मानमनुभवन्नात्मानमेकमेवानुभवन्प्रतिभातु मा पुनरन्यत् ॥ ८३ ॥

अथ व्यवहारं दर्शयति;—

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं ।
तं चेवय वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥ ८४ ॥

व्यवहारस्य त्वात्मा पुद्गलकर्म करोति नैकविधं ।
तच्चैव पुनर्वेदयते पुद्गलकर्मानेकविधं ॥ ८४ ॥

यथांतर्व्याप्यव्यापकभावेन मृत्तिकया कलशे क्रियमाणे भाव्यभावकभावेन मृत्तिकयैवा-

---

सुखदुःखाद्यशुद्धभावाश्चोपादानरूपेणात्मैव करोति । अत्र परिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं ज्ञात-व्यमिति। न केवल करोति **वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं** वेदयत्य-नुभवति भुंक्ते परिणमति पुनश्च स्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखरूपेण शुद्धोपादानेन तदेव शुद्धात्मान-मशुद्धोपादानेनाशुद्धात्मानं च । स कः कर्ता? आत्मेति जानीहि । एवं निश्चयकर्तृत्वभोक्तृत्व-व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥ ८३ ॥ अथ लोकव्यवहारं दर्शयति;—**ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि अणेयविहं** यथा लोके यद्यपि मृत्पिंड उपादानकारण तथापि कुंभकारो

प्रतिभासता है अन्य किसको नहीं अनुभवता । उसी तरह दार्ष्टांत है—पुद्गलकर्मके उदयका संभव असंभव जिसको निमित्त है ऐसी जो संसार और निःसंसार दो अवस्था उनके पुद्गलकर्म और जीवके व्याप्यव्यापकपनेके अभावसे कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि है । क्योंकि जीव आप अंतर्व्यापक होके आदि मध्य अंतमें ससंसार निःसंसार अवस्थामें व्यापकर ससंसार निःसंसाररूप आत्माको करता हुआ अपनेको कर्ता प्रति-भासै अन्यको करता नहीं प्रतिभासै । उसी तरह यही जीव भाव्यभावकभावके अभावसे परभावके परकर अनुभव करनेका असमर्थपना है इसलिये ससंसार निःसंसार-रूप आत्माको ही अनुभवता आपको ही अनुभवन करता प्रतिभासो अन्यको करता नहीं प्रतिभासो ॥ **भावार्थ**—आत्माकी ससंसार निःसंसार अवस्था परद्रव्य पुद्गलकर्मके निमित्तसे है वहां उन अवस्थारूप आप ही परिणमता है इसलिये अपना ही कर्ता भोक्ता है निमित्तमात्र पुद्गलकर्म है उसका कर्ता भोक्ता नहीं है ॥ ८३ ॥

आगे व्यवहारको दिखलाते है,—[**व्यवहारस्य तु**] व्यवहार नयका यह मत है कि [**आत्मा**] आत्मा [**नैकविधं**] अनेक प्रकार [**पुद्गलकर्म**] पुद्गलकर्मोंको [**करोति**] करता है [**पुनः**] और [**तदेव**] उसी [**अनेकविधं**] अनेक

नुभूयमाने च बहिर्व्याप्यव्यापकभावेन कलशसंभवानुकूलं व्यापारं कुर्वाणः कलशकृततोयोपयोगजां तृप्तिं भाव्यभावकभावेनानुभवंश्च कुलालः कलशं करोत्यनुभवति चेति लोकानामनादिरूढोस्ति तावद्व्यवहारः, तथांतर्व्याप्यव्यापकभावेन पुद्गलद्रव्येण कर्मणि क्रियमाणे भाव्यभावकभावेन पुद्गलद्रव्येणैवानुभूयमाने च बहिर्व्याप्यव्यापकभावेनाज्ञानात्पुद्गलकर्मसंभवानुकूलं परिणामं कुर्वाणः पुद्गलकर्मविपाकसंपादितविषयसन्निधिप्रधावितां सुखदुःखपरिणतिं भाव्यभावकभावेनानुभवंश्च जीवः पुद्गलकर्म करोत्यनुभवति चेत्यज्ञानिनामासंसारप्रसिद्धोस्ति तावद्व्यवहारः ॥ ८४ ॥

घटं करोति तत्फलं च जलधारणमूल्यादिकं भुक्त इति लोकानामनादिरूढोस्ति व्यवहारः । तथा यद्यपि कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यमुपादानकारणभूतं तथापि व्यवहारनयस्याभिप्रायेणात्मा पुद्गलकर्मानेकविधं मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं करोति **तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं** तथैव च तमेवोदयागतं पुद्गलकर्मानेकविधं इष्टानिष्टपंचेन्द्रियविषयरूपेण वेदयति अनुभवति इत्यज्ञानिना निर्विषयशुद्धात्मोपलभसंजातसुखामृतरसास्वादरहितानामनादिरूढोस्ति व्यवहारः ॥८४॥

प्रकार [**पुद्गलकर्म**] पुद्गलकर्मको [**वेदयते**] भोगता है ॥ **टीका**—वहां पहले दृष्टांत कहते हैं—जैसे मट्टी घड़ेको करती है और भोगती है वह अंतर्व्याप्यव्यापकभावकर करती है तथा भाव्यभावकभावकर भोगती है तौभी बाह्य व्याप्यव्यापकभावकर कलश होनेमें संभव उसके अनुकूल व्यापारको अपने हस्तादिक कर करता तथा कलशकर किये जलके उपयोगसे हुए तृप्तिभावको भाव्यभावकभावकर अनुभवकरता (भोगता) जो कुम्हार उसको लोक कहते हैं कि इस कलशको कुम्हार करता है तथा भोगता है । ऐसा लोकोंका अनादिसे प्रसिद्ध हुआ व्यवहार प्रवर्त रहा है । उसी तरह दार्ष्टांत है—पुद्गलकर्मको अंतर्व्याप्यव्यापकभावकर पुद्गलद्रव्य करता है और भाव्यभावकभावकर पुद्गलद्रव्य ही अनुभवता (भोगता) है तौभी बाह्य व्याप्यव्यापकभावकर अज्ञानसे पुद्गलकर्मके होनेके अनुकूल अपने रागादि परिणामको करता और पुद्गलकर्मके उदयकर उत्पन्न कीगई जो विषयोंकी समीपता उससे दौड़ी जो अपनी सुखदुःखरूप परिणति उसको भाव्यभावकभावकर अनुभवता (भोगता) जो जीव वह पुद्गलकर्मको करता है और भोगता है । ऐसे अज्ञानी लोकोंका अनादि संसारसे लेकर प्रसिद्ध हुआ व्यवहार प्रवर्तता है ॥ **भावार्थ**—पुद्गलकर्मको परमार्थसे पुद्गलद्रव्य ही करता है और पुद्गलकर्मके होनेके अनुकूल अपने रागादिपरिणामोंको जीव करता है उसके निमित्तनैमित्तिक भावको देखकर अज्ञानीके यह भ्रम है कि जीव ही पुद्गलकर्मको करता है । सो अनादि अज्ञानसे प्रसिद्ध व्यवहार है । जबतक जीव पुद्गलका भेदज्ञान नहीं है तबतक दोनोंकी प्रवृत्ति एक सरीखी दीखती है इसकारण जबतक भेदज्ञान न हो तबतक दीखती है वैसा कहता है । श्रीगुरु भेदज्ञान कराके परमार्थ जीवका स्वरूप दिखलाके अज्ञानीके प्रतिभासको व्यवहार कहते हैं ॥८४॥

अथैनं दूषयति;—

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा ।
दो किरियावादित्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ८५ ॥

यदि पुद्गलकर्मेदं करोति तच्चैव वेदयते आत्मा ।
द्विक्रियाव्यतिरिक्तः प्रसजति स जिनावमत ॥ ८५ ॥

इह खलु क्रिया हि तावदखिलापि परिणामलक्षणतया न नाम परिणामतोस्ति भिन्ना, परिणामोपि परिणामपरिणामिनोरभिन्नवस्तुत्वात्परिणामिनो न भिन्नस्ततो या काचन क्रिया किल सकलापि सा क्रियावतो न भिन्नेति क्रियाकर्त्रोरव्यतिरिक्ततायां वस्तुस्थित्या प्रतपत्यां यथा व्याप्यव्यापकभावेन स्वपरिणामं करोति, भाव्यभावकभावेन तमेवानुभवति च

एवं व्यवहारेण सुखदुःखकर्तृत्वभोक्तृत्वकथनमुख्यतया गाथा गता । इति ज्ञानिजीवस्य विशेषव्याख्यानरूपेणैकादशगाथाभिर्द्वितीयातराधिकारो व्याख्यातः । अतः परं पञ्चविंशतिगाथापर्यंतं द्विक्रियावादिनिराकरणरूपेण व्याख्यान करोति । तत्र चेतनाचेतनयोरेकोपादनकर्तृत्वं द्विक्रियावादित्वमुच्यते तस्य संक्षेपव्याख्यानरूपेण **जदिपुग्गलकम्ममिणं** इत्यादि गाथाद्वय भवति । तद्विवरणद्वादशगाथासु मध्ये **पुग्गलकम्मणिमित्तं** इत्यादिगाथाक्रमेण प्रथमगाथाषट्कं स्वतत्रं । तदनंतरमज्ञानिज्ञानिजीवकर्तृत्वाकर्तृत्वमुख्यतया **परमप्पाणं कुव्वदि** इत्यादिद्वितीयषट्कं । अतः परं तस्यैव द्विक्रियावादिनः पुनरपि विशेषव्याख्यानार्थमुपसंहाररूपेणैकादशगाथा भवंति । तत्रैकादशगाथासु मध्ये व्यवहारनयमुख्यत्वेन

आगे इस व्यवहारको दूषण देते हैं,—[**यदि**] जो [**आत्मा**] आत्मा [**इदं**] इस [**पुद्गलकर्म**] पुद्गलकर्मको [**करोति**] करे [**च**] और [**तत् एव**] उसीको [**वेदयते**] भोगे तो [**सः**] वह [**द्विक्रियाव्यतिरिक्तः**] आत्मा दो क्रियासे अभिन्न [**प्रसजति**] ठहरे ऐसा प्रसंग आता है सो यह [**जिनावमतं**] जिनदेवका मत नहीं है ॥ **टीका**—इस लोकमे जो क्रिया है वह पहले तो सभी परिणामस्वरूप है इसकारण परिणाम ही है कुछ भिन्न वस्तु नहीं है और परिणाम तथा परिणामी द्रव्य दोनों अभिन्न वस्तु हैं जुदे जुदे वस्तु नहीं हैं इसलिये परिणाम परिणामीसे जुदा नहीं है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जो कुछ क्रिया है वह क्रियावान् द्रव्यसे जुदी नहीं है । इस तरह क्रियाका और क्रियावानका अभेदपना है । ऐसी वस्तुकी मर्यादा होनेपर जैसा जीव व्याप्यव्यापक भावकर अपने परिणामको करता है और भाव्य भावक भावकर उसी अपने परिणामको अनुभवता है भोगता है उसीतरह व्याप्य व्यापक भावकर पुद्गल कर्मको भी करे तथा भाव्य भावक भावकर उसीको अनुभवे भोगे तो अपनी और परकी मिली दो क्रियाओंका अभेद सिद्ध हुआ । ऐसा होनेपर अपने और परके भेदका अभाव हुआ । इसतरह अनेक द्रव्यस्वरूप एक आत्माको

जीवस्तथा व्याप्यव्यापकभावेन पुद्गलकर्मापि यदि कुर्यात् भाव्यभावकभावेन तदेवानुभवेच्च ततो यं स्वपरसमवेतक्रियाद्वयाव्यतिरिक्ततायां प्रसजंत्यां स्वपरयोः परस्परविभागप्रत्यस्तमनादनेकात्मकमेकमात्मानमनुभवन्मिथ्यादृष्टितया सर्वज्ञावमतः स्यात् ॥ ८५ ॥

कुतो द्विक्रियानुभावी मिथ्यादृष्टिरिति चेत्;—

जह्मा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति ॥ ८६ ॥

यस्मात्त्वात्मभावं पुद्गलभावं च द्वावपि कुर्वंति ।
तेन तु मिथ्यादृष्टयो द्विक्रियावादिनो भवंति ॥ ८६ ॥

यतः किलात्मपरिणामं पुद्गलपरिणामं च कुर्वंतमात्मानं मन्यंते द्विक्रियावादिनस्ततस्ते

ववहारस्स दु इत्यादि गाथात्रय । तदनतरं निश्चयनयमुख्यतया **जो पुग्गलदव्वाणं** इत्यादिसूत्रचतुष्टयं । ततश्च द्रव्यकर्मणामुपचारकर्तृत्वमुख्यत्वेन **जीवंहि हेदुभूदे** इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति समुदायेन पंचविंशतिगाथाभिस्तृतीयस्थले समुदायपातनिका । तद्यथा—अथेद पूर्वोक्त कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वनयविभागव्याख्यानं कर्मतापन्नमनेकातेन सम्मतमप्येकातनयेन मन्यते । किं मन्यते भावकर्मवन्निश्चयेन द्रव्यकर्मापि करोतीति चेतनाचेतनकार्ययोरेकोपादानकर्तृत्वलक्षणं द्विक्रियावादित्वं स्यात् । तान् द्विक्रियावादिनो दूषयति;—**जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा** यदि चेत्पुद्गलकर्मोदयमुपादनरूपेण करोति तदेव च पुनरुपादानरूपेण वेदयत्यनुभवत्यात्मा **दोकिरियावादित्तं पसजदि** तदा चेतनाचेतनक्रियाद्वयस्योपादानकर्तृत्वरूपेण द्विक्रियावादित्वं प्रसजति प्राप्नोति । अथवा **दो किरियाविदिरित्तो पसजदि सो** तत्र पाठातरे द्वाम्या चेतनाचेतनक्रियाभ्यामव्यतिरिक्तोऽभिन्नः प्रसजति प्राप्नोति स पुरुषः । **सम्मं जिणावमदं** तच्च व्याख्यान जिनाना सम्यगसमतं । यश्चेदं व्याख्यान मन्यते स निजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूपं निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रलक्षणं शुद्धोपादानकारणोत्पन्नं निश्चयसम्यक्त्वमलभमानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ॥ ८५ ॥ अथ कुतो द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टिर्भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरं प्रयच्छतस्तमेवार्थं प्रकारातरेण दृढयति,—**जह्मा दु अत्तभावं पुद्गलभावं च दोवि कुव्वंति** यस्मादात्मभावं चिद्रूपं पुद्गलभावं

अनुभव करता मिथ्यादृष्टि होता है । परंतु ऐसा वस्तुस्वरूप जिनदेवने कहा नहीं है इसलिये जिनदेवके मतके बाहर है ॥ **भावार्थ**—दो द्रव्योंकी क्रिया भिन्न ही हैं जड़की क्रिया चेतन नहीं करता चेतनकी क्रिया जड़ नहीं करता । जो पुरुष दो क्रियाओंका कर्ता एक द्रव्य मानता है वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि दो द्रव्योंकी क्रिया एक द्रव्यके मानना यह जिनका मत नहीं है ॥ ८५ ॥

आगे फिर पूछते हैं कि एक पुरुष दो क्रियाओंको अनुभव करनेवाला मिथ्यादृष्टि कैसे होसकता है उसका समाधान कहते है,—**[यस्मात् तु]** जिसकारण **[आ-**

मिथ्यादृष्टय एवेति सिद्धांतः । भावैकद्रव्येण द्रव्यद्वयपरिणामः क्रियमाणः प्रतिभातु । यथा किल कुलालः कलशसंभवानुकूलमात्मव्यापारपरिणाममात्मनोऽव्यतिरिक्तमात्मनोव्यक्तिरिक्ततया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभाति न पुनः कलशकारणाहंकारनिर्भरोपि स्वव्यापारानुरूपं मृत्तिकायाः कलशपरिणामं मृत्तिकायाः अव्यतिरिक्तमृत्तिकायाः अव्यतिरिक्ततया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभाति । तथात्मापि पुद्गलकर्मपरिणामानुकूलमज्ञानादात्मपरिणाममात्मनोऽव्यतिरिक्तमात्मनो व्यतिरिक्ततया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभातु मा पुनः पुद्गलपरिणामकरणाहंकारनिर्भरोपि

चाचेतनं जडस्वरूपं द्वयमप्युपादानरूपेण कुर्वंति **तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति** ततस्तेन कारणेन चेतनाचेतनक्रियाद्वयवादिनः पुरुषाः मिथ्यादृष्टयो भवंतीति । तथाहि—यथा कुंभकारः स्वकीयपरिणाममुपादानरूपेण करोति तथा घटमपि यद्युपादानरूपेण करोति तदा कुंभकारस्याचेतनत्वं घटरूपत्वं प्राप्नोति । घटस्य वा चेतनकुंभकाररूपत्व प्राप्नोतीति । तथा जीवोपि यद्युपादानरूपेण पुद्गलद्रव्यकर्म करोति तदा जीवस्याचेतन-

---

त्मभावं] आत्माके भावको [**च**] और [**पुद्गलभावं**] पुद्गलके भावको [**द्वौ अपि**] दोनोंहीको आत्मा [**कुर्वंति**] करता है ऐसा कहते हैं [**तेन तु**] इसी कारण [**द्विक्रियावादिनो**] दो क्रियाओंको एकके ही कहनेवाले [**मिथ्यादृष्टयः**] मिथ्यादृष्टि ही [**भवंति**] है । **टीका**—निश्चयसे आत्माके परिणामका और पुद्गलके परिणामका करता आत्माको जो मानते है दोनों क्रियाये एकके ही कहनेवाले हैं वे मिथ्यादृष्टि ही है ऐसा सिद्धांत है । सो एकद्रव्यकर दो परिणाम किये गये मत प्रतिभासो । जैसे कुंभार घड़ेके होनेके अनुकूल अपना व्यापाररूप हस्तादिक क्रिया तथा इच्छारूप परिणाम अपनेसे अभिन्न तथा अपनेसे अभिन्न परिणतिमात्र क्रियाकर किये हुएको करता हुआ प्रतिभासता है और घटवनानेके अहंकार सहित है तौभी मृत्तिकाका मृत्तिकाके व्यापारके अनुकूल घटपरिणाम मट्टीसे अभेदरूप तथा मट्टीसे अभिन्न मृत्तिका परिणतिमात्र क्रियाकर किये हुएको करता नहीं प्रतिभासता । उसीतरह आत्मा भी अज्ञानसे पुद्गल कर्मके परिणामके अनुकूल अपने परिणाम अपनेसे अभिन्नको, और अपनेसे अभिन्न अपनी परिणतिमात्र क्रियाकर किये हुएको करता हुआ प्रतिभासो । परंतु पुद्गलके परिणामके करनेके अहंकारकर सहित होनेपर भी पुद्गलके परिणामके अनुकूल पुद्गलसे अभिन्न जो पुद्गलका परिणाम तथा पुद्गलसे अभिन्न जो पुद्गलकी परिणतिमात्रक्रिया उसकर किये हुएको करता हुआ मत (नहीं) प्रतिभासो ॥ **भावार्थ**—आत्मा अपने ही परिणामको करता हुआ प्रतिभासित हो पुद्गलके परिणामको करता हुआ नहीं प्रतिभासो इसी कारण आत्मा और पुद्गल इन दोनोंकी क्रियायें एक आत्माकी ही माननेवालेको मिथ्या दृष्टि कहा है ।

स्वपरिणामानुरूपं पुद्गलस्य परिणामं पुद्गलादव्यतिरिक्तं पुद्गलादव्यतिरिक्तया परिणतिमात्रया क्रियया क्रियमाणं कुर्वाणः प्रतिभातु। "यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म। या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया॥ ५१॥ एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य। एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः॥ ५२॥ नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत। उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा॥५३॥ नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य। नैकस्य च

पुद्गलद्रव्यत्वं प्राप्नोति। पुद्गलकर्मणो वा चिद्रूप जीवत्व प्राप्नोति। किं च। शुभाशुभं कर्म कुर्वेहमिति महाहंकाररूपं तमो मिथ्याज्ञानिना न नश्यति। तर्हि केषां नश्यतीति चेत्, विषयसुखानुभवानदवर्जिते वीतरागस्वसवेदनवेद्ये भूतार्थनयेनैकत्वव्यवस्थापिते चिदानदैकस्वभावे शुद्धपरमात्मद्रव्ये स्थितानामेव समस्तशुभाशुभपरभावशून्येन निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन शुद्धोपयोगभा-

---

यदि जड और चेतनकी एक क्रिया हो जाय तो सर्व द्रव्य पलटनेसे सबका लोप हो जाय यह बड़ा भारी दोष हो॥ अब इसी अर्थके समर्थनका कलशरूप काव्य कहते हैं। **यःपरिणमति** इत्यादि। **अर्थ**—जो परिणमता है वह कर्ता है और जो परिणमा उसका परिणाम है वह कर्म है तथा जो परिणति है वह क्रिया है। ये तीनों ही वस्तुपनेसे भिन्न नहीं हैं। **भावार्थ**—द्रव्यदृष्टिसे परिणाम और परिणामीमें अभेद है तथा पर्यायदृष्टिकर भेद है। वहा भेद दृष्टिकर तो कर्ता कर्म क्रिया ये तीन कहे गये हैं और अभेद दृष्टिकर वास्तवमें यह कहा गया है कि कर्ता कर्म क्रिया ये तीनों ही एक द्रव्यकी अवस्थायें हैं प्रदेशभेदरूप जुदे वस्तु नहीं हैं॥ फिर भी कहते हैं—**एकः** इत्यादि। **अर्थ**—वस्तु अकेली ही सदा परिणमती है एकके ही सदा परिणाम होते है अर्थात् एक अवस्थासे अन्य अवस्था होती है। तथा एककी ही परिणतिक्रिया होती है। अनेकरूप हुई तौभी एक ही वस्तु है भेद नहीं है। **भावार्थ**—एक वस्तुके अनेक पर्याय होते हैं उनको परिणाम भी कहते हैं अवस्था भी कहते हैं। वे संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिककर जुदे २ प्रतिभासरूप हैं तौभी एक वस्तु ही हैं जुदे नहीं हैं ऐसा भेदाभेद स्वरूप ही वस्तुका स्वभाव है॥ फिर कहते हैं—**नोभौ** इत्यादि। **अर्थ**—दो द्रव्य एक होके नहीं परिणमते और दो द्रव्यका एक परिणाम भी नहीं होता तथा दो द्रव्यकी एक परिणति क्रिया भी नहीं होती। क्योंकि जो अनेक द्रव्य हैं वे अनेक ही हैं एक नहीं होते॥ **भावार्थ**—दो वस्तु हैं वे सर्वथा भिन्न ही हैं प्रदेश भेदरूप ही है दोनों एकरूप होकर नहीं परिणमती एक परिणामको भी नहीं उपजातीं और एक क्रिया भी उनकी नहीं होती ऐसा नियम है। जो दो द्रव्य एकरूप हो परिणमैं तो सब द्रव्योंका लोप हो जाय॥ फिर इसी अर्थको दृढ करते है—**नैकस्य** इत्यादि। **अर्थ**—एक द्रव्यके दो कर्ता नहीं होते, एक द्रव्यके दो कर्म नहीं होते और एक द्रव्यकी दो क्रियाये

क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥५४॥ आसंसारत एव धावति परं कुर्वेहमित्युच्चैः दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः । सद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत् तत्किं ज्ञानघनस्य बंधनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥ ५५ ॥ आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः । आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥ ५६ ॥" ॥ ८६ ॥

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोधादीया इमे भावा ॥ ८७ ॥

मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं जीवोऽजीवस्तथैवाज्ञानं ।
अविरतियोगो मोहः क्रोधाद्या इमे भावाः ॥ ८७ ॥

मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादयो हि भावाः ते तु प्रत्येकं मयूरमुकुरंदवज्जीवाजी-

---

वनावलेन सज्ञानिनामेव विलयं विनाशं गच्छति । तस्मिन्महाहंकारविकल्पजाले नष्टे सति पुनरपि बंधो न भवतीति ज्ञात्वा बहिर्द्रव्यविषये इदं करोमीदं न करोमीति दुराग्रहं त्यक्त्वा रागादिविकल्पजालशून्ये पूर्णकलशवच्चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थे स्वकीयपरमात्मनि निरंतरं भावना कर्त्तव्येति भावार्थः ॥ ८६ ॥ इति द्विक्रियावादिसंक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं ।

भी नहीं होतीं क्योंकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नहीं होता ॥ **भावार्थ**—निश्चयनयकर यह नियम है वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर कहा जानना ॥ अब कहते हैं कि आत्माके अनादिसे परद्रव्यके कर्ता कर्मपनेका अज्ञान है वह यदि परमार्थनयके ग्रहणकर एक वार भी विलय हो जाय तो फिर कभी नहीं आसकता—**आसंसारत** इत्यादि । **अर्थ**—इस जगतमें मोही अज्ञानी जीवोंका "यह मै परद्रव्यको करता हूं" ऐसा परद्रव्यके कर्तापनेका अहंकाररूप अज्ञानांधकार अनादि संसारसे लेकर चला आया है। जो कि अत्यंत दुर्निवार है दूर नहीं किया जासकता । सो आचार्य कहते हैं कि परमार्थ सत्यार्थ शुद्ध द्रव्यार्थिक अभेद नयके ग्रहण कर जो वह एकवार भी नाश हो जाय तो यह जीव ज्ञानघन है । यथार्थ ज्ञान हुए वाद ज्ञान कहां जासकता है कहीं भी नहीं जा सकता । जब ज्ञान नहीं जा सकता तब फिर कैसे अज्ञानसे बंध हो सकता है कभी नहीं हो सकता ॥ **भावार्थ**—यहां ऐसा तात्पर्य है कि अज्ञान तो अनादिका ही है परंतु दर्शन मोहका नाश कर एक वार यथार्थ ज्ञान होके क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाय तो फिर मिथ्यात्व नहीं आसके तब उस मिथ्यात्वका बंध भी न हो और मिथ्यात्व गये बाद संसारबंधन कैसे रह सकता है मोक्ष ही पाये, ऐसा जानना ॥ फिर भी विशेषतासे कहते हैं—**आत्म** इत्यादि । **अर्थ**—आत्मा तो अपने भावोंको ही करता है और परद्रव्य परके भावोंको करता है । क्योंकि अपने भाव तो अपने ही है तथा परभाव परके ही हैं यह नियम है ॥ ८६ ॥

आगे परद्रव्यका कर्ताकर्मपनेके माननेको अज्ञान कहा कि ऐसा माने वह मिथ्या-

वाभ्यां भाव्यमानत्वाज्जीवाजीवौ। तथाहि—यथा नीलकृष्णहरितपीतादयो भावाः स्वद्रव्यस्वभावत्वेन मयूरेण भाव्यमानाः मयूर एव। यथा च नीलहरितपीतादयो भावाः स्वच्छताविकारमात्रेण मुकुरंदेन भाव्यमाना मुकुरंद एव। तथा मिथ्यादर्शनमज्ञानमवि-

अथ तस्यैव विशेषव्याख्यानं करोति;—

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं॥

पुद्गलकर्मनिमित्तं यथात्मा करोति आत्मनः भावं। पुद्गलकर्मनिमित्तं तथा वेदयति आत्मनो भावं

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं उदयागत द्रव्यकर्मनिमित्तं कृत्वा यथात्मा निर्विकारस्वसंवित्तिपरिणामशून्यः सन्करोत्यात्मनः संबधिनं सुखदुःखादिभावं परिणामं **पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं** तथैवोदयागतद्रव्यकर्मनिमित्तं लब्ध्वा स्वशुद्धात्मभावनोत्थवास्तवसुखास्वादमवेदयन्सन् तमेव कर्मोदयजनितस्वकीयरागादिभावं वेदयत्यनुभवति। न च द्रव्यकर्मरूपपरभावमित्यभिप्रायः। अथ चिद्रूपानात्मभावानात्मा करोति तथैवाचिद्रूपान् द्रव्यकर्मादिपरभावान् परः पुद्गलः करोतीत्याख्याति;— **मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं** मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं जीवस्वभावमजीवस्वभावं च **तहेव अण्णाणं अविरदि जोगो मोहो कोधादिया इमे भावा** तथैव चाज्ञानमविरतिर्योगो मोहः क्रोधादयोऽमी भावाः पर्यायाः जीवरूपा अजीवरूपाश्च भवति

दृष्टि है वहांपर आशंका होती है कि यह मिथ्यात्वादि भाव क्या वस्तु है? यदि जीवके परिणाम कहे जांय तो पहले रागादि भावोंको पुद्गलके परिणाम कहे थे उस कथनसे यहां विरोध आता है। और जो पुद्गलके परिणाम कहे जांय तो जीवका कुछ प्रयोजन नहीं इसलिये फिर उसका फल जीव क्यों पावे? इस शंकाके दूर करनेको कहते हैं;— पहली गाथामें दो क्रियावादीको मिथ्यादृष्टि कहा था उसके संबंध करनेको पुनः शब्द है यही कहते हैं। [**पुनः**] जो [**मिथ्यात्वं**] मिथ्यात्व कहा गया था वह [**द्विविधं**] दो प्रकार है [**जीवं अजीवं**] एक जीवमिथ्यात्व एक अजीवमिथ्यात्व [**तथैव**] और उसीतरह [**अज्ञानं**] अज्ञान [**अविरतिः**] अविरति [**योगः**] योग [**मोहः**] मोह और [**क्रोधाद्याः**] क्रोधादि कषाय [**इमे भावाः**] ये सभी भाव जीव अजीवके भेदकर दो दो प्रकार हैं॥ **टीका**—मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति इत्यादिक जो भाव हैं वे प्रत्येक जुदे २ मयूर और दर्पणकी तरह जीव अजीवकर भावित हैं इसलिये जीव भी हैं और आजीव भी हैं। यही कहते हैं— जैसे मयूरके नीले काले हरे पीले आदि वर्णरूप भाव हैं वे मयूरके निजस्वभावकर भाये हुए मयूर ही हैं। तथा जैसे दर्पणमें उन वर्णोंके प्रतिबिंब दीखते हैं वे दर्पणकी स्वच्छता निर्मलताके विकारमात्रकर भाये हुए दर्पण ही है। मयूरकी और दर्पणकी अत्यंत भिन्नता है। उसीतरह मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति इत्यादिक भाव हैं वे अपने अजीवके

रतिरित्यादयो भावाः स्वद्रव्यस्वभावत्वेनाजीवेन भाव्यमाना अजीव एव । तथैव च मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादयो भावाश्चैतन्यविकारमात्रेण जीवेन भाव्यमाना जीव एव ॥ ८७ ॥

काविह जीवाजीवाविति चेत् ;—

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं ।
उवओगो अण्णाणं अविरइ मिच्छं च जीवो दु ॥ ८८ ॥

पुद्गलकर्म मिथ्यात्वं योगोऽविरतिरज्ञानमजीवः ।
उपयोगोऽज्ञानमविरतिर्मिथ्यात्वं च जीवस्तु ॥ ८८ ॥

यः खलु मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादिरजीवस्तदमूर्तांच्चैतन्यपरिणामादन्यत् मूर्तं

मयूरसुकुरंदवत् । तद्यथा—यथा मयूरेण भाव्यमाना अनुभूयमाननीलपीताद्याहारविशेषा मयूरशरीराकारपरिणता मयूर एव चेतना एव । तथा निर्मलात्मानुभूतिच्युतजीवेन भाव्यमाना अनुभूयमानाः सुखदुःखादिविकल्पा जीव एवाशुद्धनिश्चयेन चेतना एव । यथा च मुकुरंदेन स्वच्छतारूपेण भाव्यमानाः प्रकाशमानमुखप्रतिबिंबादिविकारा मुकुरंद एव अचेतना एव तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्येणोपादानभूतेन क्रियामाणा ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायाः पुद्गल एव अचेतना एवेति ॥ ८७ ॥ अथ कतिविधौ जीवाजीवाविति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह;— **पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं** पुद्गलकर्मरूपं मिथ्यात्वं योगोऽविरतिरज्ञानमित्यजीवः । **उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छत्त जीवो दु**

द्रव्यस्वभावकर अजीवपनेकर भाये हुए अजीव ही हैं तथा वे मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति आदि भाव चैतन्यके विकारमात्रकर जीवकर भाये हुए जीव ही हैं ॥ **भावार्थ—** कर्मके निमित्तसे जीव विभावरूप परिणमते हैं वे जो चेतनके विकार हैं वे जीव ही है और जो पुद्गल मिथ्यात्वादिकर्मरूप परिणमते हैं वे पुद्गलके परमाणू हैं तथा उनका विपाक उदयरूप हो स्वादरूप होते हैं वे मिथ्यात्वादि अजीव हैं । ऐसे मिथ्यात्वादि भाव जीव अजीवके भेदसे दो प्रकार हैं । यहांपर ऐसा जानना कि जो मिथ्यात्वादि कर्मकी प्रकृतियां हैं वे पुद्गल द्रव्यके परमाणू हैं उनका उदय हो तब उपयोगस्वरूप जीवके उपयोगकी स्वच्छताके कारण जिसके उदयका स्वाद आये तब उसीके आकार उपयोग हो जाता है तव अज्ञानसे उसका भेदज्ञान नहीं होता उस स्वादको ही अपना भाव जानता है । सो इसका भेदज्ञान ऐसा हो कि जीवभावको जीव जानें अजीवभावको अजीव जानें तभी मिथ्यात्वका अभाव होके सम्यग्ज्ञान होता है ॥ ८७ ॥

आगे पूछते हैं कि ये मिथ्यात्वादिक जीव अजीव कहे हैं वे कौन हैं उसका उत्तर कहते हैं—[**मिथ्यात्वं**] जो मिथ्यात्व [**योगः**] योग [**अविरतिः**] अविरति [**अज्ञानं**] अज्ञान [**अजीवः**] ये अजीव हैं वे तो [**पुद्गलकर्म**] पुद्गलकर्म हैं [**च**] और जो [**अज्ञानं**] अज्ञान [**अविरतिः**] अविरति [**मिथ्यात्वं**]

पुद्गलकर्म, यस्तु मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरित्यादि जीवः स मूर्तात्पुद्गलकर्मणोऽन्यश्चैतन्यपरिणामस्य विकारः ॥ ८८ ॥

मिथ्यादर्शनादिचैतन्यपरिणामस्य विकारः कुत इति चेत् ;—

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णायव्वो ॥ ८९ ॥

उपयोगस्यानादयः परिणामास्त्रयो मोहयुक्तस्य ।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिभावश्च ज्ञातव्यः ॥ ८९ ॥

उपयोगस्य हि स्वरसत एव समस्तवस्तुस्वभावभूतस्वरूपपरिणामसमर्थत्वे सत्यनादिवस्त्वंतरभूतमोहयुक्तत्वान्मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरिति त्रिविधः परिणामविकारः। स तु तस्य स्फटि-

---

उपयोगरूपो भावरूपः शुद्धात्मादितत्त्वभावविषये विपरीतपरिच्छित्तिविकारपरिणामो जीवस्याज्ञानं निर्विकारस्वसंवित्तिविपरीतव्रतपरिणामविकारोऽविरतिः । विपरीताभिनिवेशोपयोगविकाररूपं शुद्धजीवादिपदार्थविषये विपरीतश्रद्धानं मिथ्यात्वमिति जीवः । जीव इति कोर्थः । जीवरूपा भावप्रत्यया इति ॥ ८८ ॥ अथ शुद्धचैतन्यस्वभावजीवस्य कथं मिथ्यादर्शनादिविकारो जात इति चेत् ;—**उवओगस्य अणाई परिणामा तिण्णि** उपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा तस्य संबंधित्वेनादिसंतानापेक्षया त्रयः परिणामा ज्ञातव्याः । कथंभूतस्य तस्य । **मोहजुत्तस्स** मोहयुक्तस्य । के ते परिणामाः । **मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो** मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिभावश्चेति ज्ञातव्य इति । तथाहि—यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन

मिथ्यात्व [**तु जीवः**] ये जीव हैं वे [**उपयोगः**] उपयोग हैं । **टीका**—जो निश्चयकर मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति इत्यादि अजीव हैं अमूर्तीक चैतन्यके परिणामसे अन्य हैं मूर्तीक हैं वे तो पुद्गलकर्म हैं और जो मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति इत्यादि जीव हैं वे मूर्तीक पुद्गलकर्मसे अन्य हैं चैतन्यपरिणामके विकार हैं ॥ ८८ ॥

फिर पूछते हैं कि जीव मिथ्यात्वादि चैतन्यपरिणामका विकार किस कारण है उसका उत्तर कहते हैं;—[**मोहयुक्तस्य**] अनादिसे मोहयुक्त होनेसे [**उपयोगस्य**] उपयोगके [**अनादयः**] अनादिसे लेकर [**त्रयः परिणामाः**] तीन परिणाम हैं वे [**मिथ्यात्वं**] मिथ्यात्व [**अज्ञानं**] अज्ञान [**च अविरतिभावः**] और अविरतिभाव ये तीन [**ज्ञातव्यः**] जानने ॥ **टीका**—निश्चयकर समस्त वस्तुओंका अपने स्वरसपरिणमनसे स्वभावभूत स्वरूपपरिणाममें समर्थपना होनेपर भी आत्माके उपयोगके अनादिसे ही अन्य वस्तुभूत मोहसहितपनेसे मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति ऐसे तीन प्रकार परिणामके विकार है। सो ये "जैसे स्फटिकमणिकी स्वच्छतामें परके ढंकसे परिणामविकार हुआ देखा जाता है" उसीतरह हैं। यही प्रगटकर कहते हैं । जैसे स्फटिककी स्वच्छताके अपना स्वरूप उज्वलतारूप परिणामकी सामर्थ्य होनेपर भी

कस्वच्छताया इव परतोपि प्रभवन् दृष्टः । यथा हि स्फटिकस्वच्छतायाःस्वरूपपरिणामसमर्थत्वे सति कदाचिन्नीलहरितपीततमालकदलीकांचनपात्रोपाश्रययुक्तत्वान्नीलो हरितः पीत इति त्रिविधः परिणामविकारो दृष्टस्तथोपयोगस्यानादिमिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिस्वभाववस्त्वंतरभूतमोहयुक्तत्वान्मिथ्यादर्शनमज्ञानमविरतिरिति त्रिविधः परिणामविकारो दृष्टव्यः ॥ ८९ ॥

अथात्मनस्त्रिविधपरिणामविकारस्य कर्तृत्वं दर्शयति;—

एएसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥ ९० ॥

एतेषु चोपयोगस्त्रिविधः शुद्धो निरंजनो भावः ।
यं स करोति भावमुपयोगस्तस्य स कर्ता ॥ ९० ॥

अथैवमयमनादिवस्त्वंतरभूतमोहयुक्तत्वादात्मन्युत्प्लवमानेषु मिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिभावेषु परिणामविकारेषु त्रिष्वेतेषु निमित्तभूतेषु परमार्थतः शुद्धनिरंजनानादिनिधनवस्तुसर्वस्वभूतचिन्मात्रभावत्वेनैकविधोप्यशुद्धसांजनानेकभावत्वमापद्यमानस्त्रिविधो भूत्वा स्व-

---

शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवस्तथाप्यनादिमोहनीयादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वाज्ञानाविरतिरूपास्त्रयः परिणामविकाराः संभवंति । तत्र शुद्धजीवस्वरूपमुपादेयं मिथ्यात्वादिविकारपरिणामा हेया इति भावार्थः ॥ ८९ ॥ अथात्मनो मिथ्यात्वादित्रिविधपरिणामविकारस्य कर्तृत्वमुपदिशति;— **एदेसु य** एतेषु च मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेषूदयागतेषु निमित्तभूतेषु सत्सु **उवओगो** ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा **तिविहो** कृष्णनीलपीतत्रिविधोपाधिपरिणतस्फटिकवत्रिविधो भवति । परमार्थेन तु **सुद्धो** शुद्धो रागादिभावकर्मरहितः **णिरंजणो** निरंजनो ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मांजनरहितः । पुनश्च कथंभूतः । **भावो** भावपदार्थः । अखंडैकप्रतिभासमयज्ञानस्व-

---

किसी समय काला हरा पीला जो तमाल केला कंचनके पात्रकी समीपतायुक्ततासे नीला हरा पीला ऐसा तीन प्रकार परिणामका विकार दीखता है उसीतरह आत्माके उपयोगके अनादि मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति स्वभावरूप जो अन्य वस्तुभूत मोह उसके साथपनेसे मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति ऐसे तीन प्रकार परिणामविकार जानना ॥ **भावार्थ—** आत्माके उपयोगमे ये तीन प्रकारके परिणामविकार अनादिकर्मके निमित्तसे हैं ऐसा नहीं कि पहले शुद्ध ही था अब यह नवीन हुआ है । ऐसे होय तो सिद्धोंके भी नवीन होना चाहिये सो ऐसा है नहीं यह जानना ॥ ८९ ॥

आगे आत्माके इन तीन प्रकारके परिणामविकारोंका कर्तापना दिखलाते हैं;— **[एतेषु च]** मिथ्यात्व अज्ञान अविरति इन तीनोंका अनादिसे निमित्त होनेपर **[उपयोगः]** आत्माका उपयोग **[शुद्धः]** शुद्ध नयकर एक शुद्ध **[निरंजनः]** निरंजन है तौभी **[त्रिविधः भावः]** मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति इस तरह तीन प्रकार परिणामवाला है । **[सः]** वह आत्मा **[यं]** इन तीनोंमेंसे जिस **[भावं]**

यमज्ञानीभूतः कर्तृत्वमुपढौकमानो विकारेण परिणम्य यं यं भावमात्मनः करोति तस्य तस्य किलोपयोगः कर्त्ता स्यात् ॥ ९० ॥

अथात्मनस्त्रिविधपरिणामविकारकर्तृत्वे सति पुद्गलद्रव्यं स्वत एव कर्मत्वेन परिणमतीत्याह;—

जं कुणइ भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं ॥ ९१ ॥

यं करोति भावमात्मा कर्त्ता स भवति तस्य भावस्य।
कर्मत्वं परिणमते तस्मिन् स्वयं पुद्गलद्रव्यं ॥ ९१ ॥

आत्मा ह्यात्मना तथापरिणमनेन यं भाव किल करोति तस्यायं कर्त्ता स्यात्साधकवत्

भावेनैकविधोपि पूर्वोक्तमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रपरिणामविकारेण त्रिविधो भूत्वा **जं सो करेदि भावं** यं परिणामं करोति स आत्मा **उवओगो** चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगो भण्यते तल्लक्षणत्वादुपयोगरूपः। **तस्स सो कत्ता** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरिणामच्युतः सन् तस्यैव मिथ्यात्वादित्रिविधविकारपरिणामस्य कर्त्ता भवति। न च द्रव्यकर्मण इति भावः ॥९०॥ अथात्मनो मिथ्यात्रिविधपरिणामविकारकर्तृत्वे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यं स्वत एवोपादानरूपेण कर्मत्वेन परिणमतीति कथयति;—**जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि**

भावको [**करोति**] स्वयं करता है [**तस्य**] उसीका [**सः**] वह [**कर्ता**] कर्ता [**भवति**] होता है ॥ **टीका**—पहली गाथामें कहे गये जो तीन प्रकारके उपयोगके परिणाम वे अब पूर्वोक्त प्रकार अनादि अन्यवस्तुभूत मोहकर सहित होनेसे आत्मामें उत्पन्न हुए जो मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति भावरूप तीन परिणाम विकार उनको निमित्तकारण होनेसे, आत्माका स्वभाव परमार्थसे देखा जाय तो शुद्ध निरंजन एक अनादिनिधन वस्तुका सर्वस्वभूत चैतन्य भावपनेकर एक प्रकार है तौभी, अशुद्ध सांजन अनेक भावपनेको प्राप्तहुआ तीन प्रकार होके आप अज्ञानी हुआ कर्तापनेको प्राप्त होता विकाररूप परिणामकर जिस जिसभावको आप करता है उस उस भावका उपयोग प्रगटपने निश्चयकर कर्ता होता है ॥ **भावार्थ**—पहले कहा था कि जो परिणमे वह कर्ता है सो यहां अज्ञानरूप होके उपयोग परिणमा वह जिसरूप परिणमा उसीका कर्ता कहा। शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकर आत्मा कर्ता नहीं है। यहां उपयोगको कर्ता जानना उपयोग और आत्मा एक ही वस्तु है इसलिये आत्माको ही कर्ता कहा जाता है ॥ ९० ॥

आगे आत्माके तीन प्रकार परिणामविकारका कर्तापना होनेपर पुद्गलद्रव्य आप ही कर्मपनेरूप होके परिणमता है ऐसे कहते हैं;—[**आत्मा**] आत्मा [**यं भावं**] जिस भावको [**करोति**] करता है [**तस्य भावस्य**] उस भावका [**कर्ता**]

तस्मिन्निमित्ते सति पुद्गलद्रव्यं कर्मत्वेन स्वयमेव परिणमते । तथाहि—यथा साधकः किल तथाविधध्यानभावेनात्मना परिणममानो ध्यानस्य कर्त्ता स्यात् । तस्मिंस्तु ध्यानभावे सकलसाध्यभावानुकूलतया निमित्तमात्रीभूते सति साधकं कर्तारमन्तरेणापि स्वयमेव बाध्यंते विषयव्याप्तयो, विडंब्यंते योषितो, ध्वंस्यंते बंधास्तथायमज्ञानादात्मा मिथ्यादर्शनादिभावेनात्मनो परिणममाने मिथ्यादर्शनादिभावस्य कर्त्ता स्यात् । तस्मिंस्तु मिथ्यादर्शनादौ भावे स्वानुकूलतया निमित्तमात्रीभूते सत्यात्मानं कर्तारमंतरेणापि पुद्गलद्रव्यं मोहनीयादिकर्मत्वेन स्वयमेव परिणमते ॥ ९१ ॥

तस्स भावस्स यं भाव मिथ्यात्वादिविकारपरिणामं शुद्धस्वभावच्युतः सन् आत्मा करोति तस्य भावस्य स कर्त्ता भवति **कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पुग्गलं दव्वं** तस्मिन्नेव त्रिविधविकारपरिणामकर्तृत्वे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यं स्वयमेवोपादानरूपेण द्रव्यकर्मत्वेन परिणमति । गारुडादिमंत्रपरिणतपुरुषपरिणामे सति देशांतरे स्वयमेव तत्पुरुषव्यापारमंतरेणापि विषापहारवधविध्वंसस्त्रीविडंबनादिपरिणामवत् । तथैव च मिथ्यात्वरागादिविभावविनाशकाले निश्चयरत्नत्रयस्वरूपशुद्धोपयोगपरिणामे सति गारुडमंत्रसामर्थ्येन निर्बीजविषवत् स्वयमेव नीरसीभूय पूर्वबद्धं द्रव्यकर्म जीवात्पृथग्भूत्वा निर्जरां गच्छतीति भावार्थः । एवं स्वतं-

---

कर्ता [**सः**] आप [**भवति**] होता है [**तस्मिन्**] उसको कर्ता होनेपर [**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्य [**स्वयं**] अपने आप [**कर्मत्वं**] कर्मपनेरूप [**परिणमते**] परिणमता है ॥ **टीका**—आत्मा निश्चयकर आप ही उसतरह परिणमनेकर प्रगटपनेसे जिस भावको कर्ता है उसीका वह कर्ता होता है मंत्रसाधनेवालेकी तरह । तथा उस आत्माको वैसा निमित्त होनेपर पुद्गलद्रव्य कर्मभावरूप आप ही परिणमता है । यही प्रगट कहते है—जैसे मंत्रसाधनेवाला पुरुष जिस प्रकारके ध्यानरूप भावकर आप परिणमता है उसी ध्यानका कर्ता होता है । और जो समस्त उस साधकके साधने योग्य वस्तु उनके अनुकूलपनेकर उस ध्यानभावको निमित्तमात्र होनेपर उस साधकके विना ही अन्य सर्पादिककी विषकी व्याप्ति स्वयमेव मिट जाती है, स्त्रीजनविडंबनारूप हो जाती हैं और बंधन खुल जाते हैं । इत्यादि कार्य मंत्रके ध्यानकी सामर्थ्यसे हो जाते हैं । उसीतरह यह आत्मा अज्ञानसे मिथ्यादर्शनादिभावकर परिणमता हुआ मिथ्यादर्शनादि भावका कर्ता होता है तब उस मिथ्यादर्शनादि भावको अपने करनेके अनुकूलपनेसे निमित्तमात्र होनेपर आत्मा कर्ताके विना पुद्गलद्रव्य आप ही मोहनीयादि कर्मभावकर परिणमता है ॥ **भावार्थ**—आत्मा जब अज्ञानरूप परिणमता है तब किसीसे ममत्व करता है किसीसे राग करता है किसीसे द्वेष करता है उन भावोंका आप कर्ता होता है । उसको निमित्तमात्र होनेपर पुद्गलद्रव्य आप अपने भावकर कर्मरूप होके परिणमता है । परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव है । कर्ता दोनों अपने २ भावके हैं यह निश्चय है ॥९१॥

अज्ञानादेव कर्म प्रभवतीति तात्पर्यमाह;—

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो ।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥ ९२ ॥

परमात्मानं कुर्वन्नात्मनामपि च परं कुर्वन् सः ।
अज्ञानमयो जीवः कर्मणां कारको भवति ॥ ९२ ॥

अयं किलाज्ञानेनात्मा परात्मनोः परस्परविशेषानिर्ज्ञाने सति परमात्मानं कुर्वन्नात्मानं च परं कुर्वन्स्वयमज्ञानमयीभूतः कर्मणां कर्ता प्रतिभाति । तथाहि–तथाविधानुभवसंपादनसमर्थायाः रागद्वेषसुखदुःखादिरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायाः शीतोष्णानुभवसंपादनसमर्थायाः शीतोष्णायाः पुद्गलपरिणामावस्थाया इव पुद्गलादभिन्नत्वेनात्मनो नित्यमेवात्यंतभिन्नायास्तन्निमित्तं तथाविधानुभवस्य चात्मनो भिन्नत्वेन पुद्गलान्नित्यमेवात्यंतभिन्नस्याज्ञा-

---

त्रव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाषट्कं गतं ॥ ९१ ॥ अथ निश्चयेन वीतरागस्वसंवेदनज्ञानस्याभाव एवाज्ञानं भण्यते । तस्मादज्ञानादेव कर्म प्रभवतीति तात्पर्यमाह,—**परं** परद्रव्यं भावकर्मद्रव्यकर्मरूपं **अप्पाणं कुव्वदि** परद्रव्यात्मनोर्भेदज्ञानाभावादात्मानं करोति **अप्पाणं पि य परं करंतो** शुद्धात्मानं च परं करोति यः **सो अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि** स चाज्ञानमयो जीवः कर्मणां कर्ता भवति । तद्यथा—यथा कोपि पुरुषः शीतोष्णरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायास्तथाविधशीतोष्णानुभवस्य चैकत्वाभ्यासाद्भेदमजानन् शीतोहमुष्णोहमिति प्रकारेण शीतोष्णपरिणतेः कर्ता भवति । तथा जीवोपि निजशुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नाया

आगे कर्म भी अज्ञानसे होता है यह तात्पर्य कहते हैं;—**[जीवः]** जीव **[अज्ञानमयः]** आप अज्ञानी हुआ **[परं]** परको **[आत्मानं कुर्वन्]** अपने करता है **[च]** और **[आत्मानं अपि]** अपनेको **[परं]** परके **[कुर्वन्]** करता है इसतरह **[सः]** वह **[कर्मणां]** कर्मोंका **[कारकः]** कर्ता **[भवति]** होता है ॥ **टीका**—यह आत्मा प्रगट अज्ञानकर परके और अपने विशेषका भेदज्ञान न करता हुआ परको तो अपने करता है और अपनेको परके करता है इसतरह आप अज्ञानी हुआ कर्मोंका कर्ता होता है । यही प्रगटकर करते हैं—जैसे शीत उष्णका अनुभव करानेमें समर्थ जो पुद्गलपरिणामकी शीत उष्ण अवस्था है वह पुद्गलसे अभिन्नपनेकर आत्मासे नित्य ही अत्यंत भिन्न है उसीतरह उस प्रकारका अनुभव करानेमें समर्थ जो रागद्वेष सुखदुःखादिरूप पुद्गल परिणामकी अवस्था वह पुद्गलसे अभिन्नपनेकर आत्मासे नित्य ही अत्यंत भिन्न है । उस निमित्तसे हुए उस प्रकारके रागद्वेषादिकके अनुभवका आत्मासे अभिन्नपनाकर पुद्गलसे नित्य ही अत्यंत भिन्नपना है तौ भी उस रागद्वेषादिकका और उसके अनुभवका अज्ञानसे परस्पर भेदज्ञान नहीं होनेसे एकपनेके निश्चयसे जिस तरह शीत उष्णरूपकर आत्माके परिणमनका असमर्थपना है उसीतरह

नात्परस्परविशेषानिर्ज्ञाने सत्येकत्वाध्यासात् शीतोष्णरूपेणैवात्मना परिणमितुमशक्येन रागद्वेषसुखदुःखादिरूपेणाज्ञानात्मना परिणममानो ज्ञानस्याज्ञानत्वं प्रकटीकुर्वन्स्वयमज्ञानमयीभूत एषोहं रज्ये इत्यादिविधिना रागादेः कर्मणः कर्ता प्रतिभाति ॥ ९२ ॥

ज्ञानात्तु न कर्म प्रभवतीत्याह;—

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो ।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥ ९३ ॥

परमात्मानमकुर्वन्नात्मानमपि च परमकुर्वन् ।
स ज्ञानमयो जीवः कर्मणामकारको भवति ॥ ९३ ॥

अयं किल ज्ञानादात्मा परात्मनोः परस्परविशेषनिर्ज्ञाने सति परमात्मानमकुर्वन्नात्मानं च परमकुर्वन्स्वयं ज्ञानमयीभूतः कर्मणामकर्ता प्रतिभाति । तथाहि–तथाविधानुभवसंपाद-

---

उदयागतपुद्गलपरिणामावस्थायास्तन्निमित्तसुखदुःखानुभवस्य चैकत्वाध्यवसायारोपात् परद्रव्यात्मनोः समस्तरागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानाभावाद्भेदमजानन्नहं सुखी दुःखीति प्रकारेण परिणमत्कर्मणां कर्ता भवतीति भावार्थः ॥ ९२ ॥ अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानात्सकाशात्कर्म न प्रभवतीत्याह;—**परं** परं परद्रव्यं बहिर्विषये देहादिकमभ्यंतरे रागादिकं भावकर्मद्रव्यकर्मरूपं वा **अप्पाणमकुव्वी** भेदविज्ञानबलेनात्मानमकुर्वन्नात्मसंबंधमकुर्वन् **अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो** शुद्धद्रव्यगुणपर्यायस्वभावं निजात्मानं च परमकुर्वन् **सो णाणमओ जीवो**

रागद्वेष सुखदुःखादिरूप भी अपनेकर परिणमनेका असमर्थपना है तौभी रागद्वेषादिक पुद्गलपरिणामकी अवस्थाको उसके अनुभवका निमित्तमात्र होनेसे अज्ञानस्वरूप रागद्वेषादिरूप परिणमता अपने ज्ञानके अज्ञानपनेको प्रगटकरता आप अज्ञानी हुआ "यह मैं रागी हूं" इत्यादि विधानकर रागादिक कर्मका कर्ता प्रतिभासता है ॥ **भावार्थ**— रागद्वेषसुखदुःखादि अवस्था पुद्गलकर्मके उदयका स्वाद है सो यह पुद्गलकर्मसे अभिन्न है आत्मासे अत्यंत भिन्न है जैसे शीत उष्णपना । आत्माको अज्ञानसे इसका भेदज्ञान नहीं है इसलिये ऐसा जानता है कि यह स्वाद मेरा ही है । क्योंकि ज्ञानकी स्वच्छता ऐसी ही है कि रागद्वेषादिका स्वाद शीत उष्णकी तरह ज्ञानमें प्रतिबिंबित होता है तब ऐसा मालूम होता है कि मानों ये ज्ञान ही हैं । इसकारण ऐसें अज्ञानसे इस अज्ञानी जीवके इनका कर्तापना भी आया । क्योंकि इसके ऐसी मान्य हुई रागी हूं द्वेषी हू क्रोधी हूं मानी हूं इत्यादि । इसतरह कर्ता होता है ॥ ९२ ॥

आगे कहते हैं कि ज्ञानसे कर्म नहीं उत्पन्न होता;—[**जीवः**] जो जीव [**आत्मानं**] अपनको [**परं**] पर [**अकुर्वन्**] नहीं करता [**च**] और [**परं**] परको [**आत्मानं अपि**] अपना भी [**अकुर्वन्**] नहीं करता [**सजीवः**] वह जीव [**ज्ञानमयः**] ज्ञानमय है [**कर्मणां**] कर्मोंका [**अकारकः**] करनेवाला नहीं

नसमर्थायाः रागद्वेषसुखदुःखादिरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायाः शीतोष्णानुभवसंपादनसमर्थायाः शीतोष्णायाः पुद्गलपरिणामावस्थाया इव पुद्गलादिभिन्नत्वेनात्मनो नित्यमेवात्यंतभिन्नायास्तन्निमित्तं तथाविधानुभवस्य चात्मनो भिन्नत्वेन पुद्गलान्नित्यमेवात्यंतभिन्नस्य ज्ञानात्परस्परविशेषनिर्ज्ञाने सति नानात्वविवेकाच्छीतोष्णरूपेणैवात्मना परिणमितुमशक्येन रागद्वेषसुखदुःखादिरूपेणाज्ञानात्मना मनागप्यपरिणममानो ज्ञानस्य ज्ञानत्वं प्रकटीकुर्वन् स्वयं ज्ञानमयीभूतः एषोहं जानाम्येव, रज्यते तु पुद्गल इत्यादिविधिना समग्रस्यापि रागादेः कर्मणो ज्ञानविरुद्धस्याकर्ता प्रतिभाति ॥ ९३ ॥

कम्माणमकारओ होदि स निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी जीवः कर्मणामकर्ता भवतीति। तथाहि—यथा कश्चित् पुरुषः शीतोष्णरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायास्तथाविधशीतोष्णानुभवस्य चात्मनः सकाशाद्भेदज्ञानात् शीतोहमुष्णोहमिति परिणतेः कर्ता न भवति। तथा जीवोपि निजशुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नायाः पुद्गलपरिणामावस्थायास्तन्निमित्तसुखदुःखानुभवस्य च स्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखानुभवाभिन्नस्य भेदज्ञानाभ्यासात्परात्मनोर्भेदज्ञाने सति रागद्वेषमोहपरिणाममकुर्वाणः कर्मणा कर्ता न भवति। ततः स्थितं ज्ञानात्कर्म न प्रभवतीत्यभिप्रायः ॥ ९३ ॥

[भवति] है। **टीका**—यह जीव ज्ञानसे परका और अपना परस्पर भेदकरि भेदज्ञान होनेसे परको तो आप नहीं करता है और अपनेको पर नहीं करता प्रवर्तता है तब आप ज्ञानी हुआ कर्मोंका अकर्ता प्रतिभासता है। यही प्रगटकर कहते हैं—जैसे शीत उष्ण स्वरूप पुद्गल परिणामकी अवस्था है वह शीत उष्ण अनुभवन करानेको समर्थ है सो पुद्गलसे अभिन्नपनेकर आत्मासे नित्य ही अत्यंत भिन्न है उसीतरह रागद्वेष सुखदुःखादिरूप पुद्गलपरिणामकी अवस्था है वह रागद्वेषसुखदुःखादिरूप अनुभव करानेमें समर्थ है ऐसी अवस्था जिसको निमित्त है और उस प्रकारका अनुभव आत्मासे अभिन्नपनेकर पुद्गलसे अत्यंत सदा ही भिन्नताके ज्ञानसे परस्पर विशेषका भेदज्ञान होनेपर नानापनेके विवेकसे, जैसे शीत उष्णरूप आत्मा आपकर परिणमेको असमर्थ है उसतरह रागद्वेषसुखदुःखादिरूप भी आपकर परिणमनेको असमर्थ है। इसतरह अज्ञानस्वरूप जो रागद्वेषसुखदुःखादिक उनरूपकर नहीं परिणमता ज्ञानके ज्ञानपनेको प्रगट करता ज्ञानमय हुआ ऐसा जानता है कि "यह मैं रागद्वेषादिकको जानता ही हूं और ये रागरूप पुद्गल है। इत्यादि विधानकर सर्व ही जो ज्ञानसे विरुद्ध रागादिक कर्म उनका कर्ता नहीं प्रतिभासता॥ **भावार्थ**—जब रागद्वेषसुखदुःख अवस्थाको ज्ञानसे भिन्न जाने "कि जैसे पुद्गलकी शीत उष्ण अवस्था है उसीतरह रागद्वेषादिक भी हैं" ऐसा भेदज्ञान हो तब अपनेको ज्ञाता जाने रागादिरूप पुद्गलको जाने। ऐसा होनेपर इनका कर्ता आत्मा नहीं होता ज्ञाता ही रहता है॥ ९३ ॥

कथमज्ञानात्कर्म प्रभवतीति चेत्;—

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेइ कोहोहं ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होइ सो अत्तभावस्स ॥ ९४ ॥

त्रिविध एष उपयोग आत्मविकल्पं करोति क्रोधोहं ।
कर्त्ता तस्योपयोगस्य भवति स आत्मभावस्य ॥ ९४ ॥

एष खलु सामान्येनाज्ञानरूपो मिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिरूपस्त्रिविधः सविकारश्चैतन्यपरिणामः परमात्मनोरविशेषदर्शनेनाविशेषज्ञानेनाविशेषविरत्या च समस्तं भेदमपह्नुत्य भाव्यभावकभावापन्नयोश्चेतनाचेतनयोः सामान्याधिकरण्येनानुभवनात्क्रोधोहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति । ततोयमात्मा क्रोधोहमिति भ्रांत्या सविकारेण चैतन्यपरिणामेन परिणमन् तस्य सविकारचैतन्यपरिणामरूपस्यात्मभावस्य कर्ता स्यात् । एवमेव च क्रोधपदपरिवर्तनेन

अथ कथमज्ञानात्कर्म प्रभवतीति पृष्टे गाथाद्वयेन प्रत्युत्तरमाह;—**तिविहो एसुवओगो** त्रिविधस्त्रिप्रकार एष प्रत्यक्षीभूत उपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा **अस्सवियप्पं करेदि** स्वस्थभावस्याभावादसद्विकल्पं मिथ्याविकल्पं करोति । केन रूपेण, **कोधोहं** क्रोधोहमित्यादि **कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो** स जीवः तस्य क्रोधाद्युपयोगस्य विकल्पस्य कर्त्ता भवति । कथंभूतस्य, **अत्तभावस्स** आत्मभावस्याशुद्धनिश्चयेन जीवपरिणामस्येति । तथाहि—सामान्येनाज्ञानरूपेणैकविधोपि विशेषेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपेण त्रिविधो भूत्वा एष उपयोग आत्मा क्रोधाद्यात्मनोर्भाव्यभावकभावापन्नयोः । भाव्यभावकभावापन्नयोः कोर्थः? भाव्यः क्रोधादिपरिणत आत्मा, भावको रंजकश्चांतरात्मभावनाविलक्षणो भावक्रोधः । इत्थंभूतयोर्द्वयोर्भेदज्ञानाभावाद्भेदमजानन्निर्विकल्पस्वरूपाद् भ्रष्टः सन् क्रोधोहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति, तस्यैव क्रोधाद्युपयोगपरिणामस्याशुद्धनिश्चयेन कर्ता भवतीति भावार्थः । एवमेव च क्रोधपदपरिवर्त्तनेन

आगे पूछते है कि अज्ञानसे कर्म कैसे उत्पन्न होता है? उसका उत्तर कहते हैं;—**[एषः]** यह **[त्रिविधः]** तीन प्रकारका **[उपयोगः]** उपयोग **[आत्मविकल्पं]** अपनेमें विकल्प करता है कि **[अहं क्रोधः]** मैं क्रोध स्वरूप हूं **[तस्य]** उस **[आत्मभावस्य]** अपने **[उपयोगस्य]** उपयोगभावका **[सः]** वह **[कर्ता]** कर्ता **[भवति]** होता है । **टीका**—निश्चयकर यह विकारसहित चैतन्य परिणाम है वह सामान्यकर अज्ञानरूप है वही मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरतिरूप तीन प्रकार है । सो यह परिणाम परके और आत्माके अभेद देखनेकर अभेद जाननेकर अविशेष (अभेद) रूप रतिकर सब भेदको छिपाके और भाव्यभावकभावको प्राप्त हुए जो चेतन अचेतन दोनों उनका एक आधारकर अनुभव करनेसे मैं क्रोध हूं ऐसा आत्माका विकल्प उत्पन्न करता है क्रोधको ही अपना जानता है । इसलिये यह आत्मा मैं क्रोध हूं ऐसी भ्रांतिकर विकारसहित चैतन्य परिणामकर परिणमता उस विकारसहित

मानमायालोभमोहरागद्वेषकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयान्यनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि ॥ ९४ ॥

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्माई।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥ ९५ ॥

त्रिविध एष उपयोग आत्मविकल्पं करोति धर्मादिकं।
कर्त्ता तस्योपयोगस्य भवति स आत्मभावस्य ॥ ९५ ॥

एष खलु सामान्येनाज्ञानरूपो मिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिरूपस्त्रिविधः सविकारश्चैतन्यपरिणामः परस्परमविशेषदर्शनेनाविशेषज्ञानेनाविशेषविरत्या च समस्तं भेदमपह्नुत्य ज्ञेयज्ञायक-

---

मानमायालोभमोहरागद्वेषकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनेन प्रकारेणाविक्षिप्तचित्तस्वभावशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणा असख्येयलोकमात्रप्रमिता विभावपरिणामा ज्ञातव्या इति ॥ ९४ ॥ अथ,—**तिविहो एसुवओगो** सामान्येनाज्ञानरूपेणैकविधोपि विशेषेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपेण त्रिविधः सन्नेष उपयोग आत्मा **अस्सवियप्पं करेदि धम्मादी** परद्रव्यात्मनोर्ज्ञेयज्ञायकभावापन्नयोरविशेषदर्शनेनाविशेषपरिणत्या च भेदज्ञानाभावाद्भेदमजानन् धर्मास्तिकायोहमित्याद्यात्मनोऽसद्विकल्पमुत्पादयति। **कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स** निर्मलात्मानुभूतिरहितस्यैव मिथ्याविकल्परूपजीवपरिणामस्याशुद्धनिश्चयेन कर्त्ता भवति। ननु धर्मास्तिकायोहमित्यादि कोपि न ब्रूते तत्कथ घटत

चैतन्य परिणामरूप अपने भावका कर्ता होता है। इसतरह जैसे क्रोध कहा है उसीतरह क्रोधकी जगह मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन, ये पद पलटके सोलह सूत्रका व्याख्यान करना चाहिये। और इसी उपदेशसे अन्य भी विचार लेना ॥ **भावार्थ—**मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरति ऐसे तीन प्रकार विकारसहित चैतन्य परिणाम है। सो आप परका भेद न जानकर ऐसा मानता है कि मैं क्रोधी हूं मैं मानी हूं इत्यादि। ऐसा माननेसे अपने विकारसहित चैतन्यपरिणामका यह अज्ञानी जीव कर्ता होता है और जब कर्ता हुआ तब वे अज्ञानभाव अपने कर्म हुए। इसतरह अज्ञानसे ही कर्म होता है ॥ ९४ ॥

आगे कहते हैं कि ऐसें ही धर्मद्रव्य आदि अन्य द्रव्योंमें भी आत्मविकल्प करता है,—[**एषः**] यह [**उपयोगः**] उपयोग [**त्रिविधः**] तीन प्रकारका होनेसे [**धर्मादिकं**] धर्मआदिक द्रव्यरूप [**आत्मविकल्पं**] आत्मविकल्प [**करोति**] करता है उनको अपने जानता है [**सः**] वह [**तस्य**] उस [**उपयोगस्य**] उपयोगरूप [**आत्मभावस्य**] अपने भावका [**कर्ता**] कर्ता [**भवति**] होता है ॥ **टीका—**यह सामान्यकर अज्ञानरूप सविकार चैतन्य परिणाम वही मिथ्यादर्शन अज्ञान अविरतिरूप तीन प्रकार है। जब यह परका और अपना परस्पर विशेष नहीं देखनेकर

भावापन्नयोः परात्मनोः सामानाधिकरण्येनानुभवनाद्धर्मोहमधर्मोहमाकाशमहं कालोहं पुद्गलोहं जीवांतरमहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति। ततोयमात्मा धर्मोहमधर्मोहमाकाशमहं कालोहं पुद्गलोहं जीवांतरमहमिति भ्रांत्या सोपाधिना चैतन्यपरिणामेन परिणमन् तस्य सोपाधिचैतन्यपरिणामत्वरूपस्यात्मभावस्य कर्ता स्यात् । ततः स्थितं कर्तृत्वमूलमज्ञानं ॥ ९५॥

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाणं अवि य परं करेइ अण्णाणभावेण ॥ ९६ ॥

एवं पराणि द्रव्याणि आत्मानं करोति मंदबुद्धिस्तु ।
आत्मानमपि च परं करोति अज्ञानभावेन ॥ ९६ ॥

यत्किल क्रोधोहमित्यादिवद्धर्मोहमित्यादिवच्च परद्रव्याण्यात्मीकरोत्यात्मानमपि परद्र-

---

इति। अत्र परिहारः। धर्मास्तिकायोयमिति योसौ परिछित्तिरूपविकल्पो मनसि वर्तते सोप्युपचारेण धर्मास्तिकायो भण्यते । यथा घटाकारविकल्पपरिणतिज्ञानं घट इति । तथा तद्धर्मास्तिकायोयमित्यादिविकल्पः यदा ज्ञेयतत्त्वविचारकाले करोति जीवः तदा शुद्धात्मस्वरूपं विस्मरति तस्मिन्विकल्पे कृते सति धर्मोहमिति विकल्प उपचारेण घटत इति भावार्थः । स्थितं शुद्धात्मसंवित्तेरभावरूपमज्ञानं कर्मकर्तृत्वस्य कारणं भवति ॥ ९५ ॥ **एवं** एव पूर्वोक्तगाथाद्वयकथितप्रकारेण **पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि** क्रोधोहमित्यादिवद्धर्मास्तिकायोहमित्यादिवच्च

तथा अविशेष जाननेकर और अविशेष रति (लीनता) कर समस्त भेदोंका लोपकर ज्ञेयज्ञायक भावको प्राप्त जो धर्मादि द्रव्य उनको अपना और उनका एक आधारके अनुभव करनेसे ऐसा मानता है कि मैं धर्मद्रव्य हूं मैं अधर्मद्रव्य हूं मैं आकाशद्रव्य हूं मैं कालद्रव्य हूं मैं पुद्गलद्रव्य हूं मैं अन्य जीव भी हूं ऐसें भ्रमकर उपाधिसहित अपना जो चैतन्य परिणाम उसकर परिणमता उस उपाधिसहित चैतन्यपरिणामरूप अपने भावका कर्ता होता है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा अज्ञानसे धर्मादिद्रव्यमें भी आपा मानता है सो उस अपने अज्ञानरूप चैतन्यपरिणामका आप कर्ता होता है। यहां कोई पूछे कि पुद्गल और अन्य जीव तो प्रवृत्तिमें दीखते हैं उनमें तो अज्ञानसे आपा मानना ठीक है परंतु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य तो देखनेमें भी नहीं आते उनमें आपा मानना कैसे कहा ? उसका समाधान—धर्मादिकका भी लक्षण अनुभवमें आता है। धर्म अधर्मका तो गतिहेतुपना स्थितिहेतुपना है उनका गमन करना ठहरना जिससे होता है उसमें ममत्वबुद्धि होती है। और आकाशके अवगाहरूप क्षेत्रमें ममत्व होता है । और कालके समय मुहूर्तआदिमे मरना जीना आदि कार्य होता है उसमें ममत्वबुद्धि होती है ऐसा जानना ॥ ९५ ॥

आगे कहते हैं कि इस हेतुसे कर्तापनेका मूलकारण अज्ञान ठहरा;—**[एवं तु]** ऐसे पूर्वकथितरीतिसे **[मंदबुद्धिः]** अज्ञानी **[अज्ञानभावेन]** अज्ञानभावकर

व्यीकरोत्येवमात्मा, तदयमशेषवस्तुसंबंधविधुरनिरवधिविशुद्धचैतन्यधातुमयोप्यज्ञानादेव सविकारसोपाधीकृतचैतन्यपरिणामतया तथाविधस्यात्मभावस्य कर्ता प्रतिभातीत्यात्मनो भूताविष्टध्यानाविष्टस्येव प्रतिष्ठितं कर्तृत्वमूलमज्ञानं । तथाहि—यथा खलु भूताविष्टोऽज्ञानाद्भूतात्मानावेकीकुर्वन्नमानुषोचितविशिष्टचेष्टावष्टंमनिर्भरभयंकरारंभगंभीरामानुषव्यवहारतया तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । तथायमात्माप्यज्ञानादेव भाव्यभावकौ परात्मानावेकीकुर्वन्नविकारानुभूतिमात्रभावकानुचितविचित्रभाव्यक्रोधादिविकारकरंबितचैतन्यपरि-

---

क्रोधादिस्वकीयपरिणामरूपाणि तथैव धर्मास्तिकायादिज्ञेयरूपाणि च परद्रव्याणि आत्मानं करोति । सः कः कर्ता, **मंदबुद्धीओ** मदबुद्धिर्निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदविज्ञानरहितः **अप्पाणं अवि य परं करेदि** शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानमपि च परं स्वस्वरूपाद्भिन्नं करोति रागादिषु योजयतीत्यर्थः । केन, **अण्णाणभावेण** अज्ञानभावेनेति । ततः स्थितं क्रोधादिविषये भूताविष्टदृष्टांतेन धर्मादिज्ञेयविषये ध्यानाविष्टदृष्टातेनैव शुद्धात्संवित्यभावरूपमज्ञानं कर्मकर्तृत्वस्य कारणं भवति । तद्यथा—यथा कोपि पुरुषो भूतादिग्रहाविष्टो भूतात्मनोर्भेदमजानन् सन्मानुषोचितशिलास्तंमचालनादिकमद्भुतव्यापारं कुर्वन्सन् तस्य व्यापारस्य कर्ता भवति । तथा जीवोपि वीतरागपरमसामायिकपरिणतशुद्धोपयोगलक्षणभेदज्ञानाभावात्कामक्रोधादिशुद्धात्मनोर्द्वयोर्भेदमजानन् क्रोधोहं कामोहमित्यादिविकल्पं कुर्वन्सन् कर्मणः कर्ता भवति । एवं क्रोधादिविषये भूताविष्टदृष्टांतो गतः ।

[पराणि द्रव्याणि] परद्रव्योंको **[आत्मानं]** अपनी **[करोति]** करता है **[अपि च]** और **[आत्मानं]** अपनेको **[परं करोति]** परका करता है ॥

टीका—जो प्रगटपने यह आत्मा मैं क्रोध हूं मैं धर्मद्रव्य हू इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार परद्रव्योंको अपनी करता है और अपनेको परद्रव्यरूप करता है ऐसा यह आत्मा यद्यपि समस्त वस्तुके संबंधसे रहित अमर्यादरूप शुद्धचैतन्य धातुमय है तौभी अज्ञानसे सविकार सोपाधिरूप किये अपने चैतन्य परिणामपनेकर उस प्रकारका अपने परिणामका कर्ता प्रतिभासता है । इस तरह आत्माके भूताविष्ट पुरुषकी तरह तथा ध्यानाविष्ट पुरुषकी तरह कर्तापनेका मूल अज्ञान प्रतिष्ठित हुआ (प्रगटपने ठहरा) । यही प्रगट दृष्टातकर दिखलाते हैं—जैसे कोई पुरुष भूताविष्ट हुआ अपने शरीरमें भूतप्रवेश किया सो वह पुरुष अज्ञानसे भूतको और अपनेको एकरूप करता जैसी मनुष्यके योग्य चेष्टा न हो वैसी करने लगा । उसी चेष्टाका आलंबनरूप अत्यंत भयकारी आरंभकर भरा अमानुष व्यवहारपनेकर उसप्रकार चेष्टारूप भावका कर्ता प्रतिभासता है, उसीतरह यह आत्मा भी अज्ञानसे ही पर और आत्माको भाव्यभावकरूप एक करता हुआ निर्विकार अनुभूतिमात्र भावकके अयोग्य अनेक प्रकार भाव्यरूप क्रोधादि विकारकर मिले चैतन्यके विकारसहित परिणामपनेकर उस प्रकारके भावका कर्ता प्रतिभासता है । जैसे कोई भोलापुरुष अपरीक्षक आचार्यके उपदेशकर भैंसेका ध्यान करने

णामविकारतया तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । यथा वापरीक्षकाचार्यादेशेन मुग्धः कश्चिन्महिषध्यानाविष्टो ज्ञानान्महिषात्मानावेकीकुर्वन्नात्मन्यभ्रंकषविषाणमहामहिषत्वाध्यासात्प्रच्युतमानुषोचितापवरकद्वारविनिस्सरणतया तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति । तथायमात्माप्यज्ञानाद् ज्ञेयज्ञायकौ परात्मानावेकीकुर्वन्नात्मनि परद्रव्याध्यासान्नोइंद्रियविषयीकृतधर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवांतरनिरुद्धचैतन्यधातुतया तथेंद्रियविषयीकृतरूपिपदार्थ-

---

तथैव च यथा कश्चिद् महामहिषादिध्यानाविष्टो महिषाद्यात्मनोर्द्वयोर्भेदमजानन्महामहिषोहं गरुडोहं कामदेवोहमग्निरहं दुग्धधारासमानामृतराशिरहमित्याद्यात्मविकल्पं कुर्वाणः सन् तस्य विकल्पस्य कर्ता भवति । तथा च जीवोपि सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतशुद्धोपयोगलक्षणभेदज्ञानाभावाद्धर्मादिज्ञेयपदार्थानां शुद्धात्मनश्च भेदमजानन् धर्मास्तिकायोहमित्याद्यात्मविकल्प करोति, तस्यैव विकल्पस्य कर्ता भवति । तस्मिन् विकल्पकर्तृत्वे सति द्रव्यकर्मबंधो भवतीति । एवं धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थविषये ध्यानदृष्टान्तो गतः । हे भगवन् धर्मास्तिकायोय जीवोयमित्यादिज्ञेयतत्त्वविचारविकल्पे क्रियमाणे यदि कर्मबंधो भवतीति तर्हि ज्ञेयतत्त्वविचारो वृथेति न कर्तव्यः । नैवं वक्तव्यं । त्रिगुप्तिपरिणतनिर्विकल्पसमाधिकाले यद्यपि न कर्तव्यस्तथापि तस्य त्रिगुप्तिध्यानस्याभावे शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया तु मोक्षमुपादेयं कृत्वा सरागसम्यक्त्वकाले विषयकषायवचनार्थं कर्तव्यः । तेन तत्त्वविचारेण मुख्यवृत्त्या पुण्यबंधो भवति परंपरया निर्वाणं च भवतीति नास्ति दोषः । किंतु तत्र तत्त्वविचारकाले वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतः शुद्धात्मा साक्षादुपादेयः कर्तव्यः इति ज्ञातव्यं । ननु वीतरागस्वसवेदनविचारकाले वीतरागविशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः, किं सरागमपि स्वसंवेदनज्ञानमस्तीति ? अत्रोत्तरं । विषयसुखानुभवानंदरूपं स्वसवेदनज्ञानं सर्वजनप्रसिद्धं सरागमप्यस्ति । शुद्धात्मसुखानुभूतिरूप स्वसवेदनज्ञानव्याख्या-

---

लगा सो अज्ञानसे भैंसेको और अपनेको एकरूप करता अपनेमें बादलको स्पर्शकर भेदते सींगवाले महान् (बडे) भैंसापनेके अध्याससे मनुष्यके योग्य ओवरा कुटीके द्वारसे निकलनेसे च्युतहुआ उस प्रकारके भावका कर्ता प्रतिभासता है उसीतरह यह आत्मा भी अज्ञानसे ज्ञेयज्ञायक जो पर और आत्मा उनको एकरूप करता आत्मामें परद्रव्यके अध्यासके निश्चयसे मनके विषयरूप किये धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल अन्य जीव द्रव्य उनकर रुकी जो शुद्धचैतन्य धातु उसपनेकर तथा इंद्रियोंके विषयरूप किये जो रूपी पदार्थ उनकर ढका गया जो अपना केवल एक ज्ञान उसपनेकर तथा मृतक शरीरमें मूर्छित हुआ परम अमृतरूप विज्ञानघन आत्मा उसपनेकर उस प्रकारके भावका कर्ता प्रतिभासता है ॥ **भावार्थ—**यह आत्मा अज्ञानसे क्रोधादिकको तो भाव्यभावकसंबंधसे अपनेसे एकरूप मानता है और धर्मादिद्रव्य ज्ञेयरूप हैं उनको भी अपनेसे एककर मानता है । सो जैसा अपना भाव होता है उसी भावका कर्ता होता है ।

तिरोहितकेवलबोधतया मृतककलेवरमूर्छितपरमामृतविज्ञानघनतया च तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति ॥ ९६ ॥

ततः स्थितमेतद् ज्ञानान्नश्यति कर्तृत्वं;—

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं ॥ ९७ ॥

एतेन तु स कर्तात्मा निश्चयविद्भिः परिकथितः।
एव खलु यो जानाति स मुंचति सर्वकर्तृत्व ॥ ९७ ॥

येनायमज्ञानात्परात्मनोरेकत्वविकल्पमात्मनः करोति तेनात्मा निश्चयतः कर्ता प्रतिभाति। यस्त्वेवं जानाति स समस्तं कर्तृत्वमुत्सृजति, ततः स खल्वकर्ता प्रतिभाति। तथाहि— इहायमात्मा किलाज्ञानीसन्नज्ञानादाससारप्रसिद्धेन मिलितस्वादस्वादनेन मुद्रितभेदसंवेदनशक्तिरनादित एव स्यात् ततः परात्मानावेकत्वेन जानाति ततः क्रोधोहमित्यादिविकल्पमात्मनः

नकाले सर्वत्र ज्ञातव्यमिति भावार्थः ॥ ९६ ॥ ततः स्थितमेतत् शुद्धात्मानुभूतिलक्षणसम्यग्ज्ञानान्नश्यति कर्मकर्तृत्व,—**एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो** एतेन पूर्वोक्तगाथात्रयव्याख्यानरूपेणाज्ञानभावेन स आत्मा कर्त्ता भणितः। कैर्निश्चयविद्भिर्निश्चयज्ञैः सर्वज्ञैः। तथाहि—वीतरागपरमसामायिकसयमपरिणताभेदरत्नत्रयस्य प्रतिपक्षभूतेन पूर्वगाथात्रयव्याख्यानप्रकारेणाज्ञानभावेन यदात्मा परिणमति, तदा तस्यैव मिथ्यात्वरागादिरूपस्याज्ञानस्याज्ञानभावस्य कर्त्ता भवति ततश्च द्रव्यकर्मबंधो भवति। यदा तु चिदानदैकस्वभावशुद्धात्मानुभूतिपरिणामेन परिणमति तदा सम्यग्ज्ञानी भूत्वा मिथ्यात्वरागादिभावकर्मरूपस्याज्ञानभावस्य कर्ता न भवति। तत्कर्तृत्वाभावेपि द्रव्यकर्मबंधोपि न भवति। **एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं** एवं गाथापूर्वार्द्धव्याख्यानप्रकारेण मनसि योसौ

वहां क्रोधादिकसे एक माननेका तो भूताविष्ट पुरुपका दृष्टात है और धर्मादि अन्यद्रव्यसे एकता माननेका ध्यानाविष्ट पुरुषका दृष्टांत है ॥ ९६ ॥

आगे कहते हैं कि इसी कारणसे यह स्थितहुआ कि ज्ञानसे कर्तापनेका नाश होता है,—**[एतेन तु]** इस पूर्वकथित कारणसे **[निश्चयविद्भिः]** निश्चयके जाननेवाले ज्ञानियोंने **[सआत्मा]** वह आत्मा **[कर्ता परिकथितः]** कर्ता कहा है **[एवं खलु]** इसतरह **[यः]** जो **[जानाति]** जानता है **[सः]** वह ज्ञानी हुआ **[सर्वकर्तृत्वं]** सब कर्तापनेको **[मुंचति]** छोड देता है ॥ **टीका**—जिस कारण यह आत्मा अज्ञानसे परके और आत्माके एकपनेका विकल्प करता है उस कारणकर निश्चयसे कर्ता प्रतिभासता है ऐसा जो जानता है वह समस्त कर्तापनेको छोड देता है इसकारण वह अकर्ता प्रतिभासता है। यही प्रगट कहते हैं— इस जगतमें यह आत्मा प्रगट अज्ञानी हुआ अज्ञानकर अनादि संसारसे लगाके पुद्गल-

करोति ततो निर्विकल्पादकृतकादेकस्माद्विज्ञानघनात्प्रभ्रष्टो वारंवारमनेकविकल्पैः परिणमन् कर्ता प्रतिभाति । ज्ञानी तु सन् ज्ञानात्तदादिप्रसिद्ध्या प्रत्येकस्वादस्वादनेनोन्मुद्रितभेदसंवेदनशक्तिः स्यात् । ततोऽनादिनिधनानवरतस्वदमाननिखिलरसांतरविविक्तात्यंतमधुरचैतन्यैकरसोऽयमात्मा भिन्नरसाः कषायास्तैः सह यदेकत्वविकल्पकरणं तदज्ञानादित्येवं नानात्वेन परात्मानौ जानाति । ततोऽकृतकमेकं ज्ञानमेवाहं न पुनः कृतकोऽनेकः क्रोधादिरपीति क्रोधोहमित्यादिविकल्पमात्मनो मनागपि न करोति ततः समस्तमपि कर्तृत्वमपास्यति । ततो नित्यमेवोदासीनावस्थो जानन् एवास्ते । ततो निर्विकल्पोऽकृतक एको विज्ञानघनो भूतोऽत्यंतमकर्ता प्रतिभाति । "अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी ज्ञानं स्वयं किल भव-

---

वस्तुस्वरूपं जानाति स सरागसम्यग्दृष्टिः सन्नशुभकर्मकर्तृत्वं मुंचति । निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा शुभाशुभसर्वकर्मकर्तृत्वं च मुचति । एवमज्ञानात्कर्म प्रभवति संज्ञानान्न-

---

कर्मका और अपने भावका मिलाहुआ आस्वादका स्वाद लेनेसे जिसकी अपने जुदे अनुभवकी शक्ति मुद्रित होगई है ऐसा अनादि कालसे ही है । इसकारण परको और अपनेको एकपनेकर जानता है । मैं क्रोध हूं इत्यादिक विकल्प अपनेमे करता है इसलिये निर्विकल्परूप अकृत्रिम एक जो अपना विज्ञानघन स्वभाव उससे भ्रष्ट हुआ वारंवार अनेक विकल्पोंकर परिणमता कर्ता प्रतिभासता है । और जब ज्ञानी हो जाय तव सम्यग्ज्ञानसे उस सम्यग्ज्ञानको आदि लेकर प्रसिद्ध हुआ जो पुद्गलकर्मके स्वादसे अपना भिन्न स्वाद उसके आस्वादनकर जिसकी भेदके अनुभवकी शक्ति उघड़ गई है ऐसा होता है तब ऐसा जानता है कि अनादिनिधन निरंतर स्वादमें आता हुआ समस्त अन्य रसके स्वादोंसे विलक्षण (भिन्न) अत्यंत मधुर (मीठा) जो एक चैतन्यस्वरूपरस उस स्वरूप तो यह आत्मा है और कषाय इससे भिन्न रस हैं कषायले वेस्वाद है उनकर सहित जो एकपनेका विकल्प करना है वह अज्ञानसे है । इस प्रकार परको और आत्माको जुदे २ नानापनेकर जानता है । इसलिये अकृत्रिम नित्य एक ज्ञान ही मै हूं और कृत्रिम अनित्य अनेक जो ये क्रोधादिक वे मैं नहीं हूं ऐसा जाने तव "क्रोधादिक मै हूं" इत्यादिक विकल्प अपनेमें किंचिन्मात्र भी नहीं करता । इसकारण समस्तही कर्तापनेको छोड़ता है सदा ही उदासीन वीतरागअवस्थास्वरूप होके मानता हुआ ही तिष्ठता है इसीलिये निर्विकल्पस्वरूप अकृत्रिम नित्य एक विज्ञानघन हुआ अत्यंत अकर्ता प्रतिभासता है ॥ **भावार्थ—**जो परद्रव्यका और परद्रव्यके भावोंका अपने कर्तापनेको अज्ञान जानै तब आप कर्ता क्यों वनें ? अज्ञानी रहना हो तो पर द्रव्यका कर्ता वनें । इसलिये ज्ञान हुए वाद परद्रव्यका कर्तापना नहीं रहता ॥ अव इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**अज्ञान** इत्यादि । **अर्थ—**जो पुरुष आप निश्चयसे ज्ञानस्वरूप हुआ भी अज्ञानसे तृणसहित मिलेहुए अन्नादिक सुंदर आहारको खानेवाले

न्नपि रज्यते यः । पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालं ॥ ५७ ॥ अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावंति पातुं मृगा अज्ञानात्तमसि द्रवंति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः । अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणद्वातोत्तरंगाब्धिवत् शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवंत्याकुलाः ॥ ५८ ॥ ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनार्यो जानाति हंस इव वाः पयसा विशेषे । चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो जानाति एव हि करोति न किंचनापि ॥ ५९ ॥ ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानादेवोल्लसति लवण-

---

श्यतीति स्थितं । इत्यज्ञानिसज्ञानिजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथाषट्कं गतं । एवं द्विक्रियावादिनिराकरणविशेषव्याख्यानरूपेण द्वादशगाथा गताः । अथ पुनरप्युपसंहाररूपेणैका-

---

हस्ती आदि तिर्यंचके समान होता है वह क्या करता है उसका दृष्टांत कहते हैं । जैसे कोई शिखरिनको पीकर उसके दही मीठेका मिलाहुआ खाटा मीठा रस उसकी अत्यंत इच्छाकर उसके रसभेदको न जानकर दूधके लिये गायको दोहता है ॥ **भावार्थ—** जैसे कोई पुरुप शिखरिनको पीकर उसके स्वादकी अतिइच्छासे रसके ज्ञानविना ऐसा जानता है कि यह गायके दूधमे स्वाद है सो अतिलुब्ध हुआ गायको दोहता है उसीतरह अज्ञानी पुरुप अपना और परका भेद न जान विषयोंमें स्वाद जान पुद्गलकर्मको अतिलुब्ध होके ग्रहण करता है अपने ज्ञानका और पुद्गलकर्मका स्वाद जुदा नहीं अनुभवता । तिर्यंच (पशु) की तरह घासमे मिलेहुए अन्नका एक स्वाद लेता है ॥ फिर कहते हैं कि ऐसे अज्ञानसे पुद्गलकर्मका कर्ता होता है—**अज्ञानान्मृग** इत्यादि । **अर्थ—**ये लोकके जन हैं वे निश्चयकर शुद्ध एक ज्ञानमय हैं तौभी आप अज्ञानसे व्याकुल होके परद्रव्यके कर्तारूप होते है । जैसे पवनकर कल्लोलोंसहित समुद्र होता है उसीतरह विकल्पोंके समूह करते हैं इसलिये कर्ता बन रहे हैं । देखो अज्ञानसे ही मृग वालूको जल जानकर पीनेको दौड़ते हैं और अज्ञानसे ही लोक अंधकारमें रस्सीमें सर्पका निश्चयकर भयसे भागते हैं ॥ **भावार्थ—**अज्ञानसे क्या क्या नहीं होता ? मृगतो वालूको जल जान पीनेको दौडता खेदखिन्न होता है लोक अंधेरेमें रस्सेको सर्प मान डरकर भागते हैं उसी प्रकार यह आत्मा जैसे वायुकर समुद्र क्षोभरूप हो जाता है वैसे अज्ञानकर अनेक विकल्पोंसे क्षोभरूप होता है । वह परमार्थसे शुद्ध ज्ञानघन है तौभी अज्ञानसे कर्ता होता है ॥ फिर कहते हैं कि ज्ञानसे कर्ता नहीं होता—**ज्ञानाद्** इत्यादि । **अर्थ—**जो पुरुष ज्ञानसे और भेदज्ञानीपनेसे परका तथा आत्माका विशेषकर भेद जानता है वह पुरुष हंसके समान (जैसै हंस दूध जलमिले हुएको भेदकर ग्रहण करता है) चैतन्य धातु अचलको सदा आश्रय करता हुआ जानता ही (ज्ञाता ही) है कुछ भी नहीं करता ॥ **भावार्थ—**जो अपना पराया भेद जानता है वह ज्ञाता ही है कर्ता नहीं है ॥ आगे कहते हैं कि जो कुछ जाना जाता है वह ज्ञानसेही जाना

स्वादभेदव्युदासः । ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिंदती कर्तृभावं ॥ ६० ॥ अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमंजसा । स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥ ६१ ॥ आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति [1]किं । परभावस्य कर्तात्मा मोहोयं व्यवहारिणां ॥ ६२ ॥" ॥ ९७ ॥

तथा हि;—

ववहारेण दु एवं करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥ ९८ ॥

व्यवहारेण त्वात्मा करोति घटपटरथान् द्रव्याणि ।
करणानि च कर्माणि च नोकर्माणीह विविधानि ॥ ९८ ॥

व्यवहारिणां हि यतो यथायमात्मात्मविकल्पव्यापाराभ्यां घटादिपरद्रव्यात्मकं बहिःकर्म

दशगाथापर्यंतं द्विक्रियावादिनिराकरणविषये विशेषव्याख्यानं करोति ॥ ९७ ॥ तद्यथा—परभावानात्मा करोतीति यद्व्यवहारिणो वदति स व्यामोह इत्युपदिशति;—**ववहारेण दु एवं करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि** यतो यथा अन्योन्यव्यवहारेणैवं तु पुनः घटपटरथादि वहिर्द्रव्याणीहापूर्वेण करोत्यात्मा **करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि**

जाता है—**ज्ञानादेव** इत्यादि । **अर्थ**—अग्नि और जलकी उष्णपने और शीतपनेकी व्यवस्था है वह ज्ञानसे ही जानी जाती है और लवण तथा व्यंजनके स्वादका भेद है वह ज्ञानसे ही जाना जाता है । और अपने रसकर विकाशरूप हुआ नित्य चैतन्य धातु उसका तथा क्रोधादिक भावोंका भेद भी ज्ञानसे ही जाना जाता है । जो यह भेद कर्तापनेके भावको भेदरूप करता प्रगट होता है ॥ फिर कहते हैं कि आत्मा कर्ता होता है तौभी अपने भावका ही है—**अज्ञानं** इत्यादि । **अर्थ**—इस प्रकार अज्ञानरूप तथा ज्ञानरूप भी आत्माको ही करताहुआ आत्मा प्रगटपनेसे अपने ही भावका कर्ता है परभावका कर्ता तो कभी नहीं है ॥ आगे आगेकी गाथाकी सूचनिकारूप श्लोक कहते हैं—**आत्मा** इत्यादि । **अर्थ**—आत्मा ज्ञानस्वरूप है वह आप ज्ञान ही है ज्ञानसे अन्य किसको करे? किसीको नहीं करता । और परभावका कर्ता आत्मा है ऐसा मानना तथा कहना है यह व्यवहारी जीवोंका मोह (अज्ञान) है ॥ ९७ ॥

आगे यही कहते हैं कि व्यवहारी ऐसा कहते हैं;—[**आत्मा**] आत्मा [**व्यवहारेण तु**] व्यवहारकर [**घटपटरथान् द्रव्याणि**] घट पट रथ इन वस्तुओंको [**करोति**] करता है [**च**] और [**करणानि**] इंद्रियादिक करणपदार्थोंको करता है [**च**] और [**कर्माणि**] ज्ञानावरणादिक तथा क्रोधादिक द्रव्यकर्म भावकर्मोंको करता है [**च इह**] तथा इस लोकमें [**विविधानि**] अनेकप्रकारके

---

१ अत्र आदा इत्यपि पाठः ।

कुर्वन् प्रतिभाति ततस्तथा क्रोधादिपरद्रव्यात्मकं च समस्तमंतःकर्मापि करोत्यविशेषादित्यस्ति व्यामोहः ॥ ९८ ॥

स न सन्;—

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥ ९९ ॥

यदि स परद्रव्याणि च कुर्यान्नियमेन तन्मयो भवेत् ।
यस्मान्न तन्मयस्तेन स न तेषां भवति कर्ता ॥ ९९ ॥

यदि खल्वयमात्मा परद्रव्यात्मकं कर्म कुर्यात् तदा परिणामपरिणामिभावान्यथानुपपत्तेर्नियमेन तन्मयः स्यात् न च द्रव्यांतरमयत्वे द्रव्योच्छेदापत्तेस्तन्मयोस्ति । ततो

तथाभ्यतरेपि करणार्णीद्रियाणि च नोकर्माणि इह जगति विविधानि क्रोधादिद्रव्यकर्माणीहापूर्वेण विशेषेण करोतीति मन्यंते, ततोस्ति व्यामोहो मूढत्वं व्यवहारिणां ॥ ९८ ॥ अथ स व्यामोहः सत्यो न भवतीति कथयति;—**जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज** यदि स आत्मा परद्रव्याणि नियमेनैकांतरूपेण करोति तदा तन्मयः स्यात् **जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता** यस्मात्सहजशुद्धस्वाभाविकानतसुखादिस्वरूप त्यक्त्वा परद्रव्येण सह तन्मयो न भवति । ततः स आत्मा तेषां

[नोकर्माणि] शरीरादि नोकर्मोंको करता है ॥ **टीका**—जिसकारण व्यवहारी जीवोंके यह आत्मा जैसे अपने विकल्प और व्यापार इन दोनोंकर घटआदि परद्रव्यस्वरूप बाह्यकर्म करता प्रतिभासता है इसकारण उसीतरह क्रोधादिक परद्रव्यस्वरूप समस्त अंतरगकर्मको भी करता है । क्योंकि दोनों परद्रव्यस्वरूप हैं इनके करनेमें विशेष (भेद) नहीं इसतरह व्यवहारी जीवोंका अज्ञान है ॥ **भावार्थ**—परद्रव्योंका कर्ता अपनेको मानना यह व्यवहार है वह परमार्थदृष्टिमें अज्ञान है ॥ ९८ ॥

आगे कहते हैं कि यह व्यवहारका मानना परमार्थदृष्टिमें अच्छा नहीं है सत्यार्थ नहीं है;—**[यदि]** जो **[सः]** वह आत्मा **[परद्रव्याणि]** परद्रव्योंको **[कुर्यात्]** करे **[च]** तो **[नियमेन]** वह आत्मा उन परद्रव्योंसे नियमकर **[तन्मयः]** तन्मय **[भवेत्]** होजाय **[यस्मात्]** परतु **[तन्मयः न]** तन्मय नहीं होता **[तेन]** इसीकारण **[सः]** वह **[तेषां]** उनका **[कर्ता]** कर्ता **[न भवति]** नहीं है ॥ **टीका**—जो निश्चयकर यह आत्मा परद्रव्यस्वरूप कर्मको करे तो परिणामपरिणामीभावकी अन्यथा अप्राप्ति होनेसे नियमकर तन्मय हो जाय सो ऐसा नहीं है । यदि ऐसें हो तो अन्यद्रव्यसे अन्यद्रव्य तन्मय होनेसे अन्यद्रव्यका नाश हो जाय । इसलिये व्याप्यव्यापकभावकर तो उस परद्रव्यका कर्ता आत्मा नहीं है ॥ **भावार्थ**—अन्यद्रव्यका कर्ता होवे तो जुदे २ द्रव्य क्यों रहैं अन्यद्रव्यका नाश होय यह

व्याप्यव्यापकभावेन न तस्य कर्तास्ति ॥ ९९ ॥

निमित्तनैमित्तकभावेनापि न कर्तास्ति;—

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।

जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥ १०० ॥

जीवो न करोति घटं नैव पटं नैव शेषकानि द्रव्याणि ।

योगोपयोगावुत्पादकौ च तयोर्भवति कर्त्ता ॥ १०० ॥

यत्किल घटादि क्रोधादि वा परद्रव्यात्मकं कर्म तदयमात्मा तन्मयत्वानुषंगाद् व्याप्यव्यापकभावेन तावन्न करोति नित्यकर्तृत्वानुषंगान्निमित्तकनैमित्तकभावेनापि न तत्कुर्यात् । अनित्यौ योगोपयोगावेव तत्र निमित्तत्वेन कर्त्तारौ योगोपयोगयोस्त्वात्मवि-

---

परद्रव्याणामुपादानरूपेण कर्ता न भवतीत्यभिप्रायः ॥९९॥ अथ न केवलमुपादानरूपेण कर्ता न भवति किंतु निमित्तरूपेणापीत्युपदिशति;—**जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे** न केवलमुपादानरूपेण निमित्तरूपेणापि जीवो न करोति घटं न पटं नैव शेषद्रव्याणि । कुत इति चेत्? नित्यं सर्वकालं कर्मकर्तृत्वानुषंगात् । कस्तर्हि करोति? **जोगुवओगा उप्पादगा य** आत्मनो विकल्पव्यापाररूपौ विनश्वरौ योगोपयोगावेव तत्रोत्पादकौ भवतः । **सो तेसिं हवदि कत्ता** सुखदुःखजीवितमरणादिसमताभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणभे-

---

वड़ा दोष आवे । इसलिये अन्यद्रव्यका कर्ता अन्यद्रव्यको कहना अच्छा नहीं है ॥९९॥

आगे कोई जानेगा कि व्याप्यव्यापकभावकर तो कर्ता नहीं है तौभी निमित्तनैमित्तिकभावकर तो कर्ता होगा उसको निषेधते हैं कि निमित्तनैमित्तिकभावकर भी कर्ता नहीं है;—[**जीवः**] जीव [**घटं**] घड़ेको [**न करोति**] नहीं करता [**एव**] और [**पटं**] पटको भी [**न**] नहीं करता [**शेषकाणि**] शेष [**द्रव्याणि**] द्रव्योंको भी [**नैव**] नहीं करता [**योगोपयोगौ च**] जीवके योग और उपयोग ये दोनों [**उत्पादकौ**] घटादिकके उत्पन्न करनेके निमित्त हैं [**तयोः**] उन दोनों योगउपयोगोंका यह जीव [**कर्ता**] कर्ता [**भवति**] है ॥ **टीका**—जो कुछ घटादिक तथा क्रोधादिक परद्रव्यस्वरूप प्रगट कर्म देखे जाते हैं उनको यह आत्मा व्याप्यव्यापकभावकर नहीं करता । जो ऐसें करे तो उनसे तन्मयपनेका प्रसंग आये । तथा निमित्तनैमित्तिकभावकर भी नहीं करता । क्योंकि ऐसे करे तो सदा सब अवस्थाओंमें कर्तापनेका प्रसंग आजाय । इन कर्मोंको कौन करता है सो कहते हैं । इस आत्माके योग (मनवचनकायके निमित्तसे प्रदेशोंका चलना) और उपयोग (ज्ञानका कषायोंसे उपयुक्त होना) ये दोनो अनित्य हैं सब अवस्थाओंमें व्यापक नहीं है । वे उन घटादिकके तथा क्रोधादिपरद्रव्यस्वरूप कर्मोंके निमित्तमात्रकर कर्ता कहे जाते हैं । योग तो आत्माके प्रदेशोंका चलनरूप व्यापार है और उपयोग आत्माके चैतन्यका रागादि-

कल्पव्यापारयोः कदाचिदज्ञानेन करणादात्मापि कर्तास्तु तथापि न परद्रव्यात्मककर्मकर्ता स्यात् ॥ १०० ॥

ज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता स्यात्;—

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ १०१ ॥

ये पुद्गलद्रव्याणां परिणामा भवति ज्ञानावरणानि।
न करोति तान्यात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी ॥ १०१ ॥

ये खलु पुद्गलद्रव्याणां परिणामा गोरसव्याप्तदधिदुग्धमधुराम्लपरिणामवत्पुद्गलद्रव्य-

---

दविज्ञानाभावाद्यदा काले शुद्धबुद्धैकस्वभावात्परमात्मस्वरूपाद्भ्रष्टो भवति तदा स जीवस्तयोर्योगोपयोगयोः कदाचित्कर्ता भवति। न सर्वदा। अत्र योगशब्देन बहिरंगहस्तादिव्यापारः उपयोगशब्देन चातरंगविकल्पो गृह्यते। इति परंपरया निमित्तरूपेण घटादिविषये जीवस्य कर्तृत्वं स्यात्। यदि पुनः मुख्यवृत्त्या निमित्तकर्तृत्वं भवति तर्हि जीवस्य नित्यत्वात् सर्वदैव कर्मकर्तृत्वप्रसगात् मोक्षाभावः। इति व्यवहारव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १०० ॥ अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता न च परभावस्येति कथयति;—**जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा** ये कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपरिणामाः पर्याया ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपा भवंति **ण करेदि ताणि आदा** तान् पर्यायान् व्याप्यव्यापकभावेन मृत्तिकाकलशमिवात्मा न करोति गोरसाध्यक्षवत् **जो जाणदि सो हवदि णाणी** इति यो

विकाररूप परिणाम है। इन दोनोंका कदाचित्काल अज्ञानसे इनको करनेसे इनका आत्माको भी कर्ता कहा जाता है। परतु परद्रव्यस्वरूप कर्मका तो कर्ता कभी भी नहीं है ॥ **भावार्थ**—आत्माके योग उपयोग, घटादि तथा क्रोधादिकको निमित्त हैं उनको तो उनका निमित्तकर्ता कहा जासकता है परंतु आत्माको उनका कर्ता नहीं कहा जासकता। तथा आत्माको योगउपयोगका कर्ता संसारअवस्थामें अज्ञानसे कहते हैं। यहां तात्पर्य ऐसा है कि, द्रव्यदृष्टिकर तो कोई द्रव्य अन्य किसी द्रव्यका कर्ता नहीं है, परंतु पर्यायदृष्टिकर किसी द्रव्यका पर्याय किसी समय किसी अन्य द्रव्यके पर्यायको निमित्त होता है। इस अपेक्षासे अन्यके परिणाम अन्यके परिणामके निमित्तकर्ता कहे जाते हैं परंतु परमार्थसे द्रव्य अपने परिणामका कर्ता है अन्यके परिणामका अन्यद्रव्य कर्ता नहीं है ऐसा जानना ॥ १०० ॥

आगे ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी ज्ञानका ही कर्ता है,—[**ये**] जो [**ज्ञानावरणानि**] ज्ञानावरणादिक [**पुद्गलद्रव्याणां**] पुद्गलद्रव्योंके [**परिणामाः**] परिणाम [**भवंति**] है [**तानि**] उनको [**आत्मा**] आत्मा [**न करोति**] नहीं करता

व्याप्तत्वेन भवंतो ज्ञानावरणानि भवंति तानि तटस्थगोरसाध्यक्ष इव न नाम करोति ज्ञानी किंतु यथा स गोरसाध्यक्षस्तद्दर्शनमात्मव्याप्तत्वेन प्रभवद्व्याप्य पश्यत्येव तथा पुद्गलद्रव्यपरिणामनिमित्तं ज्ञानमात्मव्याप्यत्वेन प्रभवद्व्याप्य जानात्येव ज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता स्यात् । एवमेव च ज्ञानावरणपदपरिवर्तनेन कर्मसूत्रस्य विभागेनोपन्यासाद्दर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायसूत्रैः सप्तभिः सह मोहरागद्वेषक्रोधमानमायालोभनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि । अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि ॥ १०१ ॥

जानाति मिथ्यात्वविषयकषायपरित्यागं कृत्वा निर्विकल्पसमाधौ स्थितः सन् स ज्ञानी भवति । न च परिज्ञानमात्रेण । इदमत्र तात्पर्यं । वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी जीवः शुद्धनयेन शुद्धोपादानरूपेण शुद्धज्ञानस्यैव कर्ता । किंवदिति चेत् । पीतत्वादिगुणाना सुवर्णवत् उष्णादिगुणानामग्निवत् अनतज्ञानादिगुणानां सिद्धपरमेष्ठिवदिति । न च मिथ्यात्वरागादिरूपस्याज्ञानभावस्य कर्तेति शुद्धोपादानरूपेण शुद्धज्ञानादिभावनामशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिभावाना च तद्रूपेण परिणमन्नेव कर्तृत्वं ज्ञातव्यं । भोक्तृत्वं च न च हस्तव्यापारवदीहापूर्वक घटकुंभकारवदिति । एवमेव च ज्ञानावरणपदपरिवर्तनेन दर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रातरायसंज्ञैः सप्तभिः कर्मभेदैः सह मोहरागद्वेषक्रोधमानमायालोभनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि पोडश व्याख्येयानि । अनेन प्रकारेण शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणा असंख्येयलोकमात्रप्रमिता अन्येपि विभावपरिणामा ज्ञातव्याः ॥१०१॥ अथाज्ञानी चापि रागादिस्वरूपस्याज्ञानभाव-

---

[यः] जो [जानाति] जानता है [सः] वह [ज्ञानी] ज्ञानी [भवति] है ॥ **टीका**—जो निश्चयनयकर ज्ञानावरणरूप परिणाम हैं वे "जैसे गोरसमें व्याप्त दही दूध मीठा खट्टा परिणाम है वैसे" पुद्गलद्रव्यसे व्याप्तपनेकर हुए पुद्गलद्रव्यके ही परिणाम है उनको जैसे गोरसके निकट बैठा पुरुष उसके परिणामको देखता है जानता है उसीतरह आत्मा ज्ञानी उन पुद्गलके परिणामोंका ज्ञाता द्रष्टा है कर्ता नहीं है । तो क्या है ? । जैसे गोरसके निकट बैठाहुआ पुरुष उसको देखता है उस देखनेरूप अपने परिणामसे व्यापनेरूप हुआ उसको व्याप्तकर देखता ही है उसीतरह जिसको पुद्गलपरिणामनिमित्त है ऐसे अपने ज्ञानको अपनेसे व्याप्तपनेकर हुआ उसको व्याप्यकर जानताही है । इसतरह ज्ञानी ज्ञानका ही कर्ता होता है । इसीतरह ज्ञानावरणपदको पलटकर कर्मसूत्रके विभागकर स्थापनेसे दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र अंतराय इनके सात सूत्रोंकर और उनके साथ मोह राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन ये सोलहसूत्र व्याख्यानरूप करना । तथा इसीरीतिसे अन्य भी विचार लेना ॥ १०१ ॥

अज्ञानी चापि परभावस्य न कर्ता स्यात्;—

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा॥ १०२॥

यं भावं शुभमशुभं करोत्यात्मा स तस्य खलु कर्ता।
तत्तस्य भवति कर्म स तस्य तु वेदक आत्मा॥ १०२॥

इह खल्वनादेरज्ञानात्परात्मनोरेकत्वाध्यानेन पुद्गलकर्मविपाकदशाभ्यां मंदतीव्रस्वादाभ्यामचलितविज्ञानघनैकस्वादस्याप्यात्मनः स्वादं भिंदानः शुभमशुभं वा योयं भावमज्ञानरूपमात्मा करोति स आत्मा तदा तन्मयत्वेन तस्य भावस्य भावकत्वाद्भवत्यनुभविता,

---

स्यैव कर्ता न च ज्ञानावरणादिपरद्रव्यस्येति निरूपयति;—**जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता** सातासातोदयावस्थाभ्यां तीव्रमंदस्वादाभ्यां सुखदुःखरूपाभ्यां वा चिदानंदैकस्वभावेनैकस्याप्यात्मनो द्विधा भेदं कुर्वाणः सन् यं भावं शुभमशुभं वा करोत्यात्मनः स्वतंत्ररूपेण व्यापकत्वात्स तस्य भावस्य खलु स्फुटं कर्ता भवति **तं तस्स होदि कम्मं** तदेव तस्य शुभाशुभरूप भावकर्म भवति। तेनात्मना क्रियमाणत्वात् **सो तस्स दु वेदगो अप्पा** स आत्मा तस्य तु शुभाशुभरूपस्य भावकर्मणो वेदको भोक्ता भवति स्वतंत्ररूपेण भोक्तृत्वात् न च द्रव्यकर्मणः। किं च विशेषः। अज्ञानी जीवो शुद्धनिश्चयनयेनाशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिभावानामेव कर्ता न च द्रव्यकर्मणः स चाशुद्धनिश्चयः। यद्यपि द्रव्यकर्मकर्तृत्वरूपासद्भूतव्यवहारापेक्षया निश्चयसंज्ञां लभते तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। हे भगवन् रागादीनामशुद्धोपादानरूपेण कर्तृत्वं भणितं तदुपादानं शुद्धाशुद्धभे-

---

आगे कहते हैं कि जो अज्ञानी है वह भी परद्रव्यके भावका कर्ता नहीं है,—**[आत्मा]** आत्मा **[यं]** जिस **[शुभं अशुभं]** शुभ अशुभ **[भावं]** अपने भावको **[करोति]** करता है **[सः]** वह **[तस्य]** उस भावका **[कर्ता]** कर्ता **[खलु]** निश्चयसे होता है **[तत्]** वह भाव **[तस्य]** उसका **[कर्म]** कर्म **[भवति]** होता है **[स आत्मा तु]** वही आत्मा **[तस्य]** उस भावरूप कर्मका **[वेदकः]** भोक्ता होता है। **टीका**—इस लोकमें आत्मा अनादिकालसे अज्ञानसे परका और आत्माका एकपनेका निश्चयकर तीव्र मंद स्वादरूप जो पुद्गलकर्मकी दो दशायें उनकर यद्यपि आप अचलित विज्ञानघनरूप एकस्वादस्वरूप है तौभी स्वादको भेदरूप करता हुआ शुभ तथा अशुभ अज्ञानरूप भावको करता है। वह आत्मा उसकाल उस भावसे तन्मयपनेकर उस भावके व्यापकपनेकर उस भावका कर्ता होता है। तथा वह भाव भी उस समय उस आत्माके तन्मयपनेकर उस आत्माका व्याप्य होता है इसलिये उसका कर्म होता है। वही आत्मा उससमय उस भावसे तन्मयपनेकर उस भावका भावक होता है इसलिये उसका अनुभव करनेवाला भोक्ता होता है। वह भाव

स भावोपि च तदा तन्मयत्वेन तस्यात्मनो भाव्यत्वात् भवत्यनुभाव्यः । एवमज्ञानी चापि परभावस्य न कर्ता स्यात् ॥ १०२ ॥

न च परभावः केनापि कर्तुं पार्येत;—

जो जह्मि गुणो दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥ १०३ ॥

यो यस्मिन् गुणो द्रव्ये सोन्यस्मिंस्तु न संक्रामति द्रव्ये ।
सोन्यदसंक्रांतः कथं तत्परिणामयति द्रव्यं ॥ १०३ ॥

इह किल यो यावान् कश्चिद्वस्तुविशेषो यस्मिन् यावति कस्मिंश्चिच्चिदात्मन्यचिदात्मनि वा द्रव्ये गुणे च स्वरसत एवानादित एव वृत्तः स खल्वचलितस्य वस्तुस्थितिसीम्नो

देन कथं द्विधा भवतीति । तत्कथ्यते । औपाधिकमुपादानमशुद्धं तप्तायःपिंडवत्, निरुपाधिरूपमुपादानं शुद्धं पीतत्वादिगुणानां सुवर्णवत् अनंतज्ञानादिगुणानां सिद्धजीववत् उष्णत्वादिगुणानामग्निवत् । इद व्याख्यानमुपादानकारणव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धोपादानरूपेण सर्वत्र स्मरणीयमिति भावार्थः ॥ १०२ ॥ अथ न च परभावः केनाप्युपादानरूपेण कर्तुं शक्यते;— **जो जह्मि गुणो दव्वे सो अण्ण दु ण संकमदि दव्वे** यो गुणश्चेतनस्तथैवाचेतनो वा यस्मिश्चेतनाचेतने द्रव्ये अनादिसंबंधेन स्वभावत एव स्वत एव प्रवृत्तः सोऽन्यद्रव्ये तु न संक्रमत्येव सोपि **सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं** स चेतनोऽचेतनो

भी उससमय उस आत्माके तन्मयपनेकर आत्माके भावने योग्य होता है इसकारण अनुभवने योग्य (भोगने योग्य) होता है । इसतरह अज्ञानी भी परभावका कर्ता नहीं है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानी भी अपने अज्ञानभावरूप शुभाशुभभावोंका ही कर्ता अज्ञानअवस्थामें है परद्रव्यके भावका कर्ता तो कभी नहीं है ॥ १०२ ॥

आगे कहते हैं कि परभावको कोई भी नहीं कर सकता ऐसा न्याय है,—[**यः**] जो द्रव्य [**यस्मिन्**] जिस अपने [**द्रव्ये**] द्रव्यस्वभावमें [**गुणे**] तथा अपने जिस गुणमें वर्तता है [**सः**] वह [**अन्यस्मिन् तु**] अन्य [**द्रव्ये**] द्रव्यमें तथा गुणमें [**न संक्रामति**] संक्रमणरूप नहीं होता पलटकर अन्यमें नहीं मिल जाता [**सः**] वह [**अन्यदसंक्रांतः**] अन्यमें नहीं मिलता हुआ [**तत् द्रव्यं**] उस अन्यद्रव्यको [**कथं**] कैसे [**परिणामयति**] परिणमा सकता है कभी नहीं परिणमा सकता ॥ **टीका**—इस लोकमें जितने वस्तुविशेष हैं वे अपने चैतन्यस्वरूप तथा अचेतनस्वरूप द्रव्यमें तथा अपने गुणमें अपने निजरससे ही अनादिसे वर्तते हैं । सो निश्चयकर चलित जो अपनी वस्तुस्थितिकी मर्यादा उसके भेदनेको असमर्थ हैं इसलिये अपने स्वभावमें ही रहते हैं । द्रव्यांतर तथा गुणांतरसे संक्रमणरूप नहीं होते अर्थात् नहीं पलटते । इसतरह आत्मा भी अन्यद्रव्यरूप तथा अन्यगुणरूप नहीं होता तो अन्य वस्तु

भेत्तुमशक्यत्वात्तस्मिन्नेव वर्तेते न पुनः द्रव्यांतरं वा संक्रामेत । द्रव्यांतरं गुणांतरं वाऽसंक्रामंश्च कथं त्वन्यं वस्तुविशेषं परिणामयेत् । अतः परभावः केनापि न कर्तुं पार्येत१०३।

अतः स्थितः खल्वात्मा पुद्गलकर्मणामकर्ता;—

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि ।
तं उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता ॥ १०४ ॥

द्रव्यगुणस्य चात्मा न करोति पुद्गलमये कर्मणि ।
तदुभयमकुर्वंस्तस्मिन्कथं तस्य स कर्ता ॥ १०४ ॥

यथा खलु मृण्मये कलशकर्मणि मृद्द्रव्यमृद्गुणयोः स्वरसत एव वर्तमाने द्रव्यगुणांतरसंक्रमस्य वस्तुस्थित्यैव निषिद्धत्वादात्मानमात्मगुणं वा नाधत्ते स कलशकारः द्रव्यांतरसंक्रममंतरेणान्यस्य वस्तुनः परिणमयितुमशक्यत्वात् तदुभयं तु तस्मिन्ननादधानो न

वा गुण. कर्ता अन्यद्भिन्न द्रव्यांतरमसंक्रातः सन् कथं द्रव्यांतर परिणामयेत्तत्कथ कुर्यादुपादानरूपेण न कथमपि ॥ १०३ ॥ ततः स्थित आत्मा पुद्गलकर्मणामकर्तेति **दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि** यथा कुंभकारः कर्ता मृण्मयकलशकर्मविषये मृत्तिकाद्रव्यस्य संबधि जडस्वरूप वर्णादिमृत्तिकाकलशमिव तन्मयत्वेन न करोति तथात्मापि पुद्गलमयद्रव्यकर्मविषये पुद्गलद्रव्यकर्मसबधि जडस्वरूप वर्णादिपुद्गलद्रव्यगुणसबंधिस्वरूपं वा तन्मयत्वेन न करोति **तं उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता** तदुभयमपि पुद्गलद्रव्यकर्मस्वरूपं वर्णादि तद्गुणं वा तन्मयत्वेनाकुर्वाणः सन् तत्र पुद्गलकर्मविषये स जीवः कथ कर्ता भवति न कथमपि । चेतनाचेतनेन परस्वरूपेण न परिणमतीत्यर्थः । अनेन किमुक्तं भवति । यथा स्फटिको निर्मलोपि जपापुष्पादिपरोपाधिना परिणमति तथा कोपि सदा-

---

विशेषको कैसे परिणमावे कभी नहीं परिणमाता । इसीलिये परभावको कोई भी नहीं परिणमा सकता ॥ **भावार्थ**—जो द्रव्यस्वभाव है उसे कोई भी नहीं पलट सकता यह वस्तुकी मर्यादा है ॥ १०३ ॥

आगे कहते हैं कि इसकारण आत्मा निश्चयकर पुद्गलकर्मोंका अकर्ता है यह सिद्ध हुआ,—[**आत्मा**] आत्मा [**पुद्गलमये कर्मणि**] पुद्गलमयकर्ममें [**द्रव्यगुणस्य च**] द्रव्यको तथा गुणको [**न करोति**] नहीं करता [**तस्मिन्**] उसमें [**तदुभयं**] उन दोनोंको [**अकुर्वन्**] नहीं करता हुआ [**तस्य**] उसका [**स-कर्ता**] वह कर्ता [**कथं**] कैसे होसकता है ॥ **टीका**—पहले दृष्टांत कहते हैं,—जैसे मृत्तिकामय कलशनामा कर्म, मृत्तिकानामा द्रव्य और मृत्तिकाका गुण इन दोनोंमें अपने निजरसकर ही वर्तमान है उसमें कुम्हार अपने द्रव्यस्वरूपको तथा अपने गुणको नहीं मिलाता । क्योंकि अन्य द्रव्यका और अन्यगुणका अन्यद्रव्यगुणरूप पलटनेका निषेध वस्तुकी मर्यादा कर रहित है । अन्यद्रव्यरूप हुए विना अन्यवस्तुको अन्यके

तत्त्वतस्तस्य कर्ता प्रतिभाति । तथा पुद्गलमयज्ञानावरणादौ कर्मणि पुद्गलद्रव्यपुद्गलगुणयोः स्वरसत एव वर्तमाने द्रव्यगुणांतरसंक्रमस्य विधातुमशक्यत्वादात्मद्रव्यमात्मगुणं वात्मा न खल्वाधत्ते । द्रव्यांतरसंक्रममंतरेणान्यस्य वस्तुनः परिणमयितुमशक्यत्वात्तदुभयं तु तस्मिन्ननादधानः कथं नु तत्त्वतस्तस्य कर्ता प्रतिभायात् । ततः स्थितः खल्वात्मा पुद्गलकर्मणामकर्त्ता ॥ १०४ ॥

अतोन्यस्तूपचारः—

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण ॥ १०५ ॥

जीवे हेतुभूते बंधस्य तु दृष्ट्वा परिणामं ।
जीवेन कृतं कर्म भण्यते उपचारमात्रेण ॥ १०५ ॥

इह खलु पौद्गलिककर्मणः स्वभावादनिमित्तभूतेप्यात्मन्यनादेरज्ञानात्तन्निमित्तभूतेनाज्ञा-

---

शिवनामा सदा मुक्तोप्यमूर्तोपि परोपाधिना परिणम्य जगत् करोति तं निरस्तं । कस्मादिति चेत् । मूर्तस्फटिकस्य मूर्तेन सहोपाधिसंबधो घटते तस्य पुनः सदा मुक्तस्यामूर्तस्य कथं मूर्तोपाधिः ? न कथमपि सिद्धजीववत् । अनादिबंधजीवस्य पुनः शक्तिरूपेण शुद्धनिश्चयेनामूर्तस्यापि व्यक्तिरूपेण व्यवहारेण मूर्तस्य मूर्तोपाधिदृष्टातो घटत इति भावार्थः । एवं निश्चयनयमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं ॥१०४॥ अतः कारणादात्मा द्रव्यकर्म करोतीति यदभिधीयते स उपचारः— **जीवम्हि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं** परमोपेक्षासंयमभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणस्य भेदज्ञानस्याभावे मिथ्यात्वरागादिपरिणतिनिमित्तहेतुभूते जीवे सति मेघाडंबरचंद्रार्कपरिवेषादियोग्यकाले निमित्तभूते सति मेघेंद्रचापादिपरिणतपुद्गलानामिव कर्मवर्गणायोग्य-

---

परिणमानेके असमर्थपनेसे उन द्रव्योंको तथा गुणोंको अन्यमे नहीं धारता हुआ परमार्थसे उस मृत्तिकामय कलशनामा कर्मका निश्चयकर कुंभकार कर्ता नहीं प्रतिभासता । उसीतरह पुद्गलमय ज्ञानावरणादिकर्म है वे पुद्गलद्रव्य और पुद्गलके गुणोंमे अपने रससेही वर्तमान है उनमें आत्मा अपने द्रव्यस्वभावको और अपने गुणको निश्चयकर नहीं धारण कर सकता । क्योंकि अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्यमें तथा अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्यके गुणोंमें संक्रमण होनेका असमर्थपना है । इसतरह अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्यमें संक्रमणके विना अन्यवस्तुको परिणमानेका असमर्थपना होनेसे उन द्रव्य और गुण दोनोंको उस अन्यमे नहीं रखता आत्मा उस अन्यपुद्गलद्रव्यका कैसे कर्ता होवे कभी नहीं होसकता । इसलिये यह निश्चय हुआ कि आत्मा पुद्गलकर्मोंका अकर्ता है ॥ १०४ ॥

आगे कहते हैं कि इसके सिवाय अन्य निमित्त नैमित्तिकादि भाव हैं उनको देख कुछ अन्यप्रकारसे कहना वह उपचार है,—[**जीवे**] जीवको [**हेतुभूते**] निमित्तरूप होनेसे [**बंधस्य तु**] कर्मबंधका [**परिणामं**] परिणाम होता है उसे

नभावेन परिणमनान्निमित्तीभूते सति संपद्यमानत्वात् पौद्गलिकं कर्मात्मना कृतमिति निर्विकल्पविज्ञानघनभ्रष्टानां विकल्पपरायणानां परेषामस्ति विकल्पः । स तूपचार एव न तु परमार्थः ॥ १०५ ॥

कथं इति चेत् ;—

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदंति जंपदे लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥ १०६ ॥

योधैः कृते युद्धे राज्ञा कृतमिति जल्पते लोकः ।
तथा व्यवहारेण कृतं ज्ञानावरणादि जीवेन ॥ १०६ ॥

यथा युद्धपरिणामेन स्वयं परिणममानैः योधैः कृते युद्धे युद्धपरिणामेन स्वयमपरिणममानस्य राज्ञो राज्ञा किल कृतं युद्धमित्युपचारो न परमार्थः । तथा ज्ञानावरणादिकर्मपरिणामेन

पुद्गलाना ज्ञानावरणादिरूपेण द्रव्यकर्मत्वस्य परिणामं पर्याय दृष्ट्वा **जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण** जीवेन कृतं कर्मेति भण्यते उपचारमात्रेणेति ॥ १०५ ॥ अथ तदेवोपचारकर्मकर्तृत्वं दृष्टांतदार्ष्टांताभ्या दृढयति,—**जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदंति जंपदे लोगो** यथा योधै· युद्धे कृते सति राज्ञा युद्ध कृतमिति जल्पति लोकः । **तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण** तथा व्यवहारनयेन कृतं भण्यते ज्ञानावरणा-

---

[**दृष्ट्वा**] देखकर [**जीवेन**] जीवने [**कर्म कृतं**] कर्म किये हैं यह [**उपचारेण**] उपचारमात्रसे [**भण्यते**] कहा जाता है ॥ **टीका**—इस लोकमें आत्मा निश्चयकर स्वभावसे पुद्गलकर्मका निमित्तभूत नहीं है तौ भी अनादि अज्ञानसे उसका निमित्तरूप हुआ जो अज्ञानभाव उसकर परिणमनेसे पुद्गलकर्मका निमित्तरूप होनेपर उत्पन्न जो पुद्गलकर्म उसको आत्माने किया ऐसा विकल्प होता है वह जो निर्विकल्प विज्ञानघनस्वभावसे भ्रष्ट हैं और विकल्पोंमे तत्पर हैं उन अज्ञानियोंके होता है । यह आत्माने किया ऐसा कहना उपचार है परमार्थ नहीं है ॥ **भावार्थ**—कदाचित् हुए निमित्तनैमित्तिकभावमें कर्तृकर्मभाव कहना उपचार है ॥ १०५ ॥

आगे यह उपचार कैसे है सो दृष्टांतकर कहते हैं,–[**योधैः**] जैसे योधाओंने [**युद्धे कृते**] युद्ध किया उस जगह [**लोकः**] लोक [**इति जल्पते**] ऐसा कहते हैं कि [**राज्ञा कृतं**] राजाने युद्ध किया सो यह [**व्यवहारेण**] व्यवहारसे कहना है [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञानावरणादि**] ज्ञानावरणादि कर्म [**जीवेण कृतं**] जीवने किये हैं ऐसा कहना व्यवहारसे है ॥ **टीका**—जैसे युद्धपरिणामोंसे आप परिणमे जो योधा उन्होंकर किये गये युद्धको युद्धपरिणामोंसे आप नहीं परिणत हुआ जो राजा उसको लोक कहते है कि युद्ध राजाने किया । ऐसा उपचार परमार्थ नहीं है । उसीतरह ज्ञानावरणादिकर्म परिणामोंसे आप परिणमता जो पुद्गलद्रव्य उस-

स्वयं परिणममानेन पुद्गलद्रव्येण कृते ज्ञानावरणादिकर्माणि ज्ञानावरणादिकर्मपरिणामेन स्वयमपरिणममानस्यात्मनः किलात्मना कृतं ज्ञानावरणादिकर्मेत्युपचारो न परमार्थः ॥१०६॥

अत एतत्स्थितं—

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥ १०७ ॥

उत्पादयति करोति च बध्नाति परिणमयति गृह्णाति च ।
आत्मा पुद्गलद्रव्यं व्यवहारनयस्य वक्तव्यं ॥ १०७ ॥

अयं खल्वात्मा न गृह्णाति न परिणमयति नोत्पादयति न करोति न बध्नाति व्याप्यव्यापकभावाभावात् प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च पुद्गलद्रव्यात्मकं कर्म । यत्तु व्याप्यव्यापकभावाभावेपि प्राप्यं विकार्यं निर्वर्त्यं च पुद्गलद्रव्यात्मकं कर्म गृह्णाति परिणमयत्युत्पादयति करोति बध्नाति वात्मेति विकल्पः स किलोपचारः ॥ १०७ ॥

दिकर्म जीवेनेति । ततः स्थितमेतत् । यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वान्नोत्पादयति न करोति न बध्नाति न परिणमयति न गृह्णाति च तथापि ॥ १०६ ॥ अनादिबंधपर्यायवशेन वीतरागस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानाभावात् रागादिपरिणामस्निग्धः सन्नात्मा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यं कुंभकारो घटमिव द्रव्यकर्मरूपेणोत्पादयति करोति स्थितिबंधं बध्नात्यनुभागबंधं परिणमयति प्रदेशबंधं तप्तायः पिंडो जलवत्सर्वात्मप्रदेशैर्गृह्णाति चेत्यभिप्रायः ॥ १०७ ॥

कर किये जो ज्ञानावरणादि कर्म उनके होनेपर ज्ञानावरणादि कर्मपरिणामोंकर आप नहीं परिणमता जो आत्मा उसे कहते हैं कि ये ज्ञानावरणादि कर्म आत्माने किये हैं ऐसा उपचार है परमार्थ नहीं है ॥ **भावार्थ**—जैसा योधा युद्ध करे वहांपर राजाने किया उपचार कर कहते हैं वैसे पुद्गलकर्म जीवने किये ऐसा उपचार कर कहा जाता है ॥ १०६ ॥

आगे कहते हैं कि इस हेतुसे ऐसा निश्चय हुआ,—[**आत्मा**] आत्मा [**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्यको [**उत्पादयति**] उत्पन्न करता है [**च**] और [**करोति**] करता है [**बध्नाति**] बांधता है [**परिणामयति**] परिणमाता है [**च**] तथा [**गृह्णाति**] ग्रहण करता है ऐसा [**व्यवहारनयस्य**] व्यवहारनयका [**वक्तव्यं**] वचन है ॥ **टीका**—यह आत्मा निश्चयकर पुद्गलद्रव्यस्वरूप कर्मको व्याप्य व्यापकभावके अभावसे प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य ये तीन प्रकारके कर्मको ग्रहण नहीं करता न परिणमाता है न उपजाता है न करता है और न वांधता है । व्याप्यव्यापक भावके अभाव होनेपर भी प्राप्य विकार्य निर्वर्त्य ऐसे तीन प्रकारके पुद्गलद्रव्यस्वरूप कर्मको यह आत्मा ग्रहण करता है उपजाता है करता है बांधता है । ऐसा विकल्प होता है यह प्रगट उपचार है ॥ **भावार्थ**—व्याप्यव्यापकभावके विना कर्मका कर्ता कहना वह उपचार है ॥ १०७ ॥

कथमिति चेत्;—

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥ १०८ ॥

यथा राजा व्यवहाराद्दोषगुणोत्पादक इत्यालपितः ।
तथा जीवो व्यवहाराद् द्रव्यगुणोत्पादको भणितः ॥ १०८ ॥

यथा लोकस्य व्याप्यव्यापकभावेन स्वभावत एवोत्पद्यमानेषु गुणदोषेषु व्याप्यव्यापकभावाभावेऽपि तदुत्पादको राजेत्युपचारः । तथा पुद्गलद्रव्यस्य व्याप्यव्यापकभावेन स्वभावत एवोत्पद्यमानेषु व्याप्यव्यापकभावाभावेपि तदुत्पादको जीव इत्युपचारः ॥ "जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव । एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ ॥ ६३ ॥" ॥ १०८ ॥

अथैतदेव व्याख्यानं दृष्टांतदार्ष्टांताभ्या समर्थयति,—**जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो** यथा राजा लोके व्यवहारेण सदोषिनिर्दोषिजनाना दोषगुणोत्पादको भणितः **तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो** तथा जीवोपि व्यवहारेण पुद्गलद्रव्यस्य पुण्यपापगुणयोरुत्पादको भणितः । इति व्यवहारमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं । एवं द्वि-

---

आगे पूछते हैं कि यह उपचार किस तरहसे है उसका उत्तर दृष्टांत कर कहते है,—**[यथा]** जैसे **[राजा]** प्रजामे राजा **[दोषगुणोत्पादकः]** दोष और गुणोंका उत्पन्न करनेवाला है **[इति]** ऐसा **[व्यवहारात्]** व्यवहारसे **[आलपितः]** कहा है **[तथा]** उसीतरह **[जीवः]** जीवको भी **[व्यवहारात्]** व्यवहारसे **[द्रव्यगुणोत्पादकः]** पुद्गलद्रव्यमे द्रव्यगुणका उत्पादक **[भणितः]** कहा गया है ॥ **टीका**—जैसे प्रजाके व्याप्यव्यापकभावकर स्वभावसे ही उत्पन्न जो गुण और दोष उनमें राजाके व्याप्य व्यापकभावका अभाव है तौभी लोक कहते हैं कि गुण दोषका उपजानेवाला राजा है ऐसा उपचार (व्यवहार) है उसीतरह पुद्गल द्रव्यके व्याप्यव्यापकभावकर स्वभावसे ही उत्पन्न गुण दोषोंमें जीवके व्याप्यव्यापकभावका अभाव है तौभी उन गुण दोषोंका उपजानेवाला जीव है ऐसा उपचार है ॥ **भावार्थ**—जैसे लोकमें कहते है कि जैसा राजा हो वैसी ही प्रजा होती है ऐसा कहकर गुण दोषका कर्ता राजाको कहा जाता है उसीतरह पुद्गल द्रव्यके गुणदोषको कर्ता जीवको कहते हैं । जब परमार्थदृष्टिसे विचारो तो उपचार है ॥ आगे पूछते हैं कि पुद्गल कर्मका कर्ता यदि जीव नहीं है तो कौन है ऐसे प्रश्नका काव्य कहते हैं—**जीवः** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुद्गल कर्मको जीव नहीं करता तो उस पुद्गलकर्मको कौन करता है ? ऐसी आशंकाकर इस कर्ता कर्मका तीव्र वेगरूप मोह (अज्ञान) के दूर करनेको पुद्गलकर्मका कर्ता कहते हैं । सो हे ज्ञानके इच्छक पुरुषो ! तुम सुनो ॥ १०८ ॥

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥ १०९ ॥
तेसिं पुणोवि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो ।
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥ ११० ॥
एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा ।
ते जदि करंति कम्मं णवि तेसिं वेदगो आदा ॥ १११ ॥
गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा ।
तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥ ११२ ॥

सामान्यप्रत्ययाः खलु चत्वारो भण्यंते बंधकर्त्तारः ।
मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगौ च बोद्धव्याः ॥ १०९ ॥
तेषां पुनरपि चायं भणितो भेदस्तु त्रयोदशविकल्पः ।
मिथ्यादृष्ट्यादिर्यावत्सयोगिनश्चरमांतः ॥ ११० ॥
एते अचेतनाः खलु पुद्गलकर्मोदयसंभवा यस्मात् ।
ते यदि कुर्वंति कर्म नापि तेषां वेदक आत्मा ॥ १११ ॥
गुणसंज्ञितास्तु एते कर्म कुर्वंति प्रत्यया यस्मात् ।
तस्माज्जीवो कर्त्ता गुणाश्च कुर्वंति कर्माणि ॥ ११२ ॥

पुद्गलकर्मणः किलः पुद्गलद्रव्यमेवैकं कर्तृ तद्विशेषाः मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा बंधस्य

क्रियावादिनिराकरणोपसहारव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथा गताः ॥ १०८ ॥ ननु निश्चयेन द्रव्यकर्म न करोत्यात्मा बहुधा व्याख्यातं तेनैव द्विक्रियावादिनिराकरण सिद्धं पुनरपि किमर्थं पिष्टपेषणमिति । नैवं, हेतुहेतुमद्भावव्याख्यानज्ञापनार्थमिति नास्ति दोषः । तथाहि—यत एव हेतोर्निश्चयेन द्रव्यकर्म न करोति तत एव हेतोर्द्विक्रियावादिनिराकरणं सिद्ध्यतीति हेतुमद्भावव्याख्यानं ज्ञातव्य । इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपे महाधिकारमध्ये पूर्वोक्तप्रकारेण **जदि सो पुग्गलदव्वं करेज्ज** इत्यादिगाथाद्वयेन सक्षेपव्याख्यानं । ततः परं द्वादशगाथाभिस्तस्यैव विशेषव्याख्यानं ततोप्येकादशगाथाभिस्तस्यैवोपसहाररूपेण पुनरपि विशेषविवरणमिति समुदायेन पंचविंशतिगाथाभिः द्विक्रियावादिनिषेधकनामा तृतीयोत्तराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं **सामण्णपच्चया** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण सप्तगाथापर्यंतं मूलप्रत्ययचतुष्टयस्य कर्मकर्तृत्वमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति । तत्र सप्तकमध्ये जैनमते शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेण जीवः कर्म न करोति प्रत्यया एवं कुर्वंतीति कथनरूपेण गाथाचतुष्टय । अथवा शुद्धनिश्चयविवक्षा ये नेच्छंत्येकांतेन जीवो न करोतीति वदंति साख्यमतानुसारिणः तान्प्रति

अव इसके उत्तरकी गाथा कहते हैं,—[**सामान्यप्रत्ययाः**] प्रत्यय अर्थात् कर्म-

सामान्यहेतुतया चत्वारः कर्त्तारः, त एव विकल्प्यमाना मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यंतास्त्रयोदश कर्त्तारः । अथैते पुद्गलकर्मविपाकविकल्पादत्यंतमचेतनाः संतस्त्रयोदश कर्तारः केवला एव यदि व्याप्यव्यापकभावेन किंचनापि पुद्गलकर्म कुर्युस्तदा कुर्युरेव किं जीवस्यात्रापतितं । अथायं तर्कः । पुद्गलमयमिथ्यात्वादीन् वेदयमानो जीवः स्वयमेव मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा

दूपण ददाति । कथमिति चेत् । यदि ते प्रत्यया एव कर्म कुर्वंति तर्हि जीवो न हि वेदकस्तेषां कर्मणामित्येक दूपणं । अथवा तेपा मते जीव एकातेन कर्म न करोतीति द्वितीयं दूषण । तदनतरं शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेण न च जीवप्रत्यययोरेकत्वं जैनमताभिप्रायेणेति गाथात्रयं । अथवा पूर्वोक्तप्रकारेण ये नयविभाग नेच्छति तान्प्रति पुनरपि दूपणं । कथमिति चेत् । जीवप्रत्यययोरेकातेनैकत्वे सति जीवाभाव इत्येक दूपण । एकांतेन भिन्नत्वे सति ससाराभाव इति द्वितीय दूपणमिति चतुर्थांतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—निश्चयेन मिथ्यात्वादिपौद्गलिकप्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति प्रतिपादयति,—**सामण्णपच्चया खलु चउरो भणंति बंधकत्तारो** निश्चयनयेनाभेदविवक्षायां पुद्गल एक एव कर्ता भेदविवक्षाया तु सामान्यप्रत्यया मूलप्रत्यया खलु स्फुटं चत्वारो बधस्य कर्तारो भण्यंते सर्वज्ञैः उत्तरप्रत्ययाश्च पुनर्बहवो भवंति । सामान्य कोर्थः । विवक्षाया अभावः सामान्यमिति सामान्यशब्दस्यार्थः सर्वत्र सामान्यव्याख्यानकाले ज्ञातव्य इति । **मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा** ते च मिथ्यात्वाविरतिकपाययोगा बोद्धव्याः । अथ—**तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो** तेपा प्रत्ययानां गुणस्थानभेदेन पुनरिमो भणितो भेदस्त्रयोदशविकल्पः केन प्रकारेण **मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं** मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादिसयोगिभट्टारकस्य चरमसमय यावदिति । अथ **एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा** एते मिथ्यात्वादिभावप्रत्ययाः शुद्धनिश्चयेनाचेतनाः खलु स्फुट । कस्मात् पुद्गलकर्मोदयसभवा यस्मादिति । यथा स्त्रीपुरुपाभ्या समुत्पन्नः पुत्रो विवक्षावशेन देवदत्तायाः पुत्रोय केचन वदति, देवदत्तस्य पुत्रोयमिति केचन वदति दोपो नास्ति । तथा जीवपुद्गलसयोगेनोत्पन्नाः मित्थात्वरागादिभावप्रत्यया अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानरूपेण चेतना जीवसबद्धाः

बंधके कारण जो आस्रव वे सामान्यसे [**चत्वारः**] चार [**बंधकर्तारः**] बंधके कर्ता [**भणिताः**] कहे हैं वे [**मिथ्यात्वं**] मिथ्यात्व [**अविरमणं**] अविरमण [**च**] और [**कषाययोगौ**] कपाय योग [**बोद्धव्याः**] जानने [**तेषां च**] और उनका [**पुनरपि**] फिर [**अयं भेदः**] यह भेद [**त्रयोदशविकल्पः**] तेरह भेदरूप कहा गया है वह [**मिथ्यादृष्ट्यादि**] मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर [**सयोगिचरमांतः यावत्**] संयोग केवली तक है, वे तेरह गुणस्थान जानने ।] **एते**] ये [**खलु**] निश्चय दृष्टिकर [**अचेतनाः**] अचेतन हैं [**यस्मात्** क्योंकि [**पुद्गलकर्मोदयसंभवाः**] पुद्गलकर्मके उदयसे हुए हैं [**यदि ते**] जो वे

पुद्गलकर्म करोति स किलाविवेको यतो न खल्वात्मा भाव्यभावकभावाभावात् । पुद्गल-द्रव्यमयमिथ्यात्वादिवेदकोपि कथं पुनः पुद्गलकर्मणः कर्ता नाम । अथैतदायातं यतः पुद्गलद्रव्यमयानां चतुर्णां सामान्यप्रत्ययानां विकल्पास्त्रयोदश विशेषप्रत्यया गुणशब्दवाच्याः

शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेणाचेतनाः पौद्गलिकाः । परमार्थतः पुनरेकांतेन न जीवरूपाः न च पुद्गलरूपाः शुद्धाहरिद्रयोः संयोगपरिणामवत् । वस्तुतस्तु सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयेन न संत्येवा-ज्ञानोद्भवाः कल्पिता इति । एतावता किमुक्तं भवति । ये केचन वदंत्येकांतेन रागादयो जीवसंबंधिनः पुद्गलसबंधिनो वा तदुभयमपि वचनं मिथ्या । कस्मादिति चेत्, पूर्वोक्तस्त्रीपुरुष-दृष्टांतेन सयोगोद्भवत्वात् । अथ मत सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयेन कस्येति प्रच्छामो वय सूक्ष्मशुद्ध-निश्चयेन तेपामस्तित्वमेव नास्ति पूर्वमेव भणितं तिष्ठति कथमुत्तरं प्रयच्छामः इति । **ते जदि करंति कम्मं** ते प्रत्यया यदि चेत् कुर्वंति कर्म तदा कुर्युरेव जीवस्य किमायातं शुद्धनिश्च-येन सम्मतमेव 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धाणया' इति वचनात् । अथ मतं । जीवो मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा मिथ्यात्वरागादिभावकर्म भुंक्ते यतस्ततः कर्तापि भवतीति । नैवं । **णवि तेसिं वेदगो आदा** यतः शुद्धनिश्चयेन वेदकोपि न हि तेषां कर्मणा । यदा वेदको न भवति तदा कर्त्तापि कथं भविष्यति न कथमपि इति शुद्धनिश्चयेन सम्मतमेव । अथवा ये पुन-रेकांतेनाकर्त्तेति वदंति तान्प्रति दूषण । कथमिति चेत् । यदैकांतेनाकर्ता भवति तदा यथा शु-द्धनिश्चयेनाकर्ता तथा व्यवहारेणाप्यकर्ता प्राप्नोति । ततश्च सर्वथैवाकर्तृत्वे सति संसाराभाव इत्येकं दूषणं । तेषा मते वेदकोपि न भवतीति द्वितीयं च दूषणं । अथ च वेदकमात्मान मन्यते सांख्यास्तेषा स्वमतव्याघातदूषण प्राप्नोतीति । अथ—**गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा** ततः स्थितं गुणस्थानसंज्ञिताः प्रत्ययाः एते कर्म कुर्वंतीति यस्मा-देव पूर्वसूत्रेण भणित । **तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि** तस्मात्

[**कर्म**] कर्मको [**कुर्वन्ति**] करते हैं [**तेषां वेदकः**] उनका भोक्ता [**आत्मा नापि**] आत्मा नहीं होता [**एते तु**] ये [**प्रत्ययाः**] प्रत्यय [**गुणसंज्ञिताः**] गुण नाम वाले हैं [**यस्मात्**] क्योंकि [**कर्म कुर्वंति**] ये कर्मको करते हैं [**तस्मात्**] इसकारण [**जीवः**] जीव तो [**अकर्त्ता**] कर्मका कर्ता नहीं है [**च**] और [**गुणाः**] ये गुण ही [**कर्माणि**] कर्मोंको [**कुर्वंति**] करते हैं ॥

टीका—निश्चयकर पुद्गलकर्मका एक पुद्गल द्रव्य ही कर्ता है । उस पुद्गलद्रव्यके मि-थ्यात्व अविरति कषाय योग ए चार भेद सामान्यपने बंधके कर्ता हैं । वे ही मिथ्या-दृष्टिको आदि लेकर सयोग केवली तक भेदरूप हुए तेरह कर्ता हैं । सो ये पुद्गलकर्म वि-पाकके भेद हैं इसलिये अत्यंत अचेतन हैं जड हैं । वे ही अचेतन हुए केवल पुद्गलक-र्मके कर्ता होकर व्याप्यव्यापकभावकर कुछ पुद्गलकर्मको करें तो करो जीवका इसमें क्या आया ? कुछ भी नहीं । अथवा यहां यह तर्क है कि पुद्गलमयी मिथ्यात्वादिको

केवला एव कुर्वंति कर्माणि। ततः पुद्गलकर्मणामकर्ता जीवो गुणा एव तत्कर्तारस्ते तु पुद्गलद्रव्यमेव। ततः स्थितं पुद्गलकर्मणः पुद्गलद्रव्यमेवैकं कर्तृ ॥१०९।११०।१११।११२॥

न च जीवप्रत्यययोरेकत्वं;—

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥ ११३ ॥
एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥ ११४ ॥
अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥ ११५ ॥

यथा जीवस्यानन्य उपयोगः क्रोधोपि तथा यद्यनन्यः।
जीवस्याजीवस्य चैवमनन्यत्वमापन्नं ॥ ११३ ॥
एवमिह यस्तु जीवः स चैव तु नियमतस्तथाजीवः।
अयमेकत्वे दोषः प्रत्ययनोकर्मकर्मणां ॥ ११४ ॥
अथ ते अन्यः क्रोधोऽन्यः उपयोगात्मको भवति चेतयिता।
यथा क्रोधस्तथा प्रत्ययाः कर्म नोकर्माप्यन्यत् ॥ ११५ ॥

यदि यथा जीवस्य तन्मयत्वाज्जीवादनन्य उपयोगस्तथा जडः क्रोधोप्यनन्य एवेति प्रति-

---

शुद्धनिश्चयेन तेषा कर्मणा जीवः कर्ता न भवति। गुणस्थानसञ्ज्ञिताः प्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति सम्मतमेव। एव शुद्धनिश्चयेन प्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति व्याख्यानरूपेण गाथाचतुष्टय गत ॥ १०९ । ११० । १११ । ११२ ॥ अथ न च जीवप्रत्यययोरेकत्वमेकातेनेति कथ-

---

वेदता हुआ जीव आप ही मिथ्यादृष्टि होकर पुद्गलकर्मको करता है? उसका समाधान ऐसा है कि यह अज्ञान है क्योंकि आत्मा भाव्यभावक भावके अभावसे मिथ्यात्वादि पुद्गलकर्मोंका भोक्ता भी निश्चयकर नहीं है तो पुद्गलकर्मका कर्ता कैसे हो सकता है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलद्रव्यमयी सामान्य चार प्रत्यय उनके विशेष भेदरूप तेरह प्रत्यय वे गुणशब्दसे कहे हैं अर्थात् उनका नाम गुणस्थान है वे ही केवल कर्मोंको करते हैं। इसकारण जीव पुद्गलकर्मोंका अकर्ता है और वे गुणस्थान ही उनके कर्ता है क्योंकि वे गुण पुद्गलद्रव्यमयी ही हैं। इससे पुद्गलकर्मका पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता है यह सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ**—"अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्य कर्ता नहीं होता" इस न्यायसे आत्मद्रव्य पुद्गलद्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है बंधके कर्ता तो योगकषायादिकसे उत्पन्न हुए गुणस्थान हैं वे वास्तवमें अचेतन पुद्गलमयी हैं इसलिये वे पुद्गलकर्मके कर्ता हैं, जीवको कर्ता मानना अज्ञान है ॥ १०९ । ११० । १११ । ११२ ॥

आगे कहते हैं कि जीवके और उन प्रत्ययोंके एकपना भी नहीं है,—[**यथा**]

पत्तिस्तदा चिद्रूपजडयोरनन्यत्वाज्जीवस्योपयोगमयत्ववज्जडक्रोधमयत्वापत्तिः । तथा सति तु य एव जीवः स एवाजीव इति द्रव्यांतरलुप्तिः । एवं प्रत्ययनोकर्मकर्मणामपि जीवादनन्यत्वप्रतिपत्तावयमेव दोषः । अथैतद्दोषभयादन्य एवोपयोगात्मा जीवोऽन्य एव जडस्वभावः

यति;—**जह जीवस्स अणण्णुवओगो** यथा जीवस्यानन्यस्तन्मयो ज्ञानदर्शनोपयोगः । कस्मात्, अनन्यवेद्यत्वात् अशक्यविवेचनत्वाच्चाग्नेरुष्णत्ववत् **कोहो वि तह जदि अणण्णो** तथा क्रोधोपि यद्यनन्यो भवत्येकांतेन । तदा किं दूषणं, **जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं** एवमभेदे सति सहजशुद्धाखंडैकज्ञानदर्शनोपयोगमयजीवस्याजीवस्य चैकत्वमापन्नमिति । अथ—**एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो** एवं पूर्वोक्तसूत्रव्याख्यानक्रमेण य एव जीवः स एव तथैवाजीवः भवति नियमान्निश्चयात् । तथा सति जीवाभावाद् दूषणं प्राप्नोति । **अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं** अयमेव च दोषो जीवाभावरूपः । कस्मिन् सति । एकांतेन निरंजननिजानंदैकलक्षणजीवेन सहैकत्वे सति । केषां । मिथ्यात्वादिप्रत्ययनोकर्मकर्मणामिति । अथ प्राकृतलक्षणबलेन प्रत्ययशब्दस्य ह्रस्वत्वमिति । **अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा** अथ पुनरभिप्रायो भवता पूर्वोक्तजीवाभावदूषणभयात् अन्यो भिन्नः क्रोधो जीवादन्यश्च विशुद्धज्ञानदर्शनमय आत्मा क्रोधात्सकाशात् । **जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्म मवि अण्णं** यथा जडः क्रोधो निर्मलचैतन्यस्वभावजीवाद्भिन्नस्तथा प्रत्ययकर्मनोकर्माण्यपि भिन्नानि शुद्धनिश्चयेन सम्मत एव । किंच, शुद्धनिश्चयेन जीवस्याकर्तृत्वमभोक्तृत्वं च क्रोधादिभ्यश्च भिन्नत्वं च भवतीति व्याख्याने कृते सति द्वितीयपक्षे व्यवहारेण कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च क्रोधादिभ्यश्चाभि-

---

जैसे [**जीवस्य**] जीवके [**अनन्य उपयोगः**] एकरूप उपयोग है [**तथा**] उसीतरह [**यदि**] जो [**क्रोधोपि**] क्रोध भी [**अनन्यः**] एकरूप होजाय तो [**एवं**] इसतरह [**जीवस्य**] जीव [**च**] और [**अजीवस्य**] अजीवके [**अनन्यत्वं**] एकपना [**आपन्नं**] प्राप्त हुआ [**एवं च इह**] ऐसा होनेसे इस लोकमें [**यः तु**] जो [**जीवः**] जीव है [**स एव**] वही [**नियमतः**] नियमसे [**तथा**] वैसा ही [**अजीवः**] अजीव हुआ [**एकत्वे**] ऐसे दोनोंके एकत्व होनेमें [**अयं दोषः**] यह दोष प्राप्त हुआ । [**प्रत्ययनोकर्मकर्मणां**] इसीतरह प्रत्यय नोकर्म और कर्म इनमें भी यही दोष जानना । [**अथ**] अथवा इस दोषके भयसे [**ते**] तेरे मतमें [**क्रोधः**] क्रोध [**अन्यः**] अन्य है और [**उपयोगात्मकः**] उपयोग स्वरूप [**चेतयिता**] आत्मा [**अन्यः**] अन्य [**भवति**] है और [**यथा क्रोधः**] जैसे क्रोध है [**तथा**] उसीतरह [**प्रत्ययाः**] प्रत्यय [**कर्म**] कर्म [**नोकर्म अपि**] और नोकर्म ये भी [**अन्यत्**] आत्मासे अन्य ही हैं ॥ **टीका**—जैसे जीवके साथ तन्मयीपनेसे जीवसे उपयोग अनन्य (एक-

क्रोधः इत्यभ्युपगमः तर्हि यथोपयोगात्मनो जीवादन्यो जडस्वभावः क्रोधः तथा प्रत्ययनोकर्मकर्माण्यप्यन्यान्येव जडस्वभावत्वाविशेषान्नास्ति जीवप्रत्यययोरेकत्वं ११३।११४।११५

न्नत्वं च लभ्यते एव। कस्मात्। निश्चयव्यवहारयोः परस्परसापेक्षत्वात्। कथमिति चेत्। यथा दक्षिणेन चक्षुषा पश्यत्यय देवदत्तः इत्युक्ते वामेन न पश्यतीत्यनुक्तसिद्धमिति। ये पुनरेवं परस्परसापेक्षनयविभागं न मन्यंते सांख्यसदाशिवमतानुसारिणस्तेषा मते यथा शुद्धनिश्चयनयेन कर्ता न भवति क्रोधादिभ्यश्च भिन्नो भवति तथा व्यवहारेणापि। ततश्च क्रोधादिपरिणमनाभावे सति सिद्धानामिव कर्मबधाभावः। कर्मबंधाभावे संसाराभावः ससाराभावे सर्वदा मुक्तत्वं प्राप्नोति। स च प्रत्यक्षविरोधः, ससारस्य प्रत्यक्षेण दृश्यमानत्वादिति। एवं प्रत्ययजीवयोरेकातेनैकत्वनिराकरण रूपेण गाथात्रयं गतं। अत्राह शिष्यः। शुद्धनिश्चयेनाकर्ता व्यवहारेण कर्तेति बहुधा व्याख्यातंतत्रैव सति यथा द्रव्यकर्मणा व्यवहारेण कर्तृत्वं तथा रागादिभावकर्मणा च द्वयोर्द्रव्यभावकर्मणोरेकत्य प्राप्नोतीति। नैवं। रागादिभावकर्मणा योसौ व्यवहारस्तस्याशुद्धनिश्चयसज्ञा भवति द्रव्यकर्मणा भावकर्मभिः सह तारतम्यज्ञापनार्थं। कथ तारतम्यमिति चेत्। द्रव्यकर्माण्यचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया अचेतनान्येव। यतः कारणादशुद्धनिश्चयोपि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। अयमत्र भावार्थः। द्रव्यकर्मणा कर्तृत्वं भोक्तृत्व चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण रागादिभावकर्मणा चाशुद्धनिश्चयेन। सचाशुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहारएवेति। एव पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना (?) पीठिकारूपे महाधिकारे सप्तगाथाभिः चतुर्थोतराधिकारः समाप्तः। अतः परं **जीवेण सयं बद्धं** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा गाथाष्टकपर्यंत साख्यमतानुसारिशिष्यसबोधनार्थं जीवपुद्गलयोरेकातेन परिणामित्व निषेधयन् सन् कथंचित् परिणामित्वं स्थापयति। तत्र गाथाष्टकमध्ये पुद्गलपरिणामित्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय। तदनतर जीवपरिणामित्वमुख्यत्वेन गाथापं-

रूप) है उसीतरह जड क्रोध भी अनन्य ही है ऐसी प्रतीति होजाय (माना जाय) तो चिद्रूपके और जडके अनन्यपनेसे जीवके उपयोगमयीपनेकी तरह जड क्रोधमयीपनेकी भी प्राप्ति हुई। ऐसा होनेपर जो जीव है वही अजीव है इसतरह जुदे (अन्य) द्रव्यका लोप होगया। इसीतरह प्रत्यय नोकर्म और कर्मोंकी भी जीवके साथ एकत्वकी प्रतीतिमें यही दोप आता है। इस दोपके भयसे ऐसा मानो कि उपयोगस्वरूप जीव तो अन्य है और जडस्वरूप क्रोध अन्य है। जैसे उपयोगस्वरूप जीवसे जड़स्वभाव क्रोध अन्य है उसीतरह प्रत्यय नोकर्म और कर्म भी अन्य ही हैं क्योंकि जैसा जड स्वभाव क्रोध है उसीतरह प्रत्यय नोकर्म कर्म ये भी जड हैं इनमें विशेषता नहीं है। इसतरह जीव और प्रत्ययमें एकपना नहीं है॥ **भावार्थ—** मिथ्यात्वादि आस्रव तो जड स्वभाव हैं और जीव चेतनस्वभाव है। यदि जड़ और चेतन एक हो जायँ तो बड़ा भारी दोष आवे भिन्न द्रव्यका ही लोप होजाय। इसलिये आस्रव और आत्मामें एकपना नहीं है यह निश्चयनयका सिद्धान्त है॥ ११३। ११४। ११५॥

अथ पुद्गलद्रव्यस्य परिणामस्वभावत्वं साधयति सांख्यमतानुयायिशिष्यं प्रति;—

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण ।
जइ पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥ ११६ ॥
कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥ ११७ ॥
जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण ।
ते सयमपरिणमंते कहं तु परिणामयदि चेदा ॥ ११८ ॥
अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं ।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥ ११९ ॥
णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं ।
तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥ १२० ॥

जीवे न स्वयं बद्धं न स्वयं परिणमते कर्मभावेन ।
यदि पुद्गलद्रव्यमिदमपरिणामि तदा भवति ॥ ११६ ॥
कार्मणवर्गणासु चापरिणममाणासु कर्मभावेन ।
संसारस्याभावः प्रसजति सांख्यसमयो वा ॥ ११७ ॥
जीवः परिणामयति पुद्गलद्रव्याणि कर्मभावेन ।
तानि स्वयमपरिणममानानि कथं नु परिणामयति चेतयिता ॥ ११८ ॥
अथ स्वयमेव हि परिणमते कर्मभावेन पुद्गलद्रव्यं ।
जीवः परिणामयति कर्म कर्मत्वमिति मिथ्या ॥ ११९ ॥
नियमात्कर्मपरिणतं कर्म चैव भवति पुद्गलद्रव्यं ।
तथा तद्ज्ञानावरणादिपरिणतं जानीत तच्चैवं ॥ १२० ॥

यदि पुद्गलद्रव्यं जीवे स्वयमबद्धसत्कर्मभावेन स्वयमेव न परिणमेत तदा तदपरिणाम्येव

चकमिति पंचमस्थले समुदायपातनिका ॥ ११३।११४।११५ ॥ अथ सांख्यमतानुयायिशिष्यं प्रति पुद्गलस्य कथंचित्परिणामस्वभावत्वं साधयति;—**जीवे ण सयं बद्धं** जीवे अधिकरणभूते न स्वयं स्वभावेन पुद्गलद्रव्यकर्मबद्धं नास्ति । कस्मात्, सर्वदा जीवस्य शुद्धत्वात् **ण सयं परिणमदि कम्मभावेण** न च स्वयं स्वयमेव कर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण परिणमति ।

आगे सांख्यमतको माननेवाले शिष्यके प्रति पुद्गलद्रव्यमें परिणामस्वभाव होना सिद्ध करते हैं अर्थात् सांख्यमती प्रकृति पुरुषको अपरिणामी मानता है उसे समझाते हैं,—[**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्य [**जीवे**] जीवमें [**स्वयं**] आप [**न बद्धं**] न तो बंधा है [**न कर्मभावेन**] और न कर्मभावसे [**स्वयं**] स्वयं [**परिणमते**]

---

१ णाणी इत्यपि पाठः ।

स्यात्। तथा सति संसाराभावः। अथ जीवः पुद्गलद्रव्यं कर्मभावेन परिणमयति ततो न संसाराभावः इति तर्कः? किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा जीवः पुद्गलद्रव्यं कर्मभावेन परिणामयेत्? न तावत्तत्स्वयमपरिणममानं परेण परिणमयितुं पार्येत। न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्येत। स्वयं परिणममानं तु न परं परिणमयितारमपेक्षेत। न हि वस्तुशक्तयः

कस्मात्, सर्वथा नित्यत्वात्। **जदि पुग्गलदव्वमिणं** एवमित्थंभूतमिदं पुद्गलद्रव्यं यदि चेद्भवता सांख्यमतानुसारिणा **अप्परिणामी तदा होदि** ततः कारणात्तत्पुद्गलद्रव्यमपरिणाम्येव भवति। ततश्चापरिणामित्वे सति किं दूषणं भवति। अथ—कार्मणवर्गणाभिरपरिणमतीभिःकर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण तदा संसारस्याभावः प्रसजति प्राप्नोति हे शिष्य! सांख्यसमयवदिति। अथ मतं। **जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण** जीवः कर्त्ता कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्याणि ज्ञानावरणादिकर्मभावेण द्रव्यकर्मपर्यायेण हठात्परिणामयति ततः कारणात्संसाराभावदूषणं न भवतीति चेत् **तं सयमपरिणमंतं कहं तु परिणामयदि णाणी** ज्ञानी जीवः स्वयमपरिणममानः सन् तत्पुद्गलद्रव्यं किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा परिणमयेत्? न तावदपरिणममानं परिणमयति न च स्वतोसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्येत।

परिणमता है [**यदि इदं तदा**] जो ऐसा मानो तो यह पुद्गलद्रव्य [**अपरिणामी**] अपरिणामी [**भवति**] होजायगा [**वा**] अथवा [**कार्मणवर्गणासु**] कार्मणवर्गणा आप [**कर्मभावेन**] कर्मभावसे [**अपरिणममानासु**] नहीं परिणमती ऐसा मानिये तो [**संसारस्य**] संसारका [**अभावः**] अभाव [**प्रसजति**] ठहरेगा [**वा**] अथवा [**सांख्यसमयः**] सांख्यमतका प्रसंग आयेगा। [**जीवः**] जीव ही [**पुद्गलद्रव्याणि**] पुद्गलद्रव्योंको [**कर्मभावेन**] कर्मभावोंसे [**परिणामयति**] परिणमाता है ऐसा माना जाय तो [**तानि**] वे पुद्गलद्रव्य [**स्वयं अपरिणममानानि**] आप ही नहीं परिणमते उनको [**चेतयिता**] यह चेतन जीव [**कथं नु**] कैसे [**परिणमयति**] परिणमा सकता है यह प्रश्न होसकता है [**अथ**] अथवा [**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्य] [**स्वयमेव हि**] आप ही [**कर्मभावेन**] कर्मभावसे [**परिणमते**] परिणमता है ऐसा माना जाय तो [**जीवः**] जीव **कर्मत्वं**] कर्म भावकर [**कर्म**] कर्मरूप पुद्गलको [**परिणमयति**] परिणमाता है [**इति**] ऐसा कहना [**मिथ्या**] झूठ हो जाय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि [**पुद्गलं द्रव्यं**] पुद्गल द्रव्य [**कर्मपरिणतं**] कर्मरूप परिणत हुआ [**नियमात् चैव**] नियमसे ही [**कर्म**] कर्मरूप [**भवति**] होता है [**तथा**] ऐसा होनेपर [**तच्चैव**] वह पुद्गल द्रव्य ही [**ज्ञानावरणादि परिणतं**] ज्ञानावरणादिरूप परिणत [**तत्**] कर्म [**जानीत**] जानो॥ **टीका**—जो पुद्गलद्रव्य जीवमें आप नहीं बंधा हुआ स्वयमेव कर्मभावकर नहीं परिणमता है तो पुद्गलद्रव्य अपरिणामी ही

परमपेक्षंते । ततः पुद्गलद्रव्यं परिणामस्वभावं स्वयमेवास्तु । तथा सति कलशपरिणता मृत्तिका स्वयं कलश इव जडस्वभावज्ञानावरणादिकर्मपरिणतं तदेव स्वयं ज्ञानावरणादिकर्म स्यात् । इति सिद्धं पुद्गलद्रव्यस्य परिणामस्वभावत्वं । "स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य स्वभावभूता

तथा जपापुष्पादिकं कर्तृ स्फटिके जनयत्युपाधिं तथा काष्ठस्तंभादौ किं न जनयतीति । अथैकांतेन परिणममानं परिणमयति । तदपि न घटते । न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते तर्हि जीवनिमित्तकर्तारमंतरेणापि स्वयमेव कर्मरूपेण परिणमतु । तथा च सति किं दूषणं । घटपटस्तंभादिपुद्गलाना ज्ञानावरणादिकर्मपरिणतिः स्यात् । स च प्रत्यक्षविरोधः । ततः स्थिता पुद्गलानां स्वभावभूता कथंचित्परिणामित्वशक्तिः तस्यां परिणामशक्तौ स्थितायां स पुद्गलः कर्ता । य स्वस्य संबंधिन ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपरिणामं पर्यायं करोति तस्य स एवोपादानकारणं कलशस्य मृत्पिडमिव । न च जीवः, स तु निमित्तकारणमेव हेयतत्त्वमिदं । तस्मात्पुद्गलाद्व्यतिरिक्तशुद्धपरमात्मभावनापरिणताऽभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन गम्यश्चिदानंदैकस्वभावो निजशुद्धात्मैव शुद्धनिश्चयेनोपादेयं भेदरत्नत्रयस्वरूपं तु उपादेयमभेदरत्नत्रयसाधकत्वाद्व्यवहारेणोपादेयमिति । एवं गाथात्रयशब्दार्थव्याख्यानेन शब्दार्थो ज्ञातव्यः । व्यवहारनिश्चयरूपेण नयार्थो ज्ञातव्यः । सांख्यं प्रति मतार्थो ज्ञातव्यः । आगमार्थस्तु प्रसिद्धः । हेयोपादानव्याख्यानरूपेण भावार्थोपि ज्ञातव्यः ।

सिद्ध हुआ । ऐसा होनेपर संसारका अभाव होता है क्योंकि कर्मरूप हुऐ विना जीव कर्मरहित ठहरता है तो संसार किसका ? । और जो ऐसा तर्क करे कि जीव पुद्गल द्रव्यको कर्मभावकर परिणमाता है इसलिये संसारका अभाव नहीं होसकता उसका समाधान यह है कि पहले दो पक्ष लेकर पूछते हैं—जो जीव पुद्गलको परिणमाता है वह स्वयं अपरिणमतेको परिणमाता है या स्वयं परिणमतेको परिणमाता है ? उनमेंसे पहला पक्ष लिया जाय तो स्वयं अपरिणमतेको नहीं परिणमा सकता क्योंकि आप न परिणमतेको परके परिणमानेकी सामर्थ्य नहीं होती स्वतः शक्ति जिसमें नहीं होती वह परकर भी नहीं की जासकती । और जो पुद्गल द्रव्यको स्वयं परिणमतेको जीव कर्मभावकर परिणमाता है ऐसा दूसरा पक्ष लिया जाय तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि अपने आप परिणमते हुएको अन्य परिणमानेवालेकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि वस्तुकी शक्ति परकी अपेक्षा नहीं करती । इसलिये पुद्गलद्रव्य परिणामस्वभाव स्वयमेव होवे । ऐसा होनेपर जैसे कलशरूप परिणत हुई मट्टी अपने आप कलश ही है उसीतरह जड़ स्वभाव ज्ञानावरण आदि कर्मरूप परिणत हुआ पुद्गल द्रव्य ही आप ज्ञानावरण आदि कर्म ही है ।। ऐसे पुद्गल द्रव्यको परिणाम स्वभावपना सिद्ध हुआ ।। अब इस अर्थके कलशरूप काव्य कहते हैं । **स्थिते** इत्यादि । **अर्थ**—इसतरह उक्त प्रकारसे पुद्गल द्रव्यकी परिणमन शक्ति स्वभावभूत निर्विघ्न सिद्ध हुई । उसके सिद्ध होनेपर पुद्गल द्रव्य जिस भावको अपने करता है उसका वह पुद्गलद्रव्य ही कर्ता है ।

परिणामशक्तिः । तस्यां स्थितायां स करोति भावं यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥ ६४ ॥"
॥ ११६।११७।११८।११९।१२० ॥

जीवस्य परिणामित्वं साधयति;—

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं ।
जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदी ॥ १२१ ॥
अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहि भावेहिं ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥ १२२ ॥
पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं ।
तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो ॥ १२३ ॥
अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी ।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥ १२४ ॥
कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा ।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ॥ १२५ ॥

न स्वयं बद्धः कर्मणि न स्वयं परिणमते क्रोधादिभिः ।
यद्येषः तव जीवोऽपरिणामी तदा भवति ॥ १२१ ॥
अपरिणममाने स्वयं जीवे क्रोधादिभिः भावैः ।
संसारस्याभावः प्रसजति सांख्यसमयो वा ॥ १२२ ॥
पुद्गलकर्म क्रोधो जीवं परिणामयति क्रोधत्वं ।
तं स्वयमपरिणममानं कथं नु परिणामयति क्रोधः ॥ १२३ ॥
अथ स्वयमात्मा परिणमते क्रोधभावेन एषा ते बुद्धिः ।
क्रोधः परिणामयति जीवं क्रोधत्वमिति मिथ्या ॥ १२४ ॥
क्रोधोपयुक्तः क्रोधो मानोपयुक्तश्च मान एवात्मा ।
मायोपयुक्तो माया लोभोपयुक्तो भवति लोभः ॥ १२५ ॥

यदि कर्मणि स्वयमबद्धः सन् जीवः क्रोधादिभावेन स्वयमेव न परिणमते तदा स

इति शब्दनयमतागमभावार्थाः व्याख्यानकाले यथासंभव सर्वत्र ज्ञातव्याः । एवं पुद्गलपरिणामस्थापनामुख्यत्वेन गाथत्रयं गतं ॥ ११६।११७।११८।११९।१२० ॥ सांख्यमनुसारिशिष्यं प्रति जीवस्य कथंचित्परिणामस्वभावत्वं साधयति;—**ण सयं बद्धो कम्मे** स्वयं स्वभावेन

भावार्थ—सब द्रव्योंका परिणामस्वभावपना सिद्ध है इसलिये अपने भावका आप ही करता है । सो पुद्गल भी जिस भावको अपनेमें करता है उसका वही कर्ता है ॥ ११६।११७।११८।११९।१२० ॥

आगे जीव द्रव्यका परिणामस्वभावपना सिद्ध करते हैं,—सांख्यमतवाले शिष्यको

किलापरिणाम्येव स्यात् । तथा सति संसाराभावः । अथ पुद्गलकर्मक्रोधादि जीवं क्रोधादिभावेन परिणामयति ततो न संसाराभाव इति तर्कः। किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा पुद्गलकर्म क्रोधादि जीव क्रोधादिभावेन परिणामयेत्? न तावत्स्वयमपरिणममानः परेण परिणमयितुं पार्येत, न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते। स्वयं परिणममानस्तु न परं परिणमयितारमपेक्षेत। न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते। ततो जीवः परिणाम-

---

कर्मण्यधिकरणभूते एकांतेन बद्धो नास्ति सदा मुक्तत्वात्। **ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं** न च स्वयं स्वयमेव द्रव्यकर्मोदयनिरपेक्षो भावक्रोधादिभिः परिणमति। कस्मादेकांतेनापरिणामित्वात्। **जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि** यदि चेदेष जीवः प्रत्यक्षीभूतः तव मताभिप्रायेणेत्थंभूतः स्यात्ततः कारणादपरिणाम्येव भवति। अपरिणामित्वे सति कि दूषणं? अथ— अपरिणममाने सति तस्मिन् जीवे स्वयं स्वयमेव भावक्रोधादिपरिणामैः तदा ससारस्याभावः प्राप्नोति हे शिष्य साख्यसमयवत्। अथ मत **पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं** पुद्गलकर्मरूपो द्रव्यक्रोध उदयागतः कर्ता जीवं कर्मतापन्नं हठात्परिणामयति भावक्रोधत्वेनेति चेत् तं **सयमपरिणमंतं कह परिणामएदि कोहत्तं** अथ कि स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा परिणामयेत्? न तावत्स्वयमपरिणममानं परिणामयेत्। कस्मात्। न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते। न हि जपापुष्पादय कर्तारो यथा स्फटिकादिषु जनयंत्युपाधिं तथा काष्ठस्तंभादिष्वपि। अथैकांतेन परिणममानं वा तर्हि उदयागतद्रव्यक्रोधनिमित्तमंतरेणापि भावक्रोधादिभिः परिणमंतु। कस्मादिति चेत्। न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षते। तथा च सति मुक्तात्मनामपि कर्मोदयनिमित्ताभावेपि भावक्रोधादयः प्राप्नुवति। न च तदिष्टमागमविरोधात्। अथ मतं। **अह सयमप्पा परिणमदि**

आचार्य कहते हैं कि हे भाई **[तव]** तेरी बुद्धिमें **[यदि]** यदि **[एष जीवः]** यह जीव **[कर्मणि]** कर्मोंमें **[स्वयं]** आप तो **[बद्धः न]** बंधा नहीं है और **[क्रोधादिभिः]** क्रोधादि भावोंकर **[स्वयं]** आप **[परिणमति न]** परिणमता भी नहीं है ऐसा है **[तदा]** तो **[अपरिणामी]** अपरिणामी **[भवति]** वह अपरिणामी होगा ऐसा होनेपर **[क्रोधादिभिः भावैः]** क्रोधादि भावोंकर **[जीवे]** जीवको **[स्वयं अपरिणममाने]** आप नहीं परिणत होनेपर **[संसारस्य अभावः]** संसारका अभाव **[प्रसजति]** हो जायगा **[वा]** और **[सांख्यसमयः]** सांख्यमतका प्रसंग आवेगा। यदि कहेगा कि **[पुद्गलकर्म]** पुद्गलकर्म **[क्रोधः]** क्रोध है वह **[जीवं]** जीवको **[क्रोधत्वं]** क्रोध भावरूप **[परिणामयति]** परिणमाता है तो **[स्वयं अपरिणममानं तं]** आप स्वयं न परिणमते हुए **[तं]** जीवको **[क्रोधः]** क्रोध **[कथं नु]** कैसे **[परिणामयति]** परिणमा सकता है ऐसा प्रश्न है। **[अथ]** अथवा **[ते एषा बुद्धिः]** तेरी

स्वभावः स्वयमेवास्तु तथा सति गरुडध्यानपरिणतः साधकः स्वयं गरुड इवाज्ञानस्वभाव-क्रोधादिपरिणतोपयोगः स एव स्वयं क्रोधादिः स्यादिति सिद्धं जीवस्य परिणामस्वभावत्वं।

कोहभावेण एस दे बुद्धी अथ पूर्वदूषणभयात्स्वयमेवात्मा द्रव्यकर्मोदयनिरपेक्षो भावक्रोधरूपेण परिणत्येषा तव बुद्धिः हे शिष्य! **कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा** तर्हि द्रव्यक्रोधः कर्ता जीवस्य भावक्रोधत्वं परिणामयति करोति यदुक्तं पूर्वगाथायां तद्वचन मिथ्या प्राप्नोति। ततः स्थित—घटाकारपरिणता मृत्पिंडपुद्गलाः घट इव अग्निपरिणतायः पिंडोऽग्निवत् तथात्मापि क्रोधोपयोगपरिणतः क्रोधो भवति मानोपयोगपरिणतो मानो भवति मायोपयोगपरिणतो माया भवति लोभोपयोगपरिणतो लोभो भवतीति स्थिता सिद्धा जीवस्य स्वभावभूता परिणामशक्तिः। तस्यां परिणामशक्तौ स्थितायां स जीवः कर्ता यं परिणाममात्मनः करोति तस्य स एवोपादानकर्ता द्रव्यकर्मोदयस्तु निमित्तमात्रमेव। तथैव च स एव जीवो निर्विकारचिच्चमत्कारशुद्धभावेन परिणतः सन् सिद्धात्मापि भवति। किं च विशेषः—**'जाव ण वेदि विसेसंतरं'** इत्याद्यज्ञानिज्ञानिजीवयोः सक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथाषट्कं यदुक्तं पूर्वं पुण्यपा-

---

ऐसी समझ है कि [**आत्मा**] आत्मा [**स्वयं**] अपने आप यह आत्मा [**क्रोधभावेन**] क्रोध भावकर [**परिणमते**] परिणमता है तो [**क्रोधः**] क्रोध [**जीवं**] जीवको [**क्रोधत्वं**] क्रोधभावरूप [**परिणमयति**] परिणमाता है [**इति मिथ्या**] ऐसा कहना मिथ्या ठहरता है। इसलिये यह सिद्धांत है कि [**आत्मा**] आत्मा [**क्रोधोपयुक्तः**] क्रोधसे उपयोग सहित होता है अर्थात् उपयोग क्रोधाकाररूप परिणमता है तब तो [**क्रोधः**] क्रोध ही है [**मानोपयुक्तः**] मानसे उपयुक्त होता है तब [**मान एव**] मान ही है] **मायोपयुक्तः**] मायाकर उपयुक्त होता है तब [**माया**] माया ही है [**च**] और [**लोभोपयुक्तः**] लोभकर उपयुक्त होता है तब [**लोभः**] लोभ ही [**भवति**] है। **टीका**—जीव, कर्ममें आप स्वयं नहीं बंधा हुआ क्रोधादि भावकर आप नहीं परिणमता तो वह जीव अपरिणामी ही होता है। ऐसा होनेपर संसारका अभाव आता है। अथवा ऐसा कोई कहे कि पुद्गलकर्म क्रोधादिक ही जीवको क्रोधादिक भावकर परिणमाते हैं इसलिये संसारका अभाव नहीं होसकता। ऐसा कहनेमें दो पक्ष होते हैं कि पुद्गलकर्म क्रोधादिक हैं वे जीवको अपने आप अपरिणमतेको परिणमाते हैं या परिणमतेको परिणमाते हैं? । प्रथम तो आप नहीं परिणमता हो उसको परके परिणमानेका असमर्थपना है क्योंकि आपमें शक्ति नहीं तो परमें भी नहीं की जासकती। तथा स्वयं परिणमता हो वह परको परिणमानेवालेको नहीं चाहता क्योंकि वस्तुकी शक्ति परकी अपेक्षा नहीं करती। अन्यमें अन्य कोई नवीन शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकता। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जीव ही परिणमन स्वभावरूपस्वयमेव होवे। ऐसा होनेपर जैसे कोई मंत्रसाधक गरुडका ध्यान करता उस गरुडभाव-

"स्थितेति जीवस्य निरंतराया स्वभावभूता परिणामशक्तिः । तस्यां स्थितायां स करोति

पादिसप्तपदार्थजीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्तास्ते च जीवपुद्गलयो. कथंचित्परिणामित्वे सति घटंते । तस्यैव कथंचित्परिणामित्वस्य विशेपव्याख्यानमिदं । अथवा **'सामण्णपच्चया खलु चउरो'** इत्यादि गाथासप्तके यदुक्तं पूर्वं सामान्यप्रत्यया एव शुद्धनिश्चयेन कर्म कुर्वंतीति न जीव इति जैनमतं । एकांतेनाकर्तृत्वे सति सांख्यानां संसाराभावदूपणं तस्यैव संसाराभावदूपणस्य विशेपदूषणमिदं । कथमिति चेत् । तत्रैकांतेन कर्तृत्वाभावे सति ससाराभावदूपणं अत्र पुनरेकांतेन परिणामित्वाभावे सति संसाराभावदूपणं । यतः कारणाद्भावकर्मपरिणामित्वमेव कर्तृत्वं च भण्यते ॥ १२१।१२२।१२३।१२४।१२५ ॥ इति जीवपरिणामित्वे व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापंचकं गतं । एवं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकारूपे महाधिकारे जीवपुद्गलपरिणामित्वव्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टगाथाभिः पचमांतराधिकारः समाप्तः । **अथ—जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हंपि । अण्णाणी तावदु** इत्यादि गाथाद्वये तावदज्ञानी जीवस्वरूप पूर्वं भणितं स चाज्ञानी जीवो यदा **विसयकसाययुगाढ** इत्याद्यशुभोपयोगेन परिणमति तदा पापास्रवबंधपदार्थानां त्रयाणां कर्ता भवति । तदा तु मिथ्यात्वकषायाणां मंदोदये सति भोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिरूपेण दानपूजादिनिदानं परिणमति तदा पुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवतीति पूर्वं संक्षेपेण सूचितं **जइया इमेण जीवेण आदा सवाण दोण्हंपि । णादं होदि विसेसंतरं तु** इत्यादिगाथाचतुष्टये ज्ञानी जीवस्वरूपं च संक्षेपेण सूचितं स च ज्ञानी जीवः शुद्धोपयोगभावपरिणतोऽभेदरत्नत्रयलक्षणेनाभेदज्ञानेन यदा परिणमति तदा निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा सवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां त्रयाणा कर्ता भवतीत्यपि संक्षेपेण निरूपितं पूर्वं। निश्चयसम्यक्त्वस्याभावे यदा तु सरागसम्यक्त्वेन परिणमति तदा शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा परंपरया निर्वाणकारणस्य तीर्थंकरप्रकृत्यादिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवतीत्यपि पूर्वं निरूपित तत्सर्वं जीवपुद्गलयो. कथचित्परिणामित्वे सति भवतीति तत्कथंचित्परिणामित्वमपि पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थं पूर्वमेव संक्षेपेण निरूपितं । पुनश्च जीवपुद्गलपरिणामित्वव्याख्यानकाले विशेषेण कथितं । तत्रैवं कथचित्परिणामित्वे सिद्धे सति अज्ञानिज्ञानिजीवयोः गुणिनोः पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थं संक्षेपव्याख्यानं

रूप परिणत हुआ गरुड ही है उसी तरह यह जीवात्मा अज्ञान स्वभाव क्रोधादिरूपपरिणत हुए उपयोगरूप हुआ आप स्वयमेव क्रोधादिक ही होता है । इसतरह जीवका परिणमन स्वभाव होना सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ—**जीव परिणामस्वभाव है । जब अपना उपयोग क्रोधादिरूप परिणमता है तव आप क्रोधादिरूप ही होता है ऐसा जानना । अव इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**स्थितेति** इत्यादि । **अर्थ—**जीवके अपने स्वभावसे ही हुई ऐसी परिणमन शक्ति पूर्वकथित रीतिसे निर्विघ्न सिद्ध हुई । इसके सिद्ध होनेसे यह जीव जिस भावको अपने करता है उसीका वह कर्ता होता है ॥ **भावार्थ—**

क्तं । इदानीं पुनरज्ञानमयगुणज्ञानमयगुणयोः मुख्यत्वेन व्याख्यानं क्रियते । नच जीवाजीवगुणमुख्यत्वेनेति । किमर्थमिति चेत्[?] तेषामेव पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना सक्षेपसूचनार्थमिति । तत्र **जो संगं तु मुइत्ता** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथानवकपर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्रादौ गाथात्रयं ज्ञानभावमुख्यत्वेन तदनंतरं गाथाषट्कं ज्ञानिजीवस्य ज्ञानमयो भावो भवत्यज्ञानिजीवस्याज्ञानमयो भावो भवतीति मुख्यत्वेन कथ्यत इति षष्ठातराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—कथंचित्परिणामित्वे सिद्धे सति ज्ञानी जीवो ज्ञानमयस्य भावस्य कर्ता भवतीत्यभिप्राय मनसि सप्रधार्येदं सूत्रत्रयं प्रतिपादयति;—

जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं ।
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥

यः सगं तु मुक्त्वा जानाति उपयोगमयकं शुद्ध । त निस्संग साधुं परमार्थविज्ञायका विदंति ॥

जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओग मप्पगं सुद्धं यः परमसाधुर्बाह्याभ्यंतरपरिग्रहं मुक्त्वा वीतरागचारित्राविनाभूतभेदज्ञानेन जानात्यनुभवति । कं कर्मतापन्न आत्मानं । कथंभूत । विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावत्वादुपयोगस्तमुपयोगं ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणं । पुनरपि कथंभूत । शुद्ध भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित । **तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति** त साधुं निस्सग सगरहित विदंति जानंति ब्रुवंति कथयंति वा । के ते, परमार्थविज्ञायका गणधरदेवादय इति ।

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥

यः मोहं तु मुक्त्वा ज्ञानस्वभावाधिकं मनुते आत्मानं । तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका विदति ॥ **जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं** यः परमसाधुः कर्ता समस्तचेतनाचेतनशुभाशुभपरद्रव्येषु मोहं मुक्त्वात्मशुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपयोगत्रयपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन मनुते जानाति । क कर्मतापन्न, आत्मानं । किं विशिष्ट[?] निर्विकारस्वसवेदनज्ञानेनाधिकं परिणतं परिपूर्णं । **तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति** त साधुं कर्मतापन्नं जितमोह निर्मोहं विदति जानति । के ते[?] परमार्थविज्ञायकास्तीर्थकरपरमदेवादय इति । एव मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायबुद्ध्युदयशुभाशुभपरिणामश्रोत्रचक्षुर्घ्राणजिह्वास्पर्शनसज्ञानि विंशतिसूत्राणि व्याख्येयानि । तेनैव प्रकारेण निर्मलपरमचिज्ज्योतिःपरिणतेर्विलक्षणा असख्येयलोकमात्रविभावपरिणामा ज्ञातव्याः । अथ—

जीव भी परिणामी है सो आप जिस भावरूप परिणमता है उसी भावका कर्ता होता है ॥ १२१।१२२।१२३।१२४।१२५ ॥

भावं यं स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥ ६५ ॥" ॥ १२१।१२२।१२३।१२४।१२५ ॥
तथाहि;—

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥ १२६ ॥

यं करोति भावमात्मा कर्ता स भवति तस्य कर्मणः ।
ज्ञानिनः स ज्ञानमयोऽज्ञानिमयोऽज्ञानिनः ॥ १२६ ॥

एवमयमात्मा स्वयमेव परिणामस्वभावोपि यमेव भावमात्मनः करोति तस्यैव कर्मतामापद्यमानस्य कर्तृत्वमापद्येत । स तु ज्ञानिनः सम्यक्स्वपरविवेकेनात्यंतोदितविविक्तात्मख्यातित्वात् ज्ञानमय एव स्यात् अज्ञानेन तु सम्यक्स्वपरविवेकाभावेनात्यंतप्रत्यस्तमित-

---

जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमय्यगं सुद्धं ।
तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विंति ॥

यः धर्मं तु मुक्त्वा जानाति उपयोगमयक शुद्धं । तं धर्मसगमुक्तं परमार्थविज्ञायका विदंति ॥

जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं यः परमयोगींद्रः स्वसंवेदनज्ञाने स्थित्वा शुभोपयोगपरिणामरूप धर्मं पुण्यसगं त्यक्त्वा निजशुद्धात्मपरिणताभेदरत्नत्रलक्षणेनाभेदज्ञानेन जानात्यनुभवति । कं कर्मतापन्नं। आत्मानं । कथंभूतं, विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगपरिणतं। पुनरपि कथंभूतं। शुद्ध शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितं । **तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विंति ।** तं परमतपोधन निर्विकारस्वकीयशुद्धात्मोपलंभरूपनिश्चयधर्मविलक्षणभोगाकांक्षास्वरूपनिदानबधादिपुण्यपरिग्रहरूपव्यवहारधर्मरहितं विदति जानति । के ते? परमार्थविज्ञायकाः प्रत्यक्षज्ञानिन इति । किं च, कथंचित्परिणामित्वे सति जीवः शुद्धोपयोगेन परिणमति पश्चान्मोक्षं साधयति परिणामित्वाभावे बद्धो बद्ध एव शुद्धोपयोगरूपं परिणामातरस्वरूपं न घटते ततश्च मोक्षाभाव इत्यभिप्रायः । एवं शुद्धोपयोगरूपज्ञानमयपरिणामगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ तदनंतरं यथा ज्ञानमयाऽज्ञानमयभावद्वयस्य कर्ता भवति तथा कथयति—

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स यं भावं परिणामं करोत्यात्मा स तस्यैव भावस्यैव कर्ता भवति **णाणिस्स दु णाणमओ** स च भावोऽनंतज्ञानादिचतुष्टयलक्षणकार्यसमयसारस्योत्पादकत्वेन निर्विकल्पसमाधिपरिणामपरिणतकारणसमयसारलक्ष-

---

आगे इसी अर्थको लेकर भावोंका विशेषकर कर्ता कहते हैं,—[**आत्मा**] जो आत्मा [**यं भावं**] जिस भावको [**करोति**] करता है [**सः**] वह [**तस्य कर्मणः**] उस भावरूप कर्मका [**कर्ता**] कर्ता [**भवति**] होता है । उसजगह [**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके तो [**सः**] वह भाव [**ज्ञानमयः**] ज्ञानमय है और [**अज्ञानिनः**] अज्ञानीके [**अज्ञानमयः**] अज्ञानमय है ॥ **टीका**—इसतरह पूर्वोक्तरीतिसे यह आत्मा आप स्वयमेव परिणमन स्वभाव है तौ भी जिस भावको आप

---

१ कम्मस्स इत्यपि पाठ ।

विविक्तात्मख्यातित्वादज्ञानमय एव स्यात् ॥ १२६ ॥

किं ज्ञानमयभावात्किमज्ञानमयाद्भवतीत्याह;—

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि ॥ १२७ ॥

अज्ञानमयो भावोऽज्ञानिनः करोति तेन कर्माणि।
ज्ञानमयो ज्ञानिनस्तु न करोति तस्मात्तु कर्माणि ॥ १२७ ॥

अज्ञानिनो हि सम्यक्स्वपरविवेकाभावेनात्यंतप्रत्यस्तमितविविक्तात्मख्यातित्वाद्यस्मादज्ञानमय एव स्यात् तस्मिंस्तु सति स्वपरयोरेकत्वाध्यासेन ज्ञानमात्रात्स्वस्मात्प्रभ्रष्टः पराभ्यां रागद्वेषाभ्यां सममेकीभूय प्रवर्तिताहंकारः स्वयं किलैषोहं रज्ये रुष्यामीति रज्यते रुष्यति च तस्मादज्ञानमयभावादज्ञानी परौ रागद्वेषावात्मानं कुर्वन् करोति कर्माणि।

णेन भेदज्ञानेन सर्वारंभपरिणतत्वाज्ज्ञानिनो जीवस्य शुद्धात्मख्यातिप्रतीतिसंवित्त्युपलब्ध्यनुभूतिरूपेण ज्ञानमय एव भवति **अण्णाणमओ अणाणिस्स** अज्ञानिनस्तु पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् शुद्धात्मानुभूतिस्वरूपाभावे सत्यज्ञानमय एव भवतीत्यर्थः ॥ १२६ ॥ अथ किं ज्ञानमयभावात्फलं भवति किमज्ञानमयाद्भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह,—**अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि** स्वोपलब्धिभावनाविलक्षणत्वेनाज्ञानमयभावो भण्यते। कस्मात्। यस्मात्तेन भावेन परिणामेन कर्माणि करोत्यज्ञानी जीवः। **णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि** ज्ञानिनस्तु निर्विकारचिच्चमत्कारभावनावशेन ज्ञानमयो भवति

करता है वही भाव कर्मपनेको प्राप्त होता है उसका आप कर्तापनेको प्राप्त होता है। वह भाव ज्ञानीके ज्ञानमय ही है क्योंकि उसके अच्छीतरह अपने परका भेद ज्ञान होगया है, उससे अत्यंत उदयको प्राप्त हुई जो सब परद्रव्य भावोंसे भिन्न आत्माकी ख्याति उस स्वरूपपना है। तथा वह भाव अज्ञानीके अज्ञानमय ही है, क्योंकि उसके अच्छीतरह स्वपरके भेदज्ञानका अभाव होनेसे भिन्न आत्माकी ख्याति (प्रगटता) अत्यंत अस्त होगई है भेदज्ञानके अभावसे भिन्न आत्माको नहीं जानता ॥ **भावार्थ**—ज्ञानीके तो अपना परका भेदज्ञान होगया है इसलिये अपने ज्ञानमय भावका ही कर्तापना है और अज्ञानीके आप परका भेदज्ञान नहीं है इसकारण अज्ञानमय भावका ही कर्तापना है १२६

आगे कहते हैं कि ज्ञानमय भावसे क्या होता है और अज्ञानमयभावसे क्या होता है;—[**अज्ञानिनः**] अज्ञानीका [**अज्ञानमयः**] अज्ञानमय [**भावः**] भाव है [**तेन**] इसकारण [**कर्माणि**] अज्ञानी कर्मोंको [**करोति**] करता है [**तु**] और [**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके [**ज्ञानमयः**] ज्ञानमयभाव होता है [**तस्मात्तु**] इसलिये वह ज्ञानी [**कर्माणि**] कर्मोंको [**न**] नहीं [**करोति**] करता ॥ **टीका**—अज्ञानीके निश्चयकर अच्छीतरह स्वपरका भेद ज्ञान नहीं है इससे जिसके भिन्न आ-

ज्ञानिनस्तु सम्यक्स्वपरविवेकेनात्यंतोदितविविक्तात्मख्यातित्वाद्यस्माद् ज्ञानमय एव भावः स्यात् तस्मिंस्तु सति स्वपरयोर्नानात्वविज्ञानेन ज्ञानमात्रे स्वस्मिन्सुनिविष्टः पराभ्यां रागद्वेषाभ्यां पृथग्भूततया स्वरसत एव निवृत्ताहंकारः स्वयं किल केवलं जानात्येव न रज्यते न च रुष्यति तस्माद् ज्ञानमयभावात् ज्ञानी परौ रागद्वेषावात्मानमकुर्वन्न करोति कर्माणि ॥ १२७ ॥

तस्माद् ज्ञानमयभावात् ज्ञानी जीवः कर्माणि न करोतीति । किं च, यथा स्तोकोप्यग्निः तृणकाष्ठराशिं महांतमपि क्षणमात्रेण दहति तथा त्रिगुप्तिसमाधिलक्षणो भेदज्ञानाग्निरंतर्मुहूर्तेनापि बहुभवसंचितं कर्मराशिं दहतीति ज्ञात्वा सर्वतात्पर्येण तत्रैव परमसमाधौ भावना कर्तव्येति भावार्थः ॥ १२७ ॥

त्माका प्रगटपना अत्यंत अस्त होगया है उसपनेकर अज्ञानमय ही भाव होता है । उस अज्ञानमय भावके होनेपर आत्माके और परके एकपनेका निश्चय आगयकर ज्ञानमात्र अपने आत्मस्वरूपसे भ्रष्ट हुआ परद्रव्यस्वरूप रागद्वेषोंसहित एक होके जिसके अहंकार प्रवर्त रहा है ऐसा हुआ अज्ञानी ऐसे मानता है कि 'मैं रागी हूं, द्वेषी हूं' इसतरह रागी द्वेषी होता है । उस रागादिस्वरूप अज्ञानमयभावसे अज्ञानी हुआ परद्रव्यस्वरूप जो रागद्वेष उनरूप अपनेको करता हुआ कर्मोंको करता है । और ज्ञानीके अच्छीतरह अपना परका भेदज्ञान होगया है इसलिये जिसके भिन्न आत्माका प्रगटपना अत्यंत उदय होगया है उस भावकर ज्ञानमय ही भाव होता है । उस भावके होनेसे अपना परका भेदज्ञानकर ज्ञानमात्र अपने आत्मस्वरूपमें ठहरा हुआ ज्ञानी वह परद्रव्यस्वरूप रागद्वेषसे जुदेपनेकर जिसके अपने रससे ही परमें अहंकार निवृत्त होगया है ऐसा हुआ निश्चयसे जानता ही है रागद्वेष-रूप नहीं होता । इसलिये ज्ञानमय भावसे ज्ञानी हुआ परद्रव्यस्वरूप जो रागद्वेष उनरूप आत्माको नहीं करता कर्मोंको नहीं करता है ॥ **भावार्थ**—इस आत्माके क्रोधादिक मोहकी प्रकृतिका उदय आता है उसका अपने उपयोगमें रागद्वेषरूप मलिन स्वाद आता है, उसके भेदज्ञानके विना अज्ञानी हुआ ऐसा मानता है कि यह रागद्वेषमय मलिन उपयोग ही मेरा स्वरूप है यही मैं हूं ऐसे अज्ञानरूप अहंकारकर सहित हुआ कर्मोंको बांधता है । इसतरह अज्ञानमयभावसे कर्मबंध होता है । और जब ऐसा जानता है कि ज्ञानमात्र शुद्ध उपयोग तो मेरा स्वरूप है 'वह मैं हूं' ऐसा, तथा रागद्वेष हैं वे कर्मके रस हैं मेरा स्वरूप नहीं हैं । ऐसा भेदज्ञान होवे तभी ज्ञानी होता है तब अपनेको रागद्वेषभावरूप नहीं करता केवल ज्ञाता ही रहता है तब कर्मको नहीं करता आगे अगली गाथाके अर्थकी सूचनाका काव्य कहते हैं—**ज्ञानमय** इत्यादि । **अर्थ**—यहां प्रश्नरूप वचन है कि जो ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव होता है अन्य नहीं होता यह क्यों ? और अज्ञानीके अज्ञानमय ही सब भाव होते हैं अन्य नहीं यह कैसे ? ॥ १२७ ॥

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः अज्ञानमयः सर्वः कुतोयमज्ञानिनो नान्यः—

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥ १२८ ॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥ १२९ ॥

ज्ञानमयाद्भावाद् ज्ञानमयश्चैव जायते भावाः ।
यस्मात्तस्माज्ज्ञानिनः सर्वे भावाः खलु ज्ञानमयाः ॥ १२८ ॥
अज्ञानमयाद्भावादज्ञानश्चैव जायते भावः ।
यस्मात्तस्माद्भावादज्ञानमया अज्ञानिनः ॥ १२९ ॥

यतो ह्यज्ञानमयाद्भावाद्यः कश्चनापि भावो भवति स सर्वोऽप्यज्ञानमयत्वमनतिवर्तमानोऽज्ञानमय एव स्यात् ततः सर्व एवाज्ञानमया अज्ञानिनो भावाः । यतश्च ज्ञानमयाद्भावाद्यः

अथ ज्ञानमय एव भावो भवति ज्ञानिनो जीवस्य न पुनरज्ञानमयस्तथैवाज्ञानमय एव भवत्यज्ञानिजीवस्य न पुनर्ज्ञानमयः । किमर्थमिति चेत्,—**णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो जह्मा** ज्ञानमयाद् भावाद् निश्चयरत्नत्रयात्मकजीवपदार्थाद् ज्ञानमय एव जायते भावः स्वशुद्धात्मावाप्तिलक्षणो मोक्षपर्यायो यस्मात्कारणात् **तह्मा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया** तस्मात्कारणात्स्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानिनो जीवस्य सर्वे भावाः परिणामा ज्ञानमया ज्ञानेन निर्वृत्ता भवति । तदपि कस्मात्, उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । न हि यवनालबीजे वपिते राजान्नशालिफलं भवतीति । तथैव च—**अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो** अज्ञानमयाद्भावाज्जीवपदार्थात् अज्ञानमय एव जायते भावः पर्यायो यस्मात्कारणात् **तह्मा सव्वे भावा अण्णाणमया अणा-**

इसी प्रश्नकी उत्तररूप गाथा कहते हैं,—**[यस्मात्]** जिसकारण **[ज्ञानमयात् भावात् च]** ज्ञानमयभावसे **[ज्ञानमय एव]** ज्ञानमय ही **[भावः]** भाव **[जायते]** उत्पन्न होता है । **[तस्मात्]** इसकारण **[ज्ञानिनः]** ज्ञानीके **[खलु]** निश्चयकर **[सर्वे भावाः]** सब भाव **[ज्ञानमयाः]** ज्ञानमय हैं । और **[यस्मात्]** जिसकारण **[अज्ञानमयात् भावात् च]** अज्ञानमयभावसे **[अज्ञान एव]** अज्ञानमय ही **[भावः]** भाव **[जायते]** होता है **[तस्मात्]** इसकारण **[अज्ञानिनः]** अज्ञानीके **[अज्ञानमयाः]** अज्ञानमय ही **[भावाः]** भाव उत्पन्न होते हैं ॥ **टीका**—जिसकारण निश्चयकर अज्ञानमयभावसे जो कुछ भाव होता है वह सभी अज्ञानपनेको नहीं उलंघन करता अज्ञानमय ही होता है, इसलिये अज्ञानीके सभी भाव अज्ञानमय हैं । और जिसकारण ज्ञानमयभावसे जो कुछ

कश्चनापि भावो भवति स सर्वोपि ज्ञानमयत्वमनतिवर्तमानो ज्ञानमय एव स्यात् ततः सर्वे एव ज्ञानमया ज्ञानिनो भावाः । "ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवंति हि । सर्वेप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवंत्यज्ञानिनस्तु ते ॥ ६६ ॥" १२८।१२९ ॥

अथैतदेव दृष्टांतेन समर्थयते;—

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादयो भावा ।
अयमयया भावादो जह जायंते तु कडयादी ॥ १३० ॥
अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥ १३१ ॥

कनकमयाद्भावाज्जायंते कुंडलादयो भावाः ।
अयोमयकाद्भावाद्यथा जायंते तु कटकादयः ॥ १३० ॥
अज्ञानमयाद्भावादज्ञानिनो बहुविधा अपि जायंते ।
ज्ञानिनस्तु ज्ञानमयाः सर्वे भावास्तथा भवंति ॥ १३१ ॥

यथा खलु पुद्गलस्य स्वयं परिणामस्वभावत्वे सत्यपि कारणानुविधायित्वात्कार्याणां

णिस्स यतः एवं तस्मात्कारणात्सर्वे भावाः परिणामा अज्ञानमया मिथ्यात्वरागादिरूपा भवंति । कस्य, अज्ञानिनः शुद्धात्मोपलब्धिरहितस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्येति ॥ १२८।१२९ ॥ अथ तदेव व्याख्यानं दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति,—कनकमयाद्भावात्पदार्थात् "उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति" कृत्वा कुंडलादयो भावाः पर्यायाः कनकमया एव भवंति । अयोमयाल्लोहमयाद्भावात्पदार्थात् अयोमया एव भावा पर्यायाः कटकादयो भवंति यथा येन प्रकारेणेति दृष्टांतगाथा गता । अथ द्राष्टांतमाह । **अण्णाणेत्ति** तथा पूर्वोक्तलोहदृष्टांतेनाज्ञानमयाद्भावाज्जीवपदार्थादज्ञानिनो भावाः पर्याया बहुविधा मिथ्यात्वरागादिरूपा अज्ञानमया जायंते । तथैव च पूर्वोक्तजा-

---

भाव होता है वह सभी ज्ञानमयपनेको नहीं उल्लंघता हुआ ज्ञानमय ही होता है इसलिये ज्ञानीके सभी भाव ज्ञानमय हैं । इसका भावार्थ सुगम है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**ज्ञानिनो** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानीके सभी भाव ज्ञानकर उत्पन्न होते हैं और अज्ञानीके सभी भाव अज्ञानसे उत्पन्न होते है ॥ १२८।१२९ ॥

आगे इस अर्थको दृष्टांतसे दृढ करते हैं;—प्रथम दृष्टांत [**यथा**] जैसे [**कनकमयात् भावात्**] सुवर्णमयभावसे [**कुंडलादयः भावाः**] सुवर्णमय कुंडलादिक भाव [**जायंते**] होते हैं [**तु**] और [**अयोमयात् भावात्**] लोहमयभावसे [**कटकादयः**] लोहमयी कड़े इत्यादिक भाव होते हैं । उसका दार्ष्टांत । [**तथा**] उसीतरह [**अज्ञानिनः**] अज्ञानीके [**अज्ञानमयात् भावात्**] अज्ञानमय भावसे [**बहुविधा अपि**] अनेक तरहके अज्ञानमय भाव [**जायंते**] होते हैं [**तु**] और [**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके [**सर्वे**] सभी [**ज्ञानमयाः भावाः**] ज्ञान-

जाबूनदमयाद्भावाज्जांबूनदजातिमनतिवर्तमानाजांबूनदकुंडलादय एव भावा भवेयुर्न पुनः कालायसवलयादयः । कालायसमयाद्भावाच्च कालायसजातिमनतिवर्तमानाः कालायसवलयादय एव भवेयुर्न पुनर्जांबूनदकुंडलादयः । तथा जीवस्य स्वयं परिणामस्वभावत्वे सत्यपि कारणानुविधायित्वादेव कार्याणां अज्ञानिनः स्वयमज्ञानमयाद्भावादज्ञानजातिमनतिवर्तमाना विविधा अप्यज्ञानमया एव भावा भवेयुर्न पुनर्ज्ञानमयाः, ज्ञानिनश्च स्वयं ज्ञानमयाद्भावा-

बूनददृष्टांतेन ज्ञानिनो जीवस्य ज्ञानमयाः सर्वे भावाः पर्याया भवंति । किं च विस्तरः । वीतरागस्वसंवेदनभेदज्ञानी जीवः यं शुद्धात्मभावनारूप परिणामं करोति स परिणामः सर्वोपि ज्ञानमयो भवति । ततश्च येन ज्ञानमयपरिणामेन संसारस्थितिं हित्वा देवेंद्रलौकांतिकादिमहर्द्धिकदेवो भूत्वा घटिकाद्वयेन मतिश्रुतावधिरूपं ज्ञानमयभाव पर्यायं लभते । ततश्च विमानपरिवारादिविभूतिं जीर्णतृणमिव गणयन्पंचमहाविदेहे गत्वा पश्यति । किं पश्यतीति चेत्, तदिदं समवसरण त एते वीतरागसर्वज्ञास्त एते भेदाभेदरत्नत्रयाराधनापरिणता गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयंते परमागमे ते दृष्टाः प्रत्यक्षेणेति मत्वा, विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा तु चतुर्थगुणस्थानयोग्याशुद्धभावनामपरित्यजन्निरंतर धर्मध्यानेन देवलोके काल गमयित्वा, पश्चान्मनुष्यभवे राजाधिराजमहाराजार्द्धमंडलीकमहामडलीकबलदेवचक्रवर्त्तितीर्थंकरपरमदेवादिपदे लब्धेपि पूर्वभववासनावासितशुद्धात्मरूपं

मयभाव होनेसे ज्ञानमयभाव [भवंति] होते हैं ॥ **टीका**—जैसे निश्चयकर पुद्गलद्रव्यके स्वयं परिणामस्वभावपनारूप होनेपर भी जैसा पुद्गल कारण हो उसस्वरूप कार्य होता है यह प्रसिद्ध है । ऐसा होनेपर सुवर्णमयभावसे सुवर्णजातिको नहीं उलंघके वर्तते सुवर्णमय ही कुंडलआदिक भाव होते हैं, सुवर्णसे लोहमयी कड़ाआदिक भाव नहीं होते । और लोहमयी भावसे लोहकी जातिको नहीं उलंघके वर्तते लोहमय कडेआदिक भाव होते हैं, लोहसे सुवर्णमयी कुंडलआदिक भाव नहीं होते उसीतरह जीवके स्वयं परिणामभावरूप होनेपर भी "जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है" इस न्यायसे अज्ञानीके स्वयमेव अज्ञानमयभावसे अज्ञानकी जातिको नहीं उलंघकर वर्तनेवाले अनेक प्रकारके अज्ञानमय ही भाव होते हैं ज्ञानमयभाव नहीं होते, और ज्ञानीके ज्ञानकी जातिको नहीं उलंघकर वर्तते सब ज्ञानमय ही भाव होते हैं अज्ञानमय नहीं होते ॥ **भावार्थ**—'जैसा कारण हो वैसा ही कार्य होता है' इस न्यायसे जैसे सुवर्णसे सुवर्णमयी आभूषण होते है लोहसे लोहमयी होते हैं उसीतरह अज्ञानीके अज्ञानसे अज्ञानमयभाव होते हैं और ज्ञानीके ज्ञानसे ज्ञानमय ही भाव होते हैं । यहांपर ऐसा आशय समझना कि अज्ञानभाव तो क्रोधादिक है और ज्ञानभाव क्षमाआदिक हैं । यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टिके चारित्रमोहके उदयसे क्रोधादिक भी प्रवर्तते हैं तौभी उनमें आत्मबुद्धि नहीं है, परके निमित्तसे हुई उपाधि मानता है वह उदय देके खिर जाता है आगामी ऐसा बंध नहीं करता कि जिससे संसारका भ्रमण बढे ।

ज्ज्ञानजातिमनतिवर्तमानाः सर्वे ज्ञानमया एव भावा भवेयुर्न पुनरज्ञानमयाः । "अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्यभूमिकां । द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुतां ॥ ६७ ॥" ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अण्णाणस्स स उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी ।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥ १३२ ॥
उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं ।
जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥ १३३ ॥
तं जाण जोगउदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो ।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥ १३४ ॥
एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु ।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥ १३५ ॥
तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥ १३६ ॥

अज्ञानस्य स उदयो या जीवानामतत्त्वोपलब्धिः ।
मिथ्यात्वस्य तूदयो जीवस्याश्रद्दधानत्वं ॥ १३२ ॥
उदयोऽसंयमस्य तु यज्जीवानां भवेदविरमणं ।
यस्तु कलुषोपयोगो जीवानां स कषायोदयः ॥ १३३ ॥

भेदभावनाबलेन मोहं न गच्छति रामपाडवादिवत् । ततश्च जिनदीक्षा गृहीत्वा सप्तर्द्धिचतुर्ज्ञानमयभाव पर्यायं लभते । तदनतरं समस्तपुण्यपापपरिणामपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन द्वितीयशुक्लध्यानरूपेण विशिष्टभेदभावनाबलेन स्वात्मभावनोत्थसुखामृतरसेन तृप्तो भूत्वा सर्वातिशयपरिपूर्णलोकत्रयाधिपाराध्यं परमाचिंत्यविभूतिविशेषं केवलज्ञानरूपं भावं पर्यायं लभत इत्यभिप्रायः । अज्ञानिजीवस्तु मिथ्यात्वरागादिमयमज्ञानभाव कृत्वा नरनारकादिरूपं भावं पर्यायं लभत इति भावार्थः ॥ १३०।१३१ ॥ एवं ज्ञानमयाज्ञानमयभावकथनमुख्यत्वेन गाथाषट्कं गतं । इति

और आप उद्यमी होके उनरूप परिणमता भी नहीं है उदयकी जबरदस्तीसे परिणमता है इसलिये वहां भी ज्ञानमे ही अपना स्वामीपना माननेसे उन क्रोधादिभावोंका भी अन्य ज्ञेयके समान ज्ञाता ही है कर्ता नहीं है । इसतरह वहांभी ज्ञानीपनेकर ज्ञानभाव ही हुआ जानना ॥ आगे अगली गाथाकी सूचनाके अर्थरूप श्लोक कहते हैं— **अज्ञान** इत्यादि । अज्ञानी अज्ञानमय अपने भावोंकी भूमिकाको व्यापकर आगामी द्रव्यकर्मके कारण जो अज्ञानादिक भाव उनके हेतुपनको प्राप्त होता है ॥ १३०।१३१ ॥

यही अर्थ पांच गाथाओंसे कहते हैं,—**[या]** जो **[जीवानां]** जो जीवोंके **[अतत्त्वोपलब्धिः]** अन्यथास्वरूपका जानना है **[सः]** वह **[अज्ञानस्य]**

तं जानीहि योगोदयं यो जीवानां तु चेष्टोत्साहः।
शोभनोऽशोभनो वा कर्तव्यो विरतिभावो वा ॥ १३४ ॥
एतेषु हेतुभूतेषु कार्मणवर्गणागतं यत्तु।
परिणमतेऽष्टविधं ज्ञानावरणादिभावैः ॥ १३५ ॥
तत्खलु जीवनिबद्धं कार्मणवर्गणागतं यदा।
तदा तु भवति हेतुर्जीवः परिणामभावानां ॥ १३६ ॥

अतत्त्वोपलब्धिरूपेण ज्ञाने स्वदमानो अज्ञानोदयः। मिथ्यात्वासंयमकषाययोगोदयाः कर्महेतवस्तन्मयाश्चत्वारो भावाः। तत्त्वाश्रद्धानरूपेण ज्ञाने स्वदमानो मिथ्यात्वोदयः अविरमणरूपेण ज्ञाने स्वदमानोऽसंयमोदयः कलुषोपयोगरूपेण ज्ञाने स्वदमानः कषायोदयः शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिव्यापाररूपेण ज्ञाने स्वदमानो योगोदयः। अथैतेषु पौद्गलि-

पूर्वोक्तप्रकारेण पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपेण महाधिकारे कथंचित्परिणामित्वे सति ज्ञानिजीवो ज्ञानमयभावस्य कर्ता तथैव चाज्ञानिजीवोऽज्ञानमयस्य भावस्य कर्ता भवतीति, अज्ञानमुख्यतया गाथानवकेन षष्ठोन्तराधिकारः समाप्तः। अथ पूर्वोक्त एवाज्ञानमयभावो द्रव्यभावगतपचप्रत्ययरूपेण पंचविधो भवति स चाज्ञानिजीवस्य शुद्धात्मैवोपादेय इत्यरोचमानस्य तमेव शुद्धात्मान स्वसवेदनज्ञानेनाजानतस्तमेव परमसमाधिरूपेणाभावयतश्च बधकारणं भवतीति सप्तमांतराधिकारे समुदायपातनिका,—**मिच्छत्तस्स दु उदयं जं जीवाणं अतच्चसद्दहणं** मिथ्यात्वस्योदयो भवति जीवानामनतज्ञानादिचतुष्टयरूप शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयं विहायान्यत्र यच्छ्रद्धानं रुचिरुपादेयबुद्धिः **असंजमस्स दु उदओ जं जीवाणं अविरदत्तं** असयमस्य च स उदयो भवति जीवानामात्मसुखसवित्त्यभावे सति विषयकषायेभ्यो यदनिवर्त्तनमिति। अथ—**अण्णाणस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी** अज्ञानस्योदयो भवति यत्किं भेदज्ञानं विहाय जीवाना विपरीतरूपेण परद्रव्यैकत्वेनोपलब्धिः प्रतीतिः **जो दु कसाउवओगो सो जीवाणं कसाउदओ** स जीवाना कषायोदयो भवति यः शातात्मोपलब्धिलक्षणं शुद्धोपयोग विहाय क्रोधादिकषायरूप उपयोगः परिणाम इति। अथ—**तं जाण जोगउदयं जं जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो** तं योगोदय जानीहि त्वं हे शिष्य जीवाना मनोवचनकायवर्गणाधारेण वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुरात्मप्रदेशपरिस्पदलक्षणः प्रयत्नरूपेण

अज्ञानका [**उदयः**] उदय है [**तु**] और जो [**जीवस्य**] जीवके [**अश्रद्धानत्वं**] अतत्त्वका श्रद्धान है वह [**मिथ्यात्वस्य**] मिथ्यात्वका [**उदयः**] उदय है [**यत्तु**] और जो [**जीवानां**] जीवोंके [**अविरमणं**] अत्यागभाव [**भवेत्**] है [**असंयमस्य**] वह असंयमका [**उदयः**] उदय है [**तु**] और [**यः**] जो [**जीवानां**] जीवोंके [**कलुषोपयोगः**] मलिन (जानपनेकी स्वच्छतासे रहित) उपयोग है [**सः**] वह [**कषायोदयः**] कषायका उदय है [**तु यः**] और जो

केषु मिथ्यात्वाद्युदयेषु हेतुभूतेषु यत्पुद्गलद्रव्यं कर्मवर्गणागतं ज्ञानावरणादिभावैरष्टधा स्वयमेव परिणमते तत्खलु कर्मवर्गणागतं जीवनिबद्धं यदा स्यात्तदा जीवः स्वयमेवाज्ञाना-

---

यस्तु चेष्टोत्साहो व्यापारोत्साहः **सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा** स च शुभाशुभरूपेण द्विधा भवति। तत्र व्रतादिकर्तव्यरूपः शोभनः पश्चादव्रतादिरूपो वर्जनीयः स चाशोभनः इति । अथ—**एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु** एतेषु पूर्वोक्तेषु हेतुभूतेषु यत् मिथ्यात्वादिपंचप्रत्ययेषु कार्मणवर्गणागतं परिणतं यदभिमतं नवतरं पुद्गलद्रव्यं **परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं** जीवस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकपरिणतिरूपपरमसामयिकाभावे सति ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपेणाष्टविधं परिणमतीति । अथ—**तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया** तत्पूर्वोक्तसूत्रोदितं कर्मवर्गणायोग्यमभिनवं पुद्गलद्रव्यं जीवनिबद्ध जीवसंबद्ध योगवशेनागतं यदा भवति खलु स्फुटं **तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं** तदा काले पूर्वोक्तिष्दयागतेषु द्रव्यप्रत्ययेषु सत्सु स्वकीयगुणस्थानानुसारेण जीवो हेतुः कारणं भवति केषा परिणामरूपाणा भावानां प्रत्ययानामिति । किंच,

---

[जीवानां] जीवोंके **[शोभनः]** शुभरूप **[वा]** अथवा **[अशोभनः]** अशुभरूप **[चेष्टोत्साहः]** मनवचनकायकी चेष्टाके उत्साहका **[कर्तव्यः]** करने योग्य **[वा]** अथवा **[विरतिभावः]** न करने योग्य व्यापार है **[तं]** उसे **[योगोदयं]** योगका उदय **[जानीहि]** जानो । **[एतेषु]** इनको **[हेतुभूतेषु]** हेतुभूत होनेपर **[यत्तु]** जो **[कर्मवर्गणागतं]** कार्माणवर्गणारूप आकर प्राप्त हुआ **[ज्ञानावरणादिभावैः अष्टविधं]** ज्ञानावरण आदि भावोंकर आठ प्रकार **[परिणमते]** परिणमता है **[तत् खलु]** वह निश्चयकर **[यदा]** जब **[कार्मणवर्गणा गतं]** कार्मणवर्गणारूप आया हुआ **[जीवनिबद्धं]** जीवमें बंधता है **[तदा तु]** उस समय **[परिणामभावानां]** उन अज्ञानादिक परिणाम भावोंका **[हेतुः]** कारण **[जीवः]** जीव **[भवति]** होता है ॥ **टीका**—अयथार्थ वस्तुस्वरूपकी उपलब्धिकर ज्ञानमें जो स्वादरूप हो वह अज्ञानका उदय है । उसके मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योगादिक अज्ञानमय चार भाव हैं । जो कि ज्ञानावरणादि कर्मके कारण हैं । उनमेंसे जो तत्त्वके अश्रद्धानरूपकर ज्ञानमें आस्वादका आना वह तो मिथ्यात्वका उदय है, जो अत्यागभावकर ज्ञानमें आस्वादरूप आये वह असंयमका उदय है, जो मलिन उपयोगकर ज्ञानमें आस्वादरूप आये वह कषायका उदय है और जो शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिरूप व्यापारकर ज्ञानमें स्वादरूप होता है वह योगका उदय है । ये मिथ्यात्वादिके उदयस्वरूप चारों भाव पुद्गलके हैं वे आगामी कर्मबंधको कारण होते हैं । उनको कारणरूप होनेपर जो पुद्गलद्रव्य कर्मवर्गणारूप आया हुआ ज्ञानावरण आदि भावोंकर अष्टप्रकार स्वयमेव परिणमता है । सो यह ज्ञानावरणादिकरूप कर्मवर्गणाकर

त्परात्मनोरेकत्वाध्यासेनाज्ञानमयानां तत्त्वश्रद्धानादीनां स्वस्य परिणामभावानां हेतुर्भवति ॥ १३२।१३३।१३४।१३५।१३६ ॥

पुद्गलद्रव्यात्पृथग्भूत एव जीवस्य परिणामः;—

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी ।
एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा ॥ १३७ ॥
एकस्स दु परिणामा जायदि जीवस्स रागमादीहिं ।
ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो ॥ १३८ ॥

जीवस्य तु कर्मणा च सह परिणामाः खलु भवंति रागादयः ।
एवं जीवः कर्म च द्वे अपि रागादित्वमापन्ने ॥ १३७ ॥
एकस्य तु परिणामो जायते जीवस्य रागादिभिः ।
तत्कर्मोदयहेतुभिर्विना जीवस्य परिणामः ॥ १३८ ॥

यदि जीवस्य तन्निमित्तभूतविपच्यमानपुद्गलकर्मणा सहैव रागाद्यज्ञानपरिणामो भवतीति

उदयागतद्रव्यप्रत्ययनिमित्तेन मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्ययरूपेण परिणम्य जीवो नवतरं कर्मबंधस्य कारण भवतीति तात्पर्यं । अयमत्र भावार्थः, उदयागतेषु द्रव्यप्रत्ययेषु यदि जीवः स्वस्वभाव मुक्त्वा रागादिरूपेण भावप्रत्ययेन परिणमतीति तदा बंधो भवतीति नैवोदयमात्रेण घोरोपसर्गेपि पांडवादिवत्, यदि पुनरुदयमात्रेण बंधो भवति तदा सर्वदैव ससारएव । कस्मादिति चेत्, ससारिणा सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात् । इति पुण्यपापसप्तपदार्थाना पीठिकारूपे महाधिकारेऽज्ञानिभावः पंचप्रत्ययरूपेण शुद्धात्मस्वरूपच्युताना जीवाना बधकारण भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन पंचगाथाभिः सप्तमोन्तराधिकारः समाप्तः ॥ १३२।१३३।१३४।१३५।१३६ ॥ अतः परं जीवपुद्गलयोः परस्परोपादानकारणनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयमित्यष्टमांतराधिकारे समुदायपातनिका । अथ निश्चयेन कर्मपुद्गलात्पृथग्भूत एव जीवस्य परिणाम इति प्रतिपादयति,—**जीवस्स दु**

प्राप्त हुआ जब जीवमें निबद्ध होता है तब जीव स्वयमेव अपने अज्ञान भावसे पर और आत्माका एकपना निश्चयकर अज्ञानमय अतत्त्वश्रद्धानादिक अपने परिणामस्वरूप भावोंका कारण होता है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानभावके भेदरूप जो मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योगरूप परिणाम हैं वे पुद्गलके परिणाम हैं । वे ज्ञानावरणादि आगामी कर्मबंधनेको कारण हैं । और जीव उन मिथ्यात्वादिभावोंके उदय होनेसे अपने अज्ञानभावसे अतत्त्वश्रद्धानादिभावोंरूप परिणमता है उन अपने अज्ञानरूप भावोंका कारण होता है ॥ १३२।१३३।१३४।१३५।१३६ ॥

आगे कहते हैं कि पुद्गलद्रव्यका परिणाम जीवसे जुदा ही है;—**[यदि]** जो **[जीवेन सह चैव]** जीवके साथ ही **[पुद्गलद्रव्यस्य]** पुद्गलद्रव्यका **[कर्मप-**

वितर्कः तदा जीवपुद्गलकर्मणोः सहभूतसुधाहरिद्रयोरिव द्वयोरपि रागाद्यज्ञानपरिणामापत्तिः । अथ चैकस्यैव जीवस्य भवति रागाद्यज्ञानपरिणामः ततः पुद्गलकर्मविपाकाद्धेतोः पृथग्भूतो जीवस्य परिणामः ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी यदि जीवस्योपादानकारणभूतस्य कर्मोदयेनोपादानभूतेन सह रागादिपरिणामा भवंति । **एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा** एवं द्वयोर्जीवपुद्गलयोः रागादिपरिणामानामुपादानकारणत्वे सति सुधाहरिद्रयोरिव द्वयोरागित्वं प्राप्नोति । तथा सति पुद्गलस्य चेतनत्व प्राप्नोति स च प्रत्यक्षविरोध इति । अथ— **एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं** अथाभिप्रायो भवतां पूर्वदूषणभयादेकस्य जीवस्यैकांतेनोपादानकारणस्य रागादिपरिणामो जायते **ता कम्मोदयहेदुहिं विणा जीवस्स परिणामो** तस्मादिदं दूषणं कर्मोदयहेतुभिर्विनापि शुद्धजीवस्य रागादिपरिणामो जायते स च प्रत्यक्षविरोध आगमविरोधश्च । अथवा द्वितीयव्याख्यानं एकस्य जीवस्योपादानकारणभूतस्य कर्मोदयोपादानहेतुभिर्विना रागादिपरिणामो यदि भवति तदा सम्मतमेव । किं च द्रव्यकर्मणामनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण कर्ता जीवः रागादिभावकर्मणामशुद्धनिश्चयेन स चाशुद्धनिश्चयः यद्यपि द्रव्यकर्मकर्तृत्वविषयभूतस्यानुपचरितासद्भूतव्यवहारस्यापेक्षया निश्चयसंज्ञां लभते, तथापि शुद्धात्मद्रव्यविषयभूतस्य शुद्धनिश्चयस्यापेक्षया वस्तुवृत्त्या व्यवहार एवेति भावार्थः ॥ १३७।१३८ ॥ अथ निश्चयेन जीवात्पृथग्भूत एव पुद्गलकर्मणः परिणाम

रिणामः] कर्मरूप परिणाम होता है ऐसा माना जाय तो **[एवं]** इसतरह **[पुद्गलजीवौ द्वौ अपि]** पुद्गल और जीव दोनों **[खलु]** ही **[कर्मत्वं आपन्नौ]** कर्मपनेको प्राप्त हुए ऐसा हुआ । **[तत्]** इसलिये **[जीवभावहेतुभिः विना]** जीवभाव निमित्त कारणके विना **[कर्मणः]** जुदा ही कर्मका **[परिणामः]** परिणाम है । सो एक पुद्गलद्रव्यका ही कर्मभावकर परिणाम है ॥ **टीका**—पुद्गलद्रव्यके कर्म परिणामका निमित्तभूत जो जीवका रागादि अज्ञान परिणाम उसरूप परिणत हुआ जो जीव उसके साथ ही होता है, ऐसी तर्क की जाय तो पुद्गल और जीव इन दोनोंके हलदी और फिटकरीकी तरह मिलकर कर्मपरिणामकी प्राप्ति आजाय परंतु ऐसा नहीं है । इसलिये ऐसा सिद्ध हुआ कि कर्म परिणाम एक पुद्गल द्रव्यका ही है और जीवका रागादिस्वरूप अज्ञान परिणाम जो कि कर्मको निमित्तकारण है उससे जुदा ही पुद्गलकर्मका परिणाम है ॥ **भावार्थ**—जो पुद्गलद्रव्यका कर्म परिणाम होना जीवके साथ ही मानाजाय तो दोनोंके कर्म परिणाम सिद्ध हो । इसलिये जीवका अज्ञानरूप रागादिपरिणाम कर्मको निमित्त है उससे पुद्गलद्रव्यका पुद्गलकर्मपरिणाम जीवसे जुदा ही है ॥ १३७।१३८ ॥

जीवात्पृथग्भूत एव पुद्गलद्रव्यस्य परिणाम;—

जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो ।
एवं पुग्गलजीवा हु दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥ १३९ ॥
एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥ १४० ॥

यदि जीवेन सह चैव पुद्गलद्रव्यस्य कर्मपरिणामः ।
एवं पुद्गलजीवौ खलु द्वावपि कर्मत्वमापन्नौ ॥ १३९ ॥
एकस्य तु परिणामः पुद्गलद्रव्यस्य कर्मभावेन ।
तज्जीवभावहेतुभिर्विना कर्मणः परिणामः ॥ १४० ॥

यदि पुद्गलद्रव्यस्य तन्निमित्तभूतरागाद्यज्ञानपरिणामपरिणतजीवेन सहैव कर्मपरिणामो भवतीति वितर्कः तदा पुद्गलद्रव्यजीवयोः सहभूतहरिद्रासुधयोरिव द्वयोरपि कर्मपरिणामा-

---

इति निरूपयति,—**एकस्स परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण** एकस्योपादानभूतस्य कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यस्य द्रव्यकर्मरूपेण परिणामः यत एव **ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो** तस्मात्कारणाज्जीवगतमिथ्यात्वरागादिपरिणामोपादानहेतुभि-

---

आगे कहते हैं कि इसीतरह जीवका परिणाम भी पुद्गलद्रव्यसे जुदा ही है,—जो ऐसा मानाजाय कि [**जीवस्य**] जीवके [**परिणामाः**] परिणाम [**रागादयः**] रागादिक हैं वे [**खलु**] निश्चयसे [**कर्मणा च सह**] कर्मके साथ होते हैं [**एवं तु**] तो [**जीवः च कर्म**] जीव और कर्म [**द्वे अपि**] ये दोनों ही [**रागादित्वं आपन्ने**] रागादि परिणामको प्राप्त हो जायँ । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि [**रागादिभिः**] इन रागादिकोंसे [**एकस्य जीवस्य तु**] एक जीवका ही [**परिणामः**] परिणाम [**जायते**] उत्पन्न होता है [**तत्**] वह [**कर्मोदयहेतुभिर्विना**] कर्मका उदयरूप निमित्त कारणसे जुदा [**जीवस्य परिणामः**] एक जीवका ही परिणाम है ॥ **टीका—**जो जीवका परिणाम रागादिरूप होता है उसको निमित्तभूत उदय आया जो पुद्गलकर्म उसके साथ ही होता है ऐसा मानाजाय तो जीव और पुद्गलकर्म दोनोंके ही हलदी और फिटकरीकी तरह (जैसे रंगमें हलदी और फिटकरी साथ डालनेसे उन दोनोंका एक रंगस्वरूप परिणाम होता है वैसे) कर्मपरिणामकी प्राप्ति होजायगी । ऐसा इष्ट नहीं है । यदि ऐसा ही मानाजाय कि रागादि अज्ञान परिणामकी प्राप्ति केवल एक जीवके ही होती है तो इस हेतुसे ऐसा आया कि पुद्गलकर्मका उदय जीवके रागादि अज्ञान परिणामोंको निमित्त है उससे रहित जुदा ही जीवका परिणाम है ॥ **भावार्थ—**पुद्गलकर्मके उदयके साथ ही जीवका परिणाम माना-जाय तो जीव और कर्म इन दोनोंके रागादिककी प्राप्ति आये सो ऐसा नहीं है । इस-

पत्तिः । अथ चैकस्यैव पुद्गलद्रव्यस्य भवति कर्मत्वपरिणामः ततो रागादिजीवाज्ञानपरिणामाद्धेतोः पृथग्भूत एव पुद्गलकर्मणः परिणामः ॥ १३९ ॥ १४० ॥

किमात्मनि बद्धास्पृष्टं किमबद्धस्पृष्टं कर्मेति नयविभागेनाह;—

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥ १४१ ॥

जीवे कर्म बद्धं स्पृष्टं चेति व्यवहारनयभणितं ।
शुद्धनयस्य तु जीवे अबद्धस्पृष्टं भवति कर्म ॥ १४१ ॥

जीवपुद्गलकर्मणोरेकबंधपर्यायत्वेन तदतिव्यतिरेकाभावाज्जीवे बद्धास्पृष्टं कर्मेति व्यवहारनयपक्षः । जीवपुद्गलकर्मणोरनेकद्रव्यत्वेनात्यंतव्यतिरेकाज्जीवेऽबद्धस्पृष्टं कर्मेति निश्चयपक्षः १४१

र्विनापि द्रव्यकर्मणः परिणामः स्यात् ॥ १३९।१४० ॥ इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थाना पीठिकारूपे महाधिकारे जीवकर्मपुद्गलपरस्परोपादानकारणनिषेधमुख्यतया गाथात्रयेणाष्टमोतराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं व्यवहारेण बद्धो निश्चयेनाबद्धो जीव इत्यादिविकल्परूपेण नयपक्षपातेन स्वीकारेण रहितं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन पुण्यपापादिपदार्थेभ्यो भिन्नं शुद्धसमयसारं गाथाचतुष्टयेन कथयतीति नवमेंतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ किमात्मनि बद्धस्पृष्टं किमबद्धस्पृष्टं कर्मेति प्रश्ने सति नयविभागेन परिहारमाह;—**जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं** जीवेऽधिकारणभूते बद्धसश्लेषरूपेण क्षीरनीरवत्संबद्धं स्पृष्टं योगमात्रेण लग्नं च कर्मेति व्यवहारनयपक्षो व्यवहारनयाभिप्रायः । **सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं** शुद्धनयस्याभिप्रायेण पुनर्जीवेधिकारणभूते अबद्धं स्पृष्टं कर्म इति निश्चयव्यवहारनयद्वयविकल्परूपं शुद्धात्मस्वरूपं न भवतीति भावार्थः ॥ १४१ ॥ अथ

लिये पुद्गलकर्मका उदय जीवके अज्ञानरूप रागादि परिणामोंको निमित्त है । उस निमित्तसे जुदाही जीवका परिणाम है ॥ १३९।१४० ॥

आगे पूछते है कि आत्मामे कर्म बद्ध स्पृष्ट है कि अबद्धस्पृष्ट ? उसका उत्तर नयविभागसे कहते हैं,—[**जीवे**] जीवमे [**कर्म**] कर्म [**बद्धं**] बद्ध है अर्थात् जीवके प्रदेशोंसे बंधा हुआ है [**च**] तथा [**स्पृष्टः**] स्पर्शता है [**इति**] ऐसा [**व्यवहारनयभणितं**] व्यवहारनयका वचन है [**तु**] और [**जीवे**] जीवमे [**कर्म**] [**अबद्धस्पृष्टं**] अबद्धस्पृष्ट [**भवति**] है अर्थात् न बँधता है न स्पर्शता है ऐसा [**शुद्धनयस्य**] शुद्धनयका वचन है । **टीका**—जीव और पुद्गल कर्मके एक बंध पर्यायपनेसे देखा जाय तो उस समय भिन्नताका अभाव है वहां जीवमें कर्म बंधतेभी हैं स्पर्शते भी हैं ऐसा कहना तो व्यवहारनयका पक्ष है और जीव तथा पुद्गलकर्मके अनेक द्रव्यपनेकर देखा जाय तो अत्यंत भिन्नपना है इसलिये जीवमें कर्म बद्ध स्पृष्ट नहीं हैं ऐसा कहना निश्चयका पक्ष है ॥ १४१ ॥

ततः किं;—

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं ।
पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥ १४२ ॥

कर्म बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जानीहि नयपक्षं ।
पक्षातिक्रांतः पुनर्भण्यते यः स समयसारः ॥ १४२ ॥

यः किल जीवे बद्धं कर्मेति यश्च जीवेऽबद्धं कर्मेति विकल्पः स द्वितयोपि हि नयपक्षः । य एवैनमतिक्रामति स एव सकलविकल्पातिक्रांतः स्वयं निर्विकल्पैकविज्ञानघनस्वभावो भूत्वा साक्षात्समयसारः संभवति । तत्र यस्तावज्जीवे बद्धं कर्मेति विकल्पयति स जीवेऽबद्धं कर्मेति एकं पक्षमतिक्रामन्नपि न विकल्पमतिक्रामति । यस्तु जीवेऽबद्धं कर्मेति विकल्पयति सोपि जीवे बद्धं कर्मेत्येकं पक्षमतिक्रामन्नपि न विकल्पमतिक्रामति । यः पु-

---

यस्माद्बद्धाबद्धादिविकल्परूप नयस्वरूपमुक्त तस्माच्छुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन बद्धावद्धादिनयविकल्परूपो जीवो न भवतीति प्रतिपादयति;—**कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं** जीवेधिकरणभूते कर्म बद्धमबद्धं चेति योऽसौ विकल्पः स उभयोपि नयपक्षपातः स्वीकार इत्यर्थः **पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो** नयपक्षातिक्रातो भण्यते यः स समयसारः शुद्धात्मा । तद्यथा–व्यवहारेण बद्धो

आगे कहते हैं कि ये दोनों नयपक्ष है उनसे क्या होता है ?,—[**जीवे**] जीवमें [**कर्म**] कर्म [**बद्धं**] बंधे हुए हैं अथवा [**अबद्धं**] नहीं बंधे हुए हैं [**एवं तु**] इसप्रकार तो [**नयपक्षं**] नयपक्ष [**जानीहि**] जानो [**पुनः यः**] और जो [**पक्षातिक्रांतः**] पक्षसे दूरवर्ती [**भण्यते**] कहा जाता है [**सः समयसारः**] वह समयसार है निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है ॥ **टीका**—जो निश्चयकर जीवमे कर्म बंधे हुए हैं ऐसा कहना तथा जीवमें कर्म नहीं बंधे हुए है ऐसा कहना ये दोनों ही विकल्प नयपक्ष है । जो इस नयपक्षके विकल्पको उल्लंघके वर्तता है अर्थात् छोडता है वही समस्त विकल्पोंसे दूर रहता है । वही आप निर्विकल्प एक विज्ञानघन स्वभावरूप होकर साक्षात् समयसार हो जाता है । प्रथम तो जो जीवमें कर्म बंधा है ऐसा विकल्प करता है वह "जीवमें कर्म नहीं बंधा है" ऐसा एक पक्षको छोडता हुआ भी विकल्पको नहीं छोड़ता । और जो जीवमें कर्म नहीं बंधा है ऐसा विकल्प करता है वह "जीवमे कर्म बंधा है" ऐसे विकल्परूप एक पक्षको छोड़ता हुआ भी विकल्पको नहीं छोड़ता, और जो जीवमें कर्म बंधा भी है तथा नही भी बंधा है ऐसा विकल्प करता है वह उन दोनों ही नयपक्षोंको नहीं छोड़ता हुआ विकल्पको नहीं छोड़ता । इसलिये जो सभी नयपक्षोंको छोड़ता है वही समस्त विकल्पोंको छोड़ता है तथा वही समयसारको अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—जीव कर्मोंसे बंधा

नर्जीवे बद्धमबद्धं च कर्मेति विकल्पयति स तु तं द्वितयमपि पक्षमनतिक्रामन्न विकल्पमतिक्रामति । ततो य एव समस्तनयपक्षमतिक्रामति स एव समस्तं विकल्पमतिक्रामति । य एव समस्तं विकल्पमतिक्रामति स एव समयसारं विंदति । यद्येवं तर्हि को हि नाम पक्षसंन्यासभावनां न नाटयति । "य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यं । विकल्पजालच्युतशांतचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबंति ॥ ७० ॥ एकस्य बद्धो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७१ ॥ एकस्य मूढो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७२ ॥ एकस्य रक्तो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७३॥ एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७४ ॥ एकस्य कर्ता न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७५ ॥ एकस्य भोक्ता

जीव इति नयविकल्पः शुद्धजीवस्वरूपं न भवति निश्चयेनाबद्धो जीव इति च नयविकल्पः शुद्धजीवस्वरूपं न भवति निश्चयव्यवहाराभ्यां बद्धाबद्धजीव इति वचनविकल्पः शुद्धजीवस्वरूपं न भवति । कस्मादिति चेत्? श्रुतविकल्पा नया इति वचनात् । श्रुतज्ञानं च क्षायोपशमिकं

हुआ भी है तथा नहीं बंधा भी है ये दोनों नयपक्ष है । उनमेंसे किसीने तो बंधपक्षको पकड़ा उसने भी विकल्प ही ग्रहण किया, किसीने अबंधपक्ष स्वीकार किया उसने भी विकल्प ही लिया और किसीने दोनों पक्ष लीं उसने भी पक्षका ही विकल्प ग्रहण किया । परंतु ऐसे विकल्पोंको छोड़ जो किसी भी पक्षको नहीं पकड़ता वह ही शुद्ध पदार्थका स्वरूप जान उसरूप समयसार शुद्ध आत्माको पाता है । नयोंका पक्ष पकड़ना राग है सो सब नय पक्षोंको छोड़ वीतराग समयसार हो जाता है ॥ यहांपर पूछते हैं कि यदि ऐसा है तो नयपक्षके त्यागकी भावनाको कौन नृत्य कराता है ? उसका उत्तररूप काव्य कहते हैं—**य एव** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष नयके पक्षपातको छोड अपने स्वरूपमें गुप्त होके निरंतर स्थिर होते हैं वे ही पुरुष विकल्पके जालसे रहित शांतचित्त हुए साक्षात् अमृतको पीते है ॥ **भावार्थ**—जबतक कुछ पक्षपात रहता है तबतक चित्तका क्षोभ नहीं मिटता, जब सब नयोंका पक्षपात मिटजाय तब वीतरागदशा होके स्वरूपकी श्रद्धा निर्विकल्प होती है और स्वरूपमें प्रवृत्ति होती है ॥ अब नयपक्षको प्रगटकर कहते हैं जो उसको छोड़ता है वह तत्त्वज्ञानी होके स्वरूपको पाता है ऐसे अर्थके कलशरूप बीस काव्य कहते हैं—**एकस्य** इत्यादि । **अर्थ**—एक नयका तो ऐसा पक्ष है कि यह चिन्मात्र जीव कर्मसे बंधा हुआ है और दूसरे नयका पक्ष

न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७६ ॥ एकस्य जीवो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७७ ॥ एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७८ ॥ एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ७९ ॥ एकस्य कार्यं न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८० ॥ एकस्य भावो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८१ ॥ एकस्य चैको न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८२ ॥

क्षायोपशमस्तु ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितत्वात् । यद्यपि व्यवहारनयेन छद्मस्थापेक्षया जीवस्वरूपं भण्यते तथापि केवलज्ञानापेक्षयाशुद्धजीवस्वरूप न भवति । तर्हि कथंभूत जीवस्वरूपमिति चेत्; योसौ नयपक्षपातरहितस्वसंवेदनज्ञानी तस्याभिप्रायेण बद्धावद्धमूढामूढादिनयविक-

---

ऐसा है कि कर्मसे नहीं बंधा । इसतरह दो नयोंके दो पक्ष हैं । इसतरह दोनों नयोंका जिसके पक्षपात है वह तत्त्ववेदी नहीं है और जो तत्त्ववेदी (तत्त्वका स्वरूप जाननेवाला) है वह पक्षपातसे रहित है उस पुरुपका चिन्मात्र आत्मा चिन्मात्र ही है उसमें पक्षपातसे कल्पना नहीं करता ॥ **भावार्थ**—यहां शुद्धनयको प्रधानकर कथन है। वहां जीवनामा पदार्थको शुद्ध नित्य अभेद चैतन्य मात्र स्थापनकर कहते हैं कि जो इस शुद्ध नयका भी पक्षपात करेगा वह भी उस स्वरूपके स्वादको नहीं पायेगा । अशुद्ध पक्षकी तो क्या वात है शुद्ध नयका भी पक्षपात करेगा तो पक्षका राग नहीं मिटेगा तव वीतरागता नहीं होगी । इसलिये पक्षपातको छोड़ चिन्मात्रस्वरूपमें लीन होनेपर ही समयसारको पासकता है । चैतन्यके परिणाम परनिमित्तसे अनेक होते हैं उन सवको गौणकर कहा गया है । इसलिये सव पक्षको छोड़ शुद्धस्वरूपका श्रद्धानकर स्वरूपमें प्रवृत्तिरूपचारित्र होनेसे वीतराग दशा करनी योग्य है ॥ अव जैसे वद्ध अवद्ध पक्ष छुडाई थी उसीतरह अन्य पक्षको प्रगट कहकर छुड़ाते हैं ॥ **एकस्य** इत्यादि **अर्थ**—एक नयका यह पक्ष है कि जीव मोही है और दूसरी नयका यह पक्ष है कि मोही नहीं है । इसतरह ये दोनों ही चैतन्यमें पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेदी है वह पक्षपातरहित है उसके चित चित ही है मोही अमोही नहीं है ॥ **एकस्य** इत्यादि । **अर्थ**—एक नयका तो ऐसा पक्ष है की यह जीव रागी है और दूसरी नयका ऐसा पक्षपात है कि रागी नहीं है । सो ये दोनों ही चैतन्यमें नयके पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेदी है

एकस्य शांतो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८३ ॥ एकस्य नित्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८४ ॥ एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८५ ॥ एकस्य नाना न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८६ ॥ एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८७ ॥ एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्व-

---

त्परहित चिदानदैकस्वभावं जीवस्वरूपं भवतीति । तथा चोक्तं—

य एवमुक्त्वा नयपक्षपात स्वरूपगुप्ता निवसति नित्यं ।
विकल्पजालच्युतशांतचित्तास्त एव साक्षादमृत पिवंति ॥ ६८ ॥

वह पक्षपातरहित है उसके पक्षपात नहीं है जो चित् है वह चित् ही है । **एकस्य दुष्टो** इत्यादि १७ काव्योंका **अर्थ**—एक नयके तो द्वेषी है ऐसा पक्ष है और दूसरी नयके द्वेषी नहीं है । ऐसे ये चैतन्यमें दोनों नयोंके दो पक्षपात हैं ॥ एक नयके कर्ता है दूसरी नयके कर्ता नहीं है ऐसे ये चैतन्यमें दोनों नयोंके दो पक्षपात है ॥ एक नयके भोक्ता है दूसरी नयके भोक्ता नहीं है । ये चैतन्यमे दो नयोंके दो पक्षपात है ॥ एक नयके जीव है दूसरी नयके जीव नहीं है । ये चैतन्यमे दोनों नयोंके दो पक्षपात है ॥ एक नयके सूक्ष्म है दूसरी नयके सूक्ष्म नहीं है ऐसे ये चैतन्यमे दोनों नयोंके दो पक्षपात हैं ॥ एक नयके हेतु है दूसरी नयके हेतु नहीं है ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके कार्य है दूसरी नयके कार्य नहीं है ये चैतन्यमे० ॥ एक नयके भावरूप है दूसरी नयके अभावरूप है ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके एक है दूसरी नयके अनेक है ये चैतन्यमे० ॥ एक नयके सांत (अंतसहित) है दूसरी नयके अंतसहित नहीं है ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके नित्य है दूसरी नयके अनित्य है ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके वाच्य (वचनसे कहनेमें आये) है दूसरी नयके वचनगोचर नहीं है ये चैतन्यमे० ॥ एक नयके नानारूप है दूसरी नयके नानारूप नहीं है ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके चेत्य अर्थात् जानने योग्य है दूसरी नयके चेतने योग्य नहीं है ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके दृश्य (देखने योग्य) है दूसरीके देखनेमें नहीं आता ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके वेद्य (वेदने योग्य) है दूसरीके वेदनेमे नहीं आता, ये चैतन्यमें० ॥ एक नयके वर्तमान प्रत्यक्ष है दूसरीके नहीं ये दोनों नयोंके चैतन्यमे दो पक्षपात हैं । इसतरह चैतन्य सामान्यमें ये सब पक्षपात हैं । जो तत्त्ववेदी है वह स्वरूपको यथार्थ अनुभव करनेवाला है उसका चिन्मा-

वेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८८ ॥ एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८९ ॥ एकस्य भातो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ । यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ९० ॥ स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालामेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षां । अंतर्बहिः समरसैकरसस्वभावं स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रं ॥ ९१ ॥ इंद्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः । यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥ ९२ ॥" ॥ १४२॥

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ६९ ॥
"समयाख्यानकाले या बुद्धिर्नयद्वयात्मिका । वर्तते बुद्धतत्त्वस्य सा स्वस्थस्य निवर्तते ॥
हेयोपादेयतत्त्वे तु विनिश्चित्य नयद्वयात् । त्यक्त्वा हेयमुपादेयावस्थानं साधुसम्मतं" ॥ १४२ ॥

त्रभान है वह चिन्मात्र ही है पक्षपातसे रहित है ॥ **भावार्थ**—जीवके परनिमित्तसे अनेक परिणाम होते है और इसमे साधारण अनेक धर्म हैं तौ भी असाधारण धर्म चित्स्वभाव है । वही सामान्य भावसे शुद्ध नयका विषय है उसीको प्रधानकर कथन है । सो इसके साक्षात् अनुभवकेलिये ऐसा कहा है कि इसमें नयोंके अनेक पक्षपात उत्पन्न होते हैं । बद्ध अबद्ध, मूढ अमूढ, रागी विरागी, द्वेषी अद्वेषी, कर्ता अकर्ता, भोक्ता अभोक्ता, जीव अजीव, सूक्ष्म स्थूल, कारण अकारण, कार्य अकार्य, भाव अभाव, एक अनेक, शांत अशांत, नित्य अनित्य, वाच्य अवाच्य, नाना अनाना, चेत्य अचेत्य, दृश्य अदृश्य, वेद्य अवेद्य, भात अभात इत्यादि नयोंके पक्षपात हैं । सो तत्त्वका अनुभव करनेवाला पक्षपात नहीं करता नयोंको यथायोग्य विवक्षासे साधता है और चैतन्यको चेतनमात्र ही अनुभव करता है ॥ इसी अर्थको संक्षेपकर काव्य कहते हैं—**स्वेच्छा** इत्यादि । **अर्थ**—जो तत्त्वका जाननेवाला पुरुष है वह पूर्व कही-हुई रीतिसे जिसमें बहुतविकल्पोंके जाल अपने आप उठते हैं ऐसा जो बड़ा नयपक्षरूप-वन उसको उलंघकर जिसमें वीतरागभाव ही एकरस है ऐसे स्वभाववाले अनुभूतिमात्र आत्माके भावरूप अपने स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ फिर कहते हैं—**इंद्रजाल** इत्यादि । **अर्थ**—तत्त्ववेदी ऐसा अनुभव करता है कि मैं चिन्मात्र तेजका पुंज हूं जिसका स्फुरायमान होना ही, बहुत बड़ी पुष्ट उठतीं चंचल जो विकल्परूप लहरें उनसे उछलता हुआ इन नयोंके प्रवर्तनरूप इंद्रजाल उस सबको तत्काल ही दूर करता है । **भावार्थ**—चैतन्यका अनुभव ऐसा है कि इसके होनेसे समस्त नयोंका विकल्परूप इंद्रजाल उसी समय विलाय जाता है ॥ १४२ ॥

पक्षातिक्रांतस्य किंस्वरूपमिति चेत्;—

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिवद्धो ।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥ १४३ ॥

द्वयोरपि नययोर्भणितं जानाति केवलं तु समयप्रतिवद्धः ।
न तु नयपक्षं गृह्णाति किंचिदपि नयपक्षपरिहीनः ॥ १४३ ॥

यथा खलु भगवान्केवली श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनयपक्षयोः विश्वसाक्षितया केवलं स्वरूपमेव जानाति न तु सततमुल्लसितसहजविमलसकलकेवलज्ञानतया नित्यं स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वाच्छ्रुतज्ञानभूमिकातिक्रांततया समस्तनयपक्षपरिग्रहदूरीभूतत्वात्कंचनापि नयपक्षं परिगृह्णाति । तथा किल यः श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनयपक्षयोः क्षयोपशमविजृंभितश्रुतज्ञानात्मकविकल्पप्रत्युद्गमनेपि परपरिग्रहप्रतिनिवृत्तौत्सुक्यतया स्व-

---

अथ नयपक्षातिक्रांतस्य शुद्धजीवस्य किंस्वरूपमिति पृष्टे सति पुनर्विशेषेण कथयति;—योसौ नयपक्षपातरहितः स्वसंवेदनज्ञानी तस्याभिप्रायेण बद्धाबद्धमूढामूढादिनयविकल्परहितं चिदानंदैकस्वभाव । **दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ** यथा भगवान् केवली निश्चयव्यवहाराभ्यां द्वाभ्यां भणितमर्थं द्रव्यपर्यायरूपं जानाति । **णवरं तु समयपरिबद्धो** तथापि नवरि केवलं सहजपरमानंदैकस्वभावस्य समयस्य प्रतिबद्ध आधीनः सन् **णयपक्खपरिहीणो** सततसमुल्लसन् केवलज्ञानरूपतया श्रुताज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितविकल्पजालरूपान्नयद्वयपक्षपातादद्दूरीभूतत्वात् **ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि** न तु नयपक्षं विकल्पं किमप्या-

---

आगे पूछते हैं कि जो पक्षसे दूरवर्ती है उसका क्या स्वरूप है? उसका उत्तररूप गाथा कहते हैं,—जो पुरुष [**समयप्रतिबद्धः**] अपने शुद्धात्मासे प्रतिवद्ध है आत्माको जानता है वह [**द्वयोरपि**] दोनों ही [**नययोः**] नयोंके [**भणितं**] कथनको [**केवलं**] केवल [**जानाति तु**] जानता ही है [**तु**] परंतु [**नयपक्षं**] नयपक्षको [**किंचिदपि**] कुछ भी [**न गृह्णाति**] नहीं ग्रहण करता क्योंकि वह [**नयपक्षपरिहीनः**] नयके पक्षसे रहित है ॥ **टीका**—यहां पर पहले दृष्टांत कहते हैं—जैसे केवली भगवान सर्वज्ञ वीतराग समस्त वस्तुओंके साक्षीभूत हैं ज्ञाता द्रष्टा हैं। सो श्रुतज्ञानके अवयवभूत जो व्यवहार निश्चयनयके पक्षरूप दो नय उनके केवल स्वरूपको जानते ही हैं परंतु किसी भी नयके पक्षको नहीं ग्रहण करते । क्योंकि केवली भगवान निरंतर उदयरूप स्वाभाविक निर्मल केवलज्ञानस्वभाव हैं इसलिये नित्य ही स्वयमेव विज्ञानघन स्वरूप हैं । इसीलिये श्रुतज्ञानकी भूमिकासे अतिक्रांतपनेकर समस्त नयपक्षोंके परिग्रहसे दूरवर्ती हैं। उसी तरह जो मति श्रुतज्ञानी है वह भी श्रुत ज्ञानके अवयवभूत व्यवहार निश्चयरूप दोनों नयोंके पक्षके स्वरूपको केवल जानता है क्योंकि इसके क्षायोपशमिकज्ञान है उससे उत्पन्न जो श्रुतज्ञानस्वरूपविकल्प उनका फिर

रूपमेव केवलं जानाति न तु खरतरदृष्टिगृहीतसुनिस्तुषनित्योदितचिन्मयसमयप्रतिबद्धतया तदात्वे स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वात् श्रुतज्ञानात्मकसमस्तांतर्बहिर्जल्परूपविकल्पभूमिकातिक्रांततया समस्तनयपक्षपरिग्रहभूतत्वात्कंचनापि नयपक्षं परिगृह्णाति स खलु निखिलविकल्पेभ्यः परतरः परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्योतिरात्मख्यातिरूपोनुभूतिमात्रः समयसारः । चित्स्वभावभरभावितभावाऽभावभावपरमार्थतयैकं । बंधपद्धतिमपास्य समस्तां चेतये समयसारमपारं ॥ ९३ ॥" १४३ ॥

त्मरूपतया गृह्णाति तथायं गणधरदेवादिछद्मस्थजनोपि नयद्वयोक्तं वस्तुस्वरूपं जानाति तथापि नवरि केवलं चिदानंदैकस्वभावस्य समयस्य प्रतिबद्ध आधीनः सन् श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितकविल्पजालरूपान्नयद्वयपक्षपातात् शुद्धनिश्चयेन दूरीभूतत्वान्नयपक्षपातरूपं स्वीकारं विकल्पं

उत्पन्न होना होता है तौभी पर ज्ञेयोंके ग्रहण करनेमे उत्साहकी निवृत्ति है । इस कारण नयोंके स्वरूपका ज्ञाता ही है किसी भी नयपक्षको नहीं ग्रहण करता क्योंकि तीक्ष्ण ज्ञानदृष्टिकर ग्रहण किया जिसका निर्मल नित्य उदय ऐसा चैतन्य स्वरूप अपना शुद्धात्मा उससे इसके प्रतिबद्धपना है उसकर उस स्वरूपके अनुभवनेके समय स्वयमेव केवलीकी तरह विज्ञानघनरूप हुआ है । इसीसे श्रुतज्ञानस्वरूप जो समस्त अंतरंग और बाह्य अक्षरस्वरूप विकल्प उसकी भूमिकासे अतिक्रांत है उसपनेसे केवलीकी तरह समस्त नयपक्षके ग्रहणसे दूरीभूत है । ऐसा मतिश्रुतज्ञानी भी है, वह निश्चयकर समस्तविकल्पोंसे दूरवर्ती परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्जोति आत्मख्यातिरूप अनुभूतिमात्र समयसार है ॥ **भावार्थ**—जैसे केवली भगवान् सदा नयोंकी पक्षके ज्ञाता द्रष्टा हैं वैसे श्रुतज्ञानी भी जिस समय समस्त नयपक्षोंसे रहित होके शुद्ध चैतन्यमात्र भावका अनुभव करता है तब नयपक्षका ज्ञाता ही है । एक नयकी सर्वथा पक्ष ग्रहण करे तो मिथ्यात्वसे मिला हुआ पक्षका राग हो । तथा प्रयोजनके वशसे एक नयको प्रधानकर ग्रहणकरे तो मिथ्यात्वके विना चारित्र मोहकी पक्षसे राग रहे और जब नयपक्षको छोड़ वस्तु स्वरूपको केवल जानता ही हो तब उसकाल श्रुतज्ञानी भी केवलीकी तरह वीतरागके समान ही होता है ऐसा जानना ॥ इस अर्थको मनमें धारणकर तत्त्ववेदी ऐसा अनुभव करता है ऐसे अर्थरूप कहते हैं—**चित्स्वभाव** इत्यादि । **अर्थ**—मैं तत्त्वका जाननेवाला परमात्माको अनुभवता हूं । जो समयसाररूप परमात्मा, चैतन्यस्वभावके पुंजकर भावित भाव अभावस्वरूप एक भावरूप परमार्थपनेसे एक है परमार्थसे विधि प्रतिषेधका विकल्प जिसमें नहीं है । पहले क्या करके अनुभवता हूं ? समस्त बंधकी परिपाटीको दूरकरके ॥ **भावार्थ**—परद्रव्यके कर्ताकर्मभावकर बंधकी परिपाटी चलरही थी उसको पहले दूरकर समयसारको अनुभवता हूं जो कि अपार है अर्थात् जिसके केवलज्ञानादि गुणका पार नहीं है ॥ १४३ ॥

पक्षातिक्रांत एव समयसार इत्यवतिष्ठते;—

सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥ १४४ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेतल्लभत इति केवलं व्यपदेशं ।
सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः ॥ १४४ ॥

अयमेक एव केवलं सम्यग्दर्शनज्ञानव्यपदेशं किल लभते । यः खल्वखिलनयपक्षाक्षुण्णतया विश्रांतसमस्तविकल्पव्यापारः स समयसारः । यतः प्रथमतः श्रुतज्ञानावष्टंभेन ज्ञानस्वभावमात्मानं निश्चित्य ततः खल्वात्मख्यातये परख्यातिहेतूनखिला एवेंद्रियानिन्द्रियबुद्धीरवधार्य आत्माभिमुखीकृतमतिज्ञानतत्त्वः, तथा नानाविधपक्षालंबनेनानेकविकल्पै-

---

निर्विकल्पसमाधिकाले शुद्धात्मस्वरूपतया न गृह्णाति ॥ १४३ ॥ अथ शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नयविकल्पस्वरूपसमस्तपक्षपातेनातिक्रांत एव समयसारे इत्येव तिष्ठति **सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो** इंद्रियानिंद्रियजनितबहिर्विषयसमस्तमतिज्ञानविकल्परहितः सन् बद्धाबद्धादिविकल्परूपनयपातरहितं समयसारमनुभवन्नेव निर्विकल्पसमाधिस्थैः पुरुषैर्दृश्यते ज्ञायते च यत आत्मा ततः कारणात् **सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं** नवरि केवलं सकलविमलकेवलदर्शनज्ञानरूपव्यपदेश सज्ञां लभते । न च बद्धाबद्धादिव्यपदेशाविति । एवं निश्चयव्यवहारनयद्वयपक्षपातरहितशुद्धसमयसारव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन नवमोतराधिकारः समाप्तः । इत्यनेन प्रकारेण **जाव ण वेदि विसेसं** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेणाज्ञानिसज्ञानिजीवयोः संक्षेपसूच-

---

आगे ऐसा नियमसे सिद्ध करते है कि पक्षसे दूरवर्ती ही समयसार है,—[**यः**] जो [**सर्वनयपक्षरहितः**] सब नयपक्षोंसे रहित है [**सः**] वही [**समयसारः**] समयसार ऐसा [**भणितः**] कहा है । [**एषः**] यह समयसार ही [**केवलं**] केवल [**सम्यग्दर्शनज्ञानं**] सम्यग्दर्शन ज्ञान [**इति**] ऐसे [**व्यपदेशं**] नामको [**लभते**] पाता है । उसीके नाम हैं वस्तु दो नहीं है ॥ **टीका**—जो निश्चयसे समस्त नयपक्षसे भेदरूप न किया जाय ऐसे चिन्मात्रभावकर जिसमे समस्त विकल्पोंके व्यापार विलय होगये है ऐसा समयसार शुद्धस्वरूप है सो यही एक केवल सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ऐसे नामको पाता है । परमार्थसे एक ही है, क्योंकि आत्मा, प्रथम तो श्रुतज्ञानके अवलंबनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चयकर पीछे निश्चयसे आत्माकी प्रगट प्रसिद्धि होनेकेलिये आत्मासे परपदार्थके प्रगट होनेको कारण जो इंद्रिय और मनके द्वारा प्रवृत्तिरूप बुद्धि उसको गौणकर जिसने मतिज्ञानका स्वरूप आत्माके सन्मुख किया है ऐसा होता है। और उसीतरह नाना प्रकारके नयोंके पक्षोंको अवलंबनकर अनेक विकल्पोंसे आकुलता उत्पन्न करानेवाली श्रुतज्ञानकी बुद्धिको भी गौणकर तथा श्रुतज्ञानको भी आत्मतत्वके

राकुलयंतीः श्रुतज्ञानबुद्धीरप्यवधार्य श्रुतज्ञानतत्त्वमप्यात्माभिमुखीकुर्वन्नत्यंतमविकल्पो भूत्वा झगित्येव स्वरसत एव व्यक्तीभवंतमादिमध्यांतविमुक्तमनाकुलमेकं केवलमखिलस्यापि विश्वस्योपरि तरंतमिवाखंडप्रतिभासमयमनंतं विज्ञानघनं परमात्मानं समयसारं विंदन्नेवात्मा सम्यग्दृश्यते ज्ञायते च ततः सम्यग्दर्शनं ज्ञानं च समयसार एव। आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयं। विज्ञानैकरसः स

नार्थं गाथाषट्कं। तदनंतरमज्ञानिसज्ञानिजीवयोर्विशेषव्याख्यानरूपेणैकादश गाथाः। ततश्चेतनाचेतनकार्ययोरेकोपादानकर्तृत्वलक्षणद्विक्रियावादिनिराकरणमुख्यत्वेन गाथापचविंशतिः। तद-

---

स्वरूपमें सन्मुख करता हुआ अत्यंत निर्विकल्परूप होके तत्काल अपने निजरसकर ही प्रगट हुआ आदि मध्य अंतके भेदकर रहित अनाकुल एक (केवल) समस्त पदार्थ समूहरूप लोकके ऊपर तैरता जैसा हो उस तरह अखंड प्रतिभासमय अविनाशी अनंत विज्ञान घनस्वरूप परमात्मारूप समयसारको ही अनुभवता सम्यक् प्रकार देखा जाता है श्रद्धान किया जाता है सम्यक् प्रकार जाना जाता है। इसलिये यह ही सम्यग्दर्शन है यही सम्यग्ज्ञान है ऐसा यही समयसार है ॥ **भावार्थ**—आत्माको पहले आगम ज्ञानसे ज्ञानस्वरूप निश्चयकर पीछे इंद्रियबुद्धिरूप मतिज्ञानको भी ज्ञानमात्रमें ही मिलाके श्रुतज्ञानरूप नयोंके विकल्प मेट श्रुत ज्ञानको भी निर्विकल्पकर एक ज्ञानमात्र अखंड प्रतिभासका अनुभव करना यही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान नाम पाता है कुछ जुदा नहीं है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**आक्रामन्** इत्यादि। **अर्थ**—जो नयोंके पक्षविना निर्विकल्प भावको प्राप्त हुआ निश्चल जैसा हो उसतरह समय (आगम, आत्मा) का सार शोभता है, जो निश्चित पुरुषोंकर स्वयं आस्वाद्यमान है अर्थात् उन्होंने अनुभवसे जान लिया है वही यह भगवान् जिसका विज्ञान ही एक रस है ऐसा पवित्र पुराणपुरुष है। इसको ज्ञान कहो अथवा दर्शन कहो अथवा कुछ अन्य नामसे कहो जो कुछ है सो यह एक ही है अनेक नामोंसे कहा जाता है ॥ अब कहते हैं कि यह आत्मा ज्ञानसे च्युत हुआ था सो ज्ञानसे ही आय मिलता है— **दूरं** इत्यादि। **अर्थ**—यह आत्मा अपने विज्ञानघन स्वभावसे च्युत हुआ बहुत विकल्पोंके जालके गहनवनमें अत्यंत भ्रमण करता था उस भ्रमतेहुएको विवेकरूप नीचे मार्गमें गमनकर जलकीतरह अपने आप अपने विज्ञानघन स्वभावमें दूरसे आ मिला। कैसा है वह? जो विज्ञानके रसके ही एक रसीले हैं उनको एक विज्ञानरस स्वरूप ही है। ऐसा आत्मा अपने आत्मस्वभावको अपनेमें ही समेटता जैसे बाह्य गया था उसीतरह अपने स्वभावमें आके प्राप्त होता है ॥ **भावार्थ**—यहां जलका दृष्टांत है। जैसे जल जलके निवासमेंसे किसी मार्गसे बाहर निकले तो वह वनमें अनेक जगह भ्रमता है फिर कोई

एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान् ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोप्ययं ॥९४॥ दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् । विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन् आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥ ९५ ॥ विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलं । न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥ ९६ ॥ यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलं ।

नंतरं प्रत्यया एव कर्म कुर्वतीति समर्थनद्वारेण सूत्रसप्तकं । ततश्च जीवपुद्गलकथंचित्परिणामित्वस्थापनमुख्यत्वेन सूत्राष्टकं । ततः परं ज्ञानमयाज्ञानमयपरिणामकथनमुख्यतया गाथानवकं ।

नीचे मार्गकर जैसेका तैसा अपने जलके निवासमें आ मिलता है । उसीतरह आत्मा भी अनेक विकल्पोंके मार्गकर स्वभावसे च्युत हुआ भ्रमण करता कोई भेदज्ञानरूप (विवेक) नीचे मार्गकर अपने आप अपनेको खींचताहुआ अपने स्वभावरूप विज्ञानघनमे आ मिलता है ॥ अब कर्ता कर्म अधिकारको पूर्ण करते हैं सो कर्ता कर्मके संक्षेप अर्थके कलशरूप श्लोक कहते हैं—**विकल्पकः** इत्यादि । **अर्थ**—विकल्प करनेवाला ही केवल कर्ता है और विकल्प केवल कर्म है अन्य कुछ कर्ता कर्म नहीं है । इसकारण जो विकल्पसहित है उसका कर्ता कर्मपना कभी नष्ट नहीं होता ॥ **भावार्थ**—जहांतक विकल्पभाव है वहांतक कर्ता कर्मभाव है । जिससमय विकल्पका अभाव होता है उससमय कर्ता कर्मभावका भी अभाव हो जाता है ॥ अब कहते हैं कि जो करता है वह करता ही है जो जानता है वह जानता ही है—**यः करोति** इत्यादि । **अर्थ**—जो करता है वह केवल करता ही है और जो जानता है वह केवल जानता ही है । जो करता है वह कुछ जानता ही नहीं है और जो जानता है वह कुछ भी नहीं करता है ॥ **भावार्थ**—कर्ता है वह ज्ञाता नहीं है और ज्ञाता है वह कर्ता नहीं है ॥ अब कहते हैं कि इसीतरह करनेरूप क्रिया और जाननेरूप क्रिया ये दोनों भिन्न हैं—**ज्ञप्तिः** इत्यादि । **अर्थ**—जाननेरूप क्रिया करनेरूप क्रियाके अंदर नहीं भासती और करनेरूप क्रिया जाननेरूप क्रियाके अंतरंगमे नहीं भासती इसलिये ज्ञप्तिक्रिया और करोतिक्रिया दोनों भिन्न हैं । इसकारण यह सिद्धहुआ कि जो ज्ञाता है वह कर्ता नहीं है ॥ **भावार्थ**—जिससमय ऐसा परिणमता है कि मै परद्रव्यको करता हूं उससमय तो उस परिणमन क्रियाका कर्ता ही है तथा जिससमय ऐसा परिणमता है कि मैं परद्रव्यको जानता हूं उससमय उस जानने क्रियारूप ज्ञाता ही है । यहां कोई पूछे कि अविरत सम्यग्कदृष्टि आदिके जबतक चारित्रमोहका उदय है तबतक कषायरूप परिणमन होता है वहां कर्ता कहै या नहीं ? । उसका समाधान—जो अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके श्रद्धान ज्ञानमय परद्रव्यके स्वामीपनेरूप कर्तापनेका अभिप्राय नहीं है परंतु उदयकी

यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥ ९७ ॥ ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेंतः ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेंतः। ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥ ९८ ॥ कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि द्वंद्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थितिः। ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किं ॥ ९९ ॥ अथवा नान-

---

तदनंतरमज्ञानमयभावस्य मिथ्यात्वादिपंचप्रत्ययभेदप्रतिपादनरूपेण गाथापचकं। ततश्च जीवपुद्गलयोः परस्परोपादानकर्तृत्वनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयं। ततः परं नयपक्षपातरहितशुद्धसमयसार-

---

जबरदस्तीसे कपायरूप परिणमन है उसका यह ज्ञाता है इसलिये अज्ञानसंबधी कर्तापना इसके नहीं है परंतु निमित्तकी जबरदस्तीके परिणमनका फल कुछ होता है वह संसारका कारण नहीं है। जैसे वृक्ष जड कटनेके बाद किंचित् समयतक रहता है या नहीं भी रहता उसीतरह यहा भी जानना॥ फिर भी इसीको पुष्ट करते हैं—**कर्ता** इत्यादि। **अर्थ**—कर्ता तो कर्ममें निश्चयसे नहीं है और कर्म है वह भी कर्तामें निश्चयकर नहीं है। इसतरह दोनों ही परस्पर विशेषकर निषेध किये जायँ तब कर्ता कर्मकी क्या स्थिति हो सकती है? नहीं हो सकती। तब वस्तुकी मर्यादा व्यक्तरूप यह सिद्ध हुई कि ज्ञाता तो सदा ज्ञानमे ही है और कर्म है वह सदा कर्ममें ही है। तौभी यह मोह (अज्ञान) नेपथ्यमें क्यों नाचता है? यह बड़ा खेद है। नेपथ्य अर्थात् शांत ललित उदात्त धीर इन चार आचरणोंसहित जो यह तत्त्वोंका नृत्य उसमें यह मोह कैसे नाचता है? कर्ता कर्मभाव तो नेपथ्यस्वरूप नृत्यका आभूषण नहीं है इसतरह खेदसहित वचन आचार्यने कहा है॥ **भावार्थ**—कर्म तो पुद्गल है उसका कर्ता जीवको कहा जाय तो उन दोनोंमे तो बड़ा भेद है जीव तो पुद्गलमें नहीं है और पुद्गल जीवमें नहीं है तब इन दोनोंके कर्ता कर्म भाव कैसे बन सकता है? इससे जीव तो ज्ञाता है सो ज्ञाता ही है पुद्गलका कर्ता नहीं है। और पुद्गलकर्म है वह कर्म ही है। वहां आचार्यने खेद करके कहा है कि ऐसे प्रगट भिन्न द्रव्य हैं तौभी अज्ञानीका यह मोह कैसे नाचता है? कि "मैं तो कर्ता हूं और यह पुद्गल मेरा कर्म है" यह बड़ा अज्ञान है॥ फिर भी कहते हैं कि इसतरह मोह नाचे तो नाचो परंतु वस्तुका स्वरूप तो जैसा है वैसा ही रहता है—**कर्ता कर्ता** इत्यादि। **अर्थ**—यह ज्ञानज्योति अंतरंगमें अतिशयसे अपनी चैतन्यशक्तिके समूहके भारसे अत्यंत गंभीर जिसका थाह नहीं इसतरह निश्चल व्यक्तरूप (प्रगट) हुआ तब पहले जैसे अज्ञानमें आत्मा कर्ता था उसतरह अब कर्ता नहीं होता और इसके अज्ञानसे जो पुद्गल कर्मरूप होता था वह भी अब कर्मरूप नहीं होता किंतु ज्ञान तो ज्ञानरूप ही हुआ और पुद्गल पुद्गलरूप रहा ऐसे प्रगट

व्यतां तथापि । "कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव ज्ञानं ज्ञानं भवति चयथा पुद्गलः पुद्गलोपि । ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमंतस्तथोच्चैश्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यंतगंभीरमेतत् ॥ १०० ॥" १४४ ॥ इति जीवाजीवौ कर्तृकर्मवेषविमुक्तौ निष्क्रांतौ ॥

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ द्वितीयोंऽकः ॥ २ ॥

कथनरूपेण गाथाचतुष्टयं चेति समुदायेनाष्टाधिकसप्ततिगाथाभिर्नवभिरंतराधिकारैः ॥ १४४ ॥ इति श्रीजयसेनाचार्यकृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तौ पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां सवंधी पीठिकारूपस्तृतीयो महाधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

हुआ ॥ **भावार्थ**—आत्मा ज्ञानी जव होता है तव ज्ञान तो ज्ञानरूप ही परिणमता है पुद्गल कर्मका कर्ता नहीं वनता और पुद्गल पुद्गलरूप ही रहता है कर्मरूप नहीं परिणमता । इसतरह आत्माके यथार्थ ज्ञान होनेसे दोनों द्रव्योंके परिणामोंमे निमित्त नैमित्तिकभाव नहीं होता ऐसा सम्यग्दृष्टिके ज्ञान होता है ॥ इसतरह जीव और अजीव दोनोंने कर्ता कर्मके वेपकर एक होके नृत्यके अखाड़ेमें प्रवेश किया था सो यथार्थ देखनेवाले सम्यग्दृष्टिके ज्ञानने दोनोंको जुदे जुदे लक्षणसे दो जान लिये तव वे वेश दूरकर रंगभूमिसे बाहर निकल गये । क्योंकि बहुरूपियाके वेशकी यही प्रवृत्ति है कि देखनेवाला जबतक नहीं पहचानता तबतक चेष्टा करता रहता है और जब यथार्थ पहचान ले तव वह निजरूप प्रगट कर चेष्टा नहीं करता वैसा ही रहता है उसीतरह यहां भी जानना ॥ १४४ ॥ इसप्रकार कर्ता कर्म नामा दूसरा अधिकार पूर्ण हुआ ॥

सवैया—"जीव अनादि अज्ञान वसाय विकार उपाय वणै करता सो, ताकरि वंधन आन तणूं फल ले सुख दुःख भवाश्रमवासो । ज्ञान भये करता न वने तव वंधन होय खुलै पर पासो, आतममांहि सदा सुविलास करै सिव पाय रहे निति थासो ॥ १ ॥" इस अधिकारकी ७६ गाथा और कलशा ५५ तथा पहले अधिकारकी गाथा ६८ और कलसा ४५ सव मिलकर गाथा १४४ और कलसा १०० हुए ॥

इस प्रकार **पं० जयचंद्रजी**कृत इस समयसार ग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीकाकी भाषाटीकामें **कर्ता कर्म** नामा **दूसरा अधिकार पूर्ण** हुआ ॥ २ ॥

अथ पुण्यपापाधिकारः ॥ ३ ॥



अथैकमेव कर्म द्विपात्रीभूय पुण्यपापरूपेण प्रविशति;—तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन्। ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥ १०१ ॥ एको दूरात्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमानादन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव। द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥ १०२ ॥

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ १४५ ॥

कर्माशुभं कुशीलं शुभकर्म चापि जानीत सुशीलं।
कथं तद् भवति सुशीलं यत्संसारं प्रवेशयति ॥ १४५ ॥

शुभाशुभजीवपरिणामनिमित्तत्वे सति कारणभेदात् शुभाशुभपुद्गलपरिणाममयत्वे सति

तत्रैवं सति जीवाजीवाधिकाररंगभूमौ नृत्यानतरं शृंगारपात्रयोः परस्परपृथग्भाववत् शुद्धनिश्चयेन जीवाजीवौ कर्तृकर्मवेषविमुक्तौ निष्क्रान्ताविति। अथानतरं निश्चयेनैकमपि

अथ **पुण्यपापाधिकार** ॥ **दोहा**—"पुण्यपाप दोऊ करम, बधरूप दुर मानि। शुद्ध आत्मा जिन लह्यो, नमूं चरन हित जानि ॥" अब टीकाकारके वचन कहते हैं—कर्म एक प्रकार ही है वह पुण्य पाप दोरूपोंकर प्रवेश करता है। जैसे नृत्यके अखाड़ेमे एक ही पुरुष अपने दोरूप दिखलाके नाच करे उसको यथार्थज्ञानी पहचाने तब एक-ही जानता है उसी तरह सम्यग्दृष्टिका ज्ञान यथार्थ है। यद्यपि कर्म एक ही है वही पुण्यपाप भेदकर दो भेदरूपकर नाचता है उसको ज्ञान एकरूप पहचान लेता है उसी ज्ञानकी महिमारूप इस अधिकारके आदिमें काव्य कहते हैं—**तदथ** इत्यादि। **अर्थ**—कर्ता कर्म अधिकारके वाद यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर सम्यग्ज्ञानरूप चंद्रमा स्वयं (अपने-आप) उदयको प्राप्त होता है। वह ज्ञान, शुभ अशुभके भेदसे दोरूपपनेको प्राप्तहुए कर्मको एकपनेको प्राप्त करता हुआ उदय होता है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानसे कर्म एक भी दोतरहसे दीखता था उसे ज्ञानने एक प्रकार दिखला दिया। जिस ज्ञानने अतिशय मोहमयी रज दूर कर दी है अर्थात् ज्ञानमे मोहरूपी रज (धूलि) लगी हुई थी वह दूर कर दी तब यथार्थ ज्ञान हुआ। जैसे चंद्रमाके सामने बादल अथवा पालेका समूह आजाय तब यथार्थ प्रकाश नहीं होता आवरण दूर होनेपर यथार्थ प्रकाशता है उसतरह यहा भी जानना ॥ आगे पुण्यपापके स्वरूपका दृष्टांतरूप काव्य कहते हैं—**एको दूरात्** इत्यादि। **अर्थ**—किसी शूद्री स्त्रीके उदरसे एकही समय दो पुत्र जन्मे (पैदा हुए) उनमेंसे एक तो

स्वभावभेदात् शुभाशुभफलपाकत्वे सत्यनुभवभेदात् शुभाशुभमोक्षबंधमार्गाश्रितत्वे सत्याश्रय-भेदात् चैकमपि कर्म किंचिच्छुभं किंचिदशुभमिति केषांचित्किल पक्षः, स तु प्रतिपक्षः । तथाहि–शुभोऽशुभो वा जीवपरिणामः केवलाज्ञानत्वादेकस्तदेकत्वे सति कारणभेदात् एकं कर्म । शुभोऽशुभो वा पुद्गलपरिणामः केवलपुद्गलमयत्वादेकस्तदेकत्वे सति स्वभा-

---

पुद्गलकर्म व्यवहारेण द्विपदीभूतपुण्यपापरूपेण प्रविशति । **कम्ममसुहं कुसीलं** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा क्रमेणैकोनविंशतिसूत्रपर्यंतं पुण्यपापव्याख्यानं करोति । तत्र यद्यपि पुण्यपापयोर्व्यवहारेण भेदोऽस्ति तथापि निश्चयेन नास्ति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्कं तदनंतरमध्यात्मभाषायाः शुद्धात्मभावना विना आगमभाषया तु वीतरागसम्यक्त्वं विना व्रतदानादिकं पुण्यबंधकारणमेव न च मुक्तिकारणं । सम्यक्त्वसहितं पुनः परंपरया मुक्तिकारणं च भवति इति मुख्यतया **परमट्ठो खलु,** इत्यादिसूत्रचतुष्टयं । ततः परं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन **जीवादीसद्दहणं,** इत्यादिगाथानवमं कथयतीति पुण्यपापपदार्थाधिकारसमुदायपातनिका । तद्यथा–ब्राह्मण्याः पुत्रद्वयं जातं तत्रैक उपनयनवशाद्ब्राह्मणो जातः द्वितीयः पुनरुपनयनाभावाच्छूद्र इति । तथैकमपि निश्चयनयेन पुद्गलकर्म शुभाशुभजीवपरिणामनिमित्तेन व्यवहारेण द्विधा भवतीति कथयति;—**कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं** कर्माशुभं कुत्सितं कुशीलं हेयमिति । शुभकर्म सुशीलं शोभनमुपादेयमिति केषांचिद् व्यवहारिणा पक्षः सन् निश्चयरूपेण पक्षांतरेण वाध्यते । **किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि** निश्चयवादी ब्रूते कथं तत्पुण्यकर्म सुशीलं शोभनं भवति? यज्जीवं

ब्राह्मणके घर पला उसके ब्राह्मणपनेका अभिमान हुआ कि मैं ब्राह्मण हूं उस अभिमानसे मद्य (शराब) को दूरसे ही छोड़ देता है छूता भी नहीं है । तथा दूसरा पुत्र उस शूद्रके घर ही रहा इसलिये मैं शूद्र हूं ऐसा मान उस मदिरासे नित्य स्नान करता है उसे शुद्ध मानता है । जब इसका परमार्थ विचारा जाय तब दोनों ही शूद्रीके पुत्र हैं क्योंकि दोनों ही शूद्रीके उदरसे जन्मे हैं इसकारण साक्षात् शूद्र है । वे जातिभेदके भ्रमसे प्रवर्तते हैं आचरण करते हैं । इसीतरह पुण्य पाप कर्म जानना ॥ विभावपरिणतिसे उत्पन्नहुए हैं इसलिये दोनों ही बंधरूप है, प्रवृत्तिके भेदसे दो दीखते हैं परमार्थदृष्टि कर्मको एक ही जानती है ॥ आगे शुभाशुभ कर्मके स्वभावका वर्णन करते हैं,—[**अशुभं कर्म**] अशुभ कर्म तो [**कुशीलं**] पापस्वभाव है बुरा है [**अपि च**] और [**शुभकर्म**] शुभकर्म [**सुशीलं**] पुण्यस्वभाव है अच्छा है ऐसा जगत् [**जानाति**] जानता है । परंतु परमार्थदृष्टिसे कहते हैं कि [**यत्**] जो [**संसारं**] प्राणीको संसारमें ही [**प्रवेशयति**] प्रवेश करता है [**तत्**] वह कर्म [**सुशीलं**] शुभ अच्छा [**कथं**] कैसे [**भवति**] हो सकता है? नहीं हो सकता ॥ **टीका**—कितनेएक लोकोंका ऐसा पक्ष है कि कर्म एक तो है परंतु शुभ-

वाभेदादेकं कर्म । शुभोऽशुभो वा फलपाकः केवलपुद्गलमयत्वादेकस्तदेकत्वे सत्यनुभवाभेदादेकं कर्म । शुभाशुभौ मोक्षबंधमार्गौ तु प्रत्येकं केवलजीवपुद्गलमयत्वादनेकौ तदनेकत्वे सत्यपि केवलपुद्गलमयबंधमार्गाश्रितत्वेनाश्रयाभेदादेकं कर्म ॥ हेतुस्वभावानुभवा-

---

संसारे प्रवेशयति । हेतुस्वभावानुभवबंधरूपाश्रयाणा निश्चयेनाभेदात् कर्मभेदो नास्तीति । तथाहि-हेतुस्तावत्कथ्यते, शुभाशुभपरिणामो हेतुः । स च शुद्धनिश्चयेनाशुभत्वं प्रति, एक एव द्रव्यं पुण्यपापरूपं पुद्गलद्रव्यस्वभावः । सोऽपि निश्चयेन पुद्गलद्रव्यं प्रति, एक एव तत्फलं सुखदुःखरूपं स च फलरूपानुभवः । सोप्यात्मोत्थनिर्विकारसुखानंदापेक्षया दुःखरूपेणैक एव आश्रयस्तु शुभाशुभबंधरूपः । सोऽपि बंधं प्रत्येक एव इति हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणा सदाप्यभेदात् । यद्यपि

अशुभके भेदसे दो भेदरूप है क्योंकि शुभ और अशुभ जो जीवके परिणाम हैं वे उसको निमित्त हैं उसपनेसे कारणके भेदसे भेद है, शुभ और अशुभ जो पुद्गलके परिणाम उनमय होनेसे स्वभावके भेदसे भेद है, अथवा कर्मका जो शुभ अशुभ फल उसके रसपनेसे स्वादके भेदसे भेद है तथा शुभअशुभ जो मोक्षका तथा बंधका मार्ग उसका आश्रितपना होनेपर आश्रयके भेदसे भेद है। इस प्रकार इन चारों हेतुओंसे कोई कर्म शुभ है कोई कर्म अशुभ है ऐसा किसीका पक्ष है उसका निषेध करनेवाला दूसरा पक्ष है। यही कहते हैं—जो शुभ अथवा अशुभ जीवका परिणाम है वह केवल अज्ञानमयपनेसे एक ही है उसके एक होनेपर कारणका अभेद है इसलिये कर्म एक ही है। तथा शुभ अथवा अशुभ पुद्गलका परिणाम है वह केवल पुद्गलमय है इसलिये एक ही है। उसके एक होनेपर स्वभावके अभेदसे भी कर्म एक ही है । शुभ अथवा अशुभ जो कर्मके फलका रस वह केवल पुद्गलमय ही है उसके एक होनेपर आस्वादके अभेदसे भी कर्म एक ही है। शुभ अथवा अशुभ मोक्षका और बंधका मार्ग ये दोनों जुदे हैं केवल जीवमय तो मोक्षका मार्ग है और केवल पुद्गलमय बंधका मार्ग है। वे अनेक हैं एक नहीं हैं उनको एक न होनेपर भी केवल पुद्गलमय जो बंधमार्ग उसके आश्रितपनेकर आश्रयके अभेदसे कर्म एक ही है ॥ **भावार्थ**—कर्ममें शुभ अशुभके भेदकी पक्ष चार हेतुओंसे कही है उसमें शुभका हेतु तो जीवका शुभ परिणाम है वह अरहंतादिमें भक्तिका अनुराग, जीवोंमे अनुकंपा परिणाम, और मंदकषायसे चित्तकी उज्ज्वलता इत्यादि हैं। तथा अशुभका हेतु जीवके अशुभ परिणाम, तीव्र क्रोधादिक, अशुभ लेश्या, निर्दयपना, विषयासक्तपना, देव गुरु आदि पूज्य पुरुषोंसे विनयरूप नहीं प्रवर्तना इत्यादिक हैं। इसलिये इन हेतुओंके भेदसे कर्म शुभाशुभरूप दोप्रकारके हैं। और शुभअशुभ पुद्गलके परिणामके भेदसे स्वभावका भेद है, शुभ द्रव्यकर्म तो सातावेदनीय शुभआयु शुभनाम शुभगोत्र हैं तथा अशुभ चार घातियाकर्म, असातावेदनीय, अशुभआयु, अशुभनाम, अशुभगोत्र ये हैं । इनके उदयसे प्राणीको इष्ट अनिष्ट (अच्छी बुरी) सामग्री मिलती है

श्रयाणां सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः । तद्बंधमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वयं समस्तं खलु बंधहेतुः ॥ १३० ॥" १४५ ॥

अथोभयं कर्माविशेषेण बंधहेतुं साधयति;—

सौवण्णियह्मि णियलं बंधदि कालायसं च जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ १४६ ॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि च यथा पुरुषं ।
बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म ॥ १४६ ॥

व्यवहारेण भेदोऽस्ति तथापि निश्चयेन शुभाशुभकर्मभेदो नास्ति इति व्यवहारवादिनां पक्षो बाध्यत एव ॥ १४५ ॥ अयोभय कर्म, अविशेषेण बंधकारणं साधयति,—यथा सुवर्णनिगलं लोहनिगलं च अविशेषेण पुरुषं बध्नाति तथा शुभमशुभं वा कृतं कर्म अविशेषेण जीवं बध्नातीति । किंच । भोगाकाक्षानिदानरूपेण रूपलावण्यसौभाग्यकामदेवेन्द्राहमिंद्रख्यातिपूजालाभा-

---

सो ये पुद्गलके स्वभाव हैं । इनके भेदसे कर्ममें स्वभावका भेद है । शुभअशुभ अनुभवके भेदसे भेद है शुभका अनुभव तो सुखरूप स्वाद है और अशुभका दुःखरूप स्वाद है । शुभाशुभ आश्रयके भेदसे भेद है शुभका तो आश्रय मोक्षमार्ग है और अशुभका आश्रय बंधमार्ग है । ऐसा तो भेदपक्ष है । अब इस भेदका निषेधपक्ष कहते हैं—जो शुभ और अशुभ दोनों जीवके परिणाम अज्ञानमय है इसलिये दोनोंका एक अज्ञान ही कारण है इसलिये हेतुके भेदसे कर्ममें भेद नहीं हैं । शुभअशुभ ये दोनों पुद्गलके परिणाम हैं इसलिये पुद्गलपरिणामरूप स्वभाव भी दोनोंका एक ही है इसकारण स्वभावके अभेदसे भी कर्म एक ही है । शुभाशुभ फल सुखदुःखरूप स्वाद भी पुद्गलमय ही है इसलिये स्वादके अभेदसे भी कर्म एक ही है । शुभअशुभ मोक्षबंधमार्ग कहे हैं वहां भी मोक्षमार्ग तो केवल (एक) जीवका ही परिणाम है और बंधमार्ग केवल एक पुद्लका ही परिणाम है आश्रय भिन्न भिन्न हैं इसलिये बंधमार्गके आश्रयसे भी कर्म एक ही है । ऐसे यहां कर्मके शुभाशुभ भेदके पक्षको गौणकर निषेध किया क्योंकि यहां अभेदपक्ष प्रधान है सो अभेदपक्षकर देखाजाय तो कर्म एक ही है दो नहीं हैं ॥ अब इसी अर्थको लेकर कलशरूप काव्य कहते हैं—**हेतु** इत्यादि । **अर्थ**—हेतु स्वभाव अनुभव आश्रय इन चारोंके सदाकाल ही अभेदसे कर्ममें भेद नहीं है इसलिये बंधके मार्गको आश्रयकर कर्म एक ही माना है क्योंकि शुभरूप तथा अशुभरूप दोनों ही आप (स्वयं) निश्चयसे बंधके ही कारण हैं ॥ १४५ ॥

आगे शुभअशुभ दोनों कर्मोंको ही अविशेष (अभेद)कर बंधके कारण साधते हैं;—[**यथा**] जैसे [**कालायसं निगलं**] लोहेकी बेड़ी [**पुरुषं बध्नाति**] पुरुषको बांधती है [**अपि**] और [**सौवर्णिकं**] सुवर्णकी [**अपि**] भी बांधती

शुभमशुभं च कर्माविशेषेणैव पुरुषं बध्नाति वंधत्वाविशेषात् कंचनकालायसनिगलवत् ॥ १४६ ॥

अथोभयं कर्म प्रतिषेधयति;—

तह्मा दु कुसीलेहिय रायं मा कुणह मा व संसग्गं।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥ १४७ ॥

तस्मात्तु कुशीलाभ्यां रागं मा कुरुत मा वा संसर्गं ।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागेण ॥ १४७ ॥

कुशीलशुभाशुभकर्मभ्यां सह रागसंसर्गौ प्रतिषिद्धौ वंधहेतुत्वात् कुशीलमनोरमाऽमनोरमकरेणुकुट्टिनीरागसंसर्गवत् ॥ १४७ ॥

दिनिमित्त यो व्रततपश्चरणदानपूजादिकं करोति, स पुरुषः तक्रनिमित्तं रत्नविक्रयवत्, भस्मनिमित्तं रत्नराशिदहनवत्, सूत्रनिमित्तं हारचूर्णवत्, कोद्रवक्षेत्रवृत्तिनिमित्तमगुरुवनच्छेदनवत्। वृथैव व्रतादिकं नाशयति । यस्तु शुद्धात्मभावनासाधनार्थं बहिरंगव्रततपश्चरणदानपूजादिकं करोति स परपरया मोक्ष लभते इति भावार्थ. ॥ १४६ ॥ अथोभयकर्माविशेषेण मोक्षमार्गविषये निषेधयति;—**तम्हादु कुसीलेहि य रायं मा काहि मा व संसग्गं** तस्मात् कारणात् कुशीलैः कुत्सितैः शुभाशुभकर्मभिः सह चित्तगतरागं मा कुरु । बहिरंगवचनकायगतसंसर्गं च मा कुरु । कस्मात्? इति चेत् । **साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण** कुशीलसंसर्गरागाभ्या स्वाधीनो नियमेन विनाश. निर्विकल्पसमाधिविघातरूपः स्वार्थभ्रंशो हि स्फुट भवति अथवा स्वाधीनस्यात्मसुखस्य विनाश इति, ॥ १४७ ॥ अथोभयकर्म

है **[एवं]** उसीतरह **[शुभं वा अशुभं]** शुभ तथा अशुभ **[कृतं कर्म]** किया हुआ कर्म **[जीवं]** जीवको **[वध्नाति]** वांधता ही है ॥ **टीका**—शुभ और अशुभ कर्म अभेदपनेसे आत्माको वांधते ही हैं क्योंकि दोनों ही वंधपनेकर विशेषरहित हैं। जैसे सुवर्णकी वेडी और लोहेकी वेड़ीमें वंधकी अपेक्षा भेद नहीं है उसीतरह कर्ममें भी वंध अपेक्षा भेद नहीं है ॥ १४६ ॥

आगे शुभ अशुभ दोनों ही कर्मोका निषेध करते हैं;—हे मुनिजन हो ! **[तस्मात्]** इसलिये (पूर्वकथित शुभअशुभ कर्म हैं वे कुशील हैं निंद्य स्वभाव हैं) **[कुशीलाभ्यां]** उन दोनों कुशीलोंसे **[रागं]** प्रीति **[मा कुरुत]** मत करो **[वा]** अथवा **[संसर्गं च]** संवंध भी **[मा]** मत करो **[हि]** क्योंकि **[कुशीलसंसर्गरागेण]** कुशीलके संसर्गसे और रागसे **[स्वाधीनो विनाशः]** अपनी स्वाधीनताका विनाश होता है अपना घात आपसे ही होता है। **टीका**—कुशील जो शुभ अशुभ कर्म उनके साथ राग और संगति दोनोंका निषेध किया है, क्योंकि ये दोनों ही कर्म वंधके कारण हैं । जैसे कुशील जो मनको रमाने (प्रसन्न करने) वाली अथवा नहीं रमानेवाली हथिनीरूप कुट्टनीके साथ राग और संगतिकरनेवाले हाथीके स्वाधीनपनका विनाश हो जाता है ॥ १४७ ॥

अथोभयं कर्म प्रतिषेध्यं स्वयं दृष्टांतेन समर्थयते;—

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥ १४८ ॥
एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णाउं।
वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरया ॥ १४९ ॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषः कुत्सितशीलं जनं विज्ञाय।
वर्जयति तेन समकं संसर्ग रागकरणं च ॥ १४८ ॥
एवमेव कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं च कुत्सितं ज्ञात्वा।
वर्जयंति परिहरंति च तत्संसर्ग स्वभावरताः ॥ १४९ ॥

यथा खलु कुशलः कश्चिद्वनहस्ती स्वस्य बंधाय उपसर्प्पन्ती चटुलमुखीं मनोरमाममनोरमां वा करेणुकुट्टिनी तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तया सह रागसंसर्गौ प्रतिषेधयति।

प्रति निषेधं स्वयमेव श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवा दृष्टातदार्ष्टाताभ्या समर्थयंति;—यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुषः कुत्सितशीलं जनं ज्ञात्वा **वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च** तेनसमकं सह बहिरंगवचनं कायगतं संसर्गं मनोगतं रागं च वर्जयतीति दृष्टांतः **एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादुं** एवमेव पूर्वोक्तदृष्टान्तन्यायेन कर्मणः प्रकृतिशीलं स्वभावं कुत्सितं हेयं ज्ञात्वा **वज्जंति परिहरंति य तं संसग्गं सहावरदा**

आगे दोनों कर्मोंके निषेधको आप दृष्टांतसे दृढ करते हैं;—**[यथा नाम]** जैसे **[कोपि]** कोई **[पुरुषः]** पुरुष **[कुत्सितशीलं]** निंदितस्वभाववाले **[जनं]** किसी पुरुषको **[विज्ञाय]** जानकर **[तेन समकं]** उसके साथ **[संसर्गं]** संगति **[च रागकरणं]** और राग करना **[वर्जयति]** छोड़ देता है **[एवमेव च]** इसी तरह ज्ञानी जीव **[कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं]** कर्म प्रकृतियोंके शील स्वभावको **[कुत्सितं ज्ञात्वा]** निंदने योग्य खोटा जानकर **[वर्जयंति]** उससे राग छोड़ देते हैं **[च]** और **[तत्संसर्गं]** उसकी संगति भी **[परिहरंति]** छोड़ देते हैं पश्चात् **[स्वभावरताः]** अपने स्वभावमे लीन हो जाते हैं ॥ **टीका**—जैसे कोई चतुर वनका हाथी, अपने बंधनेके लिये समीप रहनेवाली, चंचलमुखको लीलारूप करती मनको रमानेवाली, सुंदर अथवा असुंदर हथिनीरूपी कुट्टिनीको बुरी समझ उसके साथ राग तथा संसर्ग (समीप जाना) दोनों ही नहीं करता उसी तरह आत्मा भी राग रहित ज्ञानी हुआ अपने बंधके कारण समीप उदय आती शुभरूप अथवा अशुभरूप सभी कर्म प्रकृतियोंको परमार्थसे बुरीं जानकर उनके साथ राग और संसर्ग नहीं करता ॥ **भावार्थ**—जैसे हाथीके पकड़नेको कोई कपटकी (नकली) हथिनी दिखलावे तब हाथी कामांध हुआ उससे राग तथा संसर्गकर गड्ढेमें पड़ पराधीन होके दुःख भोगता है,

तथा किलात्माऽरागो ज्ञानी स्वस्य बंधाय उपसर्प्पंतीं मनोरमाममनोरमां वा सर्वामपि कर्मप्रकृतिं तत्त्वतः कुत्सितशीलां विज्ञाय तया सह रागसंसर्गौ प्रतिषेधयति ॥१४८।१४९॥

अथोभयकर्महेतुं प्रतिषेध्यं चागमेन साधयति;—

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते जीवो विरागसम्प्राप्तः।
एष जिनोपदेशः तस्मात् कर्मसु मा रज्यस्व ॥ १५० ॥

यः खलु रक्तोऽवश्यमेव कर्म बध्नीयात् विरक्त एव मुच्येतेत्ययमागमः स सामान्येन रक्तत्वनिमित्तत्वाच्छुभमशुभमुभयकर्माविशेषेण बंधहेतुं साधयति तदुभयमपि कर्म प्रतिषे-

---

इह जगति वर्जयन्ति तत्संसर्गं वचनकायाभ्यां परिहरन्ति मनसा रागं च तस्य कर्मणः। के ते ? समस्तद्रव्यभावगतपुण्यपापपरिणामपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिस्वभावरताः साधव इति दार्ष्टांतः ॥१४८।१४९॥ अथोभयकर्म शुद्धनिश्चयेन केवलं बंधहेतुं न केवलं बंधहेतुं प्रतिषेध्यं चागमेन साधयति;—**रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो** यस्मात् कारणात् रक्तः स कर्माणि बध्नाति। मुच्यते जीवः कर्मजनितभावेषु विरागसंपन्नः **एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज** एष प्रत्यक्षीभूतो जिनोपदेशः कर्ता, किं करोति ? उभयं कर्म बंधहेतुं न केवलं बंधहेतुं प्रतिषेध्यं हेयं च कथयति तस्मात्कारणात्

और प्रवीण (चतुर) हाथी होवे तो उससे राग संसर्ग नहीं करता उसीतरह कर्म प्रकृतियोंको अच्छी समझ अज्ञानी जन उनसे राग तथा संसर्ग करता है तब बंधमें पड़ संसारके दुःख भोगता है और जो ज्ञानी होवै तो उनसे संसर्ग तथा राग कभी नहीं करता ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

आगे शुभ तथा अशुभ दोनों ही कर्म बंधके कारण हैं और निषेध करने योग्य हैं यह बात आगमसे साधते हैं,—[**रक्तः**] रागी [**जीवः**] जीव तो [**कर्म**] कर्मोंको [**बध्नाति**] बांधता है [**विरागसंप्राप्तः**] तथा वैराग्यको प्राप्त हुआ जीव [**मुच्यते**] कर्मसे छूट जाता है [**एषः**] यह [**जिनोपदेशः**] जिन भगवानका उपदेश है [**तस्मात्**] इस कारण भो भव्यजीवो तुम [**कर्मसु**] कर्मोंमें [**मा रज्यस्व**] प्रीति मतकरो रागी मत होओ ॥ **टीका**—जो रागी है वह अवश्य कर्मोंको बांधता ही है और जो विरक्त है वही कर्मोंसे छूटता है ऐसा यह आगमका वचन है यह वचन, सामान्यसे रागीपनेके निमित्तसे कर्म शुभ अशुभ ये दोनों हैं उनको अविशेषकर बंधका कारण साधा है इसलिये उन दोनों ही कर्मोंको निषेधते हैं ॥ इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**कर्म** इत्यादि। **अर्थ**—सर्वज्ञदेव सभी शुभ तथा अशुभ कर्मोंको सामान्यसे बंधका कारण कहते हैं इसीलिये सभी कर्मोंका निषेध किया है। मोक्षका कारण एक ज्ञान ही कहा है ॥ अब

धयति । " कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्बंधसाधनमुशन्त्यविशेषात् । तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥ १०४ ॥ निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः । तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं स्वयं विन्दन्त्येते परममसृतं तत्र निरताः ॥ ५ ॥" ॥ १५० ॥

अथ ज्ञानहेतुं साधयति;—

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ १५१ ॥

परमार्थः खलु समयः शुद्धो यः केवली मुनिर्ज्ञानी ।
तस्मिन् स्थिताः स्वभावे मुनिनः प्राप्नुवंति निर्वाणं ॥ १५१ ॥

ज्ञानं मोक्षहेतुः, ज्ञानस्य शुभाशुभकर्मणोरबंधहेतुत्वे सति मोक्षहेतुत्वस्य तथोपपत्तेः । तत्तु सकलकर्मादिजात्यंतरविविक्तविजातिमात्रः परमार्थ आत्मेति यावत् स तु युगपदेकी-

---

शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वेन स्वकीयशुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसस्वादेन तृप्तो भूत्वा शुभाशुभकर्मणि मा रज्यस्व रागं मा कुर्विति । एवं यद्यप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यपुण्यपापयोर्भेदोऽस्ति अशुद्धनिश्चयेन पुनस्तद्द्वयजनितेंद्रियसुखदुःखयोर्भेदोऽस्ति तथापि शुद्धनिश्चनयेन नास्ति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाषट्कं गतं ॥ १५० ॥ अथ विशुद्धज्ञानशब्दवाच्यं परमात्मानं मोक्षकारणं कथयति;—**परमट्ठो खलु समओ** उत्कृष्टार्थः परमार्थः स कः ? परमात्मा अथवा धर्मार्थकाममोक्षलक्षणेषु परमार्थेषु परम उत्कृष्टो मोक्षलक्षणार्थः परमार्थः सोऽपि स एव । अथवा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदरहितत्वेन निश्चयेनैकः परमार्थः सोऽपि परमात्मैव खलु स्फुट **समओ** सम्यगयति गच्छति शुद्धगुणपर्यायान् परिण-

---

कहते हैं कि सभी कर्म निषेधा है तो मुनि किसके आश्रय (शरण) मुनिपद पालसकेंगे ? उसके निर्वाहका काव्य कहते हैं—**निषिद्धे** इत्यादि । **अर्थ**—शुभ आचरणरूप कर्म तथा अशुभ आचरणरूप कर्म ऐसे सभी कर्मका निषेध करते हुए, कर्मरहित निवृत्ति अवस्थाको प्रवर्तते हुए मुनि अशरण नहीं हैं । यहांपर यह शंका करना ठीक नहीं कि मुनिपद किसके आश्रय पालेंगे । जिस समय निवृत्ति अवस्था प्रवर्तती है उस समय इन मुनियोंके ज्ञानमें ज्ञानको ही आचरण करना शरण है । वे मुनि उस ज्ञानमें लीन हुए परम (उत्कृष्ट) अमृतको आप भोगते हैं । **भावार्थ**—सब कर्मका त्याग होनेसे ज्ञानका बड़ा शरण है उस ज्ञानमें लीन होनेसे सब आकुलताओंसे रहित परमानंदका भोगना होता है । इसका स्वाद ज्ञानी ही जानता है अज्ञानी कषायी जीव कर्मको ही सर्वस्व जान उसमें लीन होरहा है ज्ञानानंदका स्वाद नहीं जानता ॥ १५० ॥

आगे ज्ञानको मोक्षका कारण सिद्ध करते हैं,—[**खलु**] निश्चयकर [**परमार्थः समयः**] परमार्थरूप जीवनामा पदार्थका स्वरूप यह है कि [**यः**] जो [**शुद्धः**]

भावप्रवृत्तज्ञानगमनतया समयः । सकलनयपक्षासंकीर्णैकज्ञानतया शुद्धः । केवलचिन्मात्रवस्तुतया केवली । मननमात्रभावमात्रतया मुनिः स्वयमेव ज्ञानतया ज्ञानी । स्वस्य भवनमात्रतया स्वस्वभावः स्वतश्चितो भवनमात्रतया सद्भावो वेति शब्दभेदेऽपि न च वस्तुभेदः ॥ १५१ ॥

मतीति समयः । अथवा सम्यगयः संशयादिरहितो बोधो ज्ञानं यस्य भवति स समयः । अथवा समित्येकत्वेन परमसमरसीभावेन स्वकीयशुद्धस्वरूपे अयनं गमनं परिणमनं समयः सोऽपि स एव शुद्धो रागादिभावकर्मरहितो यः सोऽपि स एव **केवली** परद्रव्यरहितत्वेनासहायः केवली सोऽपि स एव **मुणी** मुनिः प्रत्यक्षज्ञानी सोऽपि परमात्मैव । **तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं** । तस्मिन् परमात्मस्वभावे स्थिता वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरता मुनयस्तपोधना निर्वाणं प्राप्नुवंति लभत इत्यर्थः ॥ १५१ ॥ अथ तस्मिन्नेव परमात्मनि स्वसं-

---

शुद्ध है [**केवली**] केवली है [**मुनिः**] मुनि है [**ज्ञानी**] ज्ञानी है ये जिसके नाम हैं [**तस्मिन् स्वभावे**] उस स्वभावमें [**स्थिताः**] तिष्ठे हुए [**मुनयः**] मुनि [**निर्वाणं**] मोक्षको [**प्राप्नुवंति**] प्राप्त होते हैं ॥ **टीका**—ज्ञान ही मोक्षका कारण है क्योंकि अज्ञान शुभ अशुभ कर्मरूप है उसको बंधका कारणपना होनेसे मोक्षका कारणपना असिद्ध है । मोक्षका हेतुपना ज्ञानके ही बनता है यह ज्ञान ही परमार्थ है आत्मा है क्योंकि समस्त कर्मोंको आदि लेकर अन्यपदार्थोंसे भिन्न जात्यंतर चिज्जातिमात्र है वही परमार्थस्वरूप आत्मा है जडजातिसे भिन्न है इसीको समय कहते हैं । समय शब्दका अर्थ पहले भी कहचुके हैं सम् ऐसा तो उपसर्ग है उसका अर्थ एककाल एकरूप प्रवर्तना है तथा अय ऐसे शब्दका अर्थ ज्ञान भी है गमन भी है, दोनों क्रियारूप एककाल प्रवर्ते उसको समय कहते है ऐसा प्रवर्तन जीव नामा पदार्थका है वही आत्मा है उसीका शुद्ध ऐसा नाम है क्योंकि समस्त धर्म तथा धर्मीके ग्रहण करनेवाले नयोंके पक्षोंसे नहीं मिलता जुदा ही ज्ञानपनेरूप असाधारणधर्म है वह अन्य धर्मोंसे जुदा ही प्रकाशरूप है अन्यसे नहीं मिलता । उस एकको ही शुद्ध कहते हैं इसीको केवली कहते हैं क्योंकि एक चैतन्यमात्र वस्तुपना इसके है केवल शब्दका अर्थ एक है । इसीको मुनि कहते हैं क्योंकि मननमात्र अर्थात् ज्ञानमात्र भावरूप यह है उसपनेसे मुनि भी यही है और स्वयमेव (आप) ज्ञानी है ही उसपनेसे इसको ज्ञानी भी कहते हैं । अपने ज्ञानस्वरूपका सत्तारूप प्रवर्तना उसपनेकर स्वभाव भी इसको कहते हैं तथा अपनी चेतनाका सत्तारूप होना उससे सद्भाव ऐसा भी नाम है । ऐसें शब्दोंके भेदसे नामभेद होनेपर भी वस्तुभेद नहीं है ॥ **भावार्थ**—मोक्षका उपादान कारण आत्मा ही है सो आत्माका परमार्थसे ज्ञानस्वभाव है ज्ञान है वह आत्मा ही है आत्मा है वह ज्ञान ही है इसलिये ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहना युक्त है ॥ १५१ ॥

अथ ज्ञानं विध्यापयति;—

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेई ।
तं सव्वं वालतवं वालवदं विंति सव्वण्हू ॥ १५२ ॥

परमार्थे त्वस्थितः करोति तपो व्रतं च धारयति ।
तत्सर्वं वालतपो वालव्रतं विंदंति सर्वज्ञाः ॥ १५२ ॥

ज्ञानमेव मोक्षस्य कारणं विहितं परमार्थभूतज्ञानशून्यस्याज्ञानकृतयोर्व्रततपःकर्मणोः बंधहेतुत्वाद्बालव्यपदेशेन प्रतिषिद्धत्वे सति तस्यैव मोक्षहेतुत्वात् ॥ १५२ ॥

अथ ज्ञानाज्ञानमोक्षबंधहेतू नियमयति;—

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठवाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥ १५३ ॥

वेदनज्ञानरहिताना व्रततपश्चरणादिकं पुण्यबंधकारणमेवेति प्रतिपादयति;—**परमट्ठम्मि य अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि** तस्मिन्नेव पूर्वसूत्रोक्तपरमार्थलक्षणे परमात्मस्वरूपे अस्थितो रहितो यस्तपश्चरणं करोति व्रतादिकं च धारयति **तं सव्वं वालतवं वालवदं विंति सव्वह्णू**—तत्सर्वं वालतपश्चरणं वालव्रतं ब्रुवंति कथयंति । के ते ? सर्वज्ञाः । कस्मात् ? इति चेत्, पुण्यपापोदयजनितसमस्तेंद्रियसुखदुःखाधिकारपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन विशिष्टानंदज्ञानेन रहितत्वात् इति ॥ १५२ ॥ अथ स्वसंवेदनज्ञान तथैवाज्ञानं चेति यथाक्रमेण मोक्षबंधहेतू दर्शयति; —**वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च**

आगे कोई जानेगा कि वाह्य तपश्चरणादि करना ही ज्ञान है उसको ज्ञानकी विधि वतलाते हैं;—**[यः]** जो **[परमार्थे तु]** ज्ञानस्वरूप आत्मामें तो **[अस्थितः]** स्थिर नहीं है **[तपः करोति]** और तप करता है **[च]** तथा **[व्रतं धारयति]** व्रतोंको धारण करता है **[तत्सर्वं]** उस सब तप व्रतको **[सर्वज्ञाः]** सर्वज्ञ देव **[वालतपः]** अज्ञानतप **[वालव्रतं]** अज्ञानव्रत **[विंदंति]** कहते हैं ॥ **टीका**—मोक्षका कारण ज्ञान ही है यह विधि है क्योंकि परमार्थ भूत ज्ञानकर शून्य जो अज्ञान उससे किये गये तप और व्रतरूप कर्म उन दोनोंके बंधका कारणपना है इसलिये वालतप वालव्रत ऐसा नाम कहकर सर्वज्ञदेवने प्रतिषेध किये हैं इसकारण पूर्वकथित ज्ञानके ही मोक्षका कारणपना है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानके विना तप व्रतकरना वालतप वालव्रत कहा है इसलिये मोक्षका कारण ज्ञान ही है ॥ १५२ ॥

आगे ज्ञान तो मोक्षका हेतु है और अज्ञान वंधका हेतु है ऐसा नियमसे कहते हैं;—**[ये]** जो कोई **[व्रतनियमान्]** व्रत और नियमोंको **[धारयंतः]**

---

१ तात्पर्यवृत्तौ तु ण तेण ते होंति अण्णाणी इत्यपि पाठः ।

व्रतनियमान् धारयंतः शीलानि तथा तपश्च कुर्वतः ।
परमार्थबाह्या ये निर्वाणं ते न विंदंति ॥ १५३ ॥

ज्ञानमेव मोक्षहेतुस्तदभावे स्वयमज्ञानभूतानामज्ञानिनामन्तर्व्रतनियमशीलतपःप्रभृतिशुभकर्मसद्भावेऽपि मोक्षाभावात् । अज्ञानमेव बंधहेतुः, तदभावे स्वयं ज्ञानभूतानां ज्ञानिनां बहिर्व्रतनियमशीलतपःप्रभृतिशुभकर्मासद्भावेऽपि मोक्षसद्भावात् ॥

कुव्वंता त्रिगुप्तसमाधिलक्षणाद्भेदज्ञानाद् बाह्या ये ते व्रतनियमान् धारयतः, शीलानि तपश्चरण च कुर्वाणा अपि मोक्ष न लभंते । कस्मादिति चेत्, **परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी** येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् परमार्थबाह्यास्तेन कारणेन ते भवंत्यज्ञानिनः । अज्ञानिना तु कथ मोक्षः ? ये तु परमसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहितास्ते तु व्रतनियमानधारयन्तोऽपि शीलानि तपश्चरणं बाह्यद्रव्यरूपमकुर्वाणा अपि मोक्ष लभंते । तदपि कस्मात्, येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् परमार्थादबाह्यास्तेन कारणेन ते च ज्ञानिनो भवंति । ज्ञानिना तु मोक्षो भवत्येवेति । किंच विस्तरः । व्रतनियमशीलबहिरंगतपश्चरणादिकं विनापि यदि मोक्षो भवति इति सांख्यशैवमतानुसारिणो वदन्तीति तेषामेव मतं सिद्धमिति । नैवं, निर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहिताना मोक्षो भवतीति विशेषेण बहुधा भणितं तिष्ठति । एवंभूतभेदज्ञानकाले शुभरूपा ये मनोवचनकायव्यापाराः परंपरया मुक्तिकारणभूतास्तेऽपि न संति । ये पुनरशुभविषयकषायव्यापाररूपास्ते विशेषेण न संति । न हि चित्तस्थे रागभावे

धारणकरते हैं [**तथा**] उसीतरह [**शीलानि च तपः कुर्वंतः**] शील और तपको करते हैं परंतु [**परमार्थबाह्याः**] परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मासे बाह्य हैं अर्थात् उसके स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान जिनके नहीं है [**ते**] वे [**निर्वाणं**] मोक्षको [**न**] नहीं [**विंदंति**] पाते ॥ **टीका**—ज्ञान ही मोक्षका हेतु है क्योंकि ज्ञानका अभाव होनेसे आप अज्ञानरूप हुए अज्ञानियोंके अंतरंगमें व्रत नियम शील तपोरूप शुभकर्मका सद्भाव होनेपर भी मोक्षका अभाव है । ज्ञानके विना शुभकर्मरूप व्रत नियम शील तपोरूप प्रवृत्ति होनेपर भी मोक्ष नहीं होती । अज्ञान ही बंधका हेतु है क्योंकि अज्ञानका अभाव होनेपर आप ज्ञानरूप हुए ज्ञानियोंके बाह्य व्रत नियम शील तप आदि शुभ कर्मका असद्भाव होनेपर भी मोक्षका सद्भाव है ॥ **भावार्थ**—ज्ञान होनेपर ज्ञानीके व्रत नियम शील तपोरूप शुभकर्म बाह्य न होनेपर भी मोक्ष होती है । यहां ऐसा जानना कि जो व्रत आदिकी प्रवृत्ति शुभकर्म है उस प्रवृत्तिका अभाव होते निवृत्ति अवस्था होते व्रत नियम शील तप स्वरूप बाह्यप्रवृत्तिका अभाव है तौ भी मोक्ष होती है यह नियम जानना ॥ इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**यदेत** इत्यादि । **अर्थ**—जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्रुव है सो जब निश्चल अपने ज्ञानस्वरूप हुआ शोभायमान होता है तब ही यह मोक्षका कारण है क्योंकि आप स्वयमेव मोक्षस्वरूप है और इसके सिवाय

"यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति । अतोन्यद्बंधस्य स्वयमपि यतो बंध इति तत् ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितं ॥ १०६ ॥" १५३ ॥

अथ पुनरपि पुण्यकर्मपक्षपातिनः प्रतिबोधनायोपक्षिपति;—

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेउं अजाणंता ॥ १५४ ॥

परमार्थबाह्या ये ते अज्ञानेन पुण्यमिच्छंति ।
संसारगमनहेतुं अपि मोक्षहेतुमजानंतः ॥ १५४ ॥

इह खलु केचिन्निखिलकर्मपक्षक्षयसंभावितात्मलाभं मोक्षमभिलषंतोऽपि तद्धेतुभूतं स-

---

विनष्टे सति वहिरंगविषयव्यापारो दृश्यते । तंदुलस्याभ्यंतरे तुषे गते वहिरंगतुष इव । तदपि कस्मात् ? इति चेत् निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानविषयकषाययोर्द्वयोः परस्परं विरुद्धत्वात् शीतोष्णवदिति ॥ १५३ ॥ अथ वीतरागसम्यक्त्वरूपां शुद्धात्मभावनां विहाय तेन पुण्यमेवैकांतेन मुक्तिकारणं ये वदंति तेषा प्रतिवाधनार्थं पुनरपि दूषणं ददाति;—इह हि केचन सकलकर्मक्षयमोक्षमिच्छतोऽपि निजपरमात्मभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणं परमसामायिकं पूर्वं दीक्षाकाले प्रतिज्ञायापि चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानसामर्थ्याभावात्पूर्वोक्तपरमसामायिकमलभमानाः परमार्थबाह्याः संतः संसारगमनहेतुत्वेन बंधकारणमप्यज्ञानभावेन कृत्वा पुण्यमिच्छति । किं कुर्वन्त ? अभेदरत्नत्रयात्मकं मोक्षकारणमजानंतः । अथवा द्वितीयव्याख्यानं, बंधहेतुमपि पुण्यं मोक्षहेतुमिच्छंति । किं कुर्वन्तः ? पूर्वोक्तमभेदरत्नत्रयात्मकपरमसामायिकं मोक्षकारण-

---

जो अन्य है वह बंधका कारण है क्योंकि आप स्वयमेव बंधस्वरूप है । इसलिये ज्ञान स्वरूप अपना होना ही अनुभूति है इसतरह निश्चयसे बंधमोक्षके हेतुका विधान किया है ॥ १५३ ॥

आगे फिर भी पुण्यकर्मका जो पक्षपात करे उसके समझानेकेलिये उत्तर कहते हैं,—[**ये**] जो जीव [**परमार्थबाह्या**] परमार्थसे बाह्य हैं परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माको नहीं अनुभवते [**ते**] वे जीव [**अज्ञानेन**] अज्ञानसे [**पुण्यं**] पुण्य [**इच्छंति**] अच्छामानके चाहते है वह पुण्य [**संसारगमनहेतुं अपि**] संसारके गमनको कारण है तौ भी वे जीव [**मोक्षहेतुं**] मोक्षका कारण ज्ञानस्वरूप आत्माको [**अजानंतः**] नहीं जानते। पुण्यको ही मोक्षका कारण मानते हैं॥**टीका—** इस लोकमे निश्चयसे कोई एक जीव ऐसे हैं कि जो समस्त कर्मके पक्षका नाशकर जिसमें निजस्वरूपका लाभ उत्पन्न हुआ है ऐसे मोक्षको चाहते भी हैं तौभी उस मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वभाव परमार्थभूत ज्ञानके होनेमात्र एकाग्रतालक्षण समयसारभूत सामायिक चारित्रकी प्रतिज्ञा लेकर भी दुरंतकर्मके समूहके पार होनेमें सम-

म्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभावपरमार्थभूतज्ञानभवनमात्रमैकाग्र्यलक्षणं समयसारभूतं सामायिकं प्रतिज्ञायापि दुरंतकर्मचक्रोत्तरणक्लीबतया परमार्थभूतज्ञानानुभवनमात्रसामायिकमात्मस्वभावमलभमानाः प्रतिनिवृत्तस्थूलतमसंक्लेशपरिणामकर्मतया प्रवृत्तमानस्थूलतमविशुद्धपरिणामकर्माणः कर्मानुभवगुरुलाघवप्रतिपत्तिमात्रसंतुष्टचेतसः स्थूललक्ष्यतया सकलं कर्मकांडमनुन्मूलयंतः स्वयमज्ञानादशुभकर्म केवलं बंधहेतुमध्यास्य एवं व्रतनियमशीलतपःप्रभृतिशुभकर्मबंधहेतुमप्यजानतो मोक्षहेतुमभ्युपगच्छंति ॥ १५४ ॥

अथ परमार्थमोक्षहेतुस्तेषां दर्शयति;—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं ।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥ १५५ ॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं तेषामधिगमो ज्ञानं ।
रागादिपरिहरणं चरणं एष तु मोक्षपथः ॥ १५५ ॥

मोक्षहेतुः किल सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रं । तत्र सम्यक्दर्शनं तु जीवादिश्रद्धानस्वभा-

---

मजानतः सत इति । किं च निर्विकल्पसमाधिकाले व्रताव्रतस्य स्वयमेव प्रस्तावो नास्ति । अथवा निश्चयव्रतं तदेवेत्यभिप्रायः । इति वीतरागसम्यक्त्वरूपा शुद्धात्मोपादेयभावनां विना व्रततपश्चरणादिक पुण्यकारणमेव भवति तद्भावनासहित पुनर्बहिरंगसाधकत्वेन मुक्तिकारण चेति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं ॥१५४॥ एव गाथादशकेन पुण्याधिकारः समाप्तः ॥ अथ सविकल्पत्वात्पराश्रितत्वाच्च निश्चयेन पापाख्यानमुख्यत्वेन, अथवा निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन **जीवा-**

र्थपनेके अभावकर परमार्थभूत ज्ञानके होनेमात्र जो सामायिक चारित्रस्वरूप आत्माका स्वभाव उसको पाते हुए अतिशयकर स्थूल संक्लेशपरिणामस्वरूप कर्मसे तो निवृत्त हुए हैं और अतिशयकर मोटे विशुद्ध परिणामरूप कर्मकर प्रवर्ते हैं वे कर्मके अनुभवका गुरुपना और लघुपनेकी प्राप्तिमात्रसे ही संतुष्टचित्तवाले हुए स्थूललक्ष्यतारूप स्थूल अनुभव गोचर संक्लेशरूप कर्मकाण्डको तो छोड़ते हैं परंतु समस्त कर्मकाण्डको मूलसे नहीं उखाड़ते वे आप ही अपने अज्ञानसे अशुभकर्मको ही केवल बंधका कारण निश्चयकर व्रत नियम शील तप आदिक शुभकर्मबंधके कारणको बंधका कारण नहीं जानते उसको मोक्षका कारण मानते हैं अंगीकार करते हैं वे परमार्थसे बाह्य हैं ॥ **भावार्थ**—कितने ही जीव अतिसंक्लेशपरिणामरूप कर्मको तो बंधका कारण जान छोड़ते हैं और अतिविशुद्धता परिणामरूप कर्म सहित वर्तते हैं कर्मका बहुत थोड़ापनामात्र ही बंध मोक्षका कारण जानते हैं तथा सकल कर्मोंसे रहित अपना स्वरूप मोक्षका कारण नहीं जानते वे अशुभकर्मको छोड़ व्रत नियम शीलतपरूप शुभकर्मको ही मोक्षका कारण मान अंगीकार करते हैं । वे व्रत आदिको पालते हुए भी अज्ञानी ही हैं परमार्थको नहीं जानते ॥१५४॥

आगे ऐसे जीवोंको परमार्थस्वरूप मोक्षका कारण दिखलाते हैं,—**[जीवादिश्रद्धानं]**

वेन ज्ञानस्य भवनं । जीवादिज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं ज्ञानं । रागादिपरिहरणस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं चारित्रं । ततो ज्ञानमेव परमार्थमोक्षहेतुः ॥ १५५ ॥

अथ परमार्थमोक्षहेतोरन्यत् कर्म प्रतिषेधयति;—

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति ।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥ १५६ ॥

दीसद्दहणमित्यादिसूत्रद्वयं । तदनंतरं मोक्षहेतुभूतो योऽसौ सम्यक्त्वादिजीवगुणस्तत्प्रच्छादनमुख्यत्वेन **वत्थस्स सेदभावो** इत्यादि गाथात्रयं । ततः परं पापं पुण्यं च बंधकारणमेवेतिमुख्यतया **सो सव्वणाण** इत्यादि सूत्रमेकं । ततश्च मोक्षहेतुभूतो योसौ जीवो गुणी तत्प्रच्छादनमुख्यतया **सम्मत्त** इत्यादि गाथात्रयमिति समुदायेन सूत्रनवकपर्यंतं तृतीयस्थले व्याख्यान करोति । तद्यथा । अथ तेषामज्ञानिनां निश्चयमोक्षहेतु दर्शयति;—**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं** जीवादिनवपदार्थाना विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं **तेसिमधिगमो णाणं** तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानं **रागादीपरिहरणं चरणं** तेषामेव संवधित्वेन रागादिपरिहारश्चारित्रं **एसो दु मोक्खपहो** इत्येव व्यवहारमोक्षमार्गः । अथवा तेषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थाना शुद्धात्मनः सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यगवलोकनं निश्चयसम्यक्त्वं । तेषामेव सम्यक्परिच्छित्तिरूपेण शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयः सम्यग्ज्ञानं । तेपामेव शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयं कृत्वा रागादिविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्मन्यवस्थानं निश्चयचारित्रमिति निश्चयमोक्षमार्गः ॥ १५५ ॥ अथ नि-

---

जीवादिक पदार्थोंका श्रद्धान तो **[सम्यक्त्वं]** सम्यक्त्व है और **[तेषां अधिगमः]** उन जीवादि पदार्थोंका **[अधिगमः]** अधिगम वह **[ज्ञानं]** ज्ञान है तथा **[रागादिपरिहरणं]** रागादिकका त्याग **[चरणं]** वह चारित्र है **[एष तु]** यही **[मोक्षपथः]** मोक्षका मार्ग है ॥ **टीका**—मोक्षके कारण प्रगटपनेसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है । जो जीवादिपदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान उस स्वभावसे ज्ञानका परिणमना वह तो सम्यग्दर्शन है और उसीतरह जीवादिपदार्थोंका ज्ञान उस स्वभावकर ज्ञानका होना वह सम्यग्ज्ञान है तथा जो रागादिका त्यागना उस स्वभावकर ज्ञानका होना वह सम्यक् चारित्र है । इस तरह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनों ही ज्ञानके परिणमनमें आजाते हैं । इसकारण ज्ञान ही परमार्थरूप मोक्षका कारण सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ**—आत्माका असाधारण स्वरूप ज्ञान ही है और इस प्रकरणमें ज्ञानको ही प्रधानकर व्याख्यान है । इसलिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनों ज्ञानके ही परिणमन हैं । इसतरह कहके ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है । ज्ञान है वह अभेदविवक्षामें आत्मा ही है ऐसा कहनेमें कुछ विरोध नहीं है ॥ १५५ ॥

आगे परमार्थरूप मोक्षके करणसे अन्य जो कर्म उसका निषेध करते हैं;—**[विद्वांसः]**

मुक्त्वा निश्चयार्थं व्यवहारेण विद्वांसः प्रवर्तंते ।
परमार्थमाश्रितानां तु यतीनां कर्मक्षयो विहितः ॥ १५६ ॥

यः खलु परमार्थमोक्षहेतोरतिरिक्तो व्रततपःप्रभृतिशुभकर्मा केषांचिन्मोक्षहेतुः स सर्वोऽपि प्रतिषिद्धस्तस्य द्रव्यान्तरस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्याभवनात् । परमार्थमोक्षहेतोरेवैकद्रव्यस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्य भवनात् । "वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा । एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥ १०७ ॥ वृत्तं कर्मस्वभा-

---

श्चयमोक्षमार्गहेतोः शुद्धात्मस्वरूपात् यदन्यच्छुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपं कर्म तन्मोक्षमार्गो न भवति इति प्रतिपादयति;—**मोत्तूण णिच्छयट्टं ववहारे** निश्चयार्थं मुक्त्वा व्यवहारविषये **ण विदुसा पवट्टंति** विद्वासो ज्ञानिनो न प्रवर्तंते । कस्मात्? । **परमट्ठमासिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यपरिणतिलक्षण निज-

---

पंडित जन [**निश्चयार्थं**] निश्चयनयके विषयको [**मुक्त्वा**] छोड़ [**व्यवहारेण**] व्यवहारकर [**प्रवर्तंते**] प्रवर्तते हैं [**तु**] परंतु [**परमार्थं**] परमार्थभूत आत्मस्वरूपको [**आश्रितानां**] आश्रित [**यतीनां**] यतीश्वरोंके ही [**कर्मक्षयः**] कर्मका नाश [**विहितः**] कहा गया है। व्यवहारमें प्रवर्तनेवालेका कर्मक्षय नहीं होता ॥ **टीका**— कितनों ही के तो ऐसा मोक्षका कारण माना है कि परमार्थभूत मोक्षके कारणसे रहित और व्रत तप आदिक शुभ कर्म स्वरूपसे ही मोक्ष है। ऐसा मोक्षका हेतु मानना सभी निषेध किया गया है क्योंकि ऐसे मोक्षके कारणके अन्यद्रव्यका स्वभावपना है उस स्वभावकर ज्ञानके परिणमनका न होना है । ज्ञानका परिणमन परमार्थसे शुभ अशुभरूप नहीं है परमार्थभूत जो मोक्षका कारण उसीके एक द्रव्यका स्वभावपना है उस स्वभावकरके ही ज्ञानके परिणमनका होना है ॥ **भावार्थ**—मोक्ष आत्माके होती है उसका कारण भी आत्माका स्वभाव ही होना चाहिये । जो अन्य द्रव्यका स्वभाव हो उसकर आत्माके मोक्ष कैसे हो ? यह निश्चयनयका मत है । इसलिये शुभकर्म पुद्गलद्रव्यका स्वभाव है वह आत्माके मोक्षका कारण नहीं है । ज्ञान आत्माका स्वभाव है वही आत्माके परमार्थभूत मोक्षका कारण है ॥ अब इसी अर्थके कलशरूप दो श्लोक कहते हैं—**वृत्तं** इत्यादि । **अर्थ**— जो ज्ञानस्वभावकर वर्तना ज्ञानका होना वही मोक्षका कारण है क्योंकि ज्ञानके ही एक आत्मद्रव्यका स्वभावपना है और जो कर्मस्वभावकर वर्तना है वह ज्ञानका होना नहीं है वह कर्मका वर्तना मोक्षका कारण नहीं है क्योंकि कर्मके अन्य द्रव्यका स्वभावपना है ॥ **भावार्थ**—मोक्ष आत्माके होती है इसलिये आत्माका स्वभाव ही मोक्षका कारण होसकता है और ज्ञान आत्माका स्वभाव है वही मोक्षका कारण है । तथा कर्म अन्य (पुद्गल) द्रव्यका स्वभाव है इसलिये आत्माके मोक्षका कारण नहीं होता यह निश्चय है ॥ आगे अगले कथनकी सूचनाका श्लोक कहते हैं—कर्म है वह मोक्षके कारणोंका

वेन ज्ञानस्य भवनं न हि । द्रव्यांतरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥ १०८ ॥ मोक्षहेतु-तिरोधानाद्बंधत्वात्स्वयमेव च । मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥१०९॥" १५६॥

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधानकरणं साधयति;—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं ॥ १५७ ॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो ।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णायव्वं ॥ १५८ ॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो ।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥ १५९ ॥

वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः ।
मिथ्यात्वमलावच्छन्नं तथा सम्यक्त्वं खलु ज्ञातव्यं ॥ १५७ ॥
वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः ।
अज्ञानमलावच्छन्नं तथा ज्ञानं भवति ज्ञातव्यं ॥ १५८ ॥
वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः ।
कषायमलावच्छन्नं तथा चारित्रमपि ज्ञातव्यं ॥ १५९ ॥

ज्ञानस्य सम्यक्त्वं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेन मिथ्यात्वनाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात् तिरोधीयते परभावभूतमलावच्छिन्नश्वेतस्वभाववत् । ज्ञानस्य ज्ञानं मोक्षहेतुः स्व-

---

शुद्धात्मभावनारूप परमार्थमाश्रिताना तु यतीनां कर्मक्षयो भवतीति यतः कारणादिति । एवं मोक्षमार्गकथनरूपेण गाथाद्वय गत ॥ १५६ ॥ वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना संबधस्तेनाच्छन्नः । तथैव मिथ्यात्वमलेनोच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य सम्यक्त्वगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यं । वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण

आच्छादन करनेवाला है और आप स्वयमेव बंधस्वरूप है तथा मोक्षके कारणका आच्छादकपना इसके है ऐसें तीन हेतुओंसे कर्मका निषेध किया गया है यही अर्थ आगे गाथाओंकर साधते हैं ॥ १५६ ॥

वहां प्रथम ही कर्मके, मोक्षका कारण जो दर्शन ज्ञान चारित्र उनका आच्छादनपना उसको साधते हैं,—[**यथा**] जैसे [**वस्त्रस्य**] वस्त्रका [**श्वेतभावः**] सफेदपना [**मलमेलनासक्तः**] मलके मिलनेकर लिप्त हुआ [**नश्यति**] नष्ट हो जाता है तिरोभूत होता है [**तथा**] उसी तरह [**मिथ्यात्वमलावच्छन्नं**] मिथ्यात्वमलसे व्याप्त हुआ [**सम्यक्त्वं**] आत्माका सम्यक्त्वगुण [**खलु**] निश्चयकर [**ज्ञातव्यं**] आच्छादित होरहा है ऐसा जानना चाहिये ॥ [**यथा**] जैसे [**वस्त्रस्य श्वेतभावः**] वस्त्रका सफेदपन

भावः, परभावेनाज्ञाननाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात्तिरोधीयते परभावभूतमलावच्छन्नश्वेतवस्त्रस्वभावभूतश्वेतस्वभाववत् । ज्ञानस्य चारित्रं मोक्षहेतुः स्वभावः, परभावेन कषायनाम्ना कर्ममलेनावच्छन्नत्वात्तिरोधीयते परभावभूतमलावच्छिन्नश्वेतवस्त्रस्वभावभूतश्वेतस्वभाववत् । अतो मोक्षहेतुतिरोधानकरणात् कर्म प्रतिषिद्धं ॥ १५७ । १५८ । १५९ ॥

मेलना संबंधस्तेनच्छन्नः । तथैवाज्ञानमलेनोच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य ज्ञानगुणो नश्यतीति ज्ञातव्य । वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना सबंधस्तेन च्छन्नः । तथा कषायकर्ममलेनोच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य चारित्रगुणो नश्यतीति ज्ञातव्य । इति मोक्षहेतुभूतानां सम्यक्त्वादिगुणाना मिथ्यात्वाज्ञानकषायप्रतिपक्षैः प्रच्छादनकथनरूपेण गाथात्रयं गतं ॥ १५७ । १५८ । १५९ ॥ अथ कर्म स्वयमेव बंधहेतुः कथं मोक्षकारणं भव-

---

[**मलमेलनासक्तः**] मलके मेलसे लिप्त हुआ [**नश्यति**] नष्ट हो जाता है [**तथा**] उसी तरह [**अज्ञानमलावच्छन्नं**] अज्ञानमलकर व्याप्त हुआ [**ज्ञानं**] आत्माका ज्ञानभाव [**ज्ञातव्यं भवति**] आच्छादित होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ तथा [**यथा**] जैसे [**वस्त्रस्य श्वेतभावः**] कपड़ेका सफेदपन [**मलमेलनासक्तः**] मलके मिलनेसे व्याप्त हुआ [**नश्यति**] नष्ट हो जाता है [**तथा**] उसी तरह [**कषायमलावच्छन्नं**] कषायमलकर व्याप्त हुआ [**चारित्रं अपि**] आत्माका चारित्र भाव भी [**ज्ञातव्यं**] आच्छादित हो जाता है ऐसा जानना चाहिये ॥ **टीका**—ज्ञानमें सम्यक्त्व है वह मोक्षका कारणरूप स्वभाव है । यह सम्यक्त्व, परभावस्वरूप मिथ्यात्वकर्ममैलकर व्याप्तपनेसे आच्छादित हो जाता है । जैसे परभावभूत मैल (रंग) कर सहित हुआ सफेद वस्त्र उसका स्वभावभूत सफेद स्वभाव आच्छादित हो जाता है उसी तरह । ज्ञानका ज्ञान है वह मोक्षका कारणरूप स्वभाव है वह परभावरूप अज्ञाननामा कर्मरूपी मलकर व्याप्तपनेसे आच्छादित किया जाता है जैसे परभावरूप मैल (रंग) कर व्याप्त हुआ श्वेतवस्त्रका स्वभावभूत सफेदपन आच्छादित होता है उसी तरह ॥ और ज्ञानके चारित्र है वह भी मोक्षका कारणरूप स्वभाव है वह परभावस्वरूप कषायनामा कर्मरूपी मैल कर व्याप्तपनेसे आच्छादित किया जाया है जैसे परभावरूपमैल (रंग) कर व्याप्त हुआ सफेद कपड़ेका स्वभावभूत सफेदपन आच्छादित किया जाता है उसी तरह ॥ इसलिये मोक्षके कारण जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं उनका आच्छादन करनेसे कर्मका निषेध किया गया है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप ज्ञानके परिणमनस्वरूप मोक्षमार्गके प्रतिबंधक (रोकनेवाले) मिथ्यात्व अज्ञान कषायरूपी कर्म हैं । ये कर्म उस मोक्षके कारणभावोंको आच्छादित करते हैं इसलिये कर्मका निषेध है ॥ १५७।१५८।१५९ ॥

अथ कर्मणः स्वयं बंधत्वं साधयति;—

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणवच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥ १६० ॥

स सर्वज्ञानदर्शी कर्मरजसा निजेनावच्छन्नः ।
संसारसमापन्नो न विजानाति सर्वतः सर्वं ॥ १६० ॥

यतः यमेव ज्ञानतया विश्वसामान्यविशेषज्ञानशीलमपि ज्ञानमनादिस्वपुरुषापराधप्रवर्तमानकर्ममलावच्छन्नत्वादेव बंधावस्थायां सर्वतः सर्वमप्यात्मानमविजानदज्ञानभावेनैवेदमेवमवतिष्ठते । ततो नियतं स्वयमेव कर्मैव बंधः । अतः स्वयं बंधत्वात्कर्म प्रतिषिद्धं ॥ १६० ॥

तीति कथयति;—**सो सव्वणाणदरिसी कम्मरयेण णियेण उच्छण्णो**—स शुद्धात्मा निश्चयेन समस्तपरिपूर्णज्ञानदर्शनस्वभावोऽपि निजकर्मरजसोच्छन्नो झंपितःसन् । **संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं** । संसारसमापन्नः, संसारे पतितः सन् नैव जानाति सर्वं वस्तु, सर्वतः सर्वप्रकारेण । ततो ज्ञायते कर्म कर्तृ जीवस्य स्वयमेव बंधरूपं कथं मोक्षकारणं भवतीति । एवं पापवत्पुण्यं बंधकारणमेवेति कथनरूपेण गाथा गता

आगे कर्मका स्वयमेव बंधपना सिद्ध करते हैं,—**[सः]** वह आत्मा स्वभावसे **[सर्वज्ञानदर्शी]** सबका जाननेवाला और देखनेवाला है तौभी **[निजेन कर्मरजसा]** अपने कर्मरूपीरजसे **[अवच्छन्नः]** आच्छादित (व्याप्त) हुआ **[संसारसमापन्नः]** संसारको प्राप्त होता हुआ **[सर्वतः]** सब तरहसे **[सर्वं]** सब वस्तुको **[न विजानाति]** नहीं जानता ॥ **टीका**—जिस कारण यह ज्ञानरूप आत्मा आप स्वयमेव ज्ञानपनेकर सब पदार्थोंको सामान्यविशेषतासे जाननेके स्वभाववाला है तौभी अनादि कालसे अपने पुरुषार्थकर किये हुए अपराधसे प्रवर्तित जो कर्मरूपमल उससे आच्छादित (व्याप्त-मलिन) है । उस मलिन भावसे बंधावस्थामें सब प्रकारके सब ज्ञेयाकाररूप अपने स्वरूपको नहीं जानता हुआ अज्ञानभावसे ही यह आप तिष्ठता है । इस कारण यह निश्चय हुआ कि कर्म आप ही बंधस्वरूप है । इसीलिये आप ही बंधपनेरूप जानके प्रतिषेधा गया है ॥ **भावार्थ**—यहा ज्ञानशब्दकर आत्माका ही ग्रहण किया गया है । सो यह ज्ञान स्वभावकर तो सबका देखने और जाननेवाला है परंतु अनादिसे आप अपराधी है इसलिये बांधे हुए कर्मोंसे आच्छादित है अतः अपने संपूर्णरूपको नहीं जानता हुआ अज्ञानरूप हुआ आप स्थित है उसके कर्म अपने आप ही बंधते है कर्मोंको आप लेकर नहीं बांधता आप तो अपने अज्ञानभावोंरूप परिणमता है तब कर्म स्वयमेव (आप ही) बंधरूप हो जाते हैं इसीलिए कर्मका प्रतिषेध है ॥ १६० ॥

अथ कर्मणो मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वं दर्शयति;—

सम्मत्तपडिणिवद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो ॥ १६१ ॥
णाणस्स पडिणिवद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्वो ॥ १६२ ॥
चारित्तपडिणिवद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो ॥ १६३ ॥

सम्यक्त्वप्रतिनिवद्धं मिथ्यात्व जिनवरैः परिकथितं।
तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ १६१ ॥
ज्ञानस्य प्रतिनिवद्धं अज्ञानं जिनवरैः परिकथितं।
तस्योदयेन जीवोऽज्ञानी भवति ज्ञातव्यः ॥ १६२ ॥
चारित्रप्रतिनिवद्धः कषायो जिनवरैः परिकथितः।
तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवति ज्ञातव्यः ॥ १६३ ॥

सम्यक्त्वस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिवंधकं किल मिथ्यात्वं, तत्तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्य मिथ्यादृष्टित्वं। ज्ञानस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिवंधकमज्ञानं, तत्तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्याज्ञानत्वं। चारित्रस्य मोक्षहेतोः स्वभावस्य प्रतिबंधकः किल कषायः, स तु स्वयं कर्मैव तदुदयादेव ज्ञानस्याचारित्रत्वं। अतः स्वयं मोक्षहेतुतिरोधायि-

---

॥ १६० ॥ अथ पूर्वं मोक्षहेतुभूताना सम्यक्त्वादिजीवगुणाना मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रच्छादनं भवतीति कथित इदानी तद्गुणाधारभूतो गुणी जीवो मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रच्छाद्यते इति प्रकटीकरोति,—सम्यक्त्वप्रतिनिवद्ध प्रतिकूलं मिथ्यात्व भवतीति जिनवरैः परिकथितं तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ज्ञातव्यः। ज्ञानस्य प्रतिनिवद्धं प्रतिकूलमज्ञान भवतीति जिनवरैः परिकथित तस्योदयेन जीवश्चाज्ञानी भवतीति ज्ञातव्यः। चारित्रस्य प्रतिनिबद्धः प्रतिकूल. क्रोधा-

---

आगे कर्मके, मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रोंका तिरोधायीभावपना दिखलाते हैं, इनको प्रगट न होने देना ही तिरोधायीभावपना है,—[**सम्यक्त्वप्रतिनिबद्धं**] सम्यक्त्वका रोकनेवाला [**मिथ्यात्वं**] मिथ्यात्वकर्म है ऐसा [**जिनवरैः**] जिनवरदेवने [**परिकथितं**] कहा है [**तस्योदयेन**] उस मिथ्यात्वके उदयसे [**जीवः**] यह जीव [**मिथ्यादृष्टिः**] मिथ्यादृष्टि हो जाता है [**इति ज्ञातव्यः**] ऐसा जानना चाहिये। [**ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं**] ज्ञानकारो कनेवाला [**अज्ञानं**] अज्ञान है ऐसा [**जिनवरैः परिकथितं**] जिनवरने कहा है [**तस्योदयेन**] उसके उदयसे [**जीवः**] यह जीव [**अज्ञानी**] अज्ञानी [**भवति**] होता है [**ज्ञातव्यः**] ऐसा जानना चाहिये। [**चारित्रप्रतिनिबद्धः**] चारित्रका प्रतिबंधक [**कषायः**]

भावत्वात्कर्म प्रतिषिद्धं । "संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा । सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥ १ ॥ यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः । किंत्वत्रापि समुल्लसत्य-

---

दिकषायो भवतीति जिनवरैः परिकथितः तस्योदयेन जीवोऽचरित्रो भवतीति ज्ञातव्यः । एवं मोक्षहेतुभूतो योऽसौ जीवो गुणी तत्प्रच्छादनकथनमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । इति सम्यक्त्वा-

---

कषाय है ऐसा [**जिनवरैः**] जिनेंद्रदेवने [**परिकथितः**] कहा है [**तस्य उदयेन**] उसके उदयसे [**जीवः**] यह जीव [**अचारित्रः**] अचारित्री [**भवति**] हो जाता है [**ज्ञातव्यः**] ऐसा जानना चाहिये ॥ **टीका**—सम्यक्त्वको मोक्षका कारणस्वभाव है उसका रोकनेवाला मिथ्यात्व है सो आप (स्वयं) कर्म ही है उसके उदयसे ही ज्ञानको मिथ्यादृष्टिपना है, ज्ञानको भी मोक्षका कारणस्वभाव है उसके रोकनेवाला प्रगट अज्ञान है सो आप (स्वयं) कर्म ही है उसके उदयसे ज्ञानको अज्ञानीपना है, और चारित्रको भी मोक्षका कारणस्वभाव है उसका प्रतिबंधक प्रगट कषाय है सो आप (स्वयं) कर्म ही है उसके उदयसे ही ज्ञानके अचारित्रपना है। जिसकारण कर्मके, स्वयमेव मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उनका तिरोधायीपना है इसीकारण कर्मका प्रतिषेध किया गया है। **भावार्थ**—ज्ञानके मोक्षका कारणपनास्वभाव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं। इन तीनोंके प्रतिपक्षीकर्म मिथ्यात्व अज्ञान कषाय ये तीन हैं इसलिये उन तीनोंको प्रगट नहीं होने देते। इसकारण कर्मको मोक्षके कारणोंका तिरोधायीभावपना है इसीलिये कर्मका प्रतिषेध है। अशुभ कर्मके मोक्षका कारणपना तो क्या है बाधकपना ही प्रसिद्ध है परंतु शुभकर्म भी बंधरूप ही है। इसकारण यह भी कर्म सामान्यमें प्रतिषेधरूप ही जानना ॥ आगे इसी अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**संन्यस्त** इत्यादि। **अर्थ**—मोक्षके चाहनेवालोंको यह समस्तकर्म ही त्यागने योग्य है इसतरह इस समस्त ही कर्मको छोड़नेसे पुण्यपापकी तो क्या बात है कर्मसामान्यमें दोनों ही आजाते हैं। इसतरह समस्त कर्मोंका त्याग होनेपर ज्ञान है वह सम्यक्त्व आदिक अपने स्वभावरूप होनेसे मोक्षका कारण हुआ कर्मरहित अवस्थासे जिसका रस प्रतिबद्ध (उद्धत) है ऐसा अपनेआप दौड़ आता है ॥ **भावार्थ**—कर्मको दूर करके ज्ञान, अपनेआप अपने मोक्षके कारणस्वभावरूप हुआ प्रगट होता है फिर उसे कौन रोकसकता है ? कोई नहीं ॥ आगे आशंका उत्पन्न होती है कि अविरत सम्यग्दृष्टि आदिके जबतक कर्मका उदय रहता है तबतक ज्ञान मोक्षका कारण कैसे हो सकता है ? तथा कर्म और ज्ञान दोनोंसाथ किस तरह रहते हैं ? उसके समाधानका काव्य कहते हैं—**यावत्** इत्यादि। **अर्थ**—जब तक कर्मका उदय है और ज्ञानकी सम्यक् कर्मवि

वशतो यत्कर्म बंधाय तन्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥ २ ॥ मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानंति ये मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छंदमंदाधमाः । विश्वस्योपरि ते तरंति सततं ज्ञानं भवंतः स्वयं ये कुर्वंति न कर्म जातु न वशं यांति प्र-

---

दिजीवगुणा मुक्तिकारणं तद्गुणपरिणतो वा जीवो मुक्तिकारणं भवति तस्माच्छुद्धजीवाद्भिन्न शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूप, तद्व्यापारेणोपार्जित वा शुभाशुभकर्म मोक्षकारणं न भव-

---

रति नहीं है तबतक कर्म और ज्ञान दोनोंका इकट्ठापन भी कहा गया है तबतक इसमें कुछ हानि भी नहीं। यहांपर यह विशेपता है कि इस आत्मामें कर्मके उदयकी जबरद्स्तीसे आत्माके वशके विना कर्म उदय होता है वह तो बंधके ही लिये है और मोक्षके लिये तो एक परमज्ञान ही है। वह ज्ञान, कर्मसे आप ही रहित है, कर्मके करनेमे अपने स्वामीपनेरूप कर्तापनेका भाव नहीं है ॥ **भावार्थ**—जबतक कर्मका उदय है तबतक कर्म तो अपना कार्य करता ही है और वहींपर ज्ञान है वह भी अपना कार्य करता है। एक ही आत्मामें ज्ञान और कर्म दोनोंके इकट्ठे रहनेमे भी विरोध नहीं आता। जैसे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञानका परस्पर विरोध है उसतरह कर्मसामान्यके और ज्ञानके विरोध नहीं है ॥ आगे कर्म और ज्ञानका नयविभाग दिखलाते है—**मग्नाः** इत्यादि। **अर्थ**—जो कोई कर्मनयके अवलंबनमे तत्पर हैं उसके पक्षपाती हैं वे भी डूब जाते हैं। जो ज्ञानको तो जानते नहीं और ज्ञाननयके पक्षपाती (इच्छुक) है वे भी डूबते हैं। जो क्रियाकांडको छोड़ स्वच्छंद हो प्रमादी हुए स्वरूपमें मंद उद्यमी है वे भी डूबते हैं। और जो आप निरंतर (हमेशा) ज्ञानरूप हुए कर्मको तो करते नहीं तथा प्रमादके वश भी नहीं होते स्वरूपमे उत्साहवान है वे सबलोकके ऊपर तैरते है ॥ **भावार्थ**—यहां सर्वथा एकांत अभिप्रायका निषेध किया गया है क्योंकि सर्वथा एकांतका अभिप्राय होना ही मिथ्यादृष्टि है। वहां जो परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माको तो जानता नहीं है और व्यवहार दर्शन ज्ञान चारित्ररूप क्रियाकांडके आडंबरको ही मोक्षका कारण जान उसमे ही तत्पर रहता है उसीका पक्षपात करता है यह कर्मनय है। इसके पक्षपाती, ज्ञानको तो जानते नहीं है और इस कर्मनयमें ही खेदखिन्न हैं वे संसारसमुद्रमे डूबते हैं। और जो परमार्थभूत आत्मस्वरूपको यथार्थ तो जानते नहीं हैं तथा मिथ्यादृष्टि सर्वथा एकातियोंके उपदेशसे अथवा स्वयमेव कुछ अंतरंगमे ज्ञानका स्वरूप मिथ्या कल्पना करके उसमे पक्षपात करते हैं और व्यवहार दर्शन ज्ञान चारित्रके क्रियाकांडको निरर्थक जान छोड़देते है ज्ञाननयके पक्षपाती भी हैं वे भी संसारसमुद्रमें डूबते हैं, क्योंकि बाह्यक्रियाकांडको छोड स्वेच्छाचारी रहते हैं स्वरूपमे मंदउद्यमी रहते हैं। इसलिये जो पक्षपातका अभिप्राय छोड़ निरंतर ज्ञानरूप हुए कर्मकांडको छोडते है और निरंतर ज्ञानस्वरूपमें "जबतक न थंभा जाय तबतक" अशुभकर्मको छोड़ स्वरूपके साधनरूप शुभ-

मादस्य च ॥ ३ ॥ "भेदोन्मादभ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन । हेलोन्मीलत्परमकलया सार्धमारब्धकेलि ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्ज-

---

तीति मत्वा हेयं त्याज्यमिति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथानवकं गतं ॥ १६१ । १६२ । १६३ ॥ द्वितीयपातनिकाभिप्रायेण पापाधिकारव्याख्यानमुख्यत्वेन गतं । अत्राह शिष्यः । **जीवादीसद्दहण**मित्यादि व्यवहाररत्नत्रयव्याख्यानं कृतं तिष्ठति कथं पापाधिकार इति । तत्र परिहारः—यद्यपि व्यवहारमोक्षमार्गो निश्चयरत्नत्रयस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वादुपादेयः परंपरया जीवस्य पवित्रताकरणात् पवित्रस्तथापि बहिर्द्रव्यालंबनत्वेन पराधीनत्वात्पतति नश्यतीत्येकं कारण । निर्विकल्पसमाधिरतानां व्यवहारविकल्पालंबनेन स्वरूपात्पतितं भवतीति द्वितीयं कारणं । इति निश्चयनयापेक्षया पापं । अथवा सम्यक्त्वादिविपक्षभूतानां मिथ्यात्वादीना व्याख्यानं

कर्मकांडमे प्रवर्तते हैं वे कर्मका नाशकर संसारसे निवृत्त होते हैं, वे ही सब लोकोंके ऊपर रहते है ऐसा जानना ॥ आगे इस पुण्यपापाधिकारको संपूर्णकर ज्ञानकी महिमा करते हैं—**भेदोन्मादं** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानज्योति अतिशयकर उदयको प्राप्त हुई सबजगह फैलती है । कैसी ज्योति है ? कि जो लीलामात्रकर उघड़ी अपनी परमकला केवलज्ञानके साथ जिसने क्रीड़ा आरंभ की है । यहां ऐसा अभिप्राय समझना कि जबतक सम्यग्दृष्टि छद्मस्थ है तबतक तो उसकी जो ज्ञानपरमकला केवलज्ञान उसके साथ शुद्धनयके बलसे परोक्षक्रीडा करता है और जब केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब साक्षात् है । फिर कैसी ज्योति है ? कि जिसने अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करदिया है ऐसी ज्ञान ज्योति क्या करके प्रगट हुई ? पूर्वोक्त शुभ अशुभरूप समस्तकर्मोंको अपने बल (शक्ति) कर मूलसे उखाड़करके । कैसा है यह कर्म ? कि जिसने मोह पीलिया है इसीलिये भ्रमके रसके भारसे शुभ अशुभके भेदरूप उन्मादको नचाता हुआ है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानज्योति, अपने प्रतिबंधककर्म जोकि भेदरूप होके नृत्य करताथा ज्ञानको भुलादेताथा उस कर्मको अपनी शक्तिसे बिगाड़ आप अपने संपूर्ण रूप सहित प्रकाशरूप हुई । यहां अभिप्राय ऐसा जानना कि कर्म सामान्यपनेसे एक ही है तौभी शुभअशुभ दो भेदरूप स्वांगकर रंगभूमिमे उसने प्रवेश किया था उसे ज्ञानने यथार्थ एक जानलिया तब कर्म रंगभूमिसे निकल गया । उसके बाद ज्ञान अपनी शक्तिकर यथार्थप्रकाशरूप हुआ ऐसा जानना ॥ इसतरह कर्म नृत्यके अखाड़ेमें पुण्यपापरूपकर दो नृत्यकारिणी बनकर नाचता था उसे ज्ञानने यथार्थ जान लिया कि कर्म एक ही है, तब एकरूपकर निकलगया नृत्य करते रहगया ॥ **सवैया**—"आश्रयकारणरूप सवादसुं भेद विचारि गिने दोऊ न्यारे, पुण्यरु पाप शुभाशुभभावनि बंधभये सुखदुःखकरा रे । ज्ञान भये दोऊ एक लखै बुध आश्रय आदि समान विचारे, बंधके कारण है दोऊरूप इन्हे तजि जिन-

जृम्भे भरेण ॥ ४ ॥" १६१ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ इति पुण्यपापरूपेण द्विपात्रीभूतमेकपात्रीभूय कर्म निष्क्रांतम् ॥

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ पुण्यपापप्ररूपकः तृतीयोऽकः ॥ ३ ॥

अथ आस्रवाधिकारः ॥ ४ ॥

अथ प्रविशत्यास्रवः । "अथ महामदनिर्भरमथरं समररंगपरागतमास्रवं । अयमुदारगभीरमहोदयो जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥ १२० ॥

तत्रास्रवस्वरूपमभिदधाति;—

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥ १६४ ॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिंपि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥ १६५ ॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगौ च संज्ञासंज्ञास्तु ।
बहुविधभेदा जीवे तस्यैवानन्यपरिणामाः ॥ १६४ ॥
ज्ञानावरणाद्यस्य ते तु कर्मणः कारणं भवंति ।
तेषामपि भवति जीवः च रागद्वेषादिभावकरः ॥ १६५ ॥

कृतमिति वा पापाधिकारः । तत्रैव सति व्यवहारनयेन पुण्यपापरूपेण द्विभेदमपि कर्म निश्चयेन शृंगाररहितपात्रवत्पुद्गलरूपेणैकीभूय निष्क्रांतं ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया **तात्पर्यवृत्तौ** स्थलत्रयसमुदायेनैकोनविंशतिगाथाभिश्चतुर्थः पुण्यपापाधिकारः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ प्रविशत्यास्रवः । यत्र सम्यग्भेदभावनापरिणतः कारणसमयसाररूपः संवरो नास्ति तत्रास्रवो भवतीति संवरविपक्षद्वारेण सप्तदशगाथापर्यंतमास्रवव्याख्यानं करोति । तत्र

मुनि मोक्षपधारे ॥१॥ १६१।१६२।१६३॥ यहांतक १६३ गाथा हुई ११२ कलशा हुए ॥

इति श्री **पंडित जयचंद्र** कृत समयसारग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी भाषावचनिकामें तीसरा **पुण्यपाप** नामा अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

अब आस्रवका अधिकार है । **दोहा**—"द्रव्यास्रवतैं भिन्न है, भावास्रव करि नास । भये सिद्ध परमातमा, नमूं तिनहिं सुख आस ॥" अब यहां आस्रव प्रवेश करता है ।

रागद्वेषमोहा आस्रवाः इह हि जीवे स्वपरिणामनिमित्ताः, अजडत्वे सति चिदाभासाः, मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः पुद्गलपरिणामाः, ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मास्रवणनिमि-

---

प्रथमतस्तावत्. वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहरूपा आस्रवा न संतीति संक्षेपेण व्याख्यानरूपेण **'मिच्छत्तं अविरमणं'** इत्यादि गाथात्रयं । तदनंतरं रागद्वेषमोहास्रवाणां पुनरपि विशेषविवरणमुख्यत्वेन **'भावो रागादिजुदो'** इत्यादि स्वतंत्रगाथात्रयं । ततः परं केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपकार्यसमयसारकारणभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतस्य ज्ञानिजीवस्य रागादिभावप्रत्ययनिषेधमुख्यत्वेन **चउविह** इत्यादि गाथात्रयं । अतःपरं तस्यैव ज्ञानिनो जीवस्य मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययास्तित्वेऽपि वीतरागचारित्रभावनाबलेन रागादिभावप्रत्ययनिषेधमुख्यतया **सव्वे पुव्वणिबद्धा** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं । तदनतरं नवतरद्रव्यकर्मास्रवस्योदयागतद्रव्यप्रत्ययानां जीवगतरागादिभावप्रत्यया कारणमिति कारणव्याख्यानमुख्यत्वेन **रागो दोसो** इत्यादिसूत्रचतुष्टयं कथयति, इति समुदायेन सप्तदशगाथाभिः पंचस्थलैः आस्रवाधिकारसमुदायपातनिका । अथ द्रव्यभावास्रवस्वरूपं कथयति;—**मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु** सण्णसण्णा इत्यत्र प्राकृतलक्षणबलात् अकारलोपो द्रष्टव्यः । मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः, कथभूताः, भावप्रत्ययद्रव्यप्रत्ययरूपेण संज्ञाऽसंज्ञाश्चेतनाचेतनाः । अथवा संज्ञाः, आहारभयमैथुनपरिग्रहरूपाः, असंज्ञाः ईषत्संज्ञाः, इहलोकाकांक्षा परलोकाकांक्षाकुधर्माकांक्षारूपास्तित्वः ।

जैसा नृत्यके अखाड़ेमें नाचनेवाला स्वांगकर प्रवेश करता है उसीतरह यहां आस्रवका स्वांग है । वहां इस स्वांगको यथार्थ जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान है उसकी महिमारूप मंगल करते हैं—**अथ** इत्यादि । **अर्थ**—'अथ' शब्द मंगल तथा प्रारंभ वाची है सो यहांसे आगे कहते हैं—जो किसीसे नहीं जीता जासके ऐसा यह अनुभव गोचर धनुषधारी ज्ञानरूपी सुभट आस्रवको जीतता है । कैसा है ज्ञानरूप सुभट? जो अमर्यादरूप फैलता और जिसकी थाह छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) नहीं पासकता ऐसा महान् उदयवाला है । कैसा आस्रव है कि महान् मदकर अतिशयसे भरा हुआ उन्मत्त है तथा संग्राम (लड़ाईकी) की भूमिमें आगया है ॥ **भावार्थ**—यहां नृत्यके अखाड़ेमें आस्रवने प्रवेश किया है । सो नृत्यमें अनेक रसोंका वर्णन होता है इसलिये रसवत् अलंकारकर शांतरसमें वीर रसको प्रधानकर वर्णन किया है कि ज्ञानरूप धनुषधारी आस्रवको जीतता है । वह आस्रव सब जगतको जीत मदोन्मत्त हुआ संग्रामकी रंगभूमिमें आकर खड़ा होगया तब ज्ञान इससे भी बलवान् सुभट है वह उसीसमय उस आस्रवको जीतलेता है अर्थात् अंतर्मुहूर्तमें कर्मका नाशकर केवल ज्ञान उत्पन्न करदेता है । ऐसी ज्ञानकी सामर्थ्य है ॥ आगे आस्रवका स्वरूप कहते हैं,—**[मिथ्यात्वं अविरमणं]** मिथ्यात्व अविरति **[कषाययोगौ च]** और कषाय योग **[संज्ञासंज्ञाः तु]** ये चार आस्रवके भेद चेतनाके और जड़-पुद्गलके विकार ऐसे दो दो भेद जुदे २ हैं ।

त्वात्किलास्रवाः । तेषां तु तदास्रवणनिमित्तत्वनिमित्तं, अज्ञानमया आत्मपरिणामा रागद्वेषमोहाः ? । तत आस्रवणनिमित्तत्वनिमित्तत्वात् रागद्वेषमोहा एवास्रवाः, ते चाज्ञानिन

कथंभूताः, एते **बहुविहभेदा जीवे ।** उत्तरप्रत्ययभेदेन बहुधा विविधाः, क ? जीवे, अधिकरणभूते । पुनरपि कथंभूताः । **तस्सेव अणण्णपरिणामा** अनन्यपरिणामाः, अभिन्नपरिणामाः तस्यैव जीवस्याशुद्धनिश्चयनयेनेति । **णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति** ते च पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्ययाः उदयागताः सतः निश्चयचारित्राविनाभूतवीतरागसम्यक्त्वाभावे सति शुद्धात्मस्वरूपच्युताना जीवाना ज्ञानावरणाद्यष्टविधस्य द्रव्यकर्मास्रवस्य कारणभूता भवति । **तेसिंपि होदि जीवो रागदोसादिभावकरो** तेषा च द्रव्यप्रत्ययानां जीवः कारण भवति । कथभूत. ? रागद्वेषादिभावकर रागद्वेषादिभावपरिणतः । अयमत्र भावार्थः—द्रव्यप्रत्ययोदये सति शुद्धात्मस्वरूपभावना त्यक्त्वा यदा रागादिभावेन परिणमति तदा बधो भवति नैवोदयमात्रेण । यदि उदयमात्रेण बंधो भवति ? तदा सर्वदा ससार एव । कस्मात् ? इति चेत् ससारिणा सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात् । तर्हि कर्मोदयो बधकारणं न भवति, ? इति चेत्

उनमेंसे चेतनके विकार हैं वे **[जीवे]** जीवमें **[बहुविधभेदाः]** बहुत भेद लिये हुए हैं वे **[तस्यैव अनन्यपरिणामाः]** उस जीवके ही अभेदरूप परिणाम हैं और जो मिथ्यात्व आदि पुद्गलके विकार हैं **[ते तु]** वे तो **[ज्ञानावरणाद्यस्य]** ज्ञानावरण आदि **[कर्मणः]** कर्मोंके बंधनेके **[कारणं]** कारण **[भवंति]** हैं **[च]** और **[तेषामपि]** उन मिथ्यात्व आदि भावोंको भी **[रागद्वेषादिभावकरः]** रागद्वेष आदि भावोंका करनेवाला **[जीवः]** जीव **[भवति]** कारण होता है॥ **टीका**—इस जीवमें राग द्वेष मोह ही आस्रव हैं । कैसे है वे ? कि जिनको अपना परिणाम निमित्त है इसीलिये जड़ भी नहीं हैं । ऐसा होनेपर वे चिदाभास हैं जिनमें चैतन्यका आभास है, क्योंकि मिथ्यात्व अविरति कषाय और योग पुद्गलके परिणाम हैं वे ज्ञानावरण आदि पुद्गलोंके आनेके निमित्त हैं उसपनेसे वे प्रगट आस्रव हैं । तथा उन मिथ्यात्वादिकोंको ज्ञानावरणादि कर्मोंके आगमनका निमित्तपना होनेके कारण आत्माके अज्ञानमय राग द्वेष मोह परिणाम हैं इसलिये मिथ्यात्व आदिके कर्मके आस्रवणके निमित्तपनेके निमित्तपनेसे राग द्वेष मोह ही आस्रव हैं वे अज्ञानीके ही होते हैं ऐसा तात्पर्यसे अर्थ निकलता है सूत्रमे नहीं कहा हुआ भी प्रकरणसे ऐसा अर्थ आसकता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानावरणादि कर्मोंके आनेका कारण तो मिथ्यात्वादि कर्मका उदयरूप पुद्गलके परिणाम हैं और उन कर्मोंके आनेका निमित्त जीवके राग द्वेष मोहरूप परिणाम है उनको चिद्विकार भी कहते हैं, वे जीवके अज्ञान अवस्थामें होते हैं। सम्यग्दृष्टीके अज्ञान अवस्था होती नहीं क्योंकि मिथ्यात्वसहित ज्ञानको अज्ञान कहते है । सम्यग्दृष्टि ज्ञानी होगया है इसलिये वे ज्ञान अवस्थामें नहीं हैं । तथा अ-

एव भवंतीति अर्थादेवापद्यते ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

अथ ज्ञानिनस्तदभावं दर्शयति;—

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ॥ १६६ ॥

नास्ति त्वास्रवबंधः सम्यग्दृष्टेरास्रवनिरोधः ।
संति पूर्वनिबद्धानि जानाति स तान्यबध्नन् ॥ १६६ ॥

यतो हि ज्ञानिनोऽज्ञानमयैर्भावैरज्ञानमया भावाः अवश्यमेव निरुध्यंते । ततोऽज्ञानमयानां भावानां रागद्वेषमोहानां आस्रवभूतानां निरोधात् ज्ञानिनो भवत्येव आस्रव-

---

तत्र निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टाना मोहसहितकर्मोदयो व्यवहारेण निमित्तं भवति । निश्चयेन पुनः अशुद्धोपादानकारणं स्वकीयरागाद्यज्ञानभाव एव ॥ १६४।१६५ ॥ अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनो जीवस्य रागद्वेषमोहरूपभावास्रवाणामभावं दर्शयति;—**णत्थि** इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यान क्रियते । **णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो** न भवतः, न विद्येते । कौ ? तौ आस्रवबंधौ । गाथाया पुनः समाहारद्वन्द्वसमासापेक्षया द्विवचनमप्येकवचनं कृतं । कस्यास्रवबंधौ न स्तः ? सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य । तर्हि किमस्ति ? आस्रवनिरोधलक्षणसवरोऽस्ति **सो** स सम्यग्दृष्टिः **संते** संति विद्यमानानि **ते** तानि **पुव्वणिबद्धे** पूर्वनिबद्धानि ज्ञानावरणादि कर्माणि । अथवा प्रत्ययापेक्षया पूर्वनिबद्धान् मिथ्यात्वादिप्रत्ययान् **जाणदि** जानाति वस्तुस्वरूपेण जानाति । किं कुर्वन् सन् ? **अबंधंतो** विशिष्टभेदज्ञानबलात्नवतराण्यभिनवान्यबध्नन्—अनुपार्जयन् इति । अयमत्र भावार्थः । सरागवीतरागभेदेन द्विधा

विरत सम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहके उदयसे जो रागादिक होते हैं उनका इसके स्वामीपना नहीं है उदयकी जबरदस्ती है उनको वह रोगके समान समझ मैंटना चाहता है इस अपेक्षा इनसे राग नहीं है इसलिये मिथ्यात्वसहित रागादिक जो होते हैं वे ही अज्ञानमय राग द्वेष मोह हैं वे सम्यग्दृष्टिके नहीं हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ १६४।१६५ ॥

आगे ज्ञानीके उन आस्रवोंका अभाव दिखलाते हैं;—**[सम्यग्दृष्टेः]** सम्यग्दृष्टिके **[आस्रवबंधः]** आस्रव बंध **[नास्ति]** नहीं है **[तु]** और **[आस्रवनिरोधः]** आस्रवका निरोध है **[पूर्वनिबद्धानि]** और जो पहलेके बांधे हुए **[संति]** सत्तामें मौजूद हैं **[तानि]** उनको **[अबध्नन्]** आगामी नहीं बांधता हुआ **[सः]** वह **[जानाति]** जानता ही है ॥ **टीका**—जिसकारण निश्चयसे ज्ञानीके अज्ञानमय भाव हैं वे अवश्य निरोधरूप (अभावरूप) होते हैं, ज्ञानमयभावोंसे अज्ञानमय भाव रुक जाते हैं और जिसकारण वे परस्पर विरोधी हैं विरोधियोंका एक जगह रहना होता नहीं है इसकारण राग द्वेष मोह भाव हैं वे अज्ञानमय हैं आस्रवस्वरूप हैं उनके निरोधसे ज्ञानीके आस्रवका निरोध होता ही है इसलिये ज्ञानी, आस्रवनिमित्तवाले ज्ञानावरण

निरोधः । अतो ज्ञानी नास्रवनिमित्तानि पुद्गलकर्माणि बध्नाति, नित्यमेवाकर्तृकत्वान्नवानि न बध्नन् सदवस्थानि पूर्वबद्धानि ज्ञानस्वभावत्वात्केवलमेव जानाति ॥ १६६ ॥

अथ रागद्वेषमोहानामास्रवत्वं नियमयति;—

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो ।
रायादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरिं ॥ १६७ ॥

भावो रागादियुतः जीवेन कृतस्तु बंधको भणितः ।
रागादिविप्रमुक्तोऽबंधको ज्ञायको नवरि ॥ १६७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्भवति । तत्र योऽसौ सरागसम्यग्दृष्टिः,

सोलसपणवीसणभं दसचउछक्केक्क बंधवोछिण्णा ।
दुगतीसचदुरपुव्वे पणसोलसजोगिणो इक्को ॥

इत्यादि बंधत्रिभंगकथितबधविच्छेदक्रमेण मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबधक । सप्ताधिकसप्ततिप्रकृतीनामल्पस्थित्यनुभागरूपाणा बंधकोऽपि सन् संसारस्थितिच्छेदको भवति । तेन कारणेनाबधक इति । तथैवाविरतिसम्यग्दृष्टेर्गुणस्थानादुपरि यथासंभव सरागसम्यक्त्वपर्यंतं, अधस्तनगुणस्थानापेक्षया तारतम्येनाबंधकः । उपरिमगुणस्थानापेक्षया पुनर्बंधकः । ततश्च वीतरागसम्यक्त्वे जाते साक्षादबंधको भवति, इति मत्वा वयं सम्यग्दृष्टयः सर्वथा बंधो नास्तीति वक्तव्यं । इति आस्रवविपक्षद्वारेण सवरस्य संक्षेपसूचनव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गत॥१६६॥ अथ रागद्वेषमोहरूपभावानामास्रवत्वं निश्चिनोति,—**भावो रागादिजुदो जीवेण कदो**

आदि पुद्गलकर्मोंको नहीं बांधता । जिसकारण सदा उन कर्मोंका अकर्ता है इसकारण उन कर्मोंको नवीन नहीं बाधता पहले बंधे हुए थे वे सत्तारूप अवस्थित हैं उनको केवल जानता ही है क्योंकि ज्ञानीका ज्ञान ही स्वभाव है कर्ता स्वभाव नहीं है कर्ता होवे तो बांधे ॥ **भावार्थ**—ज्ञानी हुए बाद अज्ञानरूप रागद्वेष मोह भावोंका निरोध है, राग-द्वेप मोहका निरोध होनेपर मिथ्यात्व आदि आस्रव भावोंका निरोध होता है और आस्रवके निरोधसे नवीन बंधका निरोध होता है । तथा पूर्व बंधे हुए सत्तामे स्थित हैं उनका ज्ञाता ही रहता है कर्ता नहीं होता और जब कर्ता नहीं हुआ तब ज्ञानीका ज्ञान ही स्वभाव है । यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहका उदय है उसको ऐसा जानना कि यह उदयकी बलवत्ता है वह अपनी शक्तिके अनुसार उनको रोगरूप जान काटता ही है इसलिये हुए भी अनहुए सरीखे कहे जाते हैं आगामी सामान्यसंसारके बंधरूप वे नहीं हैं । जो अल्पस्थिति अनुभागरूप बंध करते है वे अज्ञानकी पक्षमें नहीं गिने । अज्ञानकी पक्षमें तो मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके निमित्तसे बंधता है वह गिना जाता है । इसतरह ज्ञानीके आस्रव बंध नहीं गिना ॥ १६६ ॥

आगे राग द्वेष मोह इनके ही आस्रवपनेका नियम करते हैं,—[**रागादियुक्तो**

इह खलु रागद्वेषमोहसंपर्कजोऽज्ञानमय एव भावः, अयस्कांतोपलसंपर्कज इव कालायससूची कर्म कर्तुमात्मानं चोदयति । तद्विवेकजस्तु ज्ञानमयः, अयस्कांतोपलविवेकज इव कालायससूची अकर्मकरणौत्सुक्यमात्मानं स्वभावेनैव स्थापयति । ततो रागादिसंकीर्णोऽज्ञानमय एव कर्तृत्वे चोदकत्वाद्बंधकः । तदसंकीर्णस्तु स्वभावोद्भासकत्वात्केवलं ज्ञायक एव, न मनागपि बंधकः ॥ १६७ ॥

अथ रागाद्यसंकीर्णभावसंभवं दर्शयति;—

पक्के फलम्मि पडिए जह ण फलं वज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥ १६८ ॥

दु बंधगो होदि यथा अयस्कांतोपलसंपर्कजो भावः परिणतिविशेषः, कालायससूचिं प्रेरयति तथा जीवेन कृतो रागाद्यज्ञानजो भावः परिणतिविशेषः कर्ता, शुद्धस्वभावेन सानंदमव्ययमनादिमनंतशक्तिमुद्योतिनं निरुपलेपगुणमपि जीवं शुद्धस्वभावात्प्रच्युतं कृत्वा कर्मबंधं कर्तुं प्रेरयति । **रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि** रागादिज्ञानविप्रमुक्तो भावस्त्वबंधकः सन् नवरि किंतु जीवं कर्मबंधं कर्तुं न प्रेरयति । तर्हि किं करोति? पूर्वोक्तशुद्धस्वभावेनैव स्थापयति । ततो ज्ञायते निरुपरागचैतन्यचिच्चमत्कारमात्रपरमात्मपदार्थाद्भिन्ना रागद्वेषमोहा एव बंधकारणमिति ॥ १६७ ॥ अथ रागादिरहितशुद्धभावस्य संभवं दर्शयति;—**पक्के फलम्मि**

भावः] जो रागादिकर युक्त भाव [**जीवेन कृतः**] जीवकर किया गया हो [**तु**] वही [**बंधको भणितः**] नवीनकर्मका बंधकरनेवाला कहा गया है और जो [**रागादिविप्रमुक्तः**] रागादिक भावोंसे रहित है वह [**अबंधकः**] बंध करनेवाला नहीं है [**केवलं**] केवल [**ज्ञायकः**] जाननेवाला ही है ॥ **टीका**—इस आत्मामें निश्चयसे जो राग द्वेष मोहके मिलापसे उत्पन्न हुआ भाव है वह अज्ञानमय ही है । जैसे चुंबक पत्थरके संबधसे उत्पन्न हुआ भाव लोहेकी सूईको चलाता है उसीतरह वह अज्ञानभाव आत्माको कर्म करनेकेलिये प्रेरणा करता है तथा उन रागादिकोंके भेदज्ञानसे उत्पन्न हुआ जो भाव है वह ज्ञानमय है । जैसे चुंबकपाषाणके संसर्ग विना सूईका स्वभावचलनेरूप नहीं है उसीतरह आत्माको कर्मकरनेमे उत्साहरूप नहीं ऐसे स्वभावकर स्थापित करता है । इसलिये रागादिकोंसे मिला हुआ अज्ञानमय भाव ही कर्मके कर्तापनेमे प्रेरक है इसकारण नवीन बंधका करनेवाला है तथा रागादिकसे नहीं मिला हुआ भाव है वही अपने स्वभावका प्रगट करनेवाला है । वह केवल जाननेवाला ही है, वह नवीनकर्मका किंचिन्मात्र भी बंध करनेवाला नहीं है ॥ **भावार्थ**—रागादिकके मिलापसे हुआ अज्ञानमय भाव ही बंध करनेवाला है और रागादिकसे नहीं मिला ऐसा ज्ञानमय भाव वह बंधका करनेवाला नहीं है यह नियम है ॥ १६७ ॥

आगे रागादिकसे नहीं मिला ऐसे ज्ञानमयभावका संभवना दिखलाते हैं;—[**यथा**]

पक्के फले पतिते यथा न फलं बध्यते पुनर्वृंतैः ।
जीवस्य कर्मभावे पतिते न पुनरुदयमुपैति ॥ १६८ ॥

यथा खलु पक्कं फलं वृंतात्सकृद्विश्लिष्टं सत्, न पुनर्वृंतसंबंधमुपैति तथा कर्मोदयजो भावो जीवभावात्सकृद्विश्लिष्टः सन्, न पुनर्जीवभावमुपैति । एव ज्ञानमयो रागाद्यसंकीर्णो भावः संभवति । "भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो जीवस्य स्याद् ज्ञाननिर्वृत्त एव । रुंधन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघान् एषोऽभावः सर्वभावास्रवाणां ॥ १२१ ॥" १६८ ॥

पडिदे जह ण फलं वज्झदे पुणो विंटे यथा पक्के फले पतिते सति पुनरपि तदेव फल वृंते न वध्यते । **जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि** तथा तत्त्वज्ञानिनो जीवस्य सातासातोदयजनितसुखदुःखरूपकर्मभावे कर्मपर्याये पतिते गलिते निर्जीर्णे सति रागद्वेषमोहाभावात् पुनरपि तत्कर्म बध नायाति, नैवोदय च । ततो रागाद्यभावात् शुद्धभाव· सभवति । तत एव च सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य निर्विकारस्वसंवित्तिवलेन संवरपूर्विका निर्जरा भवती-

जैसे [**फले**] वृक्ष तथा वेलिका फल [**पक्के पतिते**] पककर गिरजाय वह [**पुनः**] फिर [**वृंतैः**] गुच्छेसे [**न बध्यते**] नहीं बधता उसीतरह [**जीवस्य**] जीवमें [**कर्मभावे**] पुद्गलकर्मभावरूप [**पतिते**] पककर झड़जाय अर्थात् निर्जरा हो गई हो वह कर्म [**पुनः**] फिर [**उदयं**] उदय [**न उपैति**] नहीं होता ॥ **टीका**—जैसे निश्चयकर यह प्रगट है कि पकाहुआ फल गुच्छेसे एकवार गिरजाय तो वह फल फिर गुच्छेसे संबंधरूप नहीं होता उसीतरह कर्मके उदयसे उत्पन्नहुआ जो जीवका भाव वह एकवार भी जीवसे भिन्नहुआ फिर जीवभावको नहीं प्राप्त होता । इसतरह ज्ञानभाव रागादिकसे नहीं मिलाहुआ ही संभवता है ॥ **भावार्थ**—कर्मकी निर्जरा होनेके वाद वह कर्म फिर उदयमें नहीं आता तव ज्ञानमय ही भाव रहजाता है । इसतरह जव जीवका मिथ्यात्वकर्म अनंतानुवंधीसहित सत्तामेंसे क्षय हो जाता है तव फिर उदयमें नहीं आता तव ज्ञानी हुआ फिर कर्मका कर्ता नहीं होता । मिथ्यात्वके साथ रहनेवाली प्रकृतियां तो वंधतीं नहीं और अन्य प्रकृतिसामान्य संसारका कारण नहीं है । मूलसे कटेहुए वृक्षके हरे पत्तेके समान हैं वे शीघ्र ही सूखने योग्य हैं । इसप्रकार ज्ञानीका रागादिकसे नहीं मिला हुआ ज्ञानमय भाव संभवता है चारित्रमोहके उदयका राग अज्ञानमय नहीं गिनाजाता क्योंकि सम्यग्दृष्टिके उसका स्वामीपना नहीं है ॥ अव इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**भावो** इत्यादि । **अर्थ**—जो जीवका रागद्वेष मोहके विना भाव होता है वह भाव ज्ञानकर ही रचाहुआ है, यह भाव सव द्रव्यास्रवोंको रोकनेवाला है इसलिये सभी भावास्रवोंका अभाव कहना

१ सम्यक्त्वपूर्वं शुद्धस्वरूपानुभव परिणाम । २ द्रव्यकर्मणा ज्ञानावरणादीनामास्रव प्रतिसमयं धाराप्रवाहरूपतया आत्मप्रदेशै सहान्योन्यानुगमः, तस्यौघान् ।

अथ ज्ञानिनो द्रव्यास्रवाभावं दर्शयति;—

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिवद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स ॥ १६९ ॥

पृथ्वीपिंडसमानाः पूर्वनिवद्धास्तु प्रत्ययास्तस्य ।
कर्मशरीरेण तु ते बद्धाः सर्वेऽपि ज्ञानिनः ॥ १६९ ॥

ये खलु पूर्व, अज्ञानेनैव वद्धा मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा द्रव्यास्रवभूताः प्रत्ययाः, ते ज्ञानिनो द्रव्यांतरभूताः चेतनपुद्गलपरिणामत्वात् पृथ्वीपिंडसमानाः । ते तु सर्वेऽपि

त्यर्थः ॥ १६८ ॥ अथ ज्ञानिनो नवतरद्रव्यास्रवाभाव दर्शयति;—**पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिवद्धा दु पच्चया तस्स** पृथ्वीपिंडसमानाः अकिंचित्करा भवति । के ते ? पूर्वनिवद्धाः मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययाः । कस्य ? तस्य वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य । यतो रागाद्यजनकत्वादकिंचित्करास्ततः कारणात्, नवतरद्रव्यकर्मवधो न भवति । तर्हि पृथ्वीपिंडसमानाः संतः केन रूपेण तिष्टति ? **कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स** कार्मणशरीररूपेणैव ते सर्वे बद्धास्तिष्ठंति, न च रागादिभावपरिणतजीवरूपेण । कस्य ? निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदविज्ञानिनो जीवस्येति । किंच यद्यपि द्रव्यप्रत्ययाः कार्माणशरीररूपेण मुष्टिवद्धविषवत्तिष्टति तथापि उदयाभावे सुखदुःखविकृतिरूपा बाधा न कुर्वंति । तेन कारणेन ज्ञानिनो जीवस्य, नवतरकर्मास्रवाभाव इति भावार्थः । एव रागद्वेपमोहरूपास्रवाणा विशेपविवरणरूपेण स्वतंत्रगा-

---

चाहिये ॥ **भावार्थ**—पूर्वकथित ही जानना यहां सव भावास्रवोंका अभाव कहा है । वह इसकारण कि संसारका कारण मिथ्यात्व ही है उस संवंधी रागादिकका अभाव हुआ तो सभी भावास्रवोंका अभाव होगया समझना ॥ १६८ ॥

आगे ज्ञानीके द्रव्यास्रवका अभाव दिखलाते हैं;—**[तस्य ज्ञानिनः]** उस पूर्वोक्त ज्ञानीके **[पूर्वनिबद्धाः]** पहले अज्ञानअवस्थामें बंधेहुए **[सर्वेपि]** सभी **[प्रत्ययाः]** कर्म **[पृथिवीपिंडसमानाः]** जीवके रागादिभावोंके हुए विना पृथ्वीके पिंडसमान है जैसे मट्टीआदि अन्य पुद्गलस्कंध हैं उसीतरह वे भी है **[तु]** और वे **[कर्मशरीरेण बद्धाः]** कार्मणशरीरके साथ वंधेहुए है ॥ **टीका**—जो प्रगटपने पहले अज्ञानकर वांधे जो मिथ्यात्व अविरति कषाय योगरूप द्रव्यास्रवभूत प्रत्यय वे ज्ञानीके अन्य द्रव्यरूप अचेतन पुद्गल द्रव्यके परिणामपनेसे पृथिवीके पिंडसमान हैं। वे सभी अपने पुद्गलस्वभावसे कार्मण शरीरकर ही एक होके वंधे हैं परंतु जीवकर नहीं वंधे है इस कारण ज्ञानीके द्रव्यास्रवका अभाव स्वभावसे ही सिद्ध है ॥ **भावार्थ**—जवसे आत्मा ज्ञानी हुआ तबसे ज्ञानीके भावास्रवका तो अभाव हुआ ही और द्रव्यास्रव है वह मिथ्यात्वादि पुद्गल द्रव्यके परिणाम हैं वे कार्माण शरीरसे स्वयमेव वंध रहे है वे जैसे अन्य

स्वभावत एव कार्मणशरीरेणैव संबद्धा न तु जीवेन, अतः स्वभावसिद्ध एव द्रव्यास्रवाभावोऽज्ञानिनः ।

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥ १२२"॥१६९ ॥

कथ ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्;—

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समये समये जह्मा तेण अबंधोत्ति णाणी दु ॥ १७० ॥

चतुर्विधा अनेकभेदं वध्नंति ज्ञानदर्शनगुणाभ्यां ।
समये समये यस्मात् तेनाबंध इति ज्ञानी तु ॥ १७० ॥

थास्रय गतं ॥ १६९ ॥ अथ कथं ज्ञानी निरास्रव ? इति पृच्छति;—**चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं** चहुविह इति बहुवचने प्राकृतलक्षणबलेन ह्रस्वत्वं । चतुर्विधा मूलप्रत्ययाः कर्तारः ज्ञानावरणादिभेदभिन्नमनेकविध कर्म कुर्वंति । काभ्या कृत्वा ? ज्ञानदर्शनगुणाभ्या दर्शनज्ञानगुणौ कथ बधकारणभूतौ भवतः ? इति चेत्—अयमत्र भावः, द्रव्यप्रत्यया उदयमागताः सतः जीवस्य ज्ञानदर्शनद्वय रागाद्यज्ञानभावेन परिणमयति, तदा रागाद्यज्ञानभावपरिणत ज्ञानदर्शनगुणद्वयं बधकारण भवति । वस्तुतस्तु रागाद्यज्ञानभावपरिणतं ज्ञानदर्शनगुणद्वयं अज्ञानमेव भण्यते तत् । **'अणाणदंसणगुणेहिं'** इति पाठान्तर केचन पठति । **समए समए जह्मा तेण अबंधुत्ति णाणी दु** समये समये यस्मात् प्रत्ययाः कर्तारः । ज्ञानदर्शनगुण रागाद्यज्ञानपरिणत कृत्वा नवतरं कर्म कुर्वंति । तेन कारणेन भेदज्ञानी

मृत्तिकाके पिंड हैं वैसे वे भी हैं, भावास्रवके विना कुछ आगामी कर्मबंधको कारण नहीं हैं और पुद्गलमय हैं इस कारण अमूर्तीक चैतन्यस्वरूप जीवसे स्वयमेव ही भिन्न हैं ऐसा ज्ञानी जानता है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**भावा** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञानी भावास्रवके अभावको प्राप्त हुआ है इसलिये द्रव्यास्रवसे तो स्वयमेव ही भिन्न है, क्योंकि ज्ञानी तो सदा ज्ञानमय ही केवल (एक) भाववाला है इसकारण निरास्रव ही है एक ज्ञायक ही है ॥ **भावार्थ**—भावास्रव जो राग द्वेष मोह उनका तो ज्ञानीके अभाव होगया है और द्रव्यास्रव हैं वे पुद्गलपरिणाम हैं उनसे सदा ही स्वयमेव भिन्न है, इसलिये ज्ञानी निरास्रव ही है ॥ १६९ ॥

आगे पूछते हैं कि, ज्ञानी निरास्रव किसतरह है ? उसके उत्तरकी गाथा कहते हैं,—

[यस्मात्] जिसकारण **[चतुर्विधाः]** चार प्रकारके जो पूर्व कहे गये मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग आस्रव हैं वे **[ज्ञानदर्शनगुणाभ्यां]** दर्शनज्ञानगुणोंकर **[समये समये]** समय समय **[अनेकभेदं]** अनेक भेद लिये **[बध्नंति]**

ज्ञानी हि तावदास्रवभावनाभिप्रायाभावान्निरास्रव एव । यत्तु तस्यापि द्रव्यप्रत्ययाः प्रतिसमयमनेकप्रकारं पुद्गलकर्म बध्नंति तत्र ज्ञानगुणपरिणामहेतुः ॥ १७० ॥

कथं ज्ञानगुणपरिणामो बंधहेतुरिति चेत्;—

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥ १७१ ॥

यस्मात्तु जघन्यात् ज्ञानगुणात् पुनरपि परिणमते ।
अन्यत्व ज्ञानगुणः तेन तु स बंधको भणितः ॥ १७१ ॥

ज्ञानगुणस्य हि यावज्जघन्यो भावः, तावत् तस्यांतर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनर-

---

बंधको न भवति । किं तु ज्ञानदर्शनरंजकत्वेन प्रत्यया एव बंधकाः, इति ज्ञानिनो निरास्रवत्वं सिद्धं ॥ १७० ॥ अथ कथं ज्ञानगुणपरिणामो बंधहेतुरिति पुनरपि पृच्छति;—**जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि अण्णत्तं णाणगुणो** यस्मात् यथाख्यातचारित्रात्पूर्वं जघन्यो हीनः सकषायो ज्ञानगुणो भवति । तस्मात्—जघन्यत्वादेव ज्ञानगुणात् सकाशात्, अंतर्मुहूर्तानंतरं निर्विकल्पसमाधौ स्थातुं न शक्नोति जीवः । ततः कारणात् अन्यत्वं सविकल्पकपर्यायांतरं परिणमति । स कः ? कर्ता । ज्ञानगुणः । **तेण दु सो बंधगो भणिदो** तेन सविकल्पेन कषायभावेन स ज्ञानगुणो बंधको भणितः । अथवा द्वितीयव्याख्यान । जघन्यात् कोऽर्थः, जघन्यात् मिथ्यादृष्टिज्ञानगुणात् । काललब्धिवशेन सम्यक्त्वे प्राप्ते सति ज्ञानगुणः कर्ता मिथ्यापर्याय त्यक्त्वा अन्यत्व सम्यग्ज्ञानित्वं परिणमति । **तेण दु सो बंधगो भणिदो** तेन कारणेन ज्ञानगुणो ज्ञानगुणपरिणतजीवो वा अबंधको भणित

कर्मोंको बांधते हैं [**तेन**] इसकारण [**ज्ञानी तु**] ज्ञानी तो [**अबंध इति**] अबंधरूप ही है ॥ **टीका**—प्रथम ही ज्ञानी तो आस्रवभावकी भावनाके अभिप्रायके अभावसे निरास्रव ही है और उस ज्ञानीके द्रव्यास्रव भी समय समय प्रति अनेक प्रकार पुद्गलकर्मोंको बांधता है उसमें ज्ञानगुणका परिणमन कारण है ॥ १७० ॥

आगे फिर पूछते हैं कि ज्ञानगुणका परिणाम बंधका कारण कैसे है उसके उत्तरकी कहते हैं;—[**यस्मात् तु**] जिस कारण [**ज्ञानगुणः**] ज्ञानगुण [**पुनरपि**] फिर भी [**जघन्यात् ज्ञानगुणात्**] जघन्य ज्ञानगुणसे [**अन्यत्वं**] अन्यपनेरूप [**परिणमते**] परिणमता है [**तेन तु**] इसीकारण [**सः**] वह ज्ञानगुण [**बंधको भणितः**] कर्मका बंध करनेवाला कहागया है ॥ **टीका**—जबतक ज्ञानगुणका जघन्य भाव है—क्षयोपशमरूप भाव है तबतक अंतर्मुहूर्त विपरिणामी है ज्ञानभावरूप अन्तर्मुहूर्त ही रहता है बाद अन्य प्रकार परिणमता है । इसलिये अन्यपनारूप भी इसका परिणाम है वह यथाख्यात चारित्रअवस्थाके नीचे अवश्यंभावी रागपरिणामका सद्भाव

न्यतयास्ति परिणामः । स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यभाविरागसद्भावात् बंधहेतुरेव स्यात् ॥ १७१ ॥

एवं सति कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्;—

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥ १७२ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रं यत्परिणमते जघन्यभावेन ।
ज्ञानी तेन तु बध्यते पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥ १७२ ॥

इत्यभिप्रायः ॥ १७१ ॥ अथ यथाख्यातचारित्राधस्तादंतर्मुहूर्तानतरं निर्विकल्पसमाधौ स्थातुं न शक्यत इति भणितं पूर्व । एव सति कथ ज्ञानी निरास्रव इति चेत्;—**दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण** ज्ञानी तावदीहापूर्वरागादिविकल्पकारणाभावान्निरास्रव एव । कि तु सोऽपि यावत्कालं परमसमाधेरनुष्ठानाभावे सति शुद्धात्मस्वरूपं द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितु वासमर्थः तावत्कालं तस्यापि संबधि यद्दर्शनं ज्ञान चारित्र तज्जघन्यभावेन सकषायभावेन अ-नीहितवृत्त्या परिणमति । **णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण** तेन कारणेन सन् भेदज्ञानी स्वकीयगुणस्थानानुसारेण परंपरया मुक्तिकारणभूतेन तीर्थंकरनामक-

---

है इसलिये बंधका कारण ही है **भावार्थ**—क्षयोपशमज्ञानका एक ज्ञेयके ऊपर ठहरना अंतर्मुहूर्त ही होता है पीछे अवश्य अन्य ज्ञेयको अवलंबन करता है इसकारण स्वरूपमें भी अंतर्मुहूर्त ही ठहरना होसकता है । इसलिये ऐसा अनुमान है कि यथाख्यात चारित्र अवस्थाके नीचे अवश्य राग परिणामका सद्भाव है उस रागके सद्भावसे बंध भी होता है । इस कारण ज्ञान गुणका जघन्यभाव बंधका कारण कहा गया है ॥ १७१ ॥

आगे फिर पूछते हैं कि जो ज्ञानगुणका जघन्य भाव अन्यपनारूप परिणाम बंधका कारण है तो ज्ञानी निरास्रव है ऐसा किसतरहसे कहा ? उसके उत्तरकी गाथा कहते हैं,—[**दर्शनज्ञानचारित्रं**] दर्शनज्ञानचारित्र [**यत्**] जिसकारण [**जघन्यभावेन**] जघन्य भावकर [**परिणमते**] परिणमते हैं [**तेन तु**] इस कारणसे [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**विविधेन**] अनेक प्रकारके [**पुद्गलकर्मणा**] पुद्गलकर्मोंसे [**बध्यते**] बंधता है ॥ **टीका**—निश्चयकर जो ज्ञानी है वह बुद्धिपूर्वक रागद्वेषमोहरूप आस्रवभावके अभावसे निरास्रव ही है । वहां यह विशेषता है कि वही ज्ञानी जबतक ज्ञानको सर्वोत्कृष्टभावकर देखनेको जाननेको आचरण करनेको असमर्थ है तथा जघन्यभावसे ही ज्ञानको देखता है जानता है आचरता है तबतक उस ज्ञानीके भी ज्ञानके जघन्यभावकी अन्यथा अप्राप्तिकर अनुमानरूप कियागया अबुद्धिपूर्वक कर्ममलकलंकका सद्भाव है। इसलिये पुद्गलकर्मका बंध होता है । इसकारण यह उपदेश

यो हि ज्ञानी स बुद्धिपूर्वकरागद्वेषमोहास्रवभावाभावात् निरास्रव एव, किंतु सोऽपि यावज्ज्ञानं सर्वोत्कृष्टभावेन द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वाऽशक्तः सन् जघन्यभावेनैव ज्ञानं पश्यति जानात्यनुचरति तावत्तस्यापि जघन्यभावान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानाबुद्धिपूर्वककलंकविपाकसद्भावात् पुद्गलकर्मबंधः स्यात् । अतस्तावज्ज्ञानं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावज्ज्ञानस्य यावान् पूर्णो भावस्तावान् दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च सम्यग्भवति । ततः साक्षात् ज्ञानीभूतः सर्वथा निरास्रव एव स्यात् ।

संन्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं

र्मप्रकृत्यादिपुद्गलरूपेण विविधपुण्यकर्मणा बध्यते । इति ज्ञात्वा ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिभावपरिणामपरिहारेण निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा तावत्पर्यंतं शुद्धात्मरूपं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावत्तस्य शुद्धात्मस्वरूपस्य परिपूर्णः केवलज्ञानरूपो भावो दृष्टो ज्ञातोऽ-

---

है कि तभीतक ज्ञानको देखना जानना आचरण करना जबतक ज्ञानका पूर्णभाव जितना है उतना देखा जाना आचरण करना अच्छीतरह न हो जाय । उसके बाद साक्षात् ज्ञानी हुआ सर्वथा निरास्रव ही होता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानीको निरास्रव इसतरह कहा है कि जबतक इसके क्षयोशमज्ञान है तबतक तो बुद्धिपूर्वक अज्ञानमय रागद्वेषमोहका अभाव है इसलिये निरास्रव है और जबतक क्षयोपशमज्ञान है तबतक दर्शन ज्ञान चारित्र जघन्य भावकर परिणमते हैं तबतक संपूर्ण ज्ञानका देखना जानना आचरण होना नहीं होता । सो इस जघन्यभावकर ही ऐसा जानते है कि इसके अबुद्धिपूर्वक कर्मकलंक विद्यमान है उसीसे बंधभी होता है वह चारित्रमोहके उदयकर है अज्ञानमय भाव नहीं है । इसलिये ऐसा उपदेश है कि जबतक ज्ञान संपूर्ण न हो—केवलज्ञान न प्रकट हो तबतक ज्ञानका ही ध्यान निरंतर करना ज्ञानको ही देखना, ज्ञानको ही जानना, ज्ञानको ही आचरना। इसी मार्गसे ही चारित्रमोहका नाश होता है और केवल ज्ञान प्रकट होता है तब सबतरहसे साक्षात् निरास्रव होता है । यह विवक्षा (वक्ताकी इच्छा)का विचित्रपना है । बुद्धिपूर्वकरागादिकके अभावकी अपेक्षा तो अबुद्धिपूर्वक रागादिक होनेपर भी निरास्रव कहा है और अबुद्धिपूर्वकका अभाव होनेबाद तो केवल ज्ञान ही उत्पन्न होगा तब साक्षात् निरास्रव होगा ही ऐसे जानना ॥ अब इसी अर्थका कलशरूपकाव्य कहते हैं,—**संन्य** इत्यादि । **अर्थ**—यह आत्मा जब ज्ञानी होता है तब अपने बुद्धिपूर्वक रागको तो सबको ही आप दूर करताहुआ निरंतर प्रवर्तता है और अबुद्धिपूर्वक रागको भी जीतनेकेलिये वारंवार अपनी ज्ञानानुभवनरूप शक्तिको स्पर्शताहुआ प्रवर्तता

---

१ बुद्धिपूर्वकास्ते परिणामा ये मनोद्वारा बाह्यविषयानालंब्य प्रवर्तंते, प्रवर्तमानाश्च स्वानुभवगम्याः अनुमानेन परस्यापि गम्या भवति । अबुद्धिपूर्वकास्तु परिणामा इंद्रियमनोव्यापारमंतरेण केवलमोहोदयनिमित्तास्ते तु स्वानुभवगोचरत्वादबुद्धिपूर्वका इति विशेषः ।

स्पृशन् । उच्छिंदन् परिवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णीभवन्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥

"सर्वस्यामेव जीवंत्यां द्रव्यप्रत्ययसंततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥ १२३ ॥" १७२ ॥

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥ १७३ ॥
संती दु णिरुवभोज्जा बाला इच्छी जहेव पुरुसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इच्छी जह णरस्स ॥ १७४ ॥
होदूण णिरवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥ १७५ ॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥ १७६ ॥ चतुष्कं

सर्वे पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययाः संति सम्यग्दृष्टेः ।
उपयोगप्रायोग्यं बध्नंति कर्मभावेन ॥ १७३ ॥
संति तु निरुपभोग्यानि बाला स्त्री यथेह पुरुषस्य ।
बध्नाति तानि उपभोग्यानि तरुणी स्त्री यथा नरस्य ॥ १७४ ॥
भूत्वा निरुपभोग्यानि तथा बध्नाति यथा भवंत्युपभोग्यानि ।
सप्ताष्टविधानि भूतानि ज्ञानावरणादिभावैः ॥ १७५ ॥
एतेन कारणेन तु सम्यग्दृष्टिरबंधको भणितः ।
आस्रवभावाभावे न प्रत्यया बंधका भणिताः ॥ १७६ ॥

नुचरितश्च भवतीति भावार्थः । एवं ज्ञानिनो भावास्रवस्वरूपनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १७२ ॥ अथ द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेषु कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्;—सव्वे पु-

---

है तथा ज्ञानके समस्त पलटनेको दूर करताहुआ ज्ञानको स्वरूपमें ठहराता पूर्णहुआ प्रवर्तता है । ऐसे ज्ञानी जब होवे तब शाश्वता निरास्रव होता है ॥ **भावार्थ**—जब सब रागको हेय जाना तब उसके मेटनेका ही उद्यम प्रवर्तता है तब सदा निरास्रव ही कहना चाहिये, क्योंकि इसके आस्रवभावोंकी भावनाके अभिप्रायका अभाव है । यहां बुद्धिपूर्वक अबुद्धिपूर्वककी दो सूचनायें हैं । एक तो वह कि आप तो करना नहीं चाहता और परनिमित्तसे जबरदस्तीसे हो, उसको आप जानता है तौ भी उसको बुद्धिपूर्वक कहना चाहिये । और दूसरा वह कि अपने ज्ञानगोचर ही नहीं प्रत्यक्ष ज्ञानी जिसे जानते हैं तथा उसके अविनाभावी चिन्हकर अनुमानसे जानिये उसे अबुद्धिपूर्वक जानना ॥१७२॥ आगे पूछते हैं कि सभी द्रव्यास्रवकी संततिको जीनेसे ज्ञानी निरास्रव किसतरह है ?

यतः सदवस्थायां तदात्वपरिणीतबालस्त्रीवत् पूर्वमनुपभोग्यत्वेऽपि विपाकावस्थायां प्राप्तयौवनपूर्वपरिणीतस्त्रीवत् उपभोग्यप्रायोग्यं पुद्गलकर्मद्रव्यप्रत्ययाः संतोऽपि कर्मोदयकार्यजी-

---

व्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स सर्वे पूर्वनिबद्धा द्रव्यप्रत्ययाः संति तावत्सम्यग्दृष्टेः। **उवओगप्पाओग्गं बंधंते कम्मभावेण** यद्यपि विद्यते तथाप्युपयोगेन प्रायोग्यं तत्कालोदयप्रायोग्यकर्मतापन्नं कर्म बध्नंति। केन कृत्वा ? भावेन रागादिपरिणामेन, नचास्तित्वमात्रेण बंधकारणं भवतीति। **संतावि णिरुवभोज्जा बाला इच्छी जहेव**

ऐसे प्रश्नका श्लोक है—**सर्वस्या** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानीके सभी द्रव्यास्रवकी संततिको जीनेसे ज्ञानी नित्य ही निरास्रव है ऐसा क्यों कहा ? ऐसी शिष्यकी आशंकारूप बुद्धि है उसके उत्तरकी गाथा कहते हैं,—[**सम्यग्दृष्टेः**] सम्यग्दृष्टिके [**सर्वे**] सभी [**पूर्वनिबद्धाः तु**] पूर्वे अज्ञानअवस्थामें बांधे [**प्रत्ययाः**] मिथ्यात्वादि आस्रव [**संति**] सत्तारूप मौजूद हैं वे [**उपयोगप्रायोग्यं**] उपयोगके प्रयोग करनेरूप जैसे हो वैसे [**कर्मभावेन**] उसके अनुसार कर्म भावकर [**बध्नंति**] आगामी बंधको प्राप्त होते है [**निरुपभोग्यानि**] और जो पूर्वबंधे प्रत्यय उदयविना आये भोगने योग्यपनेसे रहित [**भूत्वा**] होकर तिष्ठ रहे है वे फिर [**तथा बध्नंति**] आगामी उसतरह बंधते है [**यथा**] जैसे [**ज्ञानावरणादि भावैः**] ज्ञानावरणादिभावोंकर [**सप्ताष्टविधानि**] सात आठ प्रकार फिर [**उपभोग्यानि**] भोगेन योग्य [**भवंति**] हो जायें [**तु**] और [**निरुपभोग्यानि संति**] वे पूर्वबंधे प्रत्यय सत्तामें ऐसे हैं [**यथा**] जैसे [**इह**] इसलोकमें [**पुरुषस्य**] पुरुषके [**बाला स्त्री**] बालिका स्त्री भोगने योग्य नहीं होती [**तानि**] और वेही [**उपभोग्यानि**] भोगने योग्य होते हैं तब [**बध्नाति**] पुरुषको बांधते हैं [**यथा**] जैसे [**तरुणी स्त्री**] वही बाला स्त्री जवान होजाय तब [**नरस्य**] पुरुषको बांधलेती है अर्थात् पुरुष उसके आधीन हो जाता है यही बंधना है। [**एतेन तु कारणेन**] इसीकारणसे [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**अबंधकः**] अबंधक [**भणितः**] कहा गया है क्योंकि [**आस्रवभावाभावे**] आस्रवभाव जो राग द्वेष मोह उनका अभाव होनेसे [**प्रत्ययाः**] मिथ्यात्वआदि प्रत्यय सत्तामें होनेपर भी [**बंधकाः**] आगामी कर्मबंधके करनेवाले [**न**] नहीं [**भणिताः**] कहे गये हैं॥

टीका—जिसकारण ऐसें है कि जैसे तत्कालकी विवाहित बालस्त्री पहले बालकअवस्थामें पुरुषके भोगने योग्य नहीं होती फिर वही स्त्री जब तरुणी होजाय तब यौवनअवस्थामें भोगने योग्य होती हैं तब पुरुष भी उसके आधीन होजाता है। उसीतरह पहले बांधे कर्म जबतक सत्ताअवस्थामें हैं तबतक भोगने योग्य नहीं होते फिर वे ही

वभावसद्भावादेव बध्नंति ततो ज्ञानिनो यदि द्रव्यप्रत्ययाः पूर्वबद्धाः संति। संतु, तथापि स तु निरास्रव एव कर्मोदयकार्यस्य रागद्वेषमोहरूपस्यास्रवभावस्याभावे द्रव्यप्रत्ययानामबंधहेतुत्वात्।

पुरुसस्स विद्यमानान्यपि कर्माणि क्वचित्प्राकृते लिंगव्यभिचारोऽपि, इति वचनान्नपुंसकलिंगे पुल्लिंगनिर्देशः। पुल्लिंगेऽपि नपुंसकलिंगनिर्देशः। कारके कारकांतरनिर्देशो भवति, इति। तानि कर्माणि उदयात्पूर्वं निरुपभोग्यानि भवंति। केन दृष्टांतेन? बाला स्त्री यथा पुरुषस्य। **बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इच्छी जह णरस्स** तानि कर्माणि उदयकाले उपभोग्यानि भवंति। रागादिभावेन नवतराणि च बध्नंति। कथं? यथा तरुणी स्त्री नरस्येति। अथ तमेवार्थं दृढयति। उदयात्पूर्वं निरुपभोग्यानि भूत्वा कर्माणि स्वकीयगुणस्थानानुसारेण, उदयकालं प्राप्य यथाभोग्यानि भवंति, तथा रागादिभावेन परिणामेन आयुष्कबंधकाले अष्टविधभूतानि शेषकाले सप्तविधानि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभावेन पर्यायेण नवतराणि बध्नंति, नचास्तित्वमात्रेणेति। रागादिभावास्रवस्याभावे द्रव्यप्रत्यया अस्तित्वमात्रेण बंधकारणं न भवति।

कर्म जब विपाकअवस्थाको प्राप्त होजाते हैं तब उस उदयअवस्थामें भोगने योग्य हो जाते हैं तब जैसा आत्माका उपयोग विकारसहित हो उसी योग्यताके अनुसार पुद्गलकर्मरूप द्रव्यप्रत्यय सत्तारूप होनेपर भी कर्मके उदयानुसार जीवके भावोंके सद्भावसे ही बंधको प्राप्त होते हैं। इसकारण ज्ञानीके द्रव्यकर्मरूप प्रत्यय (आस्रव) सत्तामें मौजूद हैं तो रहो तौभी वह ज्ञानी तो निरास्रव ही है, क्योंकि कर्मके उदयका कार्य जो जीवका भाव रागद्वेष मोहरूप आस्रवभाव उसके अभावके होनेपर द्रव्यास्रवोंके बंधका कारणपना नहीं है॥ **भावार्थ**—सत्तामें मिथ्यात्वादि द्रव्यास्रव विद्यमान है तौभी वे आगामी कर्मबंधके करनेवाले नहीं है। क्योंकि बंधके करनेवाले तो जीवके रागद्वेषमोहरूप भाव होते हैं वे ही हैं। सो मिथ्यात्वादि द्रव्यास्रवके उदयके और जीवके भावोंके कार्यकारणभाव निमित्तनैमित्तिकरूप है। जब मिथ्यात्वादिका उदय आता है तब जीवका रागद्वेषमोहरूप जैसा भाव हो उसभावके अनुसार आगामी बंध होता है। और जब सम्यग्दृष्टि होजाता है तब मिथ्यात्व सत्तामेसे नाश होजाता है उससमय उसके साथ अनंतानुबंधी कषाय तथा उससंबंधी अविरति, योगभाव ये भी नष्ट हो जाते है तब उससंबंधी जीवके रागद्वेषमोहभाव भी नहीं होते और उस मिथ्यात्व अनंतानुबंधीका बंध भी आगामी नहीं होता। तथा मिथ्यात्वका उपशम होता है वह सत्तामें ही रहता है तब सत्ताका द्रव्य उदयके विना बंधका कारण ही नहीं है। और जबतक अविरत सम्यग्दृष्टि आदिक गुणस्थानोंकी परिपाटीमें चारित्रमोहके उदयसंबंधी बंध कहा गया है वह यहां संसार सामान्यकी अपेक्षा तो बंधमें गिना नहीं है क्योंकि ज्ञानी अज्ञानीका भेद है। जबतक कर्मके उदयमे कर्मका स्वामीपना रखके परिणमता है तब-

विजहति नहि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः समयमनुसरंतो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकलरागद्वेषमोहव्युदासादवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबंधः ॥ १२४ ॥
"रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसंभवः । तत एव न बंधोस्य ते हि बंधस्य कारणं ॥ १२५ ॥" १७३।१७४।१७५।१७६ ॥

एतेन कारणेन सम्यग्दृष्टिरबंधको भणित इति । किं च विस्तरः, मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया चतुर्थगुणस्थाने सरागसम्यग्दृष्टिः, त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबंधकः । सप्ताधिकसप्ततिप्रकृतीनामल्पस्थित्यनुभागरूपाणां बंधकोऽपि संसारस्थितिच्छेदं करोति । तथा चोक्तं सिद्धांते "द्वादशांगावगमस्तत्तीव्रभक्तिरनिवृत्तिपरिणामः केवलिसमुद्घातश्चेति संसारस्थितिघातकरणानि भवंति" तद्यथा, तत्र द्वादशांगश्रुतविषये अवगमो ज्ञानं व्यवहारेण बहिर्विषयः । निश्चयेन तु वीतरागस्वसंवेदनलक्षणं चेति । भक्ति पुनः सम्यक्त्वं भण्यते व्यवहारेण सरागसम्यग्दृष्टीनां परमेष्ठ्याराधनारूपा । निश्चयेन सम्यग्दृष्टीनां शुद्धात्मतत्त्वभावनारूपा चेति । न निवृत्तिरनिवृत्तिः शुद्धात्मस्वरूपादचलनं एकाग्रपरिणतिरिति । तत्रैव सति द्वादशांगावगमो निश्चयव्यवहारज्ञानं जात । भक्तिस्तु निश्चयव्यवहारसम्यक्त्व जातं । अनिवृत्तिपरिणामस्तु सरागचारित्रानंतरं वीतरागचारित्रं जातमिति सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि भेदाभेदरत्नत्रयरूपेण संसारविच्छित्तिकारणानि भवति । केषा ? छद्मस्थानामिति । केवलिना तु भगवतां दंडकपाटप्रतरलोकपूरणरूपकेवलिसमुद्घातः संसारविच्छित्तिकारणमिति भावार्थः । एवं द्रव्यप्रत्यया विद्यमाना अपि रागादिभावास्रवाभावे बंधकारणं न भवंतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं ॥ १७३ । १७४ । १७५ । १७६ ॥

तक ही कर्मका कर्ता कहा गया है परके निमित्तसे परिणमे उसका ज्ञाता द्रष्टा हो तब ज्ञानी ही है कर्ता नहीं है । इसतरह अपेक्षासे सम्यग्दृष्टि हुए बाद चारित्रमोहका उदयरूप परिणाम होनेपर भी ज्ञानी ही कहा गया है । जबतक मिथ्यात्वका उदय है तबतक उस संबंधी रागद्वेषमोहभावरूप परिणमनेसे अज्ञानी कहा जाता है । ऐसे ज्ञानी अज्ञानी कहनेका विशेष (भेद) जानना । इसतरह बंध अबंधका विशेष है । और शुद्धस्वरूपमें लीन रहनेके अभ्याससे साक्षात् संपूर्णज्ञानी केवलज्ञान प्रकट होनेसे होता है तब सर्वथा निरास्रव हो जाता है ऐसे पहले कहा भी है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**विजहति** इत्यादि । **अर्थ**—यद्यपि पहले अज्ञानअवस्थामें बंधरूप जो हुए थे वे द्रव्यरूप प्रत्यय (द्रव्यास्रव) सत्तामें विद्यमान हैं क्योंकि उनका उदय अपनी स्थितिके अनुसार है इसलिये जबतक उदयका समय नहीं आता तबतक सत्तामें ही द्रव्यास्रव रहते हैं वे अपनी सत्ताको नहीं छोड़ते तौभी ज्ञानीके समस्त रागद्वेषमोहके अभावसे नवीन कर्मका बंध कभी अवतार नहीं रखता ॥ **भावार्थ**—रागद्वेषमोहभावोंके विना सत्ताका द्रव्यास्रव बंधका कारण नहीं है । यहां सकल रागद्वेषमोहका अभाव बुद्धिपूर्वक अपेक्षासे जानना ॥ आगे इसी अर्थके दृढ करनेरूप गाथाकी सूचनिकाका श्लोक कहते हैं;—**राग** इत्यादि । **अर्थ**—जिसकारण ज्ञानीके रागद्वेषमोहका असंभव है इसीकारण ज्ञानीके बंध नहीं है क्योंकि रागद्वेषमोह ही बंधके कारण है ॥ १७३।१७४।१७५।१७६ ॥

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥ १७७ ॥
हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥ १७८ ॥

रागो द्वेषो मोहश्च आस्रवा न संति सम्यग्दृष्टेः ।
तस्मादास्रवभावेन विना हेतवो न प्रत्यया भवंति ॥ १७७ ॥
हेतुश्चतुर्विकल्पः अष्टविकल्पस्य कारणं भणितं ।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यंते ॥ १७८ ॥

रागद्वेषमोहा न संति सम्यग्दृष्टेः सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेः । तदभावे न तस्य द्रव्यप्रत्ययाः

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न भवंति, सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः । तथाहि, अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सतीति पक्षः । कस्मात् ? इति चेत्, केवलज्ञानाद्यनंतगुणसहितपरमात्मोपदेशत्वे सति वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरुचिरूपस्य मूढत्रयादिपंचविंशतिदोषरहितस्य —"संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती ।

आगे इसी अर्थके समर्थनकी गाथा कहते हैं,—[**रागः**] राग [**द्वेषः**] द्वेष [**च मोहः**] और मोह [**आस्रवाः**] ये आस्रव [**सम्यग्दृष्टेः**] सम्यग्दृष्टिके [**न संति**] नहीं हैं [**तस्मात्**] इसलिये [**आस्रवभावेन विना**] आस्रवभावके विना [**प्रत्ययाः**] द्रव्यप्रत्यय [**हेतवः**] कर्मबंधको कारण [**न भवंति**] नहीं हैं [**चतुर्विकल्पः**] मिथ्यात्वआदि चार प्रकारका [**हेतुः**] हेतु [**अष्टविकल्पस्य**] आठ प्रकारके कर्मके बंधनेका [**कारणं भणितं**] कारण कहागया है [**च**] और [**तेषामपि**] उन चार प्रकारके हेतुओंको भी [**रागादयः**] जीवके रागादिक भाव कारण हैं सो सम्यग्दृष्टिके [**तेषां अभावे**] उन रागादिक भावोंका अभाव होनेसे [**न बध्यंते**] कर्मबंध नहीं है ॥ **टीका**—सम्यग्दृष्टिके राग द्वेष मोह नहीं हैं क्योंकि रागद्वेषमोहके अभावके विना सम्यग्दृष्टिपना बन नहीं सकता और उन रागद्वेषमोहके अभावसे उस सम्यग्दृष्टिके द्रव्यास्रव हैं वे पुद्गलकर्मके बंधनेको कारणपना नहीं धारते । क्योंकि द्रव्यास्रवके पुद्गलकर्म बंधनेका कारणपनेका कारणपना रागादिकके ही है इसलिये कारणके कारणका अभाव होनेसे कार्यका अभाव अच्छीतरह प्रसिद्ध है । इसकारण ज्ञानीके बंध नहीं है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि, रागद्वेषमोहके अभाव विना नहीं होता—ऐसा अविनाभाव नियम कहा है सो यहां मिथ्यात्वसंबंधी रागादिकोंका अभाव जानना उन्हींको रागादि मानागया है । सम्यग्दृष्टि होनेके वाद कुछ चारित्रमोहसंबंधी राग रहता है सो यहापर नहीं गिना वह गौण है इसलिये उन

पुद्गलकर्महेतुत्वं बिभ्रति द्रव्यप्रत्ययानां पुद्गलकर्महेतुत्वस्य रागाद्यहेतुत्वात् । ततो हेत्वभावे हेतुमदभावस्य प्रसिद्धत्वात् ज्ञानिनो नास्ति बंधः ॥

वच्छल्लं अणुकपां गुणठ सम्मत्तजुत्तस्स ॥'' इति गाथाकथितलक्षणस्य चतुर्थगुणस्थानवर्तिसराग-सम्यक्त्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः । अथवा, अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्ञा. क्रोधमानमायालो-भोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न संतीति पक्षः । कस्मात्? इति चेत्; निर्विकारपरमानंदै-कसुखलक्षणपरमात्मोपादेयत्वे सति षट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरुचिरूपस्य मूढत्रयादि-पंचविंशतिदोषरहितस्य तदनुसारि—प्रशमसंवेगानुकम्पादेवधर्मादिविषयास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणस्य पंचमगुणस्थानयोग्यदेशचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः । अथवा अनं-तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभोदयजनितरागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सतीति पक्षः । कस्मादिति चेत्, चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मोपादेयत्वे सति षट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवप-दार्थरुचिरूपस्यमूढत्रयादिपंचविंशतिदोषरहितस्य तदनुसारिप्रशमसंवेगानुकंपादेवधर्मादिविषयास्ति-क्याभिव्यक्तिलक्षणस्य षष्ठगुणस्थानरूपसरागचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः । अथवा अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभतीव्रोदयजनिताः प्रमादोत्पादकाः रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न संतीति पक्षः । कस्मात्? इति चेत्—शुद्धबुद्धैकस्व-भावपरमात्मोपादेयत्वे सति तद्योग्यस्वकीयशुद्धात्मसमाधिसंज्ञातसहजानंदैकस्वलक्षणसुखानुभूतिमा-

---

भावास्रवोंके विना द्रव्यास्रव बंधके कारण नहीं हैं, कारणका कारण न हो तभी कार्यका भी अभाव हो जाता है यह प्रसिद्धि है । इसलिये सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ही है इसके बंध नहीं है । यहां सम्यग्दृष्टिको ज्ञानी कहनेकी अपेक्षा ऐसी जानना कि प्रथम तो जिसके ज्ञान हो वही ज्ञानी कहलाता है सो सामान्यज्ञानकी अपेक्षा तो सभी जीव ज्ञानी हैं और सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञानकी अपेक्षा लीजाय तो सम्यग्दृष्टिके सम्यग्ज्ञान है उसकी अपेक्षा ज्ञानी है तथा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है । यदि संपूर्णज्ञानकी अपेक्षा ज्ञानी कहा-जाय तो केवली भगवान् ज्ञानी है क्योंकि जबतक सर्वज्ञ न हो तबतक पांचभावोंके कथनमें अज्ञानभाव बारवे गुणस्थानतक सिद्धांतमे कहा है । इसतरह अनेकांतसे विधि-निषेध सब अपेक्षासे निर्बाध सिद्ध होते हैं सर्वथा एकांतसे कुछ भी नहीं सधता । इसतरह ज्ञानी होके बंध नहीं करता । यह शुद्धनयका माहात्म्य है, इसलिये शुद्ध नयकी महिमा कहते हैं—**अध्यास्य** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष शुद्धनयको अंगीकार कर निरंतर एकाग्रपनेका अभ्यास करते है वे पुरुष रागादिरहित चित्तवालेहुए बंधकर रहित अपने शुद्ध आत्मस्वरूपको अवलोकन करते हैं । कैसा है शुद्धनय? कि जिसका चिन्ह उज्वल ज्ञान है जो कि किसीका छिपाया नहीं छिपता ॥ **भावार्थ**—यहां शुद्धनयकर एकाग्र होना कहा है । सो साक्षात् शुद्धनयका होना तो केवलज्ञान होनेपर होता है और शुद्ध-नय, श्रुतज्ञानका अंश है इसके द्वारा शुद्धस्वरूपका श्रद्धान करना तथा ध्यानकर एकाग्र

"अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयंति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवतः पश्यंति बंधविधुरं समयस्य सारं ॥ १२६ ॥
प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु रागादियोगमुपयांति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबंधमिह बिभ्रति पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालं १२७"१७७।१७८॥

त्रस्वरूपाऽप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिवीतरागचारित्राविनाभूतवीतरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति। तथाचोक्तं—आद्या सम्यक्त्वचारित्रे द्वितीया घ्नन्त्यणुव्रत। तृतीया सयम तुर्या यथाख्यातं क्रुधादयः॥ इति गाथापूर्वार्द्धे व्याख्यानं गतं। **तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति**—यस्मात् गाथायाः पूर्वार्धकथितक्रमेण रागद्वेषमोहा न संति तस्मात्कारणात् रागादिरूपभावास्रवेण विना अस्तित्वमात्रेण, उदयमात्रेण वा भावप्रत्ययाः सम्यग्दृष्टेर्न भवंतीति। **हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं होदि** मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूपचतुर्विधो हेतुः ज्ञानावरणादिरूपस्याष्टविधस्य नवतरद्रव्यकर्मणः कारणं भवति। **तेसिं पिय रागादी** तेषामपि मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययाना उदयागतानां जीवगतरागादिभावप्रत्ययाः कारणं भवंति। कस्मात्? इति चेत् **तेसिमभावे ण बज्झंति** तेषां जीवगतरागादिभावप्रत्ययानामभावे सति द्रव्यप्रत्ययेष्वुदयागतेष्वपि वीतरागपरमसामायिकभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञानस्य सद्भावे सति कर्मणा जीवा न बध्यंते यतः कारणादिति। ततः स्थितं नवतरद्रव्यकर्मास्रवस्योदयागतद्रव्यप्रत्ययाः कारणं, तेषा च जीवगता रागादिभावप्रत्यया कारणमिति

होना है। सो यह परोक्ष अनुभव है। एक देश शुद्धकी अपेक्षा व्यवहारकर प्रत्यक्ष भी कहते हैं। अब फिर कहते हैं कि जो इससे चिग जाते हैं वे कर्मोंको बांधते हैं—**प्रच्युत्य** इत्यादि। **अर्थ**—जो पुरुष शुद्धनयसे छूट फिर रागादिकके संबंधको प्राप्त होते हैं वे ज्ञानको छोड़ कर्मबंधको धारण करते हैं, जिस कर्मबंधने पूर्वबंधे द्रव्यास्रवोंकर अनेक प्रकारविकल्पोंका जाल कररक्खा है॥ **भावार्थ**—फिर शुद्धनयसे चिग जाय तो रागादिकके संबंधसे द्रव्यास्रवके अनुसार अनेकभेदोंको लिये कर्मोंको बांधता है। नयसे चिगनेकर जो फिर मिथ्यात्वका उदय आजाय तब बंध होने लगता है क्योंकि यहां मिथ्यात्वसंबंधी रागादिकसे बंध होनेकी प्रधानता की है और उपयोगकी अपेक्षा गौण है। शुद्धोपयोगरूप रहनेका काल थोडा है इसलिये उसके छूटनेकी अपेक्षा यहां नहीं है। ज्ञान अन्य ज्ञेयोंसे उपयुक्त होवे तौभी मिथ्यात्वके विना रागका अंश है वह ज्ञानीके अभिप्रायपूर्वक नहीं है इसलिये अल्पबंध संसारका कारण नहीं है। अथवा उपयोगकी अपेक्षा लीजाय तो शुद्धस्वरूपसे चिगे और सम्यक्त्वसे नहीं छूटे तब चारित्रमोहके रागसे कुछ बंध होता है वह अज्ञानकी पक्षमें नहीं गिना परंतु बंध तो अवश्य है उसीके मेंटनेको शुद्धनयसे न छूटनेका और शुद्धोपयोगमें लीन होनेका सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको उपदेश है ऐसे जानना॥ १७७।१७८॥

जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेयविहं ।
मंसवसारुहिरादी भावे उयरग्गिसंजुत्तो ॥ १७९ ॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥ १८० ॥

यथा पुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधं ।
मांसवसारुधिरादीन् भावान् उदराग्निसंयुक्तः ॥ १७९ ॥
तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं बद्धा ये प्रत्यया बहुविकल्पं ।
बध्नंति कर्म ते नयपरिहीनास्तु ते जीवाः ॥ १८० ॥

यदा तु शुद्धनयात् परिहीणो भवति ज्ञानी तदा तस्य रागादिसद्भावात् पूर्वबद्धाः

कारणकारणव्याख्यानं ज्ञातव्यं ॥१७७।१७८॥ अथ यदुक्त पूर्वं रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमचैतन्यचमत्कारलक्षणनिजपरमात्मपदार्थभावनारहिताना बहिर्मुखजीवानां पूर्वबद्धप्रत्ययाः नवतरकर्म बध्नंति तमेवार्थं दृष्टाताभ्या दृढयति;—**जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं** यथा पुरुषेण गृहीताहारः स परिणमति अनेकविधं बहुप्रकारं । किं ? **मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो** मांसवसारुधिरादीन् पर्यायान् कर्मतापन्नान् परिणमति । कथंभूतः सन्[२] उदराग्निसंयुक्तः इति दृष्टांतो गतः । **तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं बज्झंते कम्मं ते**—तथैव च पूर्वोक्तोदराग्निसंयुक्ता-

---

आगे इसी अर्थके समर्थन करनेको दृष्टांतकर दिखलाते हैं;—[**यथा**] जैसे [**पुरुषेण**] पुरुषकर [**गृहीतः**] ग्रहणकिया गया [**आहारः**] आहार [**स उदराग्निसंयुक्तः**] वह उदराग्निकर युक्त हुआ [**अनेकविधं**] अनेकप्रकार [**मांसवसारुधिरादीन्**] मांस वसा रुधिर आदि [**भावान्**] भावोंरूप [**परिणमति**] परिणमता है [**तथा तु ज्ञानिनः**] उसीतरह ज्ञानीके [**पूर्वं बद्धाः**] पूर्वे बंधे [**ये**] जो [**प्रत्ययाः**] द्रव्यास्रव [**ते**] वे [**बहुविकल्पं**] बहुतभेदोंको लिये [**कर्म**] कर्मोंको [**बध्नंति**] बांधते हैं । [**ते**] वे [**जीवाः**] जीव [**तु नयपरिहीनाः**] शुद्धनयसे छूट गये हैं अर्थात् रागादि अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ॥ **टीका—** जिस समय ज्ञानी शुद्धनयसे छूट जाता है उस समय उसके रागादिभावोंके सद्भावसे पूर्व बंधे हुए द्रव्यास्रव, वे अपने हेतुपनेके हेतुका सद्भाव होनेसे कार्य भावको अनिवारण हैं अर्थात् अवश्य होते हैं इसकारण ज्ञानावरणादि भावोंकर पुद्गलकर्मको बंधरूप परिणमाते हैं । यह दृष्टांतसे प्रसिद्ध है । जैसे पुरुषकर ग्रहण किया गया आहार उदराग्निसे रस रुधिर मांस आदिभावोंकर परिणाम करनेका प्रत्यक्ष दर्शन है देखनेमें आता है उसतरह दृष्टांतमें भी जानना ॥ **भावार्थ—**ज्ञानी शुद्धनयसे छूटे तब रागादिभावोंका सद्भाव होता है तभी रागादिरूप हुआ कर्मोंको बांधता है । क्योंकि रागादिभाव हैं वे द्रव्यास्रवको निमित्त होते हैं तब वे आस्रव अवश्य कर्मबंधके कारण होते हैं ॥ यहां इसी अर्थका

द्रव्यप्रत्ययाः स्वस्य हेतुत्वहेतुसद्भावे हेतुमद्भावस्यानिवार्यत्वात् ज्ञानवरणादिभावैः पुद्गलकर्मबंधं परिणमयंति। न चैतदप्रसिद्धं पुरुषगृहीताहारस्योदराग्निना रसरुधिरमांसादिभावैः परिणामकारणस्य दर्शनात्। "इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो नहि। नास्ति बंधस्तदत्यागात् तत्त्यागाद्बंध एव हि ॥ १२८ ॥ धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन् धृतिं त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणां। तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः पूर्णं ज्ञानघनौघमेवमचलं पश्यंति शांतं महः ॥ १२९ ॥ "रागादीनां झगिति विगमात् सर्वतोप्यास्रवाणां नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु संपश्यतोऽतः।

हारदृष्टांतेन अज्ञानिनश्चैतन्यलक्षणजीवस्य, नच विवेकिनः। पूर्वं ये बद्धाः, मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययाः, जीवगतरागादिपरिणाममुदराग्निस्थानीयं लब्ध्वा ते बहुविकल्पं कर्म बध्नंति। **णयपरिहीणा दु ते जीवा** येषा जीवाना सबंधिनः प्रत्ययाः कर्म बध्नंति ते जीवाः। कथंभूताः[1] परमसमाधिलक्षणभेदज्ञानरूपात् शुद्धनयाद् भ्रष्टाः च्युताः। अथवा द्वितीयव्याख्यानं, ते प्रत्यया अशुद्धनयेन जीवात् सकाशात् परिहीणा भिन्ना न च भवंति। इदमत्र तात्पर्यं, नि-

---

तात्पर्यरूप श्लोक कहते हैं—**इद** इत्यादि। **अर्थ**—यहा पहले कथनका यह तात्पर्य है कि शुद्धनय है वह त्यागने योग्य नहीं है यह उपदेश है। क्योंकि उस शुद्धनयके नहीं त्यागनेसे तो कर्मका बंध नहीं होता और उसके त्यागसे कर्मका बंध होता ही है ॥ फिर उस शुद्धनयके ही ग्रहणको दृढ करते हुए काव्य कहते हैं—**धीरो** इत्यादि। **अर्थ**—पुण्यवान् महान पुरुषोंकर शुद्धनय कभी छोड़ने योग्य नहीं है। कैसी शुद्धनय है? जो ज्ञानमें स्थिरताको अतिशयसे बाधती है। कैसा वह ज्ञान है? चलाचलपनेसे रहित और सर्व पदार्थोंमें विस्तार युक्त महिमावाला है, अनादिनिधन है अर्थात् जिसका आदि-अंत नहीं है। कैसी शुद्धनय है? कर्मोंका मूलसे नाश करनेवाली है। ऐसी शुद्धनयमें जो ठहर रहे हैं वे पुरुष अपने ज्ञानकी व्यक्तिविशेषको तत्काल समेटकर कर्मके पटलसे बाह्य निकलता तथा संपूर्ण ज्ञानघनका समूहस्वरूप निश्चल जो शांतरूप ज्ञानमय प्रतापका पुंज उसे अवलोकन करते (देखते) हैं ॥ **भावार्थ**—शुद्धनय, एक ज्ञानमय तेज (प्रताप) के पुंज व एक चैतन्यमात्र आत्माको समस्तज्ञानके विशेषोंको गौणकर तथा समस्त पर निमित्तसे हुए भावोंको गौणकर शुद्ध नित्य अभेद (एक) रूप ग्रहण करता है। सो ऐसे शुद्धके विषयस्वरूप अपने आत्माको जो अनुभव करते हैं एकाग्र हो तिष्ठते हैं वे ही समस्त कर्मोंके समूहसे जुदे केवलज्ञानस्वरूप अमूर्तीक पुरुषाकार वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप अपने आत्माको देखते हैं। इस शुद्धनयमें अंतर्मुहूर्त ठहरनेसे शुक्लध्यानकी प्रवृत्ति होकर केवलज्ञान उत्पन्न होता है ऐसा इसका माहात्म्य है। सो इसको अवलंबनकर जबतक केवलज्ञान न उत्पन्न हों तबतक फिर इससे चिगना नहीं

---

१ रागादिसद्भावे। २ आत्मशुद्धत्वानुभव। ३ ज्ञानविशेषव्यक्तिसमूह। ४ बहिरनात्मपदार्थे निर्यद् भ्राम्यत्।

स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावानालोकांतादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥ १२४ ॥" १७९ । १८० ॥

इति आस्रवो निष्क्रांतः ।

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ आस्रवप्ररूपकः चतुर्थोऽङ्कः ॥ ४ ॥

जशुद्धात्मध्येयरूपसर्वकर्मनिर्मूलनसमर्थशुद्धनयो विवेकिभिर्न त्याज्य इति । एवं कारणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं ॥ १७९।१८० ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां **तात्पर्यवृत्तौ** सप्तदशगाथाभिः पंचस्थलैः संवरविपक्षद्वारेण पंचमःआस्रवाधिकारः समाप्तः ॥ ४ ॥

ऐसा श्रीगुरुओंका उपदेश है ॥ इसतरह आस्रवका अधिकार पूर्ण किया ॥ अव रंगभूमिमें आस्रवका स्वांग प्रवेश हुआ था उसको ज्ञानने यथार्थ जान स्वांग दूर कराया और आप प्रगट हुआ इस तरह ज्ञानकी महिमाके अर्थरूप काव्य कहते हैं—**रागादीनां** इत्यादि । **अर्थ**—रागादिक आस्रवोंके तत्काल (क्षणमात्रमें) सब तरह दूर होनेसे नित्य उद्योतरूप कुछ परम वस्तुको अंतरंगमें अवलोकन करनेवाले पुरुषके यह ज्ञान, अतिविस्ताररूप फैलते हुए अपने निजरसके प्रवाहकर सब लोकपर्यंत अन्य भावोंको अंतर्मग्न करता हुआ उदयरूप प्रगट हुआ । कैसा है ज्ञान ? अचल है अर्थात् जैसेके तैसे सब पदार्थ जिसमें सदा प्रतिभासे हैं चले नहीं । फिर कैसा है ? जिसके बराबर दूसरा कोई नहीं है ॥ **भावार्थ**—शुद्धनयको अवलंबनकर जो पुरुष अंतरंगमें चैतन्यमात्र परवस्तुको एकाग्र अनुभवते हैं उनके सब रागादिक आस्रव भाव दूर होके सब पदार्थोंको जाननेवाला निश्चय अतुल्य केवलज्ञान प्रगट होता है । ऐसा यह ज्ञान सबसे महान है । इसप्रकार आस्रवका स्वांग रंगभूमिमें प्रवेश हुआ था उसको ज्ञानने यथार्थस्वरूप जान लिया तब वह निकल गया ॥ १७९ ॥ १८० ॥

सवैया तेईसा—"योग कषाय मिथ्यात्व असंयम आस्रव द्रव्यत आगम गाये, राग विरोध विमोह विभाव अज्ञानमयी यह भावित जाये । जे मुनिराज करैं इनि पाल सुरिद्धि समाज लये सिव थाये, काय नवाय नमूं चितलाय कहूं जय पाय लहूं मन माये ॥" यहांतक १८० गाथा और १२४ कलशा हुए ॥

इसप्रकार **पंडित जयचंद्रजी** कृत समयसारग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी भाषावचनिकामें **आस्रव** नामा **चौथा** अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

---

१ अनंतानंतैः । २ स्वरसस्य चिद्रूपतायाः विसरैः प्रसरैः । ३ सर्वभावानतीतानागतवर्तमानान् पदार्थान् प्लावयन्नात्मनि प्रतिबिंबितान् कुर्वन् ।

अथ संवराधिकारः ॥ ५ ॥



अथ प्रविशति संवरः। "आसंसारविरोधिसंवरजयैकांतावलिप्तास्रवः न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं संपादयत्संवरं। व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुरज्ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते" ॥

तत्रादावेव सकलकर्मसंवरणस्य परमोपायभेदविज्ञानमभिनंदति;—

उवओग उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥ १८१ ॥
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥ १८२ ॥
एयं तु अविवरीदं णाणं जइया उ होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥ १८३ ॥

उपयोगे उपयोगः क्रोधादिषु नास्ति कोप्युपयोगः ।
क्रोधे क्रोधश्चैव हि उपयोगे नास्ति खलु क्रोधः ॥ १८१ ॥
अष्टविकल्पे कर्मणि नोकर्मणि चापि नास्त्युपयोगः ।
उपयोगे च कर्म नोकर्म चापि नो अस्ति ॥ १८२ ॥
एतत्त्वविपरीतं ज्ञानं यदा तु भवति जीवस्य ।
तदा न किंचित्करोति भावमुपयोगशुद्धात्मा ॥ १८३ ॥

अथ प्रविशति संवरः । संवराधिकारेऽपि यत्र मिथ्यात्वरागादिपरिणतबहिरात्मभावनारूप आस्रवो नास्ति तत्र संवरो भवतीत्यास्रवविपक्षद्वारेण, चतुर्दशगाथापर्यंतं वीतरागसम्यक्त्वरूपसंवरव्याख्यानं करोति । तत्रादौ भेदज्ञानात् शुद्धात्मोपलाभो भवति इति संक्षेपव्या-

---

अथ **संवराधिकार** ॥ **दोहा**—"मोहरागरुप दूरिकरि, समिति गुप्ति व्रत पारि । संवरमय आतम कियो, नमूं ताहि मन धारि ॥" अब रंगभूमिमें संवर प्रवेश करता है उस जगह प्रथम ही टीकाकार मंगलके लिये सब स्वांगोंको जाननेवाले सम्यग्ज्ञानकी महिमारूप मंगल करते हैं—**आसंसार** इत्यादि । **अर्थ**—चैतन्यस्वरूपमय स्फुरायमान प्रकाशरूप ज्योति उदयरूप होके फैलती है । कैसी है ज्योति ? अनादि संसारसे लेकर अपने विरोधी संवरको जीतकर एकांतपनेसे मदको प्राप्त हुए आस्रवके तिरस्कारसे जिसने नित्य ही जीत पाई है ऐसे संवरको उत्पन्न कराती है । तथा परद्रव्य और परद्रव्यके निमित्तसे हुए भावोंसे भिन्न है । फिर कैसी है ? अपने यथार्थ स्वरूपमे निश्चित है, उज्ज्वल

न खल्वेकस्य द्वितीयमस्ति द्वयोर्भिन्नप्रदेशत्वेनैकसत्तानुपपत्तेस्तदसत्त्वे च तेन सहाधाराधेयसंबंधोऽपि नास्त्येव, ततः स्वरूपप्रतिष्ठत्वलक्षण एवाधाराधेयसंबंधोऽवतिष्ठते। तेन ज्ञानं ज्ञानतायां स्वरूपे प्रतिष्ठितं। जानताया ज्ञानादपृथग्भूतत्वात् ज्ञाने एव स्यात्। क्रोधादीनि क्रुध्यतादौ स्वरूपे प्रतिष्ठितानि, क्रुध्यतादेः क्रोधादेः पृथग्भूतत्वात्क्रोधादिष्वेव स्युः, न पुनः क्रोधादिषु कर्मणि नोकर्मणि वा ज्ञानमस्ति, नच ज्ञाने क्रोधादयः कर्म नोकर्म वा संति परस्परमत्यंतस्वरूपवैपरीत्येन परमार्थाधाराधेयसंबंधशून्यत्वात्। नच ज्ञानस्य

ख्यानमुख्यत्वेन **उवओगे**—इत्यादि गाथात्रयं। तदनतरं भेदज्ञानात्कथं शुद्धात्मोपलम्भो भवतीति प्रश्ने परिहाररूपेण **जह कणयमग्गि** इत्यादि गाथाद्वयं। ततः परं शुद्धभावनया पुनः शुद्धो भवतीति मुख्यत्वेन **शुद्धं तु वियाणंतो** इत्यादि गाथैकं। ततः परं केन प्रकारेण संवरो भवतीति पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमुख्यतया **अप्पाणमप्पणा** इत्यादि गाथात्रयं। अथात्मा परोक्षस्तस्य ध्यान कथ क्रियेतेति पृष्टे सति देवतारूपदृष्टातेन परोक्षेऽपि ज्ञायत इति परिहाररूपेण **उवदेसेण** इत्यादि गाथाद्वयं। तदनंतरं अथोदयप्राप्तप्रत्यागताना रागाद्यध्यवसानानामभावे सति जीवगतानां रागादिभावास्रवाणामभावो भवतीत्यादि संवरक्रमाख्यानमुख्यत्वेन **तेसिं हेदू** इत्यादि गाथात्रयं। एवं आस्रवविपक्षद्वारेण सवरव्याख्याने समुदायपातनिका।

है निराबाध निर्मल दैदीप्यमान प्रकाशरूप है और अपने ज्ञानप्रवाहरूपी रसका जिसके प्राग्भार है अर्थात् अपने रसके बोझेको लिये हुए है अन्य बोझा उतारके रख दिया है॥ **भावार्थ**—अनादिकालसे संवर आस्रवका विरोधी है उसको आस्रवने जीत लियाथा इसलिये मदसे गर्वित हुआ उसका फिर तिरस्कार कर जयको प्राप्त हुए संवरको प्राप्त करता हुआ और सब पररूपोंसे जुदा होके अपने स्वरूपमे निश्चल हुआ जो यह चैतन्य प्रकाश है वह अपने ज्ञानरसरूप भारको लिये हुए निर्मल उदयरूप होता है॥ आगे संवरके प्रवेशकी आदिमें ही सब कर्मोंके संवर होनेका उत्कृष्ट उपाय जो भेदविज्ञान है उसकी प्रशंसा करते हैं;—[**उपयोगे**] उपयोगमें [**उपयोगः**] उपयोग है [**क्रोधादिषु**] क्रोध आदिकोंमें [**कोपि उपयोगः**] कोई उपयोग [**नास्ति**] नहीं है [**च**] और [**हि**] निश्चयकर [**क्रोधे एव**] क्रोधमें ही [**क्रोधः**] क्रोध है [**उपयोगे**] उपयोगमें [**खलु**] निश्चयकर [**क्रोधः नास्ति**] क्रोध नहीं है, [**अष्टविकल्पे कर्मणि**] आठ प्रकारके ज्ञानावरण आदिकर्मोंमें [**च**] तथा [**नोकर्मणि अपि**] शरीर आदि नोकर्मोंमें भी [**उपयोगः नास्ति**] उपयोग नहीं है [**च**] और [**उपयोगे**] उपयोगमें [**कर्म अपि च नोकर्म**] कर्म और नोकर्म भी [**नो अस्ति**] नहीं है [**यदा तु**] जिसकालमे [**एतत्तु**] ऐसा [**अविपरीतं**] सत्यार्थ [**ज्ञानं**] ज्ञान [**जीवस्य**] जीवके [**भवति**] होजाता है

जानतास्वरूपं तथा क्रुध्यतादिरपि क्रोधादीनां च यथा क्रुध्यतादि स्वरूपं तथा जानतापि कथंचनापि व्यवस्थापयितुं शक्येत, जानतायाः क्रुध्यतादेश्च भावभेदेनोद्भासमानत्वात् स्वभावभेदाच्च वस्तुभेद एवेति नास्ति ज्ञानाज्ञानयोराधाराधेयत्वं । किं च यदा किलैकमेवाकाशं स्वबुद्धिमधिरोप्याधाराधेयभावो विभाव्यते तदा शेषद्रव्यांतराधिरोपितरोधादेव बुद्धेर्न भिन्नाधिकरणापेक्षा प्रभवति । तदप्रभवे चैकमाकाशमेवैक-

---

तद्यथा–प्रथमतस्तावच्छुभाशुभकर्मसंवरस्य परमोपायभूतं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानलक्षणं भेदज्ञानं निरूपयति,—**उवओगे उवओगो** ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादभेदनयेनात्मैवोपयोगस्तस्मिन्नुपयोगाभिधाने शुद्धात्मन्युपयोग आत्मा तिष्ठति **कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो** शुद्धनिश्चयेन क्रोधादिपरिणामेषु नास्ति कोप्युपयोग आत्मा **कोहे कोहो चेव हि** क्रोधे क्रोधश्चैव हि स्फुटं तिष्ठति **उवओगे णत्थि खलु कोहो** उपयोगे शुद्धात्मनि

[तदा] उसकालमें **[उपयोगशुद्धात्मा]** केवल उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा **[किंचित् भावं]** उपयोगके विना अन्य कुछ भी भाव **[न करोति]** नहीं करता ॥ **टीका**—निश्चयकर एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ भी संबंधी नहीं है क्योंकि द्रव्य भिन्न २ प्रदेशरूप है इसलिये एक सत्ताकी अप्राप्ति है हर एक द्रव्यकी सत्ता जुदी २ है और सत्ताके एक न होनेसे अन्य द्रव्यका अन्यद्रव्यके साथ आधाराधेयसंबंध भी नहीं है । इसकारण द्रव्यका अपने स्वरूपमें ही प्रतिष्ठारूप आराधेयसंबंध स्थित है इसलिये ज्ञान आधेय जानपने अपने स्वरूप आधारमें प्रतिष्ठित है क्योंकि जानपना ज्ञानसे अभिन्नस्वरूप है अर्थात् भिन्न प्रदेशरूप नहीं है इसकारण जानने क्रियास्वरूप ज्ञान है वह ज्ञानमें ही है, और क्रोधादिक हैं वे क्रोधरूप क्रिया जो क्रोधपना अपना स्वरूप उसीमें प्रतिष्ठित हैं । क्योंकि क्रोधपनारूप क्रिया क्रोधादिकसे अभिन्नप्रदेश है इसलिये क्रोधरूप क्रिया क्रोधादिमें ही होती है । तथा क्रोधादिकमें अथवा कर्म नोकर्ममें ज्ञान नहीं है और ज्ञानमें क्रोधादिक अथवा कर्म नोकर्म नहीं हैं क्योंकि ज्ञानका तथा क्रोधादिक और कर्म नोकर्मका आपसमें स्वरूपका अत्यंत विपरीतपना है उनका स्वरूप एक नहीं है । इसलिये परमार्थरूप आधाराधेयसंबंधका शून्यपना है । जैसे ज्ञानका जाननक्रियारूप जानपना स्वरूप है उसतरह क्रोधरूप क्रियापनास्वरूप नहीं है, तथा जैसे क्रोधादिकका क्रोधपना आदिक क्रियापनास्वरूप है उसतरह जाननक्रियास्वरूप नहीं है । किसीतरहसे ज्ञानको क्रोधादिक्रियारूप परिणामस्वरूप स्थापन नहीं किया जाता क्योंकि जाननक्रियाके और क्रोधरूपक्रियाके स्वभावको भेदकर प्रगट प्रतिभासमानपना है, स्वभावके भेदसे ही वस्तुका भेद है यह नियम है । इसलिये ज्ञानका और अज्ञानस्वरूप क्रोधादिकका आधाराधेयभाव नहीं है ॥ यहां दृष्टांतकर विशेष कहते हैं । जैसे आ-

स्मिन्नाकाश एव प्रतिष्ठितं विभावयतो न पराधाराधेयत्वं प्रतिभाति। ततो ज्ञानमेव ज्ञाने एव क्रोधादय एव क्रोधादिष्वेवेति साधु सिद्धं भेदविज्ञानं॥ "चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयोरंतर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च। भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना संतो

नास्ति खलु स्फुटं क्रोधः॥ **अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो** तथैव चाष्टविधज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि, औदारिकशरीरादिनोकर्मणि चैव नास्त्युपयोगः उपयोगशब्दवाच्यः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा **उवओगह्मि य कम्मे णोकम्मे चावि णो अत्थि** उपयोगे शुद्धात्मनि शुद्धनिश्चयेन कर्म नोकर्म चैव नास्ति इति। **एदं तु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स** इदं तु चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मसंवित्ति-

---

काश द्रव्य एक ही है उसको अपनी बुद्धिमें स्थापितकरके आधाराधेयभाव कल्पित कीजिये तब आकाशके सिवाय अन्यद्रव्योंका तो अधिकरणरूप आरोपका निरोध हुआ इसीसे बुद्धिको भिन्न आधारकी अपेक्षा नहीं रही। और जब भिन्न आधारकी अपेक्षा न रही तब बुद्धिमें यही ठहरा कि आकाश एक ही है वह एक आकाशमें ही प्रतिष्ठित है आकाशका आधार अन्यद्रव्य नहीं है आप अपने ही आधार है। ऐसी भावना करनेवालेके अन्यका अन्यमें आधाराधेयभाव नहीं प्रतिभासता। इसीतरह जब एक ही ज्ञानको अपनी बुद्धिमें स्थापकर आधाराधेयभाव कल्पना कीजिये तब अवशेष अन्यद्रव्योंका अविरोप करनेका निरोध हुआ क्योंकि बुद्धिको भिन्न आधारकी अपेक्षा नहीं रहती। जब भिन्न आधारकी अपेक्षा ही बुद्धिमे न रही तब एक ज्ञान ही एक ज्ञानमे प्रतिष्ठित सिद्ध हुआ। ऐसी भावना करनेवालेको अन्यका अन्यमें आधाराधेयभाव नहीं प्रतिभासता। इसलिये ज्ञान तो ज्ञानमें ही है और क्रोधादिक क्रोधादिकमें है। इसतरह ज्ञानका और क्रोधादिकका तथा कर्म नोकर्मका भेदका ज्ञान अच्छीतरह सिद्ध हुआ॥ **भावार्थ**—उपयोग तो चैतन्यका परिणमन है वह ज्ञानस्वरूप है और क्रोधादिक भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म ये सब पुद्गलद्रव्यके ही परिणाम है वे जड हैं, इनका और ज्ञानका प्रदेशभेद है इसलिये अत्यंत भेद है। इसकारण उपयोगमें तो क्रोधादिक, कर्म, नोकर्म नहीं हैं और क्रोधादिक, कर्म, नोकर्ममे उपयोग नहीं है। इसतरह इनमे परमार्थस्वरूप आधाराधेयभाव नहीं है अपना अपना आधाराधेयभाव अपने अपनेमे है। इसप्रकार इनमें परस्पर परमार्थसे अत्यंतभेद है। ऐसा भेद जानना वह भेदविज्ञान है वह अच्छीतरह सिद्ध होता है॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**चैद्रूप्यं** इत्यादि। **अर्थ**—यह निर्मल भेदज्ञान उदयको प्राप्त होता है सो इसका निश्चय करनेवाले सत्पुरुषोंको संबोधनकर कहते हैं

द्वितीयच्युताः ॥" एवमिदं भेदज्ञानं यदा ज्ञानस्य वैपरीत्यकणिकामप्यनासादयदविचलितमवतिष्ठते तदा शुद्धोपयोगमयात्मत्वेन ज्ञानं ज्ञानमेव केवल सन्न किंचनापि रागद्वेपमोहरूपं भावमारचयति। ततो भेदविज्ञानाच्छुद्धात्मोपलभंः प्रभवति । शुद्धात्मोपलंभात् रागद्वेपमोहाभावलक्षणः संवरः प्रभवति ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

रूप विपरीताभिनिवेशरहितं भेदज्ञानं यदा भवति जीवस्य **तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा** तस्माद्भेदविज्ञानात्स्वात्मोपलंभो भवति शुद्धात्मोपलंभे जाते किमपि मिथ्यात्वरागादिभावान्न करोति न परिणमति। कथभूतः सन्[१] निर्विकारचिदानंदैकशुद्धोपयोगशुद्धात्मा शुद्धस्वभावः सन्निति। यत्रैवंभूतो संवरो नास्ति तत्रास्रवो भवत्यस्मिन्नधिकारे सर्वत्र ज्ञातव्यमिति तात्पर्य। एवं पूर्वप्रकारेण भेदविज्ञानात् शुद्धात्मोपलाभो भवति। शुद्धात्मोपलंभे सति मिथ्यात्वरागादिभावं न करोति ततो नवतरकर्मसंवरा भवतीति सक्षेपव्याख्यानमु-

---

कि हे सत्पुरुषो! तुम इसको पाकर दूसरे रागादिभावोंसे रहित हुए एक शुद्ध ज्ञानघनके समूहको आश्रयकर उसमे लीन हुए वहुत आनंद मानो। क्या करके यह ज्ञान उदय होता है? चैतन्यरूपको धारण करता ज्ञान और जडरूपको धारता हुआ राग इन दोनोंका जो अज्ञानदशामें एकपनासा दीखता था उसको अंतरंगमें अनुभवके अभ्यासरूप बलकर अच्छीतरह विदारणकर (सब प्रकार विभागकर) उदय होता है॥ **भावार्थ**—ज्ञान तो चेतनास्वरूप है और रागादि पुद्गलके विकार होनेसे जड़ हैं सो दोनों अज्ञानसे एक जड़रूप भासते हैं। सो भेदविज्ञान जब प्रगट होजाता है तब ज्ञानका और रागादिकका भिन्नपना अंतरग अनुभवके अभ्याससे प्रगट होता है तब ऐसा जानता है कि, ज्ञानका स्वभाव तो जाननेमात्र ही है और ज्ञानमें रागादिककी कलुपता (मलिनता) आकुलतारूप सकल्प विकल्प भासते हैं ये सब पुद्गलके विकार हैं जड़ हैं। ऐसे ज्ञान और रागादिकके भेदका आस्वाद आता है। सो यह भेदविज्ञान सब विभावभावोंके मेटनेको कारण होता है और आत्मामें परमसंवर भावको प्राप्त करता है। इसलिये सत्पुरुषोंसे कहते हैं कि इसको पाकर रागादिकोंसे रहित होके शुद्ध ज्ञानघन आत्माका आश्रय लेकर आनंदको प्राप्त होओ॥ अब कहते हैं कि ऐसे यह भेदविज्ञान, जिस समय ज्ञानमें रागादि विकाररूप विपरीतपनेकी कणिकाको नहीं प्राप्त करता अविचलित होता है उससमय वह ज्ञान शुद्धोपयोग स्वरूपपनेकर ज्ञान ही रूप केवल हुआ किंचिन्मात्र भी राग द्वेषमोहभावको नहीं प्राप्त होता। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि भेदविज्ञानसे शुद्धात्माकी प्राप्ति होती है और शुद्धात्माकी प्राप्तिसे राग द्वेष मोह स्वरूप आस्रवभावोंका अभावस्वरूप संवर होता है॥ १८१। १८२। १८३॥

कथं भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलंभ ? इति चेत् ;—

जह कणय मग्गितवियंपि कणयहावं ण तं परिच्चयइ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी उ णाणित्तं ॥ १८४ ॥
एवं जाणइ णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥ १८५ ॥

यथा कनकमग्नितप्तमपि कनकभावं न तं परित्यजति।
तथा कर्मोदयतप्तो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानित्वं ॥ १८४ ॥
एवं जानाति ज्ञानी अज्ञानी जानाति रागमेवात्मानं।
अज्ञानतमोऽवच्छन्नः आत्मस्वभावमजानन् ॥ १८५ ॥

यतो यस्यैव यथोदितभेदविज्ञानमस्ति स एव तत्सद्भावात् ज्ञानी सन्नेवं जानाति। यथा प्रचंडपावकप्रतप्तमपि सुवर्ण न सुवर्णत्वमपोहति तथा प्रचंडविपाकोपष्टब्धमपि ज्ञानं न

ख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १८१।१८२।१८३ ॥ अथ कथं भेदज्ञानादेव शुद्धात्मोपलंभो भवतीति पृच्छति;—**जह कणयमग्गितवियं कणयसहावं ण तं परिच्चयदि—** यथा कनकं सुवर्णमग्नितप्तमपि तं कनकस्वभावं न परित्यजति। **तह कम्मोदयतविदो ण चयदि णाणी दु णाणित्तं** तेन प्रकारेण तीव्रपरीषहोपसर्गेण कर्मोदयेन संतप्तोऽपि रागद्वेषमोहपरिणामपरिहारपरिणतो भेदरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञानी न त्यजति। किं तत् ?—शुद्धात्मसंवित्तिलक्षण ज्ञानित्वं पाडवादिवदिति। **एवं जाणदि णाणी** एवमुक्तप्रकारेण शुद्धात्मानं

आगे पूछते है कि भेदविज्ञानसे ही शुद्धात्माकी प्राप्ति कैसे होती है ? उसका उत्तर गाथामें कहते हैं;—[**यथा**] जैसे [**कनकं**] सुवर्ण [**अग्नितप्तं अपि**] अग्निसे तप्त हुआ भी [**तं**] अपने [**कनकभावं**] सुवर्णपनेको [**न परित्यजति**] नहीं छोड़ता [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**कर्मोदयतप्तस्तु**] कर्मोंके उदयसे तप्तायमान हुआ भी [**ज्ञानित्वं**] ज्ञानीपने स्वभावको [**न जहाति**] नहीं छोड़ता [**एवं**] इसतरह [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**जानाति**] जानता है। और [**अज्ञानी**] अज्ञानी [**रागमेव**] रागको ही [**आत्मानं**] आत्मा जानता है क्योंकि वह अज्ञानी [**अज्ञानतमोवच्छन्नः**] अज्ञानरूप अंधकारसे व्याप्त है इसलिये [**आत्मस्वभावं**] आत्माके स्वभावको [**अजानन्**] नहीं जानता हुआ प्रवर्तता है ॥ **टीका**—जिसके जैसा कहा गया है वैसा भेदविज्ञान है वही उस भेदज्ञानके सद्भावसे ज्ञानी हुआ ऐसा जानता है। जैसे प्रचंड अग्निसे तपाया हुआ भी सुवर्ण अपने सुवर्णपने स्वभावको नहीं छोडता उसीतरह तीव्रकर्मके उदयकर सहित हुआ भी ज्ञानी अपने ज्ञानपनेको नहीं छोड़ता, क्योंकि जो जिसका स्वभाव है वह हजारों कारण मि-

ज्ञानत्वमपोहति, कारणसहस्रेणापि स्वभावस्यापोढुमशक्यत्वात् । तदपोहे तन्मात्रस्य वस्तुन एवोच्छेदात् । नचास्ति वस्तूच्छेदः सतो नाशासंभवात् । एवं जानंश्च कर्माक्रांतोऽपि न रज्यते न द्वेष्टि न मुह्यति किं तु शुद्धमात्मानमुपलभते । यस्य तु यथोदितं भेदविज्ञानं नास्ति स तदभावादज्ञानी सन्नज्ञानतमसाच्छन्नतया चैतन्यचमत्कारमात्रमात्मस्वभावमजानन् रागमेवात्मानं मन्यमानो रज्यते द्वेष्टि मुह्यते च न जातु शुद्धमात्मानमुपलभते । ततो भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलंभः ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

कथं शुद्धात्मोपलंभादेव संवर ? इति चेत् ;—

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥ १८६ ॥

शुद्धं तु विजानन् शुद्धं चेवात्मानं लभते जीवः ।
जानंस्त्वशुद्धमशुद्धमेवात्मानं लभते ॥ १८६ ॥

जानाति वीतरागस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानी **अण्णाणी मुणदि रागमेवादं** अज्ञानी पुनः पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् मिथ्यात्वरागादिरूपमेवात्मानं मनुते जानाति । कथभूतः सन् [१] **अण्णाणतमोच्छण्णो** अज्ञानतमसोच्छन्नः प्रच्छादितो झपितः । पुनरपि कथभूतः सन् । **आदसहावं अयाणंतो** निर्विकारपरमचैतन्यचमत्कारस्वभावं शुद्धात्मान निर्विकल्पसमाधेरभावादजानन् अननुभवन् इति । एवं भेदज्ञानात्कथं शुद्धात्मोपलभो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरकथनरूपेण

लनेपर भी अपने स्वभावके छोड़नेको असमर्थ है । यदि स्वभावको छोड़ दे तो उसके छोडनेसे उस स्वभावमात्र वस्तुका ही अभाव होजाय ऐसा वस्तुका अभाव होता नहीं है क्योंकि सत्ताका नाश होना असंभव है । ऐसा जानता हुआ ज्ञानी कर्मोंकर व्याप्त हुआ भी रागरूप, द्वेषरूप और मोहरूप नहीं होता । वह तो एक शुद्ध आत्माको ही पाता है । तथा जिसके जैसा कहा गया है वैसा विज्ञान नहीं है वह उस भेदविज्ञानके अभावसे अज्ञानी हुआ अज्ञानरूप अंधकारकर आच्छादितपना होनेके कारण चैतन्य चमत्कारमात्र आत्माके स्वभावको नहीं जानता रागस्वरूप ही आत्माको मानता हुआ रागी होता है द्वेषी होता है मोही होता है परंतु शुद्ध आत्माको कभी नहीं पाता । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि भेदविज्ञानसे ही शुद्ध आत्माकी प्राप्ति है ॥ **भावार्थ**—भेदविज्ञानसे आत्मा जब ज्ञानी होता है तब कर्मका उदय आनेसे तप्तायमान हुआ भी अपने ज्ञानस्वभावसे नहीं छूटता । यदि स्वभावसे छूट जाय तो वस्तुका नाश हो जाय ऐसा न्याय है । इसलिये कर्मके उदयके समय ज्ञानी, रागी द्वेषी मोही नहीं होता । और जिसके भेदविज्ञान नहीं है वह अज्ञानी हुआ रागी द्वेपी मोही होता है । इसलिये यह निश्चय हुआ कि भेदविज्ञानसे ही शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

आगे पूछते हैं कि शुद्ध आत्माकी प्राप्तिसे ही संवर कैसे होता है ? उसका उत्तर क-

यो हि नित्यमेवाच्छिन्नधारावाहिना ज्ञानेन शुद्धमात्मानमुपलभमानोऽवतिष्ठते स ज्ञानमयाद् भावात् ज्ञानमय एव भावो भवतीति कृत्वा प्रत्यग्कर्मास्रवणनिमित्तस्य रागद्वेषमोहसंतानस्य निरोधाच्छुद्धमेवात्मानं प्राप्नोति । यो हि नित्यमेवाज्ञानेनाशुद्धमात्मानमुपलभमानोऽवतिष्ठते सोऽज्ञानमयाद्भावादज्ञानमयो भावो भवतीति कृत्वा प्रत्यक्कर्मास्रवणनिमित्तस्य रागद्वेषमोहसंतानस्यानिरोधादशुद्धमेवात्मानं प्राप्नोति । अतः शुद्धात्मोपलंभा-

---

गाथाद्वयं गत ॥ १८४।१८५ ॥ अथ कथं शुद्धात्मोपलंभात्सवर इति पुनरपि पृच्छति;— **सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितमनंतज्ञानादिगुणस्वरूप शुद्धात्मान निर्विकारसुखानुभूतिलक्षणेन भेदज्ञानेन विजानन्ननुभवन् ज्ञानी जीवः । एवं गुणविशिष्ट यादृगं शुद्धात्मानं ध्यायति भावयति तादृशमेव लभते । कस्मात् ? इति चेत् उपादानसदृश कार्यमितिहेतोः **जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि** अशुद्धमिथ्यात्वादिपरिणतमात्मान जानन्ननुभवन् सन् अशुद्धं, नरनारकादिरूपमेवात्मानं लभते ।

हते हैं,—[**शुद्धं तु**] शुद्ध आत्माको [**विजानन्**] जानता हुआ [**जीवः**] जीव [**शुद्धं चैव**] शुद्ध ही [**आत्मानं**] आत्माको [**लभते**] पाता है [**तु**] और [**अशुद्धं आत्मानं**] अशुद्ध आत्माको [**जानन्**] जानता हुआ जीव [**अशुद्धमेव**] अशुद्ध आत्माको ही [**लभते**] पाता है ॥ **टीका**—जो पुरुष उसी अविच्छेदरूप धारावाही ज्ञानसे शुद्ध आत्माको पाता हुआ स्थित है वह पुरुष "ज्ञानमयभावसे ज्ञानमय ही भाव होते हैं" ऐसे न्यायकर आगामी कर्मके आस्रवके निमित्त जो रागद्वेष मोह उनकी संतान (परिपाटी) रूप उत्पत्तिके निरोधसे शुद्ध आत्माको ही पाता है । और जो जीव नित्य ही अज्ञानकर अशुद्ध आत्माको पाता हुआ तिष्ठता है वह जीव "अज्ञानमय भावसे अज्ञानमय ही भाव होता है" ऐसे न्यायकर आगामी कर्मके आस्रवणके निमित्त जो रागद्वेष मोह उनकी संतानरूप उत्पत्तिका निरोध न होनेसे अशुद्ध आत्माको ही पाता है । इसलिये शुद्ध आत्माकी प्राप्तिसे ही संवर होता है ॥ **भावार्थ**—आत्माको शुद्ध अनुभवता है वह तो शुद्धको ही पाता है उसके आस्रव रुककर संवर होता है और जो आत्माको अशुद्ध अनुभवता है वह अशुद्धको ही पाता है उसके आस्रव नहीं रुकते अर्थात् संवर नहीं होता ॥ अत्र इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**यदि** इत्यादि । **अर्थ**—जो आत्मा किसीतरह (महान् भाग्यसे) धारावाही ज्ञानकर निश्चल शुद्ध आत्माको प्राप्त हुआ तिष्ठता है तब यह आत्मा, उदय होते हुए आत्मारूप क्रीड़ावनवाले अपने आत्माको परपरिणतिरूप राग द्वेष मोहके निरोधसे शुद्धको पाता है । इसतरह शुद्ध आत्माकी प्राप्तिसे संवर होता है । यहांपर जो धारावाही ज्ञान कहा गया है उसका अर्थ यह है कि जो एक प्रवाहरूप ज्ञान हो वह

देव संवरः । "यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते । तदयमुदयमात्माराममात्मानमात्मा परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥ १ ॥" १८६ ॥

केन प्रकारेण संवरो भवतीति चेत् ;—

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु ।
दंसणणाणह्मि ठिदो इच्छाविरओ य अण्णह्मि ॥ १८७ ॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १८८ ॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥ १८९ ॥

आत्मानमात्मना रुन्ध्वा द्विपुण्यपापयोगयोः ।
दर्शनज्ञाने स्थितः इच्छाविरतश्चान्यस्मिन् ॥ १८७ ॥
यः सर्वसंगमुक्तो ध्यायत्यात्मानमात्मनात्मा ।
नापि कर्म नोकर्म चेतयिता चिंतयत्येकत्वं ॥ १८८ ॥
आत्मानं ध्यायन् दर्शनज्ञानमयोऽनन्यमयः ।
लभतेऽचिरेणात्मानमेव स कर्मप्रविमुक्तं ॥ १८९ ॥

यो हि नाम रागद्वेषमोहमूले शुभाशुभयोगे वर्तमानः, दृढतरभेदविज्ञानावष्टंभेन आत्मानं

स कः ? । अज्ञानी जीव इति । एवं शुद्धात्मोपलभादेव कथं सवरो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरकथन-रूपेण गाथा गता ॥ १८६ ॥ अथ केन प्रकारेण संवरो भवतीति पृष्टे पुनरपि विशेषेणोत्तर ददाति;—**अप्पाणमप्पणा रुंभिदूण दो (सु) पुण्णपावजोगेसु** आत्मानं कर्म-

---

धारावाही है । सो इसकी दो रीतियां हैं—एक तो मिथ्याज्ञान बीचमें न आये ऐसा सम्यग्ज्ञान वह धारावाही है और दूसरा उपयोगका ज्ञेयके साथ उपयुक्त होनेकी अ-पेक्षा है । सो जहांतक एक ज्ञेयसे उपयोग उपयुक्त होता है वहांतक धारावाही कहा जाता है । इसकी स्थिति अंतर्मुहूर्त ही है बादमें विच्छेद हो जाता है । सो जहां जैसी विवक्षाको वहां वैसा जानना । श्रेणी चढ़े तब शुद्ध आत्मासे उपयुक्त हो धारावाही होता है ॥ १८६ ॥

आगे पूछते है कि वह संवर किसतरहसे होता है,? उसका उत्तर कहते हैं [**यः**] जो [**आत्मा**] जीव [**आत्मानं**] अपने आत्माको [**आत्मना**] अपनेकर [**द्विपुण्यपापयोगयोः**] दो पुण्यपापरूप शुभाशुभयोगोंसे [**रुन्ध्वा**] रोकके [**दर्शनज्ञाने**] दर्शनज्ञानमें [**स्थितः**] ठहरा हुआ [**अन्यस्मिन् इच्छावि-**

आत्मनैवात्यंतं रुंध्वा शुद्धदर्शनज्ञानात्मद्रव्ये सुष्ठु प्रतिष्ठितं कृत्वा समस्तपरद्रव्येच्छापरिहारेण समस्तसंगविमुक्तो भूत्वा नित्यमेवातिनिष्प्रकंपः सन्, मनागपि कर्मनोकर्मणोरसंस्पर्शेन आत्मीयमात्मानमेवात्मना ध्यायन् स्वयं सहजचेतयितृत्वादेकत्वमेव चेतयते; स खल्वेकत्वचेतनेनात्यंतविविक्तं चैतन्यचमत्कारमात्मानं ध्यायन् शुद्धदर्शनज्ञानमयमात्मद्रव्यमवाप्तः शुद्धात्मोपलंभे सति समस्तपरद्रव्यमयत्वमतिक्रांतः सन् अचिरेणैव

त्वापन्नं आत्मना करणभूतेन द्वयोः पुण्यपापयोगयोरधिकारभूतयोर्वर्तमानं स्वसंवेदनज्ञानबलेन शुभाशुभयोगाभ्यां सकाशाद्रुन्ध्वा व्यावर्त्य। **दंसणणाणम्हि ठिदो** दर्शनज्ञाने स्थितः सन्। **इच्छाविरदो य अण्णम्हि** अन्यस्मिन् देहरागादिपरद्रव्ये सर्वत्रेच्छारहितश्चेति प्रथमगाथा गता ॥ **जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा** आत्मा, पुनरपि कथंभूतः ॥ **सव्वसंगमुक्को** निस्संगात्मतत्त्वविलक्षणबाह्याभ्यन्तरसर्वसंगमुक्तः सन्। **झायदि** ध्यायति। क, **अप्पाणं** निजशुद्धात्मानं। केन करणभूतेन। **अप्पणो** स्वशुद्धात्मना। **णवि कम्मं णोकम्मं** नैव कर्म्म नोकर्म ध्यायति, आत्मानं ध्यायन्। किं करोति। **चेदा चिंतेदि** एव गुणविशिष्टश्चेतयितात्मा चिंतयति। किं? **एयत्तं** "एकोह निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः। बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥" इत्याद्येकत्वं इति द्वितीयगाथा गता ॥ **सो** इत्यादि। **सो** स पूर्वसूत्रद्वयोक्तः पुरुषः **अप्पाणं झायंतो** एवं पूर्वोक्तप्रकारेणा-

---

रतः] अन्यवस्तुमें इच्छारहित [**च**] और [**सर्वसंगमुक्तः**] सब परिग्रहसे रहित हुआ [**आत्मना**] आत्माकर ही [**आत्मानं**] आत्माको [**ध्यायति**] ध्याता है तथा [**कर्म नोकर्म**] कर्म नोकर्मको [**न अपि**] नहीं ध्याता और आप [**चेतयिता**] चेतनारूप होनेसे [**एकत्वं**] उस स्वरूप एकपनेको [**चिंतयति**] अनुभवता है विचारता है [**सः**] वह जीव [**दर्शनज्ञानमयः**] दर्शनज्ञानमय हुआ [**अनन्यमयः**] अन्यमय नहीं होके [**आत्मानं ध्यायन्**] आत्माको ध्याता हुआ [**अचिरेण**] थोड़े समयमें [**एव**] ही [**कर्मविप्रमुक्तं**] कर्मोंकर रहित [**आत्मानं**] आत्माको [**लभते**] पाता है ॥ **टीका**—निश्चयकर जो जीव राग द्वेषमोहरूप मूलवाले ऐसे शुभाशुभयोगोंमें वर्तमान अपने आत्माको दृढतर भेदविज्ञानके अवलंबनसे आपसे ही अत्यंत रोककर, शुद्धज्ञान दर्शनरूप अपने आत्मद्रव्यमें अच्छीतरह ठहराके, समस्त परद्रव्योंकी इच्छारूप परिग्रहसे रहित होके नित्य ही निश्चल हुआ किंचितमात्र भी कर्मको नहीं स्पर्श करके अपने आत्माको ही अपनेकर ध्यावता आप (स्वयं) चेतनेवाला है अपने चेतनारूप ही एकत्वको अनुभवता है ज्ञानचेतनामय होता है वह जीव निश्चयकर एकपनेका अनुभव करनेसे परद्रव्यसे अत्यंत भिन्न चैतन्य चमत्कारमात्र अपने आत्माको ध्याता हुआ, शुद्ध दर्शन ज्ञानमय आत्मद्रव्यको

सकलकर्मविमुक्तमात्मानमवाप्नोति । एष संवरप्रकारः । "निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या भवति नियतमेषां शुद्धमात्मोपलंभः । अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरे स्थितानां भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥" १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

केन क्रमेण संवरो भवतीति चेत् ;—

तेसिं हेऊ भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य ॥ १९० ॥
हेउअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो ॥ १९१ ॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होइ ॥ १९२ ॥

तेषां हेतवः भणिताः अध्यवसानानि सर्वदर्शिभिः ।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतभावश्च योगश्च ॥ १९० ॥
हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणोऽपि निरोधः ॥ १९१ ॥
कर्मणोऽभावेन च नोकर्मणामपि जायते निरोधः ।
नोकर्मनिरोधेन च संसारनिरोधनं भवति ॥ १९२ ॥

त्मानं कर्मतापन्नं चिंतयन् निर्विकल्परूपेण ध्यायन् सन् । **दंसणणाणमइओ** दर्शनज्ञानमयो भूत्वा । **अणण्णमणो** अनन्यमनाश्च **लहदि** लभते । कमेव, **अप्पाणमेव** आत्मानमेव। कथंभूत, **कम्मणिम्मुक्कं** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविमुक्तं । केन, **अचिरेण** स्तोककालेन । एवं केन प्रकारेण संवरो भवति, इति प्रश्ने सति विशेषपरिहारव्याख्यानमुख्यत्वेन

प्राप्त होनेसे समस्त परद्रव्यमयपनेसे दूर हुआ थोड़े समयमें ही सब कर्मोंसे रहित आत्माको पाता है। यह संवरका प्रकार है ॥ **भावार्थ—**जो जीव पहले तो रागद्वेष मोहसे मिले हुए शुभ अशुभ मनवचन कायके योगोंसे अपने आत्माको भेदज्ञानके बलकर चलने न दे, पीछे शुद्धदर्शन ज्ञानमय अपने स्वरूपमें निश्चल करे और फिर सब बाह्य अभ्यंतरके परिग्रहोंसे रहित होकर कर्म नोकर्मसे भिन्न अपने स्वरूपमें एकाग्र होके ध्यान करता हुआ तिष्ठता है वह थोडे समयमें ही सव कर्मोंका नाश करता है । यह संवर होनेकी रीति है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**निज** इत्यादि । **अर्थ—**जो पुरुष भेदविज्ञानकी शक्ति कर अपने स्वरूपकी महिमामें लीन हैं उनको नियमसे शुद्धतत्त्वकी प्राप्ति होती है, और जो उस शुद्धतत्त्वकी प्राप्ति होनेपर निश्चल होके समस्त अन्यद्रव्योंसे दूर ठहरे हुए हैं उनके अक्षय कर्मका अभाव होता है फिर कर्मका बंध नहीं होता ॥ १८७ । १८८ । १८९ ॥

संति तावज्जीवस्य, आत्मकर्मैकत्वाशयमूलानि मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगलक्षणानि अध्यवसानानि । तानि रागद्वेषमोहलक्षणस्यास्रवभावस्य हेतवः । आस्रवभावः कर्महेतुः ।

गाथात्रयं गतं ॥ १८७।१८८।१८९ ॥ अथ परोक्षस्यात्मनः कथं ध्यानं भवतीति प्रश्ने सत्युत्तरं ददाति;—

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि ।
भण्णदि तहेव धिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य ॥

उपदेशेन परोक्षरूपं यथा द्रष्टा जानाति । भण्यते तथैव ध्रियते जीवो दृष्टश्च ज्ञातश्च ॥ **उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि** यथा लोके परोक्षमपि देवतारूपं परोपदेशाल्लिखितं दृष्ट्वा कश्चिद्देवदत्तो जानाति। **भण्णदि तहेव धिप्पदि** कर्म ।

आगे पूछते हैं कि किस क्रमसे होता है ? उसका उत्तर कहते हैं;—[**तेषां**] पूर्वकहे हुए रागद्वेष मोहरूप आस्रवोंके [**हेतवः**] हेतु [**सर्वदर्शिभिः**] सर्वज्ञदेवने [**मिथ्यात्वं**] मिथ्यात्वं [**अज्ञानं**] अज्ञान [**च अविरतभावः**] अविरतभाव [**च योगः**] और योग ये चार [**अध्यवसानानि**] अध्यवसान [**भणिताः**] कहे हैं सो [**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके [**हेत्वभावे**] इन हेतुओंका अभाव होनेसे [**नियमात्**] नियमसे [**आस्रवनिरोधः**] आस्रवका निरोध [**जायते**] होता है और [**आस्रवभावेन विना**] आस्रवभावके विना (न होनेसे) [**कर्मणः अपि**] कर्मका भी [**निरोधः**] निरोध [**जायते**] होता है [**च**] और [**कर्मणः अभावेन**] कर्मके अभावसे [**नोकर्मणां अपि**] नोकर्मोंका भी [**निरोधः**] निरोध [**जायते**] होता है [**च**] तथा [**नोकर्मनिरोधेन**] नोकर्मके निरोध होनेसे [**संसारनिरोधनं**] संसारका निरोध [**भवति**] होता है ॥ **टीका—**पहले ही जीवके आत्मा और कर्मके एकपनेके निश्चयरूप आशयस्वरूप मूलकारणवाले मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगस्वरूप अध्यवसान विद्यमान हैं वे राग द्वेष मोहस्वरूप आस्रवोंके कारण हैं, आस्रवभाव कर्मके कारण हैं, कर्म नोकर्मके कारण हैं और नोकर्म संसारके कारण हैं । इसलिये आत्मा नित्य ही आत्मा और कर्मके एकपनेके निश्चयरूप आशयसे आत्माको निश्चयकर मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगमय मानता है । उस निश्चयसे राग द्वेष मोहरूप आस्रव भावोंको भाता है उससे कर्मका आस्रव होता है, कर्मसे नोकर्म होता है और नोकर्मसे संसार प्रगट प्रवर्तता है । तथा जिस समय यह आत्मा, आत्मा और कर्मके भेद ज्ञानकर शुद्ध चैतन्य चमत्कार मात्र आत्माको पाता है उस समय मिथ्यात्व अज्ञान अविरति योगस्वरूप अध्यवसानरूप आस्रवभावोंके कारणोंका इस (आत्मा) के अभाव होता है, मिथ्यात्व आदिका अभाव

नोकर्महेतुः । नोकर्म, संसारहेतुः इति ततो नित्यमेवायमात्मा, आत्मकर्मणोरेकत्वाध्यासेन मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगमयमात्मानमध्यवस्यति । ततो रागद्वेषमोहरूपमास्रवभाव भाव-

---

जीवो दिट्ठो य णादो य । तथैव वचनेन भण्यते तथैव मनसि गृह्यते । कोसौ ? जीवः, केन रूपेण ? मया दृष्टो ज्ञातश्चेति मनसा संप्रधारयति । तथा चोक्तं । "गुरूपदेशादभ्यासात्सं-वित्तः स्वपरांतरं । जानाति य. स जानाति मोक्षसौख्य निरंतरं ॥" अथ—

कोविदिदच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज रूवमिणं ।
पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं ॥

कोविदितार्थः साधुः संप्रतिकाले भणेत् रूपमिदं । प्रत्यक्षमेव दृष्ट परोक्षज्ञाने प्रवर्तमानं ॥ अथ मतं **भणिज्ज रूवमिणं पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं** । योसौ प्रत्यक्षेणात्मान दर्शयति तस्य पार्श्वे पृच्छामो वयं। नैवं (?) **कोविददिच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज** कोऽविदितार्थः साधुः संप्रतिकाले ब्रूयात्? न कोपि । किं ब्रूयात्, न कोऽपि । किंतु **रूवमिणं पच्चक्खमेव दिट्ठं** इदमात्मस्वरूपं प्रत्यक्षमेव मया दृष्ट । चतुर्थकाले केवलिज्ञानिवत् । अपि तु नैवं । कथभूतमिदमात्मस्वरूप । **परोक्खणाणे पव-ट्ठंतं** केवलज्ञानापेक्षया परोक्षे श्रुतज्ञाने प्रवर्तमानं, इति । किंच विस्तरः । यद्यपि केवलज्ञानापे-क्षया रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनरूप भावश्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्ष भण्यते, तथापि इंद्रियमनोजनितसविकल्पज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षं । तेन कारणेन आत्मा स्वसंवेदनज्ञानापेक्षया

होनेसे राग द्वेष मोहरूप आस्रव भावका अभाव होता है, राग द्वेष मोहका अभाव होनेसे नोकर्मका अभाव होता है और नोकर्मका अभाव होनेसे संसारका अभाव होता है । ऐसा यह संवरका अनुक्रम है ॥ **भावार्थ**—जीवके जबतक आत्मा और कर्मके एकपनेका आशय है भेदविज्ञान नहीं है तवतक मिथ्यात्व अज्ञान अविरत योगरूप अ-ध्यवसान विद्यमान हैं, उनसे राग द्वेप मोहरूप आस्रवभाव होता है, आस्रवभावसे कर्म बंधते है, कर्मसे नोकर्म शरीरारादिक प्रगट होते हैं और नोकर्मसे संसार है । परतु जि-ससमय आत्मा और कर्मका भेदविज्ञान होजाता है तब शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है, उसके होनेसे मिथ्यात्वादि अध्यवसानका अभाव होता है, अध्यवसानका अभाव होनेसे राग द्वेप मोहरूप आस्रवका अभाव होता है, आस्रवके अभावसे कर्म नहीं बंधता, कर्मके अभावसे नोकर्म नहीं प्रगट होता और नोकर्मके अभावसे संसारका अभाव होता है । ऐसा संवरका अनुक्रम जानना ॥ अब इस संवरका कारण जो पहले ही भेदविज्ञान कहा था उसकी भावनाका उपदेश करते है उसका कलशरूप काव्य कहते हैं—**संप-द्यते** इत्यादि । **अर्थ**—जिसकारण यह संवर निश्चयसे साक्षात् शुद्धात्मतत्त्वके पानेसे होता है और शुद्धात्म तत्त्वका पाना आत्मा और कर्मके भेदविज्ञानसे होता है अर्थात्

यति । ततः कर्म आस्रवति, ततो नोकर्म भवति, ततः संसारः प्रभवति । यदा तु आत्मकर्मणोर्भेदविज्ञानेन शुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मानं उपलभते तदा मिथ्यात्वाविरतियोगलक्षणानां अध्यवसानानां आस्रवभावहेतूनां भवत्यभावः । तदभावे रागद्वेष-

---

प्रत्यक्षो भवति, केवलज्ञानापेक्षया परोक्षोऽपि भवति । सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति । किंतु चतुर्थकालेऽपि केवलिनः, किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयंति? तेपि दिव्यध्वनिना भणित्वा गच्छंति । तथापि श्रवणकाले श्रोतृणा परोक्ष एव पश्चात्परमसमाधिकाले प्रत्यक्षो भवति । तथा इदानीं कालेऽपीति भावार्थः । एव परोक्षस्यात्मनः कथ ध्यानं क्रियते, इति प्रश्ने परिहाररूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ अथ, उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययस्वरूपाणा रागाद्यध्यवसानानामभावे सति जीवगतरागादिभावकर्मरूपाणां अध्यवसानानां अभावो भवतीत्यादिरूपेण संवरस्य क्रमाख्यानं कथयति;—

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं । तेषां प्रसिद्धानां जीवगतरागादिविभावकर्मरूपाणा भावास्रवाणां हेतवः कारणानि भणितानि । कानि?, उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागतानि रागाद्यध्यवसानानि । कैः, सर्वदर्शिभिः । ननु अध्यवसानानि भावकर्मरूपाणि तानि जीवगतान्येव भवंति उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागतानि भावप्रत्ययानि कथं भवंतीति? । नैव, यतः

कर्म और आत्माको जुदे जाने तव आत्माको अनुभवे । इस कारण भेदविज्ञान अतिशयकर भावनेयोग्य है ॥ फिर कहते हैं कि भेदविज्ञान कहांतक भावना? **भावये** इत्यादि । **अर्थ**—इस भेदविज्ञानको निरंतर धाराप्रवाहरूप जिसमें कि विच्छेद न पड़े इसतरह तव तक भावे जवतक कि ज्ञान परभावोंसे छूटकर अपने स्वरूपज्ञानमें ही ठहरजाय ॥ **भावार्थ**—यहां ज्ञानका ज्ञानमें ठहरना दोप्रकारसे जानना । एक तो मिथ्यात्वका अभाव होके सम्यग्ज्ञान हो फिर मिथ्यात्वका अभाव होके सम्यग्ज्ञान होजाय उसके बाद मिथ्यात्व नहीं आये । दूसरा यह है कि शुद्धोपयोगरूप होके ज्ञान ठहरे अन्यविकाररूप नहीं परिणमे । सो जवतक दोनों प्रकार न वनै तबतक निरंतर भेद विज्ञानकी भावना रखनी चाहिये ॥ फिर भेदविज्ञानकी महिमा कहते हैं—**भेद** इत्यादि । **अर्थ**—जो कोई सिद्ध हुए हैं वे इस भेदविज्ञानसे ही हुए है और जो कर्मसे बंधे हैं वे इसी भेदविज्ञानके अभावसे वंधे हुए हैं ॥ **भावार्थ**—आत्मा और कर्मकी एकताके माननेसे ही संसार है वहां अनादिसे जवतक भेदविज्ञान नहीं है तवतक कर्मसे वंधता ही है । इसलिये कर्मबंधका मूल भेदविज्ञानका अभाव ही है । जो वंधे हैं वे इसीके अभावसे वंधे हैं और जो सिद्ध हुए हैं वे इस भेदविज्ञानके होनेपर ही हुए है । इसकारण प्रथम भेदविज्ञान ही मोक्षका कारण है । यहां ऐसा भी जानना कि विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध तथा वेदांती वस्तुको अद्वैत कहते हैं वे अद्वैतकी सिद्धि अनुभवसे ही कहते हैं उनका भी इस भेद विज्ञानसे सिद्धि कहनेसे निषेध हुआ, क्योंकि सर्वथा अद्वैत वस्तुका

मोहरूपास्रवभावस्य भवत्यभावः, तदभावेऽपि भवति कर्माभावः, तदभावेऽपि भवति संसाराभावः । इत्येष संवरक्रमः ।

"संपद्यते संवर एव साक्षात् शुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलंभात् । स भेदविज्ञानत एव तस्मात्तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यं ॥ ११७ ॥ भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया । ताव- द्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥ भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।

कारणात् भावकर्म द्विधा भवति। जीवगत पुद्गलकर्मगतं च । तथाहि—भावक्रोधादिव्यक्तिरूपं जीवभावगतं भण्यते । पुद्गलपिंडशक्तिरूपं पुद्गलद्रव्यगत । तथा चोक्तं—**पुग्गलपिंडो दव्वं कोहादी भावदव्वं तु**—इति जीवभावगतं भण्यते ॥ **पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु**—इति पुद्गलद्रव्यगत ॥ अत्र दृष्टातो यथा–मधुरकटुकादिद्रव्यस्य भक्षणकाले जीवस्य मधुरकटुकस्वादव्यक्तिविकल्परूपं जीवभावगतं, तद्व्यक्तिकारणभूत मधुरकटुकद्रव्यगतं शक्तिरूप पुद्गलद्रव्यगत । एव भावकर्मस्वरूप जीवगतं पुद्गलगत च द्विधेति भावकर्मव्याख्यान- काले सर्वत्र ज्ञातव्य । कानि तानि, अध्यवसानानि [1] । **मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदि- भावो य जोगो य** मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिर्योगश्चेति प्रथमगाथा गता [2] ॥ **हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो** पूर्वोक्तानामुदयागतद्रव्यप्रत्ययाना जीव- गतभावास्रवहेतुभूताना वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनो जीवस्य उदयद्रव्यकर्मरूपाणा अभावे सति नियमान्निश्चयात् रागादिभावास्रवनिरोधलक्षणः सवरो जायते । **आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो** निरास्रवपरमात्मतत्त्वविलक्षणस्य जीवगतभावास्रवस्य

स्वरूप नहीं हैं, परंतु जो मानते हैं उनका भेदविज्ञान कहना नहीं बनसकता । भेदविज्ञान कहना तो वस्तु द्वैत हो तब बनसकता है । सो जब जीव अजीव दो वस्तुएं मानैं और दोका संयोग मानैं तब भेदविज्ञान बनैं । इसी कारण स्याद्वादियोंके सब निर्बाध सिद्धि होती है ॥ आगे संवरका अधिकार पूर्ण हुआ सो इस संवरके होनेसे ज्ञान कैसा है ? ऐसे उस ज्ञानकी महिमाका कलशरूप काव्य कहते हैं—**भेदज्ञानो** इत्यादि । **अर्थ—** यह ज्ञान, ज्ञानमें ही निश्चल नियमरूप उदयको प्राप्त हुआ । किस क्रमसे हुआ ? कि प्रथम तो भेद ज्ञानके उदय होनेका अभ्यास हुआ, फिर उस भेदविज्ञानके अभ्याससे शुद्ध तत्त्वकी प्राप्ति हुई, उस शुद्ध तत्त्वके उपलंभ (प्राप्ति) से रागके समूहका प्रलय हुआ, रागके समूहका प्रलय करनेसे आस्रवके रुकनेसे कर्मोंका संवर हुआ और कर्मोंका संवर होनेसे परम (उत्कृष्ट) संतोषको धारता हुआ ज्ञान प्रगट हुआ । कैसा है यह ज्ञान ? जिस (ज्ञान)का प्रकाश निर्मल है । क्षयोपशमके दोषसे जो मलिनता थी वह अब नहीं आप भी अम्लान है अर्थात् रागादिकसे जो कलुषता थी वह अब न होनेसे निर्मल है । फिर कैसा है ? एक है, क्षयोपशमकर भेद थे वे अब नहीं हैं

अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥ १२८ ॥ भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलंभात् रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण । बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥ १३२ ॥" १९० ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

इति संवरो निष्क्रांतः ।

॥ इति श्रीमदमृतचंदसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ **संवरप्ररूपकः** पञ्चमोऽङ्कः ॥ ५ ॥

भावेन स्वरूपेण विना जायते निरोधः संवरः । कस्य ? परमात्मतत्त्वप्रच्छादकनवतरद्रव्यकर्मणः इति द्वितीयगाथा गता ॥ **कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च जायदि णिरोहो ।** ततश्च नवतरकर्माभावेन संवरेण शरीरादिनोकर्मणां च जायते निरोधः संवरः । **णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि ।** नोकर्मनिरोधनेन संवरेण संसारातीतशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतद्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारनिरोधनं भवतीति तृतीयगाथा गता ॥ १९० ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ एवं संवरक्रमाख्यानेन गाथात्रय गत । एवं पात्रवदावस्त्रविपक्षभूतः संवरो निष्क्रातः ।

इति श्री**जयसेनाचार्य**कृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ चतुर्दशगाथाभिः षट्स्थलैः आस्रवविपक्षद्वारेण **संवर**नामा पञ्चमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ५ ॥

और जिसका उद्योत हमेशा है, क्षयोपशम ज्ञानमें क्रम होना था वह अब नहीं है ॥ ऐसा रंगभूमिमें संवरका स्वांग प्रवेश हुआ था उसको ज्ञानने जान लिया सो नृत्यकर वह रंगभूमिसे निकलगया ॥ १९०।१९१।१९२ ॥

सवैया तेईसा—"भेदविज्ञानकला प्रगटै तब शुद्धस्वभाव लहै अपना ही, राग द्वेष विमोह सब हि गलि जाय इमे दुठ कर्म रुकाही । उज्वल ज्ञान प्रकाश करै बहु तोष धरै परमातममाही, यों मुनिराज भली विधि धारत केवल पाय सुखी शिव जाहीं ॥ १ ॥" यहांतक गाथा १९२ हुई और कलश १३२ हुए ॥

इस प्रकार **पं० जयचंद्रजी** कृत इस समयसार ग्रंथकी आत्माख्याति नामा टीकाकी भाषा वचनिकामे **पांचवाँ संवर** अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

---

१ यदनादिकालादारभ्याशुद्धरागादिविभावरूपेण परिणतं तदेव काललब्धिं प्राप्य शुद्धस्वरूपेण परिणतमित्यर्थं ।

अथ निर्जराधिकारः ॥ ६ ॥



अथ प्रविशति निर्जरा—रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरां धृत्वा परः संवरः कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुंधन् स्थितः । प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धुमधुना व्याजृम्भते निर्जरा ज्ञानज्योतिरपावृत्तं न हि यतो रागादिभिर्मूर्छति ॥ १३३ ॥;—

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणं चेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥ १९३ ॥

उपभोगमिंद्रियैः द्रव्याणां चेतनानामितरेषां ।
यत्करोति सम्यग्दृष्टिः तत्सर्वं निर्जरानिमित्तं ॥ १९३ ॥

तत्रैव सति रंगभूमेः सकाशात् श्रृंगाररहितपात्रवत् शुद्धजीवस्वरूपेण संवरो निष्क्रांतः । अथ वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपा शुद्धोपयोगलक्षणा संवरपूर्विका **निर्जरा** प्रविशति । **उवभोजमिंदियेहिं** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा दंडकान् विहाय पाठक्रमेण पंचाशद्गाथापर्यंत षट्स्थलैर्निर्जराव्याख्यानं करोति । तत्र द्रव्यनिर्जराभावनिर्जराज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तीनां क्रमेण व्याख्यानं करोति, इति पीठिकारूपेण प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं । तदनंतरं ज्ञानवैराग्यशक्तेः सामान्यव्याख्यानार्थं **सेवंतोवि ण सेवदि** इत्यादि द्वितीयस्थले गाथापंचकं । ततः परं तयोरेव ज्ञानवैराग्यशक्त्योर्विशेषविवरणार्थं **परमाणुमित्तियंपि** इत्यादि तृतीयस्थले सूत्रदशकं । ततश्च मतिश्रुता-

---

अथ निर्जराधिकार ॥ **दोहा**—"रागादिककूं मेटिकरि, नवे बंध हति संत । पूर्व उदयमें समरहे, नमूं निर्जरावंत" यहां निर्जरा प्रवेश करती है । अर्थात् जैसे नृत्यके अखाड़ेमें नृत्य करनेवाला स्वांग बनाके प्रवेश करता है उसीतरह यहां तत्त्वोंका नृत्य है । वहां रंगभूमिमें निर्जराके स्वांगका प्रवेश है । उस जगह प्रथम ही सब स्वांग देखकर यथार्थ जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान है उसे टीकाकार मंगलरूप जान प्रकट करते हैं—**रागाद्या** इत्यादि । **अर्थ**—प्रथम तो उत्कृष्ट संवर रागादिक आस्रवोंके रोकनेसे अपनी सामर्थ्यकी हदको धारणकर आगामी सब ही कर्मोंको मूलमें दूरहीसे रोकता हुआ तिष्ठ रहा था, अब इस संवरके होनेके पहले जो कर्म बंधरूप हुआ था उसे जलानेको (नाश करनेको) निर्जरारूप अग्नि फैलती है सो इस निर्जराके प्रगट होनेसे ज्ञानज्योति आवरणरहित हुई फिर रागादि भावोंकर मूर्च्छित नहीं होती, सदा निरावरण रहती है ॥ **भावार्थ**—संवर होनेके बाद नवीन कर्म नहीं बंधते और जो पहले बंधेहुए थे वे निर्जर हुए तब ज्ञानका आवरण दूर होनेसे ज्ञान ऐसा हो जाता है कि फिर रागादिरूप नहीं परिणमता, सदा प्रकाशरूप ही रहता है ॥ आगे निर्जराका स्वरूप कहते हैं,—

विरागस्योपभोगो निर्जरायैव, रागादिभावानां सद्भावेन मिथ्यादृष्टेरचेतनान्यद्रव्योपभोगो बंधनिमित्तं स्यात् । एतेन द्रव्यनिर्जरास्वरूपमावेदितं ॥ १९३ ॥

वधिनन.पर्ययकेवलज्ञानमभेदरूपं परमार्थसंज्ञं मुक्तिकारणभूतं यत्परमात्मपदं, तत्पदं येन स्वसंवेदनज्ञानगुणेन लभ्यते तस्य सामान्यव्याख्यानार्थं **णाणगुणेहिं विहीणा** इत्यादि चतुर्थस्थले सूत्राष्टकं । ततः परं तस्यैव ज्ञानगुणस्य विशेषविवरणार्थं **णाणी रागप्पजहो** इत्यादि पंचमस्थले गाथाः चतुर्दश । तदनंतरं शुद्धनयमाश्रित्य चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मभावनाश्रितानां निश्चयनिश्शंकाद्यष्टगुणानां व्याख्यानार्थं **सम्मादिट्ठी जीवो** इत्यादि षष्ठस्थले सूत्रनवकं कथयंति । इति षड्भिरंतराधिकारैः निर्जराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा, अथ द्रव्यनिर्जरां कथयति;—**उवभोजमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं जं कुणदि सम्मदिट्ठी**—सम्यग्दृष्टिः कर्ता चेतनाचेतनद्रव्याणां संबंधि यद्वस्तूपभोग्यं करोति । कैः कृत्वा? पंचेन्द्रियविषयैः **तं णिज्जरणिमित्तं** तद्वस्तु मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहानां सद्भावेन बंधकारणमपि सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहानामभावेन समस्तमपि निर्जरानिमित्त भवतीति । अत्राह शिष्य.—रागद्वेषमोहाभावे सति निर्जराकारणं भणितं सम्यग्दृष्टेस्तु रागादयः संति. ततः कथं निर्जराकारणं भवतीति? अस्मिन्पूर्वपक्षे परिहारः । अत्र ग्रंथे वस्तुवृत्त्या वीतरागसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणं, तत्र तु परिहारः पूर्वमेव भणितः । कथमिति चेत्? मिथ्यादृष्टे. सकाशादसंयतसम्यग्दृष्टे. अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिताः, श्रावकस्य या

[**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**यत्**] जो [**इंद्रियैः**] इंद्रियोंकर [**चेतनानां**] चेतन और [**इतरेषां**] अन्य अचेतन [**द्रव्याणां**] द्रव्योंका [**उपभोगं**] उपभोग [**करोति**] करता है—उनको भोगता है [**तत् सर्वं**] वह सब ही [**निर्जरानिमित्तं**] निर्जराके निमित्त है ॥ **टीका**—विरागीका उपभोग निर्जराके लिये ही होता है और मिथ्यादृष्टिके रागादि भावोंके सद्भावसे चेतन अचेतन द्रव्यका उपभोग बंधके निमित्त ही होता है । इस कथनसे द्रव्यनिर्जराका स्वरूप कहा ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टिको ज्ञानी कहा गया है और ज्ञानीके राग द्वेष मोहका अभाव कहा है इसलिये विरागीके जो इंद्रियोंकर भोग होता है उस भोगकी सामग्रीको यह सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि ये परद्रव्य हैं मेरा इनका कुछ संबंध नहीं है लेकिन कर्मके उदयके निमित्तसे इनका मेरा संयोग वियोग है वह चारित्र मोहके उदयकर कीहुई पीड़ा है सो बलहीन होनेसे जब तक सही नहीं जाती तबतक रोगीकी तरह (जैसे रोगी रोगको अच्छा नहीं जानता परन्तु पीडा नहीं सही जाती तबतक औषधिआदिकर इलाज करता है उसतरह) विषयरूप भोग उपभोग सामग्रीसे इलाज करता है परंतु कर्मके उदयसे तथा भोगोपभोगकी सामग्रीसे राग द्वेष मोह नहीं है । इसलिये सम्यग्दृष्टि इस-

अथ भावनिर्जरास्वरूपमावेदयति;—

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं वा ।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि ॥ १९४ ॥

द्रव्ये उपभुज्यमाने नियमाज्जायते सुखं च दुःखं वा ।
तत्सुखदुःखमुदीर्णं वेदयते अथ निर्जरां याति ॥ १९४ ॥

उपभुज्यमाने सति हि परद्रव्ये तन्निमित्तः सातासातविकल्पानतिक्रमणेन वेदनायाः

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागादयो न सतीत्यादि । किं च सम्यग्दृष्टेः संवरपूर्विका निर्जरा भवति, मिथ्यादृष्टेस्तु गजस्नानवत् बंधपूर्विका भवति । तेन कारणेन मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया सम्यग्दृष्टिरबंधकः । एवं द्रव्यनिर्जराव्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥ १९३ ॥ अथ भावनिर्जरास्वरूपमाख्याति,—**दव्वे उवभुज्जंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं च** उदयागतद्रव्यकर्मणि जीवेनोपभुज्यमाने सति नियमात् निश्चयात् सातासातोदयवशेन सुखं दुःखं वा वस्तुस्वभावत एव जायते तावत् । **तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि** निरुपरागस्वसंवित्तिभावेन उत्पन्नपारमार्थिकसुखाद्भिन्नं तत्सुखं वा दुःखं वा समुदीर्णं सत् सम्यग्दृष्टिर्जीवो रागद्वेषौ न कुर्वन् हेयबुद्ध्या वेदयति । न च तन्मयो भूत्वा, अहं सुखी दुःखीत्याद्यहमिति प्रत्ययेनानुभवति ।

तरह विरागी है सो इसके भोग उपभोग निर्जराके ही निमित्त है । कर्म उदय होता है वह अपना रस देकर झड़ जाता है उदय आनेके वाद द्रव्यकर्मकी सत्ता नहीं रहती निर्जरा ही होती है । सम्यग्दृष्टिका उस कर्म उदयसे राग द्वेष मोह नहीं है उदयमें आये हुएको जानता है और फलको भी भोगता है वह राग द्वेष मोहके विना भोगता है इसलिये कर्मका आस्रव नहीं होता, आस्रवके विना उस विरागी सम्यग्दृष्टिके आगामी बंध नहीं होता । और जब बंध आगामी नहीं हुआ तब केवल निर्जरा ही हुई । इसकारण सम्यग्दृष्टि विरागीका भोगोपभोगनिर्जराके ही निमित्त कहा गया है । तथा पूर्वकर्मोंका द्रव्य उदय आकर झड़ जाना वही द्रव्यनिर्जरा है ॥ १९३ ॥

आगे भावनिर्जराका स्वरूप कहते हैं;—[**द्रव्ये च उपभुज्यमाने**] परद्रव्यको भोगनेसे [**सुखं वा दुःखं**] सुख अथवा दुःख [**नियमात्**] नियमसे [**जायते**] होता है । [**उदीर्णं**] उदयमे आये हुए [**तत्सुखदुःखं**] उस सुखदुःखको [**वेदयते**] अनुभवता है भोगता है आस्वादता है [**अथ**] फिर वह आस्वाद देकर कर्मद्रव्य [**निर्जरां याति**] झड़ जाता है ॥ निर्जरा होने बाद फिर वह कर्म नहीं आता ॥ **टीका**—परद्रव्यको भोगतेहुए जीवके सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव नियमसे उदयरूप होते है उत्पन्न होते हैं । कैसे है भाव ? जिनको परद्रव्यनिमित्त कारण है । जिसकारण वेदनाके साता तथा असाता इसतरह दो रूपपना ही है इन दोनों

सुखरूपो दुःखरूपो वा नियमादेव जीवस्य भाव उदेति । स तु यदा वेद्यते तदा मिथ्यादृष्टेः रागादिभावानां सद्भावेन बंधनिमित्तं भूत्वा निर्जीर्यमाणोप्यजीर्णः सन् बंध एव स्यात् । सम्यग्दृष्टेस्तु रागादिभावाभावेन बंधनिमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीर्यमाणोप्यजीर्णः सन्निर्जरैव स्यात् । "तद् ज्ञानस्यैव सामर्थ्य विरागस्य च वा किल । यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुंजानोऽपि न वध्यते ॥ १३४ ॥" १९४ ॥

अथ ज्ञानसामर्थ्य दर्शयति;—

जह विसमुवभुज्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झए णाणी ॥ १९५ ॥

यथा विषमुपभुंजानो वैद्यः पुरुषो न मरणमुपयाति ।
पुद्गलकर्मण उदयं तथा भुंक्ते नैव वध्यते ज्ञानी ॥ १९५ ॥

अथ णिज्जरं जादि अथ अहो ततः कारणान्निर्जरां याति स्वस्थभावेन निर्जराया निमित्तं भवति । मिथ्यादृष्टेः पुनः उपादेयबुद्ध्या, सुख्यहं दुःख्यहमिति प्रत्ययेन बंधकारणं भवति । किं च, यथा कोऽपि तस्करो यद्यपि मरणं नेच्छति तथापि तलवरेण गृहीतः सन् मरणमनुभवति । तथा सम्यग्दृष्टिः यद्यप्यात्मोत्थसुखमुपादेयं च जानाति, विषयसुख च हेयं जानाति । तथापि चारित्रमोहोदयतलवरेण गृहीतः सन् तदनुभवति, तेन कारणेन निर्जरानिमित्तं स्यात् । इति भावनिर्जराव्याख्यानं गतं ॥ १९४ ॥ अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानसामर्थ्यं दर्शयति;—

भावोंको नहीं उलंघके वर्तती । सो इस भावको जिस समय जीव अनुभवता है उस समय मिथ्यादृष्टिके तो उससे रागादिभावोंके होनेसे आगामी कर्मबंधका निमित्त होके निर्जरारूप हुआ भी निर्जरारूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आगामी बंध करके निर्जरारूप हुआ इसलिये बंध ही कहना चाहिये । और सम्यग्दृष्टिके उस सुखदुःखके अनुभवसे रागादि भावोंका अभाव होनेकर आगामी बंधके निमित्त नहीं होनेसे केवल निर्जरारूप ही होता है सो निर्जरारूप हुआ निर्जरा ही कहना चाहिये बंध नहीं कहसकते ॥ **भावार्थ**—कर्मका उदय आनेपर सुख दुःख भाव नियमसे उत्पन्न होते हैं उनको अनुभवते हुए मिथ्यादृष्टिके तो रागादिकके निमित्तसे आगामी बंधकर कर्म झड़ता है इसलिये निर्जरा किस कामकी? बंध ही किया गया । और सम्यग्दृष्टिके उस अनुभवसे रागादिक भाव नहीं होते इसलिये आगामी बंधभी नहीं होता तो केवल निर्जरा ही हुई ॥ इसतरह भावरूप होती है । इसके अर्थकी आगेके कथनकी सूचनाका कलशरूप श्लोक यह है— **तज्ज्ञान** इत्यादि । **अर्थ**—जो कर्मको भोगता हुआ भी कर्मसे नहीं बंधता यह कोई आश्चर्यरूप सामर्थ्य ज्ञानकी ही है अथवा विरागकी है । अज्ञानीको तो आश्चर्यको उपजानेवाली है और ज्ञानी यथार्थ जानता है ॥ १९४ ॥

यथा कश्चिद्विषवैद्यः परेषां मरणकारणं विषमुपभुंजानोऽपि अमोघविद्यासामर्थ्येन निरुद्धतच्छक्तित्वान्न म्रियते, तथा अज्ञानिनां रागादिभावसद्भावेन बंधकारणं पुद्गलकर्मोदयमुपभुंजानोऽपि अमोघज्ञानसामर्थ्यात् रागादिभावानामभावे सति निरुद्धतच्छक्तित्वात् न बध्यते ज्ञानी ॥ १९५ ॥

अथ वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति;—

जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो ।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव ॥ १९६ ॥

यथा मद्यं पिबन् अरतिभावेन माद्यति न पुरुषः ।
द्रव्योपभोगे अरतो ज्ञान्यपि न बध्यते तथैव ॥ १९६ ॥

यथा कश्चित्पुरुषो मैरेयं प्रति प्रवृत्ततीव्रारतिभावः सन् मैरेयं पिबन्नपि तीव्रारतिसाम-

---

जह विसमुवभुज्जंता विज्जापुरिसा ण मरणमुवयंति यथा विषमुपभुंजानाः सतो गारुडविद्यापुरुषाः, अमोघमंत्रसामर्थ्यात् नैव मरणमुपयाति । **पुग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झदे णाणी** तथा परमतत्त्वज्ञानी शुभाशुभकर्मफलं भुक्ते तथापि निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानामोघमंत्रबलान्नैव बध्यते कर्मणेति ज्ञानशक्तिव्याख्यानं गतं ॥ १९५ ॥ अथ ससारशरीरभोगविषये वैराग्यं दर्शयति,—**जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण**

आगे ज्ञानकी सामर्थ्यको दिखलाते हैं;—[**यथा**] जैसे [**वैद्यः**] वैद्य [**विषं उपभुंजानः**] विषको भोगता हुआ भी [**मरणं**] मरणको [**न उपयाति**] नहीं प्राप्त होता [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**पुद्गलकर्मणः**] पुद्गलकर्मके [**उदयं**] उदयको [**भुंक्ते**] भोगता है तौ भी [**नैव बध्यते**] बधता नहीं है ॥ **टीका**—जैसे कोई विषवैद्य, दूसरेके मरणका कारण विषको भोगता हुआ भी सफल मंत्र तंत्र औषध आदिक विद्याकी सामर्थ्यसे विषकी मारणशक्तिको रोककर उससे मरणको प्राप्त नहीं होता, उसीतरह अज्ञानीको रागादि भावोंके सद्भावसे बंधका कारण ऐसे पुद्गलकर्मके उदयको भोगता हुआ भी ज्ञानी सफल सत्यार्थ ज्ञानकी सामर्थ्यसे रागादि भावोंके अभावकर कर्मके उदयकी आगामी बंध करनेवाली शक्तिको रोक देता है इसलिये आगामी कर्मोंकर नहीं बंधता ॥ **भावार्थ**—जैसे वैद्य अपनी विद्याकी सामर्थ्यसे विषकी मारनेरूप शक्तिका अभाव करता है उस विषको खानेपर भी उससे नहीं मरता, उसीतरह ज्ञानीके ज्ञानकी सामर्थ्य ऐसी है कि कर्मके उदयकी बंध करनेरूप शक्तिको रोक देती है । इसलिये उसके कर्मका उदय भोगनेमें आता है तौ भी आगामी बंध नहीं करता । यह सम्यग्ज्ञानकी सामर्थ्य है ॥ १९५ ॥

आगे वैराग्यकी सामर्थ्य दिखलाते हैं,—[**यथा**] जैसे [**पुरुषः**] कोई पुरुष

र्थ्यान्न माद्यति तथा रागादिभावानामभावेन सर्वद्रव्योपभोगं प्रति प्रवृत्ततीव्रविरागभावः सन् विषयानुपभुंजानोऽपि तीव्रविरागभावसामर्थ्यान्न बध्यते ज्ञानी ॥ "नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यः स्वं फलं विषयसेवनस्य ना। ज्ञानवैभवविरागताबलात् सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥ १३५ ॥" १९६ ॥

अथैतदेव दर्शयति;—

सेवंतोवि ण सेवइ असेवमाणोवि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्सवि ण य पायरणोत्ति सो होई ॥ १९७ ॥

सेवमानोऽपि न सेवते असेवमानोऽपि सेवकः कश्चित्।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि न च प्राकरण इति स भवति ॥ १९७ ॥

मज्जदि ण पुरिसो यथा कश्चित् पुरुषो व्याधिप्रतीकारनिमित्तं मद्यमध्ये मद्यप्रतिपक्षभूतमौषधं निक्षिप्य मद्यं पिबन्नपि रतेरभावान्न माद्यति। **दव्वुवभोगे अरदो णाणीवि ण वज्झदि तहेव** तथा परमात्मतत्त्वज्ञानी पंचेंद्रियविषयभूताशनपानादिद्रव्योपभोगे सत्यपि यावता यावतांशेन निर्विकारस्वसंवित्तिशून्यबहिरात्मजीवापेक्षया रागभावं न करोति, तावता तावतांशेन कर्मणा न बध्यते। यदा तु हर्षविषादादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमयोगलक्षणभेदज्ञानबलेन सर्वथा वीतरागो भवति। तदा सर्वथा न बध्यते इति वैराग्यशक्तिव्याख्यानं गतं। एवं यथाक्रमेण द्रव्यनिर्जराभावनिर्जराज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिप्रतिपादनरूपेण निर्जराधिकारे तात्पर्यव्याख्या-

---

[**मद्यं**] मदिराको [**अरतिभावेन**] विना प्रीतिसे [**पिबन्**] पीताहुआ [**न माद्यति**] मतवाला नहीं होता [**तथैव**] उसीतरह [**ज्ञानी अपि**] ज्ञानी भी [**द्रव्योपभोगे**] द्रव्यके उपभोगमें [**अरतः**] तीव्र रागरहित हुआ [**न बध्यते**] कर्मोंसे नहीं बंधता ॥ **टीका**—जैसे कोई पुरुष मदिरामें तीव्र अरति भावकर प्रवृत्त होनेसे मदिरा (शराब) को पीताहुआ भी तीव्र अरतिभावकी सामर्थ्यसे मतवाला नहीं होता, उसीतरह ज्ञानी भी रागादिभावोंके अभावसे सब द्रव्योंके भोगनेमें तीव्र विरागभाव प्रवर्तनेकर विषयोंको भोगता हुआ भी तीव्र विरागभावकी सामर्थ्यसे कर्मोंकर नहीं बंधता ॥ **भावार्थ**—यह वैराग्यकी सामर्थ्य है कि विषयोंको सेवता हुआ भी कर्मोंकर नहीं बंधता ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**नाश्नुते** इत्यादि। **अर्थ**—यह पुरुष, विषयोंको सेवता हुआ भी विषयसेवनेके निजफलको नहीं पाता सो ज्ञानके विभवके तथा विरागताके बलसे विषयोंका सेवनेवाला होनेपरभी सेवनेवाला नहीं कहा जाता ॥ **भावार्थ**—ज्ञान और विरागताकी ऐसी कोई अचिंत्य सामर्थ्य है कि इंद्रियोंसे विषयोंको सेवनेपर उनका सेवनेवाला नहीं कहा जाता। क्योंकि विषयसेवनका सामान्य निजफल संसार है। सो ज्ञानी वैरागीके मिथ्यात्वका अभाव होनेसे संसारका भ्रमणरूप फल नहीं होता ॥ १९६ ॥

यथा कश्चित् प्रकरणे व्याप्रियमाणोपि प्रकरणस्वामित्वाभावात् न प्राकरणिकः, अपरस्तु तत्राव्याप्रियमाणोऽपि तत्स्वामित्वात्प्राकरणिकः। तथा सम्यग्दृष्टिः पूर्वकर्मोदयसंपन्नान् विषयान् सेवमानोऽपि रागादिभावानामभावेन विषयसेवनफलस्वामित्वाभावादसेवक एव। मिथ्यादृष्टिस्तु विषयानसेवमानोऽपि रागादिभावानां सद्भावेन विषयसेवनफलस्वामित्वात्से-

---

नमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टय गत ॥ १९६ ॥ अथैतदेव वैराग्यस्वरूपं विवृणोति,—**सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणोवि सेवगो कोवि** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानी जीवः स्वकीयगुणस्थानयोग्याशनपानादिपंचेंद्रियभोग सेवन्नपि सेवको न भवति । अन्यः पुनः अज्ञानी कश्चित् रागादिसद्भावादसेवन्नपि सेवको भवति । अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन दृढयति । **परगणचेट्ठा कस्सवि ण य पायरणोत्ति सो होदि** यथा कस्यापि परगृहादागतस्य विवाहादिप्रकरणचेष्टा तावदस्ति, तथापि विवाहादिप्रकरणस्वामित्वाभावात् प्राकरणिको न भवति। अन्यः पुनः प्रकर-

---

आगे इसी अर्थको प्रकट दृष्टांतकर दिखलाते हैं,—[**कश्चित्**] कोई तो [**सेवमानोपि**] विषयोंको सेवता हुआ भी [**न सेवते**] नहीं सेवता है ऐसा कहा जाता है, और [**असेवमानोपि**] कोई नहीं सेवता हुआ भी [**सेवकः**] सेवनेवाला कहा जाता है [**कस्यापि**] जैसे किसी पुरुषके [**प्रकरणचेष्टा अपि**] किसी कार्यके करनेकी चेष्टा तो है अर्थात् उस प्रकरणकी सब क्रियाओंको करता है तौ भी किसीका कराया हुआ करता है [**सः**] वह [**प्राकरणः**] कार्यकरनेवाला स्वामी है [**इति न च भवति**] ऐसा नहीं कहा जाता ॥ **टीका**—जैसे कोई पुरुष किसी कार्यकी प्रकरणक्रियामें व्यापाररूप होके प्रवर्तता है उससबंधी सब क्रियाओंको करता है तौभी उस कार्यका स्वामी कोई दूसरा ही है उसका कराया करता है। इसलिये प्रकरणके स्वामीपनेके अभावसे करनेवाला नहीं है। तथा दूसरा कोई पुरुष उस प्रकरणमे व्यापाररूप नहीं प्रवर्तता है उस कार्यसंबधी क्रियाको नहीं भी करता है तौभी उस कार्यके स्वामीपनेसे उस प्रकरणका करनेवाला कहा जाता है। उसीतरह सम्यग्दृष्टि भी पूर्वसंचित कर्मोंके उदयकर प्राप्तहुए इंद्रियोंके विषयोंको सेवता है तौभी रागादिक भावोंके अभावसे विषय सेवनके फलके स्वामीपनेका अभाव होनेसे सेवनेवाला नहीं कहा जाता। और मिथ्यादृष्टि, विषयोंको नहीं सेवताहुआ भी रागादि भावोंके सद्भावसे विषय सेवनेके फलके स्वामीपनेसे विषयोंका सेवनेवाला ही कहा जाता है ॥ **भावार्थ**—जैसे किसी व्यापारी (धनके स्वामी) ने किसीको हाट (दुकान) पर नौकर रक्खा सो दुकानका काम (व्यापार—वनज—देना लेना) सब वह नौकरी ही करता है और धनी अपने घरमें बैठा हुआ है दुकानसंबंधी कार्यको नहीं करता । वहा ऐसा विचारो कि उस दुकानके हानि लाभका स्वामी कौन है ? वास्तवमें तो यह वात

वकः । "सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या । यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥ १३६ ॥" १९७ ॥

सम्यग्दृष्टिः सामान्येन स्वपरावेवं तावज्जानाति;—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥ १९८ ॥

उदयविपाको विविधः कर्मणां वर्णितो जिनवरैः ।
न तु ते मम स्वभावाः ज्ञायकभावस्त्वहमेकः ॥ १९८ ॥

णस्वामी नृत्यगीतादिप्रकरणव्यापारमकुर्वाणोऽपि प्रकरणरागसद्भावात् प्राकरणिको भवति । तथा परमतत्त्वज्ञानी सेवमानोप्यसेवको भवति । अज्ञानी जीवो रागादिसद्भावादसेवकोऽपि सेवक इति ॥१९७॥ अथ सम्यग्दृष्टिः सामान्येन स्वपरस्वभावमनेकप्रकारेण जानाति;—**उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं** उदयविपाको विविधो नानाप्रकारः कर्मणा संबंधी वर्णितः कथितः, जिनवरैः **ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को** ते कर्मोदयप्रकारा कर्मभेदा मम स्वभावा न भवति इति । कस्मात् ? इति चेत्, टंको-

---

है कि दुकानके कार्यसंबंधी टोटा नफाका स्वामी वह धनका स्वामी ही है । नौकर व्यापारादिक क्रिया करता है तौभी स्वामीपनेके अभावसे उसके फलका भोक्ता नहीं होता, तथा धनका स्वामी कुछ व्यापारादिक नहीं करता है तौभी उसके स्वामीपनेसे टोटानफाके फलका भोगनेवाला होता है । उसीतरह संसारमें साहूकी तरह तो मिथ्यादृष्टि जानना और चाकरके समान सम्यग्दृष्टि जानना ॥ अब इसी अर्थका समर्थनरूप सम्यग्दृष्टिके भावोंकी प्रवृत्तिका कलशरूप काव्य कहते हैं—**सम्य** इत्यादि । **अर्थ**—सम्यग्दृष्टिके नियमसे ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति होती है । क्योंकि यह सम्यग्दृष्टि अपने वस्तुपना यथार्थस्वरूपका अभ्यास करनेको अपने स्वरूपका ग्रहण और परके त्यागकी विधिकर "यह तो अपना स्वरूप है और यह परद्रव्यका है ऐसे" दोनोंका भेद परमार्थसे जानकर अपने स्वरूपमें तिष्ठता है और परद्रव्यसे सबतरह रागका योग छोड़ता है । सो यह रीति ज्ञान वैराग्यकी शक्तिके विना नहीं होती ॥ १९७ ॥

आगे इस काव्यका अर्थरूप गाथा है वहां कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि प्रथम ही अपनेको और परको सामान्यसे तो ऐसे जानता है,—[**कर्मणां**] कर्मोंके [**उदयविपाकः**] उदयका रस [**जिनवरैः**] जिनेश्वर देवने [**विविधः**] अनेक तरहका [**वर्णितः**] कहा है [**ते**] वे कर्मविपाकसे हुए भाव [**मम स्वभावाः**] मेरा स्वभाव [**न तु**] नहीं हैं [**अहं तु**] मैं तो [**एकः**] एक [**ज्ञायकभावः**] ज्ञायकस्वभावस्वरूप

ये कर्मोदयविपाकप्रभवा विविधा भावा न ते मम स्वभावाः । एष टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावोऽहं ॥ १९८ ॥

सम्यग्दृष्टि विशेषेण स्वपरावेवं तावज्जानाति;—

पुग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमिक्को ॥ १९९ ॥

पुद्गलकर्म रागस्तस्य विपाकोदयो भवति एषः ।
नत्वेष मम भावः ज्ञायकभावः खल्वहमेकः ॥ १९९ ॥

अस्ति किल रागो नाम पुद्गलकर्म तदुदयविपाकप्रभवोयं रागरूपो भावः, न पुनर्मम स्वभावः । एष टंकोत्कीर्णज्ञायकस्वभावोहं । एवमेव च रागपदपरिवर्तनेन द्वेषमोहक्रोध-

---

त्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकत्वभावोऽहं यतः कारणात् सम्यग्दृष्टिः सामान्येन स्वपरस्वरूपावेवं जानाति इति भणितं । कथं सामान्यं ? इति चेत् क्रोधोहं मानोहमित्यादि विवक्षा नास्तीति । तदपि कथमिति चेत् "विवक्षाया अभावः सामान्यमिति वचनात्" । एवं भेदभावनारूपेण ज्ञानवैराग्ययोः सामान्यव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापचक गतं ॥१९८॥ इत ऊर्ध्वं गाथादशकपर्यंत पुनरपि ज्ञानवैराग्यशक्तयोर्विशेषविवरणं करोति । अथ सम्यग्दृष्टिः स्वपरस्वरूपमेवं विशेषेणजानाति,— **पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो** पुद्गलकर्मरूपो योऽसौ द्रव्यक्रोधो जीवे पूर्वबद्धस्तिष्ठति तस्य विशिष्टपाको विपाकः फलरूप उदयो भवति । स कः ? शांतात्मतत्त्वात्पृथग्भूत एषः अक्षमारूपो भावः क्रोधः **ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमिक्को** न चैष मम भावः । कस्मात् ? इति चेत्, टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकभावोऽहं यतः ।

हूं ॥ **टीका**—जो कर्मके उदयके रससे उत्पन्न हुए अनेक प्रकार भाव हैं वे मेरा स्वभाव नहीं है मैं तो यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भाव हूं । ऐसे सामान्यकर सब ही कर्मजन्य भावोंको सम्यग्दृष्टि पर जानता है, अपनेको तो एक जाननेवाला ही जानता है । इसतरह सामान्यसे जानना हुआ ॥ १९८ ॥

आगे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि अपनेको और परको विशेषकर इसतरह जानता है;— सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि [**एषः**] यह [**रागः**] राग [**पुद्गलकर्म**] पुद्गलकर्म है [**तस्य**] उसके [**विपाकोदयः**] विपाकका उदय [**भवति**] है जो मेरे अनुभवमें रागरूप प्रीतिरूप आस्वाद होता है सो [**एषः**] यह [**मम भावः**] मेरा भाव [**न**] नहीं है, क्योंकि [**खलु**] निश्चयकर [**अहं तु**] मैं तो [**एकः**] एक [**ज्ञायकभावः**] ज्ञायकभावस्वरूप हूं ॥ **टीका**—निश्चयकर रागनामा पुद्गलकर्म है उस पुद्गल कर्मके उदयके विपाककर उत्पन्न यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर रागरूप भाव है वह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावस्वरूप हूं । ऐसे सम्यग्दृष्टि विशेषकर

-मानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि, अनया दिशा अन्यान्यप्यूह्यानि । एवं च सम्यग्दृष्टिः स्वं जानन् रागं मुंचंश्च नियमाज्ज्ञानवैराग्याभ्यां संपन्नो भवति ॥ १९९ ॥

एवं सम्मदिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणयसहावं ।
उदयं कम्मविवागं य मुअदि तच्चं वियाणंतो ॥ २०० ॥

एवं सम्यग्दृष्टिः आत्मानं जानाति ज्ञायकस्वभावं ।
उदयं कर्मविपाकं च मुंचति तत्त्वं विजानन् ॥ २०० ॥

किं च–पुद्गलकर्मरूपो द्रव्यक्रोधस्तदुदयजनितो यश्चाक्षमारूपः स भावक्रोधः । इति व्याख्यानं पूर्वमेव कृतं तिष्ठति । कथं ? इति चेत् **पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु** इत्यादि । एवमेव च क्रोधपदपरिवर्तनेन मानमायालोभरागद्वेषमोहकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसंज्ञाषोडशसूत्राणि व्याख्येयानि । तेनैव प्रकारेणान्यान्यपि, असंख्येयलोकमात्रप्रमितानि विभावपरिणामस्थानानि वर्जनीयानीति ॥ १९९ ॥ अथ कथं तव स्वरूपं न भवतीति पृष्टे सति भेदभावनारूपेणोत्तरं ददाति;—

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो ।
परदव्वाणुवओगो ण दु देहो हवदि अण्णाणी ॥

कथमेष तव न भवति विविधः कर्मोदयफलविपाकः । परद्रव्याणामुपयोगो न तु देहो भवति

आपको परको जानता है ॥ इस गाथामें परभावका विशेष राग कहा है, उसीतरह रागकी जगह पद पलटनेसे द्वेष मोह क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन ये पद रखकर सोलह सूत्रोंका व्याख्यान करना । और इसी उपदेशसे अन्यको भी विचार लेना । इसतरह सम्यग्दृष्टि अपनेको जानता हुआ रागको छोड़ता नियमसे ज्ञान वैराग्यकर सहित होता है ॥ १९९ ॥

आगे इसी अर्थको सूचित करनेवाली गाथा कहते हैं;—[**एवं**] इस तरह [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**आत्मानं**] अपनेको [**ज्ञायकस्वभावं**] ज्ञायकस्वभाव [**जानाति**] जानता है [**च**] और [**तत्त्वं**] वस्तुके यथार्थस्वरूपको [**विजानन्**] जानता हुआ [**उदयं**] कर्मके उदयको [**कर्मविपाकं**] कर्मका विपाक जान उसे [**मुंचति**] छोडता है ऐसी प्रवृत्ति करता है ॥ **टीका**—इसतरह सम्यग्दृष्टि, सामान्यकर तथा विशेषकर सभी परभावोंसे भिन्न होके टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावस्वभावरूप आत्माके तत्त्वको अच्छीतरह जानता है और उसप्रकार तत्त्वको अच्छी तरह जानताहुआ स्वभावका ग्रहण और परभावका त्यागकर उत्पन्नहुए अपने वस्तुपनेको फैलाता हुआ कर्मके उदयके विपाककर उत्पन्न हुए जो भाव उन सबको छोडता

एवं सम्यग्दृष्टिः सामान्येन विशेषेण च परस्वभावेभ्यो भावेभ्यो सर्वेभ्योऽपि विविच्य टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमात्मनस्तत्त्वं विजानाति । तथा तत्त्वं विजानंश्च स्वपरभावोपादानापोहननिष्पाद्यं स्वस्य वस्तुत्वं प्रथयन् कर्मोदयविपाकप्रभवान् भावान् सर्वानपि

अज्ञानी ॥ **कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो** कथमेष विविधकर्मोदयफलविपाकस्तव रूप न भवतीति केनापि पृष्टः तत्रोत्तरं ददाति **परदव्वाणुवओगो** निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणस्वशुद्धात्मद्रव्यात्पृथग्भूतानि परद्रव्याणि यानि कर्माणि जीवे लग्नानि तिष्ठंति तेषामुपयोग उदयोयं, औपाधिकस्फटिकस्य परोपाधिवत् । न केवलं भावक्रोधादि मम स्वरूपं न भवति, इति **ण दु देहो हवदि अण्णाणी** देहोऽपि मम स्वरूपं न भवति दु स्फुटं । कस्मादिति चेत् , अज्ञानी जडस्वरूपो यतः कारणात् , अहं पुनः अनंतज्ञा-

---

है । इसलिये यह सम्यग्दृष्टि नियमसे ज्ञान वैराग्यकर सहित होता है यह सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ**—जब अपनेको तो ज्ञायकभावस्वरूप सुखमय जाने और कर्मके उदयकर हुए भावोंको आकुलतारूप दुःखमय जाने तब ज्ञानरूप रहना तथा परभावोंसे विरागता ये दोनों होते ही हैं । यह बात प्रगट अनुभवगोचर है, यही सम्यग्दृष्टिका चिन्ह है ॥ आगे कहते हैं कि ऐसा न हो और परद्रव्योंसे आसक्ततारूप रागी हो तथा सम्यग्दृष्टिपनेका अभिमानकरे वह कैसा सम्यग्दृष्टि? वृथा ही सम्यग्दृष्टिपनेका अभिमान करता है ऐसा काव्यमें कहते हैं—**सम्यग्दृष्ट** इत्यादि । **अर्थ**—जो परद्रव्यमें रागद्वेष मोहभावकर तो संयुक्त हैं और अपनेको ऐसा मानते हैं कि मैं सम्यग्दृष्टि हूं मेरे कदाचित् कर्मका बंध नहीं होता क्योंकि शास्त्रोंमे सम्यग्दृष्टिके बंध होना नहीं कहा है, ऐसा मानकर जिनका मुख गर्वसहित ऊंचा हुआ है तथा हर्षसहित रोमांचरूप हुआ है ऐसे हैं वे जीव महाव्रतादि आचरण करें तथा वचन विहार आहारकी क्रियामें यत्नसे प्रवर्तनेकी उत्कृष्टताको भी अवलंबन करें तो भी पापी मिथ्यादृष्टि ही हैं, क्योंकि आत्मा और अनात्माके ज्ञानसे रहित हैं । इसलिये सम्यक्त्वसे शून्य हैं उनके सम्यक्त्व नहीं है॥ **भावार्थ**—जो अपनेको सम्यग्दृष्टि माने और परद्रव्यसे राग हो तो उसके सम्यक्त्व कैसा ? अर्थात् नहीं है । व्रतसमिति पाले तौभी आपपरके ज्ञानके विना पापी ही है, तथा अपने बंध नहीं होना मानकर स्वच्छंद प्रवर्ते तो कैसा सम्यग्दृष्टि ? नहीं होसक्ता । क्योंकि चारित्रमोहके रागसे जबतक यथाख्यात चारित्र न हो तबतक बंध तो होता ही है । जबतक राग रहता है तबतक सम्यग्दृष्टि अपनी निंदा (गर्हा) करता ही रहता है ज्ञान होने मात्रसे तो बंधसे छूटना नहीं होता ज्ञान होनेके बाद उसीमे लीनरूप शुद्धोपयोगरूप चारित्रसे बंधन कटता है । इसलिये राग होनेपर बंध न होना मान स्वच्छंद होना तो मिथ्यादृष्टि ही है ॥ यहां कोई पूछे कि व्रतसमिति तो शुभकार्य हैं उनको पालनेपर भी पापी क्यों कहा ? उसका समाधान—

मुंचति। ततोऽयं नियमात् ज्ञानवैराग्याभ्यां संपन्नो भवति। "सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं

नादिगुणस्वरूप इति। अथ सम्यग्दृष्टिः स्वस्वभावं जानन् रागादींश्च मुंचन् नियमाज्ज्ञानवैराग्य-संपन्नो भवति इति कथयति;—**एवं सम्माइट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दृष्टिर्जीवः आत्मानं जानाति। कथंभूतं? टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैक-

---

सिद्धांतमें पाप मिथ्यात्वको ही कहा है जहांतक मिथ्यात्व रहता है वहांतक शुभअशुभ सभी क्रियाओंको अध्यात्ममें परमार्थकर पाप ही कहा है और व्यवहारनयकी प्रधानतामें व्यवहारी जीवोंको अशुभ छुड़ाके शुभमे लगानेको किसीतरह पुण्य भी कहा है। स्याद्वादमतमें कोई विरोध नहीं है॥ फिर कोई पूछे कि, परद्रव्यसे जबतक राग रहे तबतक मिथ्यादृष्टि कहा है सो इसको हम नहीं समझे क्योंकि अविरतसम्यग्दृष्टि आदिके चारित्रमोहके उदयसे रागादिभाव होते हैं उसके सम्यक्त्व किसतरह कहा है? उसका समाधान—यहां मिथ्यात्वसहित अनंतानुबंधीका राग प्रधानकरके कहा है, क्योंकि अपने परके ज्ञान श्रद्धानके बिना परद्रव्यमें तथा उसके निमित्तसे हुए भावोंमे आत्मबुद्धि हो तथा प्रीति अप्रीति हो तब समझना कि इसके भेदज्ञान नहीं हुआ। मुनिपद लेकर व्रतसमिति भी पालता है वहांपर जीवोंकी रक्षा तथा शरीरसंबंधी यत्नसे प्रवर्तना अपने शुभभाव होना इत्यादि परद्रव्यसंबंधी भावोंकर अपना मोक्ष होना माने और परजीवोंका घात होना अयत्नाचाररूप प्रवर्तना अपना अशुभभाव होना इत्यादि परद्रव्योंकी क्रियासे ही अपनेमे बंध माने तबतक जानना कि इसके अपना परका ज्ञान नहीं हुआ। क्योंकि बंधमोक्ष तो अपने भावोंसे था परद्रव्य तो निमित्तमात्र था उसमें विपर्यय माना, इसलिये परद्रव्यसेही भला बुरा मान रागद्वेष करता है तबतक सम्यग्दृष्टि नहीं है। और जबतक चारित्रमोहके रागादिक रहते हैं उनको तथा उनकर प्रेरित परद्रव्यसंबंधी शुभाशुभक्रियामें प्रवृत्तियोंको ऐसा मानता है कि यह कर्मका जोर है इससे निवृत्त होनेसे ही मेरा भला है। उनको रोगके समान जानता है, पीडा सही नहीं जाती तब उनका इलाज करनेरूप प्रवर्तता है तौ भी इसके उनसे राग नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो रोग माने उसके राग कैसा? उसके मैंटनेका ही उपाय करता है सो मैटना भी अपने ही ज्ञानपरिणामरूप परिणमनसे मानता है। इसतरह परमार्थ अध्यात्मदृष्टिसे यहां व्याख्यान जानना। मिथ्यात्वके विना चारित्र मोहसंबंधी उदयके परिणामको यहां राग नहीं कहा, इसलिये सम्यग्दृष्टिके ज्ञान वैराग्यशक्तिका अवश्य होना कहा है। वहां मिथ्यात्वसहित रागको ही राग कहा गया है वह सम्यग्दृष्टिके नहीं है और जिसके मिथ्यात्वसहित राग है वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। ऐसे भेदको सम्यग्दृष्टि ही जानता है। मिथ्यादृष्टिका अध्यात्मशास्त्रमें प्रथम तो प्रवेश ही नहीं है और जो प्रवेश

जातु बंधो न मे स्यादित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोप्याचरतु । आलंबंतां समितिपरतां ते यतोद्यापि पापा आत्मानात्मावगमविरहात्संति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥ १३७ ॥" ॥ २०० ॥

कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति चेत् ;—

परमाणुमित्तयं पि हु रायादीणं तु विज्जदे जस्स ।
णवि सो जाणदि अप्पा-णयं तु सव्वागमधरोवि ॥ २०१ ॥
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो ।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥ २०२ ॥ जुम्मं ।

परमाणुमात्रमपि खलु रागादीनां तु विद्यते यस्य ।
नापि स जानात्यात्मानं सर्वागमधरोऽपि ॥ २०१ ॥
आत्मानमजानन् अनात्मानमपि सोऽजानन् ।
कथं भवति सम्यग्दृष्टिर्जीवाजीवावजानन् ॥ २०२ ॥ युग्मं ।

स्वभाव । **उदयं कम्मविवागं मुअदि तच्चं वियाणंतो** उदयं पुनर्मम स्वरूपं न भवति कर्मविपाकोयमिति मत्वा मुचति । किं कुर्वन् सन्? नित्यानंदैकस्वभावं परमात्मतत्त्वं त्रिगुप्तिसमाधौ स्थित्वा जानन्निति ॥ २०० ॥ तद्यथा । रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति कथयति;— **परमाणुमित्तयंपि य रागादीणं तु विज्जदे जस्स** परमाणुमात्रमपि रागादीनां तु विद्यते यस्य हृदये हु स्फुटं **णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरोवि** स तु परमात्मत-

---

करे तो विपर्यय (उलटा) समझता है व्यवहारको सर्वथा छोड भ्रष्ट हो जाता है, अथवा निश्चयको अच्छीतरह नहीं जानकर व्यवहारसे ही मोक्ष मानता है परमार्थतत्त्वमें मूढ है । इसलिये यथार्थ स्याद्वादनयकर सत्यार्थ समझनेसे ही सम्क्यत्वकी प्राप्ति होती है ॥ २०० ॥

आगे पूछते हैं कि सम्यग्दृष्टि रागी किसतरह नहीं होता? उसका उत्तर कहते हैं,— [**खलु**] निश्चयकरके [**यस्य**] जिस जीवके [**रागादीनां**] रागादिकोंका [**परमाणुमात्रमपि**] लेशमात्र (अंशमात्र) भी [**तु विद्यते**] मौजूद है तो [**सः**] वह जीव [**सर्वागमधरोपि**] सब शास्त्रोंको पढा हुआ होनेपर भी [**आत्मानं तु**] आत्माको [**नापि**] नहीं [**जानाति**] जानता [**च**] और [**आत्मानं**] आत्माको [**अजानन्**] नहीं जानता हुआ [**अनात्मानं अपि**] परको भी [**अजानन्**] नहीं जानता है [**जीवाजीवौ**] इसतरह जो जीव और अजीव दोनों पदार्थोंको भी [**अजानन्**] नहीं जानता [**सः**] वह [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**कथं भवति**] कैसे होसकता है? नहीं होसकता ॥ **टीका**—जिस जीवके अज्ञानमय रागादिभावोंका लेशमात्र भी मौजूद है वह जीव श्रुतकेवलीके समान भी हो तौ भी

यस्य रागाद्यज्ञानभावानां लेशतोऽपि विद्यते सद्भावः, भवतु स श्रुतकेवलिसदृशोऽपि तथापि ज्ञानमयभावानामभावेन न जानात्यात्मानं । यस्त्वात्मानं न जानाति सोऽनात्मानमपि न जानाति स्वरूपपररूपसत्तासत्ताभ्याभ्यामेकस्य वस्तुनो निश्चीयमानत्वात् । ततो य आत्मानात्मानौ न जानाति स जीवाजीवौ न जानाति । यस्तु जीवाजीवौ न जानाति स

स्वज्ञानाभावात् शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मानं न जानाति, नानुभवति । कथंभूतोऽपि ? सर्वागमधरोऽपि सिद्धांतसिंधुपारगोऽपि । **अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चेव सो अयाणंतो** स्वसंवेदनज्ञानबलेन सहजानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानमजानन्, तथैवाभावयंश्च शुद्धात्मनो भिन्नरागादिरूपमनात्मानं जानन् **कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो** स पुरुषो जीवाजीवस्वरूपमजानन् सन् कथं भवति सम्यग्दृष्टिः ? न कथमपीति । रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः । तर्हि चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तिनः, तीर्थंकर-कुमरभरत-सगर-राम-पांडवादयः

ज्ञानमयभावके अभावसे आत्माको नहीं जानता । और जो अपने आत्माको नहीं जानता है वह अनात्मा (पर) को भी नहीं जानता । क्योंकि अपना और परका स्वरूपका सत्त्व तथा असत्त्व दोनों एक ही वस्तुके निश्चयमें आ जाते हैं । इसलिये ऐसा है कि जो आत्मा और अनात्मा दोनोंको नहीं जानता है वह जीव अजीव वस्तुको ही नहीं जानता, तथा जो जीव अजीवको नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि नही है। इसलिये रागी है वह ज्ञानके अभावसे सम्यग्दृष्टि नहीं है ॥ **भावार्थ**—यहां रागी कहनेसे अज्ञानमय रागद्वेषमोहभाव लिये गये हैं । उसमें भी अज्ञानमय कहनेसे मिथ्यात्व अनंतानुवंधीसे हुए रागादिक समझना, मिथ्यात्वके विना चारित्रमोहके उदयका राग नहीं लेना । क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टिआदिके चारित्रमोहके उदयसंवंधी राग है वह ज्ञानसहित है उसको रोगके समान जानता है उस रागके साथ राग नहीं है कर्मोदयसे जो राग हुआ है उसको मैंटना चाहता है । और जो रागका लेशमात्र भी इसके नहीं कहा सो ज्ञानीके अशुभराग तो अत्यंत गौण है परंतु शुभराग होता है उस शुभरागको अच्छा समझ लेशमात्र भी उस रागसे राग करे तो सर्वशास्त्र भी पढ लिये हैं मुनि भी हो व्यवहारचारित्र भी पाले तो भी ऐसा समझना चाहिये कि इसने अपने आत्माका परमार्थस्वरूप नहीं जाना कर्मोदयजनितभावको ही अच्छा समझा है उसीसे अपना मोक्ष होना मान रक्खा है । ऐसे माननेसे अज्ञानी ही है । अपने और परके परमार्थरूपको नहीं जाना तब जानना चाहिये कि जीव अजीव पदार्थका भी परमार्थरूप नहीं जाना और जब जीवअजीवको ही नहीं जाना तब कैसा सम्यग्दृष्टि ? ऐसा जानना ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं उसमें जो रागी प्राणी अनादिसे रागादिकको

सम्यग्दृष्टिरेव न भवति । ततो रागी ज्ञानाभावान्न भवति सम्यग्दृष्टिः । "आ संसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्धि बुध्यध्वमंधाः । एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥ १३८ ॥" ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

सम्यग्दृष्टयो न भवंति ?, इति । तत्र, मिथ्यादृष्टयपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बंधाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवंति । कथं ? इति चेत्, चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां जीवानां अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिताना पापाणरेखादिसमानाना रागादीनामभावात् । पचमगुणस्थानवर्तिना पुनर्जीवाना, अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनिताना भूमिरेखादिसमाना रागादीनामभावात्, इति पूर्वमेव भणितमास्ते । अत्र तु ग्रंथे पंचमगुणस्थानादुपरितनगुणस्थानवर्तिनां वीतरागसम्यग्दृष्टीनां मुख्यवृत्त्या ग्रहणं, सरागसम्यग्दृष्टीनां गौणवृत्त्येति व्याख्यानं सम्यग्दृष्टिव्या-

---

अपना पद जानते हैं उनको उपदेश करते हैं—**आ संसारा** इत्यादि । **अर्थ**—श्रीगुरु संसारी भव्यजीवको संबोधते हैं कि हे अंधे प्राणियो ! जो रागी पुरुष हैं वे अनादि संसारसे लेकर जिसपदमें सोते हैं निद्रामें मग्न हैं उस पदको तुम अपद समझो, यह तुमारा स्थान नहीं है । यहां दोवार कहनेसे अतिकरुणाभाव सूचित होता है । फिर कहते हैं कि तुमारा ठिकाना यह है यह है जहां चैतन्यधातु शुद्ध है शुद्ध है अपने स्वाभाविक रसके समूहसे स्थायीभावपनेको प्राप्त है । यहांपर दो शुद्धपद हैं वे द्रव्य और भाव दोनोंकी शुद्धताके लिये हैं । सो सब अन्यद्रव्योंसे जुदापना वह तो द्रव्यशुद्धता है और परके निमित्तसे हुए अपने भाव उनसे रहितभाव शुद्ध कहे जाते हैं सो इस तरफ आओ इस तरफ आओ यहां निवास करो ॥ **भावार्थ**—ये प्राणी अनादि संसारसे लेकर रागादिकको अच्छा जानकर उनको ही अपना स्वभावमान उन्हींमें निश्चित तिष्ठते (सोते) हैं उनको श्रीगुरु दयालु होके संबोधते हैं (जगाते हैं—सावधान करते हैं) कि हे अंधे प्राणियो ! तुम जिस पदमें सोते हो वह तुमारा पद नहीं है तुमारा पद तो चैतन्यस्वरूप—मय है उसको प्राप्त होओ ऐसें सावधान करते हैं । जैसे कोई महंतपुरुष मद पीकर मलिन जगहमें सोता हो उसको कोई आकर जगावे और कहे कि तेरी जगह तो सुवर्णमय धातुकी अतिदृढ शुद्ध सुवर्णसे रची और बाह्य कजौडेकर रहित शुद्ध ऐसी है । सो हम बतलाते हैं वहां आओ वहां ही शयना दिकर आनंदरूप हो । उसीतरह श्रीगुरुने उपदेशकर सावधान किया है कि बाह्य तो अन्यद्रव्योंकर मिलाप नहीं और अंतरंग विकार नहीं ऐसे शुद्धचैतन्यरूप अपने भावका आश्रय करो । दो दो वार कहनेसे अतिकरुणा अनुराग सूचित होता है ॥ २०१।२०२ ॥

किं तत्पदं?—

आदह्मि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलंब्भंतं सहावेण॥ २०३॥

आत्मनि द्रव्यभावानपदानि मुक्त्वा गृहाण तथा नियतं।
स्थिरमेकमिमं भावं उपलभ्यमानं स्वभावेन॥ २०३॥

इह खलु भगवत्यात्मनि बहूनां द्रव्यभावानां मध्ये ये किल अतत्स्वभावेनोपलभ्यमानाः, अनियतत्वावस्थाः, अनेके, क्षणिकाः, व्यभिचारिणो भावाः ते सर्वेऽपि स्वयम-

---

ख्यानकाले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यं॥ २०१।२०२॥ अथ किं तत् परमात्मपदमिति पृच्छति;—**आदह्मि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण** आत्मद्रव्येऽधिकरणभूते, द्रव्यकर्माणि भावकर्माणि च यानि तिष्ठंति तानि विनश्वराणि, इति विज्ञाय मुक्त्वा **गिण्ह** हे भव्य गृहाण।

आगे पूछते हैं कि हे श्रीगुरो तुम बताओ वह पद कहां है? उसका उत्तर कहते हैं;—**[आत्मानं]** आत्मामें **[अपदानि]** परनिमित्तसे हुए अपदरूप **[द्रव्यभावान्]** द्रव्य भावरूप सभी भावोंको **[मुक्त्वा]** छोड़कर **[नियतं]** निश्चित **[स्थिरं]** स्थिर **[एकं]** एक **[स्वभावेन]** स्वभावकर ही **[उपलभ्यमानं]** ग्रहण होने योग्य **[इमं]** इस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर **[भावं]** चैतन्यमात्र भावको हे भव्य! तू **[तथा गृहाण]** जैसा है वैसा ग्रहण कर। वही अपना पद है॥ **टीका**—निश्चयकर इस भगवान् आत्मामें द्रव्यभावरूप बहुत भाव दीखते हैं। उनमें कोई तो उस आत्माके स्वभावसे रहित हैं वे अनिश्चित अवस्थारूप हैं, अनेक हैं क्षणिक हैं व्यभिचारी हैं ऐसे भाव हैं, वे सभी अस्थायी हैं जिनका ठहरनेका स्वभाव नहीं है, इसलिये ठहरनेवाले आत्माके ठहरनेका स्थान होनेके योग्य नहीं हैं। इसकारण वे अपदस्वरूप हैं। और जो भाव आत्मस्वभावकर तो ग्रहणमें आता है तथा सदा निश्चित रहता है, एक है, नित्य है, अव्यभिचारी है ऐसा एक चैतन्यमात्र ज्ञानभाव है। सो आप स्थायीभावस्वरूप है सदा विद्यमान पाया जाता है, वह ही तिष्ठनेवाले आत्माका ठहरनेका स्थान होने योग्य है। इसलिये यह भाव पदभूत है। इसकारण सभी अस्थायीभावोंको छोड़कर स्थायीभूत परमार्थरसपनेसे स्वादमें आता हुआ यह ज्ञान है वही एक आस्वादने योग्य है॥ **भावार्थ**—पूर्व वर्णादिक गुणस्थानांत भाव कहे थे वे सभी आत्मामें अनियत, अनेक क्षणिक, व्यभिचारी ऐसे भाव हैं वे आत्माके पद नहीं है। और यह जो स्वसंवेदनस्वरूप ज्ञान है वह नियत है, एक है, नित्य है, अव्यभिचारी है, स्थायीभाव है। वह आत्माका पद है सो ज्ञानियोंकर यही एक स्वाद लेने योग्य है॥ अब इस अर्थका

---

१ तात्पर्यवृत्तौ, 'अथिरे मोत्तूण' इति पाठः।

स्थायित्वेन स्थातुः स्थानं भवितुमशक्यत्वात् अपदभूताः । यस्तु तत्स्वभावनोपलभ्यमानः, नियतत्वावस्थः, एकः, नित्यः, अव्यभिचारी भावः,स एक एव स्वयं स्थायित्वेन स्थान भवितुं शक्यत्वात् पदभूतः । ततः सर्वानेवास्थायिभावान् मुक्त्वा स्थायिभावभूतं, परमार्थरसतया स्वदमानं ज्ञानमेकमेवेदं स्वाद्यं । "एकमेवं हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदं । अपदान्येव भासंते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥ १३९ ॥ एकं ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन् स्वादं द्वंद्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन् । आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं सामान्यं कलयत्किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकतां ॥ १४० ॥" ॥ २०३ ॥

कं ? कर्मतापन्नं तच णियदं थिरमेगमिमं भावं उपलब्भंतं सहावेण भाव आत्मपदार्थं । कथंभूतं ? तव सबधि स्वरूपं । नियतं निश्चितं । पुनरपि कथंभूत ? स्थिरं, अविनश्वरं । एकं, असहाय । इद प्रत्यक्षीभूत । पुनरपि किंविशिष्टं ? उपलभ्यमानं अनुभूयमान ।

कलशरूप श्लोक कहते हैं—**एकमेव** इत्यादि । **अर्थ**—वही एक पद आस्वादने योग्य है । जो पद, आपदाओंका पद नहीं है अर्थात् जिस पदमें कोई भी आपदा प्रवेश नहीं करसकती । जिसके आगे अन्य सभी पद अपद प्रतिभासते है ॥ **भावार्थ**—एक ज्ञान ही आत्माका पद है इसमें कुछ भी आपदा नहीं है इसके आगे अन्य सभी पद आपदास्वरूप (आकुलतामय) अपद भासते हैं ॥ फिर कहते हैं कि आत्मा, ज्ञानका अनुभव इसतरह करता है—**एकं ज्ञायक** इत्यादि । **अर्थ**—यह आत्मा, ज्ञानके विशेषोंके उदयको गौण करता हुआ सामान्यमात्र ज्ञानको अभ्यास करता सब ज्ञानको एकभावस्वरूप प्राप्त करता है । कैसा हुआ ? कि एक ज्ञायकमात्र भावकर भरे हुए ज्ञानको महास्वादको लेता हुआ । फिर कैसा है ? जो मिला हुआ वर्णादिक रागादिक तथा क्षायोपशमरूप ज्ञानके भेदरूप स्वाद उसके लेनेको असमर्थ है अर्थात् ज्ञानमें ही एकाग्र हो जाता है तव दूसरा स्वाद नहीं आता । फिर कैसा है ? अपनी वस्तुकी प्रवृत्तिको जानता है आस्वाद करता है क्योंकि वह आत्माके अनुभव (आस्वाद) के प्रभावसे विवश है अर्थात् उसी स्वादके आधीन है वहांसे चिग नहीं सकता, अद्वितीय स्वाद लेता हुआ बाहर क्यों आये ? ॥ **भावार्थ**—इस एक स्वरूपज्ञानके रसीले स्वादके सामने अन्यरस फीके है । सब भेदभाव मिट जाता है । ज्ञानके विशेष ज्ञेयके निमित्तसे होते हैं । सो जब ज्ञानसामान्यका स्वाद लिया जाता है तब सब ज्ञानके भेद भी गौण हो जाते हैं एक ज्ञान ही ज्ञेयरूप हो जाता है ॥ यहां कोई पूछे कि छद्मस्थके पूर्णरूप केवलज्ञानका स्वाद कैसे आता है ? उसका उत्तर पहले शुद्धनयके कथनमें दे

---

१ विपदा चातुर्गतिकदु खाना । २ अपदानि अस्वभावभूतानि चातुर्गतिकपर्याया वा–रागद्वेषसुखदु खावस्थाभेदा वा । ३ स्थैर्यादिधर्मान्वितस्य चैतन्यस्य पुरस्तात् । ४ गौणीकुर्वेत् ।

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं ।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥ २०४ ॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च तद्भवत्येकमेव पदं ।
स एष परमार्थः यं लब्ध्वा निर्वृतिं याति ॥ २०४ ॥

आत्मा किल परमार्थः तत्तु ज्ञानं, आत्मा च एक एव पदार्थः, ततो ज्ञानमप्येकमेव पदं, यदेतत्तु ज्ञानं नामैकं पदं स एष परमार्थः साक्षान्मोक्षोपायः । न चाभिनिबोधिकादयो भेदा इदमेकपदमिह भिंदंति ? किं तु तेपीदमेवैकं पदमभिनंदंति । तथाहि-यथात्र सवितुर्घनपटलावगुंठितस्य तद्विघटनानुसारेण प्राकट्यमासादयतः प्रकाशनातिशयभेदा न

केन कृत्वा? परमात्मसुखसवित्तिरूपस्वसंवेदनज्ञानस्वभावेनेति ॥ २०३ ॥ अथ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूप परमार्थसंज्ञं मोक्षकारणभूतं यत्परमात्मपद तत्समस्तहर्षविषादादिविकल्पजालरहितं परमयोगाभ्यासादेवात्मानुभवति, इति प्रतिपादयति;— **आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं** मतिश्रुतावधि-

---

दिया था कि शुद्धनय आत्माका शुद्ध पूर्णरूप जताता है सो इस नयके द्वारा पूर्णरूप केवलज्ञानका परोक्षस्वाद आता है । ऐसा जानना ॥ २०३ ॥

आगे इसी अर्थरूप गाथा कहते है कि कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे ज्ञानमें भेद है जब ज्ञानका स्वरूप विचारा जाय तो ज्ञान एक ही है;—[**आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च**] मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान [**तत् एकमेव पदं भवति**] ये ज्ञानके भेद है वे ज्ञान पदको ही प्राप्त हैं सभी एक ज्ञान नामसे कहे जाते हैं [**स एषः परमार्थः**] सो यह शुद्धनयका विषयस्वरूप ज्ञानसामान्य है इसलिये यही शुद्धनय है [**यं लब्ध्वा**] जिसको पाकर आत्मा [**निर्वृतिं**] मोक्षपदको [**याति**] प्राप्त होता है ॥ **टीका**—निश्चयकर आत्मा परमपदार्थ है, वह आत्मा पूर्वकथित ज्ञान ही है, वह आत्मा एक ही पदार्थ है इसलिये ज्ञान भी एक पदको ही प्राप्त है, यह ज्ञाननामा एक पद है वह परमार्थस्वरूप साक्षात् मोक्षका उपाय है। मतिज्ञानादिक जो ज्ञानके भेद है वे उस ज्ञाननामा एक पदको भेदरूप नहीं करते इकट्ठा करते हैं अर्थात् एक ज्ञाननामा पदको ही वृद्धिरूप प्रगटकर प्रकाशते है । यही कहते हैं—जैसे इस लोकमें बादलोंसे संकोचरूप आच्छादित सूर्यका उस बादलके दूर होनेके अनुसारसे प्रगटपना होता है तिसके प्रगट होनेके व प्रकाशके हीनाधिक भेद हैं वे उसके प्रकाशरूप सामान्यस्वभावको नहीं भेदते, उसी तरह कर्मसमूहोंके उदयकर संकोचरूप आच्छादित आत्मा उस कर्मके क्षयोपशमके अनुसार प्रगटपनेको प्राप्त हुए ज्ञानके हीनाधिक भेद है वे आत्माके सामान्य ज्ञानस्वभावको नहीं भेदते किंतु (उलटे) प्रकाशरूप प्रगट ही करते हैं। इसलिये जिसमें समस्त भेद दूर होगये है ऐसे आत्माके स्वभावभूत एक ज्ञानको ही आलंबन करना चाहिये

तस्य प्रकाशस्वभावं भिंदंति । तथा, आत्मनः कर्मपटलोदयावगुंठितस्य तद्विघटनानुसारेण प्राकट्यमासादयतो ज्ञानातिशयभेदा न तस्य ज्ञानस्वभावं भिंद्युः । किं तु प्रत्युतमभिनंदेयुः । ततो निरस्तसमस्तभेदमात्मस्वभावभूतं ज्ञानमेवैकमालम्ब्यं । तदालंबनादेव भवति पदप्राप्तिः, नश्यति भ्रांतिः, भवत्यात्मलाभः, सिद्ध्यत्यनात्मपरिहारः, न कर्म मूर्छति, न रागद्वेषमोहा उत्प्लवंते, न पुनः कर्म आस्रवति, न पुनः कर्म बध्यते, प्राग्बद्धं कर्म उपभुक्तं निर्जीर्यते, कृत्स्नकर्माभावात् साक्षान्मोक्षो भवति । "अच्छाच्छाः स्वयमु-

---

मनःपर्ययकेवलज्ञानभेदरूपं यत्तन्निश्चयेन, एकमेव पद परं, किं तु यथादित्यस्य मेघावरणतारतम्यवशेन प्रकाशभेदा भवंति, तथा मतिज्ञानावरणादिभेदकर्मवशेन मतिश्रुतज्ञानादिभेदभिन्न

उस ज्ञानके आलंबनसे ही निजपदकी प्राप्ति होती है, उसीसे भ्रमका नाश होता है, उसीसे आत्माका लाभ होता है और अनात्माके परिहारकी सिद्धि होती है। ऐसा होनेपर कर्मके उदयकी मूर्छा नहीं होती, रागद्वेष मोह नहीं उत्पन्न होते, रागद्वेष मोहके विना फिर कर्मका आस्रव नहीं होता, आस्रव न होनेसे फिर कर्मको नहीं बांधता, पहले जो कर्म बांधे थे वे भोगने बाद निर्जराको प्राप्त होते हैं । सब कर्मोंका अभाव होकर साक्षात् मोक्ष होता है । ऐसा ज्ञानके आलंबनका महात्म्य है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानमें भेद कर्मोंके क्षयोपशमके अनुसार हुए हैं वे कुछ ज्ञानसामान्यको अज्ञानरूप नहीं करते उल्टे ज्ञानको ही प्रगट करते हैं। इसलिये भेदोंको गौणकर एक ज्ञान सामान्यका आलंवन लेके आत्माको ध्यावना। इसीसे सब सिद्धि होती है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**अच्छाच्छाः** इत्यादि । **अर्थ**—आत्माकी जो यह संवेदनकी व्यक्ति है अर्थात् अनुभवमें आये हुए ज्ञानके भेद हैं वे निर्मलसे निर्मल अपने आप उछ्लते हैं—प्रगट अनुभवमें आते हैं। कैसे हैं वे भेद? समस्त पदार्थोंके समूहरूप रसके पीनेके बहुत बोझेसे मानों मतवाले हो गये हैं। यह भगवान् चैतन्यरूप समुद्र उठती हुई लहरोंसे अभिन्नरस हुआ एक है तौ भी अनेकरूप हुआ दोलायमान प्रवर्तता है, जिसकी निधि अद्भुत है ऐसा है ॥ **भावार्थ**—जैसे बहुतरलोंकर भरा समुद्र एक जलकर भरा है तौ भी उसमें निर्मल छोटी बड़ी अनेक लहरें उठती हैं वे सब एक जलरूप ही हैं, उसीतरह यह आत्मा ज्ञानसमुद्र है सो एक ही है इसमें अनेक गुण हैं और कर्मके निमित्तसे ज्ञानके अनेक भेद अपने आप व्यक्तिरूप होके प्रगट होते हैं वे व्यक्तियां एक ज्ञानरूप ही जाननी खंडखंडरूप नहीं अनुभव करनी। अब फिर भी विशेषतासे कहते हैं—**क्लिश्यंतां** इत्यादि। **अर्थ**—कोई जीव, दुःखकर किये जानेवाले और मोक्षसे परान्मुख कर्मोंसे स्वयमेव (जिनाज्ञा विना) क्लेश करें और कोई मोक्षके सन्मुख, कथंचित् जिनाज्ञामें कहे गये ऐसे महाव्रत तथा तपके भारसे बहुत कालतक

च्छलंति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव । यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोप्यनेकी भवन् वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥ १४१ ॥ किंच—"क्लिश्यंतां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः क्लिश्यंतां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं । साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमंते न हि ॥ १४२ ॥" ॥ २०४ ॥

णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहूवि ण लहंति ।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥ २०५ ॥

ज्ञानगुणेन विहीना एतत्तु पदं बहवोऽपि न लभंते ।
तद्गृहाण नियतमेतद् यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षं ॥ २०५ ॥

जातं **सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि** स एष लोकप्रसिद्धः पंचज्ञानाभेदरूपः परमार्थः यं परमार्थं लब्ध्वा जीवो निर्वृतिं याति लभत इत्यर्थः । एवं ज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिविशेषविवरणरूपेण सूत्रदशकं गतं ॥ २०४ ॥ अत ऊर्ध्वं गाथाष्टकपर्यंतं तस्यैव परमात्मपदस्य प्रकाशको योसौ ज्ञानगुणः, तस्य सामान्यविवरणं करोति । तद्यथा । अथ मत्यादिपंचज्ञानाभेदरूपं साक्षान्मोक्षकारणभूतं यत्परमात्मपदं, तत्पदं शुद्धात्मानुभूतिशून्यं व्रततपश्चरणादिकायक्लेशं कुर्वाणा अपि स्वसंवेदनज्ञानगुणेन विना न लभत इति कथयति;—**णाणगुणेहिं विहीणा एदं**

भग्न (पीडित) हुए कर्मोंकर क्लेश करो उन कर्मोंसे तो मोक्ष होती नहीं । इसलिये यह ज्ञान ही साक्षात् मोक्षस्वरूप है और निरामयपद है अर्थात् जिसमे कुछ रोगादिक क्लेश नहीं हैं तथा अपनेसे ही आप वेदने योग्य है । ऐसा ज्ञान तो ज्ञानगुणके विना किसीतरहके कष्टसे प्राप्त नहीं हो सकता ॥ **भावार्थ**—ज्ञान है वह साक्षात् मोक्ष है वह ज्ञानसे ही मिलता है अन्य किसी भी क्रियाकांडसे नहीं प्राप्त होता ॥ २०४ ॥

आगे इसी अर्थरूप उपदेश करते है,—हे भव्य **[यदि]** जो तू **[कर्मपरिमोक्षं]** कर्मका सब तरफसे मोक्ष करना **[इच्छसि]** चाहता है **[तु]** तो **[तत् एतत् नियतं]** उस निश्चित ज्ञानको **[गृहाण]** ग्रहणकर । क्योंकि **[ज्ञानगुणेन विहीनाः]** ज्ञानगुणकर रहित **[बहवः अपि]** बहुत पुरुष बहुत प्रकारके कर्म करते है तौ भी **[एतत् पदं]** इस ज्ञानस्वरूप पदको **[न लभंते]** नहीं प्राप्त होते ॥ **टीका**—जिसकारण सभी कर्मोंमें ज्ञानका प्रकाशना नहीं है इसकारण ज्ञानका पाना कर्मकर नहीं होता, केवल एक ज्ञानकर ही ज्ञानमे ज्ञानका प्रकाशन है इसलिये

---

१ यावंत पर्यायास्तेभ्योऽभिन्नसत्ताक । २ परिणमति । ३ अनादितो मत्याद्यनेकभेदै । ४ शुद्धस्वरूपानुभवभ्रष्टा । ५ सासारिकक्लेशरहित । ६ शुद्धस्वरूपानुभवशक्तिमंतरेण । ७ सुपदमितितात्पर्यवृत्तौ पाठ ।

यतो हि सकलेनापि कर्मणा कर्मणि ज्ञानस्याप्रकाशनात् ज्ञानस्यानुपलंभः । केवलेन ज्ञानेनेव ज्ञान एव ज्ञानस्य प्रकाशनाद् ज्ञानस्योपलंभः । ततो वहवोऽपि वहुनापि कर्मणा ज्ञानशून्या नेदमुपलभंते । इदमनुपलभमानाश्च कर्मभिर्विप्रमुच्यंते ततः कर्ममोक्षार्थिना केवलज्ञानावष्टंभेन नियतमेवेदमेकं पदमुपलंभनीयं ॥ "पदमिदं ननु कर्मदुरासदं सहजबोधकलासुलभं किल । तत इदं निजवोधकलाबलात्कलयितुं यततां सततं जगत् ॥१४३॥" ॥ २०५ ॥

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥ २०६ ॥

एतस्मिन् रतो नित्यं संतुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तृप्तो भविष्यति तवोत्तमं सौख्यं ॥ २०६ ॥

एतावानेव सत्य आत्मा यावदेतज्ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्र एव नित्यमेव रतिमुपै-

---

तु पदं बहूवि ण लहंति निर्विकारपरमात्मतत्त्वोपलब्धिलक्षणज्ञानगुणेन विहीनाः रहिताः पुरुषाः वहवोऽपि शुद्धात्मोपादेयसवित्तिरहितं दुर्धरकायक्लेशादितपश्चरण कुर्वाणा अपि मत्यादिपंचज्ञानाभेदरूपं साक्षान्मोक्षकारण स्वसवेद्य शुद्धात्मसवित्तिविलक्षणमिद पदं न लभते । **तं गिण्ह सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं** हे भव्य तत्पद गृहाण यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षमिति ॥ २०५ ॥ अथात्मसुखे सतोष दर्शयति **एदह्मि**

ज्ञानकर ही ज्ञानका पाना होता है इसकारण ज्ञानकर शून्य बहुत प्राणी बहुत तरहके कर्मोंके करनेसे भी इस ज्ञानके पदको नहीं पाते और इस पदके न पानेसे ही कर्मोंसे नहीं छूटते । इसलिये जो कर्मोंका मोक्ष करना चाहता है उसको तो केवल एक ज्ञानके अवलंबनकर निश्चित इसी एक पदको प्राप्त होना चाहिये ॥ **भावार्थ**—ज्ञानसे ही मोक्ष होती है कर्मसे नहीं है । इसलिये मोक्षार्थीको ज्ञानका ही ध्यान करना चाहिये यह उपदेश है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**पदमिदं** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञानमयपद कर्मकरनेसे तो दुष्प्राप्य है और स्वाभाविक ज्ञानकी कलासे सुलभ है यह प्रगट निश्चयसे जानो ॥ इसलिये अपने निजज्ञानकी कलाके बलसे इस ज्ञानके अभ्यास करनेको सब जगत् अभ्यासका यत्न करो ॥ **भावार्थ**—सकल कर्मोंको छुडाके ज्ञानके अभ्यास करनेका उपदेश किया है । और ज्ञानकी कला कहनेसे ऐसा सूचित होता है कि जबतक पूर्णकला प्रगट न हो तबतक ज्ञान है वह हीनकलास्वरूप है मतिज्ञानादिरूप है । उस ज्ञानकी कलाके अभ्याससे पूर्णकला जो केवलज्ञानस्वरूप कला वह प्रगट होती है ॥ २०५ ॥

आगे फिर इसी उपदेशको प्रगटकर (विशेषकर) कहते है,—हे भव्य जीव ! तू

हि । एतावत्येव सत्याशीः, यावदेतज्ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्रेणैव नित्यमेव संतोषमुपैहि । एतावदेव सत्यमनुभवनीयं यावदेव ज्ञानमिति निश्चित्य ज्ञानमात्रेणैव नित्यमेव तृप्तिमुपैहि । अथैवं तव तन्नित्यमेवात्मरतस्य, आत्मसंतुष्टस्य, आत्मतृप्तस्य च वाचामगोचरं सौख्यं भविष्यति । तत्तु तत्क्षण एव त्वमेव स्वयमेव द्रक्ष्यसि मा अन्यान् प्राक्षीः । "अचिंत्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिंतामणिरेव यस्मात् । सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १४४" २०६ ॥

रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि एदेण होहि तित्तो हे भव्य पंचेंद्रियसुखनिवृत्तिं कृत्वा निर्विकल्पयोगबलेन स्वाभाविकपरमात्मसुखे रतो भव संतुष्टो भव तृप्तो भव नित्य सर्वकालं **तो होहदि उत्तमं सुक्खं** ततस्तस्मादात्मसुखानुभवनात्

एतस्मिन्] इस ज्ञानमे [**नित्यं**] सदाकाल [**रतः भव**] रुचिसे लीन हो और [**एतस्मिन्**] इसीमे [**नित्यं**] हमेशा [**संतुष्टः भव**] संतुष्ट हो अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है और [**एतेन**] इसीसे [**तृप्तः भव**] तृप्त हो अन्य कुछ इच्छा नहीं रहे ऐसा अनुभवकर ऐसा करनेसे [**तव**] तेरे [**उत्तमं सुखं**] उत्तम सुख [**भविष्यति**] होगा ॥ **टीका**—हे भव्य इतने मात्र ही सत्य परमार्थस्वरूप आत्मा है जितना यह ज्ञान है । ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र आत्मामे ही निरंतर रति प्रीति रुचिको प्राप्त हो । इतनामात्र ही सत्यार्थ कल्याण है जितना यह ज्ञान है ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र आत्मासे नित्य ही संतोषको प्राप्त हो नित्य ही तृप्तिको प्राप्त हो, और इतना ही सत्यार्थ अनुभव करने योग्य है जितना यह ज्ञान है ऐसा निश्चयकर ज्ञानमात्र ही आत्माकर नित्य तृप्तिको प्राप्त हो । इसतरह नित्य ही आत्मामे रत, आत्मामें संतुष्ट, आत्मामें तृप्त होनेसे तेरे वचनके अगोचर नित्य उत्तमसुख होगा उस सुखको उसीसमय स्वयमेव ही देखेगा । दूसरेसे मत पूछे, यह सुख अपने अनुभवगोचर ही है दूसरेको क्यों पूछता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानमात्र आत्मामें लीन होना इसीसे संतुष्ट रहना इसीसे तृप्त होना यह परमध्यान है । इसीसे वर्तमानमे आनंदरूप होता है और उसके बाद ही संपूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है । इस सुखको ऐसा पूर्वोक्त करनेवाला ही जानता है अन्यका इसमे प्रवेश नहीं है ॥ अब इसकी महिमाको आगेके कथनकी सूचनास्वरूप कलशरूप काव्य कहते हैं—**अचिंत्य** इत्यादि । **अर्थ**—जिस कारण यह चैतन्यमात्र चिंतामणिवाला ऐसा ज्ञानी, स्वयमेव आप देव है । कैसा है ? कि जिसमें ऐसी शक्ति है जो किसीके विचारमे नहीं आसकती । ऐसे ज्ञानीके सब प्रयोजन सिद्ध हैं ऐसे स्वरूप हुआ अन्य वस्तुके परिग्रहकर क्या करना ? कुछ भी नहीं करना ॥ **भावार्थ**—यह ज्ञानमूर्ति आत्मा अनंतशक्तिका धारक वांछितकार्यकी सिद्धि

कुतो ज्ञानी न परं गृह्णातीति चेत्;—

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो ॥ २०७ ॥

को नाम भणेद् बुधः परद्रव्यं ममेदं भवति द्रव्यं ।
आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियतं विजानन् ॥ २०७ ॥

यतो हि ज्ञानी, यो हि यस्य स्वो भावः स तस्य स्वः स तस्य स्वामीति खरतरतत्त्वदृष्ट्यवष्टंभात् आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियमेन जानाति । ततो न ममेदं स्वं नाहमस्य स्वामी इति परद्रव्यं न परिगृह्णाति अतोऽहमपि न तत् परिगृण्हामि ॥ २०७ ॥

तवोत्तममक्षयं मोक्षसुखं भविष्यति ॥ २०६ ॥ अथ ज्ञानी परद्रव्यं जानातीति भेदभावना प्रतिपादयति;—**को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मममिदंहवदि दव्वं** परद्रव्यं मम भवतीति नाम स्फुटमहो वा को ब्रूयात्[?] बुधो ज्ञानी, न कोपि । किं कुर्वन्[?] **अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो** चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मानमेव, आत्मनः परिग्रहं विजानन् नियतं निश्चितमिति ॥ २०७ ॥ अथ मिथ्यात्वरा-

---

करनेवाला आप ही देव है इसलिये सब प्रयोजनोंके सिद्धपनेकर ज्ञानीके अन्यपरिग्रहके सेवन करनेसे क्या साध्य है ? कुछ भी नहीं, यह निश्चयनयका उपदेश जानो ॥२०६॥

आगे पूछते हैं कि ज्ञानी परको क्यों नहीं ग्रहण करता ? उसका उत्तर कहते हैं;— **[कः नाम बुधः]** ऐसा कौन ज्ञानी पंडित है ? जो **[इदं परद्रव्यं]** यह परद्रव्य **[मम द्रव्यं]** मेरा द्रव्य **[भवति]** है **[भणेत्]** ऐसा कहे, ज्ञानी तो न कहे । कैसा है ज्ञानी पंडित ? **[आत्मानं तु]** अपने आत्माको ही **[नियतं]** नियमसे **[आत्मनः परिग्रहं]** अपना परिग्रह **[विजानन्]** जानता हुआ प्रवर्तता है ॥ **टीका**—जिसकारण जो ज्ञानी है वह नियमसे ऐसा जानता है कि जो जिसका स्वभाव है वही उसका स्व है, धन है द्रव्य है । और उसी स्वभावरूप वह द्रव्यका स्वामी है । ऐसे सूक्ष्म तीक्ष्ण तत्त्वदृष्टिके अवलंबनसे आत्माका परिग्रह अपना आत्मस्वभाव ही है ऐसा जानता है । इसकारण परद्रव्यको ऐसा जानता है कि यह मेरा स्व नहीं, मैं इसका स्वामी नहीं । इसलिये परद्रव्यको अपना परिग्रह नहीं करता ॥ इसलिये मैं भी ज्ञानी हूं सो परद्रव्यको नहीं ग्रहण करता ॥ **भावार्थ**—लोकमें यह रीति है कि समझदार चतुर मनुष्य है वह परकी वस्तुको अपनी नहीं जानता उसको ग्रहण नहीं करता उसीतरह परमार्थज्ञानी अपने स्वभावको ही अपना धन जानता है परके भावको अपना नहीं जानता ऐसा ज्ञानी परका ग्रहण सेवन नहीं करता ॥ २०७ ॥

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०८॥

मम परिग्रहो यदि ततोऽहमजीवतां तु गच्छेयं।
ज्ञातैवाहं यस्मात्तस्मान्न परिग्रहो मम ॥ २०८॥

यदि परद्रव्यमहं परिगृण्हीयां तदावश्यमेवाजीवो ममासौ स्वः स्यात्। अहमप्यवश्यमेवाजीवस्यामुष्य स्वामी स्यां। अजीवस्य तु यः स्वामी, स किलाजीवः। एवमवशेनापि ममाजीवत्वमापद्येत। मम तु एको ज्ञायक एव भावः यः स्वः, अस्यैवाहं स्वामी, ततो माभून्ममाजीवत्वं ज्ञातैवाहं भविष्यामि न परद्रव्यं परिगृण्हामि, अयं च मे निश्चयः ॥२०८॥

गादिरूपमपध्यानं मम परिग्रहो न भवतीति पुनरपि भेदज्ञानशक्तिं वैराग्यशक्तिं च प्रकटयति;— **मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीविदं तु गच्छेज्ज** सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्य मम यदि मिथ्यात्वरागादिक परद्रव्यं परिग्रहो भवति ततोऽह अजीवत्वं जडत्वं गच्छामि। न चाहं अजीवो भवामि। **णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ** परमात्मज्ञानपदमेवाहं यस्मात्ततः परद्रव्यं मम परिग्रहो न भवतीत्यर्थः ॥ २०८॥ अथायं च मे निश्चयः

आगे इसी अर्थको युक्तिसे दृढ करते हैं;—ज्ञानी ऐसा जानता है कि [**यदि**] जो [**मम**] मेरा परद्रव्य [**परिग्रहः**] परिग्रह हो [**ततः**] तो [**अहं**] मैं भी [**अजीवतां**] अजीवपनेको [**गच्छेयं**] प्राप्त हो जाउं [**यस्मात्**] जिसकारण [**अहं तु**] मैं तो [**ज्ञाता एव**] ज्ञाता ही हूं [**तस्मात्**] इसकारण [**मम**] मेरे [**परिग्रहः**] कुछ भी परिग्रह [**न**] नहीं है ॥ **टीका**—जो अजीव परद्रव्यको मैं ग्रहण करूं तो अजीव मेरा स्व अवश्य हो जाय और मैं भी उस अजीवका अवश्य स्वामी ठहरूं। क्योंकि यह न्याय है कि अजीवका स्वामी निश्चयकर अजीव ही होता है इसतरह मेरे भी अजीवपना अवश्य आ पड़े। इसलिये मेरा तो एक ज्ञायक भाव ही मेरा स्व है उसीका मैं स्वामी हूं। इसकारण मेरे अजीवपना न हो, मैं तो ज्ञाता ही होऊंगा परद्रव्यको नहीं ग्रहण करूंगा यह मेरा निश्चय है ॥ **भावार्थ**—निश्चयनयकर यह सिद्धांत है कि जीवका भाव तो जीव ही है उसीकर जीवका स्व स्वामी संबंध है। और अजीवके भाव अजीव ही हैं उन्हींके साथ अजीवका स्वस्वामी संबंध है। सो यदि जीवके अजीवका परिग्रह मानिये तो जीव अजीवपनेको प्राप्त हो जाय। इसलिये परमार्थसे जीवके अजीवका परिग्रह मानना मिथ्याबुद्धि है। ज्ञानीके यह मिथ्याबुद्धि नहीं होती। ज्ञानी तो इसतरह मानता है कि परद्रव्य मेरा परिग्रह नहीं है मैं तो ज्ञाता हूं ॥ २०८॥

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०९ ॥

छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां वाथवा यातु विप्रलयं ।
यस्मात्तस्माद् गच्छतु तथापि खलु न परिग्रहो मम ॥ २०९ ॥

छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां वा विप्रलय यातु वा यतस्ततो गच्छतु वा तथापि न परद्रव्यं परिगृण्हामि । यतो न परद्रव्यं मम स्वं नाह परद्रव्यस्य स्वामी । परद्रव्यमेव परद्रव्यस्य स्वं परद्रव्यमेव परद्रव्यस्य स्वामी । अहमेव मम स्वं अहमेव मम स्वामीति जानाति । इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतु । अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेपाद् भूयस्तमेव परिहर्तुमय प्रवृत्तः ॥ १४५ ॥" २०९ ॥

देहरागादि मम परिग्रहो न भवतीति भेदज्ञान निरूपयति,—**छिज्जदु वा भिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं** छिद्यता वा द्विधा भवतु, भिद्यता वा छिद्री भवतु, नीयता वा केनचित् । अथवा विप्रलय विनाश गच्छतु, एवमेव **जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ** अन्यस्मात् यस्मात् तस्मात् कारणाद्वा गच्छतु तथापि शरीर मम परिग्रहो न भवति । कस्मात्? इति चेत् टकोत्कीर्णपरमानदज्ञायकैकस्वभावोह, यतः कारणात् । अयं च मे निश्चयः ॥ २०९ ॥ अथ विशेषपरिग्रहत्यागरूपेण तमेव ज्ञानगुण विवृणोति;—

आगे कहते हैं कि ऐसा माननेवाले ज्ञानीके परद्रव्यके विगडने, सुधरनेमें दोनोंमें समता है;—ज्ञानी ऐसा विचारता है कि परद्रव्य [**छिद्यतां वा**] छिद जाओ [**भिद्यतां वा**] अथवा भिद जाओ [**नीयतां वा**] अथवा कोई ले जाओ [**अथवा**] या [**विप्रलयं यातु**] नष्ट हो जाओ [**यस्मात् तस्मात्**] जिसतिसतरहसे [**गच्छतु**] चलीजाओ [**तथापि**] तौभी [**खलु**] निश्चयकर [**मम**] मेरा [**परिग्रहः न**] परद्रव्य परिग्रह नहीं है ॥ **टीका**—परद्रव्य छिदो, वा भिदो, वा कोई लेओ, वा नष्ट होजाओ, वा जिस तिस कारणसे चलीजाओ तौभी मैं परद्रव्यको परिग्रहण नहीं करता, क्योंकि परद्रव्य मेरा स्व नहीं है और न मैं उसका स्वामी हूं । मैं अपना ही स्वामी हूं ऐसा जानता हूं ॥ **भावार्थ**—ज्ञानीके परद्रव्यके विगडने सुधारनेका हर्षविषाद नहीं है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप तथा आगेके कथन की सूचनिकारूप काव्य कहते हैं,—इत्थं इत्यादि । **अर्थ**—इसप्रकार सामान्यसे सभी परिग्रहको छोडकर अपने परके अविवेकका कारण अज्ञानको छोड़नेका जिसका मन है ऐसा जो यह ज्ञानी वह उस परिग्रहको विशेपकर जुदा जुदा छोड़नेको फिर प्रवृत्त होता है ॥ **भावार्थ**—जिस कारण स्व परको एकरूप जाननेका हेतु अज्ञान है इसी कारण परद्रव्यका परिग्रहण है । इसलिये ज्ञानीके पहली गाथामें परिग्रहका सामान्यकर त्याग करना कहा गया ॥ २०९ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होई ॥ २१० ॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति धर्मं ।
अपरिग्रहस्तु धर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २१० ॥

इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छात्वज्ञानमयो भावः, अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो न भवति, ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति, ततो ज्ञानी अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् धर्मं नेच्छति । तेन ज्ञानिनो धर्मपरिग्रहो नास्ति । ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावाद् धर्मस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात् ॥ २१० ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अहम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २११ ॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यधर्मं ।
अपरिग्रहोऽधर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २११ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं अपरिग्रहो भणितः । कोसौ? अनिच्छः । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येष्विच्छा वांछा मोहो नास्ति । तेन कारणेन स्वसंवेदनज्ञानी शुद्धोपयोगरूपं निश्चयधर्मं विहाय शुभोपयोगरूपं धर्मं पुण्यं नेच्छति **अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि** ततः कारणात्पुण्यरूपधर्मस्यापरिग्रहः सन् पुण्यमिदं मम स्वरूपं न भवतीति ज्ञात्वा तद्रूपेणापरिणमन् अतन्मयो भवन् दर्पणे विम्बस्येव ज्ञायक एव भवति ॥ २१० ॥ **अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो**

अब आगे अज्ञानके छोड़नेको विशेषकर जुदा जुदा नाम लेकर त्याग करना कहते हैं;—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**अपरिग्रहः**] परिग्रहसे रहित है [**अनिच्छः**] इसलिये परिग्रहकी इच्छासे रहित है [**भणितः**] ऐसा कहा है इसीकारण [**धर्मं च**] धर्मको [**न इच्छति**] नहीं चाहता [**तेन**] इसीलिये [**धर्मस्य अपरिग्रहः**] धर्मका परिग्रह नहीं है [**सः**] वह ज्ञानी [**ज्ञायकः भवति तु**] धर्मका ज्ञायक ही है ॥ **टीका**—इच्छा है वही परिग्रह है जिसके इच्छा नहीं उसके परिग्रह भी नहीं और जो इच्छा है वह अज्ञानमय भाव है वह भाव ज्ञानीके नहीं है, ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव है । इसलिये ज्ञानी अज्ञानमय भावरूप इच्छाके अभावसे धर्मको नहीं चाहता इस कारण ज्ञानीके धर्म परिग्रह नहीं है ज्ञानमय एक ज्ञायक भावके सद्भावसे धर्मका केवल ज्ञाता ही यह ज्ञानी है ॥ २१० ॥

आगे इसीतरह ज्ञानीके अधर्मपरिग्रह नहीं है ऐसा कहते हैं;—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**अनिच्छः**] इच्छारहित है इसलिये [**अपरिग्रहः**] परिग्रहरहित [**भणितः**]

इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छात्वज्ञानमयो धर्मः । अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति, ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति । ततो ज्ञानी अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् अधर्मं नेच्छति तेन ज्ञानिनः अधर्मपरिग्रहो नास्ति, ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावादधर्मस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात् । एवमेव चाधर्मपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि, अनया दिशाऽन्यान्यप्यूह्यानि ॥ २११ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१२ ॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति अशनं ।
अपरिग्रहस्त्वशनस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २१२ ॥

णाणी य णिच्छदि अहम्मं अपरिग्रहो भणितः। स कः [१] अनिच्छः—तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य बहिर्द्रव्येषु इच्छा कांक्षा नास्ति । तेन कारणेन तत्त्वज्ञानी विषयकषायरूप अधर्मं पाप नेच्छति । **अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि** तत एव कारणात्—विषयकषायरूपस्याधर्मस्याऽपरिग्रहः सन् पापमिदं मम स्वरूपं न भवतीति ज्ञात्वा तद्रूपेणापरिणमन् दर्पणे बिम्बस्येव ज्ञायक एव भवति । एवमेव च, अधर्मपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसंज्ञानि सप्तदशसूत्राणि व्याख्येयानि तेनैव प्रकारेण शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितानंतज्ञानादिगुणस्वरूपशुद्धात्मनः प्रतिपक्षभूतानि शेषाण्यप्यसंख्येयलोकप्रमितानि विभावपरिणामस्थानानि वर्जनीयानि ॥ २११ ॥

कहा है इसीसे [**अधर्मं न इच्छति**] अधर्मकी इच्छा नहीं करता [**सः**] वह ज्ञानी [**अधर्मस्य**] अधर्मका [**अपरिग्रहः**] परिग्रह नहीं रखता [**तेन**] इसलिये वह [**ज्ञायकः भवति च**] उस अधर्मका ज्ञायक ही है ॥ **टीका**—इच्छा है वह परिग्रह है जिसके इच्छा नहीं है । उसके परिग्रह नहीं है । और इच्छा है वह अज्ञानमयभाव है वह भाव ज्ञानीके नहीं है । ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव है इसलिये ज्ञानी अज्ञानमय भावरूप इच्छाके अभावसे अधर्मकी नहीं इच्छा करता इस कारण ज्ञानीके अधर्मका परिग्रह नहीं है । ज्ञानमय जो एक ज्ञायकभाव उसके सद्भावसे यह ज्ञानी अधर्मका केवल ज्ञायक ही है ॥ इसीतरह गाथामें अधर्मपदके पलटनेसे अधर्मकी जगह राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ कर्म नोकर्म मन वचन काय श्रोत्र चक्षु घ्राण रसन स्पर्शन—ये सोलह पद रख सोलह गाथा सूत्रोंकर व्याख्यान करना । और इसी उपदेशसे अन्यभी विचार लेना ॥ २११ ॥

---

१ 'भणिदो असणं तु णिच्छदे णाणी' तात्पर्यवृत्तौ पाठोऽयं ।

इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति इच्छात्वज्ञानमयो भावः, अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति । ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति । ततो ज्ञानी अज्ञा-

---

धम्मच्छि अधम्मच्छी आयासं सुत्तमंगपुव्वेसु ।
संगं च तहा णेयं देवमणुअत्तिरियणेरइयं ॥

अपरिग्रहो भणितः । कोऽसौ ? अनिच्छः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु आकांक्षा नास्ति तेन कारणेन परमतत्त्वज्ञानी चिदानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानं विहाय धर्माधर्माकाशाद्यंगपूर्वगतश्रुतवाह्याभ्यंतरपरिग्रहदेवमनुष्यतिर्यङ्नरकादिविभावपर्यायान्नेच्छति इति ज्ञेयं ज्ञातव्य । ततः कारणात्तद्विषये निष्परिग्रहो भूत्वा तद्रूपेणापरिणमन् सन् दर्पणे बिम्बस्येव ज्ञायक एव भवति । **अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असणं च णिच्छदे णाणी** अपरिग्रहो भणितः । स कः ? अनिच्छः । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु इच्छा मूर्च्छा ममत्वं नास्ति । इच्छात्वज्ञानमयो भावः स च ज्ञानिनो न संभवति । **अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि** तत एव कारणात् आत्मसुखे तृप्तो भूत्वा अशनविषये निष्परिग्रहः

आगे ज्ञानीके आहार करना भी परिग्रह नहीं है यह कहते है,—[**अनिच्छः अपरिग्रहः**] इच्छारहित हो वही परिग्रह रहित है [**भणितः**] ऐसा कहा है [**च**] और [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**अशनं**] भोजनको [**न इच्छति**] नहीं इच्छता इसलिये [**अशनस्य**] ज्ञानीके भोजनका [**अपरिग्रहः**] परिग्रह नहीं है [**तेन**] इसकारण [**सः**] वह ज्ञानी [**ज्ञायकः तु**] अशनका ज्ञायक ही [**भवति**] है ॥ **टीका**—इच्छा है वही परिग्रह है जिसके इच्छा नहीं है उसके परीग्रह भी नही । और इच्छा है वह अज्ञानमय भाव है सो ज्ञानीके अज्ञानमय भाव नहीं है । ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव है इसलिये ज्ञानी अज्ञानमय भावरूप इच्छाके अभावसे भोजनको नहीं चाहता इस कारण ज्ञानीके अशनका परिग्रह नहीं है ज्ञानमय जो एक ज्ञायक भाव उसके सद्भावसे यह ज्ञानी केवल अशनका ज्ञायक ही है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानीके आहारकी भी इच्छा नही है इसकारण ज्ञानीके आहार करना भी परिग्रह नहीं है । यहांपर यह प्रश्न होता है कि आहार तो मुनि भी करते है उनके इच्छा है या नहीं? विना इच्छा आहार किस तरह करते है ? उसका समाधान—असातावेदनीयकर्मके उदयसे तो जठराग्निरूप क्षुधा उपजती है वीर्यांतरायके उदयकर उसकी वेदना सही नहीं जाती और चारित्रमोहके उदयकर ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है सो इस इच्छाको कर्मके उदयका कार्य जानता है उस इच्छाको रोगके समान जान मेंटना चाहता है । इच्छासे अनुरागरूप इच्छा नहीं है अर्थात् ऐसी इच्छा नहीं होती कि मेरी

नमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् अशनं नेच्छति तेन ज्ञानिनोऽशनपरिग्रहो नास्ति ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावादशनस्य केवलं ज्ञायक एवायं स्यात् ॥ ११२ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भंणिदो णाणीय णिच्छदे पाणं ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१३ ॥

अपरिग्रहो अनिच्छो भणितः ज्ञानी च नेच्छति पानं ।
अपरिग्रहस्तु पानस्य ज्ञायकस्तेन स भवति ॥ २१३ ॥

इच्छा परिग्रहः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्येच्छा नास्ति, इच्छात्वज्ञानमयो भावः अज्ञानमयो भावस्तु ज्ञानिनो नास्ति । ज्ञानिनो ज्ञानमय एव भावोऽस्ति । ततो ज्ञानी, अज्ञानमयस्य भावस्य इच्छाया अभावात् पानं नेच्छति । तेन ज्ञानिनः पानपरिग्रहो नास्ति

सन् दर्पणे बिम्बस्येव अशनाद्याहारस्य वस्तुनो वस्तुरूपेण ज्ञायक एव भवति । न च रागरूपेण ग्राहक इति ॥ २१२ ॥ **अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाणं तु णिच्छदे णाणी** अपरिग्रहो भणित. । कोसौ? अनिच्छः । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येष्वाकांक्षा तृष्णा मोह इच्छा नास्ति । इच्छात्वज्ञानमयो भावः स च ज्ञानिनो न संभवति **अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि** ततः कारणात् स्वाभाविकपरमानंदसुखे तृप्तो भूत्वा विविधपानकविषये निष्परिग्रहः सन् दर्पणे बिम्बस्येव वस्तुस्वरूपेण ज्ञायक एव भवति, नच रागरूपेण ग्राहक इति । तथा चोक्त —ण वलाउसाहणट्ठ ण सरीरस्स य वयट्ठतेजट्ठ । णाणट्ठं सजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुजति ॥ १ ॥ अक्खाभक्खणिमित्त इसिणो भुंजति पाणधारणणिमित्तं । पाणा

यह इच्छा सदा रहे इसलिये अज्ञानमय इच्छाका अभाव है परजन्य इच्छाका स्वामीपना ज्ञानीके नहीं है इसलिये ज्ञानी इच्छाका भी ज्ञायक ही है । ऐसा शुद्ध नयको प्रधानकर कथन जानना ॥ २१२ ॥

आगे पानका भी परिग्रह ज्ञानीके नहीं है ऐसा कहते हैं,—[**अनिच्छः**] इच्छारहित है वह [**अपरिग्रहः**] परिग्रहरहित [**भणितः**] कहा गया है [**च**] और [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**पानं**] जल आदि पीनेकी [**न इच्छति**] इच्छा नहीं रखता [**तेन**] इसकारण [**पानस्य**] पानका [**अपरिग्रहः**] परिग्रह ज्ञानीके नहीं है इसलिये [**सः**] वह ज्ञानी [**ज्ञायकः तु**] पानका ज्ञायक ही [**भवति**] है ॥ **टीका**—इच्छा है वह अज्ञानमय भाव है सो ज्ञानीके अज्ञानमय भाव नहीं है । ज्ञानीके तो ज्ञानमय ही भाव है इसलिये ज्ञानी अज्ञानमय भाव जो इच्छा उसके अभावसे पानको नहीं इच्छता इसलिये ज्ञानीके पानका परिग्रह नहीं है ज्ञानमय जो

---

१ 'तात्पर्यवृत्तौ–भणिदो पाणं च णिच्छदे णाणी' इति पाठ' ।

ज्ञानमयस्यैकस्य ज्ञायकभावस्य भावात् केवलं पानकस्य ज्ञायक एवायं स्यात् ॥ २१३ ॥

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥ २१४ ॥

एवमादिकांस्तु विविधान् सर्वान् भावांश्च नेच्छति ज्ञानी ।
ज्ञायकभावो नियतः निरालंबस्तु सर्वत्र ॥ २१४ ॥

एवमाद्योऽन्येऽपि बहुप्रकाराः परद्रव्यस्य ये भावास्तान् सर्वानेव नेच्छति ज्ञानी तेन ज्ञानिनः सर्वेषामपि परद्रव्यभावानां परिग्रहो नास्ति इति सिद्धं ज्ञानिनोऽत्यंतनिष्परिग्र-

---

धम्मणिमित्तं धम्मं हि चरंति मोक्खट्ठं ॥ २॥"२१३ ॥ अथ परिग्रहत्यागव्याख्यानमुपसंहरति;—**इच्चादु एदु विविहे सव्वे भावेय णिच्छदे णाणी** इत्यादिकान् पुण्यपापान् पानादिबहिर्भावान् सर्वतः परमात्मतत्त्वज्ञानी नेच्छति । अनिच्छन् स कथंभूतो भवन्? **जाणगभावो णियदो णीरालंबो य सव्वत्थ** टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकस्वभाव एव भवति नियतो निश्चित. । पुनश्च कथभूतो भवति? जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारिता-

---

एक ज्ञायक भाव उसके सद्भावसे यह ज्ञानी पानका केवल ज्ञायक ही है ॥ **भावार्थ**—आहारके समान जानना ॥ २१३ ॥

आगे कहते हैं कि इसीतरह अन्य जो अनेक प्रकारके परजन्य भाव उनको भी ज्ञानी नहीं चाहता;—[**एवमादिकान् तु**] इस प्रकारको आदि लेकर [**विविधान्**] अनेक प्रकारके [**सर्वान् भावान्**] सब भावोंको [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**न इच्छति**] नहीं इच्छता । क्योंकि [**नियतः**] नियमसे [**ज्ञायकभावः**] आप ज्ञायक भाव है इसलिये [**सर्वत्र निरालंबः तु**] सबमें निरालंब है ॥ **टीका**—इसी पूर्वोक्त प्रकारको आदि लेकर अन्य भी बहुत प्रकार परद्रव्यके जो स्वभाव हैं उन सबको ही ज्ञानी नहीं इच्छता इस कारण ज्ञानीके सभी परद्रव्योंके भावोंका परिग्रह नहीं है । इसतरह ज्ञानीका अत्यंत निष्परिग्रहपना सिद्ध हुआ । इसप्रकार यह ज्ञानी समस्त अन्य भावोंके परिग्रह कर शून्यपनेसे जिसने समस्त अज्ञान उगल दिया है ऐसा हुआ सब जगह अति निरालंबन स्वरूप होकर जुदा ही एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक भाव हुआ साक्षात् विज्ञानघन आत्माको अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—पूर्वोक्त प्रकार आदि लेकर सभी अन्य भावोंका ज्ञानीके परिग्रह नहीं है क्योंकि सभी परभावोंको हेय जाने तब उनकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं होती । उदयमें आये हुएको अनासक्त हुआ भोगता है । संसार देहभोगोंसे रागरूप इच्छाके विना परिग्रहका अभाव कहा गया है ॥ अब उस अर्थका कलशरूप कहते हैं—**पूर्वबद्ध** इत्यादि **अर्थ**—ज्ञानीके जो पूर्व बंधे अपने

---

१ 'इच्चाइएदु' इति तात्पर्यवृत्तौ पाठः ।

हत्वं । अथैवमयमशेषभावांतरपरिग्रहशून्यत्वात् उद्वांतसमस्ताज्ञानः सर्वत्राप्यत्यंतनिरालंबो भूत्वा प्रतिनियतटंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावः सन् साक्षाद्विज्ञानघनमात्मानमनुभवति । पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकाद् ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः । तद्भवत्वथ च रागवियोगान्नूनमेति न परिग्रहभावं ॥ १४६ ॥" २१४ ॥

उप्पण्णोदयभोगो विओगबुद्धीए तस्स सो णिच्चं ।
कंखामणागयस्स य उदयस्स ण कुव्वए णाणी ॥ २१५ ॥

उत्पन्नोदयभोगो वियोगबुद्ध्या तस्य स नित्यं ।
कांक्षामनागतस्य चोदयस्य न करोति ज्ञानी ॥ २१५ ॥

कर्मोदयोपभोगस्तावत् अतीतः प्रत्युत्पन्नो नागतो वा स्यात् । तत्रातीतस्तावत् अती-

---

नुमितैश्च बाह्याभ्यंतरपरिग्रहरूपे चेतनाचेतनपरद्रव्ये सर्वत्र निरालंबोऽपि, अनंतज्ञानादिगुणस्वरूपे स्वस्वभावे पूर्णकलश इव सालंबन एव तिष्ठतीति भावार्थः ॥ २१४ ॥ अथ ज्ञानी वर्तमानभाविभोगेषु वांछा न करोतीति कथयति,—**उप्पण्णोदयभोगे वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं** उत्पन्नोदयभोगे वियोगबुद्धिश्च हेयबुद्धिर्भवति 'तस्य तस्मिन् भोगविषये 'षष्ठीसप्तम्योरभेद इति वचनात्' कोसौ निरीहवृत्तिर्भवति? स्वसंवेदनज्ञानी नित्यं सर्वकाल **कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी** स एव ज्ञानी,

---

कर्मके उदयसे उपभोग होता है सो होवे परंतु रागके वियोगसे निश्चयकर वह उपभोग परिग्रहभावको नहीं प्राप्त होता ॥ **भावार्थ**—पूर्व बांधे हुए कर्मोंका जब उदय आये तब उपभोगसामग्री प्राप्त होवे उसको अज्ञानमय राग भावकर भोगे तब तो वह परिग्रहभावको प्राप्त होवे । परंतु ज्ञानीके अज्ञानमय रागभाव नहीं है उदय आया है उसे भोगता है । यह जानता है कि पूर्व बांधा था वही उदय आगया पीछा छूटा आगामी नहीं वांछा करता हूं । इसतरह उनसे रागरूप इच्छा नहीं है तब वे परिग्रह भी नहीं है ॥ २१४ ॥

आगे ज्ञानीके तीन कालगत परिग्रह नहीं है ऐसा कहते हैं,—[**उत्पन्नोदयभोगः**] उत्पन्न हुआ वर्तमान कालके उदयका भोग [**तस्य**] उस ज्ञानीके [**नित्यं**] हमेशा [**स**] वह [**वियोगबुद्ध्या**] वियोगकी बुद्धिकर वर्तता है इसलिये परिग्रह नहीं है [**च**] और [**अनागतस्य उदयस्य**] आगामी कालमें होनेवाले उदयकी [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**कांक्षां**] वांछा [**न करोति**] नहीं करता इसलिये परिग्रह नहीं है । तथा अतीतकालका वीत ही चुका सो यह विना कहा सामर्थ्यसे ही जानना कि इसके परिग्रह नहीं है । गयेहुएकी वांछा ज्ञानीके कैसे हो ? **टीका**—कर्मके उदयका उपभोग तीन प्रकार है—अतीतकालका, वर्तमानकालका, अगामीकालका। उनमें-

तत्वादेव सन् परिग्रहभावं बिभर्ति । अनागतस्तु आकांक्ष्यमाण एव परिग्रहभावं बिभृयात् । प्रत्युत्पन्नस्तु स किल रागबुद्ध्या प्रवर्तमान एव तथा स्यात् । नच प्रत्युत्पन्नः कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनो रागबुद्ध्या प्रवर्तमानो दृष्टः, ज्ञानिनोऽज्ञानमयभावस्य रागबुद्धेरभावात् । वियोगबुद्ध्यैव केवलं प्रवर्तमानस्तु स किल न परिग्रहः स्यात् । ततः प्रत्युत्पन्नः कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनः परिग्रहो न भवेत् । अनागतस्तु स किल ज्ञानिनो न

अनागतस्य निदानबंधरूपभाविभोगोदयस्याकाक्षा न करोति । किं च विशेषः । य एव भोगोपभोगादिचेतनाचेतनसमस्तपरद्रव्यनिरालंबनो भावपरिणामः स एव स्वसंवेदनज्ञानगुणो भण्यते । तेन ज्ञानगुणालवनेन य एव पुरुषः ख्याति-पूजा-लाभभोगाकाक्षारूपनिदानबंधादिविभावरहितः सन् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमितैश्च विषयसुखानंदवासनावासितं चित्तं मुक्त्वा शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागपरमानदसुखेन वासितं रंजित मूर्छितं परिणत तन्मय तृप्तं रतं संतुष्ट चित्तं कृत्वा वर्तते स एव मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूपं परमार्थशब्दाभिधेयं साक्षान्मोक्षकारणभूतं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं परमागमभाषया वीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानस्वरूपं स्वसंवेद्यशुद्धात्मपदं परमसमरसीभावेन अनुभवति न चान्यः । यादृशं परमात्मपदमनुभवति तादृशं परमात्मपदस्वरूपं मोक्ष लभते । कस्मात्? इतिचेत्, उपादानकारणसदृश कार्यं भवति यतः कारणात् इति । एवं स्वसवेदनज्ञानगुणं विना मत्यादिपंचज्ञानविकल्परहि-

---

से अतीतकालका तो वीत ही गया इसलिये ज्ञानी परिग्रहभावको नहीं धारण करता, आगामीकालकी वांछा करे तव परिग्रह भावको धारे सो ज्ञानीके आगामी वांछा नहीं है इसलिये परिग्रहभावको नहीं धारता, जिस कर्मको ज्ञानी अपना अहित जानता है उसके उदयके भोगकी आगामी वांछा कैसे करसकता है ? और वर्तमानका उपभोग रागबुद्धिसे प्रवर्तमान हो तब परिग्रह भावको धारे सो ज्ञानीके वर्तमानका उपभोग रागबुद्धिकर प्रवर्तमान नहीं दीखता, क्योंकि ज्ञानीके अज्ञानमय भावरूप रागबुद्धिका अभाव है । केवल विराग बुद्धिकर ही प्रवर्तमान होना परिग्रह नहीं है क्योंकि ज्ञानीकी ऐसी बुद्धि है कि जिसका संयोग हुआ उसका वियोग अवश्य होगा इसलिये विनाशीकसे प्रीति नहीं करनी । इसकारण वर्तमान कर्मके उदयका उपभोग है वह ज्ञानीके परिग्रह नहीं है और आगामी कर्मके उदयको न चाहनेवाले ज्ञानीके अनागत उपभोग परिग्रह नहीं है क्योंकि ज्ञानीके अज्ञानमय भावरूप वांछाका अभाव है इसलिये अनागत भी कर्मके उदयका उपभोग ज्ञानीके परिग्रह नहीं है ॥ **भावार्थ**—अतीत तो वीत ही गया, अनागतकी वांछा नहीं और वर्तमानमें राग नहीं है हेय जाने उसमें राग किसतरह होसकता है । इसलिये ज्ञानीके तीनों ही कालके कर्मके उदयका भोगना परि-

कांक्षित एव, ज्ञानिनोऽज्ञानमयभावस्याकांक्षाया अभावात् । ततो नागतोऽपि कर्मोदयोपभोगो ज्ञानिनः परिग्रहो न भवेत् ॥ २१५ ॥

कुतोऽनागतं ज्ञानी नाकांक्षतीति चेत्;—

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं ।
तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखइ कयावि ॥ २१६ ॥

यो वेदयते वेद्यते समये समये विनश्यत्युभयं ।
तद् ज्ञायकस्तु ज्ञानी, उभयमपि न कांक्षति कदाचित् ॥ २१६ ॥

ज्ञानी हि तावद् ध्रुवत्वात् स्वभावभावस्य टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावो नित्यो भवति, यौ तु वेद्यवेदकभावौ तौ तूत्पन्नप्रध्वंसित्वाद्विभावभावानां क्षणिकौ भवतः । तत्र यो भावि

तमखंडपरमात्मपदं न लभ्यते इति सक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्राष्टक गतं ॥ २१५ ॥ अथ भाविन भोग ज्ञानी न काक्षतीति कथयति,—**जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं** योसौ रागादिविकल्पः कर्ता वेदयत्यनुभवति यस्तु

ग्रह नहीं है । वर्तमानके कारण मिलाता है सो पीड़ा नहीं सही जाती उसका इलाज रोगकी तरह करता है यह निबलाईका दोष है ॥ २१५ ॥

आगे पूछते हैं कि अनागतकालके कर्मके उदयको ज्ञानी क्यों नहीं वांछता ? उसका उत्तर कहते है,—[**यः**] जो [**वेदयते**] अनुभव करनेवाला भाव अर्थात् वेदकभाव और जो [**वेद्यते**] अनुभव करने योग्य भाव अर्थात् वेद्यभाव [**उभयं**] इसतरह वेदक और वेद्य ये दोनों भाव आत्माके होते हैं सो क्रमसे होते हैं एक समयमें नहीं होते । ये दोनों ही [**समये समये**] समय समयमें [**विनश्यति**] विनस जाते हैं । आत्मा दोनों भावोंमें नित्य है [**तत्**] इसलिये [**ज्ञानी**] ज्ञानी आत्मा [**ज्ञायकः तु**] दोनों भावोंका ज्ञायक (जाननेवाला) ही है [**उभयमपि**] इन दोनों भावोंको ज्ञानी [**कदापि**] कदाचित् भी [**न कांक्षति**] नहीं चाहता ॥ **टीका**—ज्ञानी तो अपने स्वभावके ध्रुवपना होनेसे टंकोत्कीर्ण एक ज्ञानस्वरूप नित्य है और जो वेदनेवाला तथा वेदने योग्य ऐसे दो वेदक तथा वेद्यभाव हैं वे उपजना तथा विनाशस्वरूप हैं क्योंकि विभाव भाव हैं उनके क्षणिकपना है इसलिये दोनों भाव विनाशीक (क्षणिक) हैं वहां ऐसा विचार होता है कि वेदकभाव आगामी वांछामें लेने योग्य वेद्य भावको अनुभव करे । यह जबतक उपजे तबतक वेद्यभाव नष्ट होजाय (विनस जाय) उसके विनाश होनेपर वेदकभाव किसका अनुभव करे ? तथा जो यहां ऐसे कहा जाय कि वांछामें आता जो वेद्यभाव उसके बाद होनेवाला जो अन्य वेद्य भाव उसको वेदता है तो उसके होनेके पहले ही वह वेदकभाव विनस जाता है तब उस वेद्य भावको कौन वेद सकता है ? । फिर कहते हैं

कांक्षमाणं वेद्यभावं वेदयते स यावद्भवति तावत्कांक्षमाणो भावो विनश्यति । तस्मिन् विनष्टे वेदको भावः किं वेदयते? । यदि कांक्षमाणवेद्यभावपृष्ठभाविनमन्यं भावं वेदयते। तदा तद्भवनात्पूर्वं विनश्यति कस्तं वेदयते! यदि वेदकभावपृष्ठभावी भावोन्यस्तं वेदयते तदा तद्भवनात्पूर्वं स विनश्यति । किं स वेदयते? इति कांक्ष्यमाणभाववेदनानवस्था तां च विजानन् ज्ञानी किंचिदेव कांक्षति-वेद्यवेदकविभावचलत्वाद्वेद्यते न खलु कांक्षितमेव तेन कांक्षति न किंचन विद्वान् सर्वतोप्यतिविरक्तिमुपैति ॥ १३७ ॥" २१६ ॥

सातोदयः कर्मतापन्नं वेद्यते तेन रागादिविकल्पेन, अनुभूयते । तदुभयमपि अर्थपर्याया-पेक्षया समयं समयं प्रति विनश्वरं **तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखदि कयावि** तदुभयमपि वेद्यवेदकरूपं वर्तमानं भाविन च विनश्वरं जानन् सन् तत्त्वज्ञानी ना-

---

कि वेदकभावके वाद होनेवाला जो अन्य वेदक भाव वह उस वेद्यभावको वेदेगा तो उस वेदकभावके होनेके पहले वह वेद्यभाव विनस जाय तव वह वेदकभाव कौनसे भावको वेदे? ऐसा कांक्षमाणभाव अर्थात् वेदनाकी वांछामे आता हुआ भाव उसकी अनवस्था है कहीं ठहराव नहीं । उस अनवस्थाको जानता हुआ ज्ञानी कुछ भी नहीं वांछता॥ **भावार्थ—** वेदकभाव (वेदनेवाला भाव) और वेद्यभाव (जिसको वेदे) इन दोनोंमे काल भेद है। जब वेदकभाव होता है तव वेद्यभाव नहीं होता और जव वेद्यभाव होता है तव वेदकभाव नहीं होता। ऐसा होनेपर जब वेदकभाव आता है तब वेद्यभाव विनस जाता है तब वेदकभाव किसको वेदे? और जव वेद्यभाव आता है तव वेदकभाव विनस जाता है तव वेदकभावके विना वेद्यको कौन वेदे?। इसलिये ज्ञानी दोनोंको विना-शीक जान आप जाननेवाला ही रहता है ॥ यहां प्रश्न—आत्मा तो नित्य है उसे दोनों भावोंका वेदनेवाला क्यों नहीं कहते? उसका समाधान—जो वेद्य वेदकभाव तो विभाव भाव हैं आत्माका स्वभाव तो नहीं हैं सो जिसकी वांछा की ऐसा वेद्यभाव जव-तक वेदकभाव आया तबतक नष्ट होगया। ऐसें वांछित भोग तो हुआ ही नहीं इस-कारण ज्ञानी निष्फल वांछा क्यों करे? मनोवांछित होता नहीं है तव वांछा करना अज्ञान है ॥ अव इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**वेद्य** इत्यादि । **अर्थ—**वेद्यवे-दकभाव है वे कर्मके निमित्तसे होते है इसलिये वे स्वभाव नहीं विभाव हैं और चलाय-मान है समय समयमें विनसते हैं इसलिये वांछितभाव नहीं वेदा जाता। इसीकारण ज्ञानी कुछ भी आगामी भोगोंको नहीं वांछता सभीसे वैराग्यभावको प्राप्त है ॥ **भावार्थ—** अनुभवगोचर जो वेद्यवेदकविभाव उनके कालभेद है इसलिये मिलाप नहीं—विधि मिलती नहीं तव आगामी वहुतकालसंवंधीकी वांछा ज्ञानी क्यों करे॥ २१६ ॥

तथाहि:—

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स ।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥ २१७ ॥

बंधोपभोगनिमित्तेषु, अध्यवसानोदयेषु ज्ञानिनः ।
संसारदेहविषयेषु नैवोत्पद्यते रागः ॥ २१७ ॥

इह खल्वध्यवसानोदयाः कतरेऽपि संसारविषयाः, कतरेपि शरीरविषयाः । तत्र यतरे संसारविषयाः ततरे बंधननिमित्ताः यतरे शरीरविषयास्ततरे तूपभोगनिमित्ताः । यतरे बंधनिमित्तास्ततरे रागद्वेषमोहाद्याः । यतरे तूपभोगनिमित्तास्ततरे सुखदुःखाद्याः । अथामीषु सर्वेष्वपि ज्ञानिनो नास्ति रागः । नानाद्रव्यस्वभावत्वेन टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावस्व-

---

कांक्षति न वाछंति कदाचिदपि ॥२१६ ॥ अथ तथैवापध्यानरूपाणि निष्प्रयोजनबंधनिमित्तानि शरीरविषये भोगनिमित्तानि च रागाद्यध्यवसानानि परमात्मतत्त्ववेदी न वांछति, इति प्रतिपादयति;—**बंधुवभोगणिमित्तं अज्झवसाणोदयेसु णाणिस्स णेव उप्पज्जदे रागो** स्वसंवेदनज्ञानिनो जीवस्य रागाद्युदयरूपेषु, अध्यवसानेषु बधनिमित्त भोगनिमित्तं वा नैवोत्पद्यते रागः । कथंभूतेष्वध्यवसानेषु ? **संसारदेहविसएसु** निष्प्रयोजनबंधनिमित्तेषु ससारविषयेषु, भोगनिमित्तेषु देहविषयेषु वा । इदमत्र तात्पर्यं भोगनिमित्तं स्तोकमेव पापं करोत्ययं जीवः । निष्प्रयोजनापध्यानेन बहुतरं करोति शालिमत्स्यवत् । तथा चोक्तमध्यानलक्षणं—

आगे ऐसे सभी उपभोगोंसे ज्ञानीके वैराग्य है यह कहते हैं—[**बंधोपभोगनिमित्तेषु**] बंध और उपभोगके निमित्त जो [**अध्यवसानोदयेषु**] अध्यवसानके उदय हैं वे [**संसारदेहविषयेषु**] संसारविषयक और देहके विषय हैं उनमें [**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके [**रागः**] राग [**नैव उत्पद्यते**] नहीं उपजता ॥ **टीका**—इस लोकमें निश्चयकर जो अध्यवसानके उदय हैं वे कितने ही तो संसारविषय हैं और कितने ही शरीरविषय हैं । उनमेंसे जितने संसारविषय हैं उतने तो बंधके निमित्त हैं और जितने शरीरके विषय हैं उतने उपभोगके निमित्त हैं । वहां जितने बंधके निमित्त हैं उतने तो राग द्वेष मोह आदिक हैं और जितने उपभोगके निमित्त हैं उतने सुख-दुःखादिक हैं । अब कहते हैं कि इन सबमें ही ज्ञानीके राग नहीं है क्योंकि अध्यवसान नाना द्रव्योंका स्वभाव है उसपनेसे उस ज्ञानीके एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभावके उनका प्रतिषेध है ॥ **भावार्थ**—संसारदेहभोगसंबंधी रागद्वेषमोह सुख दुःखादिक अध्यवसानके उदय हैं वे नाना द्रव्य अर्थात् पुद्गल तथा जीवद्रव्य संयोगरूप हुए उनके स्वभाव हैं और ज्ञानीका एक ज्ञायक स्वभाव है इसलिये ज्ञानीके उनका प्रतिषेध है इसकारण

भावस्य तस्य तत्प्रतिषेधात् । "ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं कर्मरागरसरिक्ततयैति रागयुक्तिरकषायितवस्त्रं स्वीकृतैव हि वहिर्लुठतीह । १३८ । ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात् सर्वरागरसवर्जनशीलः । लिप्यते सकलकर्मभिरेष कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ।१३९।"२१७॥

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥ २१८ ॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥ २१९ ॥

ज्ञानी रागप्रहायकः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः ।
नो लिप्यते रजसा तु कर्दममध्ये यथा कनकं ॥ २१८ ॥
अज्ञानी पुना रक्तः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः ।
लिप्यते कर्मरजसा कर्दममध्ये यथा लोहं ॥ २१९ ॥

बंधबंधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः अध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ १ ॥ इति अपध्याने कर्म बध्नाति तदप्युक्तमास्ते—संकल्पकल्पतरुसंश्रयाणात्त्वदीयं चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् । तत्रार्थतस्तव चकास्ति न किंचनापि पक्षः परं भवसि कल्मषसंश्रयस्य ॥१॥ दैर्विध्यदग्धमनसोऽतरुपात्तमुक्तेश्चित्तं यथोल्लसति ते स्फुरितोत्तरंगं । धाम्नि स्फुरेद्यदि तथा परमात्मसंज्ञे कौतुस्कुती तव भवेद्विफला प्रसूतिः ॥ २ ॥ आचारशास्त्रे भणितं—कंखदि कलुसिदभूदो दुकामभोगेहि मुच्छिदो सतो । णय भुंजंतो भोगे बंधदि भावेण कम्माणि ॥ १ ॥ इति ज्ञात्वा, अपध्यानं त्यक्त्वा च शुद्धात्मस्वरूपे स्थातव्यमिति भावार्थः ॥ २१७ ॥ अथानंतरं तस्यैव ज्ञानगुणस्य चतुर्दशगाथापर्यंत पुनरपि विशेषव्याख्यानं करोति । तद्यथा—ज्ञानी

ज्ञानीके उनमें प्रीति नहीं है । परद्रव्य परभाव संसारमें भ्रमणके कारण हैं उनसे प्रीति करे तो किस कामका ? ॥ इसी अर्थका कलशरूप तथा अगले कथनकी सूचनिकाके श्लोक कहते हैं—**ज्ञानिनो** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानी उन परिग्रह भावोंकर रहित है और ज्ञानी रागरूपी रसकर भी रहित है उसपनेकर कर्म[1] परिग्रहभावको नहीं प्राप्त होता । जैसे लोध फिटकरीसे कसायला नहीं किया गया जो वस्त्र उसमें रंगका लगना अंगीकार[2] न हुआ बाहर ही लोटता है वस्त्रमें प्रवेश नहीं करता ॥ **भावार्थ**—जैसे लोध फिटकरी लगाये विना वस्त्रपर रंग नहीं चढता उसीतरह ज्ञानीके रागभावविना कर्मके उदयका भोग नहीं है इसलिये वह परिग्रहपनेको नहीं प्राप्त होता ॥ फिर कहते हैं—**ज्ञानवान्** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानवान् अपने निजरससे ही सब रागरसकर रहित स्वभाव है इसकारण कर्मके मध्यमे पड़ाहुआ भी सब कर्मोंसे नहीं लिप्त होता ॥२१७॥

---

१ कर्म–विषयोपभोगलक्षणा क्रिया, राग आत्मनो रंजकपरिणामः स एव रसस्तद्रिक्ततया तद्भिन्नतया ।
२ स्वीकृता सयोगपरिणामपरिणता ।

यथा खलु कनकं कर्दममध्यगतमपि कर्दमेन न लिप्यते तदलेपस्वभावत्वात् । तथा किल ज्ञानी कर्ममध्यगतोऽपि कर्मणा न लिप्यते सर्वपरद्रव्यकृतरागत्यागशीलत्वे सति तदलेपस्वभावत्वात् । यथा लोहं कर्दममध्यगतं सत्कर्दमेन लिप्यते तल्लेपस्वभावत्वात् तथा किलाज्ञानी कर्ममध्यगतः सन् कर्मणा लिप्यते सर्वपरद्रव्यकृतरागोपादानशीलत्वे

सर्वद्रव्येषु वीतरागत्वात्कर्मणा न लिप्यते सरागत्वादज्ञानी लिप्यते, इति प्रतिपादयति,— हर्षविषादादिविकल्पोपाधिरहितः स्वसंवेदनज्ञानी सर्वद्रव्येषु रागादिपरित्यागशीलः यतः कारणात्, ततः कर्दममध्यगत कनकमिव कर्मरजसा न लिप्यते । अज्ञानी पुनः स्वसवेदनज्ञा-

---

आगे इसी अर्थका व्याख्यान गाथामें करते हैं,—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**सर्वद्रव्येषु**] सब द्रव्योंमें [**रागप्रहायकः**] रागका छोडनेवाला है वह [**कर्ममध्यगतः**] कर्मके मध्यमें प्राप्त होरहा है [**तु**] तौभी [**रजसा**] कर्मरूपी रजसे [**नो लिप्यते**] नहीं लिप्त होता [**यथा**] जैसे [**कर्दममध्ये**] कीचड़में पड़ा हुआ [**कनकं**] सोना [**तु पुनः**] और [**अज्ञानी**] अज्ञानी [**सर्वद्रव्येषु**] सब द्रव्योंमें [**रक्तः**] रागी है इसलिये [**कर्ममध्यगतः**] कर्मके मध्यको प्राप्त हुआ [**कर्मरजसा**] कर्मरजकर [**लिप्यते**] लिप्त होता है [**यथा**] जैसे [**कर्दममध्ये**] कीचमें पड़ा हुआ [**लोहं**] लोहा अर्थात् जैसे लोहेके काई लग जाती है वैसे ॥ **टीका**—जैसे निश्चयकर सुवर्ण कीचड़के वीचमें पड़ा हुआ है तौभी कीचड़से लिप्त नहीं होता क्योंकि सुवर्णमे काई नहीं लगती क्योंकि सुवर्णका स्वभाव कर्दमके लेप न लगने स्वरूप ही है उसीतरह प्रगटपनेसे ज्ञानी कर्मके वीचमें पड़ा है तौभी कर्मकर लिप्त नहीं होता क्योंकि ज्ञानी सब परद्रव्यगत रागके त्यागके स्वभावपनेके होनेपर कर्मका लेपरूप स्वभाव स्वरूप नहीं है । और जैसे लोहा कर्दमके मध्य पड़ा हुआ कर्दमकर लिप्त हो जाता है क्योंकि लोहेका स्वभाव कर्दमसे लिप्त होनेरूप ही है उसीतरह अज्ञानी प्रगटपने कर्मके वीच पड़ा हुआ कर्मकर लिप्त होता है क्योंकि अज्ञानी सब परद्रव्योंमें किये गये रागका उपादान स्वभाव होनेपर कर्ममें लिप्त होनेके स्वभाव स्वरूप है ॥ **भावार्थ**—जैसे कीचड़में पड़े सुवर्णके काई नहीं लगती और लोहेके काई लगजाती है उसीतरह ज्ञानी कर्मके मध्यगत है तौभी वह कर्मसे नहीं बंधता । और अज्ञानी कर्मसे बंधता है । यह ज्ञान अज्ञानकी महिमा है ॥ अब इस अर्थका तथा अगले कथनकी सूचनिकाका कलशरूप काव्य कहते हैं—**यादृक्** इत्यादि । **अर्थ**—इस लोकमें जिस वस्तुका जैसा स्वभाव है उसका वैसा ही स्वाधीनपना है यह निश्चय है सो उस स्वभावको अन्य कोई अन्य सरीखा करना चाहे तो कभी अन्य सरीखा नहीं करसकता इस न्यायसे ज्ञान निरंतर ज्ञानस्वरूप ही होता है ज्ञानका अज्ञान कभी नहीं होता यह निश्चय है । इसलिये हे ज्ञानी! तू कर्मके उदयजनित उपभोगको भोग तेरे परके अप-

सति तल्लेपस्वभावत्वात् । "यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते । अज्ञानं न कथंचनापि हि भवेत् ज्ञानं भवत्संततं ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बंधस्तव ॥ १४८ ॥" २१८।२१९॥

भुंजंतस्सवि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्णगो काउं ॥ २२० ॥
तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजंतस्सवि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥ २२१ ॥
जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥ २२२ ॥
[1]जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥
तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिऊण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥ २२३ ॥

भुंजानस्यापि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
शंखस्य श्वेतभावो नापि शक्यते कृष्णकः कर्तुं ॥ २२० ॥
तथा ज्ञानिनोऽपि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि ।
भुंजानस्यापि ज्ञानं न शक्यमज्ञानतां नेतुं ॥ २२१ ॥
यदा स एव शंखः श्वेतस्वभावं तकं प्रहाय ।
गच्छेत् कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥ २२२ ॥
यथा शंखः पौद्गलिकः यदा शुक्लत्वं प्रहाय ।
गच्छेत् कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात् ॥
तथा ज्ञान्यपि खलु यदा ज्ञानस्वभावं तकं प्रहाय ।
अज्ञानेन परिणतस्तदा अज्ञानतां गच्छेत् ॥ २२३ ॥

नाभावात् सर्वपंचेंद्रियादिपरद्रव्ये रक्तः कांक्षितो मूर्छितो मोहितो भवति यतः कारणात्, ततः कर्दममध्यलोहमिव कर्मरजसा बध्यते, इति ॥ २१८।२१९ ॥

राधकर उत्पन्न हुआ ऐसा लोकमें बंध नहीं है ॥ **भावार्थ**—वस्तुस्वभाव मेंटनेको कोई समर्थ नहीं है इसलिये ज्ञान हुए बाद उसे अज्ञान करनेको कोई समर्थ नहीं है यह निश्चयनय है । इस कारण ज्ञानीको कहा गया है कि तेरे परके किये अपराधसे तो बंध नहीं है तू तो उपभोगको भोग । उपभोगोंके भोगनेकी शंका मत कर । शंका करेगा तो परद्रव्यसे बुरा होना माननेका प्रसंग आयेगा । इसतरह परद्रव्यसे अपना बुरा होना

---

१ आत्मख्यातिवृत्तौ, नेयं गाथा ।

यथा खलु शंखस्य परद्रव्यमुपभुंजानस्यापि न परेण श्वेतभावः कृष्णीकर्तुं शक्येत परस्य परभावतत्त्वनिमित्तत्वानुपपत्तेः । तथा किल ज्ञानिनः परद्रव्यमुपभुंजानस्यापि न परेण ज्ञानमज्ञानं कर्तुं शक्येत परस्य परभावतत्त्वनिमित्तत्वानुपपत्तेः । ततो ज्ञानिनः परापराध-

---

अथ सकलकर्मनिर्जरा नास्ति कथं मोक्षो भविष्यतीति प्रश्ने परिहारमाह,—

णागफणीए मूलं णाइणितोएण गब्भणागेण ।
णागं होइ सुवण्णं धम्मंतं भच्छवाएण ॥

नागफण्या मूलं नागिनीतोयेन गर्भनागेन । नागं भवति सुवर्णं धम्यमानं भस्त्रावायुना ॥ नागफणी नामौषधी तस्या मूलं नागिनी हस्तिनी तस्यास्तोयं मूत्रं गर्भनाग सिंदूरद्रव्य नाग सीसकं । अनेन प्रकारेण पुण्योदये सति सुवर्णं भवति न च पुण्याभावे । कथंभूतः सन्[१] भस्त्रया धम्यमानमिति दृष्टांतगाथा गता । अथ दार्ष्टांतमाह,—

कम्मं हवेइ किट्टं रागादी कालिया अह विभाओ ।
सम्मत्तणाणचरणं परमोसहमिदि वियाणाहि ॥

कर्म भवति किट्टं रागादयः कालिका अथ विभावाः । सम्यक्त्वज्ञानदर्शनचारित्रं परमौषध-

---

माननेकी शंका मेंटी है । ऐसा मत समझो कि भोग भोगनेकी प्रेरणा कर स्वच्छंद किया है । स्वेच्छाचारी होना अज्ञानभाव है सो आगे कहेंगे ॥ २१८।२१९ ॥

आगे इसी अर्थको दृष्टांतकर दृढ करते हैं—जैसे शंख **[विविधानि]** अनेक प्रकारके **[सचित्तचित्तामिश्रितानि]** सचित्त अचित मिश्रित **[द्रव्याणि]** द्रव्योंको **[भुंजानस्यापि]** भक्षण करता है तौभी **[शंखस्य]** उस शंखका **[श्वेतभावः]** सफेदपना **[कृष्णकः कर्तुं]** काला करनेको **[नापि शक्यते]** नहीं समर्थ होसकते **[तथा]** उसीतरह **[विविधानि]** अनेक प्रकारके **[सचित्ताचित्तमिश्रितानि]** सचित्त अचित्त मिश्रित **[द्रव्याणि]** द्रव्योंको **[भुंजानस्यापि]** भोगनेवाले **[ज्ञानिनः]** ज्ञानीके **[ज्ञानं अपि]** ज्ञानके भी **[अज्ञानतां नेतुं न शक्यं]** अज्ञानपना करनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है । और जैसे **[स एव शंखः]** वही शंख **[यदा]** जिससमय **[तकं श्वेतस्वभावं]** अपने उस श्वेत स्वभावको **[प्रहाय]** छोड़कर **[कृष्णभावं]** कृष्णभावको **[गच्छेत्]** प्राप्त होता है **[तदा]** तब **[शुक्लत्वं]** सफेदपनको **[प्रजह्यात्]** छोड़ देता है **[तथा]** उसीतरह **[ज्ञानी अपि]** ज्ञानी भी **[खलु यदा]** निश्चयकर जब **[तकं ज्ञानस्वभावं]** अपने उस ज्ञानस्वभावको **[प्रहाय]** छोड़कर **[अज्ञानेन परिणतः]** अज्ञानकर परिणमता है **[तदा]** उस समय **[अज्ञानतां]** अज्ञानपनेको **[गच्छेत्]** प्राप्त होता है ॥ **टीका**—जैसे शंख परद्रव्यको भक्षण करता रहता है उसका श्वेतपनेका दूसरा कालेपनस्वरूप नहीं करसकता क्योंकि परमें परभावस्वरूप कर-

निमित्तो नास्ति बंधः। यथा च यदा स एव शंखः परद्रव्यमुपभुंजानोऽनुपभुंजानो वा श्वेतभावं प्रहाय स्वयमेव कृष्णभावेन परिणमते तदास्य श्वेतभावः स्वयंकृतः कृष्णभावः स्यात्। तथा यदा स एव ज्ञानी परद्रव्यमुपभुंजानोऽनुपभुंजानो वा ज्ञानं प्रहाय स्वयमेवाज्ञानेन परिणमेत तदास्य ज्ञानं स्वयंकृतमज्ञानं स्यात्। ततो ज्ञानिनो यदि (?) स्वाप-

---

मिति विजानीहि ॥ द्रव्यकर्म किट्टसंज्ञ भवति रागादिविभावपरिणामाः कालिकासंज्ञा ज्ञातव्याः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रय भेदाभेदरूपं परमौपधं जानीहि इति।

झाणं हवेइ अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो।
जीवो हवेइ लोहं धमियव्वो परमजोईहिं ॥[1]

ध्यानं भवत्यग्निः तपश्चरणं भस्त्रा समाख्यातं। जीवो भवति लोहं धमितव्यः परमयोगिभिः॥ वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपं ध्यानमग्निर्भवति। द्वादशविधतपश्चरणं भस्त्रा ज्ञातव्या। आसन्नभव्यजीवो लोहं भवति। स च भव्यजीवः पूर्वोक्तसम्यक्त्वाद्यौपधध्यानाग्निभ्यां संयोगं कृत्वा द्वादशविधतपश्चरणभस्त्रया परमयोगिभिः धमितव्यो ध्यातव्यः। इत्यनेन प्रकारेण यथा सुवर्णं भवति तथा मोक्षो भवतीति संदेहो न कर्तव्यो भट्टचार्वाकमतानुसारिभिरिति ॥ अथ ज्ञानिनः शंखदृष्टांतेन बंधाभावं दर्शयति;—यथा सजीवस्य संखस्य श्वेतभावः कृष्णीकर्तुं न शक्यते। किं कुर्वाणस्यापि? भुंजानस्यापि। कानि? कर्मतापन्नसचित्ताचित्तमिश्राणि विविधद्रव्याणीति

नेका निमित्तपना नहीं है। उसीतरह परद्रव्यको भोगते हुए ज्ञानीके ज्ञानको अज्ञानरूप दूसरा नहीं करसकता क्योंकि दूसरेमें परभावस्वरूप करनेका निमित्तपना नहीं है इस लिये ज्ञानीके परकर किये अपराधके निमित्तसे बंध नहीं है। और जिस समय वही शंख परद्रव्यको भोगता हो अथवा न भोगता हो परंतु अपने श्वेतपनेको छोड़ आप ही कृष्णभावस्वरूप परिणमता है उस समय उस शंखका श्वेतभाव अपनेकर ही किये कृष्णभावस्वरूप होता है, उसीतरह वही ज्ञानी परद्रव्यको भोगता हुआ हो अथवा न भोगता हो परंतु जिससमय अपने ज्ञानको छोड़ आप ही अज्ञानकर परिणमे उससमय इसका ज्ञान अपना ही किया निश्चयकर अज्ञानरूप होता है। इसलिये ज्ञानीके परका किया बंध नहीं है आप ही अज्ञानी होय तब अपने अपराधके निमित्तसे बंध होता है॥ **भावार्थ**—जैसे शंख सफेद है वह परको भक्षणसे तो काला होता नहीं जब आप ही कालिमारूप परिणमे तब काला होता है उसीतरह ज्ञानी उपभोग करता हुआ तो अज्ञानी होता नहीं जब आप ही अज्ञानरूप परिणमे तब अज्ञानी होता है तभी बंध करता है। इसका कलशरूप काव्य कहते है—**ज्ञानिन्** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानीको संबोधन करते हैं कि हे ज्ञानी! तुझको कुछ भी कर्म कभी नहीं करना योग्य है तौभी तू कहता है कि परद्रव्य मेरा तो कदाचित् भी नहीं है और मैं भोगता हूं। तो आचार्य कहते हैं

---

१ एतद् गाथा नात्मख्यातौ। २ ख. पुस्तके ध्यानाग्न्यभ्यासादिस्यपि पाठ.।

राधनिमित्तो बंधः । "ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किंचित्तथाप्युच्यते भुंक्ष्वे हंत न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः । बंधः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते ज्ञानं सन्वस बंधमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवं ॥ १५१ ॥ कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत् कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः ।

व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता । तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञानिनो जीवस्य वीतरागस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञान, रागत्वमज्ञानत्वं नेतुं न शक्यते । कस्मात्? स्वभावस्यान्यथाकर्तुमशक्यत्वात् । किं कुर्वाणस्यापि? भुंजानस्यापि । कानि? स्वकीयगुणस्थानावस्थायोग्यानि सचित्ताचित्तमिश्राणि विविधद्रव्याणि । ततः कारणात् चिरंतनबद्धकर्मनिर्जरैव भवति । नवतरस्य संवर इति व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता । अन्वयव्यतिरेकशब्देन सर्वत्र विधिनिषेधौ ज्ञातव्यौ इति । यथा यदा स एव पूर्वोक्तः सजीवशंख कृष्णपरद्रव्यलेपवशात्, अतरंगस्वकीयोपादानपरिणामाधीन. सन् श्वेतस्वभावत्वं विहाय कृष्णभावं गच्छेत् तदा शुक्लत्व त्यजति । इत्यन्वयदृष्टांतगाथा गता । तथैव च यथा निर्जीवशंखः कृष्णपरद्रव्यलेपवशात् अतरंगोपादानपरिणामाधीन सन् श्वेतस्वभावत्व विहाय कृष्णभावं गच्छेत् तदा शुक्लत्वं त्यजति । इति निर्जीवशंखनिमित्तं द्वितीयान्वयदृष्टांतगाथा गता । तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञानी जीवोऽपि हि स्फुट स्वकीयप्रज्ञापराधेन वीतरागज्ञानस्वभावत्वं विहाय मिथ्यात्वरागाद्यज्ञान-

यह बड़ा खेद है कि जो तेरा नहीं उसको तू भोगता है इसतरहसे तो तू खोटा खानेवाला है । हे भाई जो तू कहे कि परद्रव्यके उपभोगसे बंध नहीं होता है ऐसा सिद्धांतमें कहा है इसलिये भोगता हूं उस जगह तेरे क्या भोगनेकी इच्छा है ? तू ज्ञानरूप हुआ अपने स्वरूपमें निवास करे तो बंध नहीं है और जो भोगनेकी इच्छा करेगा तो तू आप अपराधी हुआ, तब अपने अपराधसे नियमकर बंधको प्राप्त होगा ॥ **भावार्थ**—ज्ञानीको कर्म तो करना ही उचित नहीं और जो परद्रव्य जानकर भी उसे भोगे तो यह योग्य नहीं । परद्रव्यके भोगनेवालेको तो लोकमें चोर अन्यायी कहते हैं । और जो उपभोगसे बंध नहीं कहा है वह ऐसे है कि ज्ञानी विना इच्छा परकी बरजोरीसे उदयमें आयेको भोगे उसके बंध नहीं कहा और जो आप इच्छाकर भोगेगा तो आप अपराधी हुआ, तब बंध क्यों न होगा ? । आगे फिर इसी अर्थके दृढ करनेको काव्य कहते हैं—**कर्तारं** इत्यादि । **अर्थ**—निश्चयसे यह जानो कि कर्म अपने करनेवाले कर्ताको अपने फलकर जबरदस्तीसे तो नहीं लगता कि मेरे फलको तू भोग । जो कर्मका करता उस फलका इच्छक हुआ करता है वही उस कर्मका फल पाता है । इसलिये ज्ञानरूप हुआ, तथा जिसकी रागकी रचना कर्ममें दूर होगई है ऐसा मुनि कर्मको करता हुआ भी कर्मकर नहीं बंधता । क्योंकि जिसका एक स्वभाव उस कर्मके फलका परित्यागरूप ही है ऐसा मुनि है ॥ **भावार्थ**—कर्म तो कर्ताको जबरदस्तीसे अपने फलके

१ पचेंद्रियविषयाननुभवति । २. दुर्भुक्त एवासि एवमपि भोगो न कर्तव्य इति भाव ।

ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥ १५२ ॥" २२०।२२१।२२२।२२३ ॥

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवए रायं ।
तो सोवि देदि राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२४ ॥
एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सोवि देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२५ ॥
जह पुण सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं ।
तो सो ण देइ राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२६ ॥
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवए ण कम्मरयं ।
तो सो ण देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२७ ॥

पुरुषो यथा कोपीह वृत्तिनिमित्तं तु सेवते राजानं ।
तत्सोऽपि ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२४ ॥
एवमेव जीवपुरुषः कर्मरजः सेवते सुखनिमित्तं ।
तत्तदपि ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२५ ॥
यथा पुनः स एव पुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानं ।
तत्सोऽपि न ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२६ ॥
एवमेव सम्यग्दृष्टिः विषयार्थं सेवते न कर्मरजः ।
तत्तन्न ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान् ॥ २२७ ॥

भावेन परिणतो भवति तदा स्वस्थभावच्युतः सन्नज्ञानत्वं गच्छेत् । तस्य संवरपूर्विका निर्जरा नास्तीति भावार्थः—इत्यन्वयदार्ष्टांतगाथा गता ॥ २२०।२२१।२२२।२२३ ॥

अथ सरागपरिणामेन बंधः, तथैव वीतरागपरिणामेन मोक्षो भवतीति दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति;—यथा कश्चित्पुरुषः, वृत्तिनिमित्तं राजानं सेवते ततः सोऽपि राजा तस्मै सेवकाय

साथ जोड़ता नहीं परंतु जो कर्मको कर्ता हुआ उसके फलकी इच्छा करे वही उसका फल पाता है । इस कारण जो ज्ञानी ज्ञानरूप हुआ प्रवर्ते और कर्मके करनेमें राग न करे तथा उसके फलकी आगामी इच्छा न करे वह मुनि कर्मोंसे नहीं बंधता ॥ २२० २२१।२२२।२२३ ॥

आगे इस अर्थको दृष्टांतसे दृढ करते हैं;—[**यथा**] जैसे [**इह**] इस लोकमें [**कोपि पुरुषः**] कोई पुरुष [**वृत्तिनिमित्तं तु**] आजीविकाकेलिये [**राजानं**] राजाको [**सेवते**] सेवे [**तत्**] तो [**स राजापि**] वह राजा भी उसको [**सुखोत्पादकान्**] सुखके उपजानेवाले [**विविधान्**] अनेक प्रकारके [**भो-**

यथा कश्चित्पुरुषो फलार्थं राजानं सेवते ततः स राजा तस्य फलं ददाति । तथा जीवः फलार्थं कर्म सेवते ततस्तत्कर्म तस्य फलं ददाति । यथा च स एव पुरुषः फलार्थं राजानं न सेवते ततः स राजा तस्य फल न ददाति । तथा सम्यग्दृष्टिः फलार्थं कर्म न

ददाति, कान्? विविधसुखोत्पादकान् भोगान् इत्यज्ञानिविपयेऽन्वयदृष्टांतगाथा गता । एवमेवाज्ञानी जीवपुरुषः शुद्धात्मोत्थसुखात्प्रच्युतः सन्नुदयागत कर्मरजः सेवते विषयसुखनिमित्त ततः सोऽपि पूर्वोपार्जितपुण्यकर्मराजा ददाति. कान्? विपयसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षान् शुद्धात्मभावानां विनाशकान्? रागादिपरिणामान् इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं—कोऽपि जीवोऽभिनवपुण्यकर्मनिमित्त भोगाऽकांक्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठानं करोति सोऽपि पापानुबंधिपुण्यराजा कालांतरे भोगान् ददाति । तेऽपि निदानबंधेन प्राप्ता भोगा रावणादिवन्नरकादिदुःखपरंपरा प्रापयन्तीति भावार्थः । एवमज्ञानिजीवं प्रत्यन्वयदृष्टातगाथा गता । यथा स चैव पूर्वोक्तपुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानं । ततः सोऽपि राजा तस्मै न ददाति, कान्? विविधान् सुखोत्पादकान् भो-

---

गान्] भोगोंको [ददाति] देता है [एवमेव] इसीतरह [जीवपुरुषः] जीवनामा पुरुप [सुखनिमित्तं] सुखके लिये [कर्मरजः] कर्मरूपी रजको [सेवते] सेवन करता है [तत्] तो [तत्कर्म अपि] वह कर्म भी उसे [सुखोत्पादकान्] सुखके उपजानेवाले [विविधान् भोगान्] अनेक प्रकारके भोगोंको [ददाति] देता है [पुनः] और [यथा] जैसे [स एव पुरुषः] वही पुरुष [वृत्तिनिमित्तं] आजीविकाकेलिये [राजानं] राजाको [न सेवते] नहीं सेवे [तत्] तो [स राजा अपि] वह राजा भी उसे [सुखोत्पादकान्] सुखके उपजानेवाले [विविधान्] अनेक प्रकारके [भोगान्] भोगोंको [न ददाति] नहीं देता है [एवमेव] इसीतरह [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि [विषयार्थं] विषयोंके लिये [कर्मरजः] कर्मरूपी रजको [न सेवते] नहीं सेवता [तत्] तो [तत्कर्म अपि] वह कर्म भी उसे [सुखोत्पादकान्] सुखके उपजानेवाले [विविधान् भोगान्] अनेक प्रकारके भोगोंको [न ददाति] नहीं देता ॥ **टीका**—जैसे कोई पुरुष फलकेलिये राजाको सेवता हो तो राजा उसे फलको देता है उसीतरह जीव भी फलकेलिये कर्मोंको सेवता हो तो वह कर्म उसे फल देता है । और जैसे वही पुरुष फलकेलिये राजाको नहीं सेवे तो वह राजा भी उसको फल नहीं देता उसीतरह सम्यग्दृष्टि फलके लिये कर्मको नहीं सेवे तो वह कर्म भी उसको फल नहीं देता ऐसा अभिप्राय है ॥ **भावार्थ**—फलकी वांछाकर कर्म करे तो उसका फल पाता है वांछाके विना कर्म करे तो उसका फल नहीं पासकता । अब यहांपर आशंका उत्पन्न होती है कि फलकी

सेवते ततस्तत्कर्म तस्य फलं न ददातीति तात्पर्यं ॥ त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपि तत्कर्मावशेनापतेत् । तस्मिन्नापतिते त्वकंपपरमज्ञानस्वभावे स्थितो ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ॥ १५३ ॥ सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमंते परं यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रै-

---

गान् इति ज्ञानिजीवविषये व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता । एवमेव च सम्यग्दृष्टिर्जीवः पूर्वोपार्जितमुदयागतं कर्मरजः शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसुखानंदात्प्रच्युतो भूत्वा विषयसुखार्थं, उपादेयबुद्ध्या न सेवते ततस्तदपि कर्म न ददाति, कान्[2] विविधसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षारूपान् शुद्धात्मभावनाविनाशकान् रागादिपरिणामानिति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं—कोऽपि सम्यग्दृष्टिर्जीवो निर्विकल्पसमाधेरभावात्, अशक्यानुष्ठानेन विषयकषायवंचनार्थं यद्यपि व्रतशीलदानपूजादिशुभकर्मानुष्ठान करोति तथापि भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन तत्पुण्यकर्मानुष्ठानं न सेवते । तदपि पुण्यानुबंधिपुण्यकर्म भवांतरे तीर्थंकर—चक्रवर्ती—बलदेवाद्यभ्युदयरूपेणोदयागतमपि पूर्वभवभावितभेदविज्ञानवासनाबलेन शुद्धात्मभावनाविनाशकान् विषयसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षानिदानरूपान् रागादिपरिणामान्न ददाति, भरतेश्वरादीनामिव । इति संज्ञानिजीवं प्रति व्यतिरेकदार्ष्टां-

---

वांछाके विना कर्म किसलिये करे ? ऐसी आशंका दूर करनेको काव्य कहते हैं— **त्यक्तं** इत्यादि । **अर्थ**—जिसने कर्मका फल तो छोड रखा हो और कर्म करता है ऐसी तो हम प्रतीतिरूप नहीं कर सकते परंतु इसमें कुछ विशेषता है जो इस ज्ञानीके भी किसी कारणसे कुछ कर्म इसके वश विना आपड़े हैं उनके आनेपर भी यह ज्ञानी निश्चल परमज्ञान स्वभावमें तिष्ठता कुछकर्म करता है या नहीं करता यह कोन जाने ? **भावार्थ**—ज्ञानीके परवश कर्म आपड़े हैं उनके होनेपर भी ज्ञानी ज्ञानसे चलायमान नहीं होता उस अवस्थामें यह ज्ञानी कर्म करता है कि नहीं यह नहीं मालूम होता यह वात कोन जान सकता है ज्ञानीकी वात ज्ञानी ही जानता है अज्ञानीकी सामर्थ्य ज्ञानीके परिणामको जाननेकी नहीं है । यहांपर ऐसा जानना कि ज्ञानी कहनेसे अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर ऊपरके सभी ज्ञानी हैं । उनमेंसे अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा आहार विहार करनेवाले मुनियोंके वाह्यक्रिया प्रवर्तती हैं तौभी अंतरंग मिथ्यात्वके अभावसे तथा यथासंभव कषायके अभावसे वे क्रियायें उज्वल हैं । इसलिये उनकी उजलाईको वेही जानते हैं मिथ्यादृष्टि उनकी उजलाईको नहीं जानता । मिथ्यादृष्टि तो वहिरात्मा है वाहरसे ही भला बुरा मानता है, अंतरात्माकी गति मिथ्यादृष्टि क्या जानसकता है ? ॥ आगे इसी अर्थके समर्थनरूप कहते हैं कि ज्ञानीके निःशंकित नामा गुण होता है उसीकी सूचनारूप काव्य कहते हैं—**सम्यग्दृष्टयः** इत्यादि । **अर्थ**—यह साहस एक सम्यग्दृष्टि ही कर सकते हैं क्योंकि भयकर चलायमान जिसमें तीनलोक

लोक्यमुक्ताध्वनि। सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं जानंतः स्वमवध्यबोध-वपुषं बोधाच्च्यवंते न हि ॥ १५४ ॥" २२४।२२५।२२६।२२७ ॥

सम्मद्दिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥ २२८ ॥

सम्यग्दृष्टयो जीवा निश्शंका भवंति निर्भयास्तेन।
सप्तभयविप्रमुक्ता यस्मात्तस्मात्तु निश्शंकाः ॥ २२८ ॥

येन नित्यमेव सम्यग्दृष्टयः सकलकर्मनिरभिलाषाः संतः, अत्यंतकर्मनिरपेक्षतया वर्तंते तेन नूनमेते अत्यंतनिश्शंकदारुणाध्यवसायाः संतोऽत्यंतनिर्भयाः संभाव्यंते। लोकः

तगाथा गता। एवं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूपपरमार्थशब्दवाच्यं साक्षान्मोक्षकारणभूतं शुद्धात्मसवित्तिलक्षण स्वसवेद्यं सवरपूर्विकाया निर्जराया उपादानकारणं पूर्व यद्व्याख्यातं परमात्मपद, तत्पद येन निर्विकारस्वसवेदनलक्षणभेदविज्ञानगुणेन विना न लभ्यते तस्यैव भेदविज्ञानगुणस्य पुनरपि विशेषव्याख्यानरूपेण चतुर्दशसूत्राणि गतानि॥२२४।२२५।२२६।२२७॥ इत ऊर्ध्वं निश्शंकाद्यष्टगुणकथनं गाथानवकपर्यंतं व्याख्यान करोति। तत्र तावत् प्रथमगा-

---

हो गया है ऐसे वज्रपातके पडनेपर भी वे अपने ज्ञानसे चलायमान नहीं होते। कैसे सम्यग्दृष्टि हैं ? कि जो स्वभावसे ही निर्भयपना होनेसे सब ही शंकाओंको छोडकर अपने आत्माको ऐसा जानते हैं कि इस आत्माका ज्ञानरूपी शरीर किसीसे भी बाधित नहीं हो सकता ऐसा जानते हुए आप ज्ञानमें प्रवृत्त होते हैं उससे च्युत नहीं होते ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि निःशंकित गुणसहित होता है सो ऐसे वज्रपातके पडनेपर भी (जिसके भयसे तीन लोकके जीव मार्ग छोड़ देते हैं) वह अपने स्वरूपको निर्बाध ज्ञानशरीररूप मानता हुआ ज्ञानसे चलायमान नहीं होता ऐसी शंका नहीं रखता कि इस वज्रपातसे मेरा विनाश होजायगा। पर्यायका विनाश होवे तो ठीक ही है क्योंकि उसका विनाशीक स्वभाव ही है ॥ २२४।२२५।२२६।२२७॥

आगे इसी अर्थको गाथासे कहते हैं,—[**सम्यग्दृष्टयः जीवाः**] सम्यग्दृष्टि जीव [**निःशंका भवंति**] निःशंक होते हैं [**तेन**] इसीलिये [**निर्भयाः**] निर्भय हैं [**यस्मात्**] क्योंकि [**सप्तभयविप्रमुक्ताः**] सप्तभयकर रहित हैं [**तस्मात्**] इसीलिये [**निःशंकाः**] निःशंक है ॥ **टीका**—जिसकारण सम्यग्दृष्टि नित्य ही सब कर्मोंके फलकी अभिलाषासे रहित हुए कर्मकी अपेक्षासे सर्वथा रहित हुए वर्तते हैं इसकारण निश्चयसे अत्यंत निःशंक दारुण (तीव्र) निश्चयरूप दृढ आशयरूप हुए अत्यंत निर्भय हैं ऐसी संभावना की जाती है ॥ अब सात भयके कलशरूप काव्य कहते हैं उनमें इसलोक तथा परलोकके दो भयोंका एक काव्य कहते हैं—**लोक** इत्यादि। **अर्थ**—जो यह भिन्न आत्माका चैतन्यस्वरूप लोक है वह शाश्वत है एक है,

शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मनः चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः। लोकोऽयं न तवापरस्तव परस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो निश्शंकं सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५५ ॥ एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते निर्भेदोदितवेद्यवेदकवलादेकं सदानाकुलैः। नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निश्शंकः

थाया निजपरमात्मपदार्थभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादतृप्ताः संतः सम्यग्दृष्टयः, घोरोपसर्गेऽपि सप्तभयरहितत्वेन निर्विकारस्वानुभवस्वरूपं स्वस्थभाव न त्यजन्तीति कथयति;—**सम्मादिट्ठी**

सब जीवोंके प्रगट है जिसको यह ज्ञानी आत्मा ही स्वयमेव एकाकी (केवल) अवलोकन करता है। उस अवस्थामें ज्ञानी ऐसा विचारता है कि यह चैतन्य लोक तेरा है और इससे जो अन्य लोक है वह परलोक है तेरा नहीं। ऐसा विचारते हुए उस ज्ञानीके इसलोक तथा परलोकका भय कैसे होसकता है? नहीं होता। इसकारण ज्ञानी निःशंक हुआ हमेशा अपनेको स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—जो इस भवमें लोकोंका डर रहता है कि ये लोग न मालूम मेरा क्या विगाड़ करेंगे ऐसा तो इस लोकका भय है, और परभवमें न मालूम क्या होगा ऐसा भय रहना वह परलोकका भय है। सो ज्ञानी ऐसा जानता है कि मेरा लोक तो चैतन्यस्वरूपमात्र एक नित्य है यह सबमें प्रगट है। इस लोकके सिवाय जो अन्य है परलोक है। सो मेरा लोक तो किसीका विगाड़ा हुआ नहीं विगड़ता। ऐसे विचारता हुआ ज्ञानी अपनेको स्वाभाविक ज्ञानरूप अनुभवे तो उसके इस लोकका भय किसतरह होसकता है कभी नहीं होता ॥ अब वेदनाके भयका काव्य कहते हैं—**एषैकेव** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानी पुरुषोंके यही एक वेदना है कि निराकुल होकर अपना एक ज्ञानस्वरूप आप अपने ज्ञानभावसे ही वेदा जाता है और आप ही वेदनेवाला ऐसा अभेदस्वरूप वेद्यवेदक भावके बलसे निरंतर निश्चल वेदा जाता है—अनुभव किया जाता है परंतु अन्यसे हुई वेदना ज्ञानीके नहीं है। इसलिये उस ज्ञानीके उस वेदनाका भय कैसे होसकता है? नहीं होता। इसकारण ज्ञानी निःशंक हुआ अपने स्वाभाविक ज्ञानभावको सदा (निरंतर) अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—वेदना नाम सुखदुःखके भोगनेका है सो ज्ञानीके एक अपना ज्ञानमात्रस्वरूपका भोगना ही है। वह अन्यकर आई हुई को वेदना ही नहीं जानता इसलिये अन्यकर आगत वेदनाका भय नहीं है। इसकारण सदा निर्भय हुआ ज्ञानका अनुभव करता है ॥ अब अरक्षाके भयका काव्य कहते हैं—**यत्** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानी ऐसा विचारता है कि सत्स्वरूप वस्तु है वह नाशको प्राप्त नहीं होती ऐसी नियमसे वस्तुकी मर्यादा है। ज्ञान भी आप सत्स्वरूप वस्तु है उसकी निश्चयकर दूसरेसे

---

१ सकलं काल व्यक्त प्रकट· सकलव्यक्त इत्यर्थः। २ एषोऽयं लोक केवलमयं चिल्लोकं लोकयतीत्यर्थः।

सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५६ ॥ यत्सन्नाशमुपैति यन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्ज्ञान सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः । अस्यात्राणमतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५७ ॥ स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यच्छक्तः कोऽपि परप्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूप च नुः । अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५८ ॥ प्राणोच्छेदमुदाहरंति मरणं प्राणाः किलास्या-

---

जीवा णिस्संका होंति सम्यग्दृष्टयो जीवाः शुद्धबुद्धैकस्वभावनिर्दोषपरमात्माराधनं कुर्वाणाः संतो निश्शंका भवंति यस्मात् कारणात् । **णिऽभया तेण** तेन निर्भया भवति **सत्तभ-**

रक्षा कैसी ? इसलिये उस ज्ञानका अरक्षा करने स्वरूप कुछ भी नहीं है इसकारण उस अरक्षाका भय ज्ञानीके कैसे होसकता है ? नहीं होता । ज्ञानी तो अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपको निःशंक हुआ सदा आप अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानी ऐसा जानता है कि सत्तारूप वस्तुका कभी नाश नहीं होता सो ज्ञान आप सत्तास्वरूप है इसलिये इसका कोई ऐसा नहीं जिसकी रक्षा करनी ही पडे नहीं तो नष्ट होजाय । इसकारण ज्ञानीके अरक्षाका भय नहीं । वह तो निःशंक हुआ आप स्वाभाविक अपने ज्ञानको सदा अनुभवता है ॥ अब अगुप्तिभयका काव्य कहते हैं—**स्वं रूपं** इत्यादि ।**अर्थ**—ज्ञानी विचारता है कि वस्तुका निजरूप ही परमगुप्ति है उसमें अन्य कोई प्रवेश नहीं करसकता । यहां ज्ञान भी पुरुषका स्वरूप है वह अकृत्रिम है इसलिये इसके कुछ भी अगुप्त नहीं है इसलिये उस अगुप्तिका भय ज्ञानीके नहीं है । इसी कारण ज्ञानी निःशंक हुआ निरंतर आप स्वाभाविक अपने ज्ञानभावको सदा अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—जिसमें किसीका प्रवेश नहीं ऐसे गढ दुर्गादिकका नाम गुप्ति है उसमें यह प्राणी निर्भय होके रहता है । और जो गुप्त प्रदेश न हो खुला हुआ हो उसको अगुप्ति कहते हैं वहांपर बैठनेसे जीवको भय उत्पन्न होता है । उस अवसरमे ज्ञानी ऐसा समझता है कि जो वस्तुका निजस्वरूप है उसमे परमार्थसे दूसरी वस्तुका प्रवेश नहीं है यही परमगुप्ति है । सो पुरुपका स्वरूप ज्ञान है उसमे किसीका प्रवेश नहीं है । इसलिये ज्ञानीको भय कैसे होसकता है ? ज्ञानी अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वरूपको निःशंक होकर निरंतर अनुभवता है ॥ अब मरणभयका काव्य कहते हैं—**प्राणो** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानी विचारता है कि जो प्राणोंका उच्छेद होना उसे मरण कहते हैं सो आत्माका ज्ञान निश्चयकर प्राण है वह स्वयमेव शाश्वत है इसलिये इसका कभी उच्छेद नहीं होसकता इसकारण उस आत्माका मरण कुछ भी नहीं होता । ऐसा विचारनेसे ज्ञानीके उस मरणका भय कैसे हो ? इसलिये ज्ञानी निःशंक हुआ निरतर अपने स्वाभाविक ज्ञान भावको आप सदा

त्मनो ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नो छिद्यते जातुचित् । तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ १५९ ॥ एकं ज्ञानमनाद्यनंतमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः। तन्नाकस्मिकमत्र किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं

यविप्पमुक्का जह्मा यस्मादेव कारणात्, इहलोक-परलोक-अत्राण-अगुप्ति-मरण-वेदना-आकस्मिकसंज्ञितसप्तभयविप्रमुक्ता भवंति **तह्मा दु णिस्संका** तस्मादेव कारणात्

अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—इंद्रियादिक प्राणोंके विनाशको लोक मरण कहते हैं सो आत्माके इंद्रियादिक प्राण परमार्थस्वरूप नहीं हैं निश्चयसे उसके ज्ञान प्राण हैं वह अविनाशी है उसका विनाश नहीं है इसलिये आत्माके मरण नहीं । इसकारण ज्ञानीको मरणका भय नहीं है । इसलिये ज्ञानी अपने ज्ञानस्वरूपको निःशंक हुआ निरंतर आप अनुभवता है ॥ अब आकस्मिक भयका काव्य कहते हैं—**एकं** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानी विचारता है कि ज्ञान; एक है अनादि है अनंत है अचल है ऐसा आपसे ही सिद्ध है सो जबतक है तबतक सदा वही है इसमें दूसरेका उदय नहीं है इसलिये इसमे अकस्मात् नया कुछ उत्पन्न हो ऐसा कुछ भी नहीं है । ऐसा विचारनेसे उस अकस्मात् होनेका भय कैसे हो ? नहीं हो सकता है । इसकारण वह ज्ञानी निःशंक हुआ निरंतर अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वभावको सदा अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—जो कभी अनुभवमें नहीं आया ऐसा कुछ अकस्मात् प्रगट हुआ भयानक पदार्थ उससे प्राणीको भय उपजता है वह आकस्मिक भय है । सो आत्माका ज्ञान है वह अविनाशी अनादि अनंत अचल एक है, इसमे दूसरेका प्रवेश नहीं है नवीन अकस्मात् कुछ होता नहीं । ऐसा ज्ञानी अपनेको जानता है उसके अकस्मात् भय कैसे हो ? इसलिये ज्ञानी अपने ज्ञानभावको निःशंक निरंतर अनुभवता है इसप्रकार सात भय ज्ञानीके नहीं है ॥ यहां प्रश्न—अविरतसम्यग्दृष्टि आदिकको भी ज्ञानी कहते है उसके भयप्रकृतिका उदय है उसके निमित्तसे भय भी देखा जाता है सो ज्ञानी निर्भय कैसे है ? उसका समाधान—जो भयप्रकृतिके उदयके निमित्तसे भय उपजता है उसकी पीडा नहीं सही जाती, क्योंकि अंतरायके प्रबल उदयसे वह निर्बल है । इसलिये उस भयका इलाज भी करता है परंतु ऐसा भय नहीं है कि जिससे स्वरूपके ज्ञान श्रद्धानसे डिग जाय । तथा जो भय उपजता है वह मोहकर्मकी भयनामा प्रकृतिके उदयका दोष है उसका आप स्वामी होकर कर्ता नहीं बनता ज्ञाता ही रहता है ॥ आगे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टिके निःशंकितादि जो चिन्ह है वे कर्मकी निर्जरा करते है शंकादिकसे किया बंध नहीं होता उसकी सूचनिकाका काव्य कहते हैं—**टंकोत्कीर्ण** इत्यादि । **अर्थ**—जिसकारण सम्यग्दृष्टिके निःशंकित आदि

सदा विंदति ॥ १६० ॥ टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नंति लक्ष्माणि कर्म । तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बंधः पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥ १६१ ॥" २२८ ॥

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २२९ ॥

यश्चतुरोपि पादान् छिनत्ति तान् कर्मबंधमोहकरान् ।
स निश्शंकश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २२९ ॥

घोरपरीषहोपसर्गे प्रातेपि निश्शंकाः शुद्धात्मस्वरूपे निष्कंपाः सतः शुद्धात्मभावनोत्थवीतराग-सुखानंदतृप्ताश्च परमात्मस्वरूपान्न प्रच्यवंते पाडवादिवत् ॥ २२८ ॥ अथानंतरं वीतरा-गसम्यग्दृष्टेर्निश्शंकाद्यष्टगुणाः नवतरबंधं निवारयंति ततः कारणाद्बंधो नास्ति किं तु संवर-पूर्विका निर्जरैव भवतीति प्रतिपादयति;—**जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्म-मोहबाधकरे** यः कर्ता मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणान् संसारवृक्षस्य मूलभूतान्

चिन्ह है वे सब कर्मोंको हनते हैं—निर्जरा करते हैं । इस कारण फिर भी इसका उदय होनेसे नवीन कर्मका कुछ भी बंध नहीं होता जिस कर्मका पहले बंध हुआ था उसके उदयको भोगते हुएके उसकी नियमसे निर्जरा ही होती है । कैसा सम्यग्दृष्टि है ? टंकोत्की-र्णवत् एक स्वभावरूप जो अपना निजरस उससे परिपूर्ण हुए ज्ञानके सर्वस्वका भोगनेवाला है—आस्वादक है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि पहले बांधी हुई भयादि प्रकृतियोंके उद-यको भोगता है तो भी उसके निःशंकितादि गुण प्रवर्तते हैं वे पूर्वकर्मोंकी निर्जरा करते हैं । और शंकादिकर किया बंध नहीं होता ॥ २२८ ॥

आगे इस कथनको गाथामें कहते हैं उसमें भी पहले निशंकित अंगका स्वरूप कहते हैं,—**[यः]** जो **[चेतयिता]** आत्मा **[कर्मबंधमोहकरान्]** कर्मबंधके कारण मोहके करनेवाले **[तान् चतुरोपि पादान्]** मिथ्यात्वादि भावरूप चारों पादोंको **[निःशंकः]** निःशंक हुआ **[छिनत्ति]** काटता है **[सः]** वह आत्मा **[सम्य-ग्दृष्टिः]** निःशंक सम्यग्दृष्टि **[ज्ञातव्यः]** जानना चाहिये ॥ टीका—जिसकारण सम्यग्दृष्टि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमय है उस भावसे कर्मबंधके कारण शंकाको करनेवाले ऐसे मिथ्यात्व अविरति कषाय योग इन चारों भावोंका इसके अभाव है इसकारण निःशंक है । इसलिये इसके शंकाकर किया गया बंध नहीं है । तो क्या है ? निर्जरा ही है । **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टिके जो कर्मका उदय आता है उसका आप

---

१ स्वरस स्वभाव सपरावबोधशक्त्युपेतत्वं तेन चितं व्याप्तमित्यर्थ. ॥ २ तात्पर्यवृत्तौ "मोहबाधकरे" पाठ. ।

यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन कर्मबंधशंकाकरमिथ्यात्वादिभावाभावान्निश्शंकः ततोऽस्य शंकाकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २२९ ॥

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३० ॥

यस्तु न करोति कांक्षां कर्मफलेषु तथा सर्वधर्मेषु ।
स निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३० ॥

निष्कर्मात्मतत्त्वविलक्षणत्वेन कर्मकरान् निर्मोहात्मद्रव्यपृथक्त्वेन मोहकरान् अव्याबाधसुखादिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थभिन्नत्वेन वा बाधाकरास्तान् आगमप्रसिद्धाश्चतुरः पादान् शुद्धात्मभावनाविषये निश्शंको भूत्वा स्वसंवेदनज्ञानखड्गेन छिनत्ति **सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स चेतयिता आत्मा सम्यग्दृष्टिर्निश्शंको मंतव्यः तस्य तु शुद्धात्मभावनाविषये शंकाकृतो नास्ति बंधः, किं तु पूर्वबद्धकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २२९ ॥ **जो ण करेदि दु कंखं कम्मफले तहय सव्वधम्मेसु** यः कर्ता शुद्धात्मभावनासंजातपरमानंदसुखे तृप्तो भूत्वा काक्षां वाछां न करोति । केषु ? पंचेंद्रियविषयसुखभूतेषु कर्मफलेषु तथैव च समस्तवस्तुधर्मेषु स्वभावेषु अथवा विषयसुखकारणभूतेषु नानाप्रकारपुण्यरूपधर्मेषु अथवा इहलोकपरलोककाक्षारूपसमस्तपरसमयप्रणीतकुधर्मेषु । **सो णिक्कंखो चेदा**

स्वामीपनेके अभावसे कर्ता नहीं होता इसलिये भय प्रकृतिके उदय आनेपर भी शंकाके अभावसे स्वरूपसे भ्रष्ट नहीं होता निःशंक रहता है । इसलिये इसके शंकाकृत बंध नहीं होता, कर्म रस देकर क्षय हो जाता है ॥ २२९ ॥

आगे निःकांक्षित गुणकी गाथा कहते हैं;—**[यः चेतयिता]** जो आत्मा **[कर्मफलेषु]** कर्मोंके फलोंमे **[तथा]** तथा **[सर्वधर्मेषु]** सब धर्मोंमें **[कांक्षां]** वांछा **[न तु]** नहीं **[करोति]** करता **[सः]** वह आत्मा **[निष्कांक्षः सम्यग्दृष्टिः]** निःकांक्ष सम्यग्दृष्टि **[ज्ञातव्यः]** जानना ॥ **टीका**—जिसकारण सम्यग्दृष्टि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमयपनेकर सब ही कर्मोंके फलोंमें तथा सभी वस्तुके धर्मोंमें वांछाके अभावसे निष्कांक्ष है निर्वांछक है इसलिये इसके कांक्षा (इच्छा) कर किया हुआ बंध नहीं है । तो क्या है ? निर्जरा ही है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टिके कर्मके फलमे तथा सब धर्मोंमे अर्थात् काच सोना आदि, निंदा प्रशंसा आदिके वचनरूप पुद्गलके परिणमन अथवा अन्यमतियोंकर माने हुए अनेक प्रकार सर्वथा एकांतरूप व्यवहार धर्मके भेदोंमें वांछा नहीं है । इसलिये वांछाकर होनेवाला बंध इसके नही है ।

---

१ 'जो ण करेदि दु कंखं' पाठोयं तात्पर्यवृत्तौ ।

यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि कर्मफलेषु सर्वेषु वस्तुधर्मेषु च कांक्षाभावान्निष्कांक्षस्ततोऽस्य कांक्षाकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३०॥

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३१ ॥

यो न करोति जुगुप्सां चेतयिता सर्वेषामेव धर्माणां।
स खलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३१ ॥

यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमयत्वेन सर्वेष्वपि वस्तुधर्मेषु जुगुप्साऽभावान्निर्विचिकित्सः ततोऽस्य विचिकित्साकृतो नास्ति बंधः किंतु निर्जरैव ॥ २३१ ॥

सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो स चेतयिता आत्मा सम्यग्दृष्टिः ससारसुखे निष्कांक्षितो मतव्यः। तस्य विपयसुखकांक्षाकृतो नास्ति बंधः किंतु पूर्वसंचितकर्मणो निर्जरैव भवति ॥ २३० ॥ **जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं** यश्चेतयिता आत्मा परमात्मतत्त्वभावनावलेन जुगुप्सा निंदां दोपं विचिकित्सान्न करोति, केषा सबधित्वेन? सर्वेषामेव वस्तुधर्माणां स्वभावाना, दुर्गंधादिविपये वा **सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः स्फुटं मतव्यो ज्ञातव्यः तस्य च परद्रव्यद्वेपनिमित्तो नास्ति बधः,

---

वर्तमानकी पीड़ा सही नहीं जाती उसके मेंटनेके इलाजकी वांछा चारित्र मोहके उदयसे है। यह उसका आप कर्ता नहीं होता कर्मका उदय जानकर उसका ज्ञाता है। इसकारण वांछाकर किया गया बंध नहीं है ॥ २३० ॥

आगे निर्विचिकित्सा गुणकी गाथा कहते हैं, **[यः चेतयिता]** जो जीव **[सर्वेषामेव]** सभी **[धर्माणां]** वस्तुके धर्मोंमें **[जुगुप्सां]** ग्लानि **[न करोति]** नहीं करता **[सः]** वह जीव **[खलु]** निश्चयकर **[निर्विचिकित्सः]** विचिकित्सा दोपरहित **[सम्यग्दृष्टिः]** सम्यग्दृष्टि **[ज्ञातव्यः]** जानना ॥ **टीका**—जिसकारण सम्यग्दृष्टि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमयपनेकर सभी वस्तुधर्मोंमें जुगुप्साके अभावसे निर्विचिकित्स (ग्लानिरहित) है इसी कारण इसके विचिकित्साकर किया गया बंध नहीं है। निर्जरा ही होती है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि वस्तुके धर्म जो क्षुधा तृपा शीत उष्ण आदि भाव तथा विष्ठा आदि मलिनद्रव्योंमें ग्लानि नहीं करता। जुगुप्सानामा कर्म प्रकृतिका उदय आता है तब उसका आप कर्ता नहीं होता है। इसलिये जुगुप्साकर किया इसके बंध नहीं है। प्रकृति रस (फल) देकर छूट जाती है इसकारण निर्जरा ही है ॥ २३१ ॥

जो हवइ असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३२ ॥

यो भवति असंमूढः चेतयिता सद्दृष्टिः सर्वभावेषु।
स खलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३२ ॥

यतो हि सम्यग्दृष्टिः, टंकोत्कीर्णज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि भावेषु मोहाभावादमूढदृष्टिः ततोऽस्य मूढदृष्टिकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३२ ॥

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३३ ॥

किं तु पूर्वसंचितकर्मणो निर्जरैव भवति ॥ २३१ ॥ **जो हवदि असंमूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु** यश्चेतयिता आत्मा स्वकीयशुद्धात्मनि श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण निश्चयरत्नत्रयलक्षणभावनाबलेन शुभाशुभकर्मजनितपरिणामरूपे बहिर्विषये सर्वथाऽसंमूढो भवति **सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स खलु स्फुटं सम्यग्दृष्टिरमूढदृष्टिर्मन्तव्यो ज्ञातव्यः। तस्य च बहिर्विषये मूढताकृतो नास्ति बंधः परसमयकृतो वा, किं तु पूर्वबद्धकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २३२ ॥ **जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं** शुद्धात्मभावनारूपपारमार्थिकसिद्धभक्तियुक्तः मिथ्यात्वरागा-

---

आगे अमूढदृष्टि अंगकी गाथा कहते है,—[**यः**] जो जीव [**सर्वभावेषु**] सब भावोंमें [**असंमूढः**] मूढ नहीं होता [**सद्दृष्टिः**] यथार्थ दृष्टि रखता है [**स चेतयिता**] वह ज्ञानी जीव [**खलु**] निश्चयकर [**अमूढदृष्टिः**] अमूढदृष्टि [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**ज्ञातव्यः**] जानना ॥ **टीका**—निश्चयकर सम्यग्दृष्टि है वह टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमयपनेकर सब भावोंमें मोहके अभावसे अमूढदृष्टि है इसलिये इसके मूढदृष्टिकर किया गया बंध नहीं है निर्जरा ही है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि सब पदार्थोंका स्वरूप यथार्थ जानता है उनपर राग द्वेष मोहके अभावसे अयथार्थ दृष्टि नहीं पड़ती और जो चारित्रमोहके उदयसे इष्टानिष्ट भाव उपजते हैं उनको उदयकी बलवत्ता जान उन भावोंका कर्ता नहीं होता इसलिये मूढदृष्टिकर किया बंध नहीं है निर्जरा ही है। प्रकृति रस देकर क्षीण हो जाती है सो निर्जरा ही हुई ॥ २३२ ॥

अब उपगूहन गुणकी गाथा कहते हैं;—[**यः**] जो जीव [**सिद्धभक्तियुक्तः**] सिद्धोंकी भक्तिकर सहित हो [**तु**] और [**सर्वधर्माणां**] अन्य वस्तुके सब धर्मोंका [**उपगूहनकः**] गोपनेवाला हो [**सः**] वह [**उपगूहनकारी**] उपगूहन-

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहनकस्तु सर्वधर्माणां ।
स उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३३ ॥

यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन समस्तात्मशक्तीनामुपबृंहणादुपबृंहकः, ततोऽस्य जीवस्य शक्तिदौर्बल्यकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३३ ॥

उम्मग्गं गच्छंतं सगंपि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३४ ॥

उन्मार्गं गच्छंतं स्वकमपि मार्गे स्थापयति यश्चेतयिता ।
स स्थितीकरणयुक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३४ ॥

दिविभावधर्माणामुपगूहकः प्रच्छादको विनाशक. **सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः उपगूहनकारी मतव्यो ज्ञातव्यः । तस्य चानुपगूहनकृतो नास्ति बंधः किं तु पूर्वसंचितकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २३३ ॥ **उम्मग्गं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं** यः कर्ता मिथ्यात्वरागादिरूपमुन्मार्गं गच्छंत सतमात्मानं परमयोगाभ्यासबलेन शिवमार्गे स्वशुद्धात्मभावनारूपे निश्चयमोक्षमार्गे निश्चलं स्थापयति **सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः स्थितिकरणयुक्तो मंतव्यो

धारी [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**ज्ञातव्यः**] जानना चाहिये ॥ **टीका**—सम्यग्दृष्टि निश्चयकर टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावमय पनेकर आत्माकी सब शक्ति बढानेसे उपबृंहक होता है इसलिये इसके जीवशक्तिके दुर्बलपनेकर किया बंध नहीं है निर्जरा ही है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि उपगूहनगुणकर सहित है । सो उपगूहन नाम छिपानेका है । वह निश्चयनय प्रधानकर ऐसा कहा है कि जो अपना उपयोग सिद्धभक्तिमें लगाये और सब धर्मोंका उपगूहक हो । सो जब सिद्धभक्तिमें उपयोग लगाया तब अन्य धर्मपर दृष्टि ही नहीं रही तब सभी धर्म छिपाये । तथा दूसरा नाम उपबृंहण कहा है वह इस तरह है कि जब अपना उपयोग सिद्धोंके स्वरूपमें लगाया तब अपने आत्माकी सब शक्ति बढा ली आत्मा पुष्ट हुआ । सो दुर्बलतासे बंध होता था वह नहीं होता तब निर्जरा ही होती है । और जबतक अंतरायका उदय है तबतक निर्बलता है परंतु इसके अभिप्रायमें निबलाई नहीं है कर्मके उदयको जीतनेका अपनी शक्तिके अनुसार महान् उद्यम होता है ॥ २३३ ॥

आगे स्थितीकरण गुणकी गाथा कहते हैं;—[**यः**] जो जीव [**उन्मार्गं गच्छंतं**] उन्मार्ग चलते हुए [**स्वकं अपि**] अपने आत्माको भी [**मार्गे**] मार्गमें [**स्थापयति**] स्थापन करता है [**सः चेतयिता**] वह ज्ञानी [**स्थितिकरणयुक्तः**]

---

१ 'सिवमग्गे'ति तात्पर्यवृत्तो पाठ ।

यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावमयत्वेन मार्गे एव स्थितिकरणात् स्थितिकारी ततोऽस्य मार्गच्यवनकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३४ ॥

जो कुणदि वच्छलत्तं तियेह् साहूण मोक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३५ ॥

यः करोति वत्सलत्वं त्रयाणां साधूनां मोक्षमार्गे ।
स वात्सल्यभावयुतः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३५ ॥

यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां स्वस्मादभेदबुद्ध्या सम्यग्दर्शनान्मार्गवत्सलः, ततोऽस्य मार्गानुपलंभकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३५ ॥

ज्ञातव्यः । तस्य चास्थितिकरणकृतो नास्ति बंधः किं तु पूर्वबद्धकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २३४ ॥ **जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हे साधूण मोक्खमग्गम्मि** यः कर्ता मोक्षमार्गे स्थित्वा वत्सलत्वं भक्तिं करोति, केषां? त्रयाणां स्वकीयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां, कथंभूतानां? साधूनां मोक्षमार्गे साधकानां अथवा व्यवहारेण तदाधारभूतसाधूनां **सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः वत्सलभावयुक्तो मंतव्यो ज्ञातव्यः ।

स्थितिकरणगुण सहित [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**ज्ञातव्यः**] जानना ॥ **टीका**—सम्यग्दृष्टि निश्चयकर टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावमय है इसलिये जो अपना आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप मोक्षके मार्गसे छूट जाय तो उसे उसी मार्गमें स्थापन करे वह स्थितिकारी है । इसलिये मार्गसे छूटनेकर किया गया इसके बंध नहीं है निर्जरा ही है ॥ **भावार्थ**—जो अपना आत्मा अपने स्वरूपमय मोक्षमार्गसे चिग जाय उसे उसी मार्गमें स्थापन करे वह स्थितीकरण गुणयुक्त है । उसके मार्गसे छूट जानेका बंध नहीं होता उदय आये हुए कर्म रस देकर खिर जाते हैं इसलिये निर्जरा ही है ॥ २३४ ॥

आगे वात्सल्य गुणकी गाथा कहते हैं,—[**यः**] जो जीव [**मोक्षमार्गे**] मोक्षमार्गमें स्थित [**त्रयाणां साधूनां**] आचार्य उपाध्याय साधुपद सहित आत्मामें अथवा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें [**वत्सलत्वं**] वात्सल्यभाव [**करोति**] करता है [**सः**] वह [**वत्सलभावयुतः**] वत्सल भावकर सहित [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**ज्ञातव्यः**] जानना ॥ **टीका**—निश्चयकर सम्यग्दृष्टि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपनेसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रोंको अपनेसे अभेदबुद्धिकर अच्छीतरह देखता है इसलिये मोक्षमार्गका वत्सल है अति प्रीतियुक्त है । इसलिये इसके मार्गकी अप्राप्तिकर किया गया कर्मका बंध नहीं है निर्जरा ही है ॥ **भावार्थ**—वत्सलपना नाम प्रीतिभावका है इसलिये जो मोक्षमार्गरूप अपने स्वरूपमें अनुरागयुक्त हो उसके मार्गकी

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३६ ॥

विद्यारथमारूढः मनोरथपथेषु भ्रमति यश्चेतयिता ।
स जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३६ ॥

तस्य चावात्सल्यभावकृतो नास्ति बंधः किं तु पूर्वसंचितकर्मणो निर्जरैव भवति ॥ २३५ ॥ **विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा** यश्चेतयिता आत्मा स्वशुद्धात्मतत्त्वोपलब्धिस्वरूपविद्यारथमारूढः सन् ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावपरिणामरूपान् द्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारससारदुःखकारणान् शत्रून् मनोरथरयान् वेगांश्चित्तकल्लोलान् स्वस्थभावसारथिवलेन दृढतरध्यानखड्गेन हंति । **सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिर्जिनज्ञानप्रभावी मंतव्यो ज्ञातव्यः । तस्य चाप्रभावनाकृतो नास्ति बंधः किं तु पूर्वसञ्चितकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति । एव सवरपूर्विकाया भावनिर्जराया उपादानकारणभूताना शुद्धात्मभावनारूपाणा शुद्धनयमाश्रित्य निश्शंकाद्यष्टगुणाना व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथानवक गतं। इद तु निश्शकाद्यष्टगुणव्याख्यानं निश्चयनयमुख्यत्वेन व्याख्यात । निश्चयरत्नत्रयसाधके व्यवहाररत्नत्रयेऽपि स्थितस्य सरागसम्यग्दृष्टेरप्यंजनचौरादिकथारूपेण व्यवहारनयेन यथासभवं योजनीयं । निश्चयं व्याख्याय पुनरपि किमर्थ व्यवहारनयव्याख्यानं? इति चेन्नैवं । अग्निसुवर्णपाषाणयोरिव निश्चयव्यवहारनययोः परस्परसाध्यसाधकभावदर्शनार्थमिति । तथाचोक्तं—

अप्राप्तिकर किया कर्मका बंध नहीं होता कर्मरस (फल) देकर खिर जाता है इसलिये निर्जरा ही है ॥ २३५ ॥

आगे प्रभावनागुणकी गाथा कहते हैं,—[**यः**] जो जीव [**विद्यारथं आरूढः**] विद्यारूपी रथमें चढा [**मनोरथपथेषु**] मनरूपी रथके चलनेके मार्गमे [**भ्रमति**] भ्रमण करता है [**सःचेतयिता**] वह ज्ञानी [**जिनज्ञानप्रभावी**] जिनेश्वरके ज्ञानकी प्रभावना करनेवाला [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**ज्ञातव्यः**] जानना ॥

टीका—जो निश्चयकर सम्यग्दृष्टि है वह टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपनेसे ज्ञानकी समस्त शक्तिके फैलानेकर प्रभावके उपजानेसे प्रभावना करनेवाला है इसलिये इसके ज्ञानकी प्रभावनाका वढाना नहीं है उसकर किया बंध नहीं होता निर्जरा ही होती है ॥

भावार्थ—प्रभावना नाम उद्योत करना प्रगट करना इत्यादिकका है इसलिये जो अपने ज्ञानको निरंतर अभ्याससे प्रगट करता है बढाता है उसके प्रभावना अंग होता है अप्रभावनाकृत कर्मका बंध नहीं है कर्म रस देकर खिर जाता है इसकारण निर्जरा ही है ॥ यहां गाथामें ऐसा कहा है कि जो विद्यारूपी रथमें आत्माको स्थापन

---

१ "मणोरहरएसु हणदि जो चेदा" पाठोयं तात्पर्यवृत्तौ ।

यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञानभावमयत्वेन ज्ञानस्य समस्तशक्तिप्रबोधेन प्रभाव-जननात्प्रभावनकरः ततोस्य ज्ञानप्रभावनाप्रकर्षकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव।

जइजिणसमइ पउंजह ता मा ववहारणिच्छए मुचह। एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं, इति। किं च—संवरपूर्विका निर्जरा या व्याख्याता सा सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य शुद्धात्मसम्यक्श्र-द्धानज्ञानानुष्ठानरूपे मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रये सति वीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानरूपे शुभाशुभ-बहिर्द्रव्यनिरालंबने निर्विकल्पसमाधौ सति भवति, स च समाधिरतीव दुर्लभः। कस्मात्? इति चेत्, एकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेंद्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्कवरबुद्धिस-

---

कर भ्रमता है वह ज्ञानकी प्रभावनायुक्त सम्यग्दृष्टि है। यह निश्चय प्रभावना है। जैसे व्यवहारकर जिनबिंबको रथमें स्थापनकर नगर वन आदिमें भ्रमाके प्रभावना करते हैं उसीतरह जानना। ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानीके निःशंकित आदिक आठ गुण कर्मकी निर्जराके कारण कहे गये हैं। इसीतरह अन्यभी सम्यक्त्वके गुण निर्जराके कारण जानना। तथा यहांपर निश्चयनय प्रधानकर कथन है इसलिये आत्माके ही परिणाम निःशंकारूप आदिकसे कहे हैं॥ उसका सारांश ऐसा है कि जो सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने ज्ञान श्रद्धानमें निःशंक हो भयके निमित्तसे स्वरूपसे नहीं चिगता अथवा संदेहयुक्त न हो उसके निःशंकित गुण कहना चाहिये १, जो कर्मके फलकी वांछा न करे तथा अन्य वस्तुके धर्मोंकी वांछा न करे उसके निःकांक्षित गुण होता है २, जो वस्तुके धर्मोंमें ग्लानि न करे उसके निर्विचिकित्सा गुण होता है ३, जो स्वरूपमें मूढ न हो यथार्थ जाने उसके अमूढदृष्टि गुण होता है ४, जो आत्माको स्वरूपसे चिगते हुएको स्थापन करे उसके स्थितिकरण गुण होता है ६, जो आत्माको शुद्ध स्वरूपमें लगाये आ-त्माकी शक्ति बढाये अन्य धर्मोंको गौण करे उसके उपगूहन गुण होता है ५, जो अपने स्वरूपमें विशेष अनुराग रखे उसके वात्सल्य गुण होता है ७, जो आत्माके ज्ञानगुणको प्रकाशरूप प्रगट करे उसके प्रभावना गुण होता है ८,॥ इन सब गुणोंके प्रतिपक्षी दोषोंकर कर्मका बंध होता था उसको नहीं होने देता और इनके होनेसे चारित्र मोहके उदयरूप शंकादि प्रवर्ते हों तो उनकी निर्जरा ही होती है बंध नहीं होता क्योंकि बंध तो मिथ्यात्व सहित ही प्रधानतासे कहा है। जो चारित्र मोहके उदयसे सम्यग्दृष्टिके सिद्धांतमे गुणस्थानोंकी परिपाटीमें बंध कहा है वह भी निर्जरारूप ही जानना क्योंकि सम्यग्दृष्टिके जैसे मिथ्यात्वके उदयमे बांधा हुआ कर्म क्षरता है वैसे ही नवीन बंधा हुआ भी क्षरता है इसके इस कर्मके स्वामीपनेका अभाव है इसलिये आगामी बंधरूप नहीं है निर्जरारूप ही है॥ जैसे कोई पुरुष पराया द्रव्य उधार लाये उससे उसको ममता बुद्धि नहीं है वर्तमानमें उस द्रव्यसे कुछ कार्य कर लेना हो वह करके पहलेको करारपर

"रुंधन् बंधं नवमिति निजैः संगतोऽष्टाभिरंगैः प्राग्बद्धं तु क्षयमुपयन् निर्जरोज्जृंभणेन ।

द्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयमविषयसुखव्यावर्तनक्रोधादिकषायनिवर्तनतपोभावनासमाधिमरणानि परंपरादुर्लभानि यतः । तदपि कस्मात्? तत्प्रतिपक्षभूताना मिथ्यात्वविषयकषायख्यातिपूजालाभ-

(नियतसमयपर) दे देता है तवतक अपने घरमें भी पड़ा रहे तो भी उससे ममत्व नहीं है इसलिये उस पुरुषको उस द्रव्यका बंधन नहीं है दूसरेको देने सरीखा ही है । उसीतरह ज्ञानी कर्म द्रव्यको जानता है उससे ममत्व नहीं है सो मौजूद होनेपर भी निर्जरा समान ही है ऐसा जानना ॥ तथा ये निःशंकित आदिक आठ गुण व्यवहारनयकर व्यवहार मोक्षमार्गपर लगालेना । जिन वचनमें संदेह नहीं करना भय आनेपर व्यवहार दर्शन ज्ञान चारित्रसे चिगना नहीं वह निःशंकितपना है १, संसारदेह भोगकी वांछा कर तथा परमतकी वांछा कर व्यवहार मोक्षमार्गसे नहीं चिगना वह निष्कांक्षितपना है २, अपवित्र दुर्गंधादि वस्तुके निमित्तसे व्यवहार मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमें ग्लानि न करना वह निर्विचिकित्सा है ३, देव शास्त्र गुरु लोककी प्रवृत्ति अन्यमतादिके तत्त्वार्थके स्वरूपमें मूढता नहीं रखना यथार्थ जान प्रवर्तना वह अमूढदृष्टि है ४, धर्मात्मामें कर्मके उदयसे दोष हो जाय तो उसे गौण करे और व्यवहार मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिको वढावे वह उपगूहन अथवा उपबृंहण है ५, व्यवहार मोक्षमार्गसे चिगते हुएको स्थिर करना वह स्थितीकरण है ६, व्यवहारमोक्षमार्गमें प्रवर्तनेवालेसे विशेष अनुराग (प्रीति) होना वह वात्सल्य है ७, और व्यवहार मोक्षमार्गका अनेक उपायोंसे उद्योत करना वह प्रभावना है ८ । ये व्यवहार नयको प्रधान करके कहे गये हैं सो यहां निश्चय प्रधान कथनमें इनकी गौणता है । सम्यग्ज्ञानरूप प्रमाणदृष्टिमें दोनों ही प्रधान हैं, स्याद्वादमतमें कुछ विरोध नहीं है ॥ अब निर्जरा अधिकार पूर्ण हुआ सो निर्जराके स्वरूपको यथार्थ जाननेवाला तथा कर्मका नवीन बंध रोक निर्जरा करनेवाला जो सम्यग्दृष्टि उसकी महिमा कहते हैं—**रुंधन्** इत्यादि । **अर्थ**—सम्यग्दृष्टि जीव आप स्वयमेव अपने निजरसमें मस्त हुआ आदि मध्य अंतकर रहित सर्वव्यापक एक प्रवाहरूप धारावाही ज्ञानरूप होकर आकाशका मध्यरूप जो अतिनिर्मल रंगभूमि उसमें अवगाहन (प्रवेश) कर नृत्य करता है । कैसा सम्यग्दृष्टि है ? जो नवीन बंधको तो पूर्वोक्तरीतिसे रोकता है और जो पहले बाधा था उसको अपने अष्ट अंगों सहित निर्जराके प्रगट होनेसे नाश कर डालता है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टिके शंकादिक कर किया नवीन बंध तो होता ही नहीं और आठ अंगोंकर सहित होनेसे निर्जराका उदय है उसकर पूर्वबंधका नाश होता है । इसलिये वह एक प्रवाहरूप ज्ञानरूपीरसको आप पीकर मद पीनेवालेकी तरह (जैसे कोई मद पीकर मग्न हुआ नृत्यके अखाडेमें नृत्यकरे वैसे) निर्मल आकाशरूप रंगभूमिमे नृत्य करता है । यहां कोई प्रश्न करे कि—सम्यग्दृष्टिके निर्जरा होना तो कहते आरहे

सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यांतमुक्तं ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य ॥ १६२ ॥ २३६ ॥ इति निर्जरा निष्क्रांता ।

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायात्मख्यातौ **निर्जरा** प्ररूपकः षष्ठोऽङ्कः ॥ ६ ॥

भोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावपरिणामानां प्रबलत्वात् इति दुर्लभपरंपरां ज्ञात्वा सर्वतात्पर्येण समाधौ प्रमादो न कर्तव्यः । तदप्युक्तं—इत्यतिदुर्लभरूपा बोधिं लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात् । संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरं इति ॥ २३६ ॥ तत्रैवं सति शृंगाररहितपात्रवत् शांतरसरूपेण निर्जरा निष्क्राता ।

इति **श्रीजयसेनाचार्यकृतायां** समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां **तात्पर्यवृत्तौ** गाथाचतुष्टयं पीठिकारूपेण, गाथापंचकं ज्ञानवैराग्यशक्त्योः सामान्यविवरणरूपेण, गाथादशकं तयोरेव विशेषविवरणरूपेण, गाथाष्टकं ज्ञानगुणस्य सामान्यविवरणरूपेण, गाथाचतुर्दश तस्यैव विशेषविवरणरूपेण, गाथानवकं निश्शंकाद्यष्टगुणकथनरूपेण चेति समुदायेन पंचाशद्गाथाभिः षड्भिरंतराधिकारैः सप्तमो **निर्जराधिकारः** समाप्तः ॥ ६ ॥

हैं बंध होना नहीं कहा परंतु गुणस्थानोंकी परिपाटीमें सिद्धांतमे अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर बंध कहा गया है तथा घाति कर्मोंका कार्य आत्माके गुणोंका घात करना है सो दर्शन ज्ञान सुख वीर्य इन गुणोंका घात भी विद्यमान है। वहां चारित्र मोहका उदय नवीन बंध भी करता है। यदि मोहके उदयमें भी बंध न मानो तो मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व अनंतानुबंधीका उदय होनेपर भी बंधका न होना क्यों नहीं मानाजाय? उसका समाधान—बंध होनेमें मुख्य मिथ्यात्व अनंतानुबंधीका उदय ही है सो सम्यग्दृष्टिके उनके उदयका अभाव है। और चारित्र मोहके उदयसे यद्यपि सुखगुणका घात है तथा अल्प स्थिति अनुभागलिये मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके विना और उसके साथ रहनेवालीं अन्य प्रकृतियोंके विना घातिया कर्मोंकी प्रकृतियोंका तथा अघातियाकर्मोंकी प्रकृतियोंका बंध भी होता है तौभी जैसा मिथ्यात्व अनंतानुबंधी सहित होता है वैसा नहीं होता। अनंत संसारका कारण तो मिथ्यात्व अनंतानुबंधी है उनका अभाव होनेके बाद उनका बंध नहीं होता। जब आत्मा ज्ञानी हुआ तब अन्य बंधकी गिनती कौन

१ गगनलक्षणं यच्छुद्धस्वरूपं तस्याभोगो विस्तार स एव रंगो नाट्यशाला।

अथ बंधाधिकारः ॥ ७ ॥

अथ प्रविशति बंधः । "रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्क्रीडंतं रसभारनिर्भरमहानाट्येन बधं धुनत् । आनंदामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुट नाटयद्धीरोदारमनाकुलं निरुपधिज्ञानं समुन्मज्जति ॥ १६३ ॥

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि ।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेइ सत्थेहिं वायामं ॥ २३७ ॥

अथ प्रविशति बंधः । तत्र **जहणाम कोवि पुरिसो** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पट्पंचाशद्गाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति । तासु षट्पंचाशद्गाथासु मध्ये

करे ? वृक्षकी जड़ कटनेके बाद हरे पत्ते रहनेकी क्या अवधि ? । इसलिये इस अध्यात्मशास्त्रमें सामान्यपनेसे ज्ञानी अज्ञानी होनेका ही प्रधान कथन है । ज्ञानी हुए बाद शेप रहे कुछ कर्म हैं वे सहज ही मिट जायँग । जैसे कोई पुरुष दरिद्री था वह झोंपड़ीमें रहता था उसको भाग्य उदयसे धन सहित बड़े महलकी प्राप्ति हुई । उसमहलमें बहुत दिनका कूड़ा (मैला) भराहुआ था सो इस पुरुषने आके प्रवेश जब किया उसी दिनसे यह तो मलतका धनी संपदावान् बन गया । अब कूडा झारना रह गया है वह क्रमसे अपने बलके अनुसार झाडता है । जब सब झड जायगा तब उज्वल होजायगा तभी परमानंद भोगेगा, ऐसा जानना ॥ २३६ ॥ इस प्रकार रंगभूमिमें निर्जराका प्रवेश जो हुआ था वह अपना स्वरूप प्रगट दिखलाके निकल गया ॥ यहां तक गाथा २३६ और कलश १६२ हुए ॥

सवैया—सम्यकवंत महंत सदा समभाव रहै दुःख संकट आये,
कर्मनवीन बंधै न तबै अर पूरव बंध झडे विन भाये ।
पूरण अंग सुदर्शनरूप धरै नित ज्ञान वढै निज पाये,
यौं शिवमारग साधि निरंतर आनंद रूप निजातम थाये ॥ १ ॥

इस प्रकार श्री **पं० जयचंद्र** कृत समयसार नामा ग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी भाषावचनिकामें छठा **निर्जरा** अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

अथ **बंधाधिकार । दोहा**—"रागादिकतैं कर्मकौ, बंध जानि मुनिराय । तजैं तिनहिं समभावकरि, नमूं सदा तिन पाँय ॥" अब टीकाकारके वचन कहते हैं कि, अब बंध प्रवेश करता है । जैसे नृत्यके अखाडेमें स्वांग प्रवेश करे उसीतरह रगभूमिमें बंध तत्त्वका

---

१ रागशब्द उपलक्षणं तेन द्वेपमोहादीनामपि ग्रहण तस्य उद्गार आधिक्यं स एव महारस उन्मादकरस तेन रागोद्गारमहारसेन । २ वेपयंत् ।

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २३८ ॥
उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु किं पच्चयगो दु रयबंधो ॥ २३९ ॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २४० ॥

प्रथमतस्तावद् बंधस्वरूपसूचनमुख्यत्वेन गाथादशकं । तदनंतरं निश्चयेन हिंसाहिंसाव्रताव्रतद्वयस्य लक्षणकथनरूपेण **जो मण्णदि हिंसामि** इत्यादि गाथासप्तकं । ततः परं बहिरंगद्रव्य-हिंसा भवतु मा भवतु, निश्चयेन हिंसाध्यवसाय एव हिंसेति प्रतिपादनरूपेण **जो मरदि** इत्यादि' गाथाषट्कं । अथानंतरं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं यद् भेदविज्ञान तस्माद्विलक्षणानि यानि व्रताव्रतानि तद्व्याख्यानमुख्यत्वेन **एवमलिए** इत्यादि सूत्रभूतगाथाद्वयं । तदनंतरं तस्यैव भावपुण्यपापरूपव्रताव्रतस्य शुभाशुभबंधकारणभूतस्य परिणामव्याख्यानमुख्यत्वेन **वत्थुं पडुच** इत्यादि गाथात्रयोदग । एवं समुदायेन पंचदश । तदनंतरं निश्चये स्थित्वा व्यवहारो निषेध्यत इति कथनरूपेण **ववहारणओ** इत्यादि सूत्रषट्कं । अतः परं रागद्वेषरहितज्ञानिनां प्राशुकान्नपानाद्याहारो बंधकारणं न भवति इति पिंडशुद्धिव्याख्यानरूपेण **आधाकम्मा-दीया** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं । तदनंतरं क्रोधादिकषायाः कर्मबंधनिमित्तं भवंति तेषां च चेतना-चेतनबहिर्द्रव्यं निमित्त भवतीति प्रतिपादनरूपेण **जह फलिहमणि विसुद्धो** इत्यादि

स्वांग प्रवेश करता है वहां प्रथम ही सब तत्त्वोंको यथार्थ जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान है वह बंधको दूर करता हुआ प्रगट होता है ऐसा अर्थ लेकर मंगलरूप काव्य कहते हैं— **रागोद्गार** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञान, बंधको उड़ाता हुआ उदय होता है । कैसा बंध है ? रागका उदय होना रूप महारस कर समस्त जगतको प्रमादी (मतवाला) करके और रसके भावसे पूर्ण बड़े नृत्य करके नाचता है । ऐसे बंधको उड़ाता है । ज्ञान आप कैसा है ? आनंदरूप अमृतका नित्य भोजन करनेवाला है तथा अपनी जाननक्रियारूप स्वाभा-विक अवस्थाको प्रगटरूप नचाता हुआ उदय होता है, धीर है उदार है, निश्चल है, जिसका बड़ा विस्तार है, अनाकुल है अर्थात् जिसमें कुछ आकुलताका कारण नहीं रहता, परिग्र-हसे रहित है कुछ परद्रव्यसंबंधी ग्रहणत्याग नहीं है। ऐसा ज्ञान उदयको प्राप्त होता है ॥ **भावार्थ**—बंधतत्त्व रंगभूमिमे प्रवेश करता है उसको ज्ञान उड़ाके आप प्रगट हो नृत्य करेगा उसकी महिमा इस काव्यमे प्रगट की है । ऐसा अनंत ज्ञानस्वरूप आत्मा सदा प्रगट रहो ॥ आगे बंध तत्त्वका स्वरूप विचारते हैं । वहां प्रथम बंधके कारणको प्रगट करते हैं;—**[नाम]** प्रगटकर कहते हैं कि **[यथा]** जैसे **[कोपि पुरुषः]** कोई पुरुष **[स्नेहाभ्यक्तः तु]** अपनी देहमे तैलादि लगाकर **[रेणुबहुले]** बहुत धूली-

एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु ।
रायाई उवओगे कुव्वंतो लिप्पइ रयेण ॥ २४१ ॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः स्नेहाभ्यक्तस्तु रेणुबहुले ।
स्थाने स्थित्वा च करोति शस्त्रैर्व्यायामं ॥ २३७ ॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीतलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातं ॥ २३८ ॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतश्चिंत्यतां किंप्रत्ययिकस्तु तस्य रजोबंधः ॥ २३९ ॥
यः स तु स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबंधः ।
निश्चयतो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥ २४० ॥
एवं मिथ्यादृष्टिर्वर्तमानो बहुविधासु चेष्टासु ।
रागादीनुपयोगे कुर्वाणो लिप्यते रजसा ॥ २४१ ॥

इह खलु यथा कश्चित् पुरुषः स्नेहाभ्यक्तः स्वभावत एव रजोबहुलायां भूमौ स्थितः शस्त्रव्यायामकर्म कुर्वाणः, अनेकप्रकारकरणैः सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् रजसा बध्यते । तस्य कतमो बंधहेतुः? न तावत्स्वभावत एव रजोबहुला भूमिः, स्नेहानभ्यक्तानामपि तत्रस्थानां तत्प्रसंगात् । न शस्त्रव्यायामकर्म, स्नेहानभ्यक्तानामपि तस्मात् तत्प्रसंगात् ।

सूत्रपंचकं तदनंतरमप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च बंधकारणं भवति न पुनः शुद्धात्मेति व्याख्यानमुख्यत्वेन **अप्पडिकमणं** इत्यादिगाथात्रयं चेति समुदायेन षट्पंचाशद्गाथाभिरष्टातराधिकारैः बंधाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—बहिरात्मजीवसंबंधिनो बंधकारणभूतस्य श्रृंगारसहितपात्रस्थानीयस्य मिथ्याज्ञानस्य नाटकरूपेण प्रविशतः सतः शांतरसपरिणतं वीतरागसम्यक्त्वाविनाभूतं भेदज्ञानप्रतिषेधं करोतीति उपदिशति,—**जह णाम कोवि पुरिसो** इत्यादि

वाली [**स्थाने**] जगहमें [**स्थित्वा च**] स्थित होकर [**शस्त्रैः व्यायामं**] हथियारोंसे व्यायाम [**करोति**] करता है वहां [**तालीतलकदलीवंशपिंडीः**] ताडवृक्ष केलेका वृक्ष तथा वांसके पिंड इत्यादिकोंको [**छिनत्ति**] छेदता है [**च भिनत्ति**] भेदता है [**तथा**] और [**सचित्ताचित्तानां**] सचित्त व अचित्त [**द्रव्याणां**] द्रव्योंका [**उपघातं**] उपघात [**करोति**] करता है । इसप्रकार [**नानाविधैः करणैः**] नानाप्रकारके करणोंकर [**उपघातं कुर्वतः**] उपघात करनेवाले [**तस्य**] उस पुरुषके [**खलु निश्चयतः**] निश्चयसे [**चिंत्यतां**] विचारो कि [**रजोबंधः तु**] रजका बंध [**किंप्रत्ययिकः**] किसकारणसे हुआ है ? [**यः तु**] जो [**तस्मिन् नरे**] उस मनुष्यमें [**सस्नेहभावः**] तेल आदिका

नानेकप्रकारकरणानि, स्नेहानभिव्यक्तानामपि तैस्तत्प्रसंगात् । न सचित्ताचित्तवस्तूपघातः, स्नेहानभिव्यक्तानामपि तस्मिंस्तत्प्रसंगात् । ततो न्यायबलेनैवैतदायातं यत्तस्मिन् पुरुषे

व्याख्यानं क्रियते–यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुषः स्नेहाभ्यक्तः सन् रजोबहुलस्थाने स्थित्वा शस्त्रैर्व्यायाममभ्यासं श्रमं करोति इति प्रथमगाथा गता । छिनत्ति भिनत्ति च तथा । कान्[2] तालतमालकदलीवंशाशोकसंज्ञान् वृक्षविशेषान् तत्संबंधिसचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघातं च करोति

सचिक्कण भाव है [**तेन**] उससे [**तस्य रजोबंधः**] उसके रजका बंध लगता है [**निश्चयतः विज्ञेयं**] यह निश्चयसे जानना । [**शेषाभिः कायचेष्टाभिः**] शेष कायकी चेष्टाओंसे [**न**] रजका बंध नहीं है [**एवं**] इसप्रकार [**मिथ्यादृष्टिः**] मिथ्यादृष्टि जीव [**बहुविधासु चेष्टासु**] बहुत प्रकारकी चेष्टाओंमें [**वर्तमानः**] वर्तमान है वह [**उपयोगे**] अपने उपयोगमें [**रागादीन् कुर्वाणः**] रागादि भावोंको करता हुआ [**रजसा**] कर्मरूप रजकर [**लिप्यते**] लिप्त होता है बंधता है ॥ **टीका**—इस लोकमें निश्चयकर जैसे कोई पुरुष स्नेह (तैल) आदिककर मर्दन युक्त हुआ जिसमें अपने स्वभावसे ही रज बहुत है ऐसी भूमीमें स्थित हुआ शस्त्रोंका अभ्यासरूप कार्य करता अनेक प्रकारके करणोंकर सचित्त अचित्त वस्तुओंको काटता हुआ उस भूमिकी रजकर बंधता है लिप्त होता है । उसका विचार किया जाय कि बंधका कारण इनमें कौन है ? वहां प्रथम तो स्वभावसे ही जिसमें बहुत रज है ऐसी भूमि वह रजके बंधनेको कारण नहीं है । यदि भूमि ही कारण हो तो जिनके तैल आदिक नहीं लगा और भूमिमें तिष्ठते हैं उनके भी रजका बंध लगना चाहिये ऐसा नहीं है । तथा शस्त्रोंका अभ्यास करना कर्म है वह भी उस रजके बंध लगनेको कारण नहीं है । जो शस्त्रोंका अभ्यास बंधनेका कारण हो तो जिनके तैल आदि नहीं लगा उनके भी उस शस्त्राभ्यासके करनेसे रजका बंध लग जाय ऐसा होता नहीं । और भी अनेक प्रकारके करण उस रजके बंधनेको कारण नहीं है यदि ऐसा हो तो जिनके तेल आदि नहीं लगा उनके भी उन करणोंकर रजका बंध लगना चाहिये । तथा सचित्त अचित्त वस्तुओंका उपघात भी उस रजके लगनेको कारण नहीं है यदि ऐसा हो तो जिनके तेल आदि नहीं लगा उनके भी सचित्त अचित्तका घात करनेपर रजका बंध लगना चाहिये । इसलिये न्यायके बलसे यह सिद्ध हुआ कि उस पुरुषमें तैल आदि सचिक्कनका मर्दन करना है वही बंधका कारण है । ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्मामें राग आदि भावोंको करता हुआ स्वभावसे ही कर्मके योग्य जो पुद्गल उनकर भरे हुए लोकमें काय वचन मनकी क्रियाको करता हुआ अनेक प्रकारके करणोंकर सचित्त अचित्त वस्तुओंको घातता कर्मरूप रजकर बंधता है । वहां विचारा जाय कि

स्नेहाभ्यंगकरणं स वंधहेतुः । एवं मिथ्यादृष्टिः आत्मनि रागादीन् कुर्वाणः स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुले लोके कायवाङ्मनःकर्म कुर्वाणोऽनेकप्रकारकरणैः सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् कर्मरजसा बध्यते । तस्य कतमो वंधहेतुः ? न तावत्स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुलो लोकः, सिद्धानामपि तत्रस्थानां तत्प्रसंगात् । न कायवाङ्मनःकर्म, यथाख्यातसंयतानामपि तत्प्रसंगात् । नानेकप्रकारकरणानि, केवलज्ञानिनामपि तत्प्रसंगात् । न सचि-

---

इति द्वितीयगाथा गता । उपघात कुर्वाणस्य तस्य नानाविधैर्वंशाखस्थानादिकरणविशेषैर्निश्चयतश्चिन्त्यता विचार्यता किंप्रत्ययकः किंनिमित्तक. रजोवधः ? इति पूर्वपक्षरूपेण गाथात्रय गतं । अत्रोत्तर—य स्नेहभावस्तस्मिन्नरे स पूर्वोक्तस्तैलाभ्यगनरूपः तेन तस्य रजोवंध इति निश्चयतो विज्ञेयं न कायादिव्यापारचेष्टाभिः शेषाभिरित्युत्तरगाथा। एव सूत्रचतुष्टयेन प्रश्नोत्तररूपेण दृष्टांतो गतः । अथ दार्ष्टांतमाह—**एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चेट्ठासु** एव पूर्वोक्तदृष्टांतेन मिथ्यादृष्टिर्जीवः विविधासु कायव्यापारचेष्टासु वर्तमानः **रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण** शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाणा सम्यग्दर्शनज्ञान चारि-

---

वंधका कारण अतिशयवाला कौन है ? वहां प्रथम तो स्वभावसे ही कर्म योग्य पुद्गलोंकर बहुत भरा हुआ लोक वंधका कारण नहीं है, यदि उनसे वंध हो तो लोकमें सिद्ध भी मौजूद हैं उनके भी वंधका प्रसंग आयेगा ॥ काय वचन मनकी क्रिया स्वरूप योग भी वंधके कारण नहीं हैं, यदि उनसे वध हो तो मन वचन कायकी क्रियावाले यथाख्यात संयमियोंके भी वंधका प्रसग प्राप्त होगा । अनेक प्रकारके करण भी वधके कारण नहीं हैं, यदि उनसे वंध हो तो केवल ज्ञानियोंके भी उन करणोंकर वंधका प्रसंग आयेगा । तथा सचित्त अचित्त वस्तुओंका उपघात भी वंधका कारण नहीं है, यदि उनसे वंध हो तो जो साधु समितिमें तत्पर हैं यत्नरूप प्रवृत्ति करते हैं उनके भी सचित्त अचित्तके घातसे वंधका प्रसंग आयेगा । इसलिये न्यायके बलकर यही सिद्ध हुआ कि जो उपयोगमें रागादिकका करना है वही वंधका कारण है ॥ **भावार्थ**—यहां निश्चय प्रधान कर कथन है । जहां निर्वाध हेतुकर सिद्धि हो वही निश्चय है । सो वंधका कारण विचारनेसे यही निर्वाध सिद्ध हुआ कि मिथ्यादृष्टि पुरुष राग द्वेष मोह भावोंको अपने उपयोगमें करता है इसलिये ये रागादिक ही वंधके कारण हैं । तथा अन्य जो कर्म योग्य पुद्गलोंसे भरा लोक, मन वचन कायके योग, अनेक कारण और चेतन अचेतनका घात ये वंधके कारण नहीं हैं । यदि इनसे वंध हो तो सिद्धोंके, यथाख्यात चारित्रवालोंके, केवल ज्ञानियोंके तथा समितिरूप प्रवर्तनेवाले मुनियोंके वंधका प्रसंग आजायगा, परंतु वंध उनके नहीं होता । इसलिये इस हेतुमें व्यभिचार हुआ इसलिये वंधका कारण रागादिक ही हैं यह निश्चय है । यहां समितिरूप प्रवर्तनेवाले मुनिका नाम तो कहा और अविरत देशविरतका नाम ही न लिया । सो इनके वाह्यसमितिरूप प्रवृत्ति नहीं है इस-

त्ताचित्तवस्तूपघातः समितितत्पराणामपि तत्प्रसंगात् । ततो न्यायबलेनैतदेवायातं यदुपयोगे रागादिकरणं स बंधहेतुः । "न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बंधकृत् । यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः स एव किल केवलं भवति बंधहेतुर्नृणां ॥ १६४ ॥" २३७।२३८।२३९।२४०।२४१ ॥

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते ।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥ २४२ ॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २४३ ॥

त्राणामभावात् मिथ्यात्वरागाद्युपयोगान् परिणामान् कुर्वाणः सन् कर्मरजसा लिप्यते बध्यत इत्यर्थः । एवं यथा तैलम्रक्षितस्य रजोबंधो भवति तथा मिथ्यात्वरागादिपरिणतस्य जीवस्य कर्मबंधो भवति इति बंधकारणतात्पर्यकथनरूपेण सूत्रपंचकं गतं ॥ २३७।२३८।२३९।२४०।२४१ ॥ अथ गाथापंचकेन वीतरागसम्यग्दृष्टेर्बंधाभावं दर्शयति;—यथा स एव पूर्वोक्तो नरः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति धूलिबहुलस्थाने शस्त्रैर्व्यायाम अभ्यासं श्रम करोतीति प्रथमगाथा गता । छिनत्ति भिनत्ति च तथा, कान्? तालतमालकदलीवंशपिंडीसंज्ञान् वृक्षविशेषान् । तत्संबंधिसचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघातं च करोति इति द्वितीयगाथा गता । उपघातं कुर्वाणस्य तस्य नानाविधैर्वै-

---

लिये चारित्रमोहसंबंधी किंचित् बंध होता है इसकारण सर्वथा बंधके अभावकी अपेक्षामें इनका नाम नहीं लिया सो अंतरंग अपेक्षा ये भी निर्बंध ही जानने ॥ आगे इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**न कर्म** इत्यादि । **अर्थ**—कर्म बंधका करनेवाला कर्मयोग्य पुद्गलोंकर बहुत भरा लोक कारण नहीं है, चलने स्वरूप काय वचन मनकी क्रियारूप योग भी कारण नहीं हैं, अनेक प्रकारके करण भी कारण नहीं है और चेतन अचेतनका घात भी कारण नहीं है । परंतु आत्मा जब रागादिभावोंके साथ एकताको प्राप्त होता है सो ही एक पुरुषोंके बंधका कारण है ॥ **भावार्थ**—यहां निश्चयनयकर एक रागादिकको ही बंधका कारण कहा है ॥ २३७।२३८।२३९।२४०।२४१ ॥

आगे सम्यग्दृष्टि, उपयोगमे रागादिकोंको नहीं करता अर्थात् उपयोगके और रागादिकके आपसमें भेद जान रागादिकका स्वामी नहीं होता इसलिये उसके पूर्वोक्त चेष्टासे बंध नहीं होता ऐसा कहते हैं,—[**यथा**] जैसे [**पुनः स चैव**] फिर वोही [**नरः**] मनुष्य [**सर्वस्मिन् स्नेहे अपनीते**] तैलादिक सब चिकनी वस्तुको दूर करके [**रेणुबहुले**] बहुत रजवाले [**स्थाने**] स्थानमें [**शस्त्रैः व्यायामं करोति**] शस्त्रोंका अभ्यास करता है, [**तालीतलकदलीवंशपिंडीः**] तालवृक्षकी जड़को केलेके वृक्षको तथा वांसके विड़ेको [**छिनत्ति च भिनत्ति**] छेदन भेदन करता है

---

१ आत्मा.

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगो ण रयबंधो ॥ २४४ ॥
जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २४५ ॥
एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥ २४६ ॥

यथा पुनः स चैव नरः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति ।
रेणुबहुले स्थाने करोति शस्त्रैर्व्यायामं ॥ २४२ ॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा तालीतलकदलीवंशपिंडीः ।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघात ॥ २४३ ॥
उपघातं कुर्वतस्तस्य नानाविधैः करणैः ।
निश्चयतो विज्ञेयं किंप्रत्ययको न रजोबंधः ॥ २४४ ॥

शास्त्रस्थानादिकरणविशेषैः, निश्चयतश्चिंत्यतां विचार्यतां किंप्रत्ययकः किंनिमित्तकः तस्य रजोबंधो न भवति । एवं प्रश्नरूपेण गाथात्रयं गतं । अत्रोत्तरं—यः स्नेहभावस्तस्मिन्नरे स पूर्वोक्तस्तैलाभ्यंगरूपः तेन स तस्य रजोबंधः, इति निश्चयतो विज्ञेयं । न कायादिव्यापारचेष्टाभिः शेषाभिः, तदभावात् तस्य बंधो नास्तीत्यभिप्रायः, इत्युत्तरगाथा गता । एवं सूत्रचतुष्टयेन प्रश्नोत्तररूपेण

[**तथा**] और [**सचित्ताचित्तानां**] सचित्त अचित्त [**द्रव्याणां**] द्रव्योंका [**उपघातं करोति**] उपघात करता है । [**उपघातं कुर्वतः तस्य**] वहां उपघातकरनेवाले उसके [**नानाविधैः करणैः**] नानाप्रकारके करणोंकर [**निश्चयतः**] निश्चयसे [**विज्ञेयं**] जानना कि [**रजोबंधः**] रजका बंध [**किंप्रत्ययको न**] किसकारणसे नहीं होता ? [**तस्मिन् नरे**] उस पुरुषके [**यः**] जो [**स स्नेहभावः**] चिकनता है [**तेन**] उससे [**तस्य**] उसके [**रजोबंधः**] रजका बंधना [**निश्चयतः**] निश्चयसे [**विज्ञेयं**] जानना चाहिये [**शेषाभिः कायचेष्टाभिः**] शेष कायकी चेष्टाओंसे [**न**] रजका बंध नहीं होता । [**एवं**] इसप्रकार [**सम्यग्दृष्टिः**] सम्यग्दृष्टि [**बहुविधेषु**] बहुत तरहके [**योगेषु**] योगोंमें [**वर्तमानः**] वर्तमान है वह [**उपयोगे**] उपयोगमें [**रागादीन्**] रागादिकोंको [**अकुर्वन्**] नहीं करता इसलिये [**रजसा**] कर्मरजकर [**न लिप्यते**] नहीं लिप्त होता ॥ **टीका**—जैसे वही पुरुष तैलादिककी सब चिकनाई को दूर कर स्वभावसे ही बहुत रजवाली भूमीमें उन्हीं शस्त्रोंकर अभ्यास करता हुआ उन्हीं अनेक तरहके करणोंकर उन्हीं सचित्त अचित्त वस्तुओंको तोड़ता हुआ रजकर नहीं बंधता क्योंकि

यः स स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबंधः ।
निश्चयतो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः ॥ २४५ ॥
एवं सम्यग्दृष्टिर्वर्तमानो बहुविधेषु योगेषु ।
अकुर्वन्नुपयोगे रागादीन् न लिप्यते रजसा ॥ २४६ ॥

यथा स एव पुरुषः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति तस्यामेव स्वभावत एव रजोबहुलायां भूमौ तदेव शस्त्रव्यायामकर्म कुर्वाणस्तैरेवानेकप्रकारकरणैस्तान्येव सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् रजसा न बध्यते स्नेहाभ्यंगस्य बधहेतोरभावात् । तथा सम्यग्दृष्टिः, आत्मनि रा-

---

दृष्टांतो गतः । अथ दार्ष्टांतमाह;—**एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु** एव पूर्वोक्तदृष्टांतेन सम्यग्दृष्टिर्जीवः विविधयोगेषु नाना प्रकारमनोवचनकायव्यापारेषु वर्तमानः । **अकरंतो उवओगे रागादी** निर्मलात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाणां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सद्भावात् रागाद्युपयोगान् परिणामानकुर्वाणः सन् **णेव बज्झदि रयेण** कर्मरजसा न बध्यते । एवं तैलम्रक्षणाभावे यथा रजोबंधो न भवति तथा वीतरागसम्यग्दृष्टे-

---

इसके बंधका हेतु चिकनाईके लेपका अभाव है । उसीतरह सम्यग्दृष्टि आत्मामें रागादिकोंको नहीं करता स्वभावसे ही कर्मयोग्य पुद्गलोंसे भरे उसी लोकमे उसी काय वचन मनकी क्रियाको करता हुआ उन्हीं अनेक प्रकारके करणोंकर उन्हीं सचित्त अचित्त वस्तुओंका घात करता कर्मरूपरजकर नहीं बंधता । क्योंकि इसके बंधका कारण रागके योगका अभाव है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दृष्टिके पूर्वोक्त सब संबंध होनेपर भी रागके संबंधका अभाव है इसलिये कर्मबंध नहीं होता । इसका समर्थन पहले कह आये हैं ॥ अब इस अर्थका कलशरूप काव्य कहते हैं—**लोकः कर्म** इत्यादि । **अर्थ**—इसकारण कर्मोंकर भरा हुआ लोक हो, मन वचन कायके चलनस्वरूप योग भी रहो, पूर्वोक्त करण भी होवें, और पूर्वकथित चैतन्य अचैतन्यका घात करना रहो परंतु यह सम्यग्दृष्टि रागादिकोंको उपयोगभूमिमे नहीं करता केवल एक ज्ञानरूप होता है इसलिये पूर्वोक्त किसी भी कारणसे बंधको प्राप्त नहीं होता यह निश्चल सम्यग्दृष्टि है । अहो देखो ! यह सम्यग्दर्शनकी अद्भुत महिमा है ॥ **भावार्थ**—यहां सम्यग्दृष्टिका अद्भुत माहात्म्य कहा है और लोक, योग करण, चैतन्य चैतन्यका घात—वे बंधके कारण नहीं कहे हैं । यहां ऐसा मत समझना कि पर जीवकी हिंसासे बंध नहीं कहा इसलिये स्वच्छंद होके हिंसा करनी । यहां तो अबुद्धिपूर्वक कभी परजीवका घात भी हो जाता है उससे बंध नहीं होता । और जहांपर बुद्धिपूर्वक जीव मारनेके भाव होंगे वहां तो अपने उपयोगसे रागादिकका सद्भाव आयेगा वहां हिंसासे बंध होगा ही । जिस जगह जीवको जिवानेका अभिप्राय है उसको भी निश्चयनयमें मिथ्यात्व कहते हैं तो मारनेका अभिप्राय मिथ्यात्व

गादीनकुर्वाणः सन् तस्मिन्नेव स्वभावत एव कर्मयोग्यपुद्गलबहुले लोके तदेव कायवाङ्मनःकर्म कुर्वाणः, तैरेवानेकप्रकारकरणैः, तान्येव सचित्ताचित्तवस्तूनि निघ्नन् कर्मरजसा न वध्यते रागयोगस्य वंधहेतोरभावात् । "लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु न परिस्पन्दात्मकं तत् कर्म तान्यस्मिन् करणानि संतु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् । रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन् केवलं वंधं नैव कुतोप्युपेत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवः ॥ १६५ ॥ तथापि न निरर्गलं चरितुमीक्षते ज्ञानिनां तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः । अकामकृतकर्म तन्मतमकारण ज्ञानिनां द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥ १६६ ॥ जानाति यः स न करोति करोति यस्तु जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः । रागं त्ववोधमयमध्यवसायमाहुर्मिथ्यादृशः स नियतं स हि वंधहेतुः ॥ १६७ ॥"२४२।२४३।२४४।२४५।२४६ ॥

जीवस्य रागाद्यभावाद्बंधो न भवति, इति बधाभावकारणतात्पर्यकथनरूपेण गाथापचक गत । किं च यथात्र पातनिकाया भणित, संज्ञानिजीवस्य शातरसे स्वामित्व, अज्ञानिनस्तु शृंगाराद्यष्टरसाना स्वामित्वं, तथाध्यात्मविपये नाटकावतारप्रस्तावे नवरसानां स्वामित्व ज्ञातव्य । इति सूत्र-

---

क्यों न होना ? होगा ही । इसलिये कथनको नयविभागसे यथार्थ समझ श्रद्धान करना । सर्वथा एकांत मानना तो मिथ्यात्व है ॥ अब इसी अर्थके दृढ करनेको व्यवहारनयकी प्रवृत्ति करनेके लिये काव्य कहते है—**तथापि** इत्यादि । **अर्थ**—तथापि अर्थात् लोक आदि कारणोंसे वंध नहीं कहा और रागादिकसे ही वंध कहा है तौभी ज्ञानियोंको मर्यादारहित स्वच्छंद प्रवर्तना योग्य नहीं कहा क्योंकि निरर्गल (स्वच्छंद) प्रवर्तना ही वंधका ठिकाना है ज्ञानियोंके विना वांछा कार्य होता है वह वंधका कारण नहीं कहा क्योंकि जानता भी है और कर्मको करता भी है ये दोनों क्रियायें क्या विरोधरूप नहीं है ? करना और जानना तो निश्चयसे विरोधरूप ही है ॥ **भावार्थ**—पहले काव्यमें लोक आदि वंधके कारण नहीं कहे उसजगह ऐसा नहीं समझना कि बाह्यव्यवहारप्रवृत्ति वंधके कारणोंमें सर्वथा ही निषेध की गई है । इसलिये ज्ञानियोंकी अबुद्धिपूर्वक विना इच्छाके प्रवृत्ति होती है वहां वंध नहीं कहा । इसकारण ज्ञानियोंको स्वच्छंद प्रवर्तना तो कहा ही नहीं है बेमर्याद प्रवर्तना तो वधका ही ठिकाना है । जाननेमें और करनेमें तो परस्पर विरोध है । ज्ञाता रहेगा तब तो वंध न होगा यदि कर्ता होगा तो अवश्य वंध होगा ॥ अब कहते हैं कि जो जानता है वह करता नहीं है और जो करता है वह जानता नहीं है । जो करना है कि वह कर्मका राग है वही अज्ञान है और अज्ञान ही वंधका कारण है । ऐसा काव्य कहते है—**जानाति** इत्यादि । **अर्थ**—जो जानता है वह कर्ता नहीं है और जो करता है वह जानता नहीं है । जो करना है वह निश्चयसे

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २४७ ॥

यो मन्यते हिनस्मि च हिंस्ये च परैः सत्त्वैः ।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥ २४७ ॥

परजीवानहं हिनस्मि परजीवैर्हिंस्ये चाहमित्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः । यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात्सम्यग्दृष्टिः ॥ २४७ ॥

दशकसमुदायेन प्रथमस्थलं गतं ॥ २४२।२४३।२४४।२४५।२४६ ॥ अथ वीतरागस्वस्थभावं मुक्त्वा हिंस्यहिंसकभावेन परिणमनमज्ञानिजीवलक्षणं । तद्विपरीतं संज्ञानिलक्षणमिति प्रज्ञापयति;—**जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं सो मूढो अण्णाणी** यो मन्यते जीवानह हिनस्मि परैः सत्वैरहं हिंस्ये इति च योसौ परिणामः स निश्चितमज्ञानः स एव बंधहेतुः, स परिणामो यस्यास्ति स चाज्ञानी । **णाणी एत्तो दु विवरीदो** एतस्माद्विपरीतो यो जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिंदाप्रशंसादिविकल्पविषये रागद्वेषरहितशुद्धात्मभावनासंजातपरमानंदसुखास्वादरूपे वा भेदज्ञाने रतः स ज्ञानीत्यर्थः ॥ २४७ ॥

कर्मराग है जो राग है उसे मुनि अज्ञानमय अध्यवसाय कहते हैं । यही अध्यवसाय नियमसे बंधका कारण है ॥ २४६ ॥

अब मिथ्यादृष्टिके आशयको गाथामें प्रगटरीतिसे कहते हैं;—**[यः]** जो पुरुष **[मन्यते]** ऐसा मानता है कि **[हिनस्मि]** मैं पर जीवको मारता हूं **[च]** और **[परैः सत्त्वैः]** परजीवोंकर मैं **[हिंस्ये]** माराजाता हूं पर मुझे मारते है **[स]** वह पुरुष **[मूढः]** मोही है **[अज्ञानी]** अज्ञानी है **[तु अतः]** और इससे **[विपरीतः]** विपरीत **[ज्ञानी]** ज्ञानी है ऐसा नहीं मानता ॥ **टीका**—परजीवोंको मैं मारता हूं और परजीवोंकर मैं मारा जारहा हूं ऐसा जिसका निश्चयरूप आशय है वह निश्चयसे अज्ञान हैं । सो ऐसा जिसके अध्यवसाय हो वह अज्ञानी है इस अज्ञानीपनसे ही मिथ्यादृष्टि है । और जिसके ऐसा आशयरूप अज्ञान नहीं है वह ज्ञानीपनसे सम्यग्दृष्टि है ॥ **भावार्थ**—जिसके ऐसा आशय है कि परजीवको मैं मारता हूं और पर मुझे मारते हैं वह आशय अज्ञान है इसलिये वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है और जिसके यह आशय नहीं है वह ज्ञानी है सम्यग्दृष्टि है । यहां ऐसा जानना निश्चयनयकर कर्ताका स्वरूप यह है कि आप स्वाधीन जिस भावरूप परिणमे उसको उस भावका कर्ता कहते है सो परमार्थसे कोई किसीका मरण नहीं करसकता । जो परकर परका मरण मानता है वह अज्ञानी है । निमित्त नैमित्तिक भावसे कर्ता कहना व्यवहारनयका वचन है उसे यथार्थ मानना सम्यग्ज्ञान है ॥ २४७ ॥

कथमयमध्यवसायोऽज्ञानं ? इति चेत्;—

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेसिं ॥ २४८ ॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणां जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं न हरंति तुहं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥ २४९ ॥

आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
आयुर्न हरसि त्वं कथं त्वया मरणं कृतं तेषां ॥ २४८ ॥
आयुःक्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
आयुर्न हरंति तव कथं ते मरणं कृतं तैः ॥ २४९ ॥

अथ कथमयमध्यवसायः पुनरज्ञानं? इति चेत्;—**आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं** आयुःक्षयेण मरण जीवाना जिनवरैः प्रज्ञप्तं कथित । **आउं ण हरेसि तुमं**

आगे पूछते हैं कि यह अध्यवसान अज्ञान क्यों है ? उसका उत्तररूप गाथा कहते हैं,—[**जीवानां**] जीवोंके [**मरणं**] मरण है वह [**आयुःक्षयेण**] आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा [**जिनवरैः**] जिनेश्वर देवने [**प्रज्ञप्तम्**] कहा है सो हे भाई तू मानता है कि मैं परजीवको मारता हूं यह अज्ञान है क्योंकि [**तेषां**] उन परजीवोंका [**आयुः**] आयुकर्म [**त्वं न हरसि**] तू नहीं हरता [**त्वया**] तो तूने [**मरणं**] उनका मरण [**कथं कृतं**] कैसे किया ? । तथा [**जीवानां**] जीवोंका [**मरणं**] मरण [**आयुःक्षयेण**] आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा [**जिनवरैः**] जिनेश्वरदेवने [**प्रज्ञप्तं**] कहा है परंतु हे भाई तू ऐसा मानता है कि मैं परजीवोंकर मारा जाता हूं यह मानना तेरा अज्ञान है क्योंकि परजीव [**तव**] तेरा [**आयुः**] आयुकर्म [**न हरंति**] नहीं हरते इसलिये [**तैः**] उन्होंने [**ते मरणं**] तेरा मरण [**कथं कृतं**] कैसे किया ॥ **टीका**—निश्चयकर जीवके मरण है वह अपने आयुकर्मके क्षयसे ही होता है जो आयुका क्षय न हो तो उसके मारनेको कोई समर्थ नहीं हो सकता और अपना आयुकर्म अन्यकर हरा नहीं जासकता आयुकर्म तो अपना उपभोगकर ही क्षयरूप होता है इसलिये अन्य अन्यका मरण किसीतरह भी नहीं करसकता । इसकारण जो ऐसा मानता है (अभिप्रायकरता है) कि मैं परजीवको मारता हूं तथा परजीव मुझे मारते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चयसे अज्ञान है ॥ **भावार्थ**—जो जीवको मान्य हो परंतु मान्यरूप कार्य न हो वही अज्ञान है सो मरण भी अपना परकर किया नहीं होता और आपकर किया परके मरण नहीं होता परंतु यह प्राणी

---

१ तात्पर्यवृत्तौ नेयं गाथा, आत्मख्यातावेव तत एव नैतस्यास्तात्पर्यवृत्तिष्टीका ।

मरणं हि तावज्जीवानां स्वायुःकर्मक्षयेणैव तदभावे तस्य भावयितुमशक्यत्वात् स्वायुःकर्म च नान्येनान्यस्य हर्तुं शक्यं तस्य स्वोपभोगेनैव क्षीयमाणत्वात् । ततो न कथंचनापि, अन्योऽन्यस्य मरणं कुर्यात् । ततो हिनस्मि हिंस्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं ॥ २४८।२४९ ॥

जीवनाध्यवसायस्य तद्विपक्षस्य का वार्ता ? इति चेत् ;—

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २५० ॥

यो मन्यते जीवयामि च जीव्ये चापरैः सत्त्वैः ।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥ २५० ॥

परजीवानहं जीवयामि परजीवैर्जीव्ये चाहमित्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः । यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात् सम्यग्दृष्टिः ॥ २५० ॥

कह ते मरणं कदं तेसिं तेषामायुःकर्म च न हरसि त्वं तस्यायुषः स्वोपयोगेनैव क्षीयमा-

---

मानता है यही अज्ञान है । यह कथन निश्चयनयकी प्रधानतासे है । तथा निमित्तनैमित्तिक भावकर परस्पर पर्यायका उत्पाद व्यय हो उसे जन्म मरण कहते हैं । वहां जिसके निमित्तसे हो उसे ऐसा कहते है कि इसने इसको मारा । यह कहना व्यवहार है । यहा ऐसा नहीं समझना कि व्यवहारका सर्वथा निषेध है जो निश्चयको नहीं जानते उनके अज्ञान मेंटनेको कहा है इसको जाननेके वाद दोनों नयोंके अविरोधको जान यथायोग्य नय मानना ॥ २४८।२४९ ॥

फिर पूछते हैं कि मरणके अध्यवसायको अज्ञान कहा वह तो जानलिया परंतु उस मरणका प्रतिपक्षी जो जीवनेका अध्यवसाय उसकी क्या वात है ? उसका उत्तर कहते है,—[**यः**] जो जीव [**मन्यते**] ऐसा मानता है कि [**जीवयामि**] मैं परजीवोंको जीवित करता हूं [**च**] और [**परैः सत्त्वैः च**] परजीव भी मुझे [**जीव्ये**] जीवित करते हैं [**स मूढः**] वह मूढ (मोही) है [**अज्ञानी**] अज्ञानी है [**तु**] परंतु [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**अतः**] इससे [**विपरीतः**] विपरीत है ऐसा नहीं मानता इससे उल्टा मानता है ॥ **टीका**—परजीवोंको मैं जिलाता हूं और परजीव मुझे जिलाते है ऐसा निश्चयरूप आशय निश्चयसे अज्ञान है जिसके यह आशय हो वह जीव अज्ञानीपनसे मिथ्यादृष्टि है और जिसके ऐसा अध्यवसाय नहीं है वह ज्ञानीपनसे सम्यग्दृष्टि है ॥ **भावार्थ**—जो ऐसा मानता है कि मुझे पर जिवाते है और मैं परको जिलाता हूं

---

१ इयमपि गाथा तात्पर्यवृत्तौ नास्ति ।

कथमयमध्यवसायोऽज्ञानमिति चेत्?—

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं ॥ २५१ ॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं ॥ २५२ ॥

आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणंति सर्वज्ञाः ।
आयुश्च न ददासि त्वं कथं त्वया जीवितं कृतं तेषां ॥ २५१ ॥
आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणति सर्वज्ञाः ।
आयुश्च न ददाति तव कथं तु ते जीवितं कृतं तैः ॥ २५२ ॥

णत्वात् कथं ते त्वया तेषां मरणं कृतमिति ॥२४८।२४९।२५०॥ **आउउदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू** आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणति सर्वज्ञाः । **आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं** आयुःकर्म च न ददासि त्वं तेपा जीवाना तस्यायुपः स्वकीयशुभाशुभपरिणामेनैव उपार्ज्यमाणत्वात्, कथं त्वया जीवितं कृत[1] न कथमपि । कि च ज्ञानिना पुरुषेण स्वसंवित्तिलक्षणत्रिगुणत्रिगुप्तसमाधौ स्थातव्य तावत् ।

यह अज्ञान है । जिसके यह अज्ञान है वह मिथ्यादृष्टि है जिसके यह अज्ञान नहीं है वह सम्यग्दृष्टि है ॥ २५० ॥

आगे पूछते हैं कि यह जिवानेका अध्यवसाय अज्ञान क्यों है ? उसका उत्तर कहते हैं,—[**जीवः**] जीव [**आयुरुदयेन**] अपनी आयुके उदयसे [**जीवति**] जीता है [**एवं**] ऐसा [**सर्वज्ञाः**] सर्वज्ञदेव [**भणंति**] कहते हैं सो हे भाई [**त्वं**] तू [**आयुः च**] पर जीवको आयुकर्म [**न ददासि**] नहीं देता तो [**त्वया**] तूने [**तेषां**] उन परजीवोंका [**जीवितं**] जीवित [**कथं कृतं**] कैसे किया ? [**च**] और [**जीवः**] जीव [**आयुरुदयेन**] अपने आयुकर्मके उदयसे [**जीवति**] जीता है [**एवं**] ऐसा [**सर्वज्ञाः**] सर्वज्ञदेव [**भणंति**] कहते हैं सो हे भाई परजीव [**तव आयुः**] तुझे आयुकर्म [**न ददाति**] नहीं देता [**नु**] तो [**तैः**] उन्होंने [**तव जीवितं**] तेरा जीवन [**कथं कृतं**] कैसे किया ? ॥

टीका—जीवोंका जीवित अपने आयुकर्मके उदयसे ही है । जो आयुके उदयका अभाव हो तो उस जीवितका होना अशक्य है । तथा अपना आयुकर्म दूसरा दूसरेको नहीं देसकता उस आयुकर्मका अपने परिणामोंसे ही उपजना है इसलिये दूसरा दूसरेका जीवन किसी तरह भी नहीं कर सकता । इसकारण मैं परको जिलाता हूं तथा पर मुझे

---

1 इयमपि न, आत्मख्यातावेव ।

जीवितं हि तावज्जीवानां स्वायुःकर्मोदयेनैव, तदभावे तस्य भावयितुमशक्यत्वात् । आयुःकर्म च नान्येनान्यस्य दातुं शक्यं तस्य स्वपरिणामेनैव उपार्ज्यमाणत्वात् । ततो न कथंचनापि अन्योऽन्यस्य जीवितं कुर्यात् । अतो जीवयामि जीव्ये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं ॥ २५१।२५२ ॥

दुःखसुखकरणाध्यवसायस्यापि एषैव गतिः—

जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २५३ ॥

य आत्मना तु मन्यते दुःखितसुखितान् करोमि सत्त्वानिति ।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः ॥ ५३ ॥

परजीवानहं दुःखितान् सुखितांश्च करोमि । परजीवैर्दुःखितः सुखितश्च क्रियेहं, इत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं । स तु यस्यास्ति सोऽज्ञानित्वान्मिथ्यादृष्टिः । यस्य तु नास्ति स ज्ञानित्वात् सम्यग्दृष्टिः ॥ २५३ ॥

तदभावे चाशक्यानुष्ठानेन प्रमादेन अस्य मरण करोमि, अस्य जीवितं करोमि, इति यदा विकल्पो भवति तदा मनसि चिंतयति अस्य शुभाशुभकर्मोदये सति, अहं निमित्तमात्रमेव जातः इति मत्वा मनसि रागद्वेषरूपोऽहंकारो न कर्तव्य इति भावार्थः ॥ २५१।२५२ ॥ अथ दुःखसुखमपि निश्चयेन स्वकर्मोदयवशाद् भवति, इत्युपदिशति;—**जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति** यः कर्ता आत्मनः संबंधित्वेन मन्यते । किं? दुःखितसुखितान् सत्त्वान् करोम्यहं । **सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो** यश्चाहमिति परिणामो निश्चितमज्ञानः स एव बंधकारणं स परिणामो यस्यास्ति स अज्ञानी बहिरात्मा एतस्माद्विपरीतः परमोपेक्षासंयमभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणे भेदज्ञाने स्थितो ज्ञानीति ॥२५३॥

जिलाते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चयकर अज्ञान है ॥ **भावार्थ**—पहले मरणके अध्यवसायमें कहा था वैसा जानना ॥ २५१।२५२ ॥

आगे कहते हैं कि दुःखसुख करनेके अध्यवसायकी भी ऐसी ही रीति है,—**[यः]** जो जीव **[इति मन्यते तु]** ऐसा मानता है कि मैं **[आत्मना]** अपनेकर **[सत्त्वान्]** परजीवोंको **[दुःखितसुखितान्]** दुःखी सुखी **[करोमि]** करता हूं **[स मूढः]** वह जीव मोही है **[अज्ञानी]** अज्ञानी है **[तु]** और **[ज्ञानी]** ज्ञानी **[अतः]** इससे **[विपरीतः]** उलटा मानता है ॥ **टीका**—परजीवोंको मैं दुःखी करता हूं सुखी करता हूं और परजीव मुझे सुखी दुःखी करते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चयकर अज्ञान है । सो जिसके ऐसा अज्ञान है वह अज्ञानीपनेसे मिथ्यादृष्टि है तथा जिसके यह अज्ञान नहीं है वह ज्ञानीपनेसे सम्यग्दृष्टि है ॥ **भावार्थ**—जि-

कथमध्यवसायोऽज्ञानमिति चेत्;—

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कया ते ॥ २५४ ॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंदि जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं ॥ २५५ ॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ॥ २५६ ॥

अथ परस्य सुखदुःख करोमीत्यध्यवसायकः कथमज्ञानी जातः ? इति चेत्,—**कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता** यदि चेत् कर्मोदयनिमित्तं सर्वे सत्त्वा जीवाः सुखितदुःखिता भवंति ? **कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कदा ते** तर्हि शुभाशुभकर्म च न ददासि त्व कथ ते जीवास्त्वया सुखितदुःखिताः कृताः ? न कथमपि । **कम्मणिमित्तं सव्वे दुःखिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता** यदि चेत्कर्मोदयनिमित्त सर्वे जीवा. सुखितदुःखिता भवंति **कम्मं च ण देसि तुमं कह तं सुहिदो कदो तेहिं** तर्हि शुभाशुभकर्म च न ददासि त्व न प्रयच्छसि तेभ्यः कथ त्व सुखीकृतस्तैः ? न कथमपि । **कम्मोदयेण जीवा दुःखिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे** यदि चेत् कर्मोदयेन सर्वे जीवा दुःखितसुखिता भवति **कम्मं च ण देसि तुमं कह तं दुहिदो**

सका ऐसा मानना है कि मैं परजीवको सुखी दुःखी करता हू और मुझे परजीव सुखी दुःखी करते हैं यह मानना अज्ञान है जिसके यह है वह अज्ञानी है तथा जिसके यह नहीं है वह ज्ञानी है सम्यग्दृष्टि है ॥ २५३ ॥

आगे पूछते हैं कि यह अध्यवसाय अज्ञान कैसे है ? उसका उत्तर कहते हैं,—**[सर्वे जीवाः]** सब जीव **[कर्मोदयेन]** अपने कर्मके उदयसे **[दुःखितसुखिताः]** दुःखी सुखी **[भवंति]** होते है **[यदि]** जो ऐसा है तो हे भाई **[त्वं]** तू उन जीवोंको **[कर्म च]** कर्म तो **[न ददासि]** नहीं देता परंतु तूने **[ते]** वे **[दुःखितसुखिताः]** दुःखी सुखी **[कथं कृताः]** कैसे किये ? **[सर्वे जीवाः]** सब जीव **[कर्मोदयेन]** अपने कर्मके उदयसे **[दुःखितसुखिताः]** दुःखी सुखी **[भवंति]** होते है **[यदि]** जो ऐसे हैं तो हे भाई वे जीव **[तव]** तुझको **[कर्म च]** कर्म तो **[न ददति]** नहीं देते **[तैः]** उन्होने **[दुःखितः कथं]** दुःखी तू कैसे **[कृतोसि]** किया **[च]** तथा **[सर्वे जीवाः]** सभी जीव **[कर्मोदयेन]** अपने कर्मके उदयसे **[दुःखितसुखिताः]** दुःखी सुखी **[यदि]** जो **[भवंति]** होते हैं सो हे भाई ऐसा है तो वे जीव **[कर्म च]** कर्मोंको **[तव]** तुझे **[न ददति]**

---

१ तात्पर्यवृत्तौ "कम्मणिमित्त सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवति जदि सत्ता" इति पाठ ।

कर्मोदयेन जीवा दुःखितसुखिता भवंति यदि सर्वे ।
कर्म च न ददासि त्वं दुःखितसुखिताः कथं कृतास्ते ॥ २५४ ॥
कर्मोदयेन जीवा दुःखितसुखिता भवंति यदि सर्वे ।
कर्म च न ददाति तव कृतोसि कथं दुःखितस्तैः ॥ २५५ ॥
कर्मोदयेन जीवा दुःखितसुखिता भवंति यदि सर्वे ।
कर्म च न ददति तव कथं त्वं सुखितः कृतस्तैः ॥ २५६ ॥

सुखदुःखे हि तावज्जीवानां स्वकर्मोदयेनैव तदभावे तयोर्भवितुमशक्यत्वात् । स्वकर्म च नान्येनान्यस्य दातुं शक्यं तस्य स्वपरिणामेनैवोपार्ज्यमाणत्वात् । ततो न कथंचनापि अन्योन्यस्य सुखदुःखे कुर्यात् । अतः सुखितदुःखितान् करोमि, सुखितदुःखितश्च क्रिये चेत्यध्यवसायो ध्रुवमज्ञानं । "सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःख-सौख्यं । अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य कुर्यात् पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यं ॥१६८॥

कदो तेहिं तर्हि शुभाशुभकर्म च न ददासि त्व न प्रयच्छसि तेभ्यः कथ त्वं दुःखीकृतस्तैः ? न कथमपि । किं च तत्त्वज्ञानी जीवस्तावत् 'अन्यस्मै परजीवाय सुखदुःखे ददामि, इति विकल्पं न करोति । यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधेरभावे सति प्रमादेन सुखदुःखं करोमीति विकल्पो भवति तदा मनसि चिंतयति—अस्य जीवस्यातरंगपुण्यपापोदयो जातः अहं पुनर्निमित्तमात्रमेव, इति

दे नहीं सकते तो [**तैः**] उन्होंने [**त्वं सुखितः**] तू सुखी [**कथं कृतः**] कैसे किया ॥ **टीका**—प्रथम तो सुखदुःख जीवोंके अपने कर्मके उदयसे ही होते है इसलिये कर्मके उदयका अभाव होनेसे उन सुखदुःखोंके उदय होनेका असमर्थपना है । तथा अन्यपुरुष अपने कर्मको अन्यको नहीं देसकता वह कर्म अपने २ परिणामोंसे ही उत्पन्न होता है इसकारण एक दूसरेको सुख दुःख किसीतरह भी नहीं देसकता । जिसके ऐसा अध्यवसाय है "कि मै परजीवोंको सुखी दुःखी करता हूं और परजीवोंकर मै सुखीदुःखी किया जाता हूं" यह अध्यवसाय निश्चयसे अज्ञान है ॥ **भावार्थ**—जैसा आशय हो वैसा कार्य न हो ऐसा आशय अज्ञान है सो सब जीव अपने अपने कर्मके उदयकर सुखी दुःखी होते है ऐसा होनेपर जो इसतरह माने कि मैं परको सुखी दुःखी करता हूं और पर मुझे सुखी दुःखी करते है यह मानना निश्चयनयकर अज्ञान है । तथा निमित्तनैमित्तिकभावके आश्रयसे सुखदुःखका करनेवाला कहना वह व्यवहार है सो निश्चयकी दृष्टिमें गौण है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप १६८ वां काव्य कहते है— **सर्वं** इत्यादि । **अर्थ**—इस लोकमें जीवोंके जो मरण जीवित दुःख सुख हैं वे सभी सदाकाल नियमसे अपने अपने कर्मके उदयसे होते हैं । ऐसा होनेपर परपुरुष परके मरण जीवित दुःख सुखको करता है यह मानना है वह अज्ञान है ॥ फिर इसी अर्थको

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य पश्यंति ये मरणजीवितदुःखसौख्यं । कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवंति ॥ १६९ ॥" २५४।२५५।२५६॥

जो मरइ जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥ २५७ ॥
जो ण मरदि ण य दुहिदो सोवि य कम्मोदयेण चेव खलु।
तह्मा ण मरिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥ २५८ ॥

ज्ञात्वा मनसि हर्षविषादपरिणामेन गर्वं न करोति इति । एवं परजीवाना जीवितमरण सुखदुःखं करोमीति व्याख्यानमुख्यतया गाथासप्तकेन द्वितीयस्थलं गत ॥२५४।२५५।२५६॥ अथ परो जन परस्य निश्चयेन जीवितमरणसुखदुःखं करोतीति योसौ मन्यते स बहिरात्मेति प्रतिपादयति,— **जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो** यो म्रियते यश्च दुःखितो भवति स सर्वोऽपि कर्मोदयेन जायते **तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा** तस्मात्कारणात् मया मारितो दुःखीकृतश्चेति तवाभिप्रायोयं न खलु मिथ्या? किंतु मिथ्यैव । **जो ण मरदि ण य दुहिदो सोवि य कम्मोदयेण खलु जीवो**

दृढ करते हुए आगेके कथनकी सूचनिकारूप १६९ वां काव्य कहते हैं—**अज्ञान** इत्यादि । **अर्थ**—ऐसा पूर्वकथित मानना अज्ञान है उसको प्राप्त हुए जो पुरुष परसे परका मरण जीवित दुःख सुख होना देखते हैं मानते हैं वे पुरुष "मैं इन कर्मोंको करता हूं" ऐसे अहंकाररूप रसकर कर्मोंके करनेके इच्छक होते है कर्म करनेकी मारने जिवानेकी सुखी दुःखी करनेकी वांछा करते हैं वे ही नियमसे मिथ्यादृष्टि हैं और अपनेसे ही अपना घात करनेवाले होते हैं ॥ **भावार्थ**—जो परको मारने जिवाने तथा सुखदुःख करनेका अभिप्राय करते है वे मिथ्यादृष्टि हैं । वे अपने स्वरूपसे च्युत हुए रागी द्वेषी मोही होके अपने आप अपना घात करते है इसलिये हिंसक है ॥ २५४।२५५।२५६॥

आगे इसी अर्थको गाथामें कहते हैं;—[**यः म्रियते**] जो मरता है [**च यः दुःखितो जायते**] और जो दुःखी होता है [**सः**] वह [**सर्वः**] सब [**कर्मोदयेन**] कर्मके उदयकर होता है [**तस्मात् तु**] इसलिये [**ते**] तेरा [**मारितः च दुःखितः इति**] "मैं मारा मैं दुःखी किया गया" ऐसा अभिप्राय [**खलु न मिथ्या**] क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है । तथा [**यः न म्रियते**] जो नहीं मरता [**च न दुःखितः**] और न दुःखी होता [**सोपि च**] वह भी [**कर्मोदयेन चैव खलु**] कर्मके उदयकर ही होता है [**तस्मात्**] इसलिये तेरा यह अभिप्राय है [**न मारितः नो दुःखितश्च इति**] "कि मैं मारा नहीं गया और न

---

१ 'सोवि य कम्मोदयेण खलु जीवो' पाठोय तात्पर्यवृत्तौ ।

यो म्रियते यश्च दुःखितो जायते कर्मोदयेन स सर्वः।
तस्मात्तु मारितस्ते दुःखितश्चेति न खलु मिथ्या ॥ २५७ ॥
यो न म्रियते न च दुःखितः सोपि च कर्मोदयेन चैव खलु।
तस्मान्न मारितो नो दुःखितश्चेति न खलु मिथ्या ॥ २५८ ॥

यो हि म्रियते जीवति वा दुःखितो भवति सुखितो भवति च स खलु कर्मोदयेनैव तदभावे तस्य तथा भवितुमशक्यत्वात्। ततः मयायं मारितः, अयं जीवितः, अयं दुःखितः कृतः, अयं सुखितः कृतः इति पश्यन् मिथ्यादृष्टिः। "मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बंधहेतुर्विपर्ययात् स एवाध्यवसायोयमज्ञानात्मास्य दृश्यते ॥ १७० ॥" २५७।२५८ ॥

एसा दु जा मई दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
एसा दे मूढमई सुहासुहं बंधए कम्मं ॥ २५९ ॥

यो न म्रियते यश्च दु.खितो न भवति। कोऽसौ? जीवः खलु स्फुटं स सर्वोऽपि कर्मोदयेनैव **तह्मा ण मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा** तस्मात् कारणात् न मारितो मया न दुःखीकृतश्चेति तवाभिप्रायोयं न खलु मिथ्या? अपि तु मिथ्यैव अनेनापध्यानेन स्वस्थभावाच्च्युतो भूत्वा कर्मैव बध्नातीति भावार्थः ॥ २५७।२५८ ॥ अथ स एव पूर्वसूत्रद्वयोक्तो मिथ्याज्ञानभावो मिथ्यादृष्टेर्बन्धकारणं भवतीति कथयति;—**एसा दु जा मदी दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति** एषा या मतिस्ते तव दुःखितसुखितान् करोम्यहं सत्त्वान् **एसा**

दुःखी किया" ऐसा भी अभिप्राय [**खलु मिथ्या न**] क्या मिथ्या नहीं हैं? मिथ्या ही है ॥ **टीका**—निश्चयकर जो मरता है, जीता है, दुःखी होता है तथा सुखी होता है वह अपने कर्मके उदयकर होता है। उस कर्मके उदयका अभाव होनेसे उस जीवके उसीतरह मरण जीवन सुख दुःख नहीं होसकता। इसलिये "यह मैं मारा गया, यह मैं जिवाया, यह मै दुःखी किया, यह मै सुखी किया" ऐसा मानता हुआ जीव मिथ्यादृष्टि है ॥ **भावार्थ**—कोई किसीका मारा मरता नहीं, जिवाया जीता नहीं, सुखी दुःखी किया सुखी दुःखी होता नहीं इसलिये मारने जिवाने आदिका जो अभिप्राय करता है वह तो मिथ्यादृष्टि ही होता है यह निश्चयका वचन है। यहां व्यवहारनय गौण है। इसका कलशरूप १७० वां श्लोक कहते हैं—**मिथ्यादृष्टेः** इत्यादि। **अर्थ**—मिथ्यादृष्टिका जो यह अध्यवसाय है वह अज्ञानरूप प्रत्यक्ष दीखता है वही अभिप्राय मिथ्या विपर्ययस्वरूप है इसलिये बंधका कारण है ॥ **भावार्थ**—झूठा अभिप्राय ही मिथ्यात्व है वही बंधका कारण है ऐसा जानना ॥ २५७।२५८ ॥

आगे यही अध्यवसाय बंधका कारण है ऐसा गाथामें कहते हैं;—हे आत्मन् [**ते तु**] तेरी [**एषा या इति मतिः**] जो यह बुद्धि है कि मैं [**सत्त्वान्**] जीवोंको

एषा तु या मतिस्ते दुःखितसुखितान् करोमि सत्वानिति ।
एषा ते मूढमतिः शुभाशुभं बध्नाति कर्म ॥ २५९ ॥

परजीवानहं हिनस्मि न हिनस्मि दुःखयामि सुखयामि इति य एवायमज्ञानमयोऽध्यवसायो मिथ्यादृष्टेः स एव स्वयं रागादिरूपत्वात्तस्य शुभाशुभबंधहेतुः ॥ २५९ ॥

अथाध्यवसायं बंधहेतुत्वेनावधारयति;—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६० ॥
मारिमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६१ ॥

दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं सैषा भवदीया मतिः हे मूढमते स्वस्थभावच्युतस्य शुभाशुभ कर्म बध्नाति न किमप्यन्यत्कार्यमस्ति इति ॥ २५९ ॥ अथ निश्चयेन रागाद्यध्यवसानमेव बंधहेतुर्भवति इति प्रतिपादनरूपेण तमेवार्थं दृढयति,—दुःखितसुखितान् सत्त्वान् करोम्यहं कर्ता यदेवमध्यवसितं रागाद्यध्यवसानं ते तव शुद्धात्मभावनाच्युतस्य सतः पापस्य पुण्यस्य षा तदेव बंधकारणं भवति नचान्यत् किमपि दुःखादिकं कर्तुमायाति । कस्मात्[१] इति चेत्, तस्य सुखदुःखपरिणामस्य जीवस्य स्वोपार्जितशुभाशुभकर्माधीनत्वात् इति । मारयामि जीव-

---

[**दुःखितसुखितान्**] सुखी दुःखी [**करोमि**] करता हूं [**एषा ते**] यह तेरी [**मूढमतिः**] मूढबुद्धि मोहस्वरूप बुद्धि ही [**शुभाशुभं कर्म**] शुभअशुभ कर्मोंको [**बध्नाति**] बांधती है ॥ **टीका**—परजीवोंको मैं मारता हूं, दुःखी करता हूं, सुखी करता हूं ऐसा जो यह अज्ञानमय अध्यवसाय है वह मिथ्यादृष्टिके होता है । वही स्वय रागादिरूपपनेसे उसके शुभाशुभ बंधका कारण है ॥ **भावार्थ**—मिथ्या अध्यवसाय बंधका कारण है ॥ २५९ ॥

आगे मिथ्या अध्यवसायको बंधका कारणपना नियमसे कहते हैं,— हे आत्मन् [**ते यदेवं अध्यवसितं**] तेरा जो यह अभिप्राय है कि मैं [**सत्त्वान्**] जीवोंको [**दुःखितसुखितान्**] दुःखी सुखी [**करोमि**] करता हूं [**तत्**] वह ही अभिप्राय [**पापबंधकं वा**] पापका बंधक है [**वा पुण्यस्य बंधकं**] तथा पुण्यका बंधक [**भवति**] है । [**वा**] अथवा मैं [**सत्त्वान्**] जीवोंको [**मारयामि**] मारता हूं [**जीवयामि**] अथवा जिवाता हूं [**यदेवं ते अध्यवसितं**] जो ऐसा तेरा अभिप्राय है [**तत्**] वह भी [**पापबंधकं वा**] पापका बंधक है [**वा पुण्यस्य बंधकं**] अथवा पुण्यका बंधक] **भवति**] है ॥ **टीका**—जिसकी अज्ञानसे उत्पत्ति हुई ऐसा रागमय जो अध्यवसाय वह मिथ्यादृष्टिके बंधका कारण है ऐसा

दुःखितसुखितान् सत्वान् करोमि यदेवमध्यवसितं ते ।
तत्पापबंधकं वा पुण्यस्य च बंधकं वा भवति ॥ २६० ॥

मारयामि जीवयामि च सत्वान् यदेवमध्यवसितं ते ।
तत्पापबंधकं वा पुण्यस्य बंधकं वा भवति ॥ २६१ ॥

य एवायं मिथ्यादृष्टेरज्ञानजन्मा रागमयोध्यवसायः स एव बंधहेतुः, इत्यवधारणीयं न च पुण्यपापत्वेन द्वित्वाद्बंधस्य तद्द्वित्वांतरमन्वेष्टव्यं । एकेनैवानेनाध्यवसायेन दुःखयामि, मारयामि इति, सुखयामि, जीवयामीति च द्विधा शुभाशुभाहंकाररसनिर्भरतया द्वयोरपि पुण्यपापयोर्बंधहेतुत्वस्याविरोधात् ॥ २६०।२६१ ॥

एवं हि हिंसाध्यावसाय एव हिंसेत्यायातं;—

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २६२ ॥

यामि सत्वान् यदेवमध्यवसितं ते तव शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानानुष्ठानशून्यस्य सतः पापस्य पुण्यस्य वा तदेव बंधक भवति न चान्यत् किमपि कर्तुमायाति । कस्मात्? इति चेत्, तस्य परजीवस्य जीवितमरणादेः स्वोपार्जितकर्मोदयाधीनत्वात् इति ॥ २६०।२६१ ॥ अथैवं निश्चयनयेन हिंसाध्यवसाय एव हिंसेत्यायातं विचार्यमाणं;—**अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि** अध्यवसितेन परिणामेन बंधो भवति, सत्वान् मारय मा वा मारय **एसो**

नियम जानना । बंध पुण्यपापके भेदसे दो भेद सहित है सो इसके दोपन होनेसे कारणका भेद नहीं विचारना कि पुण्यबंधका कारण तो अन्य है और पापबंधका कारण कोई दूसरा ही है, एक ही इस अध्यवसायसे "मैं दुःखी करता हूं मारता हूं तथा सुखी करता हूं जिवाता हूं" ऐसे दो भेदोंको अशुभ अहंकाररसकर पूर्ण होनेसे पुण्य पाप दोनोंहीके बंधका कारणपना है अर्थात् एक ही अध्यवसायसे पुण्यपाप दोनोंका बंध होता है ॥ **भावार्थ**—यह अज्ञानमय अध्यवसाय ही बंधका कारण है; उसमें शुभ अध्यवसाय तो जिवाना सुखी करना ऐसा है तथा मारना दुःखी करना यह अशुभ अध्यवसाय है । सो अहंकाररूप मिथ्याभाव दोनोंमें ही है इसलिये ऐसा न जानना कि शुभका कारण तो अन्य है और अशुभका कारण दूसरा ही है । अज्ञानपनेकर दोनों अध्यवसाय एक ही हैं ॥ २६०।२६१ ॥

आगे कहते हैं कि ऐसा होनेपर अर्थात् अध्यवसायको ही बंधका कारण होनेसे जो यह हिंसाका अध्यवसाय है वही हिंसा है यह सिद्ध हुआ;—**[निश्चयनयस्य]** निश्चय नयका यह पक्ष है कि **[सत्त्वान्]** जीवोंको **[मारयतु]** मारो

अध्यवसितेन बंधः सत्त्वान् मारयतु मा वा मारयतु ।
एष बंधसमासो जीवानां निश्चयनयस्य ॥ २६२ ॥

परजीवानां स्वकर्मोदयवैचित्र्यवशेन प्राणव्यपरोपः कदाचिद् भवतु, कदाचिन्मा भवतु। य एव हिनस्मीत्यहंकाररसनिर्भरो हिंसायामध्यवसायः स एव निश्चयतस्तस्य बंधहेतुः, निश्चयेन परभावस्य प्राणव्यपरोपस्य परेण कर्तुमशक्यत्वात् ॥ २६२ ॥

अथाध्यवसायं पापपुण्ययोर्बंधहेतुत्वेन दर्शयति;—

एवमलिये अदत्ते अबंभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पावं ॥ २६३ ॥

बंधसमासो एष प्रत्यक्षीभूतो बधसमास. बधसक्षेपः । तद्विपरीतेन निरुपाधिचिदानदैकलक्षणनिर्विकल्पसमाधिना मोक्षो भवतीति मोक्षसमासः । केषा² **जीवाणं णिच्छयणयस्स** जीवाना निश्चयनयस्येति । एवं जीवितमरणसुखदुःखानि परेषा करोमीत्यध्यवसाय एव बधकारण, प्राणव्यपरोपणादिव्यापारो भवतु मा भवतु । एव सर्वं ज्ञात्वा रागाद्यपध्यान त्यजनीयमिति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्केन तृतीयस्थलं गत ॥ २६२ ॥ अथ हिंसाध्यवसान पूर्वमुक्त तावत् इदानीं पुनः असत्याद्यव्रताध्यवसानैः पापं सत्याद्यध्यवसानैश्च पुण्यबंधो भवतीत्या-

---

[वा मा मारयतु] अथवा मत मारो **[जीवानां]** यह जीवोंके **[बंधः]** कर्मबंध **[अध्यवसितेन** [अध्यवसायकर ही होता है] **एषः बंधसमासः]** यह ही बंधका संक्षेप है ॥ **टीका**—परजीवोंके प्राणोंका वियोग (नाश) है वह अपने कर्मके उदयकी विचित्रतासे है वह कभी होवे अथवा न होवे परंतु "यह मैं मारता हूं" ऐसा अहंकाररससे भरा हुआ हिंसाका अध्यवसाय (अभिप्राय) है वही निश्चयसे उस अभिप्रायवायवाले पुरुषके बंधका कारण है । क्योंकि निश्चयनयकी पक्षमें परका भाव जो प्राणोंका वियोगकरना वह दूसरेकर नहीं किया जासकता ॥ **भावार्थ**—निश्चय नयकर दूसरेके प्राणोंका वियोग करना दूसरेकर नहीं किया जासकता । उसके कर्मके उदयकी विचित्रतासे कदाचित होता है कभी नहीं भी होता । इसलिये जो ऐसा मानता है—अहंकार करता है "कि मै परजीवको मारता हूं" यह अहंकाररूप अध्यवसाय अज्ञानमय है । यही हिंसा है क्योंकि अपने विशुद्ध चैतन्य प्राणका घात है । तथा यही बंधका कारण है यह निश्चयनयका मत है । यहां व्यवहारनयको गौणकर कहा जानना वह कथंचित् जानना, सर्वथा एकांतपक्ष है वह मिथ्यात्व है ॥ २६२ ॥

आगे यह जैसे हिंसाका अध्यवसाय कहा है उसीतरह उसीको अन्य कार्योंमें भी पुण्यपापके बंधका कारणपनेकर प्रत्यक्ष दिखलाते हैं;—**[एवं]** पहले हिंसाका अध्य-

तहवि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झए पुण्णं ॥ २६४ ॥

एवमलीकेऽदत्तेऽब्रह्मचर्ये परिग्रहे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पापं ॥ २६३ ॥
तथापि च सत्ये दत्ते ब्रह्मणि अपरिग्रहत्वे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पुण्यं ॥ २६४ ॥

एवमयमज्ञानात् यो यथा हिंसायां विधीयतेऽध्यवसायः, तथा असत्यादत्ताब्रह्मपरिग्रहेषु यश्च विधीयते स सर्वोऽपि केवल एव पापबंधहेतुः। यस्तु अहिंसायां यथा विधीयते अध्यवसायः, तथा यश्च सत्यदत्तब्रह्मापरिग्रहेषु विधीयते स सर्वोऽपि केवल एव पुण्यबंधहेतुः ॥ २६३।२६४ ॥

ख्याति;—एवमसत्ये चौर्येऽब्रह्मणि परिग्रहे चैव यत्क्रियतेऽध्वसानं तेन पापं बध्यते इति प्रथमगाथा गता। यश्चाचौर्ये सत्ये ब्रह्मचर्ये तथैवापरिग्रहत्वे यत्क्रियतेऽध्यवसानं तेन पुण्यं बध्यते इति व्रताव्रतविषये पुण्यपापबंधरूपेण सूत्रभूतगाथाद्वयं गत ॥ २६३।२६४ ॥ अतः परमि-

---

वसाय कहा था उसीतरह [**अलीके**] असत्य [**अदत्ते**] चोरी आदिसे विना दिये परधनका लेना [**अब्रह्मचर्ये**] स्त्रीका संसर्ग [**परिग्रहे**] धनधान्यादिक इनमें [**यत् अध्यवसानं**] जो अध्यवसान [**क्रियते**] किया जाता है [**तेन तु**] उससे तो [**पापं बध्यते**] पापका बंध होता है [**अपि च**] और [**तथा**] उसीतरह [**सत्ये**] सत्यमें [**दत्ते**] दिया हुआ लेनेमें [**ब्रह्मणि**] ब्रह्मचर्यमें [**च अपरिग्रहत्वे एव**] और अपरिग्रहसे [**यत्**] जो [**अध्यवसानं**] अध्यवसान [**क्रियते**] किया जाता है [**तेन तु**] उससे [**पुण्यं बध्यते**] पुण्यका बंध होता है ॥ **टीका**—पूर्वकथित रीतिसे अज्ञानसे जैसे हिंसामें अध्यवसाय किया जाता है उसीतरह अदत्त अब्रह्म परिग्रह इनमें जो अध्यवसाय किया जाय तो वह सभी केवल एक पापबंधका ही कारण है। तथा जैसे अहिंसामें अध्यवसाय किया जाता है उसीतरह सत्य दत्त ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इनमें भी अध्यवसाय किया जाय वह सभी एक पुण्यबंधका ही कारण है ॥ **भावार्थ**—जैसा हिंसामें अध्यवसाय पापबंधका कारण कहा है उसीतरह असत्य अदत्त अब्रह्म परिग्रह इनमें अध्यवसाय पापबंधका कारण है। तथा जैसे अहिंसामें अवसाय पुण्यबंधका कारण है उसीतरह सत्य दत्त ब्रह्मचर्य अपरिग्रहपना इनमें भी पुण्यबंधका कारण है। इसप्रकार पांच पापोंका अभिप्राय तो पापबंध करता है और पांच व्रतरूप एक देश वा सब देशमें अभिप्राय वह पुण्यबंध करता है ॥ २६३।२६४ ॥

न च बाह्यवस्तु द्वितीयोऽपि बंधहेतुरिति शक्यं वक्तुं;—

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं।
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥ २६५ ॥

वस्तु प्रतीत्य यत्पुनरध्यवसानं तु भवति जीवानां।
न च वस्तुतस्तु बंधोऽध्यवसानेन बंधोस्ति ॥ २६५ ॥

अध्यवसानमेव बंधहेतुर्न तु बाह्यवस्तु तस्य बंधहेतोरध्यवसानस्य हेतुत्वेनैव चरितार्थत्वात्। तर्हि किमर्थो बाह्यवस्तुप्रतिषेधः? अध्यवसानप्रतिषेधार्थः। अध्यवसानस्य हि बाह्यवस्तु, आश्रयभूतं। न हि बाह्यवस्त्वनाश्रित्य अध्यवसानमात्मानं लभते। यदि बाह्यवस्त्वनाश्रित्यापि अध्यवसानं जायेत तदा यथा वीरसूसुतस्याश्रयभूतस्य सद्भावे वीर-

---

दमेव सूत्रद्वयं परिणाममुख्यत्वेन त्रयोदशगाथाभिर्विवृणोति। तद्यथा, बाह्यं वस्तु रागादिपरिणामकारणं परिणामस्तु बधकारणमित्यावेदयति;—**वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं** बाह्यवस्तु चेतनाचेतनं पंचेंद्रियविषयभूतं प्रतीत्य आश्रित्य जीवाना तत्प्रसिद्धं रागाद्यध्यवसानं भवति **ण हि वत्थुदो दु बंधो** न हि वस्तुनः सकाशाद्बधो भवति। तर्हि केन बधः? **अज्झवसाणेण बंधोत्ति** वीतरागपरमात्मतत्त्वभिन्नेन रागाद्यध्यवसानेन बधो भवति। वस्तुनः सकाशाद्बंधो कथ न भवतीति चेत्, अन्वयव्यतिरेकाभ्या

आगे कहते हैं कि जो बाह्य वस्तु है वह बंधका कारण है कि नहीं? कोई समझेगा कि जैसे अध्यवसान बंधका कारण है वैसे अन्य बाह्य वस्तु भी बंधका कारण है सो ऐसा नहीं है, एक अध्यवसाय ही बंधका कारण है,—[**जीवानां तु**] जीवोंके [**यत् पुनरध्यवसानं**] जो अध्यवसान है वह [**वस्तु**] वस्तुको [**प्रतीत्य**] अवलंबन करके [**भवति**] होता है। [**तु वस्तुतः**] तथा वस्तुसे [**बंधः न च**] बंध नहीं है [**अध्यवसानेन**] अध्यवसानकर ही [**बंधः अस्ति**] बंध है॥ **टीका—** अध्यवसान ही बंधका कारण है बाह्य वस्तु बंधका कारण नहीं है। क्योंकि बंधका कारण जो अध्यवसान उसके कारणपनेकर ही बाह्य वस्तुको चरितार्थपना है बाह्य वस्तु तो अध्यवसानका ही कारण है बंधका कारण नहीं है। यहां पूछते हैं कि बाह्य वस्तु बंधका कारण नहीं है तो उसका निषेध किसलिये किया जाता है? कि बाह्यवस्तुका प्रसंग मत करो त्याग करो। उसका समाधान कहते हैं—अध्यवसानके निषेधकेलिये बाह्य वस्तुका त्याग कराया जाता है क्योंकि बाह्य वस्तु अध्यवसानका आश्रयभूत है बाह्य वस्तुके आश्रय विना अध्यवसान अपने स्वरूपको नहीं पाता नहीं उपजता। यदि बाह्य वस्तुका आश्रय न लेकर भी अध्यवसान उत्पन्न हो तो जैसे सुभटकी माताका पुत्र जो सुभट उसका सद्भाव होनेसे उसका आश्रय लेकर किसीके अध्यवसान होता है कि

सूसूनुं हिनस्मीत्यध्यवसायो जायते, तथा वंध्यासुतस्याश्रयभूतस्यासद्भावेऽपि वंध्यासुतं हिनसीत्यध्यवसायो जायेत। नच जायते। ततो निराश्रयं नास्त्यध्यवसानमिति नियमः। तत एव चाध्यवसानाश्रयभूतस्य बाह्यवस्तुनोऽत्यंतप्रतिषेधः, हेतुप्रतिषेधेनैव हेतुमत्प्रतिषेधात्। नच बंधहेतुहेतुत्वे सत्यपि बाह्यं वस्तु बंधहेतुः स्यात् ईर्यासमितिपरिणतयतींद्रपदव्यापाद्यमानवेगापतत्कालचोदितकुलिंगवत् बाह्यवस्तुनो बंधहेतुहेतोरबंधहेतुत्वेन बंधहेतुत्वस्यानैकांतिकत्वात्। अतो न बाह्यवस्तु जीवस्यातद्भावो बंधहेतुः। अध्यवसानमेव तस्य तद्भावो बंधहेतुः॥ २६५॥

व्यभिचारात्। तथाहि—बाह्यवस्तुनि सति नियमेन बंधो भवतीति अन्वयो नास्ति, तदभावे बंधो भवतीति व्यतिरेकोऽपि नास्ति। तर्हि किमर्थं बाह्यवस्तुत्यागः? इति चेत्, रागाद्यध्यवसानानां परिहारार्थं। अयमत्र भावार्थः। बाह्यपंचेंद्रियविषयभूते वस्तुनि सति अज्ञानभावात् रागाद्यध्यवसानं भवति तस्मादध्यवसानाद्बंधो भवतीति पारंपर्येण वस्तु बंधकारणं भवति न च साक्षात्। अध्यवसानं पुनर्निश्चयेन बंधकारणमिति॥ २६५॥ एवं बंधहेतुत्वेन निर्धारित-

---

सुभटकी माताके पुत्रको मैं मारता हूं उसीतरह वांझके पुत्रका सद्भाव न होनेपर भी भी उसके आश्रय भी "मैं वंध्यासुतको मारता हूं" ऐसा अध्यवसान होना चाहिये सो तो नहीं होता। ऐसे विना आश्रय अध्यवसान नहीं उपजता। जब वंध्याका पुत्र ही नहीं है तो मारनेका अध्यवसान कैसे होसकता है? इसलिये यह नियम है कि बाह्य वस्तुके विना निराश्रय अध्यवसान नहीं उत्पन्न होता इसीकारण अध्यवसानका आश्रयभूत जो बाह्यवस्तु उसका अत्यंत निषेध है इसलिये कारणके प्रतिषेधसे ही कार्यका भी प्रतिषेध होता है यह न्याय है। बाह्यवस्तु अध्यवसानका हेतु है इसकारण उसके निषेधसे अध्यवसानका निषेध होता है परंतु बाह्यवस्तुके बंधका हेतु अध्यवसानको हेतुपना होनेपर बाह्यवस्तु बंधका हेतु नहीं है इसमें व्यभिचार है। क्योंकि जैसे कोई मुनींद्र ईर्यासमितिरूप प्रवर्त रहा है उसके चरणसे हना गया जो कालका प्रेरा अतिवेगसे शीघ्र आकर पड़ा कोई उड़ता हुआ जीव उसके मर जानेसे मुनीश्वरको हिंसा नहीं लगती, उसीतरह अन्य वस्तु भी बंधके कारण माने गये हैं वे अबंधके भी कारण हैं। इसलिये बाह्य वस्तुको बंधका कारणपना माननेमें अनैकांतिक हेत्वाभासपना (व्यभिचार) आता है क्योंकि निश्चयसे बाह्य वस्तुमें बंधका कारणपना निर्दोष सिद्ध नहीं होता। जीवके बाह्यवस्तु अतद्भावरूप है वह बंधका कारण नहीं है तद्भावस्वरूप अध्यवसान ही बंधका कारण है॥ **भावार्थ—**बंधका कारण निश्चयनयकर अध्यवसान ही है और बाह्यवस्तुएं अध्यवसानका आलंवन (सहायक) हैं उनकी सहायतासे अध्यवसान उत्पन्न होता है इसलिये अध्यवसानका कारण कही जातीं है। विना बाह्य वस्तु निराश्रय अध्यवसान

एवंविधहेतुत्वेन निर्धारितस्याध्यवसानस्य स्वार्थक्रियाकारित्वाभावेन मिथ्यात्वं दर्शयति;—

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढमई णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥ २६६ ॥

दुःखितसुखितान् जीवान् करोमि बन्धयामि तथा विमोचयामि ।
या एषा मूढमतिः निरर्थिका सा खलु ते मिथ्या ॥ २६६ ॥

परान् जीवान् दुःखयामि सुखयामीत्यादि बंधयामि वा यदेतदध्यवसानं तत्सर्वमपि परभावस्य परस्मिन्नव्याप्रियमाणत्वेन स्वार्थक्रियाकारित्वाभावात् खकुसुमं लुनामीत्यध्यवसानवन्मिथ्यारूपं केवलमात्मनोऽनर्थायैव ॥ २६६ ॥

स्याध्यवसानस्य स्वार्थक्रियाकारित्वाभावेन मिथ्यात्वमसत्यत्व दर्शयति;—**दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधामि तह विमोचेमि** दुःखितसुखितान् जीवान् करोमि, बध्नामि, तथा विमोचयामि **जा एसा तुज्झ मदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा** या एषा तव मतिः सा निरर्थिका निष्प्रयोजना हु स्फुटं । दे अहो ततः कारणात् मिथ्या वितथा व्यलीका भवति । कस्मात्[?] इति चेत्, भवदीयाध्यवसाने सत्यपि परजीवाना सातासातोदयाभावात् सुखदुःखाभावः स्वकीयाशुद्धशुद्धाध्यवसानाभावात् बधो मोक्षाभावश्चेति ॥ २६६ ॥

नहीं उपजता । इसीसे बाह्य वस्तुका त्याग कराया गया है । यदि बंधका कारण बाह्य वस्तु ही कहो तो इसमें व्यभिचार आता है ॥ व्यभिचार उसे कहते हैं कि कारण किसी जगह दीखे किसी जगह नहीं दीखे । उसका दृष्टांत ऐसे है जैसे कोई मुनि ईर्यासमितिसे यत्नकर गमन करता था उस समय उसके पैरोंके नीचे कोई उडता जीव आपडा फिर मरगया तो उसकी हिंसा मुनीश्वरको नहीं लगती । सो यहां बाह्यदृष्टिकर देखाजाय तो हिंसा हुई परन्तु मुनिके हिंसाका अध्यवसान नहीं है इसलिये बंधका कारण नहीं है । उसीतरह अन्य भी बाह्यवस्तु जानना । बाह्यवस्तुके विना निराश्रय अध्यवसाय नहीं होता इसलिये उसका निषेध ही है ॥ २६५ ॥

आगे कहते हैं कि इसप्रकार बंधके कारणपनेसे निश्चय किया जो अध्यवसान उसके अपनी अर्थक्रियाका करनेवालापना नहीं है इसलिये उसके मिथ्यापन है । जिसके अर्थक्रियाकारीपन नहीं है वही मिथ्या है जो करना चाहिये वह नहीं होता इसलिये ऐसी चाह करना झूठ है ऐसा दिखलाते हैं,—हे भाई [**ते या एषा मूढमतिः**] तेरी जो ऐसी मूढबुद्धि है कि मैं [**जीवान्**] जीवोंको [**दुःखितसुखितान्**] दुःखी सुखी [**करोमि**] करता हूं [**बंधयामि**] बंधाता हूं [**तथा**] और [**विमोचयामि**] छुड़ाता हूं [**सा**] वह मोहस्वरूप बुद्धि [**निरर्थिका**] निरर्थक है

कुतो नाध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि? इति चेत्;—

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुचंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करोसि तुमं॥ २६७॥

अध्यवसाननिमित्तं जीवा वध्यंते कर्मणा यदि हि।
मुच्यंते मोक्षमार्गे स्थिताश्च तत् किंकरोषि त्वं॥ २६७॥

यत्किल बंधयामि मोचयामीत्यध्यवसानं तस्य हि स्वार्थक्रिया यद्बंधनं मोचनं जीवानां। जीवस्तु अस्याध्यवसायस्य सद्भावेऽपि सरागवीतरागयोः स्वपरिणामयोः अभावान्न वध्यते न मुच्यते। सरागवीतरागयोः स्वपरिणामयोः सद्भावात्तस्याध्यवसायस्याभा-

---

अथ कस्मादध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि न भवतीति चेत्;—**अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि** मिथ्यात्वरागादिस्वकीयाध्यवसाननिमित्तं कृत्वा ते जीवा निश्चयेन कर्मणा वध्यन्ते इति चेत् **मुचंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते** शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे स्थिताः पुनर्मुच्यते यदि चेत्ते जीवाः **किं करोसि तुमं** तर्हि किं करोषि त्वं हे दुरात्मन् न किमपीति, त्वदीयाध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि न भवति॥ अथ दुःखिता जीवाः स्वकीयपापोदयेन भवंति न च भवदीयपरिणामेनेति;—**कायेण** इत्यादि स्वकीयपापोदयेन जीवा दुःखिता भवंति यदि चेत्? तेषां जीवाना स्वकीयपापकर्मोदयभावे भवतो किमपि कर्तुं नायाति इति हेतोः मनोवचनकायैः शस्त्रैश्च जीवान् दुःखितान् करोमि इति रे दुरात्मन् त्वदीया मतिर्मिथ्या। परं किं तु स्वस्वभावच्युतो भूत्वा त्वं पापमेव बध्नासि इति। अथ सुखिता अपि निश्चयेन स्वकीयशुभकर्मोदये

जिसका विषय सत्यार्थ नहीं है इसलिये [**खलु**] निश्चयकर [**मिथ्या**] मिथ्या है॥ **टीका**—परजीवोंको दुःखी करता हूं सुखी करता हूं इत्यादि तथा बंधाता हूं छुड़ाता हूं इत्यादि जो यह अध्यवसान है वह सभी मिथ्या है क्योंकि परभावका परमें व्यापार न होनेसे स्वार्थक्रियाकारीपन नहीं है परभाव परमें प्रवेश नहीं करता। जैसे कोई कहे कि मैं आकाशके फूलको तोड़ता हूं ऐसा अध्यवसानकरे वह झूठा है उसीतरह मिथ्यास्वरूप केवल अपने अनर्थकेलिये ही होता है परका कुछ भी करनेवाला नहीं है॥ **भावार्थ**—जिसका विषय नहीं है वह निरर्थक होता है सो परको दुःखी सुखी आदि करनेकी बुद्धि करे सो पर इसका किया दुःखी सुखी होता नहीं है तव बुद्धि निरर्थक हुई यह बुद्धि मिथ्या है॥ २६६॥

आगे फिर पूछते हैं कि यह अध्यवसान अपनी अर्थक्रियाका करनेवाला किसतरह नहीं है? उसका उत्तर कहते हैं;—हे भाई [**यदि हि**] जो [**जीवाः**] जीव [**अध्यवसाननिमित्तं**] अध्यवसानके निमित्तसे [**कर्मणा**] कर्मसे [**वध्यंते**]

वेऽपि वध्यते मुच्यते च, यतः परत्राकिंचित्करत्वान्नेदमध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि ततश्च मिथ्यैवेति भावः । "अनेनाध्यवसानेन निष्फलेन विमोहितः । तत्किंचनापि नैवास्ति नात्मात्मानं करोति यत् ॥ १७१ ॥"२६७ ॥

सति भवतीति कथयति—

कायेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥
वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥
मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥
सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥
कायेण च वाया वा मणेण सुहिदे करेमि सत्तेति ।
एवंपि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥

कायेन दुःखयामि सत्त्वान् एव तु यन्मतिं करोषि । सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्त्वाः ॥ वाचा दुःखयामि सत्त्वान् एवं तु यन्मतिं करोषि । सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्त्वाः ॥ मनसा दुःखयामि सत्त्वान् एव तु यन्मतिं करोपि । सर्वापि एपा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्त्वा. ॥ शस्त्रेण दुःखयामि सत्त्वान् एवं तु यन्मतिं क-

---

वंधते हैं [च] और [मोक्षमार्गे] मोक्षमार्गमें [स्थिताः] तिष्ठेहुए [मुच्यंते] कर्मकर छूटते हैं ऐसा जब है [तत्] तो [त्वं किं करोषि] तू क्या करेगा ? तेरा तो वांधने छोड़नेका अभिप्राय विफल हुआ ॥ **टीका**—हे भाई तेरी यह बुद्धि है कि मैं प्रगटपने वंधाता हूं छुड़ाता हूं ऐसा अध्यवसान है उसकी अर्थक्रिया जीवोंका वाधना छोड़ना है । सो जीव तो इस अध्यवसायके मौजूद होनेपर भी अपने सरागवीतरागपरिणामके अभावसे न वंधते हैं न छूटते हैं । और अपने सरागवीतरागपरिणामके सद्भावसे तेरे अध्यवसायका अभाव होनेपर भी वंधते है तथा छूटते हैं, इसलिये परमें तो यह अकिंचित्कर है कुछ भी करनेवाला नहीं है । इसकारण यह अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारी नहीं है इसलिये मिथ्या ही है ऐसा भाव है ॥ **भावार्थ**—जो हेतु कुछ भी न करे उसे अकिंचित्कर कहते है सो यह वाधने छोडनेका अध्यवसान है उसने परमें कुछ भी नहीं किया । क्योंकि इसके न होनेपर जीव अपने सराग वीतराग परिणामकर

---

१ इत आरभ्य गाथापचक नोपलब्धमात्मख्यातौ ततो नास्त्यस्य गाथापंचकस्यात्मख्याति ॥

सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरयिए ।
देवमणुये य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥ २६८ ॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोयलोयं च ।
सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥ २६९ ॥

रोषि । सर्वापि एषा मिथ्या दुःखिताः कर्मणा यदि सत्त्वाः ॥ कायेन च वाचा वा मनसा सुखितान् करोमि सत्त्वानिति । एवमपि भवति मिथ्या सुखिनः कर्मणा यदि सत्त्वाः ॥ स्वकीयकर्मोदयेन जीवा यदि चेत् सुखिता भवंति । न च त्वदीयपरिणामेन तर्हि मनोवचनकायैर्जीवान् सुखितानहं करोमि इति भवदीया मतिर्मिथ्या । एवं तवाध्यवसानं स्वार्थकं न भवति । परं किं तु निरुपरागपरमचिज्ज्योतिःस्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वमश्रद्दधानः, तथैवाजानन् अभावयंश्च तेन शुभपरिणामेन पुण्यमेव बध्नाति इत्यर्थः ॥ २६७ ॥ अथ स्वस्थभावप्रतिपक्षभूतेन च रागाद्यध्यवसानेन मोहितः सन्नयं जीवः समस्तमपि परद्रव्यमात्मनि नियोजयति इत्युपदिशति;—उदयागतनरकगत्यादिकर्मवशेन नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवपापपुण्यरूपान् कर्मजनितभावान् आत्मानं करोति आत्मनः संबंधात्करोति । निर्विकारपरमात्मतत्त्वज्ञानाद् भ्रष्टः सन् नारकोऽहमित्यादिरूपेण, उदयागतकर्मजनितविभावपरिणामान् आत्मनि योजयतीत्यर्थः । धर्माधर्मास्तिकायजीवाजीवलोकालोकज्ञेयपदार्थान् अध्यवसानेन तत्परि-

---

ही बंधमोक्षको प्राप्त होता है और इसके होनेपर भी जीव अपने सरागवीतरागपरिणामके अभाव होनेसे बंधमोक्षको नहीं प्राप्त होता । इसलिये अध्यवसान परमें अकिंचित्कर है इसकारण स्वार्थक्रियाकारी नहीं मिथ्या है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप तथा आगेके कथनकी सूचनिकारूप १७१ वां श्लोक कहते हैं—**अनेना** इत्यादि । **अर्थ**—आत्मा इस निष्फल (निरर्थक) अध्यवसायसे मोहाहुआ अपनेको अनेकरूप करता है सो ऐसा पदार्थ कोई जगतमें नहीं है जिसरूप अपनेको नहीं करे सभीरूप करती है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा मिथ्या अभिप्रायकर भूलाहुआ चतुर्गतिसंसारमें जितनी अवस्थायें हैं जितने पदार्थ हैं उन सब स्वरूप आपको हुआ मानता है । अपने शुद्धस्वरूपको नहीं पहिचानता ॥ २६७ ॥

आगे इस अर्थको प्रगटरूप गाथामें कहते हैं;—**[जीवः]** जीव **[अध्यवसानेन]** अध्यवसानकर अपने **[तिर्यग्नैरयिकान् सर्वान्]** सब तिर्यंच नारक **[च देवमनुजान्]** देव मनुष्य **[सर्वान्]** सभी पर्यायोंको **[करोति]** करता है **[च]** और **[नैकविधं पुण्यं पापं]** अनेक प्रकारके पुण्यपापोंको अपने करता है **[तथा च]** तथा **[धर्माधर्मं]** धर्म अधर्म **[जीवाजीवौ]** जीव अजीव **[च]**

सर्वान् करोति जीवोऽध्यवसानेन तिर्यङ्नैरयिकान् ।
देवमनुजांश्च सर्वान् पुण्यं पापं च नैकविधं ॥ २६८ ॥
धर्माधर्मं च तथा जीवाजीवौ अलोकलोकं च ।
सर्वान् करोति जीवः अध्यवसानेन आत्मानं ॥ २६९ ॥

यथायमेव क्रियागर्भहिंसाध्यवसानेन हिंसकं, इतराध्यवसानैरितरं च आत्मात्मानं कुर्यात्, तथा विपच्यमाननारकाध्यवसानेन नारकं, विपच्यमानतिर्यगध्यवसानेन तिर्यंचं, विपच्यमानमनुष्याध्यवसानेन मनुष्यं, विपच्यमानदेवाध्यवसानेन देव, विपच्यमानसुखादिपुण्याध्यवसानेन पुण्यं, विपच्यमानदुःखादिपापाध्यवसानेन पापमात्मानं कुर्यात् । तथैव च ज्ञायमानधर्माध्यवसानेन धर्मं, ज्ञायमानालोकाकाशाध्यवसायेनालोकाकाशमात्मानं कुर्यात् । "विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावादात्मानमात्मा विदधाति विश्वं । मोहैककंदोध्यवसाय एष नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥ १७२ ॥"२६८।२६९ ॥

च्छित्तिविकल्पेनात्मानं करोति, आत्मनः संबंधात् करोतीत्यभिप्रायः । किं च, यथा घटाकारपरिणतं ज्ञानं घट इत्युपचारेणोच्यते तथा धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थविषये धर्मोऽयमित्यादि योऽसौ परिच्छित्तिरूपो विकल्पः सोप्युपचारेण धर्मास्तिकायादिर्भण्यते । कथं? इति चेत्, धर्मास्तिकायादिविषयत्वात् । स्वस्थभावच्युतो भूत्वा यदा धर्मास्तिकायोयमित्यादिविकल्पं करोति तदा तस्मिन् विकल्पे कृते सति धर्मास्तिकायादिरप्युपचारेण कृतो भवति इति ॥२६८।२६९॥

और [**अलोकलोकं**] लोक अलोक [**सर्वान्**] इन सभीको [**जीवः**] जीव [**अध्यवसानेन**] अध्यवसानकर [**आत्मानं**] आत्मस्वरूप [**करोति**] करता है ॥ **टीका**—जैसे यह आत्मा पूर्वोक्त क्रियावाले हिंसाके अध्यवसानकर अपनेको हिंसक करता है और अहिंसाके अध्यवसानकर अहिंसक करता है तथा अन्य अध्यवसानकर अन्य बहुत प्रकार करता है । उसीतरह उदयमें आया जो नारकका अध्यवसान उसकर अपनेको नारकी करता है, उदयमें आया जो तिर्यंचका अध्यवसान उसकर अपनेको तिर्यंच करता है, उदयमें आया जो मनुष्यका अध्यवसाय उसकर अपनेको मनुष्य करता है, उदयमें आया जो देवका अध्यवसान उसकर अपनेको देव करता है, उदय आया जो सुख आदि पुण्यका अध्यवसान उसकर पुण्यरूप अपनेको करता है, उदय आया जो दुःखआदि पापका अध्यवसान उसकर अपनेको पापरूप करता है । उसीतरह जाननेमें आया जो धर्म उसके अध्यवसानकर अपनेको धर्मरूप करता है, जानेहुए अधर्मके अध्यवसानकर अपनेको अधर्मरूप करता है, जानेहुए अन्य जीवके अध्यवसानकर अपनेको अन्य जीवरूप करता है, जानेहुए पुद्गलके अध्यवसानकर अपनेको पुद्गलरूप करता है, जानेहुए लोकाकाशके अध्यवसानकर

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥ २७० ॥

एतानि न संति येषामध्यवसानान्येवमादीनि ।
तेऽशुभेन शुभेन वा कर्मणा मुनयो न लिप्यंति ॥ २७० ॥

एतानि किल यानि त्रिविधा[1]न्यध्यवसानानि समस्तान्यपि शुभाशुभकर्मबंधनिमित्तानि स्वयमज्ञानादिरूपत्वात् । तथाहि, यदिदं हिनस्मीत्याद्यध्यवसानं तत्त्वज्ञानमयत्वेन आ-

---

अथ निश्चयेन परद्रव्याद्भिन्नोऽपि यस्य मोहस्य प्रभावात् आत्मानं परद्रव्ये योजयति स मोहो येषां नास्ति त एव तपोधना इति प्रकाशयति;—**एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि** एतान्येवमादीनि पूर्वोक्तानि शुभाशुभाध्यवसानानि कर्मबंधनिमित्तभूतानि न सति येषां ते **असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पंति** त एव मुनीश्वराः शुभाशुभकर्मणा न लिप्यंते । किं च विस्तरः, शुद्धात्मसम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयलक्षणं भेदविज्ञानं यदा न भवति तदाहं जीवान् हिनस्मीत्यादि हिंसाध्यवसानं ना-

---

अपनेको लोकाकाशरूप करता है, जानेहुए अलोकाकाशके अध्यवसानकर अपनेको अलोकाकाशरूप करता है । इसतरह अध्यवसानकर अपनेको सब स्वरूप करता है ॥ **भावार्थ**—यह अध्यवसान अज्ञानरूप है इसलिये अपना परमार्थरूप नहीं जानना । आत्मा आपको अनेक अवस्थारूप करता है उनमें आपा मान प्रवर्तता है । अब इस अर्थका कलशरूप १७२ वां काव्य कहते हैं तथा अगले कथनकी सूचना करते हैं— **विश्वात्** इत्यादि । **अर्थ**—यह आत्मा सब द्रव्योंसे भिन्न है तौभी जिस अध्यवसायके प्रभावसे अपनेको समस्तस्वरूप करता है वह अध्यवसाय कैसा है ? कि जिसका मूल मोह है । ऐसा अध्यवसाय जिनके नहीं है वे मुनि हैं ॥ २६८।२६९ ॥

आगे कहते हैं कि यह अध्यवसाय जिनके नहीं है वे मुनि कर्मसे नहीं लिप्त होते;— **[एतानि]** ये पूर्वोक्त अध्यवसाय तथा **[एवमादीनि]** इसतरहके अन्य भी **[अध्यवसानानि]** अध्यवसान **[येषां]** जिनके **[न संति]** नहीं हैं **[ते मुनयः]** वे मुनिराज **[अशुभेन]** अशुभ **[वा]** अथवा **[शुभेन कर्मणा]** शुभकर्मसे **[न लिप्यंते]** नहीं लिप्त होते ॥ **टीका**—ये पूर्वोक्त अध्यवसान तीन प्रकारके हैं अज्ञान अदर्शन अचरित्र । ये सभी शुभ अशुभ कर्मबंधके निमित्त हैं क्योंकि ये आप (स्वयं) अज्ञानादिरूप है । किसतरह है सो कहते हैं—जो यह मैं परजीवको मारता हूं इत्यादिक अध्यवसाय है वह अज्ञानादिरूप है क्योंकि आत्मा तो ज्ञायक है उस ज्ञायकपनेसे ज्ञप्तिक्रियामात्र ही है इसलिये सद्रूप द्रव्यदृष्टिसे किसीसे उत्पन्न नहीं ऐसा नित्यरूप जाननेमात्र ही क्रियावाला है । हनना घातना आदि क्रिया हैं वे रागद्वे-

---

१ अज्ञानादर्शनाचारित्रसंज्ञकानि ।

त्मनः सदहेतुकज्ञप्त्यैकक्रियस्य रागद्वेषविपाकमयीनां हननादिक्रियाणा च विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माऽज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्माऽदर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शनं, विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रं । यत्पुनरेष धर्मो ज्ञायत इत्याद्यध्यवसानं तदप्यज्ञानमयत्वेनात्मनः सदहेतुकज्ञानैकरूपस्य ज्ञेयमयानां धर्मादिरूपाणां च विशेषाज्ञानेन विविक्तात्माज्ञानादस्ति तावदज्ञानं विविक्तात्मादर्शनादस्ति च मिथ्यादर्शन विविक्तात्मानाचरणादस्ति चाचारित्रं । ततो बंधनिमित्तान्येवैतानि समस्तान्यध्यवसानानि । येषामेवैतानि न विद्यंते त एव मुनिकुंजराः केचन सदहेतुकज्ञप्त्यैकक्रियं सदहेतुकज्ञायकैकभावं सदहेतुकज्ञानैकरूप च विविक्तात्मानं जानंतः सम्यक्पश्यंतोऽनुचरंतश्च स्वच्छस्वच्छंदोद्यदमंदांतर्ज्योतिषोऽत्यंतमज्ञानादिरूपत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा कर्मणा खलु न लिप्येरन् ॥ २७० ॥

रकोहमित्यादि कर्मोदयाध्यवसान, धर्मास्तिकायोयमित्यादि ज्ञेयपदार्थाध्यवसानं च निर्विकल्पशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नं जानातीति । तदा जानन् हिंसाध्यवसानविकल्पेन सहात्मानमभेदेन श्रद्दधाति जानाति अनुचरति च, ततो मिथ्यादृष्टिर्भवति मिथ्याज्ञानी भवति मिथ्याचारित्री भवति । ततः कर्मबंधो भवतीति भावार्थः ॥ २७० ॥ कियंतं कालं परभावानात्मनि योजयतीति चेत्,—

पके उदयमयी है । इसतरह आत्मा और घातने आदि क्रियाके भेदको न जाननेसे भिन्न आत्माको नहीं जाना इसलिये मैं परजीवको घातता हूं ऐसा अध्यवसान अज्ञान है । इसीप्रकार भिन्न (न्यारा) आत्माका न देखना अर्थात् श्रद्धान न होनेसे अध्यवसान मिथ्यादर्शन है । इसीतरह भिन्न आत्माके अनाचरणसे अचारित्र है । यह धर्मद्रव्य मुझसे जाना जाता है ऐसा अध्यवसाय भी अज्ञानादिरूप ही है क्योंकि आत्मा तो ज्ञानमयपनेसे ज्ञानमात्र ही है क्योंकि सद्रूप द्रव्यदृष्टिकर अहेतुक (जिसका कोई कारण नहीं ऐसा) ज्ञानमात्र ही एकरूपवाला है । धर्मादिकरूप हैं वे ज्ञेयमय है । ऐसे ज्ञानज्ञेयका विशेष न जाननेसे भिन्न आत्माके अज्ञानसे मैं धर्मको जानता हूं ऐसा भी अज्ञानरूप अध्यवसान है । भिन्न आत्माके न देखनेसे श्रद्धान न होनेकर यह अध्यवसान मिथ्यादर्शन है, और भिन्न आत्माके अनाचरणसे यह अध्यवसान अचारित्र है इसलिये ये सभी अध्यवसान बंधके निमित्त हैं । जिनके ये अध्यवसान विद्यमान नहीं हैं वे ही मुनियोंमें प्रधान हैं उन्हींको मुनिकुंजर कहते हैं ऐसे कोई २ विरले है । वे कैसे हैं ? सब अन्यद्रव्यभावोंसे भिन्न आत्मा सत्तारूप द्रव्यदृष्टिकर किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ इसलिये अहेतुक एक ज्ञायकभावस्वरूप और सत्ता अहेतुक एक ज्ञानरूप ऐसे आत्माको जानते हैं, उसीको सम्यक् (भलेप्रकार) देखते (श्रद्धान करते) हैं और उसीको आचरते हैं । फिर वे मुनि निर्मल स्वच्छंद स्वाधीन प्रवृत्तिरूप उदयको प्राप्त अमंदप्रकाशरूप अंतरग ज्योतिःस्वरूप हैं । इसीकारण अज्ञान आदिके अत्यंत अभावसे शुभ तथा अशुभ कर्मसे

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं ।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥ २७१ ॥

बुद्धिर्व्यवसायोऽपि च अध्यवसानं मतिश्च विज्ञानं ।
एकार्थमेव सर्व चित्तं भावश्च परिणामः ॥ २७१ ॥

जा संकप्पवियप्पो ता कम्मं कुणदि असुहसुहजणयं ।
अप्पसरूवा रिद्धी जाव ण हियए परिप्फुरइ ॥

यावत्संकल्पविकल्पौ तावत्कर्म करोत्यशुभशुभजनकं । आत्मस्वरूपा ऋद्धिः यावत् न हृदये परिस्फुरति ॥ यावत्कालं बहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादौ ममेतिरूपं सकल्पं करोति अभ्यंतरे हर्षविषादरूपं विकल्पं च करोति तावत्कालमनंतज्ञानादिसमृद्धिरूपमात्मानं हृदये न जानाति । यावत्कालमित्थंभूत आत्मा हृदये न परिस्फुरति, तावत्कालं शुभाशुभजनक कर्म करोतीत्यर्थः । अथाध्यवसानस्य नाममालामाह;—बोधनं बुद्धिः, व्यवसान व्यवसायः, अध्यवसानमध्यवसायः, मननं पर्यालोचनं मतिश्च, विज्ञायते अनेनेति विज्ञानं, चिंतनं चित्तं, भवनं भावः, परिणमनं परिणामः, इति शब्दभेदेऽपि नार्थभेदः–किं तु सर्वेऽपि समभिरूढनयापेक्षयाऽध्यवसानार्थ एव ।

वे नहीं लिप्त होते ॥ **भावार्थ**—यह अध्यवसान है कि मैं परको मारता हूं तथा मैं परद्रव्यको जानता हूं ऐसा जवतक आत्माके रागादिकके तथा आत्माके ज्ञेयरूप अन्यद्रव्यके भेद न जाने तबतक वह अध्यवसान प्रवर्तता है । वह भेदज्ञानके विना मिथ्याज्ञानरूप है, मिथ्यादर्शनरूप है तथा मिथ्याचारित्ररूप है । ऐसे तीनप्रकार प्रवर्तता है । जिनके यह नहीं है वे मुनिकुंजर है, वे ही आत्माको सम्यक् जानते है सम्यक् श्रद्धान करते हैं सम्यक् आचरते हैं । इसलिये अज्ञानके अभावसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप हुए कर्मोंसे लिप्त नहीं होते ॥ २७० ॥

आगे पूछते हैं कि अध्यवसान कईवार कहते आरहे हैं वह अध्यवसान क्या है ? इसका स्वरूप अच्छीतरह समझनेमें नहीं आया, ऐसा पूछनेपर अध्यवसानका स्वरूप प्रगटकर दिखलाते हैं;—[**बुद्धिः**] बुद्धि [**व्यवसायः**] व्यवसाय [**अपि च**] और [**अध्यवसानं**] अध्यवसान [**च**] और [**मतिः**] मति [**विज्ञानं**] विज्ञान [**चित्तं**] चित्त [**भावः**] भाव [**च**] और [**परिणामः**] परिणाम [**सर्वं**] ये सव [**एकार्थमेव**] एकार्थ ही हैं नामभेद है इनका अर्थ जुदा नहीं है ॥ **टीका**—अपना और परका दोनोंका भेदज्ञान न होनेसे जो जीवकी निश्चिति होना वह अध्यवसान है । वही वोधनमात्रपनसे बुद्धि है, वही निश्चयमात्रपनसे व्यवसाय है, वही

---

१ नेयमात्मख्यातौ गाथा नात आत्मख्यातिव्याख्यैतस्याः ॥

स्वपरयोरविवेके सति जीवस्याध्यवसितिमात्रमध्यवसानं। तदेव च बोधनमात्रत्वाद्-बुद्धिः। व्यवसानमात्रत्वात् व्यवसायः। मननमात्रत्वान्मतिज्ञानं। चेतनामात्रत्वाच्चित्तं। चितो भवनमात्रत्वाद् भावः। चितः परिणमनमात्रत्वात् परिणामः। "सर्वत्राध्यवसान-मेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोप्यन्याश्रयस्त्याजितः। स-म्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नंति संतो धृतिं॥ १७३॥" २७१॥

कथं[1] इति चेत्, यथेंद्रः शक्रः पुरंदर इति। एव व्रतैः पुण्यं अव्रतैः पापमिति कथनेन सूत्रद्वयं पूर्वमेव व्याख्यात तस्यैव सूत्रस्य विशेषविवरणार्थं बाह्य वस्तु रागाद्यध्यवसानकारणं रागाद्यध्य-वसान तु बधकारणमिति कथनमुख्यत्वेन त्रयोदश गाथा गताः, इति समुदायेन पचदशसू-त्रैश्चतुर्थस्थलं समाप्तं॥ २७१॥ अतः परमभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपेण निश्चयनयेन

जाननेमात्रपनसे मति है, वही विज्ञप्ति मात्रपनसे विज्ञान है, वही चेतनमात्रपनसे चित्त है, वही चेतनके भवनमात्रपनसे भाव है और वही परिणमनमात्रपनसे परि-णाम है। ये सब ही एकार्थ है। **भावार्थ**—ये बुद्धि आदि आठ नाम कहे है वे सभी चेतन आत्माके परिणाम हैं सो जबतक आप परका भेदज्ञान न हो तबतक परमे और अपनेमे एकपनेके निश्चयरूप बुद्धि आदिक होते है वेही अध्यवसान नामसे कहे जाते हैं। आगे अगले कथनकी सूचनिकाके अर्थरूप १७३ वा काव्य कहते हैं—जो अध्यवसान त्यागने योग्य कहा है वहां ऐसी संभावना है कि व्यवहारका त्याग कराया है निश्चयका ग्रहण कराया है ऐसा कहते हैं—**सर्वत्रा** इत्यादि। **अर्थ**—सभी वस्तु-ओंमे सब अध्यवसान है वह जिन भगवानने त्यागने योग्य कहा है सो आचार्य कहते हैं कि हम ऐसा मानते है कि परके आश्रयसे प्रवर्तनेवाला सभी व्यवहार छुडाया है। इसलिये हम उपदेश करते हैं कि जो सत्पुरुष हैं वे सम्यक् प्रकार एक निश्चयको ही जिसतरह होसके उसतरह निश्चल अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघनस्वरूप अपनी आत्मस्व-रूप महिमामे स्थिरता क्यों नहीं धारते? ॥ **भावार्थ**—जिनेश्वरदेवने अन्य पदार्थोंमें आत्मबुद्धिरूप अध्यवसान छुडाया है सो यह पराश्रित सभी व्यवहार छुड़ाया है ऐसा जानना। इसकारण शुद्धज्ञानस्वरूप अपने आत्मामे स्थिरता रखो ऐसा शुद्धनिश्चयके ग्रह-णका उपदेश है। आचार्यने आश्चर्य भी किया है कि जब भगवानने अध्यवसानको छुडाया तो अब सत्पुरुष इसको छोड अपने स्वरूपमें क्यों नहीं ठहरते? यह हमें अचंभा है॥ २७१॥

---

१ निश्चितिरित्यर्थं।

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २७२ ॥

एवं व्यवहारनयः प्रतिषिद्धो जानीहि निश्चयनयेन।
निश्चयनयाश्रिताः पुनः मुनयः प्राप्नुवंति निर्वाणं ॥ २७२ ॥

आत्माश्रितो निश्चयनयः, पराश्रितो व्यवहारनयः। तत्रैवं निश्चयनयेन पराश्रितसमस्तमध्यसानं बंधहेतुत्वेन मुमुक्षोः प्रतिषेधयता व्यवहारनय एव किल प्रतिषिद्धः, तस्यापि पराश्रितत्वाविशेषात्। प्रतिषेध्य एवं चायं, आत्माश्रितनिश्चयनयाश्रितानामेव मुच्यमानत्वात्, पराश्रितव्यवहारनयस्यैकांतेनामुच्यमानेनाभव्येनाश्रियमाणत्वाच्च ॥ २७२ ॥

विकल्पात्मकव्यवहारनयो हि बाध्यत इति कथनमुख्यत्वेन गाथाषट्कपर्यंतं व्याख्यानं करोति;— **एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परद्रव्याश्रितत्वाद् व्यवहारनयः प्रतिषिद्ध इति जानीहि। केन कर्तृभूतेन? शुद्धात्मद्रव्याश्रितनिश्चयनयेन। कस्मात्? **णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावंति णिव्वाणं** निश्चयनयमालीना आश्रिताः स्थिताः संतो मुनयो निर्वाणं लभंते यतः कारणादिति। किं च यद्यपि प्राथमिकापेक्षया प्रारंभप्रस्तावे सविकल्पावस्थाया निश्चयसाधकत्वाद् व्यवहारनयः सप्रयोजनस्तथापि विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणे शुद्धात्मनि स्थितानां निष्प्रयोजन इति भावार्थः। कथं नि-

---

आगे इसी अर्थको गाथामे कहते हैं,—[**एवं**] पूर्वकथितरीतिसे [**व्यवहारनयः**] अध्यवसानरूप व्यवहारनय है वह [**निश्चयनयेन**] निश्चयनयसे [**प्रतिषिद्धः**] निषेधरूप [**जानीहि**] जानो [**पुनः**] जो [**मुनयः**] मुनिराज [**निश्चयनयाश्रिताः**] निश्चयके आश्रित है वे [**निर्वाणं**] मोक्षको [**प्राप्नुवंति**] पाते हैं ॥ **टीका**—यहां निश्चयनय आत्माके आश्रित है और परके आश्रित व्यवहार नय है। सो जैसे परके आश्रित समस्त अध्यवसान पर और आपको एक मानना वह बंधका कारण होनेसे मोक्षके इच्छकको छुडाता जो निश्चयनय उसकर उसीतरह निश्चयनयसे व्यवहार नय ही छुडाया है। इसकारण जैसे अध्यवसान पराश्रित है उसीतरह व्यवहारनय भी पराश्रित है इसमे विशेष नहीं है। इसलिये ऐसा सिद्ध हुआ कि यह व्यवहारनय प्रषेधने योग्य ही है क्योंकि जो आत्माश्रित निश्चयनयके आश्रित पुरुष है उनके ही कर्मोंसे छूटनापन है। और पराश्रित व्यवहारनयके तो एकांतसे कर्मसे नहीं छूटनेवाले अभव्यकर भी आश्रीयमाणपन है ॥ **भावार्थ**—आत्माके परके निमित्तसे अनेक भाव होते है वे सब व्यवहारनयके विषय है इसलिये व्यवहारनय तो पराश्रित है और जो

---

१ णिच्छयणयसल्लीणा पाठोय तात्पर्यवृत्ती।

कथमभव्येनाश्रियते व्यवहारनयः? इति चेत्;—

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतोवि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥ २७३ ॥

व्रतसमितिगुप्तयः शीलतपो जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
कुर्वन्नप्यभव्योऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिस्तु ॥ २७३ ॥

शीलतपःपरिपूर्णं त्रिगुप्तिपंचसमितिपरिकलितमहिंसादिपंचमहाव्रतरूपं व्यवहारचारित्रं, अभव्योऽपि कुर्यात् तथापि स निश्चारित्रोऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिरेव निश्चयचारित्रहेतुभूतज्ञानश्रद्धाशून्यत्वात् ॥ २७३ ॥

प्रयोजनः? इति चेत्, कर्मभिरमुच्यमानेनाभव्येनाप्याश्रियमाणत्वात् ॥ २७२ ॥ **वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि परिकहिदं** व्रतसमितिगुप्तिशीलतपश्चरणादिकं जिनवरैः प्रज्ञप्तं कथितं **कुव्वंतोवि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठीओ** मंदमिथ्यात्वमंदकषायोदये सति कुर्वन्नप्यभव्यो जीवस्त्वज्ञानी भवति मिथ्यादृष्टिश्च भवति । कस्मात्? इति चेत्, मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयाभावात् शुद्धात्मोपादेयश्रद्धानाभावात् इति ॥ २७३ ॥ अथ तस्यैकादशांगश्रुतज्ञानमस्ति कथमज्ञानी? इति चेत्,—**मोक्खं-**

एक अपना स्वाभाविक भाव है वह निश्चयका विषय है इसलिये निश्चयनय आत्माश्रित है। अध्यवसान भी व्यवहारनयका ही विषय है इसलिये अध्यवसानका त्याग है वह व्यवहारनयका ही त्याग है। सो निश्चयनयको प्रधानकर व्यवहारनयके त्यागका उपदेश है क्योंकि जो निश्चयके आश्रय प्रवर्तते हैं वे तो कर्मसे छूटते हैं और जो एकांतसे व्यवहारनयके ही आश्रय प्रवर्त रहे हैं वे कर्मसे कभी नहीं छूटते ॥ २७२ ॥

आगे पूछते हैं कि अभव्य जीव व्यवहारनयको कैसे आश्रय करता है? ऐसा पूछनेपर उत्तर कहते है,—[**व्रतसमितिगुप्तयः**] व्रत समिति गुप्ति [**शीलतपः**] शील तप [**जिनवरैः**] जिनेश्वर देवने [**प्रज्ञप्तं**] कहे हैं उनको [**कुर्वन्नपि**] करता हुआ भी [**अभव्यः**] अभव्य जीव [**अज्ञानी मिथ्यादृष्टिः तु**] अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है ॥ **टीका**—शीलतपकर परिपूर्ण तीन गुप्ति पाच समितिकर संयुक्त, अहिंसादिक पांच महाव्रतरूप ऐसे व्यवहार चारित्रको अभव्य भी करता (पालता) है तौभी वह अभव्य चारित्रकर रहित ही है अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है क्योंकि निश्चयचारित्रका कारण जो स्वस्वरूपका ज्ञान श्रद्धान उसकर शून्यपन उसके है ॥ **भावार्थ**—अभव्य जीव महाव्रत समिति गुप्तिरूप व्यवहार पाले तौभी निश्चय सम्यक् ज्ञान श्रद्धानके विना वह सम्यक् चारित्र नाम नहीं पाता। इसलिये वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही रहता है ॥ २७३ ॥

तस्यैकादशांगज्ञानमस्ति? इति चेत्;—

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥ २७४ ॥

मोक्षमश्रद्दधानोऽभव्यसत्त्वस्तु योऽधीयीत।
पाठो न करोति गुणमश्रद्दधानस्य ज्ञानं तु ॥ २७४ ॥

मोक्षं हि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते, ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात् स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः, ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः ॥ २७४ ॥

असद्दहंतो अभविय सत्तो दु जो अधीयेज्ज मोक्षमश्रद्दधान· सन्नभव्यजीवो यद्यपि ख्यातिपूजालाभार्थमेकादशागश्रुताध्ययनं कुर्यात् **पाठो ण करेदि गुणं** तथापि तस्य शास्त्रपाठः शुद्धात्मपरिज्ञामरूप गुण न करोति। किंकुर्वतस्तस्य? **असद्दहंतस्य णाणं तु** अश्रद्दधतोऽरोचमानस्य। कि? ज्ञानं। कोऽर्थः? शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण निर्विकल्पसमाधिना प्राप्य गम्य शुद्धात्मस्वरूपमिति। कस्मान्न श्रद्धत्ते? दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमक्षयाभावात्। तदपि कस्मात्? अभव्यत्वादिति भावार्थः ॥ २७४ ॥ अथ तस्य

आगे शिष्य कहता है कि उसके तो ग्यारह अंगतकका ज्ञान होता है उसे अज्ञानी क्यों कहा? उसका उत्तर कहते हैं;—**[यः अभव्यसत्त्वः]** जो अभव्य जीव **[अधीयीत]** शास्त्रका पाठभी पढता है **[तु]** परंतु **[मोक्षं]** मोक्षतत्त्वका **[अश्रद्दधानः]** श्रद्धान नहीं करता **[तु]** तो **[ज्ञानं अश्रद्दधानस्य]** ज्ञानका श्रद्धान नहीं करनेवाले उस अभव्यका **[पाठः]** शास्त्र पढना **[गुणं न करोति]** लाभ नहीं करता ॥ **टीका**—अभव्य जीव प्रथम तो निश्चयकर मोक्षका ही श्रद्धान नहीं करता क्योंकि शुद्धज्ञानमय आत्माका ज्ञान ही अभव्यके नहीं है इसलिये अभव्यजीव ज्ञानको भी श्रद्धानरूप नही करता। और ज्ञानका श्रद्धान न करनेवाला अभव्य आचारांगको आदि लेकर ग्यारह अंगरूप श्रुतको पढताहुआ भी शास्त्र पढनेके गुण (फल) के अभावसे ज्ञानी नहीं होता। शास्त्र पढनेका यह गुण है कि भिन्नवस्तुभूत ज्ञानमय आत्माका ज्ञान हो। सो उस भिन्नवस्तुभूत ज्ञानको नहीं श्रद्धान करनेवाला अभव्य शास्त्रके पढनेसे आत्मज्ञान करनेको समर्थ नहीं होता। इसलिये उसके शास्त्र पढनेका गुण जो भिन्न आत्माका जानना वह नहीं है इसलिये सच्चे ज्ञान श्रद्धानके अभावसे वह अभव्य अज्ञानी ही है यह नियम है ॥ **भावार्थ**—अभव्य जीव ग्यारह अंग पढे तौ भी उसके शुद्ध आत्माका ज्ञान श्रद्धान नहीं होता इसलिये उसके शास्त्रका पढना गुणकारी नहीं हुआ। इसकारण वह अज्ञानी ही है ॥ २७४ ॥

तस्य धर्मश्रद्धानमस्तीति चेत्।—

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ २७५ ॥

श्रद्धाति च प्रत्येति च रोचयति च तथा पुनश्च स्पृशति ।
धर्मं भोगनिमित्तं न तु स कर्मक्षयनिमित्तं ॥ २७५ ॥

अभव्यो हि नित्यकर्मफलचेतनारूपं वस्तु श्रद्धत्ते, नित्यज्ञानचेतनामात्रं न तु श्रद्धत्ते नित्यमेव भेदविज्ञानानर्हत्वात् । ततः स कर्ममोक्षनिमित्तं ज्ञानमात्रं भूतार्थं धर्मं न श्रद्धत्ते भोगनिमित्तं शुभकर्ममात्रमभूतार्थमेव श्रद्धत्ते । तत एवासौ अभूतार्थधर्मश्रद्धानप्रत्ययन-

---

पुण्यरूपधर्मादिश्रद्धानमस्तीति चेत्;—**सद्दहदि य** श्रद्धत्ते च **पत्तेदि य** ज्ञानरूपेण प्रत्येति च प्रतीतिं परिच्छित्तिं करोति **रोचेदि य** विशेषश्रद्धानरूपेण रोचते च **तह पुणोवि फासेदि य** तथा पुनः स्पृशति च अनुष्ठानरूपेण । कं? **धम्मं भोगणिमित्तं** अहमिंद्रादिपदवीकारणत्वादिति मत्वा भोगाकांक्षारूपेण पुण्यरूपं धर्मं **ण दु सो कम्मक्खयणि-**

आगे शिष्य फिर कहता है कि उस अभव्यके धर्मका तो श्रद्धान होता है वह कैसे निषेध करते हो? उसका उत्तर कहते हैं,—[**सः**] वह अभव्य जीव [**धर्मं**] धर्मको [**श्रद्दधाति च**] श्रद्धान करता है [**प्रत्येति च**] प्रतीति करता है **रोचयति च**] रुचि करता है [**पुनश्च**] और [**स्पृशति**] स्पर्शता है वह [**भोगनिमित्तं**] संसारभोगके निमित्त जो धर्म है उसीको श्रद्धान आदि करता है [**तु**] परंतु [**कर्मक्षयनिमित्तं**] कर्मक्षय होनेका निमित्तरूप धर्मका [**न**] श्रद्धान आदि नहीं करता॥ **टीका**—अभव्य जीव नित्य ही कर्मफल चेतनारूप वस्तुकी श्रद्धा करता है परतु नित्य ज्ञान चेतनामात्र वस्तुका नहीं श्रद्धान करता क्योंकि अभव्य जीव नित्य ही आप परके भेद ज्ञानके योग्य नहीं है । इसलिये वह अभव्य ज्ञानमात्र सत्यार्थ धर्म जो कि कर्मक्षयका निमित्त है उसको नहीं श्रद्धान करता परंतु शुभ कर्ममात्र असत्यार्थ धर्म जो भोगोंका निमित्त है उसको श्रद्धान करता है । इसीलिये यह अभव्य अभूतार्थ धर्मका श्रद्धान प्रतीति रुचि स्पर्शन इनकर ऊपरके ग्रैवेयकतकके भोगमात्रोंको पाता है परंतु कर्मसे कभी नहीं छूटता । इसलिये इसके सत्यार्थ धर्मके श्रद्धानका अभाव होनेसे सच्चा श्रद्धान भी नहीं है । ऐसा होनेपर निश्चयनयमें व्यवहारनयका निषेध युक्त ही है ॥ **भावार्थ**—अभव्य जीव कर्मफल चेतनाको जानता है परतु ज्ञानचेतनाको नहीं जानता क्योंकि इसके भेदज्ञान होनेकी योग्यता नहीं है इस कारण शुद्ध आत्मीक धर्मका श्रद्धान इसके नहीं है । शुभ कर्मको ही धर्म समझ श्रद्धान करता है उसका फल ग्रैवेयकतकके भोग पाता है परंतु कर्मका क्षय नहीं होता । इसलिये इसके सत्यार्थ धर्मकाभी श्रद्धान

रोचनस्पर्शनैरुपरितनग्रैवेयकभोगमात्रमास्कंदन्न पुनः कदाचनापि विमुच्यते, ततोऽस्य भूतार्थधर्मश्रद्धानाभावात् श्रद्धानमपि नास्ति । एवं सति तु निश्चयनयस्य व्यवहारनयप्रतिषेधो युज्यत एव ॥ २७५ ॥

कीदृशौ प्रतिषेध्यप्रतिषेधकौ व्यवहारनिश्चयनयाविति चेत्;—

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकं च तहा भणइ चरित्तं तु ववहारो ॥ २७६ ॥
आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥ २७७ ॥

मित्तं नच कर्मक्षयनिमित्तं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं निश्चयधर्ममिति ॥ २७५ ॥ अथ कीदृशौ तौ प्रतिषेध्यप्रतिषेधकौ व्यवहारनिश्चयनयाविति चेत्;—**आयारादी णाणं** आचारसूत्रकृतमित्यादि एकादशाङ्गशब्दशास्त्रज्ञानस्याश्रयत्वात्कारणत्वाद् व्यवहारेण ज्ञानं भवति । **जीवादी दंसणं च विण्णेयं** जीवादिनवपदार्थाः श्रद्धानविषयः सम्यक्त्वाश्रयत्वान्निमित्तत्वाद् व्यवहारेण सम्यक्त्व भवति । **छज्जीवाणं रक्खा**[1] **भणति चरित्तं तु ववहारो** षट्जीवनिकायरक्षा चारित्राश्रयत्वात् हेतुत्वाद् व्यवहारेण चारित्रं भवति । एव पराश्रितत्वेन व्यवहारमोक्षमार्गः प्रोक्त इति । **आदा खु मज्झ णाणे** स्वशुद्धात्मा ज्ञानस्याश्रयत्वान्निमित्तत्वा-

---

नहीं कहा जासकता और इसीसे निश्चयनयमें व्यवहारनयका निषेध है । यहां इतना और जानना कि यह हेतुवादरूप अनुभव प्रधानग्रंथ है इसलिये भव्य अभव्यका अनुभवकी अपेक्षानिर्णय है तथा यही अहेतुवाद आगमसे मिलाओ तब अभव्यके सूक्ष्म केवली गम्य ऐसा ही व्यवहारनयकी पक्षका आशय रहजाता है । वह छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) के अनुभवगोचर नहीं भी होता परंतु सर्वज्ञदेव जानते है । उसके केवल व्यवहारकी पक्षसे सर्वथा एकांतरूप मिथ्यात्व रहता है अभव्यका यह आशय सर्वथा नहीं मिटता इसलिये अभव्य ही है ॥ २७५ ॥

आगे पूछते हैं कि निश्चयनय तो व्यवहारका प्रतिषेधक कहा है और निश्चयनयके व्यवहारनय प्रतिषेधने योग्य कहा सो ये दोनों ही किसतरह हैं ? ऐसा पूछनेपर निश्चय व्यवहारका स्वरूप प्रगट कहते हैं;— [**आचारादि ज्ञानं**] आचारांग आदि शास्त्र तो ज्ञान है [**च**] तथा [**जीवादि दर्शनं**] जीवादि तत्त्व है वे दर्शन [**विज्ञेयं**] जानना [**च**] और [**षड्जीवनिकायं**] छह कायके जीवोकी रक्षा [**चारित्रं**] चारित्र है [**तथा तु**] इस तरह तो [**व्यवहारः भणति**] व्यवहारनय कहता है [**खलु**] और निश्चयकर [**मम आत्मा ज्ञानं**] मेरा आत्मा ही ज्ञान है [**मे**

---

१ तात्पर्यवृत्तौ छज्जीवाणं रक्खा इति पाठ. ।

आचारादि ज्ञानं जीवादि दर्शनं च विज्ञेयं ।
षट्जीवनिकायं च तथा भणति चरित्रं तु व्यवहारः ॥ २७६ ॥
आत्मा खलु मम ज्ञानमात्मा मे दर्शनं चरित्रं च ।
आत्मा प्रत्याख्यानं आत्मा मे संवरो योगः ॥ २७७ ॥

आचारादिशब्दश्रुतं ज्ञानस्याश्रयभूतत्वात् ज्ञानं, जीवादयो नवपदार्थां दर्शनस्याश्रयत्वाद्दर्शनं, षट्जीवनिकायश्चारित्रस्याश्रयत्वात् चारित्रं, व्यवहारः । शुद्ध आत्मा ज्ञानाश्रयत्वाद् ज्ञानं, शुद्ध आत्मा दर्शनाश्रयत्वाद्दर्शनं, शुद्ध आत्मा चारित्राश्रयत्वाच्चारित्रमिति निश्चयः । तत्राचारादीनां ज्ञानाश्रयत्वस्यानैकांतिकत्वाद् व्यवहारनयः प्रतिषेध्यः । निश्च-

---

न्निश्चयनयेन मम सम्यग्ज्ञान भवति । **आदा मे दंसणे** शुद्धात्मा सम्यग्दर्शनस्याश्रयत्वात् कारणत्वात् निश्चयेन सम्यग्दर्शनं भवति **चरित्ते य** शुद्धात्मा चारित्रस्याश्रयत्वाद्धेतुत्वात् निश्चयेन सम्यक्चारित्रं भवति **आदा पच्चक्खाणे** शुद्धात्मा रागादिपरित्यागलक्षणस्याप्रत्याख्यानस्याश्रयत्वात्कारणत्वात् निश्चयेन प्रत्याख्यान भवति । **आदा मे संवरे** शुद्धात्मा स्वरूपोपलब्धिवलेन हर्षविषादादिनिरोधलक्षणसवरस्याश्रयत्वान्निश्चयेन सवरो भवति **जोगे** शुभाशुभचिंतानिरोधलक्षणपरमध्यानशब्दवाच्ययोगस्याश्रयत्वाद्धेतुत्वात् परमयोगो भवतीति शुद्धात्माश्रितत्वेन निश्चयमोक्षमार्गो ज्ञातव्यः । एव व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गस्वरूपं कथितं । तत्र निश्चयः प्रतिषेधको भवति, व्यवहारस्तु प्रतिषेध्य इति । कस्मादिति चेत् , निश्चयमोक्षमार्गे स्थितानां नियमेन मोक्षो भवति, व्यवहारमोक्षमार्गे स्थिताना तु न भवति च । कथ न भवति? इति

आत्मा] मेरा आत्मा ही [**दर्शनं चरित्रं च**] दर्शन और चारित्र है [**आत्मा**] मेरा आत्मा ही [**प्रत्याख्यानं**] प्रत्याख्यान है [**मे आत्मा**] मेरा आत्मा ही [**संवरः योगः**] संवर और योग (समाधि—ध्यान) है । ऐसे निश्चयनय कहता है ॥ **टीका**—आचारांगको आदि लेकर शब्दश्रुत है वह ज्ञान है क्योंकि यह ज्ञानका आश्रय है । जीवको आदि लेकर नव पदार्थ हैं वे दर्शन हैं क्योंकि ये दर्शनके आश्रय हैं । छह जीवोंकी रक्षा है वह चारित्र है क्योंकि यह चारित्रका आश्रय है । इस तरहसे तो व्यवहारनयके वचन हैं । शुद्ध आत्मा ज्ञान है क्योंकि ज्ञानका आश्रय आत्मा ही है । शुद्ध आत्मा ही दर्शन है क्योंकि दर्शनका आश्रय आत्मा ही है । शुद्ध आत्मा ही चारित्र है क्योंकि चारित्रका आश्रय आत्मा ही है । ऐसे निश्चयनयके वचन है । आचारांग आदिकको ज्ञानादिकके आश्रयपनेका व्यभिचार है, आचारांग आदिक तो हों परंतु ज्ञान आदिक नहीं भी हों इसलिये व्यवहारनय प्रतिषेधने योग्य है निश्चयनयमें शुद्ध आत्माके साथ ज्ञानादिकके आश्रयपनेका ऐकांतिकपना है, जहां शुद्ध आत्मा है वहां ही ज्ञान दर्शन

यनयस्तु शुद्धस्यात्मनो ज्ञानाद्याश्रयत्वस्यैकांतिकत्वात् तत्प्रतिषेधकः । तथाहि—नाचारादिशब्दश्रुतं, एकांतेन ज्ञानस्याश्रयः, तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन ज्ञानस्याभावात्। न जीवादयः पदार्था दर्शनस्याश्रयाः तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन दर्शनस्याभावात्। न षट्जीवनिकायः चारित्रस्याश्रयस्तत्सद्भावेप्यभव्यानां शुद्धात्माभावेन चारित्रस्याभावात्। शुद्ध आत्मैव ज्ञानस्याश्रयः, आचारादिशब्दश्रुतसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव ज्ञानस्य सद्भावात्। शुद्ध आत्मैव दर्शनस्याश्रयः, जीवादिपदार्थसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव दर्शनस्य सद्भावात्। शुद्ध आत्मैव चारित्रस्याश्रयः, षड्जीवनि-

---

चेत्, यदि मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयात्सकाशाच्छुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा वर्तते तदा मोक्षो भवति। यदि पुनः सप्तप्रकृत्युपशमाद्यभावे शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा न वर्तते तदा मोक्षो न भवति । तदपि कस्मात्? सप्तप्रकृत्युपशमाद्यभावे सति अनंतज्ञानादिगुणस्वरूपमात्मानमुपादेयं कृत्वा न वर्तते न श्रद्धत्ते यतः कारणात् । यस्तु तादृशमात्मानमुपादेयं श्रद्धत्ते तस्य सप्तप्रकृत्युपशमादिकं विद्यते स तु भव्यो भवति। यस्य पुनः पूर्वोक्तशुद्धात्मस्वरूपमुपादेयं नास्ति तस्य सप्तप्रकृत्युपशमादिकं न विद्यते इति ज्ञातव्यं। मिथ्यादृष्टिरसौ तेन कारणेनाभव्यजीवस्य मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमादिकं कदाचिदपि न संभवति इति भावार्थः। किं च, निर्विकल्पसमाधिरूपनिश्चये स्थित्वा व्यवहारस्त्याज्यः, किं तु तस्यां त्रिगुप्तावस्थाया व्यवहारः स्व-

---

चारित्र हैं इसलिये व्यवहारनयका निषेध करनेवाला है । यही हेतुसे कहते हैं—आचारादि शब्दश्रुत है वह एकांतसे ज्ञानका आश्रय नहीं है क्योंकि आचारांगादिकका अभव्य जीवके सद्भाव होने पर भी शुद्ध आत्माका अभाव होनेसे ज्ञानका अभाव है। जीव आदि नौ पदार्थ हैं वे दर्शनका आश्रय नहीं हैं क्योंकि अभव्यके उनका सद्भाव होनेपर भी शुद्धात्माका अभाव होनेसे दर्शनका भी अभाव है। छहकायके जीवोंकी रक्षा चारित्रका आश्रय नहीं है क्योंकि उसके मौजूद होनेपर भी अभव्यके शुद्धात्माका अभाव होनेसे चारित्रका अभाव है। शुद्ध आत्मा ही ज्ञानका आश्रय है क्योंकि आचारांगादि शब्दश्रुतका सद्भाव होने पर या असद्भाव होनेपर शुद्ध आत्माके सद्भावसे ही ज्ञानका सद्भाव है। शुद्ध आत्मा ही दर्शनका आश्रय है क्योंकि जीवादिपदार्थोंका सद्भाव होने वा न होनेपर भी शुद्ध आत्माके सद्भावसे ही दर्शनका सद्भाव है। शुद्ध आत्मा ही चरित्रका आश्रय है क्योंकि छहकायके जीवोंकी रक्षाका सद्भाव होने तथा असद्भाव होनेपर भी शुद्धात्माके सद्भावसे ही चारित्रका सद्भाव है॥ **भावार्थ**—आचारांगादि शब्दश्रुतका जानना, जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना तथा छहकायके जीवोंकी रक्षा इन सबके होनेपर भी अभव्यके ज्ञान दर्शन चारित्र नहीं होते इसलिये व्यवहारनय निषेधा गया है। तथा शुद्धात्माके होनेपर ज्ञान दर्शन चारित्र होते ही हैं इस कारण निश्चयनय

कायसद्भावेऽसद्भावे वा तत्सद्भावेनैव चारित्रस्य सद्भावात् । "रागादयो बंधनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः । आत्मा परो वा किमु तन्निमित्तमिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥ १७४ ॥" २७६।२७७ ॥

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥ २७८ ॥
एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥ २७९ ॥

यथा स्फटिकमणिः शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रक्तादिभिर्द्रव्यैः ॥ २७८ ॥
एवं ज्ञानी शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः ।
रज्यतेऽन्यैस्तु स रागादिभिर्दोषैः ॥ २७९ ॥

यमेव नास्तीति तात्पर्यार्थः । एवं निश्चयनयेन व्यवहारः प्रतिषिद्ध इति कथनरूपेण षट्सूत्रैः पंचम स्थलं गतं ॥ २७६।२७७ ॥ अथ रागादयः किल कर्मबंधकारणं भणिताः, तेषां पुनः किं कारणं ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह,—यथा स्फटिकमणिर्विशुद्धो बहिरुपाधिं विना स्वयं रागादिभावेन न परिणमति पश्चात् स एव रज्यते, कैः ? जपापुष्पादिवहिर्भूतान्यद्रव्यैरिति दृष्टांतो गतः । एवमनेन दृष्टांतेन ज्ञानी शुद्धो भवन् स्वयं निरुपाधिचिच्चमत्कारस्वभावेन कृत्वा जपापुष्प-

---

इस व्यवहारका प्रतिषेधक है इसलिये शुद्धनय उपादेय कहा है । आगे अगले कथनकी सूचनिकाका १७४ वां काव्य कहते हैं—**रागादयो** इत्यादि । **अर्थ**—यहां शिष्य फिर पूछता है कि रागादिक हैं वे तो बंधके कारण कहे और वे शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मासे भिन्न (जुदे) कहे वहांपर उनके होनेमें आत्मा निमित्तकारण है कि दूसरा कोई ? ॥२७६।२७७॥

ऐसे प्रेरेहुए आचार्य इसका उत्तर दृष्टांतपूर्वक कहते हैं,—**[यथा]** जैसे **[स्फटिकमणिः]** स्फटिकमणि **[शुद्धः]** आप शुद्ध है वह **[रागाद्यैः]** ललाई आदि रंगस्वरूप **[स्वयं न परिणमते]** आप तो नहीं परणमती **[तु]** परंतु **[सः]** वह **[अन्यैः रक्तादिभिः द्रव्यैः]** दूसरे लाल काले आदि द्रव्योंसे **[रज्यते]** ललाई आदि रंगस्वरूप परणमती है **[एवं]** इसीप्रकार **[ज्ञानी]** ज्ञानी **[शुद्धः]** आप शुद्ध है **[सः]** वह **[रागाद्यैः]** रागादि भावोंसे **[स्वयं न परिणमते]** आप तो नहीं परिणमता **[तु]** परंतु **[अन्यैः रागादिभिः दोषैः]** अन्य रागादि दोषोंसे **[रज्यते]** रागादिरूप किया जाता है ॥ **टीका—** जैसे निश्चयकर केवल (अकेला) स्फटिक पाषाण आप परिणाम स्वभावरूप होनेपर

यथा खलु केवलः स्फटिकोपलः परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते, परद्रव्येणैव स्वयं रागादिभावापन्नतया स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन शुद्धस्वभावात्प्रच्यवमान एव रागादिभिः परिणम्यते । तथा केवलः किलात्मा परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते परद्रव्येणैव स्वयं रागादिभावापन्नतया स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन शुद्धस्वभावात्प्रच्यवमान एव रागादिभिः परिणम्यते, इति तावद्वस्तुस्वभावः । "न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककांतः । तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥ १७५ ॥ इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः । रागादीन्नात्मनः कुर्वन्नातो भवति कारकः ॥ १७६ ॥" २७८ ॥ २७९ ॥

स्थानीयकर्मोदयरूपपरोपाधिं विना रागादिविभावैर्न परिणमति पश्चात्सहजस्वच्छभावच्युतः सन् स एव रज्यते । कैः ? कर्मोदयनिमित्तैरागादिदोषैः परिणामैरिति, तेन ज्ञायते कर्मोदयजनिता

भी अपने शुद्धस्वभावपनेसे तो रागादि निमित्तके अभावसे रागादिकोंसे आप नहीं परिणमता, आप ही अपने रागादि परिणाम होनेका निमित्त नहीं है परंतु परद्रव्य स्वयं रागादि भावको प्राप्त होनेपनेसे स्फटिकके रागादिकका निमित्तभूत है उसकर शुद्ध स्वभावसे च्युत (रहित) हुआ ही रागादि रंगरूप परिणमता है, उसीतरह अकेला आत्मा परिणमन स्वभावरूप होनेपर भी अपने शुद्धस्वभावपनेकर रागादि निमित्तपनेके अभावसे आप ही रागादि भावोंकर नहीं परिणमता अपने आप ही रागादि परिणामका निमित्त नहीं है परतु परद्रव्य स्वयं रागादिभावको प्राप्त होनेपनेसे आत्माके रागादिकका निमित्तभूत है उसकर शुद्ध स्वभावसे च्युतहुआ ही रागादिककर परिणमता है । ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है ॥ **भावार्थ**—आत्मा एकाकी तो शुद्ध ही है परंतु परिणामस्वभाव है जिस तरहका परका निमित्त मिले वैसा ही परिणमता है । इसलिये रागादिकरूप परद्रव्यके निमित्तसे परिणमता है। यहां स्फटिकमणिका दृष्टांत है—कि, स्फटिकमणि आप तो केवल एकाकार शुद्ध ही है परंतु जब परद्रव्यकी ललाई आदिका डंक लगे तब ललाई आदिरूप परिणमती है । ऐसा यह वस्तुका ही स्वभाव है इसमें अन्य कुछ भी तर्क नही कर सकते । अब इस अर्थका कलशरूप १७५ वां श्लोक कहते हैं— **न जातु** इत्यादि । **अर्थ**—आत्मा अपने रागादिकके निमित्तभावको कभी नहीं प्राप्त होता उस आत्मामे रागादिक होनेका निमित्त परद्रव्यका संग (संबंध) ही है । यहां सूर्यकातमणिका दृष्टांत है—जैसे सूर्यकांतमणि आप ही तो अग्निरूप नहीं परणमती उसमें सूर्यका बिंब अग्निरूप होनेको निमित्त है वैसे जानना । यह वस्तुका स्वभाव उदयको प्राप्त है किसीका किया हुआ नहीं है । आगे कहते है कि ऐसे वस्तूके स्वभावको

ण य रायदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाणं ॥ २८० ॥

नापि रागद्वेषमोहं करोति ज्ञानी कषायभावं वा ।
स्वयमात्मनो न स तेन कारकस्तेषां भावानां ॥ २८० ॥

यथोक्तवस्तुस्वभावं जानन् ज्ञानी शुद्धस्वभावादेव न प्रच्यवते, ततो रागद्वेषमोहादिभावैः स्वयं न परिणमते न परेणापि परिणम्यते, ततष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावो ज्ञानी रागद्वेषमोहादिभावानामकर्तैवेति निंयमः ॥ "इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः । रागादीनात्मनः कुर्यादतो भवति कारकः ॥ १७७ ॥" २८० ॥

रागादयो न तु ज्ञानिजीवजनिता इति दार्ष्टांतो गतः ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ एव चिदानंदैकलक्षण स्वस्वभावं जानन् ज्ञानी रागादीन्न करोति ततो नवतररागाद्युत्पत्तिकारणभूतकर्मणा कर्ता न भवतीति कथयति,—**णवि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा** ज्ञानी न करोति । कान् ? रागादिदोषरहितशुद्धात्मस्वभावात्पृथग्भूतान् रागद्वेषमोहान् क्रोधादिकपायभावं वा । कथ न करोति ? **सयं** स्वय शुद्धात्मभावेन कर्मोदयसहकारिकारणं विना । कस्य सवंधित्वेन ? **अप्पणो** आत्मनः **ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं** तेन कार-

---

जानता हुआ ज्ञानी रागादिकको अपने नहीं करता ऐसी सूचनिकाका १७६ वा श्लोक कहते हैं—**इति वस्तु** इत्यादि । **अर्थ**—इसतरह अपने वस्तुस्वभावको ज्ञानी जानता है इसकारण वह ज्ञानी रागादिकको अपनेमें नहीं करता इसलिये रागादिकका कर्ता नहीं है ॥ २७८।२७९ ॥

आगे ऐसा ही गाथामे कहते है,—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**स्वयमेव**] आप ही [**आत्मनः**] अपने [**रागद्वेषमोहं**] राग द्वेष मोह [**वा कषायभावं**] तथा कपायभाव [**न च करोति**] नहीं करता [**तेन**] इसकारण [**सः**] वह ज्ञानी [**तेषां भावानां**] उन भावोंका [**कारकः न**] करनेवाला (कर्ता) नहीं है । **टीका**—जैसा वस्तुका स्वभाव कहा गया है वैसा जानताहुआ ज्ञानी अपने शुद्ध स्वभावसे नहीं छूटता इसलिये राग द्वेष मोह आदि भावोंकर अपने आप नहीं परिणमता और दूसरेसे भी नहीं परिणमाया जाता । इसकारण टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभाव स्वरूप ज्ञानी राग द्वेष मोह आदि भावोंका अकर्ता ही है ऐसा नियम है ॥ **भावार्थ**—जब ज्ञानी हुआ तब वस्तुका ऐसा स्वभाव जाना कि आप तो आत्मा शुद्ध है द्रव्यदृष्टिकर अपरिणमनस्वरूप है पर्यायदृष्टिकर परद्रव्यके निमित्तसे रागादिरूप परिणमता है सो अब

---

१ प्रतिनियम- इत्यपि पाठांतर ।

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रायाई बंधदि पुणोवि ॥ २८१ ॥

राग च दोषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः।
तैस्तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति पुनरपि ॥ २८१ ॥

यथोक्तं वस्तुस्वभावमजानंस्त्वज्ञानी शुद्धस्वभावादासंसारं प्रच्युत एव। ततः कर्मविपाकप्रभवै रागद्वेषमोहादिभावैः परिणममानोऽज्ञानी रागद्वेषमोहादिभावानां कर्ता भवन् बध्यत एवेति प्रतिनियमः ॥ २८१ ॥

णेन स तत्त्वज्ञानी तेषां रागादिभावानां कर्ता न भवतीति ॥२८०॥ अज्ञानी जीवः शुद्धस्वभावमात्मानमजानन् रागादीन् करोति ततः स भावरागादिजनकनवतरकर्मणां कर्ता भवतीत्युपदिशति;—**रागह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा** रागद्वेषकषायरूपे द्रव्यकर्मण्युदयागते सति स्वस्वभावच्युतस्य तदुदयनिमित्तेन ये जीवगतरागादिभावाः परिणामा भवंति। **तेहिं दु परिणममाणो रागादी बंधदि पुणोवि** तैः कृत्वा रागादिरहमित्यभेदेनाहमिति प्रत्ययेन कृत्वा परिणमन् सन् पुनरपि भाविरागादिपरिणामोत्पादकानि द्रव्यकर्माणि बध्नाति ततस्तेषां रागादीनामज्ञानी जीवः कर्ता भवतीति ॥ २८१ ॥ तमेवार्थं दृढयति;—पूर्व-

---

आप ज्ञानी हुआ उन भावोंका कर्ता नहीं होता उदयमें आयेहुए फलोंका ज्ञाता ही है ॥ आगे कहते हैं कि अज्ञानी ऐसा वस्तुका स्वभाव नहीं जानता इसलिये रागादि भावोंका कर्ता होता है इसकी सूचनाका १७७ वा श्लोक कहा है—**इति वस्तु** इत्यादि। **अर्थ—** अज्ञानी ऐसे अपने वस्तुस्वभावको नहीं जानता इसलिये वह अज्ञानी रागादिक भावोंको अपने करता है, इस कारण उन (रागादिकों) का करनेवाला (करता) होता है। ॥ २८० ॥

अब इस अर्थकी गाथा कहते हैं;—**[रागे च द्वेषे च कषायकर्मसु चैव]** राग द्वेष और कषायकर्म इनके होनेपर **[ये भावाः]** जो भाव होते हैं **[तैस्तु]** उनकर **[परिणममानः]** परिणमता हुआ अज्ञानी **[रागादीन्]** रागादिकोंको **[पुनरपि]** बार बार **[बध्नाति]** बांधता है ॥ **टीका**—जैसा वस्तुका स्वभाव कहा गया है वैसे स्वभावको नहीं जानताहुआ अज्ञानी अपने शुद्धस्वभावसे अनादि संसारसे लेकर च्युत (छूटा हुआ) ही है इस कारण कर्मके उदयसे हुए जो राग द्वेष मोहादिक भाव हैं उनकर परिणमता अज्ञानी राग द्वेष मोहादि भावोंका कर्ता हुआ कर्मोंकर बंधता ही है ऐसा नियम है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानी वस्तुका स्वभाव तो यथार्थ जानता नहीं है परंतु कर्मके उदयकर जैसा भाव हो उसको अपना समझ परिणमता है तब उन भावोंका कर्ता हुआ आगामी बार बार कर्म बांधता है यह नियम है ॥ २८१ ॥

ततः स्थितमेतत्;—

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं[1] दु परिणमंतो रायाई बंधदे चेदा ॥ २८२ ॥

रागे च दोषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः ।
तैस्तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति चेतयिता ॥ २८२ ॥

य इमे किलाज्ञानिनः पुद्गलकर्मनिमित्ता रागद्वेषमोहादिपरिणामास्त एव भूयो रागद्वेषमोहादिपरिणामनिमित्तस्य पुद्गलकर्मणो बंधहेतुरिति ॥ २८२ ॥

गाथायामह रागादीत्यभेदेन परिणमन् सन् तानि रागादिभावोत्पादकानि नवतरद्रव्यकर्माणि बध्नातीत्युक्तं । अत्र तु शुद्धात्मभावनारहितत्वेन मदीयो रागः इति सवधेन परिणमन् सन् तानि नवतरद्रव्यकर्माणि बध्नाति, इति विशेषः [२] । किं च विस्तरः—यत्र मोहरागद्वेषा व्याख्यायंते तत्र मोहशब्देन दर्शनमोहः मिथ्यात्वादिजनक इति ज्ञातव्यं, रागद्वेषशब्देन तु क्रोधादिकषायोत्पादकश्चारित्रमोहो ज्ञातव्यः । अत्राह शिष्यः—मोहशब्देन तु मिथ्यात्वादिजनको दर्शनमोहो भवतु दोषो नास्ति द्वेषशब्देन चारित्रमोह इति कथं भण्यते ? इति पूर्वपक्षे परिहारं ददाति—कषायवेदनीयाभिधानचारित्रमोहमध्ये क्रोधमानौ द्वेषागौ द्वेषोत्पादकत्वात्, मायालोभौ रागागौ रागजनकत्वात्, नोकषायवेदनीयसञ्ज्ञचारित्रमोहमध्ये स्त्रीपुन्नपुंसकवेदत्रयहास्यरतयः पंच नोकषायाः रागागा रागोत्पादकत्वात्, इत्यनेनाभिप्रायेण मोहशब्देन दर्शनमोहो मिथ्यात्व भण्यते रागद्वेषशब्देन पुनश्चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यं । एवं कर्मबधकारण रागादयः, रागादीना च कारणं निश्चयेन कर्मोदयो, न च ज्ञानी जीव इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथापंचक

आगे कहते हैं कि इस हेतुसे यह बात सिद्ध हुई उसकी गाथा यह है,—[**रागे च द्वेषे च**] राग द्वेष [**कर्मसु चैव**] और कषायकर्मोंके होनेपर [**ये भावाः**] जो भाव होते हैं [**तैस्तु**] उनकर [**परिणममानः**] परिणमता हुआ [**चेतयिता**] आत्मा [**रागादीन्**] रागादिकोंको [**बध्नाति**] बांधता है ॥ **टीका**—निश्चयकर जो ये पुद्गलकर्मके निमित्तसे हुए अज्ञानीके राग द्वेष मोह आदि भाव हैं उनका कर्ता हुआ अज्ञानी कर्मोंसे बंधता ही है । ऐसे परिणाम ही फिर राग द्वेष मोह आदि परिणामका निमित्त जो पुद्गलकर्म उसके बंधके कारण होते हैं ॥ **भावार्थ**—अज्ञानीके कर्मके निमित्तसे राग द्वेष मोह आदिक परिणाम होते हैं वे फिर आगामी कर्मबंधके कारण होते हैं ॥ २८२ ॥

---

१ तात्पर्यवृत्तौ 'ते मम दु' इत्येव पाठ ।

कथमात्मा रागादीनामकारकः ? इति चेत्;—

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥ २८३ ॥

अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपचखाणं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥ २८४ ॥

जावं अपडिक्कमणं अपचखाणं च दव्वभावाणं ।
कुव्वइ आदा तावं कत्ता सो होइ णायव्वो ॥ २८५ ॥

गतं ॥ २८२ ॥ अथ कथं सम्यग्ज्ञानी जीवो रागादीनामकारक इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह;–**अपडिक्कमणं दुविहं अपचक्खाणं तहेव विण्णेयं** पूर्वानुभूतविषयानुभवरागादिस्मरणरूपमप्रतिक्रमणं द्विविधं, भाविरागादिविषयाकाङ्क्षारूपमप्रत्याख्यानमपि तथैव द्विविधं **एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा** एतेनोपदेशेन परमागमेन ज्ञायते । किं ज्ञायते ? चेतयितात्मा हि द्विप्रकाराप्रतिक्रमणेन द्विप्रकाराप्रत्याख्यानेन च रहितत्वात् कर्मणामकर्ता भवतीति । **अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे अपचखाणंपि** द्रव्यभावरूपेण प्रतिक्रमणं प्रत्याख्यानं च द्विविधं भवति **एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा** तदेव बधकारणमित्युपदेश आगमः तेनोपदेशेन ज्ञायते, किं ज्ञायते ? द्रव्यभावरूपेणाप्रत्याख्यानेनाप्रतिक्रमणेन च परिणतः शुद्धात्मभावनाच्युतो योऽसावज्ञानी जीवः स कर्मणां कारकः । तद्विपरीतोऽज्ञानी चेतयिता पुनरकारक इति । तमेवार्थं दृढयति–**जाव ण पचक्खाणं** यावत्कालं द्रव्यभावरूपं, निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणं प्रत्याख्यानं नास्ति **अपडिक्कमणं तु दव्वभावाणं कुव्वदि** यावत्कालं द्रव्यभावरूपमप्रतिक्रमणं च करोति **आदा तावदु कत्ता सो होदि**

आगे फिर पूछते हैं जो ऐसा है कि अज्ञानीके रागादिक फिर कर्मबंधके कारण हैं तो आत्मा रागादिकोंका अकारक ही है, ऐसा क्यों कहा ? उसका समाधान कहते हैं;– **[अप्रतिक्रमणं]** अप्रतिक्रमण **[द्विविधं]** दो प्रकारका **[विज्ञेयं]** जानना **[तथैव]** उसी तरह **[अप्रत्याख्यानं]** अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार जानना **[एतेनोपदेशेन च]** इस उपदेशकर **[चेतयिता]** आत्मा **[अकारकः भणितः]** अकारक कहा है । **[अप्रतिक्रमणं]** अप्रतिक्रमण **[द्विविधं]** दो प्रकार है **[द्रव्ये भावे]** एक तो द्रव्यमे दूसरा भावमें **[तथा अप्रत्याख्यानं]** उसीतरह अप्रत्याख्यान भी दो तरहका है एक द्रव्यमे एक भावमे **[एतेन उपदेशेन च]** इस उपदेशकर **[चेतयिता]** आत्मा **[अकारकः वर्णितः]** अकारक कहा है । **[यावत]** जब तक **[आत्मा]** आत्मा **[द्रव्यभावयोः]** द्रव्य और भावमे **[अप्रतिक्रमणं च अप्रत्याख्यानं]** अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान **[करोति]** करता है

अप्रतिक्रमणं द्विविधमप्रत्याख्यानं तथैव विज्ञेयं ।
एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥ २८३ ॥
अप्रतिक्रमणं द्विविधं द्रव्ये भावे तथाप्रत्याख्यानं ।
एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णितश्चेतयिता ॥ २८४ ॥
यावदप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च द्रव्यभावयोः ।
करोत्यात्मा तावत्कर्ता स भवति ज्ञातव्यः ॥ २८५ ॥

आत्मा अनात्मनां रागादीनामकारक एव, अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोर्द्वैविध्योपदेशान्यथानुपपत्तेः । यः खलु अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोर्द्रव्यभावभेदेन द्विविधोपदेशः स

णादव्वो तावत्कालं परमसमाधेरभावात् स चाज्ञानी जीव. कर्मणा कारको भवतीति ज्ञातव्यः। किं चाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च कर्मणां कर्तृ, न च ज्ञानी जीवः । यदि स एव कर्ता भवति ? तदा सर्वदैव कर्तृत्वमेव । कस्मात् ? इति चेत्, जीवस्य सदैव विद्यमानत्वात् इति । अप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं पुनरनित्यं रागादिविकल्परूपं, तच्च स्वस्थभावच्युताना भवति न सर्वदैव । तेन किं सिद्धं ? यदा स्वस्थभावच्युतः सन् अप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानाभ्या परिणमति तदा कर्मणां कारको भवति । स्वस्थभावे पुनरकारकः इति भावार्थः । एवमज्ञानिजीवपरिणतिरूपमप्रतिक्रमणमत्याख्यानं च बधकारणं न च ज्ञानी जीवः इति व्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टमस्थले गाथात्रयं गतं ॥ अथ निर्विकल्पसमाधिरूपनिश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्यानरहिताना जीवाना योऽसौ बंधो भणितः

[तावत्] तब तक [सः] वह आत्मा [कर्ता भवति] कर्ता होता है [ज्ञातव्यः] ऐसा जानना ॥ **टीका**—आत्मा आपसे रागादि भावोंका अकारक ही है क्योंकि आप ही कारक हो तो अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान इनके द्रव्यभाव इन दोनों भेदोंके उपदेशकी अप्राप्ति आती है । जो निश्चयकर अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानके दो प्रकार (भेद) का उपदेश है वह उपदेश द्रव्य और भावके निमित्त नैमित्तिक भावको विस्तारता हुआ आत्माके अकर्तापनको जतलाता हूं । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि परद्रव्य तो निमित्त है और नैमित्तिक आत्माके रागादिक भाव हैं । यदि ऐसा न माना जाय तो द्रव्य अप्रतिक्रमण और द्रव्य अप्रत्याख्यान इन दोनोंके कर्तापनके निमित्तपनेका उपदेश है वह व्यर्थ ही हो जायगा । और उपदेशके अनर्थक होनेसे एक आत्माके ही रागादिक भावके निमित्तपनेकी प्राप्ति होनेपर सदा (नित्य) कर्तापनका प्रसंग आयेगा, उससे मोक्षका अभाव सिद्ध होगा । इसलिये आत्माके रागादि भावोंका निमित्त परद्रव्य ही रहे । ऐसा होनेपर आत्मा रागादिभावोंका अकारक ही है यह सिद्ध हुआ । तो भी जबतक रागादिकका निमित्तभूत परद्रव्यका प्रतिक्रमण तथा प्रत्याख्यान न करे तबतक नैमित्तिकभूतरागादिभावोंका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान नहीं होता । और जबतक इन भावोंका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान न

द्रव्यभावयोर्निमित्तनैमित्तिकभावं प्रथयन्नकर्तृत्वमात्मनो ज्ञापयति । तत एतत् स्थितं, परद्रव्यं निमित्तं नैमित्तिका आत्मनो रागादिभावाः । यद्येवं नेष्येत तदा द्रव्याप्रतिक्रमणाप्रत्याख्यानयोः कर्तृत्वनिमित्तत्वोपदेशोऽनर्थक एव स्यात् तदनर्थकत्वे त्वेकस्यैवात्मनो रागादिभावनिमित्तत्वापत्तौ नित्यकर्तृत्वानुषंगान्मोक्षाभावः प्रसजेच्च । ततः परद्रव्यमेवात्मनो रागादिभावनिमित्तमस्तु । तथासति तु रागादीनामकारक एवात्मा, तथापि यावन्निमित्तभूतं द्रव्यं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे च तावन्नैमित्तिकभूतं भावं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे च, यावत्तु भावं न प्रतिक्रामति न प्रत्याचष्टे तावत्कर्तैव स्यात् । यदैवं निमित्तभूत द्रव्यं

स च हेयस्याशेषस्य नरकादिदुःखस्य कारणत्वाद्धेयः । तस्य बंधस्य विनाशार्थं विशेषभावनामाह—सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोहं, उदासीनोहं, निरंजननिजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः प्राप्यः, भरितावस्थोऽहं, राग—द्वेष—मोह—क्रोध—मान—माया—लोभ—पंचेंद्रियविषयव्यापार, मनोवचनकायव्यापार—भावकर्म—नोकर्म—ख्याति—पूजा—लाभ—दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामर-

---

हो तबतक रागादिभावोंका कर्ता ही है । जिससमय रागादिभावोंका निमित्तभूत द्रव्योंका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान करता है उसीसमय नैमित्तिकभूत रागादिभावोंका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान होता है । तथा जिससमय इन भावोंका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान हुआ उससमय साक्षात् अकर्ता ही है ॥ **भावार्थ**—प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानका द्रव्यभावके भेदसे दो तरहका उपदेश है सो यहां शुद्धनय प्रधान कथन है इसलिये निषेध प्रधानकर वर्णन है । अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान कहते हैं—जो अतीतकालमें परद्रव्यका ग्रहण किया उसको अब अच्छा समझे उसका संस्कार रहे ममत्व रहे वह तो द्रव्य अप्रतिक्रमण है और उस परद्रव्यके ग्रहणके निमित्तसे रागादिकभाव जो हुए थे उनको वर्तमानमें अच्छा समझे उनसे ममत्वसंस्कार रहे वह भाव अप्रतिक्रमण है । तथा आगामी कालमें परद्रव्यकी वांछाकर ममत्व रखे वह द्रव्य अप्रत्याख्यान है और उसके निमित्तसे आगामी कालमें होनेवाले रागादिभावोंकी वांछा रखना ममत्व रखना वह भाव अप्रत्याख्यान है । सो यह द्रव्य अप्रतिक्रमण भाव अप्रतिक्रमण तथा द्रव्य अप्रत्याख्यान भाव अप्रत्याख्यान ऐसे दो प्रकारका उपदेश है वह द्रव्य भावके निमित्तनैमित्तिक भावको जनाता है । परद्रव्य तो निमित्त है और नैमित्तिक रागादिकभाव हैं । सो जबतक निमित्तभूत परद्रव्यका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान इस आत्माके है तबतक तो रागादिभावोंका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है और जबतक रागादिभावोंका अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है तबतक रागादिभावोंका कर्ता ही है । तथा जिससमय

प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च तदैव नैमित्तिकभूतं भावं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च । यदा तु भावं प्रतिक्रामति प्रत्याचष्टे च तदा साक्षादकर्तैव स्यात् ॥ २८३ ॥ २८४ ॥ २८५ ॥

द्रव्यभावयोर्निमित्तनैमित्तिकभावोदाहरणं चैतत्;—

आधाकम्माईया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
कह ते कुव्वइ णाणी परदव्वगुणा उ जे णिच्चं ॥ २८६ ॥
आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं ॥ २८७ ॥

हित. शून्योऽहं जगत्त्रये कालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन, तथा सर्वे जीवाः इति निरंतरं भावना कर्तव्या ॥ २८३ ॥ २८४ ॥ २८५ ॥

अथाहारविषये सरसविरसमानापमानादिचिंतारूपरागद्वेषकारणाभावादाहारग्रहणकृतो ज्ञानिनां बंधो नास्ति, इति कथयति;—

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
कहमणुमण्णदि अण्णेण कीरमाणा परस्स गुणा ॥
आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम कारविदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥

अधाकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य ये इमे दोषाः । कथमनुमन्यते अन्येन क्रियमाणाः परस्य

निमित्तभूत परद्रव्यका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान करे उससमय नैमित्तिक रागादिभावोंका भी प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान हो जाता है और जब रागादिभावोंका प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान हो जाय तब साक्षात् अकर्ता ही है । इसतरह आत्मा स्वयमेव तो रागादिभावोंका अकर्ता ही है ऐसा पर द्रव्यका निमित्त कहनेसे जाना जाता है ॥ २८३।२८४।२८५ ॥

आगे द्रव्यके और भावके निमित्त नैमित्तिक भावका उदाहरण कहते हैं;—**[अधःकर्माद्याः ये इमे]** अधःकर्मको आदि लेकर जो ये **[पुद्गलद्रव्यस्य दोषाः]** पुद्गलद्रव्यके दोष हैं **[तान्]** उनको **[ज्ञानी]** ज्ञानी **[कथं करोति]** कैसे करे ? **[तु]** क्योंकि **[ये]** ये **[नित्यं]** सदा ही **[परद्रव्यगुणाः]** पुद्गल द्रव्यके गुण हैं **[च]** और **[इदं]** यह **[अधःकर्मोद्देशिकं]** अधःकर्म व उद्देशिक हैं वे **[पुद्गलमयं द्रव्यं]** पुद्गलमय द्रव्य हैं उनको यह ज्ञानी जानता है कि **[यत्]** जो **[नित्यं]** सदा **[अचेतनं उक्तं]** अचेतन कहे हैं **[तत्]** वे **[मम]** मेरे **[कृतं]** किये **[कथं भवति]** कैसे हो सकते हैं ? ॥ **टीका—** जैसे अधःकर्मकर और उद्देशकर उत्पन्न जो आहार आदिक पुद्गल द्रव्य हैं वे भावोंको निमित्तभूत हैं । जैसा भक्षण करे वैसा भाव होता है सो ऐसे द्रव्यको अप्रत्याख्यानरूप

अधःकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य य इमे दोषाः ।
कथं तान् करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणास्तु ये नित्यं ॥ २८६ ॥
अधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलमयमिदं द्रव्यं ।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥ २८७ ॥

यथाधःकर्मनिष्पन्नमुद्देशनिष्पन्नं च पुद्गलद्रव्यनिमित्तभूतमप्रत्याचक्षाणो नैमित्तिकभूतं बंधसाधकं भावं न प्रत्याचष्टे तथा समस्तमपि परद्रव्यमप्रत्याचक्षाणस्तन्निमित्तकं भावं न प्रत्याचष्टे । यथा चाधःकर्मादीन् पुद्गलद्रव्यदोषान्न नाम करोत्यात्मा परद्रव्यपरिणामत्वे

गुणाः ॥ स्वयं पाकेनोत्पन्न आहार अधाकर्मशब्देनोच्यते तत्प्रभृतिव्याख्यानं करोति—अधाकर्माद्या ये इमे दोषाः, कथंभूताः? शुद्धात्मनः सकाशात्परस्याभिन्नस्याहाररूपपुद्गलद्रव्यस्य गुणाः । पुनरपि कथंभूताः? तस्यैवाहारपुद्गलस्य पचनपाचनादिक्रियारूपाः तान्निश्चयेन कथं करोतीति ज्ञानीति प्रथमगाथार्थः । अनुमोदयति वा कथमिति द्वितीयगाथार्थः । परेण गृहस्थेन क्रियमाणान्, न कथमपि । कस्मात्? निर्विकल्पसमाधौ सति आहारविषयमनोवचनकायकृतकारितानुमननाभावात् इत्याधाकर्मव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ २८६ ॥ आहारग्रहणात्पूर्वं तस्य पात्रस्य निमित्तं यत्किमप्यशनपानादिकं कृतं तदौपदेशिकं भण्यते, तेनौपदेशिकेन सह

करता (त्याग न करता) जो मुनि वह उस द्रव्यके नैमित्तिकभूत और बंधके साधक ऐसे भावोंको भी त्याग नहीं करता, उसीतरह समस्त परद्रव्यको जो नहीं त्यागता है वह उसके निमित्तसे हुए भावोंको भी नहीं त्यागता । तथा जैसे अधःकर्म आदिक पुद्गलद्रव्योंको आत्मा नहीं करता, क्योंकि ये पर पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं उसपनेके होनेपर आत्माके कार्यपनेका इनके अभाव है, इसकारण ज्ञानी ऐसा जानता है कि अधःकर्म उद्देशिक पुद्गलद्रव्य हैं वे मेरे कार्य नहीं हैं क्योंकि ये नित्य ही अचेतन होनेसे मेरे कार्यपनेका इनके अभाव है । ऐसे तत्त्वज्ञानपूर्वक निमित्तभूत पुद्गलद्रव्यको त्यागताहुआ मुनि बंधके साधक नैमित्तिकभूत भावको भी त्यागता है; उसीतरह समस्त परद्रव्यको त्याग करता हुआ उस परद्रव्यके निमित्तसे हुए भावोंको भी त्यागता है । इसतरह द्रव्य और भाव इन दोनोंका आपसमें निमित्तनैमित्तिकभाव है

भावार्थ—यह द्रव्य और भावका निमित्तनैमित्तिकपना उदाहरणसे दृढ (पुष्ट) किया है । जैसे लौकिक जन कहते हैं कि जैसा अन्न खाय वैसी ही बुद्धि हो जाती है, उसीतरह शास्त्रमें उदाहरण है—कि, जो पापकर्मकर आहार उत्पन्न हो उसे **अधःकर्म** निष्पन्न कहते हैं तथा जो आहार किसीके निमित्त बनाहुआ हो उसे **उद्देशिक** कहते हैं । ऐसा आहार जो पुरुष सेवन करे उसके वैसे ही भाव होते हैं इसतरह द्रव्य भावका निमित्तनैमित्तिकभाव है, उसीतरह समस्त द्रव्योंका निमित्तनैमित्तिक-

---

१ ण मुंचदि तेण कम्मबंधेण पाठोय तात्पर्यवृत्तौ ।

सति आत्मकार्यत्वाभावात् । ततोऽधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलद्रव्यं न मम कार्यं नित्यमचेतनत्वे सति मत्कार्यत्वाभावात् इति तत्त्वज्ञानपूर्वकं पुद्गलद्रव्यं निमित्तभूतं प्रत्याचक्षाणो नैमित्तिकभूतं बंधसाधकं भावं प्रत्याचष्टे तथा समस्तमपि परद्रव्यं प्रत्याचक्षाणस्तन्निमित्तं भावं प्रत्याचष्टे । एवं द्रव्यभावयोरस्ति निमित्तनैमित्तिकभावः । "इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्तन्मूलं बहुभावसंततिमिमामुद्धर्तुकामः समं । आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतं येनोन्मूलितबंध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥ १७८ ॥

तदेवाधाकर्म पुनरपि गाथाद्वयेन कथ्यते—अधाकर्मौपदेशिक च पुद्गलमयमेतद्द्रव्य । कथं तन्मम कारितं यन्नित्यमचेतनमुक्तं ॥ यदिदमाहारकपुद्गलद्रव्यमधाकर्मरूपमौपदेशिकं च चेतनशुद्धात्मद्रव्यपृथक्त्वेन नित्यमेवाचेतनं भणितं तत्कथ मया कृत भवति कारित वा कथ भवति ? न कथमपि । कस्माद्धेतोः ? निश्चयरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञाने सति आहारविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमानाभावात् । इत्यौपदेशिकव्याख्यानमुख्यत्वेन च गाथाद्वयं गत । अयमत्राभिप्रायः । पश्चात्पूर्वं सप्रतिकाले वा योग्याहारादिविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमतरूपैर्नवभिर्विकल्पैः शुद्धास्तेषां परकृताहारादिविषये बंधो नास्ति । यदि पुनः परकीयपरिणामेन बंधो भवति तर्हि क्वापि काले निर्वाण नास्ति । तथा चोक्तं । णवकोडिकम्म-

---

भाव जानना । ऐसा होनेपर जो परद्रव्यको ग्रहण करता है उसके रागादिभाव भी होते हैं उनका कर्ता भी होता है तब कर्मका बंध भी करता है । और जब ज्ञानी हो जाता है तब किसीके ग्रहण करनेका राग नहीं रागादिरूप परिणमन भी नहीं तब आगामी कर्मबंध भी नहीं । इसतरह ज्ञानी परद्रव्यका कर्ता नहीं है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप १७८ वां काव्य कहते परद्रव्यके त्यागका उपदेश करते हैं—**इत्यालोच्य** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष इसतरह परद्रव्यका और अपने भावका निमित्तनैमित्तिकपना विचारकर उससमस्त परद्रव्यको अपने बलसे (पराक्रम—उद्यमसे) त्यागकर तथा परद्रव्य जिसका मूल है ऐसे बहुत भावोंकी परिपाटीको दूरसे युगपत् (एक समयमें) उडानेको चाहताहुआ अतिशयसे वहनेवाला प्रवाहरूप धारावाही पूर्ण एक संवेदनकरयुक्त जो अपना आत्मा उसे प्राप्त होता है । जिससे कि जिसने कर्मबंधन मूलसे उखाड़ दियें हैं, ऐसा भगवान् यह आत्मा आपमें ही स्फुरायमान (प्रकट) होता है ॥ **भावार्थ**—परद्रव्य और अपने भावका निमित्तनैमित्तिकभाव जान समस्त परद्रव्यको त्यागे तब समस्त रागादिभावोंकी संतती कट जाती है, उससमय आत्मा अपना ही अनुभव करताहुआ कर्मके बंधनको काट आपमें ही प्रकाशरूप प्रगट होता है । इसलिये जो अपना हित चाहते हैं वे ऐसे करो ॥ अब बंधका अधिकार पूर्ण किया । उसके अंतमंगलरूप ज्ञानकी महिमाका अर्थरूप १७९ वां कलशकाव्य कहते हैं—**रागादि** इत्यादि । **अर्थ**—जिसने अज्ञानरूप अंधकार दूर करदिया है और इसतरह अच्छी रीतिसे सजी (तयार हुई) है कि इसका फैलाव

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां कार्यं बंधं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य । ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत्तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्या वृणोति ॥ ॥ १७९ ॥" २८६ ॥ २८७ ॥ इति बंधो निष्क्रांतः ।

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ बंध-प्ररूपकः सप्तमोऽकः ॥ ७ ॥

सुद्धो पच्छा पुरदो य संपदियकाले । परसुहदुक्खणिमित्तं वज्झदि जदि णत्थि णिव्वाण ॥ एवं ज्ञानिनामाहारग्रहणकृतो बंधो नास्तीति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयेन षष्टस्थलं गतं॥२८७॥

इति **श्रीजयसेनाचार्य**कृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां **तात्पर्यवृत्तौ** पूर्वोक्तक्रमेण **जह णाम कोवि पुरिसो** इत्यादि मिथ्यादृष्टिसदृष्टिव्याख्यानरूपेण गाथादशकं । निश्चयहिंसाकथनरूपेण गाथासप्तकं, निश्चयेन रागादिविकल्प एव हिंसेति कथनरूपेण सूत्रषट्कं, अव्रतव्रतानि पापपुण्यबंधकारणानीत्यादिकथनेन गाथापंचदश, निश्चयनयेन स्थित्वा व्यवहारस्त्याज्य इति मुख्यत्वेन गाथाषट्कं, पिंडशुद्धिमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं । निश्चयनयेन रागादयः कर्मोदयजनिता इति कथनमुख्यत्वेन सूत्रपंचकं, निश्चयनयेनाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च बधकारणमिति प्रतिपादनरूपेण गाथात्रयमित्येवं समुदायेन षट्पंचाशद्गाथाभिरष्टभिरंतराधिकारैः अष्टमो **बंधाधिकारः** समाप्तः ॥ ७ ॥

दूसरा कोई नहीं आवरण करसके ऐसी यह ज्ञानज्योति है । क्या करके सजी ? उसीको कहते हैं—पहले तो बंधके कारणरूप रागादिकभावोंके उदयको निर्दयकी तरह (जैसे निर्दयी पुरुष किसीको मार डाले उसतरह) विदारती प्रगट हुई, पीछे जब कारण दूर हुए तब उनका कार्य जो कर्मका ज्ञानावरणादिरूप अनेक प्रकार बंध उसको अब तत्काल ही दूर करके सजी है ॥ **भावार्थ**—जब ज्ञान प्रगट होता है तब रागादिक नहीं रहते, उनका कार्य बंध भी नहीं रहता तब फिर इसको आवरण करनेवाला कोई नहीं रहता, सदाकाल प्रकाशरूप ही रहती है ॥ २८६।२८७ ॥

इसतरह रंगभूमिमें बंधके स्वांगने प्रवेश किया था सो जब ज्ञान ज्योति प्रगट हुई तब बंध स्वांगको दूर कर निकल गया ॥ यहांतक गाथा २८७ और कलश १७९ हुए ।

सवैयातेईसा—"जो नर कोय परै रजमांहि सचिक्कण अंग लगै वह गाढै,
त्यों मतिहीन जु रागविरोध लिये विचरे तब बंधन वाढै ।
पाय समै उपदेश यथारथ रागविरोध तजै निज चाटै ।
नांहि बंधै तब कर्मसमूह जु आप गहै पर भावनि काटै ॥ १ ॥"

इसप्रकार श्री **पं० जयचंद्र**कृत समयसार नामा ग्रंथकी आत्मख्यातिनामक टीकाकी भाषावचनिकामें **बंध** नामा सातवां अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

अथ मोक्षाधिकारः ॥ ८ ॥

अथ प्रविशति मोक्षः । "द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बंधपुरुषौ नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलंभैकनियतं । इदानीमुन्मज्जन् सहजपरमानंदसरसं परं पूर्ण ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥ १८० ॥"

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयह्मि चिरकालपडिवद्धो ।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणए तस्स ॥ २८८ ॥

तत्रैवं सति पात्रस्थानीयशुद्धात्मनः सकाशात्पृथग्भूत्वा श्रृंगारस्थानीयबंधो निष्क्रात. । **अथ प्रविशति मोक्षः–जह णाम कोवि पुरिसो** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा यथाक्रमेण द्वाविंशतिगाथापर्यंतं मोक्षपदार्थव्याख्यान करोति—तत्रादौ मोक्षपदार्थस्य संक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथासप्तकं, तदनतरं मोक्षकारणभूतभेदविज्ञानसंक्षेपसूचनार्थं **बंधाणं च सहावं** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं, अतः परं तस्यैव भेदज्ञानस्य विशेषविवरणार्थं **पण्णाए घेत्तव्वो** इत्यादि सूत्रपंचकं, तदनंतरं वीतरागचारित्रसहितस्य द्रव्यप्रतिक्रमणादिक विषकुंभः सरागचारित्रस्यामृ-

---

अथ **मोक्षाधिकार । दोहा**—"कर्मबंध सब काटिके, पहुंचे मोक्ष सुथान । नमू सिद्ध परमातमा, करूं ध्यान अमलान ॥" अब टीकाकारके वचन कहते हैं कि यहां मोक्षतत्त्व प्रवेश करता है । जैसे नृत्यके अखाडेमें स्वांग प्रवेश करता है वहां ज्ञान सब स्वांगके जाननेवाला है इसलिये सम्यग्ज्ञानकी महिमारूप मंगल अधिकारके आदिमें १८० वें काव्यसे कहते हैं—**द्विधाकृत्य** इत्यादि । **अर्थ**—अब बंध पदार्थके बाद पूर्ण ज्ञान है वह प्रज्ञारूप करोंतसे विदारण करके बंध और पुरुषको जुदे २ दो कर और पुरुषको साक्षात् मोक्षमें प्राप्त करता हुआ जयवंत प्रवर्ते रहा है । कैसा है पुरुष ? अपने स्वरूपके साक्षात् अनुभव कर निश्चित है । ज्ञान कैसा है ? उदय हुआ जो अपना स्वाभाविक परम आनंद उससे सरस (रसभरा) है, उत्कृष्ट है और जिसने करने योग्य समस्त कार्य कर लिये हैं अब कुछ करना नहीं रहा ॥ **भावार्थ**—ज्ञान है वह बंध पुरुषको जुदेकर पुरुषको मोक्ष प्राप्त करता हुआ अपना संपूर्ण स्वरूप प्रगट कर जयवंत प्रवर्ते रहा है इसका सर्वोत्कृष्टपना कहना यही मंगलवचन है ॥ आगे कहते हैं कि मोक्षकी प्राप्ति कैसे होती है ? उस जगह प्रथम तो जो बंधका छेद नहीं करते और बंधका स्वरूप ही जान संतुष्ट है वे मोक्ष नहीं पाते ऐसा कहते हैं;—[**नाम**] अहो देखो [**यथा**] जैसे [**कश्चित् पुरुषः**] कोई पुरुष [**बंधनके**] बंधनमे [**चिरकालप्रतिबद्धः**] बहुत कालका बंधाहुआ [**तस्य**] उस बंधनके [**तीव्रमंदस्वभावं**] तीव्रमंद (गाढे ढीले) स्वभावको [**च**] और [**कालं**] कालको [**वि-**

जइ णवि कुणइ च्छेदं ण मुच्चए तेण बंधणवसो सं ।
कालेण उ वहुएणवि ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥ २८९ ॥
इय कम्मबंधणाणं पएसठिइपयडिमेवमणुभागं ।
जाणंतोवि ण मुच्चइ मुच्चइ सो चेव जइ सुद्धो ॥ २९० ॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषो बंधनके चिरकालप्रतिबद्धः ।
तीव्रमंदस्वभावं कालं च विजानाति तस्य ॥ २८८ ॥
यदि नापि करोति छेदं न मुच्यते तेन बंधनवशः सन् ।
कालेन तु बहुकेनापि न स नरः प्राप्नोति विमोक्षं ॥ २८९ ॥

तर्कुभ इति युक्तिसूचनमुख्यत्वेन **तेयादी अवरोहे** इत्यादि सूत्रपट्कं कथयतीति द्वाविंशतिगाथाभिः स्थलचतुष्टये मोक्षाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—विशिष्टभेदज्ञानावष्टंभेन बंधात्मनोः पृथक्करणं मोक्ष इति प्रतिपादयति;—**जह णाम** इत्यादि । यथा कश्चित्पुरुषः बंधनके चिरकालबद्धस्तिष्ठति तस्य बंधस्य तीव्रमंदस्वभावं जानाति दिवसमासादिकालं च विजानाति इति प्रथमगाथा गता । जानन्नपि यदि बंधच्छेद न करोति तदा न मुच्यते तेन कर्मबंधविशेषेणामुच्यमानः सन् पुरुषो बहुतरकालेऽपि मोक्षं न लभते इति गाथाद्वयेन दृष्टांतो गतः । अथ **इय कम्मबंधणाणं पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभागं जाणंतोवि ण मुंचदि** एवं ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नकर्मबंधनानां प्रदेशं प्रकृतिस्थिती, अनुभागं च जानन्नपि कर्मणा न मुंचति । **मुंचदि सव्वे जदि विसुद्धो** यदा मिथ्यात्वरागादिरहितो भवति तदाऽनंतज्ञानादिगुणात्मकपरमात्मस्वरूपे स्थितः सर्वान्कर्मबंधान् मुंचति । अथवा पाठांतरं **मुंचदि सव्वे जदि स बंधे** मुच्यते कर्मणा यदि किं, सिस्यति छिनत्ति । कान् ?

जानाति] जानता है कि इतने कालका बंध है । [**यदि**] जो उस बंधनको आप [**छेदं**] काटता [**नापि करोति**] नहीं है [**तेन बंधनवशः सन्**] तो उस बंधनके वशहुआ ही रहता है उसकर छूटता नहीं है ऐसा [**स नरः**] वह पुरुष [**बहुकेनापि**] बहुत [**कालेन अपि**] कालमें भी [**विमोक्षं न प्राप्नोति**] उस बंधसे छूटनेरूप मोक्षको नहीं पाता [**इति**] उसी प्रकार जो पुरुष [**कर्मबंधनानां**] कर्मके बंधनोंके [**प्रदेशस्थितिप्रकृतिं अनुभागं**] प्रदेश स्थिति प्रकृति और अनुभाग ये भेद हैं [**एवं जानन्नपि**] ऐसा जानता है तौ भी वह [**न मुच्यते**] कर्मसे नहीं छूटता [**यदि शुद्धः**] जो आप रागादिकको दूर कर शुद्ध हो [**स एव च**] वही [**मुच्यते**] छूटता है ॥ **टीका**—आत्मा और बंधका जुदा जुदा करना मोक्ष है । वहां कोई ऐसा कहते हैं कि बंधके स्वरूपके ज्ञानमात्रसे ही मोक्ष है बंधका स्वरूप जानना ही मोक्षका कारण है । ऐसा कहना असत्य है, क्योंकि

इति कर्मबंधनानां प्रदेशस्थितिप्रकृतिमेवमनुभागं ।
जानन्नपि न मुच्यते मुच्यते स चैव यदि शुद्धः ॥ २९० ॥

आत्मबंधयोर्द्विधाकरणं मोक्षः, बंधस्वरूपज्ञानमात्रं तद्धेतुरित्येके तदसत्, न कर्मबद्धस्य बंधस्वरूपज्ञानमात्रं मोक्षहेतुरहेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधस्वरूपज्ञानमात्रवत् । एतेन कर्मबंधप्रपंचरचनापरिज्ञानमात्रसंतुष्टा उत्थाप्यंते ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावइ विमोक्खं ॥ २९१ ॥

सर्वबंधान् । अनेन व्याख्यानेन ये प्रकृत्यादिबंधपरिज्ञानमात्रेण संतुष्टास्ते प्रतिबोध्यंते । कथं ? इति चेत्, बंधपरिज्ञानमात्रेण स्वरूपोपलब्धिरूपवीतरागचारित्ररहितानां स्वर्गादिसुखनिमित्तभूतः पुण्यबंधो भवति न च मोक्ष इति दार्ष्टांतगाथा गता । एतेन व्याख्यानेन कर्मबंधप्रपंचरचनाविषये चिंतामात्रपरिज्ञानेन संतुष्टा निराक्रियंते ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥ **जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं** यथा कश्चित्पुरुषो बंधनबद्धो बंधं चिंतयमानो मोक्षं न लभते **तह बंधं चिंतंतो जीवोवि ण पावदि विमोक्खं** तथा

ऐसा अनुमानका प्रयोग है कि, कर्मसे बंधे पुरुषके बंधके स्वरूपका ज्ञानमात्र ही मोक्षका कारण नहीं है क्योंकि यह जानना ही कर्मसे छूटनेका हेतु नहीं है, जैसे बेडी आदिसे बंधे हुए पुरुषके उस बेडी आदि बंधनके स्वरूपका जानना मात्रपन ही बेडी आदि कटनेका कारण नहीं होता, उसी तरह कर्मके बंधका स्वरूप जानने मात्रसे ही कर्मबंधसे नहीं छूटता । इस कथनसे कर्मके बंधके विस्तारकी रचनाके (अनेक प्रकार होनेके) जाननेमात्रसे ही जो कोई अन्यमती आदि मोक्ष मानते हैं वे उसके ज्ञानमात्रमें ही संतुष्ट हैं उनका खंडन किया है ॥ **भावार्थ**—कोई अन्यमती ऐसा मानते हैं कि बंधका स्वरूप जाननेसे मोक्ष है उनके कहनेका इस कथनकर निराकरण जानना । जाननेमात्रसे ही बंध नहीं कटता बंध तो काटनेसे ही कटता है ॥ २८८।२८९।२९० ॥

आगे कहते हैं कि बंधकी चिंता करनेपर भी बंध नहीं कटता,—**[यथा]** जैसे कोई **[बंधनबद्धः]** बंधनकर बंधा हुआ पुरुष **[बंधान् चिंतयन्]** उन बंधोंको विचारता हुआ (उसका सोच करता हुआ) भी **[विमोक्षं]** मोक्षको **[न प्राप्नोति]** नहीं पाता **[तथा]** उसी तरह **[बंधान् चिंतयन्]** कर्मबंधको चिंता करता हुआ **[जीवोपि]** जीव भी **[विमोक्षं]** मोक्षको **[न प्राप्नोति]** नहीं पाता ॥ **टीका**-अन्य कोई ऐसा मानते हैं कि बंधकी चिंताका प्रबंध मोक्षका कारण है यह भी मानना असत्य है । यहां भी अनुमानका प्रयोग ऐसा ही है कि कर्मबंधनकर बंधे हुए पुरुषके उस बंधकी चिंताका जो प्रबंध है कि, यह बंध कैसे छूटेगा ? इस रीतिसे मनको लगाये,

यथा बंधंचिंतयन् बंधनबद्धो न प्राप्नोति विमोक्षं ।
तथा बंधांश्चिंतयन् जीवोऽपि न प्राप्नोति विमोक्षं ॥ २९१ ॥

बंधचिंताप्रबंधो मोक्षहेतुरित्यन्ये तदप्यसत्, न कर्मबद्धस्य बंधचिंताप्रबंधज्ञानमात्रं मोक्षहेतुरहेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधचिताप्रबंधवत् । एतेन कर्मबंधविषयचिंताप्रबंधात्मकविशुद्धधर्मध्यानांधबुद्धयो बोध्यंते ॥ २९१ ॥

कस्तर्हि मोक्षहेतुः ? इति चेत्;—

जह बंधे छित्तूण य बंधणबद्धो उ पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥ २९२ ॥

जीवोऽपि प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधं चिंतयमानः स्वशुद्धात्मावाप्तिलक्षणं मोक्षं न लभते । किं च समस्तशुभाशुभबहिर्द्रव्यालंबनरहितचिदानंदैकशुद्धात्मावलंबनस्वरूपवीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानरहितो जीवः, बंधप्रपंचरचनाचिंतारूपसरागधर्मध्यानशुभोपयोगेन स्वर्गादिसुखकारणपुण्यबंधं लभते न च मोक्षमिति भावार्थः ॥ २९१ ॥ अथ कस्तर्हि मोक्षहेतुरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;— **जह बंधे मुत्तूण य बंधणबद्धो य पावदि विमोक्खं तह बंधे मुत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं** यथा बंधनबद्धः कश्चित्पुरुषो रज्जुबंधं श्रृंखलाबंधं काष्ठनिगलबंधं वा कमपि बंधं छित्वा कमपि भित्वा कमपि मुक्त्वा स्वकीयविज्ञानपौरुषबलेन मोक्षं प्राप्नोति । तथा जीवोऽपि वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानयुद्धेन बंधं छित्त्वा द्विधा कृत्वा भित्त्वा विदार्य मुक्त्वा छोटयित्वा च निजशुद्धात्मोपलंभस्वरूपमोक्षं प्राप्नोतीति । अत्राह शिष्यः—प्राभृतग्रंथे यन्निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं भण्यते तन्न घटते । कस्मात् ? इति चेत् तदुच्यते—सत्तावलोकनरूपं चक्षु-

---

वह भी बंधके अभावरूप मोक्षका कारण नहीं है क्योंकि यह चिंताका प्रबंध बंधसे छूटनेका हेतु नहीं है । जैसे बेडी (सांकल) से बंधा हुआ पुरुष उस बंधकी चिंता ही किया करे छूटनेका उपाय न करे वह उस बेडी आदिके बंधनसे नहीं छूटता उसीतरह कर्मबंधकी चिंता प्रबंधसे मोक्ष नहीं है । इसकथनसे कर्मबंधमें चिंताप्रबंधस्वरूप विशुद्ध धर्मध्यानकर जिनकी बुद्धि अंधी है उनको समझाया है ॥ **भावार्थ**—कर्मबंधकी चिंतामें मन लगा रहे सोच किया करे तौ भी मोक्ष नहीं होती । यह धर्मध्यानरूप शुभपरिणाम है । जो केवल शुभपरिणामसे ही मोक्ष मानते है उनको उपदेश है कि शुभपरिणामसे मोक्ष नहीं होती ॥ २९१ ॥

आगे पूछते हैं कि यदि बंधके स्वरूपके ज्ञानसे भी मोक्ष नहीं और उसका सोच करनेसे भी मोक्ष नहीं तो मोक्षका कारण क्या है ? ऐसा पूछनेपर मोक्ष होनेका उपाय कहते हैं;—[**यथा च**] जैसे [**बंधनबद्धः**] बंधनसे बंधा पुरुष [**बंधान् छित्वा तु**] बंधनको छेदकर [**विमोक्षं**] मोक्षको [**प्राप्नोति**] पाता है [**तथा च**] उसीतरह [**बंधान् छित्वा**] कर्मके बंधनको छेदकर [**जीवः**] जीव [**विमोक्षं प्राप्नोति**]

यथा बंधांश्छित्वा च बंधनबद्धस्तु प्राप्नोति विमोक्षं ।
तथा बंधांश्छित्वा च जीवः संप्राप्नोति विमोक्षं ॥ २९२ ॥

कर्मबद्धस्य बंधच्छेदो मोक्षहेतुः, हेतुत्वात् निगडादिबद्धस्य बंधच्छेदवत् । एतेन उभयेऽपि पूर्वं आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे व्यापार्यते ॥ २९२ ॥

किमयमेव मोक्षहेतुः ? इतिचेत्;—

बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणई ॥ २९३ ॥

रादिदर्शनं यथा जैनमते निर्विकल्पं कथ्यते तथा बौद्धमते ज्ञान निर्विकल्पं भण्यते परतु तन्निर्विकल्पमपि विकल्पजनकं भवति । जैनमते तु विकल्पस्योत्पादक भवत्येव न किंतु स्वरूपेणैव सविकल्पमिति तथैव स्वपरप्रकाशक चेति । तत्र परिहारः—कथचित्सविकल्पमपि च कथं चिन्निर्विकल्प च । तद्यथा—यथा विषयानंदरूपं सरागस्वसवेदनज्ञानं सरागसवित्तिविकल्परूपेण सविकल्पमपि शेषानीहितसूक्ष्मविकल्पाना सद्भावेऽपि सति तेषा मुख्यत्व नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । तथापि स्वशुद्धात्मसंवित्तिरूप वीतरागस्वसवेदनज्ञानमपि स्वसवित्याकारैकविकल्पेन सविकल्पमपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मविकल्पाना सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । यत एवेहापूर्वस्वसवित्याकारातर्मुख्यप्रतिभासेऽपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मविकल्पा अपि संति तत एव कारणात् स्वपरप्रकाशक च सिद्धं इदं निर्विकल्पसविकल्पस्य । तथैव स्वपरप्रकाशकस्य च ज्ञानस्य च व्याख्यान यथागमाध्यात्मतर्कशास्त्रानुसारेण विशेषेण व्याख्यायते तदा महान् विस्तरो भवति स चाध्यात्मशास्त्रत्वान्न कृतः । एवं मोक्षपदार्थसंक्षेपसूचनार्थं प्रथमस्थले गाथासप्तक गत ॥ २९२ ॥ अथ किमयमेव मोक्षमार्गः ? इति चेत्;—**बंधाणं च सहावं वियाणिदुं** भावबधाना मिथ्यात्वरागादीनां स्वभाव ज्ञात्वा कथ ज्ञात्वा ? । मिथ्यात्वस्वभावो हेयोपादेयविषये विपरीताभिनिवेशो भण्यते राग-

---

मोक्षको पाता है ॥ **टीका**—कर्मके बंधनको छेदना मोक्षका कारण है क्योंकि यह छेदना ही वहां कारण है । जैसे बेडी साकल आदिकर बंधे पुरुषके सांकलका बंध काटना ही छूटनेका कारण है उसी तरह इसकथनसे पहले कहे गये जो दो प्रकारके पुरुष 'एक तो बंधका स्वरूप जाननेवाला और एक बंधकी चिंता करनेवाला' उन दोनोंको आत्मा और बंधके जुदे २ करनेमें प्रेरणाकर व्यापार कराया गया है अर्थात् उपदेशकर उद्यम कराया है ॥ २९२ ॥

फिर पूछते हैं कि कर्मबंधनका छेदना मोक्षका कारण कहा वह इतना ही मोक्षका कारण है क्या ? ऐसा पूछनेपर उत्तर कहते हैं;—[**बंधानां च स्वभावं**] बंधोंका स्वभाव [**च**] और [**आत्मनः स्वभावं**] आत्माका स्वभाव [**विज्ञाय**] जान-

वंधानां च स्वभावं विज्ञायात्मनः स्वभावं च।
वंधेषु यो विरज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति ॥ २९३ ॥

य एव निर्विकारचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मस्वभावं तद्विकारकारकं वंधानां च स्वभावं विज्ञाय वंधेभ्यो विरमति स एव सकलकर्ममोक्षं कुर्यात्। एतेनात्मवंधयोर्द्विधाकरणस्य मोक्षहेतुत्वं नियम्यते ॥ २९३ ॥

केनात्मवंधो द्विधा क्रियते? इतिचेत्;—

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण उ छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ २९४ ॥

जीवो वंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्यां।
प्रज्ञाछेदकेन तु छिन्नौ नानात्वमापन्नौ ॥ २९४ ॥

दीना च स्वभावः पंचेंद्रियविषयेष्विष्टानिष्टपरिणाम इति। न केवलं वंधस्वभावं ज्ञात्वा **अप्पणो सहावं च** अनंतज्ञानादिस्वरूपं शुद्धात्मनः स्वभावं च ज्ञात्वा **वंधेसु जो ण रज्जदि** द्रव्यबंधहेतुभूतेषु मिथ्यात्वरागादिभाववंधेषु निर्विकल्पसमाधिवलेन यो न रज्यते **सो कम्मविमोक्खणं कुणदि** स कर्मविमोक्षणं करोति ॥ २९३ ॥ अथ केन कृत्वात्मवंधो द्विधा भवति? इति चेत्;—**जीवो वंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं** यथा जीवस्तथा वंधश्चैतौ द्वौ छिद्येते पृथक् क्रियेते। काभ्यां कृत्वा? स्वलक्षणरूपाभ्यां निजकाभ्या **पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा** प्रज्ञाछेदनैकलक्षणेन भेदज्ञानेन

कर [**यः**] जो पुरुष [**बंधेषु**] वंधोंमें [**विरज्यते**] विरक्त होता है [**सः**] वह पुरुष [**कर्मविमोक्षणं**] कर्मोंकी मोक्ष [**करोति**] करता है ॥ **टीका**—जो पुरुष निश्चयकर निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र तो आत्माका स्वभाव और उस आत्माके विकारका करनेवाला बंधोंका स्वभाव इन दोनोंको विशेषकर जानके उन बंधोंसे विरक्त होता है वही पुरुष समस्त कर्मोंके मोक्षको करता है। इस कथनकर आत्मा और वंधको जुदा २ करनेको मोक्षके कारणपनेका नियम किया है। दोनोंका जुदा २ करना ही नियमसे मोक्षका कारण है ऐसा नियमसे कहा गया है ॥ २९३ ॥

आगे फिर पूछते हैं कि आत्मा और वंध ये दोनों किससे जुदे करने? ऐसा पूछने पर उत्तर कहते हैं,—[**जीवः च बंधः**] जीव और वंध ये दोनों [**नियताभ्यां**] निश्चित [**स्वलक्षणाभ्यां**] अपने २ लक्षणोंकर [**प्रज्ञाछेदनकेन**] बुद्धिरूपी छैनीसे [**तथा**] इसतरह [**छिद्येते**] छेदने चाहिये [**तु**] कि जिस तरह [**छिन्नौ**] छेदेहुए [**नानात्वं**] नानापनको [**आपन्नौ**] प्राप्त हो जायं अर्थात् जुदे जुदे हो जायं ॥ **टीका**—आत्मा और वंधका जुदा जुदा करनारूप जो कार्य उसमे करनेवाला

आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे कार्ये कर्तुरात्मनः करणमीमांसायां निश्चयतः स्वतो भिन्नकरणासंभवात् भगवती प्रज्ञैव छेदनात्मकं करणं। तया हि तौ छिन्नौ नानात्वमवश्यमेवापद्येते ततः प्रज्ञैवात्मबंधयोर्द्विधाकरणं। ननु कथमात्मबंधौ चेत्यचेतकभावेनात्यंतप्रत्यासत्तेरेकीभूतौ भेदविज्ञानाभावादेकचेतकवद्व्यवह्रियमाणौ प्रज्ञया छेत्तुं शक्येते? नियतस्वलक्षणसूक्ष्मांतःसंधिसावधाननिपातनादिति बुध्येमहि। आत्मनो हि समस्तशेषद्रव्यासाधारणत्वाच्चैतन्यं स्वलक्षणं तत्तु प्रवर्तमानं यद्यदभिव्याप्य प्रवर्तते निवर्तमानं च यद्यदुपादाय निवर्तते तत्तत्समस्तमपि सहप्रवृत्तं क्रमप्रवृत्तं वा पर्यायजातमात्मेति लक्षणीयं तदे-

---

छिन्नौ संतौ नानात्वमापन्नौ इति। तथाहि–जीवस्य लक्षण शुद्धचैतन्यं भण्यते, बंधस्य लक्षणं

कर्ता आत्मा है उसके कारणका जब विचार किया जाय तब निश्चयनयकर आपसे जुदा करण नामा कारक तो असंभव है इसलिये ज्ञानस्वरूप बुद्धि ही छेदनस्वरूप करण है उस प्रज्ञाकर ही ये दोनों आत्मा और बंध छेदेहुए नानापनको अवश्य प्राप्त होते हैं अर्थात् जुदे २ हो जाते हैं। इसलिये प्रज्ञाकर ही आत्मा और बंधका जुदा जुदा करना है। यहां प्रश्न है कि आत्मा और बंध ये दोनों तो चेतकचेत्यभावकर अत्यंत निकटतासे एकसरीखे हो रहे है। आत्मा तो चेतक है और बंध चेत्य है सो दोनों एकरूप हुए अनुभवमें आते हैं। सो भेदविज्ञानके अभावसे एक चेतकरूप ही जो व्यवहारमें प्रवर्तते देखे जाते हैं वे प्रज्ञाकर कैसे छेदे जा सकते हैं? उसका समाधान आचार्य करते हैं–हम ऐसा जानते हैं कि आत्मा और बंधके निश्चित स्वलक्षणकी सूक्ष्म जो अंतरगकी संधि है उसमें इस प्रज्ञा छैनीको सावधान होके पटकनेसे दोनों जुदे जुदे हो जाते है। वहा आत्माका तो निजलक्षण निश्चयकर समस्त अन्यद्रव्योंसे असाधारणपनेसे जो अन्यमें न पायाजाय ऐसा चैतन्य स्वलक्षण है यह चैतन्यस्वलक्षण प्रवर्तता हुआ जिस जिस पर्यायको व्यापकर प्रवर्तता है तथा निवर्तता हुआ जिस जिस पर्यायको ग्रहणकर निवृत्त होता है वह वह समस्त सहवर्ती और क्रमवर्ती पर्यायोंका समूह ही आत्मा है ऐसा देखने योग्य है। यह लक्षण समस्त गुणपर्यायोंमें व्यापक है सो सभी गुणपर्यायोंका समुदाय आत्मा है ऐसा इस लक्षणसे जानना, क्योंकि आत्मा उसी एक लक्षणसे लक्ष्य है। तथा चैतन्यके समस्त सहवर्ती व क्रमवर्ती जो अनंतपर्याय हैं उसीका अविनाभावीपन है इसलिये चिन्मात्र ही आत्मा है ऐसा निश्चय करना। इसतरह दूसरा व्याख्यान है। और बंधका स्वलक्षण आत्मद्रव्यसे असाधारण रागादिक हैं, क्योंकि ये रागादिक आत्मद्रव्यसे साधारणपनको धारण करते हुए नहीं प्रतिभासते। इनके सदा ही चैतन्य चमत्कारसे भिन्नपनेकर प्रतिभासमानपन है। जितना कुछ समस्त अपने पर्यायोंमें व्यापनेस्वरूप चैतन्य प्रतिभासता है उतने ही रागादिक नहीं प्रतिभासते, रागादिक विना भी चैतन्यका आत्मलाभ (स्वरूपपाना) संभवता है। जो रागादिकका

कलक्षणलक्ष्यत्वात्, समस्तसहक्रमप्रवृत्तानंतपर्यायाविनाभावित्वाच्चैतन्यस्य चिन्मात्र एवात्मा निश्चेतव्यः, इति यावत् । बंधस्य तु आत्मद्रव्यसाधारणा रागादयः खलक्षणं । न च रागादय आत्मद्रव्यासाधारणतां बिभ्राणाः प्रतिभासंते नित्यमेव चैतन्यचमत्कारादतिरिक्तत्वेन प्रतिभासमानत्वात् । न च यावदेव समस्तस्वपर्यायव्यापि चैतन्यं प्रतिभाति? रागादीनंतरेणापि चैतन्यस्यात्मलाभसंभावनात् । यत्तु रागादीनां चैतन्येन सहैवोत्प्लवनं तच्चेत्यचेतकभावप्रत्यासत्तेरेव नैकद्रव्यत्वात्, चेत्यमानस्तु रागादिरात्मनः प्रदीप्यमानो घटादिः प्रदीपस्य प्रदीपकतामिव चेतकतामेव प्रथयेन्न पुना रागादीनां, एवमपि तयोरत्यंतप्रत्यासत्त्या भेदसंभावनाभावनादिरस्त्येकत्वव्यामोहः स तु प्रज्ञयैव छिद्यत एव । "प्रज्ञा छेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः सूक्ष्मेंऽतःसंधिबंधे निपतति

मिथ्यात्वरागादिकं, ताभ्या पृथक् कृतौ । केन? करणभूतेन प्रज्ञाछेदनकेन, शुद्धात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानरूपा प्रज्ञैव छेत्र्येव छुरिका तया एवेत्यर्थः । छिन्नौ सतौ नानात्वमापन्नौ ॥

चैतन्यके साथ ही उत्पन्न होना दीखता है वह इस ज्ञेयज्ञायकभावके अतिनिकटपनसे दीखता है एक द्रव्यपनसे नहीं है । वहां ज्ञेयरूप ज्ञानमें आतेहुए जो रागादिक हैं वे आत्माके ज्ञायकपनको ही विस्तारते हैं रागादिकपनको नहीं विस्तारते, जैसे दीपकके घटादिक प्रकाशने योग्य होते प्रदीपकपनको ही विस्तारते हैं घटादिकपनको नहीं विस्तारते उसतरह जानना । ऐसा होनेपर भी आत्मा और बंध दोनोंके अत्यंत निकटपनकर भेदकी संभावनाका अभाव है अर्थात् भेद नहीं दीखता । इसलिये इस अज्ञानीके अनादिकालसे एकपनका भ्रम है । ऐसा भ्रम प्रज्ञाकर ही छेदा जाता है ॥ **भावार्थ**—आत्मा और बंध दोनोंको लक्षणभेदसे पहचान बुद्धिरूपी छैनीसे छेद जुदे जुदे करना, क्योंकि आत्मा तो अमूर्तीक है और बंध सूक्ष्म पुद्गलपरमाणुओंका स्कंध है इसलिये ये दोनों जुदे छद्मस्थके ज्ञानमें नहीं आते । एक स्कंध दीखता है इसलिये अनादि अज्ञान है । सो श्रीगुरुओंका उपदेश पाकर इन दोनोंका लक्षण न्यारा न्यारा ही अनुभव कर जानना कि, चैतन्यमात्र तो आत्माका लक्षण है और रागादिक बंधका लक्षण है । ये दोनों भी ज्ञेयज्ञायकभावकी अतिनिकटतासे एकसे हो रहे दीखते हैं, सो तीक्ष्णबुद्धिरूपी छैनी इनके भेद (जुदे २) करनेका जो शस्त्र है उसको इनकी सूक्ष्मसंधिको देख सावधान (निष्प्रमाद) होके पटकना । उसके पड़ते ही दोनों अलग अलग दीखने लगते है । तब आत्माको ज्ञानभावमें ही रखना और बंधको अज्ञानभावमें रखना । इसतरह दोनोंको भिन्न करना ॥ अब इस अर्थका कलशरूप १८१ वां काव्य कहते हैं—**प्रज्ञा** इत्यादि । **अर्थ**—आत्मा और बंधके जुदे करनेको यह प्रज्ञा तीक्ष्ण छैनी है । जो चतुरपुरुष हैं वे सावधान (प्रमादरहित) हुए, आत्मा और कर्म इन दोनोंका सूक्ष्म मध्यका संधीका बंधन उसमें किसीप्रकार यत्नकर उस छैनीको ऐसा पटकते हैं कि वहां पडीहुई यह

रभसादात्मकर्मोभयस्य। आत्मानं मग्नमंतःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे बंधं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥ १८१ ॥" २९४ ॥

आत्मबंधौ द्विधा कृत्वा किं कर्तव्यं ? इति चेत्;—

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेएदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥ २९५ ॥

जीवो बंधश्च तथा छिद्येते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्यां।
बंधश्छेत्तव्यः शुद्ध आत्मा च गृहीतव्यः ॥ २९५ ॥

॥ २९४ ॥ आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे किं साध्यं? इति चेत्—**जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं** जीवबंधौ द्वौ पूर्वोक्ताभ्यां स्वलक्षणाभ्यां निजकाभ्यां छिद्येते पूर्ववत्। ततश्छेदानतरं किं साध्यं? **बंधो छेदेदव्वो** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानछुरिकया मिथ्यात्वरागादिरूपो बंधश्छेत्तव्यः शुद्धात्मनः सकाशात्पृथक्कर्तव्यः। **सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो** वीतरागसहज-

---

छैनी शीघ्र ही सब तरहसे भिन्नकर देती है। वह आत्माको तो अंतरंगमें स्थिर और स्पष्ट प्रकाशरूप दैदीप्यमान तेजवाले चैतन्यके प्रवाहमें मग्न करती है तथा बंधको अज्ञानभावमें निश्चल नियमसे कर देती है ॥ **भावार्थ**—यहांपर आत्मा और बंधका जुदा जुदा करनारूप कार्य है उसका कर्ता आत्मा है। उसमें भी करणके विना कर्ता किससे कार्य करे ? इसलिये करण भी चाहिये। निश्चयनयसे तो कर्तासे जुदा करण होता नहीं है। इसलिये आत्मासे अभिन्न यह बुद्धि ही इस कार्यमें करण है। आत्माके अनादि बंध ज्ञानावरणादि कर्म हैं उनका कार्य भावबंध तो रागादिक हैं और नोकर्म शरीरादिक हैं। सो बुद्धिकर आत्माको शरीरसे, ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मसे तथा रागादिक भावकर्मसे भिन्न एक चैतन्यभावमात्र अनुभवकर ज्ञानमें ही लीन रखना भिन्न करना है। इसीसे सब कर्मोंका नाश हो जानेसे सिद्धपदको प्राप्त हो जाता है ऐसा जानना ॥ २९४ ॥

आगे फिर पूछते हैं कि आत्मा और बंधको द्विधा कर क्या करना ? ऐसा पूछनेपर उत्तर कहते हैं;–**[जीवः]** जीव **[च]** और **[बंधः]** बंध इन दोनोंको **[नियताभ्यां]** निश्चित **[स्वलक्षणाभ्यां]** अपने २ लक्षणोंकर **[तथा]** इसतरह **[छिद्येते]** भिन्न करना कि **[बंधः छेत्तव्यः]** बंध तो छिदकर भिन्न हो जाय **[च]** और **[आत्मा ग्रहीतव्यः]** आत्मा ग्रहण कियाजाय ॥ **भावार्थ**—आत्मा और बंध इन दोनोंको पहले तो अपने २ निश्चित लक्षणके ज्ञानकर सब तरह ही भिन्न करना, पीछे रागादिक लक्षणवाले सभी बंधको तो छोडना तथा उपयोग लक्षणवाले अकेले शुद्ध आत्माको ही ग्रहण करना। यही निश्चयकर आत्मा और बंधके द्विधा करनेका

आत्मबंधौ हि तावन्नियतस्वलक्षणविज्ञानेन सर्वथैव छेत्तव्यौ ततो रागादिलक्षणसमस्त एव बंधो निर्मोक्तव्यः, उपयोगलक्षणशुद्ध आत्मैव गृहीतव्यः ॥ २९५॥

एतदेव किलात्मबंधयोर्द्विधाकरणस्य प्रयोजनं यद्बंधत्यागेन शुद्धात्मोपादानं;—

कह सो घिप्पइ अप्पा पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो ॥ २९६ ॥

कथं स गृह्यते आत्मा प्रज्ञया स तु गृह्यते आत्मा।
यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ॥ २९६ ॥

ननु केन शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः? प्रज्ञयैव शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः, शुद्धस्यात्मनः स्वयमात्मानं गृह्णतो विभजत इव प्रज्ञैककरणत्वात्। अतो यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ॥ २९६ ॥

परमानंदलक्षणः सुखसमरसीभावेन शुद्धात्मा च गृहीतव्य इत्यभिप्रायः ॥ २९५ ॥ इदमेवात्मबंधयोर्द्विधाकरणे प्रयोजनं यद्बंधपरिहारेण शुद्धात्मोपादानमित्युपदिशति;—**कह सो घिप्पदि अप्पा** कथं स गृह्यते आत्मा 'दृष्टिविषयो न भवत्यमूर्तत्वात्', इति प्रश्नः? **पणाए सो दु घिप्पदे अप्पा** प्रज्ञाया भेदज्ञानेन गृह्यते, इत्युत्तरं। कथं? इति चेत् **जह पण्णाए विभत्तो** यथा पूर्वसूत्रे प्रज्ञया विभक्तः रागादिभ्यः पृथक्कृतः **तह, पण्णाएव घित्तव्वो** तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः। ननु केन शुद्धोऽयमात्मा गृहीतव्यः? प्रज्ञयैव शुद्धोयमात्मा गृहीतव्यः शुद्धस्यात्मनः स्वयमात्मानं गृण्हतोऽपि विभजत इव प्रज्ञैककरणत्वात्।

प्रयोजन है कि वंधका त्यागकर शुद्ध आत्माको ग्रहण करना ॥ **भावार्थ**—शिष्यने पूछा था कि आत्मा और बंधको द्विधाकर क्या करना? उसका उत्तर यह दिया कि वंधका तो त्याग करना और शुद्ध आत्माको ग्रहण करना ॥ २९५ ॥

आगे पूछते हैं कि आत्मा और वंधको प्रज्ञासे तो भिन्न किया परंतु आत्माको ग्रहण किससे किया जाय? उसके प्रश्नोत्तरकी गाथा कहते हैं;—शिष्य पूछता है कि [**स आत्मा**] वह शुद्धात्मा [**कथं**] कैसे [**गृह्यते**] ग्रहण किया जा सकता है? आचार्य उत्तर कहते हैं कि [**स तु**] यह शुद्धात्मा [**प्रज्ञया**] प्रज्ञाकर ही [**गृह्यते**] ग्रहण किया जाता है। [**तथा**] जिस तरह पहले [**प्रज्ञया**] प्रज्ञासे [**विभक्तः**] भिन्न किया था [**तथा**] उसीतरह [**प्रज्ञयैव**] प्रज्ञासे ही [**गृहीतव्यः**] ग्रहण करना ॥ **टीका**—शिष्यका प्रश्न है कि यह शुद्ध आत्मा किस तरह ग्रहण करना? उसका गुरू उत्तर कहते हैं कि यह शुद्धात्मा प्रज्ञाकर ही ग्रहण करना आप स्वयंशुद्ध आत्माको ग्रहण करता जो शुद्ध आत्मा उसके पहले जैसे भिन्न करताके प्रज्ञा ही एक करण था उसीतरह ग्रहण कर्ताके भी वही प्रज्ञा एक करण है जुदा करण नहीं है। इसलिये जैसे पहले प्रज्ञाकर भिन्न किया था वैसे प्रज्ञाकर ही ग्रहण करना ॥ **भावार्थ**—

कथमात्मा प्रज्ञया गृहीतव्यः ? इति चेत्;—

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥ २९७ ॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥ २९७ ॥

यो हि नियतस्वलक्षणावलंबिन्या प्रज्ञया प्रविभक्तश्चेतयिता सोऽयमहं । ये त्वमी अवशिष्टा अन्यस्वलक्षणलक्ष्या व्यवह्रियमाणा भावाः, ते सर्वेऽपि चेतयितृत्वस्य व्यापकत्वस्य व्याप्यत्वमनायांतोऽत्यंतं मत्तो भिन्नाः । ततोऽहमेव मयैव मह्यमेव मत्त एव मय्येव

अतो यथा प्रज्ञया प्रविभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ॥ २९६ ॥ कथमात्मा प्रज्ञया गृहीतव्य इति चेत्;—प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोह तु निश्चयतः अवशेषा ये भावास्ते मम परे इति ज्ञातव्याः । यो हि निश्चयतः स्वलक्षणावलबिन्या प्रज्ञया प्रविभक्तश्चेतयिता सोऽयमह, ये त्वमी अवशिष्टा अन्ये स्वलक्षणलक्ष्या व्यवह्रियमाणा भावास्ते सर्वेऽपि चेतयितृत्वस्य व्यापकस्य व्याप्यत्वमनायातोऽत्यत मत्तो भिन्नास्ततोऽहमेव मयैव मत्त एव मय्येव मामेव गृह्णामि, यत् किल गृह्णामि तच्चेतनैकक्रियत्वादात्मनश्चेतये एव, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानेनैव चेतये, चेतयमानायैव चेतये, चेतयमानादेव चेतये, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानमेव चेतये । अथवा

भिन्न करनेमें और ग्रहण करनेमें जुदा करण नहीं है इसलिये प्रज्ञाकर ही तो भिन्न किया और प्रज्ञाकर ही ग्रहण करना चाहिये ॥ २९६ ॥

आगे फिर पूछते है कि यह प्रज्ञाकर किसतरह ग्रहण करना ? उसका उत्तर कहते है;—**[यः चेतयिता]** जो चेतनस्वरूप आत्मा है **[निश्चयतः]** निश्चयसे **[सः तु]** वह **[अहं]** मैं हूं इसतरह **[प्रज्ञया]** प्रज्ञाकर **[गृहीतव्यः]** ग्रहण करने योग्य है **[अवशेषाः]** और अवशेष **[ये भावाः]** जो भाव हैं **[ते]** वे **[मम परा]** मुझसे पर हैं **[इति ज्ञातव्याः]** इसप्रकार आत्माको ग्रहण करना (जानना) चाहिये ॥ **टीका**—निश्चयकर जो निश्चित निजलक्षणको अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा है उसकर चैतन्यस्वरूप आत्माको भिन्न किया था कि वही यह मैं हूं और जो ये अवशेष अन्य अपने लक्षणकर पहचानने योग्य व्यवहाररूप भाव हैं वे सभी आत्माका व्यापक जो चेतकपन उसके व्याप्यपनमें नहीं आते, वे मुझसे अत्यंत भिन्न हैं । इसलिये मैं ही अपनेकर ही अपने ही लिये अपनेसे ही अपनेमें ही अपनेको ही ग्रहण करता हूं और प्रगट ग्रहण करता हूं । आत्माके चेतना ही एकक्रिया है उसपनेकर चेतता ही हूं चेतता हुआ ही चेतता हूं चेतते हुएकरही चेतता हूं चेतते हुएके लिये ही चेतता हूं चेतते हुएसे ही चेतता हूं चेतते हुएमें ही चेतता हूं चेतते हुएको ही चेतता हू । अथवा न तो चेतता हूं न चेतता हुआ चेतता हूं, न चेतते हुएकर चेतता हूं न चेतते हुएके लिये चेतता हूं न

मामेव गृण्हामि । यत्किल गृण्हामि तच्चेतनैकक्रियत्वादात्मनश्चेतये, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानेनैव चेतये, चेतयमानायैव चेतये, चेतयमानादेव चेतये, चेतयमाने एव चेतये, चेतयमानमेव चेतये । अथवा न चेतये, न चेतयमानश्चेतये, न चेतयमानेन चेतये, न चेतयमानाय चेतये, न चेतयमानाच्चेतये, न चेतयमाने चेतये, न चेतयमानं चेतये । किंतु सर्वविशुद्धचिन्मात्रो भावोऽस्मि । "भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं न यच्छक्यते । चिन्मुद्रांकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहं । भिद्यंते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि । भिद्यंतां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥ १८२ ॥" २९७ ॥

न चेतये, न चेतयमानश्चेतये, न चेतयमानेन चेतये, न चेतयमानाय चेतये, न चेतयमानाच्चेतये, न चेतयमाने चेतये, न चेतयमानं चेतये, किं तु सर्वविशुद्धचिन्मात्रो भावोऽस्मि । भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तु हि यच्छक्यते चिन्मुद्राकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यह । भिद्यंते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि भिद्यंतां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥ २९७ ॥ प्रज्ञया गृहीतव्यो यो द्रष्टा सोहं तु निश्चयतः, अवशेषा

चेततेहुएसे चेतता हूं न चेतते हुएमे चेतता हूं न चेतते हुएको चेतता हूं । तो कैसा हूं? सर्व विशुद्धचैतन्यमात्र भाव हूं ॥ **भावार्थ**—जिस प्रज्ञाकर आत्माको बंधसे भिन्न किया था उसीकर यह चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूं अन्य अवशेष भाव है वे मुझसे जुदे पर हैं; ऐसे ग्रहण करना । सो अभिन्न छह कारक लगाने । मैं मुझको मुझकर मेरेलिये मुझसे अपनेमें ग्रहण करता हूं । वह ग्रहण करना क्या है ? चेतनकी चित्स्वरूप क्रिया ही है उसकर चेतता हूं—जानता हूं अनुभवता हूं इसतरह लगाना । फिर इन कारकोंके भेदका भी निषेध किया । कि, मै शुद्ध चैतन्यमात्रभाव हूं सो एक अभेद हू द्रव्यदृष्टिकर कर्ता कर्म आदि षट्कारकका भी भेद मुझमे नहीं है इसलिये नहीं चेतता हूं इत्यादि लगाना। इसतरह बुद्धिकर ग्रहण करना । अब इस अर्थका कलशरूप १८२ वां काव्य कहते हैं;— **भित्त्वा** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानी कहता है कि जो भेदनेको जुदे करनेको समर्थ है उस सबको निजलक्षणके बलसे भेदकर चैतन्यचिन्हसे चिन्हित विभागरहित महिमावाला मैं शुद्ध चैतन्य ही हूं । जो कर्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण ये छह कारक और सत्त्व असत्त्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व आदिक धर्म व ज्ञान दर्शन आदिक गुण ये भेदरूप है तो भेदरूप हों परंतु विशुद्ध समस्तविभावोंसे रहित एक तथा सब गुणपर्यायोंमें व्यापक ऐसे चैतन्यभावमें तो कुछ भेद नहीं है ॥ **भावार्थ**—जो इस चैतन्यभावसे अन्य अपने स्वलक्षणकर भेदे गये वे तो भेदरूप किये और कारकभेद धर्मभेद हैं तो रहें परंतु शुद्ध चैतन्यमात्रमें कुछ भी भेद नहीं है । शुद्धनयकर आत्माको ऐसा अभेदरूप ग्रहण करना ॥ २९७ ॥

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयओ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥ २९८ ॥
पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥ २९९ ॥ युग्मं ॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यो दृष्टा सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावास्ते मम परा इति ज्ञातव्याः ॥ २९८ ॥

मे भावा ते मम परा इति ज्ञातव्याः । प्रज्ञया गृहीतव्यो यो ज्ञाता सोऽहं तु निश्चयतः, अवशेषा ये भावा ते मम परा इति ज्ञातव्याः चेतनाया दर्शनज्ञानविकल्पानतिक्रमणाच्चेतयितृत्वमेव दृष्टृत्वं ज्ञातृत्वं चात्मनः स्वलक्षणमेव । ततोहं द्रष्टारमात्मानं गृण्हामि । यत्किल गृह्णामि तत्पश्याम्येव, पश्यन्नेव पश्यामि, पश्यतैव पश्यामि, पश्यते एव पश्यामि, पश्यत एव पश्यामि, पश्यत्येव पश्यामि, पश्यतमेव पश्यामि । अथवा—न पश्यामि, न पश्यन् पश्यामि, न पश्यता पश्यामि, न पश्यते पश्यामि, न पश्यतः पश्यामि, न पश्यति पश्यामि, न पश्यत पश्यामि । किं तु सर्वविशुद्धो दृङ्मात्रो भावोऽस्मि । अपि च ज्ञातारमात्मानं गृण्हामि यत्किल गृण्हामि तज्जानाम्येव, जानन्नेव जानामि, जानतैव जानामि, जानते एव जानामि, जानत एव जानामि, जानत्येव जानामि, जानंतमेव जानामि । अथवा न जानामि, न जानन् जानामि, न जानतैव जानामि, न जानते जानामि, न जानतो जानामि, न जानति जानामि, न जानत जानामि । किं तु सर्वविशुद्धो ज्ञप्तिमात्रो भावोऽस्मि । ननु कथं चेतना दर्शनज्ञानविकल्पौ नातिक्रामति येन चेत-

---

आगे कहते हैं कि शुद्ध चैतन्यमात्र तो ग्रहण कराया परंतु सामान्य चेतना दर्शन ज्ञान सामान्यमय है इसलिये अनुभवमें दर्शन ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव ऐसा करना,— **[प्रज्ञया गृहीतव्यः]** प्रज्ञाकर ऐसे ग्रहण करना कि **[यो द्रष्टा]** जो देखनेवाला है **[स तु]** वह तो **[निश्चयतः]** निश्चयसे **[अहं]** मैं हूं **[अवशेषा ये भावाः]** अवशेष जो भाव हैं **[ते मम पराः]** वे मुझसे पर हैं **[इति ज्ञातव्याः]** ऐसा जानना तथा **[प्रज्ञया गृहीतव्यः]** प्रज्ञाकर ही ग्रहण करना कि **[यो ज्ञाता]** जो जाननेवाला है **[स तु]** वह तो **[निश्चयतः]** निश्चयसे **[अहं]** मैं हूं **[अवशेषा ये भावाः]** अवशेष जो भाव हैं **[ते]** वे **[मम पराः]** मुझसे पर हैं **[इति ज्ञातव्याः]** ऐसा जानना ॥ **टीका**—जिसकारण चेतनामें दर्शन ज्ञानके भेदका उलंघन नहीं है इसकारण चेतकपनेकी तरह दर्शकपना व ज्ञातापना आत्माका निजलक्षण ही है । इसलिये ऐसा अनुभव करना कि मैं देखनेवाला आत्माको ग्रहणकरता हूं जो निश्चयसे ग्रहण करता हूं सो देखता ही हूं देखता हुआ ही देखता हूं देखते हुएकर ही देखता हूं देखते हुएके लिये ही देखता हूं देखते हुएसे ही

प्रज्ञया गृहीतव्यो यो ज्ञाता सोऽहं तु निश्चयतः ।
अवशेषा ये भावास्त मम परा इति ज्ञातव्याः ॥ २९९ ॥

चेतनया दर्शनज्ञानविकल्पानतिक्रमणाच्चेतयितृत्वमिव द्रष्टत्वं ज्ञातृत्वं चात्मनः स्वलक्षणमेव । ततोहं द्रष्टारमात्मानं गृण्हामि यत्किल गृण्हामि तत्पश्याम्येव, पश्यन्नेव पश्यामि, पश्यतैव पश्यामि, पश्यते एव पश्यामि, पश्यत एव पश्यामि, पश्यत्येव पश्यामि, पश्यंतमेव पश्यामि । अथवा—न पश्यामि, न पश्यन् पश्यामि, न पश्यता पश्यामि, न पश्यते पश्यामि, न पश्यतः पश्यामि, न पश्यति पश्यामि, न पश्यंतं पश्यामि । किंतु

यिता द्रष्टा ज्ञाता च स्यात्[?] उच्यते—चेतना तावत्प्रतिभासरूपा सा तु सर्वेषामेव वस्तूना सामान्यविशेषात्मकत्वाद् द्वैरूप्यं नातिक्रामति । ये तु तस्या द्वे रूपे ते दर्शनज्ञाने, ततः सा ते नातिक्रामति । यद्यतिक्रामति[?] सामान्यविशेषातिक्रांतत्वाच्चेतनैव न भवति । तदभावे द्वौ दोषौ स्वगुणोच्छेदाच्चेतनस्याचेतनतापत्तिः, व्यापकाभावे व्याप्यस्य चेतनस्याभावो वा । ततस्तद्दोषभयाद्दर्शनज्ञानात्मिकैव चेतनाभ्युपगतव्या । अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्सास्तित्वमेव त्यजेत् । तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना

देखता हूं देखते हुएमें ही देखता हूं देखते हुएको ही देखता हूं । अथवा नहीं देखता न देखते हुएको देखता हूं न देखतेकर देखता हूं न देखतेके लिये देखता हूं न देखतेसे देखता हू न देखतेमे देखता हूं न देखतेको देखता हूं । तो कैसा हूं ? सर्व विशुद्ध एक दर्शनमात्र भाव मैं हूं । इसतरह तो दर्शनपर कर्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण लगाके फिर उनका निषेधकरके एक दर्शनमात्र भावस्वरूप आत्माको अनुभवरूप करना । तथा इसीतरह ज्ञानपर भी लगाना । जो जाननेवाला ज्ञाता आत्माको मै ग्रहण करता हूं जो ग्रहण करता हूं सो निश्चयसे जानता ही हूं जानताहुआ ही जानता हूं जानताकर ही जानता हूं जानताके लिये जानता हूं जानतासे ही जानता हूं जानतामें ही जानता हूं जानताको ही जानता हूं । अथवा नहीं जानता न जानते हुएको जानता हूं न जानतेकर जानता हूं न जानतेके लिये जानता हूं न जानतासे जानता हूं न जानतेमें जानता हूं न जानतेको जानता हूं । तो कैसा हूं ? सर्वविशुद्ध एकजाननक्रियामात्र भाव मैं हूं । इसतरह ज्ञानपर छह कारक भेदरूप लगाके फिर अभेदरूप करनेको कारकभेदका निषेधकर एक ज्ञानमात्र अपना अनुभव करना ॥ **भावार्थ**—पहले तो सामान्य चेतनाका अनुभव कराया । आत्माको प्रज्ञाकर ग्रहण करना पहले कहा था सो चेतनाका अनुभव करना ही ग्रहण करना है कुछ अन्य वस्तुका ग्रहण करना नहीं है । तथा अनुभव करना अनुभव करनेवाला अनुभव जिसकर किया जाय इत्यादि छह कारक भेदरूप कहकर अभेद विवक्षामें कारकभेदका निषेध किया एक शुद्ध चेतनामात्र ही कहा था । अब

सर्वविशुद्धो दृङ्मात्रो भावोऽस्मि । अपि च—ज्ञातारमात्मानं गृण्हामि यत्किल गृण्हामि तज्जानाम्येव, जानन्नेव जानामि, जानतैव जानामि, जानते एव जानामि, जानत एव जानामि, जानत्येव जानामि, जानंतमेव जानामि । अथवा—न जानामि, न जानन् जानामि, न जानता जानामि, न जानते जानामि, न जानतो जानामि, न जानति जानामि न जानंतं जानामि । किंतु सर्वविशुद्धो ज्ञप्तिमात्रो भावोऽस्मि । ननु कथं चेतना दर्शनज्ञान-विकल्पौ नातिक्रामति येन चेतयिता द्रष्टा ज्ञाता च स्यात् ? उच्यते—चेतना तावत्प्रति-भासरूपा सा तु सर्वेषामेव वस्तूनां सामान्यविशेषात्मकत्वात् द्वैरूप्यं नातिक्रामति । ये तु तस्या द्वे रूपे ते दर्शनज्ञाने, ततः सा नातिक्रामति । यद्यतिक्रामति ? सामान्यविशे-

---

व्यापकादात्मा चातमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् । एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषा ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥ अवशेषा ये रागादिभावा विभावपरिणामास्ते चिदानदैकभावस्य ममापेक्षया परा इति ज्ञातव्याः । अत्राह शिष्यः—चेतनाया ज्ञानदर्शनभेदौ न स्तः, एकैव चेतना ततो ज्ञाता द्रष्टेतिद्विधात्मा कथ घटते इति ? अत्र पूर्वपक्षे परिहारः—सामान्यग्राहकं दर्शन, विशेषग्राहकं ज्ञानं । सामान्यविशेषात्मकं

यहां चेतनासामान्य है वह दर्शन ज्ञानविशेषको उलंघकर नहीं वर्तती इसलिये द्रष्टा और ज्ञाताका अनुभव कराया । वहां भी छहकारकरूप भेद अनुभवकर पीछे अभेद अनुभव-अपेक्षा कारकभेद दूरकर द्रष्टा ज्ञातामात्रका अनुभव कराया है । यहा शिष्य पूछता है कि चेतना दर्शन ज्ञान भेदको कैसे नहीं उलंघती कि जिसकर आत्मा द्रष्टा ज्ञाता हो जाता है । उसका उत्तर कहते हैं—प्रथम तो चेतना प्रतिभासरूप है ऐसी चेतना दोरूप-पनको नहीं उलंघके वर्तती क्योंकि सभी वस्तुका सामान्यविशेषरूप स्वरूप है । सो चेतना भी वस्तु है वह सामान्यविशेषरूपको कैसे उलंघे । उसके दोरूप है वे दर्शन ज्ञान हैं । इसलिये वह चेतना दर्शन ज्ञान इन दोनोंको नहीं उलंघती । यदि इन दो स्व-रूपोंको उलंघे तो सामान्यविशेपरूपके उलंघनेपनेसे चेतना ही नहीं होती । उस चेतनाके अभावसे दो दोष आते हैं—एक तो अपने गुणका उच्छेद होनेसे चेतनके अचेतनपनकी प्राप्ति आती है और दूसरे, व्यापक चेतनका अभाव होनेसे व्याप्य जो चेतन आत्मा उसका अभाव होता है । इसकारण इन दोषोंके भयसे चेतना दर्शन ज्ञानस्वरूप ही अगीकार करनी । अव इस अर्थका कलशरूप १८३ वां काव्य कहते हैं—**अद्वैता** इत्यादि । **अर्थ**—जगतमे निश्चयकर चेतना अद्वैत है तौ भी जो दर्शन ज्ञानरूपको छोडे तो सामान्यविशेषरूपके अभावसे वह चेतना अपने अस्तिपनेको छोड दे और जब चेतना अपने अस्तित्वको छोड दे तो चेतनके जडपना हो जाय । तथा व्याप्य आत्मा व्यापक चेतनाके विना अंतको प्राप्त हो जाय अर्थात् आत्माका नाश हो जाय । इसलिये

षातिक्रांतत्वाच्चेतनैव न भवति । तदभावे द्वौ दोषौ—स्वगुणोच्छेदाच्चेतनस्याचेतनतापत्तिः, व्यापकाभावे व्याप्यस्य चेतनस्याभावो वा । ततस्तद्दोषभयाद्दर्शनज्ञानात्मिकैव चेतनाभ्युपगंतव्या ॥ अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्सास्तित्वमेव त्यजेत् । तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापकादात्मा चांतमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्ति चित् ॥ १८३ ॥ "एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषां । ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥ १८४ ॥" २९८॥२९९ ॥

को णाम भणिज्ज बुहो णाउं सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥ ३०० ॥

च वस्तु । सामान्यविशेषात्मकत्वाभावे चेतनाया अभावः स्यात् । चेतनाया अभावे आत्मनो जडत्वं, चेतनालक्षणस्य विशेषगुणस्याभावे सत्यभावो वा भवति । नचात्मनो जडत्वं दृश्यते, नचाभावः? प्रत्यक्षविरोधात्? ततः स्थितं यद्यप्यभेदनयेनैकरूपा चेतना तथापि सामान्यविशेषविषयभेदेन दर्शनज्ञानरूपा भवतीत्यभिप्रायः ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावस्य परमात्मनः शुद्धचिद्रूप एक एव भावः न च रागादय इत्याख्याति;—**को णाम भणिज्ज बुहो** को

चेतना नियमसे दर्शन ज्ञानस्वरूप ही होवे ॥ **भावार्थ**—वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप है सो चेतना भी वस्तु है वह दर्शन ज्ञानविशेषको यदि छोड दे तो वस्तुपनेका नाश हो जाय तब चेतनाका अभाव होनेसे चेतनके जडपना आजाइगा । चेतना आत्माकी सब अवस्थाओंमें पाई जाती है इसलिये व्यापक है । आत्मा चेतना ही है इसकारण चेतनाका व्याप्य है सो व्यापकके अभावसे व्याप्य जो चेतन आत्मा उसका अभाव होता है । इसलिये चेतना दर्शनज्ञानस्वरूप ही माननी चाहिये । यहांपर तात्पर्य ऐसा है कि सांख्यमतीआदि कई मतवाले सामान्य चेतनाको ही मानकर एकांत करते हैं उनके निषेध करनेको 'वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप है सो चेतनाको भी सामान्य विशेषरूप अंगीकार करना' ऐसा जतलाया है । आगे कहते हैं कि चेतनाका तो चिन्मय ही एकभाव है अन्य परभाव हैं सो चिन्मयभाव तो उपादेय है और परभाव हेय है यह सूचना आगेके कथनकी है उसका १८४ वां श्लोक कहते है—**एक** इत्यादि । **अर्थ**—चैतन्यका तो एक चिन्मय ही भाव है दूसरे भाव है वे प्रगट रीतिसे परके भाव हैं । इसलिये एक चिन्मयभाव ही ग्रहण करने योग्य है और जो परभाव है वे सभी त्यागने योग्य हैं ॥ २९८ ॥ २९९ ॥

अब इस उपदेशकी गाथा कहते हैं;—**[सर्वान् परकीयान् भावान्]** ज्ञानी

---

१ परोदये भावे पाठोयं तात्पर्यवृत्तौ ॥

को नाम भणेद् बुधः ज्ञात्वा सर्वान् परकीयान् भावान् ।
ममेदमिति च वचनं जानन्नात्मानं शुद्धं ॥ ३०० ॥

यो हि परात्मनोर्नियतस्वलक्षणविभागपातिन्या प्रज्ञया ज्ञानी स्यात् स खल्वेकं चिन्मात्रं भावमात्मीयं जानाति शेषांश्च सर्वानेव भावान् परकीयान् जानाति । एवं जानन् कथं परभावान्ममामी इति ब्रूयात्? परात्मनोर्निश्चयेन स्वस्वामिसंबंधस्यासंभवात् । अतः सर्वथा चिद्भाव एव गृहीतव्यः शेषाः सर्वे एव भावाः प्रहातव्या इति सिद्धांतः । "सिद्धांतोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहं । एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावा पृथग्लक्षणास्तेह नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं

ब्रूयाद्बुधो ज्ञानी विवेकी नाम स्फुटमहो वा न कोऽपि । किं ब्रूयात् । **मज्झमिणंतिय वयणं** ममेति वचन किं कृत्वा? पूर्वं **णादुं** निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानेन ज्ञात्वा । कान्? **सव्वे परोदये भावे** सर्वान् मिथ्यात्वरागादिभावान् विभावपरिणामान् । कथभूतान्? परोदयान् शुद्धात्मनः सकाशात् परेण कर्मोदयेन जनितान् । किं कुर्वन् सन्? **जाणंतो अप्पयं सुद्धं** जानन् परमसमरसीभावेनानुभवन्, क? आत्मान । कथंभूतं? शुद्धं, भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित । केन कृत्वा जानन्? शुद्धात्मभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन

अपने स्वरूपको जान और सभी परके भावोंको **[ज्ञात्वा]** जानकर **[इदं मम]** ये मेरे हैं **[इति च वचनं]** ऐसा वचन **[कः नाम बुधः]** कोन बुद्धिमान् **[भणेत्]** कहेगा ? ज्ञानी पंडित तो नहीं कह सकता। कैसा है ज्ञानी ? **[आत्मानं]** अपने आत्माको **[शुद्धं जानन्]** शुद्ध जाननेवाला है ॥ **टीका**—जो पुरुष आत्मा और परके निश्चित स्वलक्षणके विभागमे पडनेवाली प्रज्ञाकर ज्ञानी होता है वह पुरुष निश्चयकर एक चैतन्यमात्र अपने भावको तो अपना जानता है और बाकीके सभी भावोंको परके जानता है। ऐसा जानताहुआ परके भावोंको 'ये मेरे हैं' ऐसे किसतरह कह सकता है ? ज्ञानी तो नहीं कहता क्योंकि पर और आपमें निश्चयसे स्वस्वामिपनेके संबंधका असंभव है। इसलिये सर्वथा चिद्भाव ही एक ग्रहण करने योग्य है अवशेष सभी भाव त्यागने योग्य हैं ऐसा सिद्धात है। **भावार्थ**—लोकमें भी यह न्याय है कि जो सुबुद्धि न्यायवान् है वह परके धनादिकको अपना नहीं कहता, उसी तरह सम्यग्ज्ञानी भी समस्त परद्रव्यको अपना नहीं वनाता अपने निजभावको ही अपने जान ग्रहण करता है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप १८५ वां काव्य कहते हैं—**सिद्धांतो** इत्यादि । **अर्थ**—जिनके चित्तका चरित्र उज्वल (उत्कट) है ऐसे मोक्षके इच्छक पुरुष हैं वे इस सिद्धांतको सेवन करो 'जो मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदा हूं और ये जो अनेक प्रकारके भिन्न लक्षणरूप भाव हैं वे मैं नहीं हूं क्योंकि वे सभी

समग्रा अपि ॥ १८५ ॥ "परद्रव्यग्रहं कुर्वन् वध्यते वापराधवान्। वध्येतानपराधेन स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥ १८६" ॥ ३०० ॥

थेयाई अवराहे कुव्वदि जो सो उ संकिदो भमई।
मा वज्झेज्जं केणवि चोरोत्ति जणम्मि वियरंतो ॥ ३०१ ॥
जो ण कुणइ अवराहे सो णिस्संको दु जणवए भमदि।
णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥ ३०२ ॥

भेदज्ञानेनेति। एवं विशेषभेदभावनाव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रपंचक गतं ॥ ३०० ॥ अथ मिथ्यात्वरागादिपरभावस्वीकारेण वध्यते वीतरागपरमचैतन्यलक्षणस्वस्वभावस्वीकारेण मुच्यते जीव इति प्रकाशयति;—**तेयादी अवराहे कुव्वदि सो ससंकिदो होदि** यः स्तेयपरदाराद्यपराधान् करोति स पुरुष. सशंकितो भवति। केन रूपेण? **मा वज्झेहं केणवि चोरोत्ति जणह्मि विवरंतो** जने विचरन् माहं वध्ये केनापि तलवरादिना। किं कृत्वा? चौर इति मत्वा। इत्यन्वयदृष्टांतगाथा गता। **जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि** यः स्तेयपरदाराद्यपराधं न करोति स निश्शंको जनपदे लोके भ्रमति। **णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयावि** तस्य चिंता नोपत्यते कदाचिदपि जे अहो यस्मात्कारणात् वा निरपराधः, केन रूपेण चिंता नोत्पद्यते? नाहं

परद्रव्य हैं ॥ इसका भावार्थ सुगम है ॥ आगे कहते है कि परद्रव्यको जो ग्रहण करता है वह अपराधवाला है वंधमें पडता है और जो निजद्रव्यमें संतुष्ट है वह निरपराधी है नहीं वंधता ऐसी सूचनिकाका अगले कथनका १८६ वां श्लोक कहते है—**परद्रव्य** इत्यादि। **अर्थ**—जो परद्रव्यको ग्रहण करता है वह तो अपराधवान् है वही वंधमे पडता है और जो अपने द्रव्यमें ही संतुष्ट है परद्रव्यको नहीं ग्रहण करता वह यतीश्वर अपराधरहित है वह नहीं वंधता ॥ ३०० ॥

आगे इस कथनको दृष्टांतपूर्वक गाथामें कहते है;—[**यः**] जो पुरुष [**स्तेयादीन् अपराधान्**] चोरीआदि अपराधोंको [**करोति**] करता है [**स तु**] वह [**शंकितो भ्रमति**] ऐसी शंकासहित हुआ भ्रमता है कि [**जने विचरन्**] लोकमे विचरता हुआ मैं [**चोर इति**] चोर ऐसा मालूम होनेपर [**केनापि मा वध्ये**] किसीसे पकड़ा (बांधा) न जाऊं। [**यः**] जो [**अपराधान्**] कोई भी अपराध [**न करोति**] नहीं करता [**स तु**] वह पुरुष [**जनपदे**] देशमे [**निःशंकः भ्रमति**] निशंक भ्रमता है [**तस्य**] उसको [**यत् बद्धुं चिंता**] वंधनेकी चिंता [**कदाचित् अपि**] कभी भी [**न उत्पद्यते**] नहीं उपजती (होती) [**एवं**

एवंहि सावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेया ।
जइ पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥ ३०३ ॥

स्तेयादीनपराधान् करोति यः स शंकितो भ्रमति ।
मा बध्ये केनापि चौर इति जने विचरन् ॥ ३०१ ॥
यो न करोत्यपराधान् स निश्शंकस्तु जनपदे भ्रमति ।
नापि तस्य बद्धुं यत् चिंतोत्पद्यते कदाचित् ॥ ३०२ ॥
एवमस्मि सापराधो बध्येऽहं तु शंकितश्चेतयिता ।
यदि पुनर्निरपराधो निश्शंकोऽहं न बध्ये ॥ ३०३ ॥

यथात्र लोके य एव परद्रव्यग्रहणलक्षणमपराधं करोति तस्यैव बंधशंका संभवति । यस्तु शुद्धः सन् तं न करोति तस्य सा न संभवति । तथात्मापि य एवाशुद्धः सन् परद्रव्यग्रहणलक्षणमपराधं करोति तस्यैव बंधशंका संभवति यस्तु शुद्धः सस्तं न करोति

बध्ये केनापि चौर इति मत्वा । एव व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता । **एवं हि सावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेदा** यो रागादिपरद्रव्यग्रहण स्वीकारं करोति स स्वस्थभावच्युतः सन् सापराधो भवति सापराधोऽत्र शकितो भवति । केन रूपेण? वध्येऽहं कर्मतापन्नो ज्ञानावरणादिकर्मणा । ततः कर्मवधभीतः प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणरूप दंडं ददाति **जो पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि** यस्तु पुनर्निरपराधो भवति । केन रूपेण? इति चेत्—रागाद्यपराधरहितत्वात् नाहं बध्ये केनापि कर्मणेति प्रतिक्रमणादिदंड विनाप्यनंत-

---

अहं] ऐसे मैं [**सापराधः अस्मि**] जो अपराधसहित हूं [**तु**] तो [**बध्ये**] बँधूंगा ऐसी [**शंकितः**] शंकायुक्त [**चेतयिता**] आत्मा होता है [**यदि पुनः**] और जो [**निरपराधः**] निरपराध हूं तो [**अहं निशंकः**] मै निःशंक हूं [**न बध्ये**] कि नहीं बँधूगा। ऐसे ज्ञानी विचारता है ॥ **टीका**—जैसे इस लोकमें जो पुरुष परद्रव्यका ग्रहण करनेवाला है वही अपराधको करता है उसीके बंधकी शका संभवती है । और जो अपराध नहीं करता है उसके तो शंका संभव ही नहीं है । उसीतरह आत्मा भी यदि अशुद्ध हुआ परद्रव्यको ग्रहणस्वरूप अपराध करता है उसीके बंधकी शंका संभवती है और जो आत्मा शुद्ध हुआ उस अपराधको नहीं करता उसके वह शंका भी नहीं संभवती यह नियम है। इसलिये सर्वथा सब परद्रव्यके भावका त्याग कर शुद्ध आत्माको ग्रहण करना । ऐसा करनेपर भी निरपराधपन है ॥ **भावार्थ**—चोरी आदि अपराध करे तो बंधनेकी शंका हो, निरपराधके शंका क्यों हो ? उसीतरह आत्मा परद्रव्यका ग्रहणरूप अपराध करे तो बंधकी शंका होवे ही, यदि अपनेको शुद्ध

---

१ ख. पुस्तके सापराधाच्छंकितो भवतीति पाठ ।

तस्य सा न संभवति, इति नियमः । अतः सर्वथा सर्वपरकीयभावपरिहारेण शुद्ध आत्मा गृहीतव्यः, तथा सत्येव निरपराधत्वात् ॥ ३०१।३०२।३०३ ॥

को हि नामायमपराधः ?—

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं ।
अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो ॥ ३०४ ॥
जो पुण णिरवराधो चेया णिस्संकिओ उ सो होइ ।
आराहणए णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो ॥ ३०५ ॥

संसिद्धिराधसिद्धं साधितमाराधितं चैकार्थं ।
अपगतराधो यः खलु चेतयिता स भवत्यपराधः ॥ ३०४ ॥
यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शंकितस्तु स भवति ।
आराधनया नित्यं वर्तते, अहमिति जानन् ॥ ३०५ ॥

ज्ञानादिरूपनिर्दोषपरमात्मभावनयैव शुद्ध्यति इत्यन्वयव्यतिरेकादार्ष्टांतगाथा गता ॥ ३०१ ॥ ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ अथ को हि नामायमपराधः ? इति पृच्छति;—**संसिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिदं च एयट्ठो** कालत्रयवर्तिसमस्तमिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामरहितत्वेन निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा निजशुद्धात्माराधनं सेवनं राध इत्युच्यते संसिद्धिः सिद्धि-

---

अनुभवे परको नहीं ग्रहण करे तो बंधकी शंका कैसे हो ? इसलिये परद्रव्यको छोड शुद्ध आत्माका ग्रहण करना तभी निरपराध होता है ॥ ३०१।३०२।३०३ ॥

आगे पूछते हैं कि यह अपराध क्या है ? उसका उत्तर अपराधका स्वरूप कहते हैं;—**[संसिद्धराधसिद्धं]** संसिद्ध राध सिद्ध **[साधितं च आराधितं]** साधित और आराधित **[एकार्थं]** ये शब्द एकार्थ हैं । इसलिये **[यः खलु चेतयिता]** जो आत्मा **[अपगतराधः]** राधसे रहित हो **[सः]** वह आत्मा **[अपराधः भवति]** अपराध है **[यः पुनः]** और जो **[चेतयिता]** आत्मा **[निरपराधः]** अपराधी नहीं है **[सः तु]** वह **[निःशंकितः]** शंकारहित **[भवति]** है और अपनेको **[अहं इति]** मैं हूं ऐसा **[जानन्]** जानता हुआ **[आराधनया]** आराधनाकर **[नित्यं वर्तते]** हमेशा वर्तता है ॥ **टीका**—परद्रव्यका परिहार करके जो शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधन उसे राध कहते हैं वहां जिस आत्माके राध अर्थात् शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधन दूरवर्ती हो वह आत्मा अपराध है । अथवा इसकी दूसरी व्युत्पत्ति (समास विग्रह) ऐसी कि जिस भावका राध दूरवर्ती हो उस भावको अपराध कहते हैं । उस अपराधकर जो आत्मा वर्ते वह आत्मा सापराध है ।

---

१ नेय गाथात्र तात्पर्यवृत्तौ ।

परद्रव्यपरिहारेण शुद्धस्यात्मनः सिद्धिः साधनं वा राधः अपगतो राधो यस्य भावस्य सोऽपराधस्तेन सह यश्चेतयिता वर्तते स सापराधः स तु परद्रव्यग्रहणसद्भावेन शुद्धात्मसिद्ध्यभावाद्बंधशंकासंभवे सति स्वयमशुद्धत्वादनाराधक एव स्यात् । यस्तु निरपराधः स समग्रपरद्रव्यपरिहारेण शुद्धात्मसिद्धिसद्भावाद्बंधशंकाया असंभवे सति, उपयोगैकलक्षण-शुद्ध आत्मैक एवाहमिति निश्चिन्वन् नित्यमेव शुद्धात्मसिद्धिलक्षणयाराधनया वर्तमान-

---

रिति साधितमित्याराधित च तस्यैव राधशब्दस्य पर्यायनामानि । **अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराहो** अपगतो विनष्टो राधः शुद्धात्माराधना यस्य पुरुषस्य स पुरुष एवाभेदेन भवत्यपराधः । अथवा अपगतो विनष्टो राधः शुद्धात्माराधः शुद्धात्माराधना यस्य रागादिविभावपरिणामस्य स भवत्यपराधः सहापराधेन वर्तते यः स सापराधः, चेतयितात्मा तद्विपरीतत्रिगुप्तिसमाधिस्थो निरपराध इति ॥ अथ हे भगवन् किमनेन शुद्धात्माराधनाप्रयासेन यतः प्रतिक्रमणाद्यनुष्ठानेनैव निरपराधो भवत्यात्मा, कस्मात्? इति चेत्, सापराधस्याप्रतिक्रमणादेर्दोषशब्दवाच्यापराधाविनाशकत्वेन विषकुंभत्वे सति प्रतिक्रमणादेर्दोषशब्दवा-

---

ऐसा आत्मा परद्रव्यके ग्रहणके सद्भावसे शुद्ध आत्माकी सिद्धीके अभावसे उसके बंधकी शंकाका संभव होनेसे आप स्वयं अशुद्धपनसे अनाराधक ही है—आराधना करनेवाला नहीं है। और जो आत्मा अपराधरहित है वह समस्त परद्रव्यके परिग्रहका परिहारकरके शुद्ध आत्माकी सिद्धीके सद्भावसे उसके बधकी शंकाका असंभव होनेसे ऐसा निश्चय करता वर्तता है 'कि मै उपयोग लक्षणवाला एक शुद्ध आत्मा ही हूं वह आत्मा नित्य ही शुद्ध आत्माकी सिद्धिलक्षणवाली आराधनाकर वर्तमान होता है इसलिये आराधक ही है ॥ **भावार्थ**—संसिद्धि राध सिद्धि साधित आराधित—इन शब्दोंका अर्थ एक ही है। सो यहां राध नाम शुद्ध आत्माकी सिद्धि अथवा साधनका है जिसके यह नहीं है वह आत्मा सापराध है, और जिसके यह हो वह निरपराध है। सापराधके बंधकी शंका संभवती है इसलिये अनाराधक है, और निरपराध निश्शंक हुआ अपने उपयोगमें लीन होता है तव बंधकी शंका नही होती तव वह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपका एक भावरूप निश्चय आराधनाका आराधक ही है ॥ अव इस अर्थका कलशरूप १८७ वा काव्य कहते हैं—**अनवरत** इत्यादि । **अर्थ**—जो आत्मा सापराध है वह तो निरंतर अनंतपुद्गलपरमाणुरूप कर्मोंकर बंधता है और जो निरपराध है वह बंधनको कभी नहीं स्पर्शता। तथा यह सापराध आत्मा तो अपने आत्माको नियमसे अशुद्ध ही सेवता सापराध ही होता है और जो निरपराध है वह अच्छीतरह शुद्ध आत्माका सेवनेवाला होता है। आगे व्यवहारनयका आलंवी तर्क करता है कि इस शुद्ध आत्माके सेवनके खेदसे क्या है? क्योंकि प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्तकर ही आत्मा निरपराध

त्वादाराधक एव स्यात् । "अनवरतमनंतैर्बध्यते सापराधः स्पृशति निरपराधो बंधनं जातु नैव । नियतमयमशुद्धं स्वं भजन् सापराधो भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ॥ ॥ १८७ ॥" ३०४ ॥ ३०५ ॥

ननु किमनेन शुद्धात्मोपासनेन यतः प्रतिक्रमणादिनैव निरपराधो भवत्यात्मा सापराधस्याप्रतिक्रमणादेस्तदनपोहकत्वेन विपकुंभत्वे सति प्रतिक्रमणादेस्तदपोहकत्वेनामृतकुंभत्वात् । उक्तं च व्यवहारसूत्रे—अपडिकमणं अपरिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव । अणियत्ती य अणिंदा अगरुहा सोहीय विसकुंभो ॥ १ ॥ पडिकमणं पडिसरणं परिहारणं धारणा णियत्ती य । णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो दु ॥ २ ॥ अत्रोच्यते;—

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥ ३०६ ॥
अपडिकमणं अप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदा गरहा सोही अमयकुंभो ॥ ३०७ ॥

च्यापराधविनाशकत्वेनामृतकुंभत्वात् इति । तथा चोक्तं चिरंतनप्रायश्चित्तग्रंथे—"अपडिक्कमण अपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव । अणियत्तीय अणिंदा अगरुहा सोहीय विसकुभो ॥ १ ॥ "पडिकमण पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्तीय । णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुभो दु ॥ २ ॥" ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥ अत्र पूर्वपक्षे परिहारः—**पडिकमणमित्यादि । पडिकमणं** प्रतिक्रमणं कृतदोषनिराकरण । **पडिसरणं** प्रतिसरणं सम्यक्त्वादि-

हो जाता है । सापराधके अप्रतिक्रमणादि हैं वे अपराधके दूर करनेवाले नहीं हैं इसलिये विपकुंभ कहेगये है और निरपराधके प्रतिक्रमणादिक हैं वे उस अपराधके दूर करनेवाले है इसलिये वे अमृतकुंभ कहे गये हैं । यही व्यवहारके कहनेवाले आचारसूत्रमें कहा है **अप्पडि** इत्यादि । **अर्थ**—अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अपरिहार अधारणा अनिवृत्ति अनिंदा अगर्हा अशुद्धि ऐसे आठ प्रकारके लगे हुए दोषका प्रायश्चित करना वह तो विषकुंभ है जहरका भराहुआ घडा है । और प्रतिक्रमण प्रतिसरण परिहार धारणा निवृत्ति निंदा गर्हा शुद्धि, इसतरह आठप्रकारसे लगेहुए दोषका प्रायश्चित्त करना वह अमृतकुंभ है । ऐसा व्यवहारनयके पक्षवालेने तर्क किया था ॥ ३०४।३०५ ॥

उसका उत्तर आचार्य निश्चयनयको प्रधानकर कहते है,—[**प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहारः धारणा निवृत्तिः निंदा गर्हा**] प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा, [**च शुद्धिः**] और शुद्धि इसतरह [**अष्टविधः**] आठ प्रकार तो [**विषकुंभः**] विषकुंभ [**भवति**] है; क्योंकि इसमे कर्तापनकी

1 तात्पर्यवृत्तौ परिहरण धारणा णियत्ती य' इति पाठ ।

प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहारो धारणा निवृत्तिश्च ।
निंदा गर्हा शुद्धिः अष्टविधो भवति विषकुम्भः ॥ ३०६ ॥
अप्रतिक्रमोऽप्रतिसरणं परिहारोऽधारणा चैव ।
अनिवृत्तिश्चानिंदाऽगर्हाऽशुद्धिरमृतकुंभः ॥ ३०७ ॥

यस्तावदज्ञानिजनसाधरणोऽप्रतिक्रमणादिः स शुद्धात्मसिद्ध्यभावस्वभावत्वेन स्वयमेवापराधत्वाद्विपकुंभ एव किं विचारेण । यस्तु द्रव्यरूपः प्रतिक्रमणादिः स सर्वापराधविषापदाकर्षणसमर्थत्वेनामृतकुंभोऽपि प्रतिक्रमणादिविलक्षणाप्रतिकमणादिरूपां तार्तीय-

---

गुणेषु प्रेरणं । **पडिहरणं** प्रतिहरण मिथ्यात्वरागादिदोषेषु निवारण **धारणा** पंचनमस्कारप्रभृतिमंत्रप्रतिमादिवहिर्द्रव्यालंवनेन चित्तस्थिरीकरणं धारणा । **णियत्तीय** बहिरंगविषयकषायादीहागतचित्तस्य निवर्तन निवृत्तिः । **णिंदा** आत्मसाक्षिदोषप्रकटनं निंदा **गरुहा** गुरुसाक्षिदोषप्रकटनं गर्हा । **सोहिय** दोषे सति प्रायश्चित्तं गृहीत्वा विशुद्धिकारणं शुद्धिः । इत्यष्टविकल्पशुभरूपशुभोपयोगो यद्यपि मिथ्यात्वादिविषयकषायपरिणतिरूपाशुभोपयोगापेक्षया सविकल्पसरागचारित्रावस्थायाममृतकुभो भवति । तथापि रागद्वेषमोहख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभू-

---

बुद्धि संभवती है [**च**] और [**अप्रतिक्रमणं अप्रतिसरणं अपरिहारः अधारणा**] अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अपरिहार अधारणा [**अनिवृत्तिः अनिंदा अगर्हा**] अनिवृत्ति अनिंदा अगर्हा [**च एव**] और [**अशुद्धिः**] अशुद्धि इसतरह आठ प्रकार [**अमृतकुंभः**] अमृतकुंभ हैं क्योंकि, यहां कर्तापनाका निषेध है कुछ भी नहीं करना इसलिये वंधसे रहित हैं ॥ **टीका**—जो प्रथम अज्ञानीजन साधारण अप्रतिक्रमणादिक है वह तो शुद्धात्माकी सिद्धिके अभाव स्वभावरूप होनेसे स्वयमेव अपराध (दोष)रूप ही है इसलिये उसके विचारनेसे क्या ? वह तो पहले ही त्यागने योग्य है, और जो द्रव्य प्रतिक्रमणादिक है वह सव अपराधरूपपनेसे विषके क्रमको मेटनेमें समर्थ होनेसे अमृतकुंभ भी व्यवहार आचारसूत्रमें कहा है तो भी प्रतिक्रमण अप्रतिक्रमण आदि दोनोंसे विलक्षण ऐसी अप्रतिक्रमण आदिस्वरूप तीसरी भूमिको नहीं देखनेवाले पुरुषके दोषके काटनेरूप अपने कार्य करनेमें असमर्थपनेकर वंधकार्यके करनेवालेपनेसे प्रतिक्रमणादिक विषकुंभ ही है । अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमि आप शुद्धात्माकी सिद्धिरूप है उसपनेसे सव अपराधरूप विषके दोषोंको मेटनेवाली है इसलिये साक्षात् आप ही अमृतकुंभ है । इसतरह तीसरी भूमि व्यवहार करके द्रव्यप्रतिक्रमणादिकके भी अमृतकुंभपनको साधती है । उस तीसरी भूमिकर ही आत्मा निरपराध होता है । इस तीसरी भूमिकाका अभाव होनेसे द्रव्य प्रतिक्रमणादिक भी अपराध ही है । इसलिये ऐसा सिद्ध हुआ कि अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमिकर ही निरपराधपना है । उसकी प्राप्तिके लिये ही यह द्रव्य

कीं भूमिमपश्यतः स्वकार्यकरणासमर्थत्वेन विपक्षकार्यकारित्वाद्विषकुंभ एव स्यात् । अप्रतिक्रमणादिरूपा तृतीयभूमिस्तु स्वयं शुद्धात्मसिद्धिरूपत्वेन सर्वापराधविषदोषाणां सर्वंकषत्वात् साक्षात्स्वयममृतकुंभो भवतीति व्यवहारेण द्रव्यप्रतिक्रमणादेरपि, अमृतकुंभत्वं साधयति । तयैव च निरपराधो भवति चेतयिता । तदभावे द्रव्यप्रतिक्रमणादेरप्यपराध एव । अतस्तृतीयभूमिकयैव निरपराधत्वमित्यवतिष्ठते, तत्प्राप्त्यर्थ एवायं द्रव्यप्रतिक्रमणादिः, ततो मेति मंस्था यत्प्रतिक्रमणादीन् श्रुतिरूपा जयति किंतु द्रव्यप्रतिक्रमणादिना न मुंचति अन्यदीयप्रतिक्रमणाप्रतिक्रमणाद्यगोचराप्रतिक्रमणादिरूपं शुद्धात्मसिद्धिलक्ष-

---

तभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनविभावपरिणामशून्या, चिदानंदैकस्वभावविशुद्धात्मालंबनभरितावस्था निर्विकल्पशुद्धोपयोगलक्षणा, **अपडिक्कमणं** इति गाथाकथितक्रमेण ज्ञानिजनाश्रितनिश्चयाप्रतिक्रमणादिरूपा तु या तृतीया भूमिस्तदपेक्षया वीतरागचारित्रस्थिताना पुरुषाणां विषकुंभ एवेत्यर्थः । किं च विशेषः—अप्रतिक्रमणं द्विविधं भवति ज्ञानिजनाश्रितं, अज्ञानिजनाश्रितं चेति । अज्ञानिजनाश्रितं यदप्रतिक्रमणं तद्विषयकषायपरिणतिरूपं भवति । ज्ञानिजीवाश्रितमप्रतिक्रमणं तु शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानलक्षणत्रिगुप्तिरूपं । तच्च ज्ञानि-

---

प्रतिक्रमणादिक है । इससे ऐसा नहीं समझना कि निश्चयनयका शास्त्र द्रव्यप्रतिक्रमणादिको छुडाता है । तो क्या कहता है ? द्रव्यप्रतिक्रमणादिकसे ही आत्मा बंधसे नहीं छूटता इसके सिवाय अन्य भी प्रतिक्रमण अप्रतिक्रमण आदिके अगोचर अप्रतिक्रमणादिरूप शुद्धात्माकी सिद्धि जिसका लक्षण है और जिसका करना अति कठिन है वह ऐसा कुछ करता है वह आगेकी गाथामें कहेंगे । उसकी **कम्मं** इत्यादि गाथा है । उसमें निश्चय प्रतिक्रमणादिका स्वरूप आगे कहेंगे वहीं इस गाथाका भी अर्थ किया जाइगा ॥ **भावार्थ**—व्यवहारनयके आलंबीने कहा कि जो लगे दोषका प्रतिक्रमणादिकर ही आत्मा शुद्ध होता है तो पहले शुद्धात्माके आलंबनका खेद करनेसे क्या ? शुद्धहुए वाद उसका आलंबन होता है पहले तो आलंबनका खेद निष्फल है । उसको आचार्य समझाते हैं कि, द्रव्यप्रतिक्रमणादि दोषके मेटनेवाले हैं परंतु शुद्ध आत्माका स्वरूप प्रतिक्रमणादिरहित है उसके आलंबनविना तो द्रव्यप्रतिक्रमणादिक दोषस्वरूप ही है दोषके मेटनेको समर्थ नहीं हैं क्योंकि निश्चयकी अपेक्षासहित ही व्यवहारनय मोक्षमार्गमें है केवल व्यवहारका ही पक्ष तो मोक्षमार्गमें नहीं है बंधका ही मार्ग है । इसलिये ऐसा कहा है कि अज्ञानीके जो अप्रतिक्रमणादिक हैं वे तो विषकुंभ ही है उनकी तो क्या कथा ? परंतु जो व्यवहार चारित्रमें प्रतिक्रमणादिक कहे है वे भी निश्चयनयकर विषकुंभ ही है । क्योंकि आत्मा तो प्रतिक्रमणादिककर रहित शुद्ध अप्रतिक्रमणादिस्वरूप है । ऐसा जानना ॥ अब इस कथनका कलशरूप १८८ वां काव्य कहते हैं—**अतो हताः**

णमतिदुष्करं किमपि करिष्यति । वक्ष्यते चात्रैव—कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं । तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिकम्मणं ॥ इत्यादि । अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां । प्रलीनं चापलमुन्मीलितमालंबनं । आत्मन्येवालानितं चित्तमासंपूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥ १८८ ॥ यत्र प्रतिक्रमणमेव विषप्रणीतं तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् । तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥ १८९ ॥ प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः कषायभरगौरवाद-

---

जनाश्रितमप्रतिक्रमणं सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगापेक्षया यद्यप्यप्रतिक्रमण भण्यते तथापि वीतरागचारित्रापेक्षया तदेव निश्चयप्रतिक्रमणं । कस्मात्? इति चेत्, समस्तशुभाशुभास्रवदोषनिराकरणरूपत्वादिति । ततः स्थित तदेव निश्चयप्रतिक्रमण । व्यवहारप्रतिक्रमणापेक्षया, अप्र-

---

इत्यादि । अर्थ—इस कथनसे सुखकर बैठेहुए प्रमादी जीवोंको तो ताडना की है और जो निश्चयनयका आश्रय ले प्रमादी हो प्रवर्ते उनको ताड़कर उद्यममें लगाया है चपलपनका नाश किया है, जो स्वच्छंद वर्तते हैं उनका स्वच्छंदपना मेंटा है आलंवनको दूर किया है । जो व्यवहारकी पक्षकर परद्रव्यका तथा द्रव्यप्रतिक्रमणादिका आलंवन ले संतुष्ट होते है उनका आलंवन छुडाया है । चित्तको आत्मामें ही थाभा है व्यवहारके आलंवनसे अनेक प्रवृत्तियोंमें चित्त भ्रमता था सो शुद्ध आत्मामें ही लगाया है । जहांतक संपूर्णविज्ञानघन आत्माकी प्राप्ति न हो वहांतक चैतन्यमात्र आत्मामें चित्त लगा रहे इसतरह थाभा (स्थिर किया) है ऐसा जानना ॥ अव कहते हैं कि यहा निश्चयनयकर प्रतिक्रमणादिकको तो विपकुंभ कहा और अप्रतिक्रमणादिकको अमृतकुंभ कहा, इस कहनेको कोई उलटा समझकर प्रतिक्रमणादिको छोड प्रमादी होवे उसे समझानेको १८९ वां कलशरूप काव्य कहते है—यत्र इत्यादि । अर्थ—हे भाई जहां प्रतिक्रमणको ही विप कहा है वहां अप्रतिक्रमण कैसे अमृत हो सकता है ? इसलिये यह लोक नीचे नीचे पड़ताहुआ प्रमादरूप क्यों होता है ? निष्प्रमादी हुआ ऊंचा ऊंचा क्यों नहीं चढता ? ॥ भावार्थ—आचार्य कहते हैं कि अज्ञानावस्थामें जो अप्रतिक्रमणादिक था उसकी तो कथा ही क्या ? यहां तो निश्चयनयको प्रधानकर द्रव्यप्रतिक्रमणादिक शुभ प्रवृत्तिरूप थे उनकी पक्ष छुडानेको उन्हें तो विपकुभ कहा है, क्योकि ये कर्मवंधके ही कारण हैं । और अप्रतिक्रमण प्रतिक्रमणसे रहित तीसरी भूमि जो शुद्ध आत्मस्वरूप है वह प्रतिक्रमणादिसे रहित है इसलिये वहांके अप्रतिक्रमणादि अमृतकुंभ कहेगये हैं उस भूमिमे चढानेको उपदेश किया है । सो प्रतिक्रमणादिकको विषकुंभ कहेगये सुनकर जो प्रमादी होता है उसको कहते हैं कि यह जन नीचा नीचा क्यों पड़ता है तीसरी भूमिमें ऊंचा ऊंचा क्यों नहीं चढता है ? जहां प्रतिक्रमणको विषकुंभ कहा है वहां तो उसका निषेधरूप अप्रतिक्रमण ही अमृतकुभ होगा । सो यह अतिक्रमणादिक अज्ञानीके होनेवाला

लसतां प्रमादो यतः । अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते वाचिरात् ॥ १९० ॥ त्यक्त्वा शुद्धविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं स्वे द्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः । बंधध्वंसमुपेत्यनित्यमुदितस्वज्योतिरच्छो-

---

तिक्रमणशब्दवाच्यं ज्ञानिजनस्य मोक्षकारणं भवति । व्यवहारप्रतिक्रमणं तु यदि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा तस्यैव निश्चयप्रतिक्रमणस्य साधकभावेन विषयकषायवंचनार्थं करोति तदपि परंपरया मोक्षकारणं भवति, अन्यथा स्वर्गादिसुखनिमित्तपुण्यकारणमेव । यत्पुनरज्ञानिजनसंबं-

---

नहीं जानना, तीसरी भूमिका शुद्ध आत्मामयी जानना ॥ आगे इसी अर्थको दृढ करते हुए १९० वां काव्य कहते हैं—**प्रमाद** इत्यादि । **अर्थ**—जिसकारण कषायके भारके भारीपनेसे आलसपना है उसे प्रमाद कहते हैं । ऐसे प्रमादकर युक्त आलसभाव है वह शुद्धभाव कैसे हो सकता है ? इसलिये आत्मीकरसकर भरे स्वभावमें निश्चय हुआ मुनि परम शुद्धताको प्राप्त होता है और शीघ्र—थोडे समयमें ही कर्मबंधसे छूट जाता है ॥ **भावार्थ**—प्रमाद तो कषायके गौरवसे होता है इसलिये प्रमादीके शुद्धभाव नहीं होते। जो मुनि उद्यमकर स्वभावमें प्रवर्तता है वह शुद्ध होकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ अब मुक्त होनेके अनुक्रमके अर्थरूप १९१ वां काव्य कहते है और मोक्षका अधिकार पूर्ण करते हैं—**त्यक्त्वा** इत्यादि। **अर्थ**—जो पुरुष निश्चयकर अशुद्धताके करनेवाले सब परद्रव्यको छोड आप अपने निजद्रव्यमें लीन होता है वह पुरुष नियमसे सब अपराधोंसे रहित हुआ बंधके नाशको प्राप्त होनेसे नित्य उदयरूप हुआ अपने स्वरूपके प्रकाशरूप ज्योतिकर निर्मल उछलता जो चैतन्यरूप अमृतका प्रवाह उसकर जिसकी महिमा पूर्ण है ऐसा शुद्धहुआ कर्मोंसे छूटता है ॥ **भावार्थ**—पहले समस्त परद्रव्यका त्यागकर अपने आत्मस्वरूप (निजद्रव्य) में लीन होता है वह सब रागादिक अपराधोंसे रहितहोके आगामी बंधका नाश करता है और नित्य उदयरूप केवलज्ञानको पाके शुद्धहोकर सब कर्मोंका नाशकर मोक्षको पाता है । यही मोक्ष होनेका क्रम है । इसतरह मोक्षका अधिकार पूर्ण हुआ, उसके अंत मंगलरूपज्ञानकी महिमाका कलशरूप १९२ वां काव्य कहते हैं—**बंध** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञान पूर्ण हुआ दैदीप्यमान प्रगट होता हुआ । क्या करता प्रगट हुआ ? कर्मके बंधके छेदनेसे अविनाशी अतुल जो मोक्ष उसको प्राप्त हुआ । जिसका प्रकाश नित्य है ऐसी जिसकी स्वाभाविक अवस्था प्रफुल्लित हुई है । उसके कर्मका मैल न रहनेसे अत्यंत शुद्ध प्रगट हुआ है, और एक अपने ज्ञानमात्र आकारके निजरसके भारसे अत्यंत गंभीर व धीर है, जिसकी थाह नहीं और जिसमें कुछ आकुलता नहीं । प्रगट होके क्या किया ? किसीप्रकार नहीं चले ऐसी अचल अपनी महिमामें लीन हुआ ॥ **भावार्थ**—यह ज्ञान प्रगट हुआ सो कर्मका नाशकर मोक्षरूप

चलचैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥ १९१ ॥ "बंधच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेतन्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकांतशुद्धं । एकाकारस्वरसभरतोऽत्यंतगंभीरधीरं पूर्णज्ञानज्वलितमचले स्वस्य लीने महिम्नि ॥ १९२ ॥" ३०६ ॥ ३०७ ॥ इति मोक्षो निष्क्रांतः ।

इति श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ **मोक्ष**-प्ररूपकः अष्टमोऽकः ॥ ८ ॥

धिमिथ्यात्वविषयकषायपरिणतिरूपमप्रतिक्रमणं तन्नरकादिदुःखकारणमेव । एव प्रतिक्रमणाद्यष्टविकल्परूपशुभोपयोगो यद्यपि सविकल्पावस्थायाममृतकुभो भवति तथापि सुखदुःखादिसमतालक्षणपरमोपेक्षारूपसंयमापेक्षया विषकुंभ एवेति व्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गत ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ तत्रैवं सति श्रृंगाररहितपात्रवद्रागादिरहितशातरसपरिणतशुद्धात्मरूपेण मोक्षो निष्क्रातः ।

इति श्री**जयसेनाचार्य**कृताया समयसारव्याख्याया शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया **तात्पर्यवृत्तौ** द्वाविंशतिगाथाभिश्चतुर्भिरंतराधिकारैर्नवमो **मोक्षाधिकारः** समाप्तः ॥ ८ ॥

हुआ अपनी स्वाभाविक अवस्थारूप अत्यंत शुद्ध समस्त ज्ञेयाकारको गौणकर अपना (ज्ञानका) प्रकाश "जिसकी थाह नहीं व जिसमें आकुलता नहीं" ऐसा प्रगट दैदीप्यमान होकर अपनी महिमामें लीन हुआ है ॥ ३०६।३०७ ॥

इसप्रकार रंगभूमिमें मोक्षतत्त्वका स्वांग आया था । सो जब ज्ञान प्रगट हुआ तब मोक्षका स्वांग निकल गया ॥ यहांतक ३०७ गाथा और १९२ कलशकाव्य हुए ॥

सवैया—ज्यों नर कोय पर्यो दृढबंधन बंधस्वरूप लखै दुखकारी,
चिंतकरै निति कैम कटे यह तौऊ छिदै नहि नैक टिकारी ।
छेदनकूं गहि आयुध धाय चलाय निशंक करै दुय धारी,
यों बुध बुद्धि धसाय दुधा करि कर्म रु आतम आप गहारी ॥ १ ॥

इसप्रकार श्री **पं० जयचंद्र** विरचित समयसारग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीका की भाषावचनिकामें आठवां **मोक्ष** नामा अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः ॥ ९ ॥



अथ प्रविशति सर्वविशुद्धज्ञानं। "नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान् दूरीभूतः प्रतिपदमयं बंधमोक्षप्रकॢप्तेः । शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिष्टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥ १९३ ॥ कर्तृत्वं न स्वभावोस्य चितो वेदयितृत्ववत् । अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः ॥ १९४ ॥

अथात्मनोऽकर्तृत्वं दृष्टांतपुरस्सरमाख्याति;—

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥ ३०८ ॥
जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥ ३०९ ॥
ण कुदोचि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण स होइ ॥ ३१० ॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पंजंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥ ३११ ॥

द्रव्यं यदुत्पद्यते गुणैस्तत्तैर्जानीह्यनन्यत् ।
यथा कटकादिभिस्तु पर्यायैः कनकमनन्यदिह ॥ ३०८ ॥

अथ प्रविशति **सर्वविशुद्धज्ञानं** । संसारपर्यायमाश्रित्याशुद्धोपादानरूपेणाशुद्धनिश्चयनयेन यद्यपि कर्तृत्वभोक्तृत्वबंधमोक्षादिपरिणामसहितो जीवस्तथापि सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमग्राहकेण शुद्धोपादानरूपेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्वभोक्तृत्वबंधमोक्षादिकरणभूतपरिणामशून्य एवेति । **दवियं जं उप्पज्जदि** इत्यादिगाथामादिं कृत्वा चतुर्द-

---

अथ **सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार । दोहा**—"सर्वविशुद्ध सुज्ञानमय, सदा आतमाराम । परकूं करै न भोगवै, जानै जपि तसु नाम" यहां मोक्षतत्त्वका स्वांग निकलनेके वाद सर्वविशुद्ध ज्ञान प्रवेश करता है । रंगभूमिमें जीवाजीव, कर्ता कर्म, पुण्य पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष—ये आठ स्वांग आये थे उनका नृत्य हुआ । अपना अपना स्वरूप दिखलाके निकल गये । अब सव स्वांग दूर हुए एकाकार सर्वविशुद्ध ज्ञान प्रवेश करता है । वहां प्रथम ही मंगलरूप ज्ञानपुंज आत्माकी महिमाका १९३ वां काव्य कहते हैं—**नीत्वा** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानका पुंज आत्मा सब ही कर्ता भोक्तापनके भावोंको अच्छीतरह नाशको प्राप्तकर प्रगट होता है । कैसा है ? वारंवार नाशको प्राप्तकर प्रगट होता है । कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे अनेक अवस्थायें होती हैं उनमें बंध-

जीवस्याजीवस्य तु ये परिणामास्तु दर्शिताः सूत्रे ।
ते जीवमजीव वा तैरनन्यं विजानीहि ॥ ३०९ ॥
न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात्कार्यं न तेन स आत्मा ।
उत्पादयति न किंचित्कारणमपि तेन न स भवति ॥ ३१० ॥
कर्म प्रतीत्य कर्ता कर्तारं तथा प्रतीत्य कर्माणि ।
उत्पद्यंते च नियमात्सिद्धिस्तु न दृश्यतेऽन्या ॥ ३११ ॥

जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः, एवमजीवोऽपि

शगाथापर्यंतं मोक्षपदार्थचूलिकाव्याख्यान करोति । तत्रादौ निश्चयेन कर्मकर्तृत्वाभावमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टय । तदनंतरं शुद्धस्यापि यद् ज्ञानावरणप्रकृतिबंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमिति कथनार्थ **चेदा दु पयडिअट्ठं** इत्यादि प्राकृतश्लोकचतुष्टयं । अतः परं भोक्तृत्वाभावज्ञापनार्थं **अण्णाणी कम्मफलं** इत्यादिसूत्रचतुष्टय । तदनंतरं मोक्षचूलिकोपसहाररूपेण **विकुणदि** इत्यादि सूत्रद्वयं कथयतीति मोक्षपदार्थचूलिकायां समुदायपातनिका । अथ निश्चयेन कर्मणा कर्ता न भवति इत्याख्याति,—यथा कनकमिह कटकादिपर्यायैः सहानन्यदभिन्नं भवति तथा द्रव्यमपि यदुत्पद्यते परिणमति । कैः सह ? स्वकीयस्वकीयगुणैः, तद्द्रव्यं तैर्गुणैः सहानन्यदभिन्नमिति जानीहि इति प्रथमगाथा । **जीव-**

मोक्षकी तरह कल्पना प्रवृत्तिसे दूरवर्ती है तथा शुद्ध है शुद्ध है । दोवार कहनेसे रागादिक मल और आवरण दोनोंसे रहित है । फिर कैसा है ? अपने निजरस (ज्ञानरस) के फैलनेसे भरा ऐसा पवित्र और अचल जिसका प्रकाश है तथा जिसकी महिमा टंकोत्कीर्ण प्रगट है ॥ **भावार्थ**—शुद्धनयका विषय ज्ञानस्वरूप आत्मा है वह कर्ता भोक्तापनके भावसे रहित है । बंधमोक्षकी रचनाकर रहित है । परद्रव्यसे और सब परद्रव्यके भावोंसे रहित है इसलिये शुद्ध है और अपने निजरसके प्रवाहकर पूर्ण दैदीप्यमान ज्योतीरूप टंकोत्कीर्ण जिसकी महिमा है । ऐसा ज्ञानपुंज आत्मा प्रगट होता है ॥ अब सर्वविशुद्ध ज्ञानको प्रगट करते हैं । वहा प्रथम ही कर्ता भोक्ता भावसे जुदा दिखलाते हैं उसकी सूचनाका १९४ वां श्लोक कहते हैं—**कर्तृत्वं** इत्यादि । **अर्थ**—इस चित्स्वरूप आत्माका कर्तापना स्वभाव नहीं है । जैसे भोक्तापन स्वभाव नहीं है उसतरह । यह आत्मा कर्ता माना जाता है वह अज्ञानसे माना जाता है । जब अज्ञानका अभाव हो जाता है तब कर्ता नहीं है ॥ आगे आत्माका अकर्तापन दृष्टांतपूर्वक सिद्ध करते हैं,—**[यत् द्रव्यं]** जो द्रव्य **[गुणैः]** जिन अपने गुणोंकर **[उत्पद्यते]** उपजता है **[तत्]** वह **[तैः]** उन गुणोंकर **[अनन्यत्]** अन्य नहीं **[जानीहि]** जानना उन गुणमय ही है **[यथा]** जैसे **[कनकं]** सुवर्ण **[कटकादिभिः]** अपने कटक कडे आदि **[पर्यायैः]** पर्यायोंकर **[इह]** लोकमें **[अनन्यत् तु]** अन्य नहीं है—कटकादि है वह सुवर्ण

क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानोऽजीव एव न जीवः, सर्वद्रव्याणां स्वपरिणामैः सह तादात्म्यात् कंकणादिपरिणामैः कांचनवत्। एवं हि जीवस्य स्वपरिणामैरुत्पद्यमानस्याप्यजीवेन सह कार्यकारणभावो न सिद्ध्यति, सर्वद्रव्याणां द्रव्यांतरेणोत्पाद्योत्पादकभावाभावात्। तदसिद्धौ चाजीवस्य जीवकर्मत्वं न सिद्ध्यति तदसिद्धौ च कर्तृकर्मणोरनन्यापेक्षसिद्धत्वात् जीवस्याजीवकर्तृत्वं न सिद्ध्यति, अतो जीवोऽकर्ता अवतिष्ठते। "अकर्ता

स्साजीवस्स य जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते जीवस्य अजीवस्य च ये परिणामाः पर्याया देशिताः कथिताः सूत्रे परमागमे तैःसह तेनैव पूर्वोक्तसुवर्णदृष्टांतेन तमेव जीवाजीवद्रव्यमनन्यदभिन्नं विजानीहीति द्वितीयगाथा गता। यस्माच्छुद्धनिश्चयनयेन नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण कदाचिदपि नोत्पन्नः—कर्मणा न जनितः तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षयात्मा कार्यं न भवति। न च तत्कर्मनोकर्मोपादानरूपेण किमप्युत्पादयति तेन कारणेन कर्मनोकर्मणा कारणमपि न भवति, यतः कर्मणा कर्ता मोचकश्च न भवति ततःकारणाद्बंधमोक्षयोः शुद्धनिश्चयनयेन कर्ता न भवतीति तृतीयगाथा गता। **कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि उप्पज्जंते णियमा** यतः पूर्वं भणितं सुवर्णद्रव्यस्य कुंडलपरिणामेनेव सह जीवपुद्गलयोः स्वपरिणामैः सहैवानन्यत्वमभिन्नत्वं। पुनश्चोक्तं कर्मनोकर्मभ्यां कर्तृभूताभ्यां

ही है उसीतरह द्रव्य जानना। उसीतरह **[जीवाजीवस्य तु]** जीव अजीवके **[ये परिणामाः तु]** जो परिणाम **[सूत्रे दर्शिताः]** सूत्रमें कहे हैं **[तैः]** उन परिणामोंकर **[तं जीवं अजीवं वा]** उस जीव अजीवको **[अनन्यं]** अन्य नहीं **[विजानीहि]** जानना। परिणाम हैं वे द्रव्य ही हैं। **[यस्मात्]** जिसकारण **[स आत्मा]** वह आत्मा **[कुतश्चिदपि]** किसीसे भी **[न उत्पन्नः]** नहीं उत्पन्न हुआ है **[तेन]** इससे किसीका कियाहुआ **[कार्यं]** कार्य **[न भवति]** नहीं है और **[किंचिदपि]** किसी अन्यको भी **[न उत्पादयति]** उत्पन्न नहीं करता **[तेन]** इसलिये **[सः]** वह **[कारणमपि]** किसीका कारण भी **[न]** नहीं है। क्योंकि **[कर्म प्रतीत्य]** कर्मको आश्रयकर तो **[कर्ता]** कर्ता होता है **[तथा च]** और **[कर्तारं प्रतीत्य]** कर्ताको आश्रयकर **[कर्माणि]** कर्म **[उत्पद्यंते]** उत्पन्न होते हैं **[तु]** ऐसा **[नियमात्]** नियम है **[अन्या सिद्धिः]** अन्यतरह कर्ता कर्मकी सिद्धि **[न दृश्यते]** नहीं देखी जाती॥ **टीका**—जीव प्रथम ही क्रमकर निश्चित अपने परिणामोंकर उत्पन्न हुआ जीव ही है अजीव नहीं है। इसीतरह अजीव भी क्रमसे निश्चित अपने परिणामोंकर उत्पन्न हुआ अजीव ही है जीव नहीं है क्योंकि सभी द्रव्योंका अपने परिणामोंके साथ तादात्म्य है कोई भी अपने परिणामोंसे अन्य नहीं ऐसे परिणामोंको छोड अन्यमें नहीं जाता। जैसे कंकणादि परिणामोंकर

जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभुवनः । तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बंधः प्रकृतिभिः स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोपि गहनः ॥ १९५" ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥

जीवो नोत्पाद्यते जीवश्च कर्मनोकर्मणा नोत्पादयति ततो ज्ञायते कर्म प्रतीत्योपचारेण जीवः कर्मकर्ता । तथा कर्माणि चोत्पद्यते जीवकर्तारमाश्रित्योपचारेण नियमान्निश्चयात् संदेहो नास्ति **सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा** अनेन प्रकारेण, अनेन कोऽर्थः ? परस्परनिमित्तभावं विहाय शुद्धोपादानरूपेण शुद्धनिश्चयेन जीवस्य कर्मकर्तृत्वविषये । सिद्धिर्निष्पत्तिर्घटना न दृश्यते कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलाना च कर्मत्वं न दृश्यते ततःस्थितं शुद्धनिश्चयनयेनाकर्ता जीव इति चतुर्थगाथा गता । एव निश्चयेन जीवः कर्मणा कर्ता न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टय गत ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ अथ शुद्धस्यात्मनो

सुवर्ण उत्पन्न होता है वह कंकणादिसे अन्य नहीं है उनसे तादात्म्यस्वरूप है उसीतरह सब द्रव्य हैं । इसीतरह अपने परिणामोकर उत्पन्नहुए जीवका अजीवके साथ कार्य-कारणभाव नहीं सिद्ध होता क्योंकि सब द्रव्योंके अन्यद्रव्यके साथ उत्पाद्यउत्पादक-भावका अभाव है । उस कार्यकारण भावकी सिद्धि न होनेसे अजीवके जीवका कर्मपना सिद्ध नहीं होता, अजीवके जीवका कर्मपना न होनेसे कर्ता कर्मके अनन्यापेक्ष सिद्ध-पनासे जीवके अजीवका कर्तापना नहीं सिद्ध होता । इसलिये जीव परद्रव्यका कर्ता नहीं सिद्ध हुआ अकर्ता ही सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ**—सब द्रव्योंके परिणाम जुदे २ हैं । अपने २ परिणामोंके सब कर्ता हैं वे उनके कर्ता है वे परिणाम उनके कर्म हैं । निश्चय-कर किसीका किसीसे भी कर्ताकर्मसंबंध नहीं है इसकारण जीव अपने परिणामोंका कर्ता है अपना परिणाम कर्म है । इसीतरह अजीव अपने परिणामोंका कर्ता है अपना परिणाम कर्म है । इसतरह जीव अन्यके परिणामोंका अकर्ता है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप १९५ वा काव्य कहते हैं उसमें जीव अकर्ता है तो भी इसके बंध होता है यह अज्ञानकी महिमा है ऐसा कहते हैं—**अकर्ता** इत्यादि । **अर्थ**—इसतरह जीव अपने निजरससे विशुद्ध है इसलिये परद्रव्यका तथा परभावोंका अकर्ता ठहरा । कैसा है जीव ? स्फुरायमान होतीं (फैलतीं) जो चैतन्य ज्योति उनकर व्याप्त हुआ है लोकका मध्य जिसकर ऐसा है तौ भी इसके इसलोकमें प्रगट कर्मप्रकृतियोंसे बंध होता है । सो यह निश्चयकर अज्ञानकी कोई ऐसी ही महिमा है वह बडी गहन है उसका थाह नहीं पाया जाता ॥ **भावार्थ**—शुद्धनयकर जीव परद्रव्यका कर्ता नहीं है तथा जिसका ज्ञान सब ज्ञेयोंमें व्यापनेवाला है तौभी इसके कर्मका बंध होता है यह कोई अज्ञानकी बडी महिमा है ॥ ३०८।३०९।३१०।३११ ॥

चेया उ पयडीयट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ।
पयडीवि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥ ३१२ ॥
एवं बंधो उ दुण्हंपि अण्णोण्णप्पचया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥ ३१३ ॥

चेतयिता तु प्रकृत्यर्थमुत्पद्यते विनश्यति ।
प्रकृतिरपि चेतकार्थमुत्पद्यते विनश्यति ॥ ३१२ ॥
एवं बंधस्तु द्वयोरपि अन्योन्यप्रत्ययाद्भवेत् ।
आत्मनः प्रकृतेश्च संसारस्तेन जायते ॥ ३१३ ॥

अयं हि आ संसारत एव प्रतिनियतस्वलक्षणानिर्ज्ञानेन परमात्मनोरेकत्वाध्यासस्य कारणात्कर्ता सन् चेतयिता प्रकृतिनिमित्तमुत्पादविनाशावासादयति । प्रकृतिरपि चेतयितृनिमित्तमुत्पत्तिविनाशावासादयति । एवमनयोरात्मप्रकृत्योः कर्तृकर्मभावाभावेप्यन्योन्यनिमित्तनैमित्तिकभावेन द्वयोरपि बंधो दृष्टः, ततः संसारः तत एव च तयोः कर्तृकर्मव्यवहारः ॥३१२।३१३॥

ज्ञानावरणादिप्रकृतिभिर्यद् बंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमिति प्रज्ञापयति;—**चेदा** आत्मा स्वस्थभावच्युतः सन् प्रकृतिनिमित्तं कर्मोदयनिमित्तमुत्पद्यते । विनश्यति च विभावपरिणामैः पर्यायैः । प्रकृतिरपि चेतयितृकार्यं जीवसंबंधिरागादिपरिणामनिमित्त ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायैः उत्पद्यते विनश्यति च । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण बंधो जायते द्वयोः—स्वस्थभावच्युतस्यात्मनः, कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिंडरूपाया ज्ञानावरणादिप्रकृतेश्च । कथंभूतयोर्द्वयोः ? अन्योन्यप्रत्यययोः, परस्परनिमित्तकारणभूतयोः । एव रागाद्यज्ञानभावेन बंधो भवति तेन बंधेन संसारो जायते, न च

आगे इस अज्ञानकी महिमाको प्रगट करते है,—[**चेतयिता तु**] चेतनेवाला आत्मा तो [**प्रकृत्यर्थं**] ज्ञानावरणादि कर्मकी प्रकृतियोंके निमित्तसे [**उत्पद्यते**] उत्पन्न होता है [**विनश्यति**] तथा विनसता है और [**प्रकृतिरपि**] प्रकृति भी [**चेतकार्थं**] उस चेतनेवाले आत्माके लिये [**उत्पद्यते**] उत्पन्न होती है [**विनश्यति**] तथा विनाशको प्राप्त होती है। आत्माके परिणामोंके निमित्तसे उसीतरह परिणमती है। [**एवं**] इसतरह [**द्वयोः**] दोनों [**आत्मनः च प्रकृतेः**] आत्मा और प्रकृतिके [**अन्योन्यप्रत्ययात्**] परस्पर निमित्तसे [**बंधः**] बंध होता है [**च तेन**] और उस बंधकर [**संसारः जायते**] संसार उत्पन्न होता है ॥ **टीका**—यह आत्मा अनादिसंसारसे लेकर अपने और बंधके जुदे जुदे लक्षणका भेदज्ञान न होनेसे पर और आत्माके एकपनेका निश्चित अभिप्राय करनेसे परद्रव्यका कर्ता हुआ ज्ञानावरणआदि कर्मकी प्रकृतिके निमित्तसे उत्पन्न होना विनाश होना करता है।

जा एसो पयडीयट्ठं चेया णेव विमुंचए ।
अयाणओ हवे ताव मिच्छाइट्ठी असंजओ ॥ ३१४ ॥
जया विमुंचए चेया कम्मप्फलमणंतयं ।
तया विमुत्तो हवइ जाणओ पासओ मुणी ॥ ३१५ ॥

यावदेष प्रकृत्यर्थं चेतयिता नैव विमुंचति ।
अज्ञायको भवेत्तावन्मिथ्यादृष्टिरसंयतः ॥ ३१४ ॥
यदा विमुंचति चेतयिता कर्मफलमनंतकं ।
तदा विमुक्तो भवति ज्ञायको दर्शको मुनिः ॥ ३१५ ॥

यावदयं चेतयिता प्रतिनियतस्वलक्षणानिर्ज्ञानात् प्रकृतिस्वभावमात्मनो बंधनिमित्तं न मुंचति तावत्स्वपरयोरेकत्वज्ञानेनाज्ञायको भवति । स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन मिथ्यादृष्टिर्भ-

---

स्वस्वरूपत इत्युक्तं भवति ॥३१२॥३१३॥ अथ यावत्काल शुद्धात्मसंवित्तिच्युतः सन् प्रकृत्यर्थं प्रकृत्युदयरूप रागादिकं न मुंचति तावत्कालमज्ञानी स्यात् तदभावे ज्ञानी च भवतीत्युपदिशति;— यावत्कालमेष चेतयिता जीवः, चिदानंदैकस्वभावपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवरूपाणा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामभावात्प्रकृत्यर्थं रागादिकर्मोदयरूपं न मुंचति, तावत्काल रागादिरूपमात्मानं श्रद्धाति जानात्यनुभवति च ततो मिथ्यादृष्टिर्भवति, अज्ञानी भवति, असयतश्च भवति, तथा-

---

और प्रकृति भी आत्माके निमित्तसे उत्पत्ति विनाशको प्राप्त होती है आत्माके परिणामके अनुसार परिणमती है । इसतरह आत्मा और प्रकृति इन दोनोंके परमार्थसे कर्ता कर्मपनेके भावका अभाव होनेपर भी परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावसे दोनोंके ही बंध देखा जाता है उस बंधसे संसार होता है उसीसे दोनोंके कर्ता कर्मका व्यवहार प्रवर्तता है ॥ **भावार्थ**—आत्मा और प्रकृतिके परमार्थसे कर्ता कर्मपनेका अभाव है तौभी परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावसे कर्ता कर्मका भाव है इससे बंध है, बंधसे संसार है । ऐसा व्यवहार है ॥ ३१२।३१३ ॥

आगे कहते हैं जबतक आत्मा प्रकृतिके निमित्तसे उपजना विनाश होना न छोडे तबतक अज्ञानी मिथ्यादृष्टि असंयत है;—[**एष चेतयिता**] यह आत्मा [**यावत्**] जबतक [**प्रकृत्यर्थं**] प्रकृतिके निमित्तसे उपजना विनशना [**नैव विमुंचति**] नहीं छोडता [**तावत्**] तबतक [**अज्ञायकः**] अज्ञानी हुआ [**मिथ्यादृष्टिः**] मिथ्यादृष्टि [**असंयतः**] असंयमी [**भवेत्**] होता है । [**यदा**] और जब [**चेतयिता**] आत्मा [**अनंतकं**] अनंत [**कर्मफलं**] कर्मफलको [**विमुंचति**] छोड देता है [**तदा**] उससमय [**विमुक्तः**] बंधसे रहित हुआ [**ज्ञायकः दर्शकः**] ज्ञाता द्रष्टा [**मुनिः भवति**] संयमी होता है ॥ **टीका**—जबतक यह

वति । स्वपरयोरेकत्वपरिणत्या चासंयतो भवति । तावदेव परात्मनोरेकत्वाध्यासस्य करणात्कर्ता भवति । यदा स्वयमेव प्रतिनियतस्वलक्षणनिर्ज्ञानात् प्रकृतिस्वभावमात्मनो बंधनिमित्तं मुंचति तदा स्वपरयोर्विभागज्ञानेन ज्ञायको भवति । स्वपरयोर्विभागदर्शनेन दर्शको भवति । स्वपरयोर्विभागपरिणत्या च संयतो भवति तदैव च परात्मनोरेकत्वाध्यासस्याकरणादकर्ता भवति । "भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः[1] कर्तृत्ववच्चितः । अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ॥ १९६" ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

भूतः सन् मोक्षं न लभते । यदा पुनरयमेव चेतयिता मिथ्यात्वरागादिरूपं कर्मफल शक्तिरूपेणानंतविशेषेण सर्वप्रकारेण मुंचति तदा शुद्धबुद्धैकस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवरूपाणां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणा सद्भावात् लोभमिथ्यात्वरागादिभ्यो भिन्नमात्मान श्रद्धाति जानात्यनुभवति च । ततः सम्यग्दृष्टिर्भवति, संयतो मुनिश्च भवति । तथाभूतः सन् विशेषेण द्रव्यभावगतमूलोत्तरप्रकृतिविनाशेन मुक्तो भवतीति । एवं यद्यप्यात्मा शुद्धनिश्चयेन कर्ता न भवति तथाप्यनादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन कर्म बध्नातीति अज्ञानसामर्थ्यज्ञापनार्थं द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गतं ॥३१४॥३१५॥ अथ शुद्धनिश्चयनयेन कर्मफलभोक्तृत्वं जीवस्व-

---

आत्मा अपना और प्रकृतिका जुदा जुदा स्वभावरूप लक्षणके भेदज्ञानके अभावसे अपने बंधका निमित्त जो प्रकृतिका स्वभाव उसे नहीं छोडता तबतक अपने और परके एकपनेके ज्ञानकर अज्ञायक होता है, अपने परके एकपनेके दर्शन (श्रद्धान) कर मिथ्यादृष्टि होता है, अपनी परकी एकपनेकी परिणतिकर असंयत होता है तबतक ही पर और आत्माके एकपनेका अध्यवसान करनेसे कर्ता होता है । और जिससमय यही आत्मा आप और प्रकृतिके जुदे जुदे स्वलक्षणके निर्णयरूप ज्ञानसे अपने बंधका निमित्त प्रकृतिके स्वभावको छोड देता है उस काल अपना परका विभागके ज्ञानकर ज्ञायक होता है, अपने और परके विभागका श्रद्धानकर दर्शक होता है अपने परके विभागकी परिणतिकर संयत होता है और उसी काल अपने परके एकपनका अभ्यास न करनेसे अकर्ता होता है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा जबतक अपना और परका निजलक्षण नहीं जानता तबतक भेदज्ञानके अभावसे कर्मप्रकृतिके उदयको अपना समझ परिणमता है । उसीतरह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी असंयमी होके कर्ता हुआ कर्मका बंध करता है । और जब भेदज्ञान हो जाता है तब उसका न कर्ता बनता है न कर्मका बंध करता है केवल ज्ञाता द्रष्टा हुआ परिणमता है ॥ इसीतरह भोक्तापन आत्माका स्वभाव नहीं है ऐसा उसकी सूचनाका १९६ वां श्लोक कहते हैं—**भोक्तृत्वं** इत्यादि । **अर्थ**—इस आत्माका जैसे कर्ता स्वभाव नहीं है उसीतरह भोक्तापन स्वभावभी नहीं है यह अज्ञानसे ही भोक्ता होता है । जब अज्ञानका अभाव होजाता है तब भोक्ता नहीं होता ॥३१४।३१५॥

---

1 स्थित. इति ख. पाठ. ।

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिओ दु वेदेइ ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणइ उदियं ण वेदेइ ॥ ३१६ ॥

अज्ञानी कर्मफलं प्रकृतिस्वभावस्थितस्तु वेदयते ।
ज्ञानी पुनः कर्मफलं जानाति उदितं न वेदयते ॥ ३१६ ॥

अज्ञानी हि शुद्धात्मज्ञानाभावात् स्वपरयोरेकत्वज्ञानेन, स्वपरयोरेकत्वदर्शनेन, स्वपरयोरेकत्वपरिणत्या च प्रकृतिस्वभावे स्थितत्वात् प्रकृतिस्वभावमप्यहंतया अनुभवन् कर्मफलं वेदयते । ज्ञानी तु शुद्धात्मज्ञानसद्भावात्स्वपरयोर्विभागज्ञानेन स्वपरयोर्विभागदर्शनेन स्वपरयोरेकत्वपरिणत्या च प्रकृतिस्वभावादपसृतत्वात् शुद्धात्मस्वभावमेकमेवाहंतयानुभवन् कर्मफलमुदितं ज्ञेयमात्रत्वात् जानात्येव न पुनस्तस्याहंतयाऽनुभवितुमश-

---

भावो न भवति, कस्मात्? अज्ञानस्वभावत्वात्, इति कथयति—**अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानस्याभावादज्ञानी जीवः उदयागतकर्मप्रकृतिस्वभावे सुखदुःखस्वरूपे स्थित्वा हर्षविषादाभ्या तन्मयो भूत्वा कर्मफलं वेदयत्यनुभवति । **णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि** ज्ञानी पुनः पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् वीतरागसहजपरमानंदरूप-

---

आगे इसी अर्थको गाथामें कहते हैं,—[**अज्ञानी**] अज्ञानी [**कर्मफलं**] कर्मके फलको [**प्रकृतिस्वभावस्थितः**] प्रकृतिके स्वभावमें तिष्ठा हुआ [**वेदयते**] भोगता है [**पुनः**] और [**ज्ञानी**] ज्ञानी [**उदितं**] उदयमें आये हुए [**कर्मफलं**] कर्मके फलको [**जानाति**] जानता है [**तु**] परतु [**न वेदयते**] भोगता नहीं है ॥ **टीका**—अज्ञानी निश्चयकर शुद्ध आत्माके ज्ञानके अभावसे अपना परका एकपनेका श्रद्धान कर और अपनी परकी एकपनकी परिणतिकर प्रकृतिके स्वभावमें तिष्ठता है इसलिये प्रकृतिके स्वभावको अहंबुद्धिपनेकर आप अनुभवता हुआ कर्मके फलको भोगता है । और ज्ञानी शुद्ध आत्माके ज्ञानके सद्भावसे अपना परका भेद ज्ञानकर, अपने परके विभागका श्रद्धानकर और अपनी परकी विभागरूप परिणतिकर प्रकृतिके स्वभावसे दूरवर्ती हुआ है तथा अपने शुद्ध आत्माके भावको एकको ही अहंबुद्धिपनकर आप अनुभवता है। इसतरह अनुभव करताहुआ उदयमें आये कर्मके फलको ज्ञेयमात्रपनेसे जानता ही है परंतु उसे अहंपनेकर अनुभव न करनेसे भोगता नहीं है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानीके तो शुद्ध आत्माका ज्ञान नहीं है इसलिये जैसा कर्म उदयमें आता है उसीको अपना जान भोगता है और ज्ञानीके शुद्ध आत्मानुभव होगया है इससे प्रकृतिके उदयके आनेको अपना स्वभाव नहीं जानता उसका ज्ञाता ही रहता है भोक्ता नहीं होता । अब इस अर्थका कलशरूप १९७ वां काव्य कहते हैं—**अज्ञानी** इत्यादि। **अर्थ**—अज्ञानी

क्यत्वाद्वेदयते। "अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातु चिद्वेदकः। इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥ १९७" ॥ ३१६ ॥

अज्ञानी वेदक एवेति नियम्यते;—

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि।
गुडदुद्धंपि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा हुंति ॥ ३१७ ॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठ्वपि अधीत्य शास्त्राणि।
गुडदुग्धमपि पिबंतो न पन्नगा निर्विषा भवंति ॥ ३१७ ॥

सुखरसास्वादेन परमसमरसीभावेन परिणतः सन् कर्मफलमुदितं वस्तुस्वरूपेण जानात्येव न च हर्षविषादाभ्यां तन्मयो भूत्वा वेदयतीति ॥ ३१६ ॥ अथाज्ञानी जीवः सापराधः सशंकितः सन् कर्मफलं तन्मयो भूत्वा वेदयति, यस्तु निरपराधी ज्ञानी स कर्मोदये सति किं करोति ? इति कथयति,—

जो[2] पुण णिरावराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि।
आराहणाए णिच्चं वट्टदि अहमिदि वियाणंतो ॥

यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शंकितस्तु स भवति। आराधनया नित्यं वर्तते अहमिति विजानन् ॥ **जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि** यस्तु चेतयिता ज्ञानी जीवः स निरपराधः सन् परमात्माराधनविषये निश्शंको भवति। निःशंको भूत्वा किं करोति ? **आराहणाए णिच्चं वट्टदि अहमिदि वियाणंतो** निर्दोषपरमात्माराध-

---

जन तो प्रकृतिके स्वभावमे रागी (लीन) है उसीको अपना स्वभाव जानता है इसलिये सदाकाल उसका भोक्ता है और ज्ञानी प्रकृतिस्वभावमें विरक्त है उसको परका स्वभाव जानता है इसलिये कभी भोक्ता नहीं है। सो आचार्य उपदेश करते हैं कि जो प्रवीण पुरुष है वे ज्ञानीपन और अज्ञानीपनके नियमको विचारकर अज्ञानीपनको तो छोड़ो और शुद्ध आत्ममय एक तेज (प्रताप) में निश्चल होकर ज्ञानीपनको सेवन करो॥३१६॥

आगे अज्ञानी भोक्ता ही है ऐसा नियम कहते हैं;—**[अभव्यः]** अभव्य **[सुष्ठु अपि]** अच्छीतरह अभ्यासकर **[शास्त्राणि]** शास्त्रोंको **[अधीत्य]** पढताहुआ भी **[प्रकृतिं न मुंचति]** कर्मके उदयस्वभावको नहीं छोड़ता अर्थात् प्रकृति नहीं वदलती **[पन्नगाः]** जैसे सर्प **[गुडदुग्धं]** गुड़सहित दूधको **[पिबंतः अपि]** पीतेहुए भी **[निर्विषाः]** निर्विष **[न भवंति]** नहीं होते ॥ **टीका**—जैसे इस

---

१ 'प्रकृतेर्ज्ञानावरणादिकाया स्वभावश्चतुर्गतिशरीररागादिभावसुखदुःखादिका परिणतिस्तत्र निरत.—आत्मीयबुद्ध्या परिणत। २ नेयं गाथात्रात्मख्यातौ।

यथात्र विषधरो विषभावं स्वयमेव न मुंचति, विषभावमोचनसमर्थसशर्करक्षीरपानाच्च न मुंचति । तथा किलाभव्यः प्रकृतिस्वभावं स्वयमेव न मुंचति प्रमोचनसमर्थद्रव्यश्रुतज्ञानाच्च न मुंचति, नित्यमेव भावश्रुतज्ञानलक्षणशुद्धात्मज्ञानाभावेनाज्ञानित्वात् । अतो नियम्यते ज्ञानी प्रकृतिस्वभावे सुस्थितत्वाद्वेदक एव ॥ ३१७ ॥

ज्ञानी त्ववेदक एवेति नियम्यते;—

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेइ ।
महुरं कडुयं बहुविहमवेयओ तेण सो होई ॥ ३१८ ॥

नारूपया निश्चयाराधनया नित्यं सर्वकालं वर्तते । किं कुर्वन् ? अनंतज्ञानादिरूपोऽहमिति निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा शुद्धात्मानं सम्यग्जानन् परमसमरसीभावेन वानुभवति इति । अज्ञानी कर्मणा नियमेन वेदको भवतीति दर्शयति,—यथा पन्नगाः सर्पाः शर्करासहितं दुग्धं पिबंतोऽपि निर्विषा न भवंति तथा ज्ञानी जीवो मिथ्यात्वरागादिरूपकर्मप्रकृत्युदयस्वभावं न मुंचति । किं कृत्वापि ? अधीत्यापि । कानि ? शास्त्राणि । कथं ? सुट्ठुवि सुष्ठ्वपि । कस्मान्न मुंचति ? वीतरागस्वसंवेदनज्ञानाभावात् कर्मोदये सति मिथ्यात्वरागादीनां तन्मयो भवति यतः कारणात् इति ॥ ३१७ ॥ ज्ञानी कर्मणा नियमेन वेदको न भवतीति दर्शयति,—**णिव्वेदसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणादि** परमतत्त्वज्ञानी जीवः संसारशरीरभोगरूपत्रिविधवैराग्यसंपन्नो भूत्वा शुभाशुभकर्मफलमुदयागतं वस्तुस्वरूपेण विशेषेण निर्विकारस्वशुद्धात्मनो भिन्नत्वेन जानाति । कथभूतं जानाति ? **महुरं कडुवं बहुविहमवेदको तेण पण्णत्तो** अशुभकर्मफलं निंबकांजीरविषहालाहलरूपेण

लोकमें सर्प अपने विषभावको आप तो छोड़ता नहीं तथा विषमभावके मेटनेको समर्थ ऐसे मिश्रीसहित दूधके पीनेसे भी नहीं छोडता, उसीतरह अभव्य प्रगटपने प्रकृतिके स्वभावको स्वयमेव भी नहीं छोड़ता और प्रकृतिस्वभावके छुड़ानेको समर्थ जो द्रव्यश्रुतशास्त्रका ज्ञान उससे भी नहीं छोड़ता । क्योंकि इसके नित्य ही भावश्रुतज्ञानरूप शुद्धात्मज्ञानके अभावकर अज्ञानीपन है । इसलिये ऐसा नियम किया जाता है कि अज्ञानी प्रकृति स्वभावमें ठहरनेसे कर्मका भोक्ता ही है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानी कर्मके फलका भोक्ता ही है यह नियम कहा है वहांपर अभव्यका उदाहरण ठीक है इसका ऐसा स्वयमेव स्वभाव है ऐसा नियम है । वहां अभव्य बाह्य कारणोंके मिलनेपरभी कर्मके उदयके भोगनेका स्वभाव नहीं बदलता इसकारण अज्ञानीके भोक्तापनेका नियम बनता है ॥ ३१७ ॥

आगे कहते हैं कि ज्ञानी कर्मफलका अवेदक ही है ऐसा नियम है;—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**निर्वेदसमापन्नः**] वैराग्यको प्राप्तहुआ [**कर्मफलं**] कर्मके फलको [**विजानाति**] जानता है कि जो [**मधुरकटुकं**] मीठा तथा कडवा [**अनेक-**

निर्वेदसमापन्नो ज्ञानी कर्मफलं विजानाति ।
मधुरं कटुकं बहुविधमवेदको तेन प्रज्ञप्तः ॥ ३१८ ॥

ज्ञानी तु निरस्तभेदभावश्रुतज्ञानलक्षणशुद्धात्मज्ञानसद्भावेन परतोऽत्यंतविविक्तत्वात् प्रकृतिस्वभावं स्वयमेव मुंचति ततो मधुरं मधुरं वा कर्मफलमुदितं ज्ञातृत्वात् केवलमेव जानाति, न पुनर्ज्ञाने सति परद्रव्यस्याहंतयाऽनुभवितुमयोग्यत्वाद्वेदयते । अतो ज्ञानी प्रकृतिस्वभावविरक्तत्वादवेदक एव । "ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावं । जानन्परं करणवेदनयोरभावात् शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥ १९८" ॥ ३१८ ॥

कटुकं जानाति । शुभकर्मफलं बहुविधं गुडखंडशर्करामृतरूपेण मधुरं जानाति । नच शुद्धात्मोत्थसहजपरमानंदरूपमतींद्रियसुखं विहाय पंचेन्द्रियसुखे परिणमति, तेन कारणेन ज्ञानी वेदको भोक्ता न भवतीति नियमः । एवं ज्ञानी शुद्धनिश्चयेन शुभाशुभकर्म

विधं] इत्यादि अनेकप्रकार है [**तेन**] इसकारण [**सः**] वह [**अवेदकः भवति**] भोक्ता नहीं है ॥ **टीका**—ज्ञानी अभेदरूप भावश्रुतज्ञानस्वरूप शुद्धात्माके ज्ञानके होनेसे परसे अत्यंत विरक्त है । इसलिये वह ज्ञानी कर्मके उदयके स्वभावको स्वयं ही छोड देता है उसरूप नहीं परिणमता । इसकारण मीठा कड़वा सुखदुःखरूप उदय आये-हुए कर्मफलको केवल जानता ही है । क्योंकि ज्ञानीका ज्ञातापन (जानना) स्वभाव है इसलिये कर्ता नहीं बनता और भोक्ता भी नहीं बनता । ज्ञान होनेपर परद्रव्यको अहं-बुद्धिकर अनुभव करनेकी अयोग्यता है इसकारण भोक्ता नहीं होता । क्योंकि ज्ञानी कर्मस्वभावसे विरक्त है इसलिये भोक्ता नहीं है ॥ **भावार्थ**—जो जिससे विरक्त होता है उसको अपने वश तो भोगता नहीं है यदि परवश भोगे तो उसे परमार्थमें (असलमें) भोक्ता नहीं कहते इस न्यायसे ज्ञानीभी कर्मके उदयको अपना नहीं समझता उससे विरक्त है सो स्वयमेव तो भोगता ही नहीं परंतु उदयकी बलवत्तासे परवश हुआ अपनी निर्बलतासे भोगे तो उसे वास्तवमें भोक्ता नहीं कहते व्यवहारसे भोक्ता है उसका यहां शुद्धनयसे अधिकार नहीं है । अब इस अर्थका कलशरूप १९८ वां काव्य कहते हैं—**ज्ञानी** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानी जीव कर्मको स्वतंत्र होके नहीं करता है न भोगता है केवल उस कर्मस्वभावको जानता ही है । इसतरह केवल जानताहुआ करने और भोगनेके अभावसे शुद्धस्वभावमें निश्चल है । सो निश्चयकर कर्मोंसे छूटाहुआ ही कहा जाता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानी कर्मका स्वाधीनपनेसे कर्ता भोक्ता नहीं है केवल ज्ञाता ही है इसलिये शुद्धस्वभावरूप हुआ मुक्त ही है । कर्मका उदय आय भी जाता है तो ज्ञानीका क्या कर सकता है ? कुछ नहीं । जबतक निर्बलपन रहता है तबतक कर्म जोर चलालें कभी तो वह कर्मका निर्मूल नाश करेगा ही ॥ ३१८ ॥

णवि कुव्वइ णवि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं ।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥ ३१९ ॥

नापि करोति नापि वेदयते ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ।
जानाति पुनः कर्मफलं बंधं पुण्यं च पापं च ॥ ३१९ ॥

ज्ञानी हि कर्मचेतनाशून्यत्वेन कर्मफलचेतनाशून्यत्वेन च स्वयमकर्तृत्वादवेदयितृत्वाच्च न कर्म करोति न वेदयते च । किंतु ज्ञानचेतनामयत्वेन केवलं ज्ञातृत्वात्कर्मबंधं कर्मफलं च शुभमशुभं वा केवलमेव जानाति ॥ ३१९ ॥

कुत एतत्?—

दिट्ठी[1] जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥ ३२० ॥

फलभोक्ता न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गत ॥ ३१८ ॥ **णवि कुव्वदि णवि वेददि णाणी कम्माइ बहुपयाराइ** त्रिगुप्तिगुप्तत्वबलेन ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनशून्येनानंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूपेण सालंबने भरितावस्थे निर्विकल्पसमाधौ स्थितो ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नानि निश्चयनयेन न करोति न च तन्मयो भूत्वा वेदयत्यनुभवति । तर्हि किं करोति? **जाणदि पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च** परमात्मभावनोत्थसुखे तृप्तो भूत्वा वस्तुस्वरूपेण जानात्येव । कि जानाति? सुखदुःखस्वरूपकर्मफलं प्रकृतिबंधादिभेदभिन्न पुनः कर्मबंध, सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्ररूपं पुण्यं, अतोऽन्यदसद्वेद्यादिरूपं पापं चेति ॥ ३१९ ॥ तमेव कर्तृत्वभोक्तृत्वभाव विशेषेण समर्थयति;—**दिट्ठी सयंपि णाणं**

आगे इसी अर्थको फिर पुष्ट करते हैं,—[**ज्ञानी**] ज्ञानी [**बहुप्रकाराणि कर्माणि**] बहुत प्रकारके कर्मोंको [**नापि करोति**] न तो कर्ता है [**नापि वेदयते**] और न भोगता है [**पुनः**] परंतु [**बंध**] कर्मके बंधको [**च**] और [**कर्मफलं**] कर्मके फल [**पुण्यं च पापं**] पुण्य पापोंको [**जानाति**] जानता ही है ॥ **टीका**—ज्ञानी कर्म चेतनाकर शून्य है तथा कर्मफल चेतनाकर भी शून्य है उसपनेसे आप स्वतंत्र होके कर्ता नहीं होता और न भोक्ता ही होता इसलिये कर्मको न तो करता है और न भोगता है । ज्ञानी ज्ञानचेतनामय होनेसे केवल ज्ञाता ही है उसपनेसे कर्मके बंधको तथा कर्मके शुभअशुभफलको केवल जानता ही है ॥ ३१९ ॥

आगे पूछते हैं कि यह जानना कैसा है? किस कारणसे है? उसका उत्तर दृष्टांतपूर्वक कहते हैं,— [**यथा**] जैसे [**दृष्टिः**] नेत्र है वह देखने योग्य पदार्थको देखता ही

---

1 दिट्ठी सयंपि पाठोऽयं तात्पर्यवृत्तौ ।

दृष्टिः यथैव ज्ञानमकारकं तथाऽवेदकं चैव ।
जानाति च बंधमोक्षं कर्मोदयं निर्जरां चैव ॥ ३२० ॥

यथात्र लोके दृष्टिर्दृश्यादत्यंतविभक्तत्वेन तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात् दृश्यं न करोति न वेदयते च, अन्यथाग्निदर्शनात्संधुक्षणवत् स्वयं ज्वलनकरणस्य, लोहपिंडवत्स्वयमेवौ-

---

अकारयं तह अवेदयं चैव यथा दृष्टिः कर्त्री दृश्यमग्निरूपं वस्तुसंधुक्षणं पुरुषवन्न करोति तथैव च तप्तायःपिंडवदनुभवरूपेण न वेदयति । तथा शुद्धज्ञानमप्यभेदेन शुद्धज्ञानपरिणतजीवो वा स्वयं शुद्धोपादानरूपेण न करोति न च वेदयति । अथवा पाठांतरं **दिट्ठी सयंपि णाणं** तस्य व्याख्यानं—न केवलं दृष्टिः क्षायिकज्ञानमपि निश्चयेन कर्मणामकारकं तथैवावेदकमपि । तथाभूतः सन् किंकरोति? **जाणदि य बंधमोक्खं** जानाति च । कौ? बंधमोक्षौ । न केवलं बंधमोक्षौ **कम्मुदयं णिज्जरं चेव** शुभाशुभरूपं कर्मोदयं सविपाकाविपाकरूपेण सकामाकामरूपेण वा द्विधा निर्जरा चैव जानाति इति । एवं सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादानभूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्व—भोक्तृत्व—बंध—मोक्षादिकारणपरिणामशून्यो जीव इति सूचितं । समुदायपातनिकायां पश्चाद्गाथाचतुष्टयेन जीवस्याकर्तृत्वगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन सामान्यविवरणं कृतं । पुनरपि गाथाचतुष्टयेन शुद्धस्यापि यत्प्रकृतिभिर्बंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमित्यज्ञानसामर्थ्यकथनरूपेण विशेषविवरणं कृतं । पुनश्च गाथाचतुष्टयेन जीवस्याभोक्तृत्वगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन व्याख्यानं कृतं । तदनंतरं शुद्धनिश्चयेन तस्यैव कर्तृत्वबंधमोक्षादिककारणपरिणामवर्जनरूपस्य द्वादशगाथाव्याख्यानस्योपसंहाररूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ मोक्षाधिकारसंबंधिनी चूलिका समाप्ता । अथवा द्वितीयव्याख्यानेनात्र मोक्षाधिकारः समाप्तः ।

है उनका [**अकारकं चैव अवेदकं**] कर्ता भोक्ता नहीं है [**तथा चैव**] उसीतरह [**ज्ञानं**] ज्ञान भी [**बंधमोक्षं**] बंध मोक्ष [**कर्मोदयं**] कर्मका उदय [**च**] और [**निर्जरां**] निर्जराको [**जानाति**] जानता ही है करनेवाला भोगनेवाला नहीं है ॥ **टीका**—जैसे इस लोकमें नेत्र, देखने योग्य पदार्थोंसे अत्यंत भिन्न होनेसे उनके करने और भोगनेको असमर्थ है उस भिन्नपनेसे दृश्य पदार्थको न तो कर्ता है और न भोगता है । यदि ऐसा न हो तो अग्निको जलानेवालेकी तरह व अग्निसे तप्तायमान लोहके पिंडकी तरह अग्निके देखनेसे नेत्रके कर्ता भोक्तापन अवश्य आजायगा सो है नहीं, नेत्रका केवल दर्शनमात्र स्वभाव है इसलिये दृश्यको केवल देखता ही है । उसीतरह ज्ञान भी आप नेत्रवत् ही है इसलिये कर्मसे अत्यंत भिन्न होनेसे निश्चयकर उस कर्मको करने और भोगनेमें असमर्थ है उसपनेसे कर्मको न तो करता है न भोगता है । केवल ज्ञानमात्र स्वभावपनेसे कर्मके बंध मोक्ष उदयको तथा उसकी निर्जराको केवल जानता ही है ॥

ध्ययानुभवनस्य च दुर्निवारत्वात्। किंतु केवलं दर्शनमात्रस्वभावत्वात् तत्सर्वं केवलमेव पश्यति। तथा ज्ञानमपि स्वय दृष्टित्वात् कर्मणोऽत्यंतविभक्तत्वेन निश्चयतस्तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात्कर्म न करोति न वेदयते च। किंतु केवलं ज्ञानमात्रस्वभावत्वात्कर्मबंधं

किं च विशेषः—औपशमिकादिपंचभावाना मध्ये केन भावेन मोक्षो भवतीति विचार्यते। तत्रौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकौदयिकभावचतुष्टयं पर्यायरूपं भवति शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूप इति। तच्च परस्परसापेक्षं द्रव्यपर्यायद्वयमात्मा पदार्थो भण्यते। तत्र तावज्जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वत्रिविधपारिणामिकभावमध्ये शुद्धजीवत्वं शक्तिलक्षण यत्पारिणामिकत्वं तच्छुद्धद्रव्यार्थिकनयाश्रितत्वान्निरावरण शुद्धपारिणामिकभावसंज्ञं ज्ञातव्यं तत्तु बंधमोक्षपर्यायपरिणतिरहितं। यत्पुनर्दशप्राणरूपं जीवत्वं भव्याभव्यत्वद्वयं तत्पर्यायार्थिकनयाश्रितत्वादशुद्धपारिणामिकभावसंज्ञमिति। कथमशुद्धमिति चेत्, संसारिणा शुद्धनयेन सिद्धाना तु सर्वथैव दशप्राणरूपजीवत्वभव्याभव्यत्वद्वयाभावादिति। तस्य त्रयस्य मध्ये भव्यत्वलक्षणपारिणामिकस्य तु यथासंभवं सम्यक्त्वादिजीवगुणघातकं देशघातिसर्वघातिसञ्ज्ञं मोहादिकर्मसामान्यं पर्यायार्थिकनयेन प्रच्छादकं भवति इति विज्ञेयं। तत्र च यदा कालादिलब्धिवशेन भव्यत्वशक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदायं जीवः सहजशुद्धपारिणामिकभावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायेण परिणमति। तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकं भावत्रय भण्यते। अध्यात्मभाषया पुनः शुद्धात्माभिमुखपरिणामः शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायसञ्ज्ञां लभते। स च पर्यायः शुद्धपारिणामिकभावलक्षणशुद्धात्मद्रव्यात्कथंचिद्भिन्नः। कस्मात्[2] भावनारूपत्वात्। शुद्धपा-

---

भावार्थ—ज्ञानका स्वभाव नेत्रकी तरह दूरसे जाननेका है इसलिये करना भोगना उसके नहीं है। जो करना भोगना मानना है वह अज्ञान है। यहां कोई पूछे कि ऐसा तो केवलज्ञान है। जबतक मोहकर्मका उदय है तबतक तो सुखदुःखरागादिरूप परिणमता ही है, दर्शनावरण ज्ञानावरण वीर्यांतरायका उदय है तबतक अदर्शन अज्ञान असमर्थपना होता ही है तो केवलज्ञानके पहले ज्ञाता द्रष्टा कैसे कह सकते हैं? उसका समाधान—यह तो पहलेसे ही कहते आते हैं कि स्वतंत्र होके करे भोगे उसे वास्तवमें कर्ता भोक्ता कहते हैं। सो जब मिथ्यादृष्टिरूप अज्ञानका अभाव हुआ तब परद्रव्यके स्वामीपनका अभाव हुआ तब आप ज्ञानी हुआ स्वतंत्रपनेसे तो किसीका कर्ता भोक्ता नहीं होता। परंतु अपनी निर्बलतासे कर्मके उदयकी बलवत्ताकर जो कार्य होता है उसको परमार्थदृष्टिसे कर्ता भोक्ता नहीं कहते। उसके निमित्तसे जो कुछ नवीन कर्मरज लगती भी है तो उसको यहां बंधमें नहीं गिना। जो संसार है वह तो मिथ्यात्व है, मिथ्यात्वके चले जानेके बाद संसारका अभाव ही होता है समुद्रमें बूंदकी क्या गिनती?। इतना और भी जानना. कि केवलज्ञानी तो साक्षात् शुद्धात्मस्वरूप ही है

मोक्षं वा कर्मोदयं निर्जरां वा केवलमेव जानाति । "ये तु कर्तारमात्मानं पश्यंति तमसा ताः । सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षतां ॥ १९९ " ॥ ३२० ॥

रिणामिकस्तु भावनारूपो न भवति । यद्येकांतेनाशुद्धपारिणामिकादभिन्नो भवति तदास्य भावनारूपस्य मोक्षकारणभूतस्य मोक्षप्रस्तावे विनाशे जाते सति शुद्धपारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोति; नच तथा । ततः स्थितं—शुद्धपारिणामिकभावविषये या भावना तद्रूपं यदौपशमिकादिभावत्रयं तत्समस्तरागादिरहितत्वेन शुद्धोपादानकारणत्वान्मोक्षकारणं भवति, नच शुद्धपारिणामिकः । यस्तु शक्तिरूपो मोक्षः स शुद्धपारिणामिकपूर्वमेव तिष्ठति । अयं तु व्यक्तिरूपमोक्षविचारो वर्तते । तथा चोक्तं सिद्धांते—'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' निष्क्रिय इति कोऽर्थः? बंधकारणभूता या क्रिया रागादिपरिणतिः, तद्रूपो न भवति । मोक्षकारणभूता च क्रिया शुद्धभावनापरिणतिस्तद्रूपश्च न भवति । ततो ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति । कस्मात्? ध्यानस्य विनश्वरत्वात् । तथा योगींद्रदेवैरप्युक्त—णवि उपज्जइ णवि मरइ वंध ण मोक्खु करेइ । जिउ परमत्थे जोइया जिणवर एउ भणेइ ॥ १ ॥ किंच विवक्षितैकदेशशुद्धनयाश्रितेयं भावना निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणक्षायोपशमिकान्यत्वेन यद्याप्येकदेशव्यक्तिरूपा भवति तथापि ध्याता पुरुषः यदेव सकलनिरावरणमखंडैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयमविनश्वरं शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणं निजपरमात्मद्रव्यं तदेवाहमिति भावयति नच खंडज्ञानरूपमिति भावार्थः । इदं तु व्याख्यानं परस्परसापेक्षागमाध्यात्मनयद्वयाभिप्रायस्याविरोधेनैव कथितं सिद्ध्यतीति ज्ञातव्यं विवेकिभिः ॥ ३२० ॥ अतः परं जीवादिनवाधिकारेषु जीवस्य कर्तृत्वभो-

---

परंतु श्रुतज्ञानी भी शुद्धनयके अवलंबनसे आत्माको वैसा ही अनुभवता है प्रत्यक्ष परोक्षका ही भेद है । सो इसके ज्ञान श्रद्धानकी अपेक्षा तो ज्ञाता द्रष्टापना हीं है । चरित्रकी अपेक्षा प्रतिपक्षी कर्मका जितना उदय है उतना ही घात है सो इसके नाश करनेका उद्यम है । जब कर्मका अभाव होजायगा तब साक्षात् यथाख्यात चारित्र होगा तभी केवल ज्ञानकी प्राप्ति होगी । सम्यग्दृष्टिको जो ज्ञानी कहते है सो मिथ्यात्वके अभावकी ही अपेक्षा कहते हैं । यदि अपेक्षा नहीं लीजाय तो ज्ञानसामान्यसे सभी जीव ज्ञानी है और विशेष अपेक्षा ही लीजायतो जहांतक कुछ भी अज्ञान रहे तबतक ज्ञानी नहीं कहा जा सकता । जिसतरह सिद्धांतमे भाव लगाये गये है—जबतक केवल ज्ञान नहीं होता तबतक बारवां गुणस्थानपर्यंत अज्ञानभाव ही लगाया है । इसलिये यहां ज्ञानी अज्ञानी कहना सम्यक्त्व मिथ्यात्वकी ही अपेक्षा जानना ॥ आगे जो सर्वथा एकांतके आशयसे आत्माको कर्ता ही मानते हैं उनका निषेध करते हैं. उसकी सूचनाका १९९ वां श्लोक यह है—ये तु इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष अज्ञानरूपी अंधकारसे आच्छादित हुए आत्माको कर्ता ही मानते हैं वे मोक्षको चांहते है तौभी उनके लौकिक जनकी तरह मोक्ष नहीं होती ॥ ३२० ॥

लोयस्स कुणइ विह्णू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणंपि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये ॥ ३२१ ॥
लोगसमणाणमेयं सिद्धंतं[1] जइ ण दीसइ विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाणवि अप्पओ कुणइ ॥ ३२२ ॥
एवं ण कोवि मोक्खो दीसइ[2] लोयसमणाण दोण्हंपि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए ॥ ३२३ ॥

क्तृत्वादिस्वरूपं यथास्थानं निश्चयव्यवहारविभागेन सामान्येन यत्पूर्वं श्रावितं, तस्यैव विशेषविवरणार्थं **लोकस्स कुणदि विह्णू** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण षडधिकनवतिगाथापर्यंन चूलिकाव्याख्यान करोति—चूलिकाशब्दस्यार्थः कथ्यते। तथाहि—विशेषव्याख्यान, उक्तानुक्तव्याख्यानं, उक्तानुक्तसंकीर्णव्याख्यानं चेति त्रिधा चूलिकाशब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः। तत्र षण्णवतिगाथासु मध्ये विष्णोर्देवादिपर्यायकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन **लोगस्स कुणदि विह्णू** इत्यादि गाथासप्तक च भवति। तदनंतर, अन्यः कर्ता, मुक्ते चान्यः—इत्येकांतनिषेधरूपेण बौद्धमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं **केहिं दु पज्जयेहिं** इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। अतः परं सांख्यमतानुसारिशिष्य प्रति, एकांतेन जीवस्य भावमिथ्यात्वकर्तृत्वनिराकरणार्थं **मिच्छत्ता जदि पयडी** इत्यादि सूत्रपंचकं। ततः परं ज्ञानाज्ञानसुखदुःखादिभावान् कर्मैवैकांतेन करोति न चात्मेति पुनरपि सांख्यमतनिराकरणार्थं—**कम्मेहिं अण्णाणी** इत्यादि त्रयोदशसूत्राणि। अथानंतर कोऽपि प्राथमिकशिष्यः शब्दादिपंचेन्द्रियविषयाणा विनाश कर्तुं वाछति किंतु मनसि

अब इसी अर्थको गाथासे कहते हैं;—[**सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्त्वान्**] देव नारक तिर्यंच मनुष्य प्राणियोंको [**लोकस्य**] लोकके तो [**विष्णुः**] विष्णु परमात्मा [**करोति**] करता है ऐसा मंतव्य है [**च**] इसतरह [**यदि**] जो [**श्रमणानामपि**] यतियोंके भी ऐसा मानना हो कि [**षड्विधान् कायान्**] छह कायके जीवोंको [**आत्मा**] आत्मा [**करोति**] करता है तो [**लोकश्रमणानां**] लोक और यतियोंका [**एकः सिद्धांतः**] एक सिद्धांत ठहरा [**यदि**] तो [**विशेषः न दृश्यते**] कुछ विशेषता नहीं दीखता। क्योंकि [**लोकस्य**] लोकके [**विष्णुः**] जैसे विष्णु [**करोति**] करता है उसतरह [**श्रमणानामपि**] श्रमणोंके भी [**आत्मा करोति**] आत्मा करता है इसतरह कर्ताके माननेमें दोनों समान हुए। [**एवं**] इसतरह [**लोकश्रमणानां द्वयेषामपि**] लोक और श्रमण इन दोनोंमेसे [**कोपि**] कोई भी [**मोक्षो न दृश्यते**] मोक्ष हुआ नहीं

---

१ सिद्धं तं पडि ण दिस्सदि विसेसो, तात्पर्यवृत्तावय पाठः। २ दीसइ दुण्हंपि समणलोयाणं पाठोयं तात्पर्यवृत्तौ।

लोकस्य करोति विष्णुः सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्त्वान् ।
श्रमणानामप्यात्मा यदि करोति षड्विधान् कायान् ॥ ३२१ ॥
लोकश्रमणानामेकः सिद्धांतो यदि न दृश्यते विशेषः ।
लोकस्य करोति विष्णुः श्रमणानामप्यात्मा करोति ॥ ३२२ ॥
एवं न कोऽपि मोक्षो दृश्यते लोकश्रमणानां द्वयेषामपि ।
नित्यं कुर्वतां सदेवमनुजासुरान् लोकान् ॥ ३२३ ॥

स्थितस्य विषयानुरागस्य घात करोमीति विशेषविवेकं न जानाति तस्य संबोधनार्थं **दंसणणाणचरित्तं** इत्यादि सूत्रसप्तकं । तदनंतरं यथा सुवर्णकारादिशिल्पी कुंडलादिकर्म हस्तकुट्टकाद्युपकरणैः करोति तत्फलं मूल्यादिकं भुंक्ते च तथापि तन्मयो न भवति । तथा जीवोऽपि द्रव्यकर्म करोति भुंक्ते च तथापि तन्मयो न भवतीत्यादिप्रतिपादनरूपेण **जह सिप्पियो दु** इत्यादि गाथासप्तकं । तत परं यद्यपि श्वेतमृत्तिका कुड्यादिकं श्वेतं करोति तथापि निश्चयेन तन्मयो न भवति । तथा जीवोऽपि व्यवहारेण ज्ञेयभूतं च द्रव्यमेव जानाति पश्यति परिहरति श्रद्दधाति च तथापि निश्चयेन तन्मयो न भवति इति ब्रह्माद्वैतमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं **जह सेडिया** इत्यादि सूत्रदशकं । ततः परं शुद्धात्मभावनारूपनिश्चयप्रतिक्रमण—निश्चयप्रत्याख्यान–निश्चयालोचना—निश्चयचारित्रव्याख्यानेन **कम्मं जं पुव्वकयं** इत्यादिसूत्रचतुष्टयं । तदनंतरं रागद्वेषोत्पत्तिविषये ज्ञानरूपस्वकीयबुद्धिरूपदोष एव कारणं न चाचेतनशब्दादिविषया इति कथनार्थं **णिंददि संथुदि वयणाणि** इत्यादि गाथादशकं । अतः परं उदयागतं कर्म वेदयमानो मदीयमिदं मया कृतं च मन्यते स्वस्थभावशून्यः सुखितो दुःखितश्च भवति यः सः पुनरप्यष्टविधं कर्म दुःखबीजं बध्नातीति प्रतिपादनमुख्यत्वेन **वेदंतो कम्मफलं** इत्यादि गाथात्रयं । तदनंतरं आचारसूत्रकृतादि द्रव्यश्रुतेंद्रियविषयद्रव्यकर्म धर्माधर्माकाशकालाः शुद्धनिश्चयेन रागादयोऽपि शुद्धजीवनस्वरूपं न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन **सच्छं णाणं ण हवदि** इत्यादि पंचदश सूत्राणि । ततः परं यस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेण मूर्तिरहितस्तस्याभिप्रायेण कर्मनोकर्माहाररहित इति व्याख्यानरूपेण **अप्पा जस्स अमुत्तो**

दीखता क्योंकि जो **[सदेवमनुजासुरान्]** देवमनुष्यअसुरसहित **[लोकान्]** लोकोंको जीवोंको **[नित्यं कुर्वतां]** नित्य दोनों ही करते हुए प्रवर्तते हैं उनके मोक्ष कैसी ? ॥ **टीका**—जो पुरुष आत्माको कर्ता ही मानते हैं वे लोकसे बाह्य होनेपर भी लौकिकपनको नहीं लंघकर वर्तते (छोडते) क्योंकि लौकिक जनोंके तो परमात्मा विष्णु सुरनारकआदिशरीरोंको करता है और लोकसे बाह्य मुनियोंके अपना आत्मा सुरनारक आदिको करता है । इसतरह अन्यथा माननेमे दोनोंके समानपन है । इसलिये आत्माके नित्य कर्तापनके माननेसे लौकिक जनकी तरह लोकोत्तर भी मुनि लौकिक जनकी तरह ही हैं उनकी भी मोक्ष नहीं होती ॥ **भावार्थ**—जो आत्माको कर्ता मानते हैं वे मुनि

ये त्वात्मानं कर्तारमेव पश्यंति ते लोकोत्तरिका अपि न लौकिकतामतिवर्तंते । लौकिकानां परमात्मा विष्णुः सुरनारकादिकार्याणि करोति, तेषां तु स्वात्मा तानि करोति इत्यपसिद्धांतस्य समत्वात् । ततस्तेषामात्मनो नित्यकर्तृत्वाभ्युपगमात्–लौकिकानामिव लोकोत्तरिकाणामपि नास्ति मोक्षः । "नास्ति सर्वोऽपि संबंधः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः । कर्तृकर्मत्वसंबंधाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥ २०० ॥" ॥ ३२१।३२२।३२३ ॥

इत्यादि गाथात्रयं । तदनंतरं देहाश्रितद्रव्यलिंग निर्विकल्पसमाधिलक्षणभावलिंगरहितं यतीना मुक्तिकारणं न भवति भावलिंगसहितानां पुनः सहकारिकारणं भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन **पाखंडी लिंगाणि य** इत्यादि सूत्रसप्तक । पुनश्च समयप्राभृताध्ययनफलकथनरूपेण ग्रथसमाप्त्यर्थं **जो समयपाहुडमिणं** इत्यादि सूत्रमेक कथयतीति त्रयोदशभिरंतराधिकारैः समयसारचूलिकाधारे समुदायपातनिका—इदानीं त्रयोदशाधिकाराणा यथाक्रमेण विशेषव्याख्यान क्रियते । तद्यथा–एकातेनात्मानं कर्तारं ये मन्यंते तेषामज्ञानिजनवन्मोक्षो नास्तीत्युपदिशति;—**लोगस्स कुणदि विह्णू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते** लोकस्य मते विष्णुः करोति । कान् ? सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्त्वान् **समणाणंपि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए** श्रमणाना मते पुनरात्मा करोति यदि चेत् । कान् ? षट्जीवनिकायानिति । **लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सिद्धातं प्रति, आगमं प्रति न दृश्यते कोऽपि विशेषः । कयोः सबधी ? लोकश्रमणयोः । कस्मात् इति चेत्–**लोगस्स कुणदि विह्णू समणाणं अप्पओ कुणदि** लोकमते विष्णुनामा कोऽपि परकल्पितपुरुषविशेष. करोति । श्रमणाना मते पुनरात्मा करोति तत्र विष्णुसज्ञा श्रमणमते चात्मसज्ञा नास्ति विप्रतिपत्तिर्न चार्थे । **एवं ण कोवि मुक्खो दीसदि दुण्हंपि समणलोयाणं** एवं कर्तृत्वे सति को दोषः ? मोक्षः कोऽपि न दृश्यते कयोर्लोकश्रमणयोः । किंविशिष्टयोः ? **णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुआसुरे लोगे** नित्यं सर्वकाल कर्म कुर्वतोः । क ? लोके । कथंभूते ? देवमनुष्यासुरसहिते । किंच–रागद्वेषमोहरूपेण परिणमनमेव कर्तृत्वमुच्यते । तत्र रागद्वेषमोहपरिणमने सति शुद्धस्वभावात्मतत्त्वस-

---

भी हों तौभी लौकिक जन सरीखे हैं ही क्योंकि लोक ईश्वरको कर्ता मानते हैं और मुनियोंने भी आत्माको कर्ता मानलिया इसतरह इन दोनोंका मानना समान हुआ । इस कारण जैसे लौकिक जनोंके मोक्ष नहीं है उसी तरह उन मुनियोंके भी मोक्ष नहीं । जो कर्ता होगा वह कार्यके फलको भोगेगा ही और जो फल भोगेगा उसके कैसा मोक्ष ? अर्थात् मोक्ष हो ही नहीं सकती ॥ आगे कहते है कि परद्रव्य और आत्माका कुछ भी संबंध नहीं है ऐसा २०० वें श्लोकमें कहा गया है—**नास्ति** इत्यादि । **अर्थ**—परद्रव्य और आत्माका सब संबंधोमेंसे कोई संबंध नहीं है इसतरह कर्ताकर्मसंबंधका भी अभाव होनेसे परद्रव्यका कर्तापन कैसे हो सक्ता है ? **भावार्थ**—परद्रव्य और आत्माका

ववहारभासिएण उ परदव्वं मम भणंति अविदियत्था ।
जाणंति णिच्छयेण उ ण य मह परमाणुमिच्चमवि किंचि ॥ ३२४ ॥
जह कोवि णरो जंपइ अह्मं गामविसयणयररट्ठं ।
ण य होंति ताणि तस्स उ भणइ य मोहेण सो अप्पा ॥ ३२५ ॥
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवइ एसो ।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणइ ॥ ३२६ ॥
तह्मा ण मेत्ति णिच्चा दोह्णंवि एयाण कत्तविवसायं ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहियाणं ॥ ३२७ ॥

म्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गाच्च्यवनं भवति ततश्च मोक्षो न भवतीति भावार्थः । एवं पूर्वपक्षरूपेण गाथात्रयं गत ॥ ३२१।३२२।३२३ ॥ अथोत्तरं निश्चयेनात्मन-पुद्गलद्रव्येण सह कर्तृकर्मसंबंधो नास्ति कथं कर्ता भविष्यतीति कथयति;—**ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदच्छा** परद्रव्यं मम भणंति । के ते ? विदितार्थाः—ज्ञातार्थाः तत्त्ववेदिनः । केन कृत्वा भणति ? व्यवहारभाषितेन व्यवहारनयेन । **जाणंति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमित्त मम किंचि** निश्चयेन पुनर्जानंति । कि ? न चेह परद्रव्य परमाणुमात्रमपि ममेति । **जह कोवि णरो जंपदि अह्माणं गामविसयपुररट्ठं** यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुषो जल्पति । कि जल्पति ? वृत्यावृतो ग्रामः, देशाभिधानो विषयः, नगराभिधानं पुरं, देशैकदेशसंज्ञं राष्ट्रमस्माकमिति । **ण य हुंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा** न च तानि तस्य भवंति राजकीय-

---

कुछ भी संबंध नहीं है तब कर्ताकर्मसंबंध कैसे हो सकता है ? ऐसा होनेपर कर्तापन भी क्यों होगा ? ॥ ३२१।३२२।३२३ ॥

आगे व्यवहारनयके वचनकर कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है ऐसे व्यवहारको ही निश्चय स्वरूप मानलेते हैं वे अज्ञानसे मानते हैं उसे दृष्टांतद्वारा कहते हैं;—[**अविदितार्थाः**] जिन्होंने पदार्थका स्वरूप नहीं जाना है वे पुरुष [**व्यवहारभाषितेन**] व्यवहारके कहेहुए वचनोंको लेकर [**भणंति**] कहते हैं कि [**परद्रव्यं मम तु**] परद्रव्य मेरा है [**तु**] और जो [**निश्चयेन**] निश्चयकर [**जानंति**] पदार्थोंका स्वरूप जानते हैं वे कहते है कि [**परमाणुमपि**] परमाणुमात्र भी [**किंचित् मम न च**] कोई मेरा नहीं है । व्यवहारका कहना ऐसा है कि [**यथा**] जैसे [**कोपि**] कोई [**नरः**] पुरुष [**जल्पति**] कहे कि [**अस्माकं**] हमारा [**ग्रामविषयनगरराष्ट्रं**] ग्राम है देश है नगर है और मेरे राजाका देश है वहां निश्चयसे विचारा जाय तो [**तानि तु**] वे ग्राम आदिक [**तस्य**] उसके [**न च भवंति**] नहीं हैं [**स आत्मा**] वह आत्मा [**मोहेन च भणति**] मोहसे मेरा मेरा ऐसा कहता

व्यवहारभाषितेन तु परद्रव्यं मम भणंत्यविदितार्थाः ।
जानंति निश्चयेन तु न चेह परमाणुमात्रमपि किंचित् ॥ ३२४ ॥
यथा कोऽपि नरो जल्पति अस्माकं ग्रामविषयनगरराष्ट्रं ।
न च भवंति तस्य तानि तु भणति च मोहेन स आत्मा ॥ ३२५ ॥
एवमेव मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानी निस्संशयं भवत्येषः ।
यः परद्रव्यं ममेति जानन्नात्मानं करोति ॥ ३२६ ॥
तस्मान्न मम इति ज्ञात्वा द्वयेषामप्येतेषां कर्तृव्यवसायं ।
परद्रव्ये जानन् जानीयाद् दृष्टिरहितानां ॥ ३२७ ॥

अज्ञानिन एव व्यवहारविमूढा परद्रव्यं ममेदमिति पश्यंति । ज्ञानिनस्तु निश्चयप्रतिबुद्धाः परद्रव्यकणिकामात्रमपि न ममेदमिति पश्यंति । ततो यथात्र लोके कश्चिद्

नगरादीनि तथाप्यसौ मोहेन ब्रूते मदीय ग्रामादिकमिति दृष्टातः । अथ दार्ष्टांतः—एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन ज्ञानी व्यवहारमूढो भूत्वा यदि परद्रव्यमात्मीयं भणति तदा मिथ्यात्वं प्राप्त सन् मिथ्यादृष्टिर्भवति निस्संशय निश्चित संदेहो न कर्तव्यः इति । **तह्मा** इत्यादि । **तह्मा** तस्मात् परकीयग्रामादिदृष्टांतेन स्वानुभूतिभावनाच्युतः सन् योऽसौ परद्रव्यं व्यवहारेणात्मीयं करोति स मिथ्यादृष्टिर्भवतीति भणितं पूर्वं । तस्मात्कारणाज्ज्ञायते **दुह्णं एदाण कत्तिववसाओ ।** परद्रव्ये तयोः पूर्वोक्तलौकिकजैनयोः—आत्मा परद्रव्य करोतीत्यनेन रूपेण योऽसौ परद्रव्यविषये कर्तृत्वव्यवसायः । किं कृत्वा ? पूर्वं **ण ममेति णच्चा** निर्विकारस्वपरपरिच्छित्तिज्ञानेन परद्रव्यं मम संबंधि न भवति इति ज्ञात्वा ? **जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहिदाणं इमं** लौकिकजैनयोः परद्रव्ये कर्तृत्वव्यवसाय—अन्यः कोऽपि तृतीयतटस्थः पुरुषो जानन् सन् जानीयात् । स कथंभूत जानीयात् ? वीतरागसम्यक्त्वसंज्ञा या तु निश्चयदृष्टिस्तद्रहिताना व्यवसायोऽयमिति । ज्ञानी भूत्वा व्यवहारेण परद्रव्यमात्मीयं वदन् सन् कथमज्ञानी भवतीति चेत् ? व्यवहारो हि

है ॥ [**एवमेव**] इसीतरह [**यः**] जो ज्ञानी [**जानन्**] परद्रव्यको परद्रव्य जानता हुआ [**परद्रव्यं मम इति**] परद्रव्य मेरा है ऐसा [**आत्मानं करोति**] अपनेको परद्रव्यमय करता है [**एषः**] वह [**निःसंशयं**] निःसंदेह [**मिथ्यादृष्टिः भवति**] मिथ्यादृष्टि होता है । [**तस्मात्**] इसलिये ज्ञानी [**न मम इति ज्ञात्वा**] परद्रव्य मेरा नहीं है ऐसा जानकर [**परद्रव्ये**] परद्रव्यमे [**एतेषां द्वयेषामपि**] इन लौकिकजन तथा मुनियोंके [**कर्तृव्यवसायं**] कर्तापनके व्यापारको [**जानन्**] जानता हुआ ऐसा [**जानीयात्**] जानता है कि ये [**दृष्टिरहितानां**] सम्यग्दर्शनकररहित हैं ॥ **टीका**—जो व्यवहारमें ही विमूढ हैं वे ही अज्ञानी हैं, वे ही परद्रव्य मेरा है ऐसा देखते हैं कहते हैं। तथा ज्ञानी हैं वे निश्चयकर प्रतिबुद्ध हो गये है वे

---

१ नायं ख. पुस्तके पाठ. ।

व्यवहारविमूढः परकीयग्रामवासी ममायं ग्राम इति पश्यन् मिथ्यादृष्टिः । तथा ज्ञान्यपि कथंचिद् व्यवहारविमूढो भूत्वा परद्रव्यं ममेदमिति पश्येत् तदा सोऽपि निस्संशयं परद्रव्यमात्मानं कुर्वाणो मिथ्यादृष्टिरेव स्यात् । अतस्तत्त्वं जानन् पुरुषः सर्वमेव परद्रव्यं न ममेति ज्ञात्वा लोकश्रमणानां द्वयेषामपि योऽयं परद्रव्ये कर्तृव्यवसायः स तेषां सम्यग्दर्शनरहितत्वादेव भवति इति सुनिश्चितं जानीयात् । "एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्द्धं संबंध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः । तत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे पश्यंत्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वं ॥ २०१ ॥ ये तु स्वभावनियमं कलयंति नेममज्ञान-

---

म्लेछाना म्लेच्छभाषेव प्राथमिकजनसंबोधनार्थं काल एवानुसर्तव्यः । प्राथमिकजनप्रतिबोधनकालं विहाय कतकफलवदात्मशुद्धिकारकात् शुद्धनयाच्च्युतो भूत्वा यदि परद्रव्यमात्मीयं करोति तदा मिथ्यादृष्टिर्भवति । किं च विशेषः—लोकानां मते विष्णुः करोतीति यदुक्तं पूर्वं तल्लोकव्यवहारापेक्षया भणितं । न चानादिभूतस्य देवमनुष्यादिभूतलोकस्य विष्णुर्वा महेश्वरो वा कोऽपि कर्तास्ति । कथमिति चेत्, सर्वोऽपि लोकस्तावदेकेंद्रियादिजीवैर्भृतस्तिष्ठति । तेषां च जीवानां निश्चयनयेन विष्णुपर्यायेण ब्रह्मपर्यायेण महेश्वरपर्यायेण जिनपर्यायेण च परिणमनशक्तिरस्ति तेन कारणेनात्मैव विष्णुः, आत्मैव ब्रह्मा, आत्मैव महेश्वरः, आत्मैव जिनः । तदपि कथमिति चेत्, कोऽपि जीवः पूर्वं मनुष्यभवे जिनरूपं गृहीत्वा भोगाकाक्षानिदानबंधेन पापानुबंधि पुण्यं कृत्वा स्वर्गे समुत्पद्य तस्मादागत्य मनुष्यभवे त्रिखंडाधिपतिरर्द्धचक्रवर्ती भवति तस्य विष्णुसंज्ञा नचापरः कोऽपि लोकस्य कर्ता विष्णुरस्ति इति । तथा चापरः कोऽपि जीवो जिनदीक्षां गृहीत्वा रत्नत्रयाराधनया पापानुबंधि पुण्योपार्जनं कृत्वा विद्यानुवादसंज्ञं दशमपूर्वं पठित्वा चारित्रमोहोदयेन तपश्चरणच्युतो भूत्वा हुण्डावसर्पिणीकालप्रभावेण विद्याबलेन लोकस्याहं कर्तेत्यादि चमत्कारमुत्पाद्य मूढजनानां विस्मयं कृत्वा महेश्वरो भवति न सर्वावसर्पिणीषु । सा च हुण्डावसर्पिणी संख्यातीतोत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु गतासु समुपयाति । तथा चोक्तं—संखातीदवसप्पिणि गयासु हुंडावसप्पिणी एय । परसमयहं उप्पत्ती तहिं जिणवर एव पभणेइ ॥ १ ॥ नचान्यः कोऽपि

कणिकामात्र भी पुद्गलद्रव्यको यह मेरा है ऐसा नहीं देखते । इसलिये जैसे इस लोकमें कोई व्यवहारमें मूढ परके ग्राममें रहनेवाला कहे कि 'यह मेरा ग्राम है' ऐसे देखता हुआ मिथ्यादृष्टि कहा जाता है, उसीतरह जो ज्ञानी भी किसी प्रकारसे व्यवहारमें विमूढ होकर 'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसे देखे तो उस समय वह भी परद्रव्यको अपना करताहुआ मिथ्यादृष्टी ही होता है । इसलिये जो तत्त्वको जाननेवाला पुरुष है वह 'सभी परद्रव्य मेरा नहीं है' ऐसा जानकर लौकिकजन और श्रमणजन इन दोनोंके जो परद्रव्यमें कर्तापनका निश्चय है सो उनके सम्यग्दर्शनके न होनेसे ही है, ऐसा निश्चित जानता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानी होकर भी व्यवहारकर मोही हो तो लौकिकजन हो या मुनिजन हो दोनोंके ही कर्तापन आता है तब मिथ्यादृष्टि होता है इसतरह

मग्नमहसो बत ते वराकाः । कुर्वंति कर्म तत एव हि भावकर्म कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥ २०२ ॥" ३२४।३२५।३२६।३२७ ॥

मिच्छत्तं जइ पयडी मिच्छाइट्ठी करेइ अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥ ३२८ ॥

जगत्कर्ता महेश्वराभिधानः पुरुषविशेषोऽस्ति इति । तथा चापरः कोऽपि पुरुषो विशिष्टतपश्चरणं कृत्वा पश्चात्तपःप्रभावेण स्त्रीविषयनिमित्तं चतुर्मुखो भवति तस्य ब्रह्मा संज्ञा । न चान्यः कोऽपि जगतः कर्ता व्यापकैकरूपो ब्रह्माविधानोऽस्ति । तथैवापरः कोऽपि दर्शनविशुद्धिविनयसंपन्नते-त्यादि षोडशभावना कृत्वा देवेंद्रादिविनिर्मितपंचमहाकल्याणपूजायोग्य तीर्थकरपुण्य समुपार्ज्य जिनेश्वराभिधानो वीतरागसर्वज्ञो भवतीति वस्तुस्वरूप ज्ञातव्यं । एवं यद्येकांतेन कर्ता भवति तदा मोक्षाभाव इति विष्णुदृष्टांतेन गाथात्रयेण पूर्वपक्ष कृत्वा गाथाचतुष्टयेन परिहारव्याख्यान-मिति प्रथमस्थले सूत्रसप्तकं गतं ॥ ३२४।३२५।३२६।३२७ ॥ अथ द्रव्यार्थिकनयेन य एव कर्म करोति स एव भुंक्ते । पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यः करोत्यन्यो भुंक्ते इति च योऽसौ मन्यते स सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रतिपादयति,—**मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि**

ज्ञानी जानता है ॥ अब इसी अर्थका २०१ वा कलशरूप काव्य कहते हैं—**एकस्य** इत्यादि । **अर्थ**—जिस कारण एक वस्तुका अन्यवस्तुके साथ इस जगतमें संबंध है वह सभी निषेधा गया है इसलिये जहां वस्तुभेद है वहां कर्ताकर्मकी प्रवृत्ति ही नहीं है इसकारण लौकिकजन भी तथा मुनिजन भी वस्तुका यथार्थ स्वरूप ऐसे ही देखो कि कोई किसीका कर्ता नहीं है परद्रव्य परका अकर्ता ही श्रद्धामें लाओ ॥ आगे कहते हैं कि जो पुरुष ऐसा वस्तुस्वभावका पूर्वोक्त नियम नहीं जानते वे अज्ञानी हुए कर्मको करते हैं वे भावकर्मके कर्ता होते हैं । इसप्रकार अपने भावकर्मका कर्ता अज्ञानसे चेतन ही है उसकी सूचनाका २०२ वां काव्य कहते हैं—**ये तु** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष वस्तुके स्वभावका पूर्वोक्त नियम नहीं जानते उनका खेदकर आचार्य कहते हैं कि अहो अज्ञानमें जिनका पुरुपार्थ (पराक्रम) रूप तेज मग्न हो गया है ऐसे वे रंक (दीन) हुए कर्मको करते हैं ज्ञानसे छूटेहुए हैं इसलिये भावकर्मका कर्ता आप चेतन ही होता है अन्य नहीं ॥ **भावार्थ**—जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है वह वस्तुके स्वरूपका नियम तो जानता नहीं है और परद्रव्यका कर्ता वनता है तव आप अज्ञानरूप परिणमता है इसलिये अपने भावकर्मका कर्ता अज्ञानी ही है अन्य नहीं है ॥३२४।३२५।३२६।३२७॥

आगे इस कथनको युक्तिसे साधते हैं;—जीवके जो मिथ्यात्वभाव होता है उसको विचारते हैं कि निश्चयसे यह कौन करता है ? वहां [**यदि**] जो [**मिथ्यात्वं प्रकृतिः**] मिथ्यात्वनामा मोहकर्मकी प्रकृति पुद्गलद्रव्य है वह [**आत्मानं**] आ-

---

१ अचेदणा पाठोय ख.पुस्तके ।

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणइ मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छाइट्ठी ण पुण जीवो ॥ ३२९ ॥
अह जीवो पयडी तह पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं ।
तह्मा दोहि यंकद तं दोण्णिवि भुंजंति तस्स फलं ॥ ३३० ॥
अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा ॥ ३३१ ॥

मिथ्यात्वं यदि प्रकृतिर्मिथ्यादृष्टिं करोत्यात्मानं ।
तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारका प्राप्ता ॥ ३२८ ॥

अप्पाणं द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृतिः कर्ता यद्यात्मानं स्वयमपरिणामिनं हठान्मिथ्यादृष्टिः करोति **तह्मा अचेदणादे पयडी णणु कारगो पत्तो** तस्मात्कारणादचेतना तु या द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृतिः सा तव मते नन्वहो भावमिथ्यात्वस्य कर्त्री प्राप्ता जीवश्चैकांतेनाकर्ता प्राप्तः । ततश्च कर्मबंधाभावः, कर्मबंधाभावे संसाराभावः । स च प्रत्यक्षविरोधः ।

सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥

सम्यक्त्व यदि प्रकृतिः सम्यग्दृष्टिं करोत्यात्मानं । तस्मादचेतना ते प्रकृतिर्ननु कारकः प्राप्तः ॥ **सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं** सम्यक्त्वप्रकृतिः कर्त्री यद्यात्मानं स्वयमपरिणामिनं सम्यग्दृष्टिं करोति **तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो** तस्मात्कारणात् अचेतना प्रकृतिः **दे** तव मते नन्वहो कर्त्री प्राप्ता जीवश्चैकांतेन सम्यक्त्वपरिणामस्याकर्तेति ततश्च वेदकसम्यक्त्वाभावो वेदकसम्यक्त्वाभावे क्षायिकसम्यक्त्वाभावः स

त्माको **[मिथ्यादृष्टिं]** मिथ्यादृष्टि **[करोति]** करती है ऐसा मानाजाय **[तस्मात् ननु]** तो सांख्यमतीसे कहते हैं कि अहो सांख्यमती **[ते प्रकृतिः अचेतना]** तेरे मतमें प्रकृति तो अचेतन है वह **[कारका प्राप्ता]** अचेतन प्रकृति जीवके मिथ्यात्वभावको करनेवाली ठहरी ऐसा वनता नहीं । **[अथवा]** अथवा ऐसा मानिये कि **[एष जीवः]** वह जीव **[पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वं]** ही पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको **[करोति]** करता है **[तस्मात्]** तो ऐसा माननेसे **[पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिः]** पुद्गलद्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुआ **[न पुनः जीवः]** जीव मिथ्यादृष्टि नहीं ठहरा ऐसा भी नही वन सकता । **[अथ]** अथवा ऐसा माना जाय कि **[जीवः तथा प्रकृतिः]** जीव और प्रकृति ये दोनों **[पुद्गलद्रव्यं]** पुद्गलद्रव्यके **[मिथ्यात्वं]** मिथ्यात्वको **[कुरुते]** करते हैं **[तस्मात्]** तो **[द्वाभ्यां कृतं]** दोनोंकर किया गया **[तस्य फलं]** उसका फल **[द्वावपि भुंजाते]** दोनों ही भोगें ऐसा ठहरा सो यह भी नहीं वनता । **[अथ]** अथवा

अथवैष जीवः पुद्गलद्रव्यस्य करोति मिथ्यात्वं ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः ॥ ३२९ ॥
अथ जीवः प्रकृतिस्तथा पुद्गलद्रव्यं कुरुते मिथ्यात्वं ।
तस्माद्द्वाभ्यां कृतं द्वावपि भुंजाते तस्य फलं ॥ ३३० ॥
अथ न प्रकृतिर्न जीवः पुद्गलद्रव्यं करोति मिथ्यात्वं ।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं तत्तु न खलु मिथ्या ॥ ३३१ ॥ चतुष्कं ।

जीव एव मिथ्यात्वादिभावकर्मणः कर्ता तस्याचेतनप्रकृतिकार्यत्वेऽचेतनत्वानुषंगात् । स्वस्यैव जीवो मिथ्यात्वादिभावकर्मणः कर्ता जीवेन पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वादिभाव-

---

च प्रत्यक्षविरोध आगमविरोधश्च । अत्राह शिष्य.—प्रकृतिस्तावत्कर्मविशेष: स च सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयरूपस्य त्रिविधदर्शनमोहस्य सम्यक्त्वाख्यः प्रथमविकल्प स च कर्मविशेषः कथ सम्यक्त्व भवति? । सम्यक्त्व तु निर्विकारसदानंदैकलक्षणपरमात्मतत्त्वादिश्रद्धानरूपो मोक्षबीजहेतुर्भव्यजीवपरिणाम इति । परिहारमाह—सम्यक्त्वप्रकृतिस्तु कर्मविशेषो भवति तथापि यथा निर्विषीकृत विषं मरण न करोति तथा शुद्धात्माभिमुख्यपरिणामेन मत्रस्थानीयविशुद्धिविशेषमात्रेण विनाशितमिथ्यात्वशक्तिः सन् क्षायोपशमिकादिलब्धिपंचकजनितप्रथमौपमिकसम्यक्त्वानतरोत्पन्नवेदकसम्यक्त्वस्वभावं तत्त्वार्थश्रद्धानरूप जीवपरिणाम न हंति तेन कारणेनोपचारेण सम्यक्त्वहेतुत्वात्कर्मविशेषोऽपि सम्यक्त्व भण्यते स च तीर्थकरनामकर्मवत् परपरया मुक्तिकारण भवतीति नास्ति दोषः । **अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं** अथवा पूर्वदूषणभयादेष प्रत्यक्षीभूतो जीवः, द्रव्यकर्मरूपस्य पुद्गलद्रव्यस्य शुद्धात्मतत्त्वादिषु विपरीताभिनिवेशजनकं भाव-

---

ऐसा मानिये कि [**पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं**] पुद्गलद्रव्य नामा मिथ्यात्वको [**न प्रकृतिः न जीवः कुरुते**] न तो प्रकृति करती है और न जीव करता है [**तस्मात्**] तौभी [**पुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं**] पुद्गलद्रव्य ही मिथ्यात्व हुआ [**तत्तु**] सो ऐसा मानना [**खलु**] क्या [**मिथ्या न**] झूठ नहीं है? । इसलिये यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वनामा जीवका जो भाव कर्म है उसका कर्ता तो अज्ञानी जीव है परतु इसके निमित्तसे पुद्गलद्रव्यमें मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ **टीका**—मिथ्यात्व आदिभावकर्मका कर्ता जीव ही है । यदि उसको अचेतन प्रकृतिका कार्य माना जाय तो उस भाव कर्मको भी अचेतनपनेका प्रसंग आ जायगा । मिथ्यात्व आदि भावकर्मका कर्ता जीव अपने आप ही है । यदि जीवकर पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्व आदि भाव कर्म किये गये माने जांय तो भावकर्म चेतन होनेसे पुद्गलद्रव्यके भी चेतनपनेका प्रसंग आजायगा । जीव और प्रकृति दोनों ही मिथ्यात्व आदि भावकर्मके कर्ता नहीं हैं क्योंकि प्रकृति अचेतन है उसको भी जीवकी तरह उसके फल भोगनेका प्रसंग आ जायगा । ये दोनों अकर्ता भी नहीं हैं क्योंकि पुद्गल द्रव्यके अपने स्वभावसे ही मिथ्यात्व आदि भावका प्रसंग आता है । इसलिये मिथ्यात्व आदि भावकर्मका कर्ता जीव है और

कर्मणि क्रियमाणे पुद्गलद्रव्यस्य चेतनानुषंगात् । न च जीवश्च प्रकृतिश्च मिथ्यात्वादिभावकर्मणो द्वौ कर्तारौ जीववदचेतनायाः प्रकृतेरपि तत्फलभोगानुषंगात् । नच जीवश्च प्रकृतिश्च मिथ्यात्वभावकर्मणो द्वौ कर्तारौ स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यस्य मिथ्यात्वादिभावानुषंगात् । ततो जीवः कर्ता स्वस्य कर्म कार्यमिति सिद्धं । "कार्यत्वादकृतं न कर्म नच तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयोरज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः । नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता नयत्पुद्गलः ॥ २०३ ॥ कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृहतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां कर्तात्मैव कथं-

---

मिथ्यात्व करोति, न पुनः स्वय भावमिथ्यात्वरूपेण परिणमति इति मत **तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो** तर्ह्येकांतेन पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः । कर्मबधः तस्यैव, संसारोऽपि तस्यैव, नच जीवस्य, स च प्रत्यक्ष विरोध इति । **अह जीवो पयडी विय पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं** अथ पूर्वदूषणभयाज्जीवः प्रकृतिरपि पुद्गलद्रव्यं कर्मतापन्नं भावमिथ्यात्वं कुरुत इति मतं **तह्मा दोवि कदत्तं** तस्मात्कारणाज्जीवपुद्गलाभ्यामुपादानकारणभूताभ्या कृतं तन्मिथ्यात्वं । **दुण्णिवि भुंजंति तस्स फलं** तर्हि द्वौ जीवपुद्गलौ तस्य फलं भुजाते ततश्चाचेतनायाः प्रकृतेरपि भोक्तृत्वं प्राप्त स च प्रत्यक्षविरोध इति । **अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं** अथ मतं न प्रकृतिः करोति न च जीव एकांतेन । किं ? पुद्गलद्रव्य कर्मतापन्न । कथभूतं । न करोति ? मिथ्यात्व भावमिथ्यात्वरूपं **तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा** तर्हि यदुक्तं पूर्वसूत्रे **अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं** तद्वचनं तु पुनः हु स्फुटं किं मिथ्या न भवति ? अपि तु भवत्येव । किं च–यद्यपि शुद्धनिश्चयेन शुद्धो

अपना भावकर्म कार्य है ऐसा सिद्ध हुआ ॥ **भावार्थ**—भावकर्मका कर्ता जीव ही सिद्ध किया है सो यहां ऐसा जानना कि परमार्थसे अन्यद्रव्य अन्यद्रव्यके भावका कर्ता नहीं है । इसलिये जो चेतनके भाव है उनका चेतन ही कर्ता होता है । इस जीवके अज्ञानसे मिथ्यात्व आदि भावरूप परिणाम है वे चेतन है जड़ नहीं है शुद्धनयसे उनको चिदाभास भी कहते हैं । इसलिये चेतनकर्मका कर्ता चेतन ही होना परमार्थ है । वहां अभेद दृष्टिमे तो शुद्ध चेतनमात्र जीव है परंतु कर्मके निमित्तसे जब परिणमता है तब उन परिणामोंकर युक्त होता है । उससमय परिणाम परिणामीकी भेददृष्टिमे अपने अज्ञानभाव परिणामोंका कर्ता जीव ही है और अभेद दृष्टिमें तो कर्ता कर्मभाव ही नहीं है शुद्धचेतना मात्र जीववस्तु है । इसतरह यथार्थ समझना कि चेतनकर्मका कर्ता चेतन ही है ॥ अत्र इस अर्थका कलशरूप २०३ वां काव्य कहते है—**कार्यत्वा** इत्यादि । **अर्थ**—कर्म है वह कार्य है इसलिये विना किया नहीं होता । वह कर्म जीव और प्रकृति इन दोनोंका किया हुआ नहीं है क्योंकि प्रकृति तो जड़ है उसको अपने २ कार्यके

चिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता। तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते॥ २०४॥" ३२८।३२९।३३०।३३१॥

कम्मेहिं दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहिं॥ ३३२॥

जीवस्तथापि पर्यायार्थिकनयेन कथंचित्परिणामित्वे सत्यनादिकर्मोदयवशाद्रागाद्युपाधिपरिणामं गृह्णाति स्फटिकवत्। यदि पुनरेकांतेनापरिणामी भवति तदोपाधिपरिणामो न घटते। जपापुष्पोपाधिपरिणमनशक्तौ सत्या स्फटिके जपापुष्पमुपाधिं जनयति न च काष्ठादौ। कस्मादिति चेत्, तदुपाधिपरिणमनशक्त्यभावात् इति। एवं यदि द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृतिः कर्त्री एकांतेन यदि भावमिथ्यात्वं करोति तदा जीवो भावमिथ्यात्वस्य कर्ता न भवति। भावमिथ्यात्वाभावे कर्मणोऽभावः ततश्च संसाराभावः स च प्रत्यक्षविरोधः। इत्यादि व्याख्यानरूपेण तृतीयस्थले गाथापंचकं गतं॥ ३२८।३२९।३३०।३३१॥ अथ ज्ञानाज्ञानसुखदुःखादिकमेकांतेन कर्मैव करोति न चात्मेति सांख्यमतानुसारिणो वदंति तान्प्रति पुनरपि नयविभागेनात्मनः कथंचित्कर्तृत्वं व्यवस्थापयति—तत्र त्रयोदशगाथासु मध्ये कर्मैवैकांतेन कर्तृ भवति इति कथन-

---

फल भोगनेका प्रसंग आता है। तथा एक प्रकृतिका ही कार्य नहीं है क्योंकि प्रकृति तो अचेतन है और भावकर्म चेतन है इसलिये इस भावकर्मका कर्ता जीव ही है यह जीवका ही कर्म है क्योंकि चेतनसे अन्वयरूप है चेतनका परिणाम है, और पुद्गल ज्ञाता नहीं है इसलिये पुद्गलका भावकर्म नहीं हैं॥ **भावार्थ**—चेतन कर्म चेतनके ही होसकता है, पुद्गल जड़ है उसके चेतन कर्म कैसे होगा?॥ आगे जो कोई भावकर्मका भी कर्ता कर्मको ही मानते हैं उनको समझानेकेलिये स्याद्वादकर वस्तुकी मर्यादा कहते हैं उसकी सूचनाका २०४ वां काव्य यह है—**कर्मैव** इत्यादि। **अर्थ**—कोई आत्माके घातक सर्वथा एकांतवादी हैं उन्होंने कर्मको ही विचार तथा आत्माका कर्तापन दूरकर 'यह आत्मा कथंचित् कर्ता है' ऐसा कहनेवाली निर्बाध श्रुतिरूप जिनेश्वरकी वाणीको कोप उत्पन्न किया है ऐसे सर्वथा वादी कैसे हैं? तीव्र उदय हुए मिथ्यात्व-मोहकर जिनकी बुद्धि मुद्रित होगई है। उनके ज्ञानकी अच्छीतरह शुद्धिकेलिये वस्तुकी मर्यादा कहते हैं। कैसी है मर्यादा? स्याद्वादके प्रतिबंधसे जिसने निर्बाध सिद्धि पाई है॥ **भावार्थ**—कोई वादी सर्वथा एकांतकर कर्मका कर्ता कर्मको ही कहते हैं और आत्माको अकर्ता ही कहते हैं वे आत्माके स्वरूपके घातक हैं। तथा जिनवाणी स्याद्वाद-कर वस्तुको निर्बाध कहती है। वह वाणी आत्माको कथंचित् कर्ता कहती है सो उन सर्वथा एकांतियोंपर वाणीका कोप है उनकी बुद्धि मिथ्यात्वकर ढक रही है। उनके मिथ्यात्वके दूर करनेको आचार्य कहते हैं कि स्याद्वादकर जैसी वस्तुकी सिद्धि होती है वैसे कहते है॥ ३२८।३२९।३३०।३३१॥

कम्मेहि सुहाविज्जइ दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव ॥ ३३३ ॥
कम्मेहिं भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोयं य ।
कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुहं जित्तियं किंचि ॥ ३३४ ॥
जह्मा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति जं किंचि ।
तह्मा उ सव्वेजीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥ ३३५ ॥

मुख्यत्वेन **कम्मेहिं दु अण्णाणी** इत्यादि सूत्रचतुष्टय । ततः परं सांख्यमतेप्येवं भणितमास्ते—इति संवाददर्शनार्थं ब्रह्मचर्यस्थापनमुख्यत्वेन **पुरुसिच्छियाहिलासी** इत्यादि गाथाद्वयं । अहिंसास्थापनमुख्यत्वेन **जह्मा घादेदि परं** इत्यादि गाथाद्वय । प्रकृतेरेव कर्तृत्वं न चात्मन इत्येकांतनिराकरणार्थं अस्यैव दूषणोपसंहाररूपेण **एवं संखुवदंसे** इत्यादि गाथैका इति सूत्रपंचकसमुदायेन द्वितीयमंतरस्थलं । तदनंतरं आत्मा कर्म न करोति कर्मजनितभावाश्च किंत्वात्मानं करोतीत्येकगाथायां पूर्वपक्षो गाथात्रयेण परिहार इति समुदायेन **अहवा मण्णसि मज्झं** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं । एव चतुरंतराधिकारे स्थलत्रयेण समुदायपातनिका,—कर्मभिरज्ञानी क्रियते जीव एकांतेन तथैव च ज्ञानी क्रियते कर्मभिः । स्वाप निद्रां नीयते जागरण तथैवेति प्रथमगाथा गता । कर्मभिः सुखीक्रियते दुःखीक्रियते तथैव च कर्मभिः । कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते तथैवासंयमं चैवैकांतेन द्वितीयगाथा गता । कर्मभिश्चैवोर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकं च भ्राम्यते कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यदन्यदपि किंचिदिति

[कर्मभिस्तु] जीव कर्मोंकर **[अज्ञानी]** अज्ञानी **[क्रियेत]** किया जाता है **[तथैव]** उसीतरह **[कर्मभिः]** कर्मोंकर **[ज्ञानी]** ज्ञानी होता है **[कर्मभिः]** कर्मोंकर **[स्वाप्यते]** सुआया जाता है **[तथैव]** उसीप्रकार **[कर्मभिः]** कर्मोंकर ही **[जागर्यते]** जगाया जाता है । **[कर्मभिः सुखी क्रियते]** कर्मोंकर सुखी किया जाता है **[तथैव]** उसीतरह **[कर्मभिः दुःखी क्रियते]** कर्मोंकर दुखी किया जाता है **[च]** और **[कर्मभिः मिथ्यात्वं नीयते]** कर्मोंकर मिथ्यात्वको प्राप्त कराया जाता है **[चैव]** तथा **[असंयमं नीयते]** असंयमको प्राप्त कराया जाता है । **[कर्मभिः ऊर्ध्वं चापि अधः च तिर्यग्लोकं भ्राम्यते]** कर्मोंकर ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक और तिर्यग्लोकमें भ्रमाया जाता है **[च कर्मभिः एव]** और कर्मोंसे ही **[यत्किंचित् यावत् शुभाशुभं क्रियते]** जो कुछ शुभ अशुभ है वह किया जाता है । **[यस्मात्]** क्योंकि **[कर्म करोति]** कर्म ही करता है **[कर्म ददाति]** कर्म ही देता है **[यत् किंचित् हरति इति]** कर्म ही हरता है जो कुछ करता है वह कर्म ही करता है **[तस्मात्तु]** इसलिये **[सर्वजीवाः]** सभी जीव **[अकारका आपन्नाः भवंति]** अकारक प्राप्त

पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्मं च पुरिसमहिलसइ ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसी दु सुई ॥ ३३६ ॥
तह्मा ण कोवि जीवो अवंभचारी उ अह्म उवएसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥ ३३७ ॥
जह्मा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी ।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥ ३३८ ॥
तह्मा ण कोवि जीवो वघायओ अत्थि अह्म उवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं घाएदि इदि भणियं ॥ ३३९ ॥

तृतीयगाथा गता । यस्मादेव भणितः कर्मैव करोति कर्मैव ददाति कर्मैव हरति यत्किंचिच्छुभाशुभं तस्मादेकांतेन सर्वे जीवा अकारका प्राप्ताः, ततश्च कर्माभावः कर्माभावे संसाराभावः स च प्रत्यक्षविरोधः—इति कर्मैकांतकर्तृत्वदूषणमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं । कर्मैव करोत्येकांतेनेति पूर्वोक्तमर्थं श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवाः सांख्यमतसंवादं दर्शयित्वा पुनरपि समर्थयंति । वयं ब्रूमो द्वेषेणैव न, भवदीयमतेऽपि भणितमास्ते पुंवेदाख्यं कर्म कर्तृ स्त्रीवेदकर्माभिलाषं करोति, स्त्रीवेदाख्यं कर्म पुंवेदकर्माभिलषत्येकांतेन न च जीवः । एवमाचार्यपरंपरायाः समागता श्रुतिरीदृशी । श्रुतिः कोऽर्थः ? आगमो भवतां सांख्यानामिति प्रथमगाथा गता । तथा सति किं दूषणं चेति ? एवं न कोपि जीवोऽस्त्यब्रह्मचारी युष्माकमुपदेशे किंतु यथा शुद्धनिश्चयेन सर्वे जीवा ब्रह्मचारिणो भवंति तथैकांतेनाशुद्धनिश्चयेनापि ब्रह्मचारिण एव यस्मात्पुंवेदाख्यं कर्म स्त्रीवेदाख्यं कर्माभिलषति न च जीव इत्युक्तं पूर्वं स च प्रत्यक्षविरोधः । इत्यब्रह्मकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं । यस्मात्कारणात् परं कर्मस्वरूपं प्रकृतिः कर्त्री हंति परेण कर्मणा सा प्रकृतिरपि हन्यते न च जीवः । एतेनार्थेन किल जैनमते परघातनामकर्मेति भण्यते । परं किंतु जैनमते जीवो हिंसाभावेन परिणमति परघातनाम सहकारिकारणं भवति इति नास्ति विरोध इति प्रथमगाथा गता । तस्मात्किं दूषणं ? शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन तावदपरिणामी हिंसापरिणामरहितो जीवो जैनागमे कथितः, कथं ? इति चेत्, **सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया** इति वचनात्, व्यवहारेण तु परिणामीति । भवदीयमते

हुए—जीव कर्ता नहीं है । [**एषा आचार्यपरंपरागता ईदृशी तु श्रुतिः**] यह आचार्योंकी परिपाटीसे आई ऐसी श्रुति है कि [**पुरुषः**] पुरुषवेदकर्म तो [**स्त्र्यभिलाषी**] स्त्रीका अभिलाषी है [**च**] और [**स्त्रीकर्म**] स्त्रीवेदनामा कर्म [**पुरुषं अभिलषति**] पुरुषको चाहता है । [**तस्मात्**] इसलिये [**कोपि जीवः**] कोई भी जीव [**अब्रह्मचारी न**] अब्रह्मचारी नहीं है [**अस्माकं तु उपदेशे**] हमारे उपदेशमें तो ऐसा है [**यस्मात्**] कि [**कर्म चैव हि**] कर्म ही [**कर्म अभिलषति इति**] कर्मको चाहता है [**इति भणितं**] ऐसा कहा है ।

एवं संखुवएसं जे उ परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वइ अप्पा य अकारया सव्वे ॥ ३४० ॥
अह्वा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणई ।
एसो मिच्छसहावो तुम्हं एयं मुणंतस्स ॥ ३४१ ॥
अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिओ उ समयम्हि ।
णवि सो सक्कइ तत्तो हीणो अहिओ य काउं जे ॥ ३४२ ॥

पुनर्यथा शुद्धनयेन चाशुद्धनयेनाप्युपघातको हिंसकः कोऽपि नास्ति । कस्मात्? इति चेत्, यस्मादेकांतेन कर्म चैव हि स्फुटमन्यत् कर्म हंति, न चात्मेति पूर्वसूत्रे भणितमिति । एवं हिंसाविचारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गत । **एवं संखुवदेसं जे दु परूविंति एरिसं- समणा** एवं पूर्वोक्तं सांख्योपदेशमीदृशमेकांतरूपं ये केचन परमागमोक्तं नयविभाग- मजानंतः **समणा** श्रमणाभासाः द्रव्यलिंगिनः प्ररूपयंति कथयंति । **तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पाय अकारया सव्वे** तेषा मतेनैकांतेन प्रकृतिः कर्त्री भवति ।

[यस्मात्] जिस कारण **[परं]** दूसरेको **[हंति]** मारता है **[च]** और **[परेण हन्यते]** परकर मारा जाता है **[सा प्रकृतिः]** वह भी प्रकृति ही है **[एतेन अर्थेन भण्यते]** इसी अर्थको लेकर कहते है कि **[परघात नाम इति]** यह परघात नामा प्रकृति है **[तस्मात्]** इसलिये **[अस्माकं उपदेशे]** हमारे उप- देशमें **[कोपि जीवः]** कोई भी जीव **[उपघातको नास्ति]** उपघात करनेवाला नहीं है **[यस्मात्]** क्योंकि **[कर्म चैव हि]** कर्म ही **[कर्म हंतीति भणितं]** कर्मको घातता है ऐसा कहा है । **[एवं तु]** इस तरह **[ये श्रमणाः]** जो कोई यति **[ईदृशं सांख्योपदेशं प्ररूपयंति]** ऐसा सांख्यमतका उपदेश निरूपण करते हैं **[तेषां]** उनके **[प्रकृतिः]** प्रकृति ही **[करोति]** करती है **[च सर्वे आत्मानः]** और आत्मा सब **[अकारकाः]** अकारक ही हैं ऐसा हुआ । **[अथवा]** आचार्य कहते है जो, आत्माके कर्तापनेका पक्ष साधनेको **[मन्यसे]** तू ऐसा मानेगा कि **[मम आत्मा]** मेरा आत्मा **[आत्मनः]** अपने **[आत्मानं]** आत्माको **[करोति]** करता है ऐसा कर्तापनका पक्ष मानो तो **[तज्जानतः]** ऐसे जाननेका **[तवैव]** तेरा **[एषः]** यह **[मिथ्यास्वभावः तु]** मिथ्यास्वभाव है क्योंकि **[आत्मा]** आत्मा **[नित्यः]** नित्य **[असंख्येयप्रदेशः]** असंख्यात- प्रदेशी **[समये]** सिद्धांतमे **[दर्शितः]** कहा है **[ततः]** उससे **[यत् सः]** जो वह **[हीनः च अधिकः कर्तुं]** हीन अधिक करनेको **[नापि शक्यते]**

---

१ भणंतस्स क. पुस्तके पाठ ।

जीवस्स जीवरूवं विच्छरदो जाण लोगमित्तं हि ।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कहं कुणइ दव्वं ॥ ३४३ ॥
अह जाणओ उ भावो णाणसहावेण अत्थिइत्ति मयं ।
तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणइ ॥ ३४४ ॥

आत्मानश्च पुनरकारकाः सर्वे । ततश्च कर्तृत्वाभावे कर्माभावः कर्माभावे ससाराभावः । ततो मोक्षप्रसगः । स च प्रत्यक्षविरोध इति । जैनमते पुनः परस्परसापेक्षनिश्चयव्यवहारनयद्वयेन सर्व घटत इति नास्ति दोपः । एव साख्यमतसवादं दर्शयित्वा जीवस्यैकातेनाकर्तृत्वदूषणद्वारेण सूत्रपंचक गतं । **अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि** हे साख्य ! अथवा मन्यसे त्वं पूर्वोक्तकर्तृत्वदूपणभयान्मदीयमते जीवो ज्ञानी ज्ञानित्वे च कर्म-कर्तृत्वं न घटते यतः कारणादज्ञानिना कर्मबधो भवति । किंत्वात्मा कर्त्ता आत्मानं कर्मतापन्न आत्मना करणभूतेन करोति ततः कारणादकर्तृत्वे दूपणं न भवति ? इति चेत् **एसो मिच्छसहावो तुम्हं एवं मुणंतस्स** अयमपि मिथ्यास्वभाव एव मन्यमानस्य तव इति पूर्वपक्षगाथा गता । अथ सूत्रत्रयेण परिहारमाह । कस्मान्मिथ्यास्वभावः ? इति चेत्, **जे** यस्मात् कारणात् **अप्पा णिच्चा संखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि** आत्मा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यस्तथा चासंख्यातप्रदेशो देशितः समये परमागमे तस्यात्मनः शुद्धचैतन्यान्वयलक्षणद्रव्यत्वं तथैवासख्यातप्रदेशत्वं च पूर्वमेव तिष्ठति **णवि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो व कादुं जे** तद्द्रव्य प्रदेशत्वं च तत्प्रमाणादधिक हीनं वा कर्तुं नायाति-इति हेतोरात्मा करोतीति वचन मिथ्येति । अथ मत असख्यातमान जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन बहुभेद तिष्ठति तेन कारणेन जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपेण सख्यातप्रदेशत्व जीवः करोति, तदपि न घटते यस्मात्कारणात् **जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोगमित्तं हि** जीवस्य जीवरूप प्रदेशापेक्षया विस्तरतो महामत्स्यकाले लोकपूरणकाले वा अथवा जघन्यतः सूक्ष्मनिगोदकाले नानाप्रकारमध्यमावगाहशरीरग्रहणकाले वा प्रदीपवद्विस्तारोपसहारवशेन लोकमात्रप्रदेशमेव जानीहि हि स्फुटं **तत्तो सो किं हीणो**

समर्थ नहीं होसकते । **[जीवस्य]** जीवका **[जीवरूपं]** जीवरूप **[विस्तरतः]** विस्तार अपेक्षा **[खलु]** निश्चयकर **[लोकमात्रं]** लोकमात्र **[जानीहि]** जानो **[सः द्रव्यं]** ऐसा जीवद्रव्य **[ततः]** उस परिमाणसे **[किं]** क्या **[हीनोऽधिकः वा]** हीन तथा अधिक **[कथं करोति]** कैसे कर सकता है ? **[अथ]** अथवा **[इति मतं]** ऐसा मानिये जो **[ज्ञायकः तु भावः]** ज्ञायक भाव **[ज्ञानस्वभावेन]** ज्ञानस्वभावकर **[तिष्ठति]** तिष्ठता है **[तु]** तो **[तस्मात्]** उसी हेतुसे ऐसा हुआ कि **[आत्मा]** आत्मा **[आत्मनः आत्मानं]** अपने आपको **[स्वयं नापि करोति]**.स्वयमेव नहीं करता ॥ इसलिये कर्तापन साधनेको

कर्मभिस्तु अज्ञानी क्रियते ज्ञानी तथैव कर्मभिः ।
कर्मभिः स्वाप्यते जागर्यते तथैव कर्मभिः ॥ ३३२ ॥
कर्मभिः सुखीक्रियते दुःखीक्रियते तथैव कर्मभिः ।
कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते नीयतेऽसंयमं चैव ॥ ३३३ ॥
कर्मभिर्भ्राम्यते ऊर्ध्वमधश्चापि तिर्यग्लोकं च ।
कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यावद्यत्किंचित् ॥ ३३४ ॥
यस्मात् कर्म करोति कर्म ददाति कर्म हरतीति यत्किंचित् ।
तस्मात्तु सर्वजीवा अकारका भवंत्यापन्नाः ॥ ३३५ ॥
पुरुषः स्त्र्यभिलाषी स्त्रीकर्म च पुरुषमभिलषति ।
एषाचार्यपरंपरागतेदृशी तु श्रुतिः ॥ ३३६ ॥

अहिओ व कदं भणसि दव्वं तस्माल्लोकमात्रप्रदेशप्रमाणात्स जीवः किं हीनोऽधिको वा कृतो येन त्वं भणसि आत्मद्रव्यं कृत किंतु नैवेति । **अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थिदेदि मदं** अथ हे शिष्य! ज्ञायको भावः पदार्थः आत्मा ज्ञानरूपेण पूर्वमेवास्तीति मत । **तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि** यस्मान्निर्मलानंदैकज्ञानस्वभावशुद्धात्मा पूर्वमेवास्ति तस्मादात्मा कर्ता

विवक्षा पलटकर पक्ष कहा था सो नहीं बना । यदि कर्मका कर्ता कर्मको ही मानें तो स्याद्वादसे विरोध ही आयेगा इसलिये कथंचित् अज्ञान अवस्थामें अपने अज्ञानभावरूप कर्मका कर्ता माननेमें स्याद्वादसे विरोध नहीं है ॥ **टीका**—यहां पूर्वपक्ष ऐसा है कि कर्म ही आत्माको अज्ञानी करता है, क्योंकि ज्ञानावरण कर्मके उदय विना उस अज्ञानकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको ज्ञानी करता है, क्योंकि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम विना ज्ञानकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको सुआता है, क्योंकि निद्रा नामा कर्मके उदय विना निद्राकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको जगाता है, क्योंकि निद्रानाम कर्मके क्षयोपशम विना जगानेकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको सुखी करता है क्योंकि सातावेदनीय नाम कर्मके उदय विना सुखकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको दुःखी करता है क्योंकि असातावेदनीय नाम कर्मके उदय विना दुःखकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको मिथ्यादृष्टि करता है क्योंकि मिथ्यात्वकर्मके उदय विना मिथ्यात्वकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको असंयमी करता है, क्योंकि चारित्र मोह नामा कर्मके उदय विना असंयमकी अप्राप्ति है । कर्म ही आत्माको ऊर्ध्वलोकमें अधोलोकमें तिर्यचलोकमें भ्रमाता है, क्योंकि आनुपूर्वी नामा कर्मके उदय विना भ्रमणकी अप्राप्ति है । अन्य भी जो कुछ शुभ अशुभ है उस सबको कर्म ही करता है क्योंकि प्रशस्त अप्रशस्त रागनामा कर्मके उदयविना उस शुभ अशुभकी अप्राप्ति है । इसप्रकार सब ही को कर्म स्वतंत्र होके करता

तस्मान्न कोऽपि जीवोऽब्रह्मचारी त्वस्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्म चैव हि कर्माभिलषतीति भणितं ॥ ३३७ ॥
यस्माद्धंति परं परेण हन्यते च सा प्रकृतिः ।
एतेनार्थेन किल भण्यते परघातं नामेति ॥ ३३८ ॥
तस्मान्न कोऽपि जीव उपघातकोऽस्त्यस्माकमुपदेशे ।
यस्मात्कर्म चैव हि कर्म हंतीति भणितं ॥ ३३९ ॥
एवं सांख्योपदेशं ये तु प्ररूपयंतीदृशं श्रमणाः ।
तेषां प्रकृतिः करोत्यात्मानश्चाकारकाः सर्वे ॥ ३४० ॥
अथवा मन्यसे ममात्मात्मानमात्मनः करोति ।
एष मिथ्यास्वभावस्तवैतज्जानतः ॥ ३४१ ॥
आत्मा नित्योऽसंख्येयप्रदेशो दर्शितस्तु समये ।
नापि स शक्यते ततो हीनोऽधिकश्च कर्तुं यत् ॥ ३४२ ॥

आत्मानं कर्मतापन्नं स्वयमेवात्मना कृत्वा नैव करोतीत्येकं दूषणं । द्वितीयं च निर्विकारपरमतत्त्वज्ञानी तु कर्ता न भवतीति पूर्वमेव भणितमास्ते । एवं पूर्वपक्षपरिहाररूपेण तृतीयातर-

---

है, कर्म ही हरलेता है, इसलिये हम ऐसा निश्चय करते हैं कि सभी जीव नित्य सदा ही एकांतकर अकर्ता ही है । विशेष कहते हैं—कि श्रुति (वाणी–शास्त्र) भी इसी अर्थको कहती है कि "पुरुषवेद नामा कर्म तो स्त्रीकी अभिलाषा करता है चाहता है और स्त्रीवेद नामा कर्म पुरुषको चाहता है" ऐसे वाक्यसे कर्मके ही कर्मकी अभिलाषाके कर्तापनेका समर्थनकर जीवके अब्रह्मचारीपनके कर्तापनके प्रतिषेधसे भी कर्मके ही कर्तापन आया, जीव अकर्ता ही सिद्ध हुआ । उसीतरह जो परको मारता है तथा परकर माराजाता है वह परघात नामा कर्म है, ऐसे वचनकर कर्मके ही कर्मके घातका कर्तापनका समर्थनकर जीवके घातका कर्तापनके प्रतिषेधसे सर्वथा जीवके अकर्तापन जतलाया है । इसप्रकार ऐसा सांख्यमतके कोई श्रमणाभास (यति नहीं हों परंतु यतीसे कहलावें) अपनी बुद्धिके अपराधकर सूत्रके अर्थको ऐसें विपरीत जानते हुए सूत्रका अर्थ निरूपण करते है । ऐसा पूर्वपक्ष है । अब उसको आचार्य कहते है—जो ऐसा पक्ष करते हैं उनके एकांतकर प्रकृतिका कर्तापन माननेकर सब ही जीवोंके एकांतकर अकर्तापनकी प्राप्ति आनेसे जीव कर्ता है ऐसी भगवंतकी वाणीका कोप आता है उसे दूर करने योग्य नहीं है । तथा वाणीका कोप दूर करनेको जो ऐसा कहै कि कर्म तो आत्माके अज्ञानादि सब पर्यायरूप भावोंको करता है और आत्मा एक अपने आत्माको ही द्रव्यरूप करता है । इसलिये जीव कर्ता है ऐसा वाणीका वचन मानते हैं । इसकारण वाणीका कोप नहीं होता । ऐसा अभिप्राय करे

जीवस्य जीवरूपं विस्तरतो जानीहि लोकमात्रं खलु ।
ततः स किं हीनोऽधिको वा कथं करोति द्रव्यं ॥ ३४३ ॥
अथ ज्ञायकस्तु भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठतीति मतं ।
तस्मान्नाप्यात्मात्मानं तु स्वयमात्मनः करोति ॥ ३४४ ॥

कर्मैवात्मानमज्ञानिनं करोति ज्ञानावरणाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव ज्ञानिनं करोति ज्ञानावरणाख्यकर्मक्षयोपशममंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव स्वापयति निद्राख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव जागरयति निद्राख्यकर्मोदयक्षयोपशममंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव सुखयति सद्वेदाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव दुःखयति असद्वेदाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैव मिथ्यादृष्टिं करोति मिथ्यात्वकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैवासंयतं करोति चारित्रमोहाख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । कर्मैवोर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकं भ्रमयति आनुपूर्व्याख्यकर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । अपरमपि यद्यावत्किंचिच्छुभाशुभभेदं तत्तावत्सकलमपि कर्मैव करोति प्रशस्ताप्रशस्तरागाख्य-

---

रूपगाथाचतुष्टयं गत । कश्चिदाह जीवात्प्राणा भिन्ना अभिन्ना वा? यद्यभिन्नास्तदा यथा जीवस्य विनाशो नास्ति तथा प्राणानामपि विनाशो नास्ति कथं हिंसा? । अथ भिन्नास्तर्हि जीवस्य प्राणघातेऽपि किमायातं ? तत्रापि हिसा नास्तीति । तन्न, कायादिपरिणामैः सह कथंचिद्भेदा-

---

तो वह अभिप्राय मिथ्या है, क्योंकि जीव प्रथम तो द्रव्यरूपकर नित्य है असंख्यात प्रदेशी है लोकपरिमाण है । वहां नित्यका कार्यपना वनता नहीं है क्योंकि कृत्रिम वस्तुका और नित्यपनका परस्पर एकपनका विरोध है नित्य कृत्रिम नहीं होती । एक आत्मा अवस्थित असंख्यात प्रदेशी है उसके जैसे पुद्गलके स्कंधमे परमाणु आ वैठते हैं और निकल जाते हैं उनके कार्यपना वनता है उसतरह इसके कार्यपना नहीं वनता । क्योंकि प्रदेशोंका आना तथा निकल जाना हो तो अवस्थित असंख्यात प्रदेश-रूप एकपनेका व्याघात हो जायगा । सकल लोकरूपी घरमात्र विस्तार परिमाण निश्चित अपना समस्तपनेका संग्रहरूप आत्माके प्रदेशोंका संकोचना फैलना उस द्वारकर भी उसके कार्यपना नहीं वनता । उसीतरह इसके कार्यपना नहीं वनता क्योंकि प्रदेशोंका आना और निकल जाना होवे तो अवस्थित असंख्यात प्रदेशरूप एकपनका व्याघात हो । सकल लोकरूपी घरमात्र विस्तार परिमाण निश्चित अपना समस्तपनेका संग्रहरूप आत्माके प्रदेशोंका संकोचना और फैलना उस द्वारकर भी उसके कार्यपना नहीं वनता, क्योंकि प्रदेशोंका संकोचना और फैलना इन दोनोंके भी सूखे गीले चमड़ेकी तरह नियमरूप अपना प्रदेशोंका विस्तार होनेसे उसका हीना-धिक करनेका असमर्थपन है । जो ऐसे अभिप्रायमें वासना हो कि वस्तुके स्वभावके सर्वथा मेटनेका असमर्थपन है, इसलिये ज्ञायक भाव तो ज्ञानस्वभावकर ही सदा काल

कर्मोदयमंतरेण तदनुपपत्तेः । यत एवं समस्तमपि स्वतंत्रं कर्म करोति कर्म ददाति कर्म हरति च ततः सर्व एव जीवाः नित्यमेवैकांतेनाकर्तार एवेति निश्चिनुमः । किंच—श्रुतिरप्येनमर्थमाह, पुंवेदाख्यं कर्म स्त्रियमभिलषति स्त्रीवेदाख्यं कर्म पुमांसमभिलषति इति वाक्येन कर्मण एव कर्माभिलाषकर्तृत्वसमर्थनेन जीवस्याब्रह्मकर्तृत्वसमर्थनेन प्रतिषेधात् । तथा यत्परेण हंति, येन च परेण हन्यते तत्परघातकर्मेति वाक्येन कर्मण एव कर्मघातकर्तृत्वसमर्थनेन जीवस्य घातकर्तृत्वप्रतिषेधाच्च सर्वथैवाकर्तृत्वज्ञापनात् । एवमीदृशं सांख्यसमय स्वप्रज्ञापराधेन सूत्रार्थमबुध्यमानाः केचिच्छ्रमणाभासाः प्ररूपयंति तेषां

भेदः । कथ ? इति चेत्, तप्तायःपिंडवद्वर्तमानकाले पृथक्त्वं कर्तुं नायाति तेन कारणेन व्यवहारेणाभेदः । निश्चयेन पुनर्मरणकाले कायादिप्राणा जीवेन सहैव न गच्छंति तेन कारणेन भेदः । यद्येकांतेन भेदो भवति तर्हि यथा परकीये काये छिद्यमाने भिद्यमानेऽपि

तिष्ठता है सो इस तरह तिष्ठता आत्मा मिथ्यात्वादि भावोंका कर्ता नहीं होता, क्योंकि ज्ञायकपनका और कर्तापनका अत्यंत विरुद्धपना है । तथा मिथ्यात्व आदि भाव तो होते ही हैं इसलिये उनका कर्ता कर्म ही है ऐसी प्ररूपणा की जाती है । वहां आचार्य कहते हैं—ऐसी वासनाका उघडना है यही पहले कहा था कि आत्मा आत्माको करता है इसलिये कर्ता है उस माननेका अतिशयकर बात है, क्योंकि सदा काल ज्ञायक माना तब आत्मा अकर्ता ही हुआ । इसलिये हम कहते हैं ऐसा अनुमान करना कि ज्ञायक भावके सामान्य अपेक्षाकर ज्ञानस्वभावरूप अवस्थितपना होनेपर भी कर्मसे उत्पन्न हुए मिथ्यात्व आदि भावोंके ज्ञानके समयमें अनादिसे ही ज्ञेय और ज्ञानके भेदविज्ञानकी शून्यतासे परको आत्मा जाननेवालेके विशेष अपेक्षाकर अज्ञानस्वरूप जो ज्ञानका परिणाम उसके करनेसे कर्तापन है । यह अनुमान करने योग्य है । वह कहां तक करना ? जबतक कि जिस समयसे ज्ञेय ज्ञानके भेदविज्ञानके पूर्णपनसे आत्माको ही आत्मा जाननेवालेके विशेप अपेक्षाकर भी ज्ञानरूप ही ज्ञानपरिणामकर परिणमते हुए केवल ज्ञातापनसे साक्षात् अकर्तापन हो तबतक कर्तापनका अनुमान करना ॥ **भावार्थ—**कोई जैन मुनि भी स्याद्वादवाणीके विषयको अच्छीतरह न समझकर सर्वथा एकांतका अभिप्राय करे तथा विवक्षा पलटकर कहे कि आत्मा तो भावकर्मका अकर्ता ही है कर्मप्रकृतिका उदय ही भावको करता है । अज्ञान ज्ञान सोवना जागना सुख दुःख मिथ्यात्व असंयम चारों गतियोंमें भ्रमण तथा जो कुछ शुभ अशुभ भाव हैं उन सबको कर्म करता है, जीव तो अकर्ता है । ऐसा ही शास्त्रका अर्थ करे कि वेदके उदयसे स्त्रीपुरुषके विकार होता है तथा अपघात प्रकृतिके उदयसे परस्परघात प्रवर्तता है । ऐसा एकांतकर जैसे सांख्यमती सब प्रकृतीका कार्य मानता है पुरुषको अकर्ता मानता है, उसीतरह बुद्धिके दोपकर जैनी मुनियोंका भी मानना

प्रकृतेरेकांतेन कर्तृत्वाभ्युपगमेन सर्वेषामेव जीवानामेकांतेनाकर्तृत्वापत्तेः—जीवः कर्तेति कोपो दुःशक्यः परिहर्तुं। यस्तु कर्म आत्मनो ज्ञानादिसर्वभावान् पर्यायरूपान् करोति आत्मा त्वात्मानमेवैकं करोति ततो जीवः कर्तेति श्रुतिकोपो न भवतीत्यभिप्रायः स मिथ्यैव। जीवो हि द्रव्यरूपेण तावन्नित्योऽसंख्येयप्रदेशो लोकपरिमाणश्च। तत्र न तावन्नित्यस्य कार्यत्वमुपपन्नं कृतकत्वनित्यत्वयोरेकत्वविरोधात्। न चावस्थिताऽसंख्येय-प्रदेशस्यैकस्य पुद्गलस्कंधस्येव प्रदेशप्रक्षेपणाकर्षणद्वारेणापि कार्यत्वं प्रदेशप्रक्षेपणाकर्षणे सति तस्यैकत्वव्याघातात्[1]। न चापि सकललोकवस्तुविस्तारपरिमितनियतनिजाभोग-संग्रहस्य प्रदेशसंकोचनविकाशद्वारेण तस्य कार्यत्वं, प्रदेशसंकोचविकाशयोरपि शुष्कार्द्र-चर्मवत्प्रतिनियतनिजविस्ताराद्धीनाधिकस्य तस्य कर्तुमशक्यत्वात्। यस्तु वस्तुस्वभावस्य सर्वथापोढुमशक्यत्वात् ज्ञायको भावो ज्ञानस्वभावेन तिष्ठति, तथा तिष्ठंश्च ज्ञायककर्तृ-

---

दुःख न भवति तथा स्वकीयकायेऽपि दुःखं न प्राप्नोति। न च तथा, प्रत्यक्षविरोधात्। ननु तथापि व्यवहारेण हिसा जाता न तु निश्चयेनेति? सत्यमुक्तं भवता व्यवहारेण हिंसा तथा पापमपि नारकादिदुःखमपि व्यवहारेणेत्यस्माकं सम्मतमेव। तन्नारकादि दुःखं भवता-

---

हुआ। परंतु जैनवाणी स्याद्वादरूप है इसलिये सर्वथा एकांत माननेवालेके ऊपर वाणीका कोप अवश्य होगा। तथा वाणीके कोपके भयसे विवक्षा पलटकर कहै कि आत्मा अपने आत्माका कर्ता है इसकारण भावकर्मका कर्ता तो कर्म ही है और अपना कर्ता आत्मा है इसतरह कथंचित् कर्ता आत्माको कहनेसे वाणीका कोप नहीं होगा। तो ऐसा कहना भी मिथ्या है। आत्मा द्रव्यकर नित्य है लोक परिमाण असंख्यात-प्रदेशी है। सो इसमें तो कुछ नवीन करनेको ही नहीं है। भावकर्मरूप पर्यायोंका कर्ता कर्म को बतलावे तो आत्मा तो अकर्ता ही रहा तब वाणीका कोप कैसे मिटा?। इसलिये आत्माके कर्तापन तथा अकर्तापनकी विवक्षा यथार्थ मानना ही स्याद्वाद मानना सत्य होता है। वह इस तरह है कि आत्माके ज्ञायक स्वभाव तो सामान्य अपेक्षाकर है ही परंतु ज्ञानविशेषकी अपेक्षा आपना परका भेदज्ञानके विना परको आत्मा जानता है। इस अज्ञानरूप अपने भावका कर्ता है जब उस ज्ञानविशेषकी अपेक्षाकर आत्मपरका भेद विज्ञान हो उसी कालसे लेकर भेद विज्ञानकी पूर्णता होनेपर अपनेको आप जाने और ज्ञानपरिणामकर परिणमे तब केवल ज्ञाता हुआ साक्षात् अकर्ता होता है। इसतरह मानना सत्यार्थ स्याद्वादका प्ररूपण है॥ अब इस अर्थका कलशरूप २०५ वां काव्य कहते हैं—**मा कर्तार** इत्यादि। **अर्थ**—अर्हतके मतके जैनी जन हैं वे आत्माको सर्वथा अकर्ता सांख्यमतियोंकी तरह मत मानो। उस आत्माको भेद विज्ञान होनेके पहिले कर्ता मानो और भेदज्ञान होनेके बाद उद्धत

---

[1] व्याघातात् पाठोऽयं ख. पुस्तके।

त्वयोरत्यंतविरुद्धत्वान्मिथ्यात्वादिभावानां न कर्ता भवति । भवंति च मिथ्यात्वादिभावाः ततस्तेषां कर्मैव कर्तृ प्ररूप्यत इति वासनोन्मेषः स तु नितरामात्मानं करोतीत्यभ्युपगममुपहंत्येव ततो ज्ञायकस्य भावस्य सामान्यापेक्षया ज्ञानस्वभावावस्थितत्वेऽपि कर्मजानां मिथ्यात्वादिभावानां ज्ञानसमयेऽनादिज्ञेयज्ञानशून्यत्वात् परमात्मेति जानतो विशेषापेक्षया त्वज्ञानरूपस्य ज्ञानपरिणामस्य करणात्कर्तृत्वमनुमंतव्यं तावद्यावत्तदादिज्ञेयज्ञानभेदविज्ञानपूर्णत्वादात्मानमेवात्मेति जानतो विशेषापेक्षयापि ज्ञानरूपेणैव ज्ञानपरिणामेन परिणममानस्य केवलं ज्ञातृत्वात्साक्षादकर्तृत्वं स्यात् । "मा कर्तारममी स्पृशंतु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादधः । ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं पश्यंतु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परं ॥२०५॥ क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदं । अपहरति

मिष्टं चेत्तर्हि हिंसा कुरुत । भीतिरस्ति ? इति चेत् तर्हि त्यज्यतामिति । ततः स्थितमेतत्, एकांतेन सांख्यमतवदकर्ता न भवति किं तर्हि रागादिविकल्परहितसमाधिलक्षणभेदज्ञानकाले

ज्ञानमंदिरमें निश्चित नियमरूप कर्तापनकर रहित निश्चल एक ज्ञाता ही अपने आप प्रत्यक्ष देखो ॥ **भावार्थ**—सांख्यमती पुरुषको एकांतकर अकर्ता शुद्ध उदासीन चैतन्यमात्र मानते हैं । ऐसा माननेसे पुरुषके संसारका अभाव आता है । प्रकृतिके संसार माना जाय तो प्रकृति तो जड़ है, उसके सुखदुःख आदिका संवेदन नहीं है इसलिये किसका संसार ? इत्यादि दोष आते हैं । क्योंकि सर्वथा एकांत वस्तुका स्वरूप नहीं है इसकारण वे सांख्यमती मिथ्यादृष्टि हैं । उसीतरह जो जैनी भी मानते हैं तो वे मिथ्यादृष्टि होते हैं । इसलिये आचार्य उपदेश करते हैं कि सांख्यमतियोंकी तरह जैनी आत्माको सर्वथा अकर्ता मत मानो । जहांतक आप परका भेद विज्ञान न हो तबतक तो रागादिक अपने चेतनरूप भावकर्मोंका कर्ता मानो, भेद विज्ञान हुए बाद शुद्ध विज्ञानघन समस्त कर्तापनके अभावकर रहित एक ज्ञाता ही मानो । इसतरह एक ही आत्मामें कर्ता अकर्ता दोनों भाव विवक्षाके वशसे सिद्ध होते हैं । यह स्याद्वाद मत जैनियोंका है तथा वस्तुस्वभाव भी ऐसा ही है कल्पना नहीं है । ऐसा माननेसे पुरुषके संसार मोक्ष आदिकी सिद्धि होती है सर्वथा एकांत माननेमें सब निश्चय व्यवहारका लोप हो जाता है ऐसा जानना ॥ आगे बौद्धमती क्षणिकवादी ऐसा मानते हैं कि कर्ता तो अन्य है और भोक्ता अन्य है, उनके सर्वथा एकांत माननेमे दूषण दिखलाते हैं तथा स्याद्वादकर जिसतरह वस्तु स्वरूप कर्ता भोक्तापन है उसतरह दिखलाते हैं । उसमें प्रथम ही उसकी सूचनाका २०६ वां काव्य यह है—**क्षणिक** इत्यादि । **अर्थ**—एक

---

१ ऊर्ध्वं मिथ्यात्वरूपविभावपरिणामध्वसानंतर-उद्धतमविलंबेन ज्ञेयग्राहि यद्बोधधाम ज्ञानतेजस्तत्र नियतं तत्पर ।

विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः स्वयमयमभिषिंचंश्चिच्चमत्कार एव ॥ २०६ ॥ वृत्त्यंशभेद-तोऽत्यंतं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्। अन्यः करोति भुंक्तेऽन्यः इत्येकांतश्चकास्तु मा ॥ २०७॥"
३३२-३४४ ॥

केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिचि दु जीवो।
जह्मा तह्मा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥ ३४५ ॥

कर्मणः कर्ता न भवति शेषकाले कर्तेति व्याख्यानमुख्यतयातरस्थलत्रयेण चतुर्थस्थले त्रयोदश सूत्राणि गतानि ॥ ३३२-३४४ ॥ **केहिचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु**

बौद्धमती क्षणिकवादी तो आत्मतत्त्वको क्षणिक कल्प कर अपने मनमें कर्ता भोक्तामें भेद मानते हैं अन्य कर्ता है अन्य भोगता है ऐसा मानते हैं, उनके अज्ञानको यह चैतन्य चमत्कार ही आप दूर करता है। क्या करता हुआ? नित्यरूप अमृतके समूहोंकर सिंचता हुआ ॥ **भावार्थ**—क्षणिकवादी कर्ता भोक्तामे भेद मानते है जो पहले क्षणमें था वह दूसरे क्षणमे नहीं है ऐसा मानते हैं। आचार्य कहते हैं कि हम उनको क्या समझावें? यह चैतन्य ही उनका अज्ञान दूर करेगा। जो कि अनुभव गोचर नित्यरूप है। पहले क्षण आप है वही दूसरे क्षणमे कहता है कि मैं पहले था वही हूं ऐसा स्मरण पूर्वक प्रत्यभिज्ञान उसकी नित्यता दिखलाता है। यहां बौद्धमती कहता है कि जो पहले क्षण था वही मैं दूसरे क्षणमें हूं यह मानना तो अनादि अविद्यासे भ्रम है यह मिटै तब तत्त्व सिद्ध हो, समस्त क्लेश मिटैं। उसको कहते हैं कि हे बौद्ध! तूने प्रत्यभिज्ञानको भ्रम बतलाया तो जो अनुभव गोचर है वह भ्रम ठहरा तो तेरा क्षणिक मानना भी अनुभवगोचर है यह भी भ्रम ठहरा, क्योंकि अनुभव अपेक्षा दोनों ही समान हैं। इसलिये सर्वथा एकांत मानना तो दोनों ही भ्रम हैं वस्तु स्वरूप नहीं है। हम (जैन) कथंचित् नित्यानित्यरूप वस्तुका स्वरूप कहते हैं वह सत्यार्थ है ॥ आगे ऐसे ही क्षणिक माननेवालेको युक्तिकर २०७ वें काव्यसे निषेधते हैं—**वृत्त्यंश** इत्यादि। **अर्थ**—क्षण क्षण प्रति अवस्था भेदोंको वृत्त्यंश कहते हैं उनके सर्वथा भेद जुदे २ वस्तु माननेसे अवस्थाओंका आश्रयरूप जो वृत्तिमान वस्तु उसके नाशकी कल्पना करके ऐसा मानते है कि करता दूसरा है और भोगता कोई दूसरा ही है। उसपर आचार्य कहते है कि ऐसा एकांत मत प्रकाशो। जहां अवस्थावान् पदार्थका नाश हुआ वहां अवस्थायें किसके आश्रय होके रहें? इस तरह दोनोंका नाश आता है तब शून्यका प्रसंग होता है ॥ ३३२ से ३४४ तक ॥

अब अनेकांतको प्रगटकर इस क्षणिकवादको स्पष्ट करके निषेधते हैं;—**[यस्मात्]**

---

१ बौद्धैरित्यर्थः।

केहिंचि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो ।
जह्मा तह्मा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥ ३४६ ॥
जो चेव कुणइ सोचिय ण वेयए जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णायव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिदो ॥ ३४७ ॥

जीवो कैश्चित्पर्यायैः पर्यायार्थिकनयविभागैर्देवमनुष्यादिरूपैर्विनश्यति जीवः । न नश्यति कैश्चिद्द्रव्यार्थिकनयविभागैः **जह्मा** यस्मादेवं नित्यानित्यस्वभावं जीवरूप **तह्मा** तस्मात्कारणात् **कुव्वदि सो वा** द्रव्यार्थिकनयेन स एव कर्म करोति । स एव कः ? इति चेत्, यो भुंक्ते । **अण्णो वा** पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यो वा । **णेयंतो** न चैकांतोऽस्ति । एवं कर्तृत्वमुख्यत्वेन प्रथमगाथा गता । **केहिचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो** कैश्चित् पर्यायैः पर्यायार्थिकनयविभागैः देवमनुष्यादिरूपैर्विनश्यति जीवः न नश्यति कैश्चिद्द्रव्यार्थिकनयविभागैः । **जह्मा** यस्मादेवं नित्यानित्यस्वभावं जीवस्वरूपं **तह्मा** तस्मात्कारणात् **वेददि सो वा** निजशुद्धात्मभावनोत्थसुखामृतरसास्वादमलभमानः स एव कर्मफलं वेदयत्यनुभवति । स एव कः ? इति चेत्, येन पूर्वकृतं कर्म । **अण्णो वा** पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यो वा **णेयंतो** न चैकातोऽस्ति । एवं भोक्तृत्वमुख्यत्वेन द्वितीयगाथा । किं च येन मनुष्यभवे शुभाशुभं कर्म कृतं स एव जीवो द्रव्यार्थिकनयेन लोके नरके वा भुंक्ते । पर्यायार्थिकनयेन पुनस्तद्भवापेक्षया बालकाले कृतं यौवनादिपर्यायान्तरे भुंक्ते । भवातरापेक्षया तु मनुष्यपर्यायेण कृतं देवादिपर्यायेण भुंक्ते इति भावार्थः । एवं गाथाद्वयेनानेकातव्यवस्थापनारूपेण स्वपक्षसिद्धिः कृता । अथैकातेन य एव करोति स एव भुंक्ते, अथवान्यः करोत्यन्यो भुंक्ते इति यो वदति स मिथ्यादृष्टिरित्युपदिशति—**जो चेव कुणदि सो चेव वेदको जस्स एस सिद्धंतो** य एव जीवः शुभाशुभं कर्म करोति स एव चैकांतेन भुंक्ते न पुनरन्यः, यस्यैष सिद्धांतः—आगमः । **सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो** स जीवो

जिसकारण [**जीवः**] जीव नामा पदार्थ [**कैश्चित्तु पर्यायैः**] कितनी एक पर्यायोंकर तो [**विनश्यति**] विनाशको पाता है [**तु**] और [**कैश्चित्**] कितनी एक पर्यायोंसे [**नैव**] नहीं विनष्ट होता [**तस्मात्**] इसकारण [**स वा करोति**] वह ही करता है [**वा अन्यः**] अथवा अन्य कर्ता होता है [**न एकांतः**] एकांत नहीं स्याद्वाद है । [**यस्मात्**] जिसकारण [**जीवः**] जीव [**कैश्चित्तु पर्यायैः**] कितनी एक पर्यायोंसें [**विनश्यति**] विनसता है [**तु**] और [**कैश्चित्**] कितनी एक पर्यायोंसे [**नैव**] नहीं विनसता [**तस्मात्**] इसकारण [**स वा वेदयते**] वही जीव भोक्ता होता है [**अन्यो वा**] अथवा अन्य भोगता है वह नहीं भोगता [**न एकांतः**] ऐसा एकांत नहीं है स्याद्वाद है । [**च यस्य एष सिद्धांतः**] और जिसका ऐसा सिद्धांत (मत) है कि [**य एव**] जो जीव [**करोति**] करता

अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥ ३४८ ॥

कैश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्मात्करोति स वा अन्यो वा नैकांतः ॥ ३४५ ॥
कैश्चित्तु पर्यायैः विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः ।
यस्मात्तस्माद्वेदयते स वा अन्यो वा नैकांतः ॥ ३४६ ॥
यः चैव करोति स चैव न वेदयते यस्यैष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥ ३४७ ॥
अन्यः करोत्यन्यः परिभुंक्ते यस्य एष सिद्धांतः ।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ॥ ३४८ ॥

यतो हि प्रतिसमयं संभवदगुरुलघुगुणपरिणामद्वारेण क्षणिकत्वादचलितचैतन्यान्वयगुणद्वारेण नित्यत्वाच्च जीवः कैश्चित्पर्यायैर्विनश्यति, कैश्चित्तु न विनश्यतीति द्विस्वभावो जीवस्वभावः । ततो य एव करोति स एवान्यो वा वेदयते । य एव वेदयते स एवान्यो

मिथ्यादृष्टिरनार्हतो ज्ञातव्यः । कथं मिथ्यादृष्टिः ? इति चेत्, यदैकांतेन नित्यकूटस्थोऽपरिणामी टंकोत्कीर्णः साख्यमतवत् तदा येन मनुष्यभवेन नरकगतियोग्यं पापकर्मकृत स्वर्गगतियोग्यं पुण्यकर्म कृत तस्य जीवस्य नरके स्वर्गे वा गमनं न प्राप्नोति । तथा शुद्धात्मानुष्ठानेन मोक्षश्च कुतः ? नित्यैकांतत्वादिति । **अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो** अन्यः करोति कर्म भुंक्ते चान्यः, यद्येकांतेन ब्रूते **सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो** तदा येन मनुष्यभवे पुण्यकर्म कृतं पापकर्मकृतं मोक्षार्थं शुद्धात्मभावनानुष्ठानं

है **[स चैव न वेदयते]** वह नहीं भोगता अन्य ही भोगनेवाला होता है **[स जीवः]** वह जीव **[मिथ्यादृष्टिः]** मिथ्यादृष्टि **[ज्ञातव्यः]** जानना **[अनार्हतः]** अरहंतके मतका नहीं है । **[यस्य एष सिद्धांतः]** तथा जिसका ऐसा सिद्धांत है कि **[अन्यः करोति]** अन्य कोई करता है **[अन्यः परिभुंक्ते]** और दूसरा कोई भोगता है **[स जीवः]** वह जीव **[मिथ्यादृष्टिः]** मिथ्यादृष्टि **[ज्ञातव्यः]** जानना **[अनार्हतः]** अरहंतके मतका नहीं है ॥ **टीका**—जिस-कारण यह जीव समय समय प्रति संभवते अगुरुलघुगुणके परिणामके द्वारा तो क्षणिक है परंतु अचलित चैतन्यके अवयवरूप गुणके द्वारा नित्य है । उसपनेसे कुछ एक पर्यायोंसे तो विनाश पाता है तथा कितनी एक पर्यायोंसे नहीं विनसता । ऐसे दो स्वरूप जीवका स्वभाव है । इसकारण जो करता है वही भोगता है अथवा नहीं भोगता अन्य भोगता है । अथवा जो भोगता है वही करता है अथवा अन्य करता है एकांत नहीं है । इस तरह अनेकांत होनेपर भी जो ऐसा मानता है कि जिस

वा करोतीति नास्त्येकांतः । एवमनेकांतेऽपि यस्तत्क्षणवर्तमानस्यैव परमार्थसत्त्वेन वस्तुत्वमिति वस्त्वंशेऽपि वस्तुत्वमध्यास्य शुद्धनयलोभादृजुसूत्रैकांते स्थित्वा य एव करोति स एव न वेदयते । अन्यः करोति अन्यो वेदयते इति पश्यति स मिथ्यादृष्टिरेव द्रष्टव्यः । क्षणिकत्वेऽपि वृत्त्यंशानां वृत्तिमतश्चैतन्यचमत्कारस्य टंकोत्कीर्णस्यैवांतःप्रतिभासमानत्वात् । "आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यांधकैः कालोपाधिबलादशुद्धि-

---

वा तस्य पुण्यकर्मणा देवलोकेभ्यः कोऽपि भोक्ता प्राप्नोति न च स जीवः । नरकेऽपि तथैव । केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपं मोक्षं चान्यः कोऽपि लभते ततश्च पुण्यपापमोक्षानुष्ठानं वृथेति बौद्ध-

---

क्षणमें वर्तमान है उसीके परमार्थरूप सत्ताकर वस्तुपना है, ऐसें वस्तुके अंशमें वस्तुपनका निश्चयकर शुद्धनयके लोभसे ऋजुसूत्रनयके एकांतमें ठहरकर जो करता है वही नहीं भोगता, अन्य करता है और अन्य ही भोगता है ऐसा देखता है—श्रद्धान करता है वह जीव मिथ्यादृष्टि ही जानना । क्योंकि पर्यायरूप अवस्थाओंके क्षणिकपना होनेपर भी वृत्तिमान (पर्यायी) जो चैतन्य चमत्कार टंकोत्कीर्ण नित्यस्वरूप उसका अंतरंगमें प्रतिभासमानपना है ॥ **भावार्थ**—वस्तुका स्वभाव जिनवाणीमें द्रव्यपर्यायस्वरूप कहा है । इसलिये पर्याय अपेक्षा तो वस्तु क्षणिक है और द्रव्य अपेक्षा नित्य है ऐसा अनेकांत स्याद्वादसे सिद्ध होता है । ऐसा होनेपर जीवनामा वस्तु भी ऐसा ही द्रव्यपर्यायस्वरूप है इसलिये पर्याय अपेक्षाकर देखा जाय तब तो कार्यको करता तो अन्य पर्याय है और भोगता अन्य ही पर्याय है । जैसे मनुष्य पर्यायमें शुभ अशुभ कर्म किये उनका फल देवादि पर्यायमे भोगा । परंतु द्रव्यदृष्टिकर देखा जाय तब जो करता है वही भोगता है ऐसा सिद्ध होता है । जैसे मनुष्यपर्यायमें जो जीव द्रव्य था उसने शुभाशुभ कर्म किये थे वही जीव देवादि पर्यायमें गया वहां उसी जीवने अपने कियेका फल भोगा । इसतरह वस्तुका स्वरूप अनेकांतरूप सिद्ध होनेपर भी शुद्धनयमें तो संशय नहीं और शुद्धनयके लोभसे वस्तुका पर्याय वर्तमान कालमें जो एक अंश था उसीको वस्तु मान ऋजुसूत्रनयके विषयका एकांत पकड़ ऐसा मानते हैं कि जो करता है वह भोगता नहीं है अन्य भोगता है । और जो भोगता है वह करता नहीं है अन्य करता है । ऐसे मिथ्यादृष्टि हैं अरहंतके मतके नहीं हैं । क्योंकि पर्यायके क्षणिकपना होने पर भी द्रव्यरूप चैतन्य चमत्कार तो अनुभव गोचर नित्य है । जैसे प्रत्यभिज्ञानकर ऐसा जाने कि जो बालक अवस्थामें मै था वही अब तरुण अवस्थामें तथा वृद्ध अवस्थामें हूं । इसतरह जो अनुभवगोचर स्वसंवेदनमें आये तथा जिनवाणी भी ऐसे ही कहै उसको न माने वही मिथ्यादृष्टि कहलाता है । ऐसा जानना ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २०८ वा काव्य कहते हैं—**आत्मानं** इत्यादि । **अर्थ**—आ-

मधिका तत्रापि मत्वा परैः। चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रेरितैरात्मा व्युज्झित एव हारवदहो निस्सूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥ २०८ ॥ "कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोपि वा कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिंत्यतां। प्रोता सूत्र

मतदूषणं, इति गाथाद्वयेन नित्यैकांतक्षणिकैकांतमतं निराकृतं। एवं द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गतं। अथ यद्यपि शुद्धनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावात् कर्मणां कर्ता जीवस्तथाऽप्यशुद्धनयेन रागादि-

---

त्माको समस्तपनेसे शुद्ध इच्छक जो बौद्धमती उन्होंने उस आत्मामें कालकी उपाधिके बलसे अधिक अशुद्धता मानकर अतिव्याप्ति पाकर तथा शुद्ध ऋजुसूत्रनयके प्रेरे हुए चैतन्यको क्षणिक कल्पकर अंधोंने आत्माको छोड़ दिया। क्योंकि आत्मा तो द्रव्य-पर्यायस्वरूप था वह सर्वथा क्षणिक पर्यायस्वरूप मान छोड दिया उनके आत्माकी प्राप्ति नहीं हुई। यहां हारका दृष्टांत है। जैसे मोतियोंका हार नामा वस्तु है उसमे सूत्रमे जो मोती पोये हुए है वे भिन्न भिन्न दीखते हैं। जो हार नामा वस्तुको सूत्रसहित मोती पोये हुए नहीं देखते, मोतियोंको ही जुदे जुदे देख ग्रहण करते हैं उनको हारकी प्राप्ति नहीं होती। उसीतरह जो आत्माके एक नित्य चैतन्य भावको नहीं ग्रहण करते तथा समय समय वर्तना परिणामरूप उपयोगकी प्रवृत्तिको देख उसको सदा नित्य मान कालकी उपाधिसे अशुद्धपना मान ऐसा जानते है कि नित्य माना जाय तो कालकी उपाधि लगनेसे आत्माके अशुद्धपना आता है तब अतिव्याप्ति दूषण लगता है। इस दोषके भयसे ऋजुसूत्रनयका विषय जो शुद्ध वर्तमान समयमात्र क्षणिकपना उस मात्र मान आत्माको छोड दिया ॥ **भावार्थ**—बौद्धमतीने आत्माको समस्तपने शुद्ध माननेका इच्छक होके विचारा कि, आत्माको नित्य माना जाय तो नित्यमें कालकी अपेक्षा आती है इसलिये उपाधि लग जायगी तब बड़ी अशुद्धता आवेगी तब अतिव्याप्ति दोष लगेगा। इस भयसे शुद्ध ऋजुसूत्र नयका विषय वर्तमान समयमात्र था उसमात्र क्षणिक आत्माको माना। तब जो आत्मा नित्यानित्य स्वरूप द्रव्यपर्याय स्वरूप था उसका ग्रहण उसके नहीं हुआ, केवल पर्यायमात्रमे आत्माकी कल्पना हुई। वह आत्मा सत्यार्थ नहीं ऐसा जानना ॥ अब फिर इसी अर्थके समर्थनरूप वस्तुके अनुभव करनेको २०९ वां काव्य कहते हैं—**कर्तु** इत्यादि। **अर्थ**—कर्तामे और भोक्तामें युक्तिके वशसे भेद हो अथवा अभेद हो, अथवा कर्ता भोक्ता दोनों ही न हों, वस्तुका ही चिंतवन करो। क्योंकि चतुर पुरुषोंकर सूत्रमें पोई हुई मणियोंकी माला जैसे भेदी नहीं जाती, तैसे आत्मामें पोई हुई चैतन्यरूप चिंतामणिकी माला भी कभी किसीकर भेदी नहीं जासकती। ऐसी यह आत्मारूपी माला समस्तपनेसे एक हमारे प्रकाशरूप प्रगट हो ॥ **भावार्थ**—वस्तु द्रव्यपर्यायस्वरूप अनेक धर्मवाली है, उसमें विवक्षाके वशसे कर्ता

---

१ बौद्धैरित्यर्थः।

इवात्मनीह निपुणैर्भर्तुं न शक्या क्वचिच्चिच्चिंतामणिमालिकेयमभितोप्येका चकास्त्वेव नः ॥ २०९ ॥ "व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते । निश्चयेन यदि वस्तु चिंत्यते कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥ २१० ॥" ३४५।३४६।३४७।३४८ ॥

जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होइ ॥ ३४९ ॥

भावकर्मणा स एव कर्ता न च पुद्गल इत्याख्याति—अत्र गाथापंचकेन प्रत्येकं गाथापूर्वार्धेन सांख्यमतानुसारिशिष्यं प्रति पूर्वपक्षः, उत्तरार्धेन परिहार इति ज्ञातव्य ॥३४५।३४६।३४७।४८॥ यथा लोके शिल्पी तु सुवर्णकारादिः सुवर्णकुंडलादिकर्म करोति, कैः कृत्वा[2] हस्तकुट्टकाद्युपकरणैः । हस्तकुट्टकाद्युपकरणानि च हस्तेन गृह्णाति, तथापि तैः सुवर्णकुंडलादिकर्महस्त-

---

भोक्तापनेका भेद भी है और भेद नहीं भी है तथा कर्ता भोक्ता भी क्यों कहना? केवल शुद्ध वस्तुमात्रका असाधारण धर्मके द्वारा अनुभव करते चैतन्यके परिणमनरूप पर्यायके भेदोंकी अपेक्षा कर्ता भोक्ताका भेद है। चिन्मात्र द्रव्य अपेक्षा भेद नहीं है। इसतरह भेद अभेद होवें तथा चिन्मात्र अनुभवमें भेद अभेद क्यों कहना? कर्ता भोक्ता भी नहीं कहना वस्तुमात्र अनुभव करना। जैसे मणियोंकी मालामें सूत और मोतियोंका विवक्षासे भेद है। मालामात्र ग्रहण करनेमें भेद अभेद विकल्प नहीं है। उसीतरह आत्मामें चैतन्यके द्रव्यपर्याय अपेक्षा भेदाभेद है तौ भी आत्मवस्तुमात्र अनुभव करनेपर विकल्प नहीं रहता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि ऐसे निर्विकल्प आत्माका अनुभव हमारे प्रकाशरूप है, ऐसा जैनोंका वचन है॥ आगे इस कथनको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं उसकी सूचनाके नयविभागका २१० वा काव्य कहते हैं— **व्यावहारिक** इत्यादि। **अर्थ**—व्यवहारकी दृष्टिमें तो केवल कर्ता और कर्म भिन्न दीखते हैं और जब निश्चयकर देखा जाय अर्थात् वस्तुको विचारा जाय तो कर्ता और कर्म सदाकाल एक ही देखनेमें आते हैं॥ **भावार्थ**—व्यवहारनय तो पर्यायाश्रित है इसमे तो भेद ही दीखता है और शुद्ध निश्चयनय द्रव्याश्रित है। इसमें अभेद ही दीखता है। इसलिये व्यवहारमें तो कर्ता कर्मका भेद है और निश्चयमें अभेद है ॥ ३४५ । ३४६ । ३४७ । ३४८ ॥

आगे इस कथनको दृष्टांतसे गाथाओंमें कहते हैं,—**[यथा शिल्पिकः तु]** जैसे सुनार आदि कारीगर **[कर्म]** आभूषणादिक कर्मको **[करोति]** करता है **[स तु]** परंतु वह **[तन्मयो न च भवति]** आभूषणादिकोंसे तन्मय नहीं होता **[तथा]** उसीतरह **[जीवोपि च]** जीव भी **[कर्म]** पुद्गलकर्मको **[करोति]**

जह सिप्पिओ उ करणेहिं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणेहिं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३५० ॥
जह सिप्पिओ उ करणाणि गिह्णइ ण सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणाणि उ गिह्णइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३५१ ॥
जह सिप्पिउ कम्मफलं भुंजदि ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३५२ ॥
एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दरिसणं समासेण ।

कुट्टकादिकरणैरुपकरणैः सह तन्मयो न भवति । तथैव ज्ञानी जीवोऽपि निष्क्रियवीतरागस्वसंवेदनज्ञानच्युतः सन् ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्माणि करोति । कैः कृत्वा ? मनोवचनकायव्यापाररूपैः कर्मोत्पादकरणैरुपकरणैः तथैव च कर्मोदयवशान्मनोवचनकायव्यापाररूपाणि कर्मोत्पादकरणान्युपकरणानि सश्लेषरूपेण व्यवहारनयेन गृह्णाति तथापि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्ममनोवचनकायव्यापाररूपकर्मोत्पादकोपकरणैः सह टंकोत्कीर्णज्ञायकत्वेन भिन्नत्वात्तन्मयो न भवति । तथैव च स एव शिल्पी सुवर्णकारादिः सुवर्णकुडलादिकर्मणि कृते सति यत्किमप्यशनपानादिकं मूल्यं लभते भुक्ते च तथापि तेनाशनपानादिना तन्मयो न भवति । तथा जीवोऽपि शुभाशुभकर्मफलं बहिरंगेन दृष्टाशनपानादिरूप निजशुद्धात्मभावनोत्थमनोहरानंदसुखास्वादमलभमानो भुंक्ते न च तन्मयो भवति । **एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दंसणं समासेण** एवं

करता है । [च] तौभी [तन्मयो न भवति] उससे तन्मय नहीं होता । [यथा] जैसे [शिल्पिकः] शिल्पी [करणैः] हथौड़ा आदि कारणोंने [करोति] कर्म करता है । [तु सः] परंतु वह [तन्मयो न भवति] उनसे तन्मय नहीं होता [तथा] उसीतरह [जीवः] जीव [करणैः करोति] भी मनवचन काय आदि कारणोंसे कर्मको करता है [च] तौभी [तन्मयो न भवति] उनसे तन्मय नहीं होता । [यथा] जैसे [शिल्पिकः] शिल्पी [करणानि] करणोंको [गृह्णाति] ग्रहण करता है [तु] तौभी [स तु] वह [तन्मयो न भवति] उनसे तन्मय नहीं होता [तथा] उसीतरह [जीवः] जीव [करणानि गृह्णाति] मनवचन कायरूप करणोंको ग्रहण करता है [तु च] तौ भी [तन्मयो न भवति] उनसे तन्मय नहीं होता । [यथा] जैसे [शिल्पी तु] शिल्पी [कर्मफलं] आभूषणादि कर्मोंके फलको [भुंक्ते] भोगता है [तु च] तौ भी [सः] वह उनसे [तन्मयो न भवति] तन्मय नहीं होता [तथा जीवः] उसीतरह जीव भी [कर्मफलं] सुख दुःख आदि कर्मके फलको [भुंक्ते] भोगता है [च] परंतु [तन्मयो न भवति] उनसे तन्मय नहीं होता । [एवं तु] इसतरहसे तो [व्यवहारस्य दर्शनं] व्यवहारका मत [समासेन] संक्षेपसे [वक्तव्यं]

सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकयं तु जं होई ॥ ३५३ ॥
जह सिप्पिओ उ चिट्ठं कुव्वइ हवइ य तहा अणण्णो से ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वइ हवइ य अणण्णो से ॥ ३५४ ॥
जह चिट्ठं कुव्वंतो उ सिप्पिओ णिच्च दुक्खिओ होई ।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥ ३५५ ॥

यथा शिल्पिकस्तु कर्म करोति न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति न च तन्मयो भवति ॥ ३४९ ॥
यथा शिल्पिकस्तु करणैः करोति न स तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणैः करोति न च तन्मयो भवति ॥ ३५० ॥

पूर्वोक्तप्रकारेण गाथाचतुष्टयेन द्रव्यकर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरूपस्य व्यवहारनयस्य दर्शन दृष्टांत उदाहरण हे शिष्य ! वक्तव्य व्याख्येयं कथनीय समासेन सक्षेपेण **सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं हवदि** इद त्वग्रे वक्ष्यमाण निश्चयस्य वचनं व्याख्यान शृणु, कथभूतं ? परिणामकृत रागादिविकल्पेन निष्पादितमिति । **जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कु-**

कहने योग्य है [**तु**] और [**यत्**] जो [**निश्चयस्य**] निश्चयके [**वचनं**] वचन है वे [**परिणामकृतं**] अपने परिणामोंमे किये [**भवति**] होते हैं [**शृणु**] उनको सुनो । [**यथा**] जैसे [**शिल्पिकः**] शिल्पी [**चेष्टां करोति**] अपने परिणामस्वरूप चेष्टारूप कर्मको करता है [**तु च**] परतु [**तस्या अनन्यः तथा**] वह उस चेष्टासे जुदा नहीं [**भवति**] होता है तन्मय है [**तथा**] उसीतरह [**जीवोपि च**] जीव भी [**कर्म**] अपने परिणामस्वरूप चेष्टारूप कर्मको [**करोति**] करता है [**तस्मात्**] उस चेष्टाकर्मसे [**अनन्यः भवति**] अन्य नहीं है तन्मय है । [**यथा तु**] जैसे [**शिल्पिकः**] शिल्पी [**चेष्टां कुर्वाणः**] चेष्टा करता हुआ [**नित्यदुःखितो भवति**] निरंतर दुःखी होता है [**तस्माच**] उस दुःखसे [**अनन्यः स्यात्**] जुदा नहीं है तन्मय है [**तथा**] उसीतरह [**जीवः**] जीव भी [**चेष्टमानः दुःखी**] चेष्टा करता हुआ दुःखी होता है ॥ **टीका**—जैसे निश्चयकर सुनार आदि शिल्पी कुंडल आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप कर्मको करता है, हथोड़ा आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप करणोंकर करता है, हथौड़ा आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूप करणोंको ग्रहण करता है, और कुंडल आदि कर्मका फल ग्रामधन आदि परद्रव्यके परिणामस्वरूपको पाता है उनको भोगता है तो भी वे सभी भिन्न भिन्न द्रव्य हैं उनमे अन्य है इसलिये उनसे तन्मय नहीं होता, इसकारण वहा निमित्त नैमित्तिक भावमात्रकर ही उनके कर्ता कर्मपनेका और भोक्ता भोग्यपनेका व्यवहार है । उसीतरह

यथा शिल्पिकस्तु करणानि गृह्णाति न स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः करणानि तु गृह्णाति न च तन्मयो भवति ॥ ३५१ ॥
यथा शिल्पिकः कर्मफलं भुंक्ते न च स तु तन्मयो भवति ।
तथा जीवः कर्मफलं भुंक्ते न च तन्मयो भवति ॥ ३५२ ॥
एवं व्यवहारस्य तु वक्तव्यं दर्शनं समासेन ।
शृणु निश्चयस्य वचनं परिणामकृतं तु यद्भवति ॥ ३५३ ॥
यथा शिल्पिकस्तु चेष्टां करोति भवति च तथानन्यस्तस्याः ।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति भवति चानन्यस्तस्मात् ॥ ३५४ ॥
यथा चेष्टां कुर्वाणस्तु शिल्पिको नित्यदुःखितो भवति ।
तस्माच्च स्यादनन्यस्तथा चेष्टमानो दुःखी जीवः ॥ ३५५ ॥

यथा खलु शिल्पी सुवर्णकारादिः कुंडलादिपरद्रव्यपरिणामात्मकं कर्म करोति । हस्तकुट्टकादिभिः परद्रव्यपरिणामात्मकैः करणैः करोति । हस्तकुट्टकादीनि परद्रव्यपरिणामात्मकानि करणानि गृह्णाति । ग्रामादिपरद्रव्यपरिणामात्मकं कुंडलादिककर्मफलं भुंक्ते नत्वनेकद्रव्यत्वेन ततोऽन्यत्वे सति तन्मयो भवति ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहारः । तथात्मापि पुण्यपापादि पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म करोति ।

हवदि य तहा अणण्णो सो यथा सुवर्णकारादिशिल्पी कुंडलादिकमेवमेवं करोमीति मनसि चेष्टां करोति इति तथा चेष्टया सह भवति चानन्यस्तन्मयः **तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो** तथैवाज्ञानी जीवः केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य योऽसौ साधको निर्विकल्पसमाधिरूपः कारणसमयसारस्तस्याभावे सत्यशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिरूपं भावकर्म करोति तेन भावकर्मणा सह भवति चानन्यः इति भावकर्मकर्तृत्वगाथा गता । **जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्च दुःखितो**

आत्माभी पुण्यपाप आदि पुद्गलद्रव्यस्वरूप कर्मको करता है, मनवचनकाय पुद्गलद्रव्यस्वरूप करणोंकर कर्मको करता है, मनवचनकाय पुद्गल द्रव्यके परिणामस्वरूप करणोंको ग्रहण करता है और सुखदुःख आदि पुद्गलद्रव्यके परिणामस्वरूप पुण्यपाप आदि कर्मोंके फलको भोगता है सो भिन्न द्रव्यपनेसे उनसे अन्य होनेपर उनसे तन्मय नहीं होता । इसलिये निमित्त नैमित्तिक भावमात्रकर ही वहां कर्ता कर्मपना भोक्ता भोग्यपनेका व्यवहार है । जैसे वही शिल्पी करनेका इच्छक हुआ अपने हस्त आदि की चेष्टारूप अपने परिणाम स्वरूप कर्मको करता है और दुःखस्वरूप अपने परिणामरूप चेष्टामय कर्मके फलको भोगता है उन परिणामोंको अपने एक ही द्रव्यपनेकर अनन्य होनेसे उनसे तन्मय होता है । इसलिये उनमें परिणाम परिणामी भावकर कर्ता कर्मपनेका तथा

कायवाङ्मनोभिः पुद्गलद्रव्यपरिणामात्मकैः करणैः करोति कायवाङ्मनांसि पुद्गलपरिणामात्मकानि करणानि गृह्णाति सुखदुःखादिपुद्गलद्रव्यपरिणामात्मकं पुण्यपापादिकर्मफलं भुंक्ते च नत्वनेकद्रव्यत्वेन ततोऽन्यत्वे सति तन्मयो भवति ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहारः। यथा च स एव शिल्पी चिकीर्षुः चेष्टानुरूपमात्मपरिणामात्मकं कर्म करोति। दुःखलक्षणमात्मपरिणामात्मकं चेष्टानुरूपकर्मफलं भुंक्ते च एकद्रव्यत्वेन ततोऽनन्यत्वे सति तन्मयश्च भवति ततः परिणामपरिणामिभावेन तत्रैव कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वनिश्चयः। तथात्मापि चिकीर्षुश्चेष्टारूपमात्मपरिणामात्मकं कर्म करोति। दुःखलक्षणमात्मपरिणामात्मकं चेष्टारूपकर्मफल भुंक्ते च एकद्रव्यत्वेन ततोनन्यत्वे सति तन्मयश्च भवति ततः परिणामपरिणामिभावेन तत्रैव कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वनिश्चयः। "ननु परिणामी एव किल कर्मविनिश्चयतः स भवति नापरस्य परिणामिन

होदि यथा स एव शिल्पी कुंडलादिकमेवमेव करोमीति मनसि चेष्टा कुर्वाणः सन् चित्तखेदेन नित्यं दुःखितो भवति। न केवलं दुःखितः। **तत्तो सेय अणण्णो** तस्माद्दुःखविकल्पादनुभवरूपेणानन्यश्च स स्यात् **तह चेट्ठंतो दुही जीवो** तथैवाज्ञानिजीवोऽपि विशुद्धज्ञानदर्शनादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य साधको योऽसौ निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारः, तस्यालाभे सुखदुःखभोक्तृत्वकाले हर्षविषादरूपा चेष्टा कुर्वाणः सन्मनसि दुःखितो

भोक्ताभोग्यपनेका निश्चय है। उसीतरह आत्मा भी करनेका इच्छक हुआ अपने उपयोगकी तथा प्रदेशोंकी चेष्टारूप अपने परिणामस्वरूप कर्मको करता है और दुःखस्वरूप अपने परिणामरूप (चेष्टारूप) कर्मके फलको भोगता है। उन परिणामोंके अपने एक ही द्रव्यपनेकर अन्यपना न होनेसे उनसे तन्मय होता है। इसलिये उन परिणामोंमें परिणाम परिणामी भावकर कर्ता कर्मपनेका और भोक्ता भोग्यपनेका निश्चय है॥ अब २११ वां श्लोक कहते हैं—**ननु** इत्यादि। **अर्थ**—हे मुनियो! तुम यह निश्चय करो कि यह प्रगट परिणाम है वह तो निश्चयसे कर्म है वह परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी द्रव्यका ही होता है अन्यका नहीं होता। क्योंकि परिणाम अपने अपने द्रव्यके आश्रय हैं अन्यके परिणामका अन्य आश्रय नहीं होता। कर्म है वह कर्ताके विना नहीं होता। वस्तु है वह द्रव्य पर्यायस्वरूप है इसलिये उसकी एक अवस्थारूप कूटस्थस्थिति आदि नहीं होती, सर्वथा नित्यपना बाधासहित है इसकारण अपने परिणामरूप कर्मका आप ही कर्ता है यह निश्चय सिद्धांत है॥ अब इसी अर्थके समर्थनरूप २१२ वां कलशरूप काव्य कहते है—**बहिर्लुठति** इत्यादि। **अर्थ**—यद्यपि वस्तु आप प्रकाशरूप अनंतशक्तिस्वरूप है तौ भी अन्यवस्तु अन्यवस्तुमें प्रवेश नहीं करती बाहर ही लोटती है। क्योंकि सभी वस्तु अपने अपने स्वभावमें नियमरूप हैं ऐसा माना जाता है। इसपर आचार्य कहते हैं कि ऐसा होनेपर भी यह जीव अ-

एव न भवेत् । न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म चैकतया स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृत्वादेव ततः ॥ २११ ॥ बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनंतशक्तिः स्वयं तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वंतरं । स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥ २१२ ॥ वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् । निश्चयोयमपरोऽपरस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥ २१३ ॥ "यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किंचनापि परिणामिनः स्वयं । व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥ २१४ ॥" ॥ ३४९-३५५ ॥

भवति इति । तया हर्षविषादचेष्टया सह अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानरूपेणानन्यश्च भवति इति । एवं पूर्वोक्तप्रकारेणाज्ञानिजीवो निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानात् च्युतो भूत्वा सुवर्णकारादिदृष्टांतेन व्यवहारनयेन द्रव्यकर्म करोति भुंक्ते च । तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्म चेति व्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथासप्तकं गतं ॥ ३४९—३५५ ॥ अथ ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानाति तथापि धवल-

---

पने स्वभावसे चलायमान होके आकुल तथा मोही हुआ क्यों क्लेशरूप होता है ? ॥ **भावार्थ**—वस्तुस्वभाव तो नियमसे ऐसा है कि किसी वस्तुमें कोई वस्तु नहीं मिलती और यह प्राणी अपने स्वभावसे चलायमान होके व्याकुल (क्लेशरूप) हो जाता है यह बड़ा अज्ञान है । फिर इसी अर्थको दृढ करनेके लिये २१३ वां श्लोक कहते है—**वस्तु** इत्यादि । **अर्थ**—जिसकारण इस लोकमें एक वस्तु दूसरी वस्तुकी नहीं है इसीकारण वस्तु है वह वस्तुरूप है । ऐसा न माना जाय तो वस्तुका वस्तुपना ही नहीं ठहर सकता ऐसा निश्चय है । ऐसा होनेपर अन्यवस्तु है वह अन्यवस्तुके बाहर लोटती है तो भी उसका क्या कर सकती है कुछ भी नहीं कर सकती ॥ **भावार्थ**—वस्तुका स्वभाव तो ऐसा है कि अन्य कोई वस्तु उसे बदल नहीं सकती तब अन्यका अन्यने क्या किया ? कुछ भी नहीं किया । जैसे चेतन वस्तुके एक क्षेत्रावगाहरूप पुद्गल रहते है तो भी चेतनको जड़कर अपनेरूप तो नहीं परिणमासकते तब चेतनका क्या किया ? कुछ भी नहीं किया यह निश्चयनयका मत है, और निमित्त नैमित्तिक भावसे अन्यवस्तुके परिणाम होता है वह भी उस वस्तुका ही है अन्यका कहना व्यवहार है । यही २१४ वें श्लोकसे कहते है—**यत्तु** इत्यादि । **अर्थ**—जो कोई वस्तु अन्य वस्तुका कुछ करती है ऐसा कहा जाय तो वस्तु आप परिणामी है अवस्थासे अन्य अवस्थारूप होना वस्तुका पर्याय स्वभाव है इसीसे परिणामी कहते हैं ऐसे परिणामी वस्तुके अन्यके निमित्तसे परिणाम हुआ उसको ऐसा कहना कि यह अन्यने किया यह कहना व्यवहारनयकी दृष्टिसे है । और निश्चयसे तो अन्यने कुछ किया नहीं जो परिणाम हुआ वह अपना ही हुआ दूसरेने तो उसमें कुछ भी लाकर नहीं रक्खा, ऐसा जानना ॥ ३४९ से ३५५ तक ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ ।
तह जाणओ दु ण परस्स जाणओ जाणओ सो दु ॥ ३५६ ॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ ।
तह पासओ दु ण परस्स पासओ पासओ सो दु ॥ ३५७ ॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होइ ।
तह संजओ दु ण परस्स संजओ संजओ सो दु ॥ ३५८ ॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होदि ।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥ ३५९ ॥
एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते ।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ॥ ३६० ॥

कुड्येष्वेतन्मृत्तिकावन्निश्चयेन तन्मयं न भवति इति निश्चयमुख्यत्वेन गाथापंचकं । यथैव च श्वेतमृत्तिका कुड्यं श्वेतं करोतीति व्यवह्रियते तथैव च ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानात्येव व्यवहारोऽस्तीति व्यवहारमुख्यत्वेन गाथापंचकं । एवं समुदायेन दशकं । तद्यथा;—यथा लोके श्वेतिका श्वेतमृत्तिका खटिका परद्रव्यस्य कुड्यादेर्निश्चयेन श्वेतमृत्तिका न भवति तन्मयो न भवति

आगे इस निश्चय व्यवहार नयके कथनको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं;—[**यथा**] जैसे [**सेटिका**] सफेदी करनेवाली कलई अथवा खडियामट्टी चूना आदि सफेद वस्तु वह [**परस्य**] अन्य जो भीत आदि वस्तु उसको [**सेटिका तु न**] सफेद करनेवाली है इससे खडिया नहीं है वह तो भीतके बाहर भागमें रहती है भीतरूप नहीं होती [**सेटिका च सा भवति**] खड़िया तो आप खड़ियारूप ही है [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञायकः तु**] जाननेवाला है वह [**परस्य ज्ञायकः न**] परद्रव्यको जाननेवाला है इसकारणसे ज्ञायक नहीं है [**स तु ज्ञायकः**] आप ही ज्ञायक है [**यथा सेटिका**] जैसे खड़िया० [**तथा**] उसीतरह [**दर्शकस्तु**] देखनेवाला [**परस्य दर्शकः न**] परद्रव्यको देखनेवाला होनेसे दर्शक नहीं है [**स तु दर्शकः**] आप ही देखनेवाला है । [**यथा सेटिका०**] जैसे खड़िया०.... [**तथा**] उसीतरह [**संयतस्तु**] संयत [**परस्य संयतः न**] परको त्यागनेसे संयत नहीं है [**स तु संयतः**] आप ही संयत है । [**यथा सेटिका०**] जैसे खड़िया०.... [**तथा**] उसीतरह [**दर्शनं तु**] श्रद्धान [**परस्य दर्शनं न**] परके श्रद्धानसे श्रद्धान नहीं है [**तत्तु दर्शनं**] आप ही श्रद्धान है [**एवं तु**] ऐसा [**ज्ञानदर्शनचारित्रे**] दर्शन ज्ञान चारित्रमें [**निश्चयनयस्य**] निश्चयनयका [**भाषितं**] कहा हुआ वचन है [**च**] तथा [**व्यवहारनयस्य वक्तव्यं**] व्यवहार-

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणइ णाया वि सयेण भावेण ॥ ३६१ ॥
जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सइ जीवोवि सयेण भावेण ॥ ३६२ ॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ णायावि सयेण भावेण ॥ ३६३ ॥

बहिर्भागे तिष्ठतीत्यर्थः । तर्हि किं भवति ? श्वेतिका श्वेतिकैव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः । तथा श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन ज्ञानात्मा घटपटादिज्ञेयपदार्थस्य निश्चयेन ज्ञायको न भवति तन्मयो न भवतीत्यर्थः तर्हि किं भवति ? ज्ञायको ज्ञायक एव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः । एवं ब्रह्माद्वैतवादिवत्-ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमति-इति कथनमुख्यत्वेन गाथा गता । तथा तेनैव च श्वेतमृतिकादृष्टांतेन दर्शक आत्मा दृश्यस्य घटादिपदार्थस्य निश्चयेन दर्शको न भवति, तन्मयो न भवतीत्यर्थः ।

नयके वचन हैं [**तस्य**] उसे [**समासेन शृणु**] संक्षेपसे कहते हैं उसको सुनो । [**यथा**] जैसे [**सेटिका**] खड़िया [**आत्मनः स्वभावेन**] अपने स्वभावकर [**परद्रव्यं सेटयति**] भींत आदि परद्रव्योंको सफेद करती है [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञाता अपि**] जाननेवाला भी [**परद्रव्यं**] परद्रव्यको [**स्वकेन भावेन**] अपने स्वभावकर [**जानाति**] जानता है [**यथा सेटिका०**] जैसे खडिया०.... [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञातापि**] ज्ञाता भी [**स्वकेन भावेन**] अपने स्वभावकर [**परद्रव्यं पश्यति**] परद्रव्यको देखता है [**यथा सेटिका०**] जैसे खड़िया०.... [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञातापि**] ज्ञाता भी [**स्वकेन भावेन**] अपने स्वभावकर [**परद्रव्यं विजहाति**] परद्रव्यको त्यागता है [**यथा सेटिका०**] जैसे खड़िया०.... [**तथा**] उसीतरह [**ज्ञातापि**] ज्ञाता भी [**स्वकेन भावेन**] अपने स्वभावकर [**परद्रव्यं श्रद्दधाति**] परद्रव्यका श्रद्धान करता है । [**एवं तु**] इसतरह जो [**ज्ञानदर्शनचारित्रे**] दर्शनज्ञानचारित्रमें [**व्यवहारस्य विनिश्चयः**] व्यवहारका विशेषकर निश्चय [**भणितः**] कहा है [**एवमेव**] इसीतरह [**अन्येषु पर्यायेष्वपि**] अन्यपर्यायोंमें भी [**ज्ञातव्यः**] जानना चाहिये ॥ **टीका**—प्रथम ही दृष्टांत कहते हैं—इस लोकमें खड़िया श्वेतगुणकर भरा हुआ द्रव्य है उसको लोक कलई पांडु इत्यादि भी कहते हैं । उसके व्यवहारकर तो श्वेत करने योग्य मंदिर कुटी भीत आदि परद्रव्य हैं । अब यहां खडिया और परद्रव्य दोनोंके परमार्थसे (असलमें) क्या संबंध है ? यह विचारते हैं कि श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य हैं उनको श्वेत करनेवाली खड़िया है या नहीं ? यदि ऐसा मानिये कि सेटिका भींत आ-

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं सद्दहइ सम्मदिट्ठी सहावेण ॥ ३६४ ॥
एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते
भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णायव्वो ॥ ३६५ ॥

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा ज्ञायकस्तु न परस्य ज्ञायको ज्ञायकः स तु ॥ ३५६ ॥

तर्हि किं भवति ? दर्शको दर्शक एव स्वस्वरूपेण तिष्ठतीत्यर्थः। एवं सत्तावलोकनदर्शनं दृश्य-पदार्थरूपेण न परणमतीति कथनमुख्यत्वेन गाथा गता। तथा तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन सयत आत्मा त्याज्यस्य परिग्रहादेः परद्रव्यस्य निश्चयेन त्याजको न भवति, तन्मयो न भवतीत्यर्थः। तर्हि किं भवति ? सयतः सयत एव निर्विकारनिजमनोहरानंदलक्षणस्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः। एवं वीतरागचारित्रमुख्यत्वेन गाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन तत्त्वार्थश्रद्धान-

---

दिपरद्रव्यकी है तो ऐसा न्याय है कि जो जिसका हो वह उस स्वरूप ही होता है। जैसे आत्माका ज्ञान आत्मस्वरूप ही है। ऐसा परमार्थरूप तत्त्वसंबंधी जीवता विद्यमान होनेपर सेटिका भींत आदिकी हुई भींत आदिके स्वरूप होनी चाहिये उससे जुदा द्रव्य न होना। ऐसा होनेपर सेटिकाके निजद्रव्यका तो उच्छेद (अभाव) हो जायगा भींत आदिक एक द्रव्य ही ठहरेगा। परंतु दूसरे द्रव्यका अभाव होना ठीक नहीं है क्योंकि एक द्रव्यका अन्य द्रव्यरूप होना तो पहले ही निषेधरूप कह आये हैं अन्यद्रव्य पलटकर अन्यद्रव्यरूप नहीं होता। इसलिये यह निश्चय हुआ कि खड़िया कुटी आदि परद्रव्यकी नहीं है। यहां पूछते हैं कि, खड़िया भींत आदिकी नहीं है तो किसकी है ? उसका उत्तर—खड़िया खड़ियाकी ही है। वहां फिर पूछते हैं कि वह अन्य खडिया कोनसी है जिस खडियाकी यह खड़िया है ? उसका उत्तर—खड़ियासे दूसरी खड़िया तो नहीं है। तो क्या है ? खड़ियाके स्वस्वामिभाव है। सो ये अंशोंके अन्यपना है। वहां कहते हैं कि, यहांपर निश्चयनयमे स्वस्वामि अंशका व्यवहारसे क्या लाभ है ? कुछ भी नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि खड़िया अन्य किसीकी भी नहीं खड़िया खडियाकी ही है ऐसा निश्चय है। जैसा यह दृष्टांत है वैसा ही दार्ष्टांतिक अर्थ है। इस लोकमें प्रथम तो चेतनेवाला आत्मा ज्ञानगुणकर भरे स्वभाववाला द्रव्य है उसके व्यवहारकर जानने योग्य पुद्गल आदिक परद्रव्य है सो यहां उस आत्माका और पुद्गल आदि परद्रव्यका दोनोंका परमार्थ तत्त्वरूप संबंध विचारते हैं कि, पुद्गल आदि परद्रव्योंका चेतयिता आत्मा है या नहीं ? यदि ऐसा माना जाय कि चेतयिता आत्मा पुद्गल आदि परद्रव्यका है तो यह न्याय है कि जो जिसका हो वह वही

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा दर्शकस्तु न परस्य दर्शको दर्शकः स तु ॥ ३५७ ॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा संयतस्तु न परस्य संयतः संयतः स तु ॥ ३५८ ॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति ।
तथा दर्शनं तु न परस्य दर्शनं दर्शनं तत्तु ॥ ३५९ ॥
एवं तु निश्चयनयस्य भाषितं ज्ञानदर्शनचरित्रे ।
शृणु व्यवहारनयस्य च वक्तव्यं तस्य समासेन ॥ ३६० ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति खलु सेटिकात्मनः स्वभावेन ।

रूपं सम्यग्दर्शनं श्रद्धेयस्य बहिर्भूतजीवादिपदार्थस्य निश्चयनयेन श्रद्धानकारकं न भवति, तन्मयं न भवतीत्यर्थः । तर्हि किं भवति ? सम्यग्दर्शनं सम्यग्दर्शनमेव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः । एवं तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनमुख्यत्वेन गाथा गता । **एवं तु णिच्छयणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते** एवं पूर्वोक्तगाथाचतुष्टयेन भाषितं व्याख्यानं कृतं । कस्य संबंधित्वेन ? निश्चयनयस्य । क्व विषये ? ज्ञानदर्शनचारित्रे । **सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं** इदानीं हे शिष्य! शृणु समाकर्णय । किं ? वक्तव्यं व्याख्यानं । कस्य संबंधित्वेन ?

है अन्य नहीं । इसतरह आत्माका ज्ञान हुआ आत्मा ही है ज्ञान कुछ जुदा द्रव्य नहीं है। ऐसे परमार्थरूप तत्त्वसंबंधके जीवित (विद्यमान) होनेपर आत्मा पुद्गलादिका होवे तो पुद्गलादिक ही होना चाहिये। ऐसा होनेपर आत्माके स्वद्रव्यका उच्छेद (अभाव) हो जायगा पुद्गलद्रव्य ही ठहरेगा आत्मा अलग द्रव्य नहीं सिद्ध होगा। सो ऐसा होता नहीं है अर्थात् द्रव्यका अभाव नहीं होता। क्योंकि अन्य द्रव्यको पलटकर अन्य द्रव्य होनेका निषेध तो पहले ही कह आये हैं। इसलिये चेतयिता आत्मा पुद्गलादिक परद्रव्यका नहीं होता। यहां पूछते हैं कि, चेतयिता आत्मा पुद्गलादि परद्रव्यका नहीं है तो किसका है? उसका उत्तर—चेतयिताका ही चेतयिता है। फिर पूछते हैं कि वह दूसरा चेतयिता कौनसा है जिसका यह चेतयिता है? उसका उत्तर—चेतयितासे अन्य कोई चेतयिता तो नहीं है। तो क्या है? वहां कहते हैं कि, स्वस्वामि अंश हैं वे अन्य कहे जाते हैं। वहां पर कहते हैं यहां निश्चयनयमें स्वस्वामी अंशके व्यवहारकर क्या लाभ है? कुछ भी नहीं। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि ज्ञायक है वह निश्चयकर अन्य किसीका ज्ञायक नहीं है आप ही ज्ञायक है ऐसा निश्चय है॥ अब जैसा ज्ञायक दृष्टांत-दार्ष्टांतकर कहा वैसा ही दर्शकको कहते हैं। वहां खडिया प्रथम तो श्वेत गुणकर भरे स्वभाववाली द्रव्य है उसकर व्यवहारसे श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य है। सो सेटिका और कुटी आदि परद्रव्य इन दोनोंका यहां परमार्थ तत्त्वरूप संबंध विचारते

तथा परद्रव्यं जानाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥ ३६१ ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं पश्यति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥ ३६२ ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
यथा परद्रव्यं विजहाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥ ३६३ ॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन ।
तथा परद्रव्यं श्रद्धत्ते ज्ञातापि स्वकेन भावेन ॥ ३६४ ॥
एवं व्यवहारस्य तु विनिश्चयो ज्ञानदर्शनचरित्रे ।
भणितोऽन्येष्वपि पर्यायेषु एवमेव ज्ञातव्यः ॥ ३६५ ॥ दशकं ।

सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादिपरद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते—यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवतीति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवंती कुड्यादिरेव भवेत्, एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः । नच द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव

व्यवहारनयस्य । कस्य संबंधिव्यवहारः ? **से** तस्य पूर्वोक्तज्ञानदर्शनचारित्रत्रयस्य । केन ? **समासेण** संक्षेपेण । इति निश्चयनयेन व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रपंचकं गत । **अथ व्यवहारः कथ्यते**—यथा येन प्रकारेण लोके परद्रव्यं कुड्यादिकं व्यवहारनयेन श्वेतयते श्वेतं करोति नच कुड्यादिपरद्रव्येण सह तन्मयी भवति । का कर्त्री ? श्वेतिका श्वेतमृत्तिका खटिका । केन कृत्वा श्वेत करोति ? स्वकीयश्वेतभावेन । तथा तेन श्वेतमृत्तिकादृष्टातेन परद्रव्यं घटादिकं

हैं—श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्यके श्वेत करनेवाली खडिया है या नहीं ? वहां जो खड़िया कुटी आदिककी है ऐसा मानो तो यह न्याय है कि जिसका जो हो वह वही है अन्य नहीं है । जैसे आत्माका ज्ञान हुआ आत्मा ही है । ऐसे परमार्थरूप संबंधके विद्यमान होनेपर खड़िया कुटी आदिकी यदि हो तो कुटी आदिक होनी चाहिये । ऐसा होनेपर खड़ियाके स्वद्रव्यका नाश हो जायगा सो द्रव्यका उच्छेद होता नहीं । क्योंकि एक द्रव्यका अन्यद्रव्यरूप पलटनेका पहले ही निषेध कर चुके हैं । इसकारण खड़िया कुटी आदिकी नहीं है । यहां पूछते हैं—सेटिका कुटी आदिकी नहीं हैं तो किसकी है ? उसका उत्तर—सेटिका सेटिकाकी ही है । फिर पूछते हैं—वह दूसरी सेटिका कौनसी है कि जिसकी यह सेटिका है ? उसका उत्तर—दूसरी सेटिका तो नहीं है कि जिसकी यह सेटिका होसके । तो क्या है ? स्वस्वामि अंश ही अन्य है । वहा कहते हैं यहां निश्चयनयमें स्वस्वामि अंशके व्यवहारकर क्या साध्य है ? कुछ भी नहीं । तो यह

प्रतिषिद्धत्वाद्द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः, ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः । यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति । ननु कतरान्या सेटिका यस्याः सेटिका भवति ? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः । किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः । यथा दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः । चेतयितात्र तावद् ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण ज्ञेयं पुद्गलादि द्रव्यं । अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्य ज्ञेयस्य ज्ञायकश्चेतयिता किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते । यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो

ज्ञेयं वस्तु व्यवहारेण जानाति नच परद्रव्येण सह तन्मयो भवति । कोऽसौ कर्ता ? ज्ञातात्मा[1] । केन जानाति ? स्वकीयज्ञानभावेनेति, प्रथमगाथा गता । तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन घटादिकं दृश्यं परद्रव्यं व्यवहारेण पश्यति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति । कोऽसौ ? ज्ञातात्मा[2] । केन पश्यति ? स्वकीयदर्शनभावेनेति द्वितीयगाथा गता । तथैव च तेनैव श्वेतमृ-

---

सिद्ध हुआ कि सेटिका किसीकी भी नहीं सेटिका सेटिका ही है ऐसा निश्चय है । जैसे यह दृष्टांत है वैसे यहां दार्ष्टांतिक अर्थ है—यहां चेतयिता आत्मा प्रथम ही दर्शनगुणकर जिसका स्वभाव भरा हुआ है ऐसा द्रव्य है उसके व्यवहारकर देखने योग्य पुद्गल आदि परद्रव्य हैं । अब यहां दोनोंका परमार्थभूत तत्त्वरूप संबंध विचारते हैं कि जो पुद्गल आदि परद्रव्य है उसका चेतयिता है या नहीं ? यदि चेतयिता पुद्गल द्रव्यादिका है ऐसा मानो तो यह न्याय है कि जो जिसका होता है वह वही है अन्य नहीं है । जैसे आत्माका ज्ञान हुआ आत्मा ही है ज्ञान जुदा द्रव्य नहीं है ऐसे तत्त्वसंबंधके विद्यमान होनेपर चेतयिता पुद्गल आदिका हुआ पुद्गल आदिक ही होसकेगा जुदा द्रव्य न हो सकेगा । ऐसा होनेपर चेतयिताके स्वद्रव्यका उच्छेद नाश होजाइगा परंतु द्रव्यका नाश होता नहीं । क्योंकि अन्यद्रव्यको पलटकर अन्यद्रव्य होनेका पहले ही निषेध कर चुके हैं । इसलिये यह ठहरा कि चेतयिता पुद्गल द्रव्य आदिका नहीं है । यहां पूछते हैं कि चेतयिता पुद्गलद्रव्य आदिका नहीं है तो किसका है ? उसका उत्तर—चेतयिताका ही चेतयिता है । फिर पूछते हैं वह दूसरा चेतयिता कौनसा है जिसका यह चेतयिता हो ? उसका उत्तर—चेतयितासे अन्य तो चेतयिता नहीं है । तो क्या है । स्वस्वामि अंश ही अन्य है । वहां कहते हैं कि यहां निश्चयनयमे स्वस्वामि अंशका व्यवहारकर क्या साध्य है ? कुछ भी नहीं । तब यह ठहरा कि चेतयिता किसीका भी दर्शक नहीं है दर्शक है वह दर्शक ही है । यहां निश्चयनयमें स्वस्वामि अंशका व्यव-

---

१ अत्र क. पुस्तके ज्ञानात्मेति पाठः । २ अत्रापि क. ज्ञानात्मेत्येव पाठ ।

ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादेरेव भवेत्, एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः । नच द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वा-द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः । ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः । यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ? चेतयितुरेव चेतयिता भवति । ननु कतरोन्य-श्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः, किंतु स्वस्वा-म्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्यापि ज्ञायकः । ज्ञायको ज्ञायक एवेति निश्चयः । किंच सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं

सेटिकादृष्टांतेन परिग्रहादिकं परद्रव्यं व्यवहारेण विरमति त्यजति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति । स कः कर्ता ? आत्मा । केन कृत्वा त्यजति ? स्वकीयनिर्विकल्पसमाधिपरिणामेनेति तृतीयगाथा गता । तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन जीवादिकं परद्रव्यं व्यवहारेण श्रद्-धाति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति । स कः कर्ता ? सम्यग्दृष्टिः । केन कृत्वा ? स्व-

---

हारकर क्या साध्य है ? कुछ भी नहीं यह निश्चय है । अब इसीतरह चारित्रको भी कहते हैं—वहां जैसे सेटिका प्रथम ही जिसका स्वभाव श्वेतगुणकर भरा है ऐसा द्रव्य है उसके व्यवहारकर श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्य है । अब यहां दोनोंका परमार्थसे संबंध विचारते हैं । श्वेत करने योग्य कुटी आदि परद्रव्यके श्वेत करनेवाली सेटिका है या नहीं ? जो सेटिका कुटी आदिकी है ऐसा मानिये तो यह न्याय है कि जो जिसका हो वह वही है अन्य नहीं है । जैसे आत्माका ज्ञान हुआ आत्मा ही है अन्यद्रव्य नहीं है । ऐसे परमार्थरूप तत्त्व संबंधको जीवता विद्यमान होनेपर सेटिका कुटी आदिकी हुई कुटी आदि ही होगी । ऐसा होनेपर सेटिकाके स्वद्रव्यका उच्छेद हो जायगा सो द्रव्यका उच्छेद होता नहीं । क्योंकि अन्य द्रव्यको पलटकर अन्य द्रव्य होनेका निषेध पहले कर चुके हैं । इसलिये सेटिका कुट्यादिककी नहीं है । वहां पूछते हैं कि कुट्यादिकी नहीं है तो कौनकी सेटिका है ? इसका उत्तर—सेटिकाकी ही सेटिका है । फिर पूछते हैं कि वह दूसरी सेटिका कौंनसी है जिसकी यह सेटिका है । उसका उत्तर—इस सेटिकासे अन्य सेटिका तो नहीं है । तो क्या है ? स्वस्वामि अंश हैं वे ही अन्य हैं । वहां कहते हैं स्वस्वामि अंशकर निश्चय नयमें क्या साध्य है ? कुछ भी नहीं । तब यह ठहरा कि सेटिका अन्य किसीकी भी नहीं है सेटिका सेटिका ही है ऐसा निश्चय है । जैसा यह दृष्टांत है वैसा दार्ष्टांतिक अर्थ है । चेतयिता आत्मा है वह प्रथम ही ज्ञान दर्शन गुणकर भरा जिसका स्वभाव परके त्यागरूप है ऐसा द्रव्य है उसके व्यवहारकर त्यागने योग्य पुद्गल आदि परद्रव्य है । अब यहां दोनोंके परमार्थतत्त्वरूप संबंध विचारते हैं—त्यागने योग्य पुद्गल आदि परद्रव्यके त्यागनेवाला चेतयिता है या नहीं ? जो चेतयिता पुद्गल आदि पर-

द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादि परद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वेतस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते । यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवतीति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवंती कुड्यादिरेव भवेत्, एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः । नच द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वादस्त्युच्छेदः । ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः । यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति । ननु कतरान्या सेटिका सेटिकायाः यस्याः

कीयश्रद्धानपरिणामेनेति चतुर्थगाथा गता । **एसो ववहारस्स दु विणिच्छियो णाणदंसणचरित्ते भणिदो** भणितः कथितः । कोऽसौ कर्मतापन्नः ? एष प्रत्यक्षीभूतः, पूर्वोक्तगाथा[1]चतुष्टयेन निर्दिष्टो विनिश्चयः, व्यवहारानुयायी निश्चय इत्यर्थः । कस्य संबंधी ? व्यवहारनयस्य । क्व विषये ? ज्ञानदर्शनचारित्रत्रये । **अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव**

द्रव्यका है ऐसा मानिये तो यह न्याय है कि जिसका जो हो वह वही है जैसे आत्माका ज्ञान होता आत्मा ही है अन्य द्रव्य नहीं । ऐसा तत्त्वसंबंध विद्यमान होनेपर चेतयिता पुद्गल आदिका हुआ पुद्गल आदिक ही होगा । ऐसा होनेपर चेतयिताके स्वद्रव्यका उच्छेद हो जायगा । सो द्रव्यका उच्छेद होता नहीं । क्योंकि अन्यद्रव्यको पलटकर अन्य द्रव्य होनेका प्रतिषेध पहले ही कर चुके हैं । इसलिये चेतयिता पुद्गलादिकका नहीं हो सकता । यहां पूछते हैं कि चेतयिता पुद्गल आदिका नहीं है तो कौनका चेतयिता है ? उसका उत्तर—चेतयिताका ही चेतयिता है । फिर पूछते हैं वह दूसरा चेतयिता कौनसा है ? जिसका यह चेतयिता है । उसका उत्तर—चेतयितासे अन्य चेतयिता तो नहीं है । तो क्या है ? स्वस्वामि अंश ही अन्य हैं । वहां कहते हैं—यहां निश्चयनयमें स्वस्वामि अंशका व्यवहार कर क्या साध्य है ? कुछ भी नहीं । तब यह ठहरा कि त्यागनेवाला अपोहक है वह किसीका भी अपोहक नहीं है, अपोहक है वह अपोहक ही है ऐसा निश्चय है ॥ अब व्यवहारको कहते हैं—जैसे वही सेटिका जिसका स्वभाव श्वेत गुणकर भरा हुआ है वह आप कुटी आदि परद्रव्यके स्वभावकर नहीं परिणमती तथा कुट्यादिक परद्रव्यको अपने स्वभावकर नहीं परिणमाती हुई जिसको कुट्यादि परद्रव्यनिमित्त है ऐसे अपने श्वेतगुणकर भरे स्वभावके परिणामकर उपजती हुई कुट्यादि परद्रव्यको अपने स्वभावकर सफेद करती है । कैसा है परद्रव्य ? जिसको सेटिका निमित्त है ऐसे अपने स्वभावके परिणामकर उत्पन्न हुआ है । उसको श्वेत करती है ऐसा व्यवहार करते हैं । उसीतरह चेतयिता आत्मा भी जिसका स्वभाव, ज्ञानगुणकर

---

१ चतुष्टये पाठोयं ख. पुस्तके ।

सेटिका भवति ? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्यापि सेटिका सेटिका, सेटिकैवेति निश्चयः । यथायं दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः—चेतयितात्र तावद्दर्शनगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण दृश्यं पुद्गलादि परद्रव्यं । अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्य दृश्यस्य दर्शकश्चेतयिता किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते—यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादिरेव भवेत् । एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद्द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः ? ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः । यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति ? चेतयितुरेव चेतयिता भवति । ननु कतरोऽन्यश्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्यापि दर्शकः, दर्शको दर्शक एवेति निश्चयः । अपि च सेटिका तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यं तस्य तु व्यवहारेण श्वैत्यं कुड्यादि

णादव्वो इदमोदनादिकं मया भुक्तं, इदमहिविषकंटकादिकं त्यक्तं, इदं गृहादिकं कृतं, तत्सर्वं व्यवहारेण । निश्चयेन पुनः स्वकीयरागादिपरिणाम एव कृतो भुक्तश्च । एवमित्याद्यन्ये-

---

भरा हुआ है ऐसा है । वह आप तो पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावकर न परिणमता हुआ है और पुद्गल आदि परद्रव्यको अपने स्वभावकर नहीं परिणमाता हुआ है । तथा जिसको पुद्गल आदि परद्रव्यनिमित्त है ऐसे अपने ज्ञानगुणकर भरे स्वभावके परिणामकर उपजता हुआ है । वह पुद्गलादि परद्रव्य जिसको चेतयिता निमित्त है ऐसे अपने स्वभावके परिणामकर उपजता हुआ है उसको अपने स्वभावकर जानता है ऐसा व्यवहार किया जाता है । ऐसा तो ज्ञानका व्यवहार है । अब दर्शन गुणका व्यवहार कहते हैं—जैसे वही सेटिका जिसका स्वभाव श्वेतगुणकर भरा हुआ है वह आप कुड्यादि परद्रव्यके स्वभावकर तो नहीं परिणमती हुई है और कुड्यादि परद्रव्यको अपने स्वभावकर नहीं परिणमाती हुई है । तथा जिसको कुड्यादि परद्रव्य निमित्त है ऐसे श्वेतगुणकर भरे अपने स्वभावके परिणामकर उपजती हुई है । वह कुड्यादि परद्रव्य जिसको सेटिका निमित्त है ऐसा अपने स्वभावके परिणामकर उपजता हुआ है । उसको अपने स्वभावकर सफेद करती है ऐसा व्यवहार किया जाता है । इसीतरह चेतयिता भी जिसका स्वभाव दर्शन गुणकर भरा है ऐसा है । वह स्वयं (आप) तो पुद्गल आदि परद्रव्यके स्वभावकर नहीं परिणमता है और पुद्गल आदि परद्रव्यको भी अपने स्वभावकर नहीं परिणमाता है । तथा जिसको पुद्गल आदि परद्रव्य निमित्त है ऐसा अपने दर्शन गुण-

परद्रव्यं । अथात्र कुड्यादेः परद्रव्यस्य श्वैत्यस्य श्वेतयित्री सेटिका किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते । यदि सेटिका कुड्यादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति सेटिका कुड्यादेर्भवंती कुड्यादिरेव भवेत् । एवं सति सेटिकायाः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद्द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः ? ततो न भवति सेटिका कुड्यादेः । यदि न भवति सेटिका कुड्यादेस्तर्हि कस्य सेटिका भवति ? सेटिकाया एव सेटिका भवति । ननु कतरान्या सेटिका सेटिकाया यस्याः सेटिका भवति ? न खल्वन्या सेटिका सेटिकायाः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि तर्हि न कस्यापि सेटिका, सेटिका सेटिकैवेति निश्चयः । यथायं दृष्टांतस्तथायं दार्ष्टांतिकः-चेतयितात्र तावद् ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावं द्रव्यं । तस्य तु व्यवहारेणापोह्यं पुद्गलादिपरद्रव्यं । अथात्र पुद्गलादेः परद्रव्यस्यापोह्यस्यापोहकः किं भवति किं न भवतीति ? तदुभयतत्त्वसंबंधो मीमांस्यते । यदि चेतयिता पुद्गलादेर्भवति तदा यस्य यद्भवति तत्तदेव

ष्वपि पर्यायेषु निश्चयव्यवहारनयविभागो ज्ञातव्य इति । यदि व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति तर्हि निश्चयेन सर्वज्ञो न भवतीति पूर्वपक्षे परिहारमाह—यथा स्वकीयसुखादिकं तन्मयो भूत्वा जानाति तथा बहिर्द्रव्यं न जानाति तेन कारणेन व्यवहारः । यदि पुनः परकीयसुखादिकमात्मसुखादिवत्तन्मयो भूत्वा जानाति तर्हि यथा स्वकीयसंवेदने सुखी भवति तथा

कर भरे स्वभावके परिणामकर उत्पन्न हुआ है । वह पुद्गल आदि परद्रव्य जिसको चेतयिता निमित्त है ऐसे अपने स्वभावके परिणामकर उपजते हुएको अपने स्वभावकर देखता है ऐसा व्यवहार किया जाता है । इसतरह दर्शनगुणका व्यवहार है ॥ अब चारित्रका व्यवहार कहते हैं—जैसे वही सेटिका जिसका स्वभाव श्वेतगुणकर भरा है ऐसी है वह आप कुड्यादि परद्रव्यके स्वभावकर नहीं परिणमती हुई है तथा कुड्यादि परद्रव्यको अपने स्वभावकर नहीं परिणमाती हुई है । और जिसको कुड्यादि परद्रव्य निमित्त है ऐसा श्वेतगुणकर भरे अपने स्वभावके परिणामकर उपजती हुई है तथा वह कुड्यादि परद्रव्य जिसको सेटिका निमित्त है ऐसा अपने स्वभावके परिणामकर उपजै उसको सेटिका अपने स्वभावकर श्वेत करती है । ऐसा व्यवहार किया जाता है । उसीतरह चेतयिता आत्मा भी ज्ञानदर्शन गुणकर भरा परके अपोहन (त्याग) रूप स्वभाव है । वह स्वयं पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावकर नही परिणमता है और पुद्गलादि परद्रव्यको भी अपने स्वभावकर नहीं परिणमाता । तथा पुद्गलादि परद्रव्य जिसको निमित्त है ऐसा अपने ज्ञानदर्शन गुणकर भरा परके त्याग करनेरूप स्वभावके परिणामकर उपजता हुआ है । सो जिसको चेतयिता निमित्त है ऐसा अपने स्वभावके परिणामकर

भवति यथात्मनो ज्ञानं भवदात्मैव भवति इति तत्त्वसंबंधे जीवति चेतयिता पुद्गलादेर्भवन् पुद्गलादिरेव भवेत् । एवं सति चेतयितुः स्वद्रव्योच्छेदः । न च द्रव्यांतरसंक्रमस्य पूर्वमेव प्रतिषिद्धत्वाद्द्रव्यस्यास्त्युच्छेदः । ततो न भवति चेतयिता पुद्गलादेः । यदि न भवति चेतयिता पुद्गलादेस्तर्हि कस्य चेतयिता भवति? चेतयितुरेव चेतयिता भवति । ननु कतरोऽन्यश्चेतयिता चेतयितुर्यस्य चेतयिता भवति ? न खल्वन्यश्चेतयिता चेतयितुः किंतु स्वस्वाम्यंशावेवान्यौ । किमत्र साध्यं स्वस्वाम्यंशव्यवहारेण ? न किमपि । तर्हि न कस्याप्यपोहकः, अपोहकोऽपोहक एवेति निश्चयः । यथा च सैव सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मस्वभावेन श्वेतयतीति व्यवह्रियते तथा चेतयितापि ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो ज्ञानगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमान मात्मनः स्वभावेन जानातीति व्यवह्रियते । किंच यथा च सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यं

परकीयसुखदुःखसंवेदनकाले सुखी दुःखी च प्राप्नोति न च तथा । यद्यपि स्वकीयसुखसंवेदनापेक्षया निश्चयः, परकीयसुखसंवेदनापेक्षया व्यवहारस्तथापि छद्मस्थजनापेक्षया सोऽपि निश्चय एवेति । ननु सौगतोऽपि ब्रूते व्यवहारेण सर्वज्ञः, तस्य किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति ? तत्र परिहारमाह—सौगतादिमते यथा निश्चयापेक्षया व्यवहारो मृषा, तथा व्यवहार-

---

उपजता जो पुद्गलादि परद्रव्य उसको अपने स्वभावकर त्यागता है । ऐसा व्यवहार किया जाता है । ऐसे ये आत्माके ज्ञानदर्शन चारित्र वे ही हुए पर्याय उनके निश्चय व्यवहारका प्रकार है । इसीतरह अन्य भी जो कोई पर्याय हैं उन सभी पर्यायोंका निश्चय व्यवहार जानना ॥ **भावार्थ**—आत्माका शुद्धनयकर एक चेतनामात्र स्वभाव है । उसके परिणाम देखना जानना श्रद्धना और परद्रव्यसे निवृत्त होना है । वहां निश्चयनयकर विचारिये तब आत्मा परद्रव्यका ज्ञायक नहीं कहा जासकता न दर्शक न श्रद्धान करनेवाला न त्याग करनेवाला कहा जासकता है । क्योंकि परद्रव्यका और आत्माका निश्चयकर कुछ भी संबंध नहीं है । जो ज्ञाता द्रष्टा श्रद्धान करनेवाला त्याग करनेवाला, ए सब भाव हैं सो आप ही है । भाव्य भावकका भेद कहना भी व्यवहार है । और परद्रव्यका ज्ञाता द्रष्टा श्रद्धान करनेवाला त्याग करनेवाला जो कहते हैं वह भी व्यवहारनयसे कहते हैं, क्योंकि परद्रव्यका और आत्माका निमित्त नैमित्तिक भाव

चात्मस्वभावेनापरिणमयंती कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमाना कुड्यादिपरद्रव्यं सेटिकानिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन श्वेतयतीति व्यवह्रियते । तथा चेतयितापि दर्शनगुणनिर्भरस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणमयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो दर्शनगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनो दर्शनगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन पश्यतीति व्यवह्रियते । अपि च —यथा च सैव सेटिका श्वेतगुणनिर्भरस्वभावा स्वयं कुड्यादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममाना कुड्यादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणामयंती कुड्यादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनः श्वेतगुणनिर्भरस्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमाना कुड्यादिपरद्रव्यं सेटिकानिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेन चेतयतीति व्यवह्रियते । तथा चेतयितापि ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावः स्वयं पुद्गलादिपरद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चात्मस्वभावेनापरिणामयन् पुद्गलादिपरद्रव्यनिमित्तकेनात्मनो ज्ञानदर्शनगुणनिर्भरपरापोहनात्मकस्वभावस्य

रूपेणापि व्यवहारो न सत्य इति, जैनमते पुनर्व्यवहारनयो यद्यपि निश्चयापेक्षया मृषा तथापि व्यवहाररूपेण सत्य इति । यदि पुनर्लोकव्यवहाररूपेणापि सत्यो न भवति तर्हि सर्वोऽपि लोकव्यवहारो मिथ्या भवति, तथा सत्यतिप्रसंगः । एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति पश्यति निश्चयेन पुनः स्वद्रव्यमेवेति । तत एतदायाति ग्रामारामादि सर्वं खल्विदं ब्रह्म ज्ञेय-

---

है । सो परके निमित्तसे कुछ भाव हुए देख व्यवहारी जन कहते हैं कि परद्रव्यको जानता है परद्रव्यको देखता है परद्रव्यका श्रद्धान करता है परद्रव्यको त्यागता है । इसतरह निश्चय व्यवहारका प्रकार जान यथावत् श्रद्धान करना ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २१५ वां काव्य कहते हैं—**शुद्ध** इत्यादि । **अर्थ**—आचार्य कहते हैं कि जिसने शुद्ध द्रव्यके निरूपणमें बुद्धि लगाई है और जो तत्त्वको अनुभवता है ऐसे पुरुषके एक द्रव्यमें प्राप्त हुआ अन्यद्रव्य कुछ भी कदाचित् नहीं प्रतिभासता । तथा ज्ञान अन्य ज्ञेय पदार्थोंको जानता है सो यह ज्ञानके शुद्ध स्वभावका उदय है । ये लोक हैं वे अन्यद्रव्यके ग्रहणमें आकुल बुद्धिवाले हुए शुद्ध स्वरूपसे क्यों चिगते हैं ? **भावार्थ—** शुद्धनयकी दृष्टिकर तत्त्वका स्वरूप विचारनेसे अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्यमें प्रवेश नहीं दीखता परंतु ज्ञानमें अन्यद्रव्य प्रतिभासता है सो यह ज्ञानकी स्वच्छताका स्वभाव है कुछ ज्ञान उनको ग्रहण नहीं करता । ये लोक अन्य द्रव्यका ज्ञानमें प्रतिभास देख अपने ज्ञानस्वरूपसे छूट ज्ञेयके ग्रहण करनेकी बुद्धि करते हैं सो यह अज्ञान है । आचार्यने उसकी करुणाकर कहा है कि ये लोक तत्त्वसे क्यों चिगते हैं ? ॥ **फिर इसी**

परिणामेनोत्पद्यमानः पुद्गलादिपरद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानमात्मनः स्वभावेनापोहतीति व्यवह्रियते । एवमयमात्मनो ज्ञानदर्शनचारित्रपर्यायाणां निश्चयव्यवहारप्रकारः । एवमेवान्येषां सर्वेषामपि पर्यायाणां द्रष्टव्यः । "शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतोनैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यांतरं जातुचित् । ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः किं द्रव्यांतरचुंबनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवंते जनाः ॥ २१५ ॥ शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-मन्यद्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः । ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्तिभूमिर्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥ २१६ ॥ "रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावद् ज्ञानं ज्ञानं

वस्तु किमपि नास्ति यद् ब्रह्माद्वैतवादिनो वदति तन्निषिद्धं । यदपि सौगतो[1] वदति ज्ञानमेव घटपटादिज्ञेयाकारेण परिणमति नच ज्ञानाद्भिन्न ज्ञेयं किमप्यस्ति तदपि निराकृतं । कथं ? इति चेत्, यदि ज्ञानं ज्ञेयरूपेण परिणमति तदा ज्ञानाभावः प्राप्नोति यदि वा ज्ञेय ज्ञानरूपेण

अर्थको २१६ वें काव्यसे दृढ करते हैं—**शुद्धद्रव्यस्वरस** इत्यादि । **अर्थ**—जिस द्रव्यका जो निजभाव हो वह स्वभाव है । सो आत्माका ज्ञानचेतना स्वभाव है उसका शुद्ध द्रव्य जो शुद्ध आत्मा उसका निजरस ज्ञान चेतना है । उसके होनेपर अन्य जो द्रव्य हैं वे क्या होसकते हैं कुछ भी नहीं । परमार्थकर संबंध नहीं है । अथवा अन्यद्रव्यका यह स्वभाव कौन है ? कुछ भी नहीं । परमार्थकर संबंध ही नहीं है । जैसे चांदनीका रूप पृथ्वीको उज्वल करता है तो क्या पृथ्वी चांदनीकी हो जाती है । कुछ भी नहीं । उसीतरह ज्ञान है वह ज्ञेयपदार्थको सदाकाल जानता है तो ज्ञानका ज्ञेय कुछ संबंधी हो जाता है ? कुछ भी नहीं ॥ **भावार्थ**—शुद्धनयकी दृष्टिकर देखिये तब किसी द्रव्यका स्वभाव कोई अन्यद्रव्यरूप नहीं होता । जैसे चांदनी पृथ्वीको उज्ज्वल करती है परंतु चांदनीकी पृथ्वी कुछ नहीं लगती उसीतरह ज्ञान ज्ञेयको जानता है परंतु ज्ञानका ज्ञेय कुछ नहीं लगता । आत्माका ज्ञान स्वभाव है सो इसकी स्वच्छतामें ज्ञेय स्वयमेव झलकते हैं तौभी ज्ञानमें उन ज्ञेयोंका प्रवेश नहीं है ॥ अब कहते हैं कि ज्ञानमें रागद्वेषका उदय कहांतक है ? उसका २१७ वा काव्य है—**रागद्वेष** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञान जबतक ज्ञानरूप नहीं होता और ज्ञेय ज्ञेयभावको प्राप्त नहीं होता तब तक रागद्वेष दोनों उदय होते है । इसलिये यह ज्ञान है सो ज्ञानरूप होवे । कैसा होवे ? जिसने अज्ञानभाव दूर किया है ऐसा होवे । इसीकारण भाव अभाव ज्ञानमें होते हैं उनको दूर करता हुआ पूर्ण स्वभाव होवे ॥ **भावार्थ**—जबतक ज्ञान ज्ञानरूप नहीं होता ज्ञेय ज्ञेयरूप नहीं होता तबतक रागद्वेष उपजते हैं । इसलिये यह

---

१ सौगता वदति इति ख. पुस्तके पाठ. ।

भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यं । ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं भावो भावो भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभावः ॥ २१७"३५६-३६५ ॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे विसये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥ ३६६ ॥
दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे कम्मे ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥ ३६७ ॥
दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे काये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥ ३६८ ॥

परिणमति तदा ज्ञेयाभावस्तथा सत्युभयशून्यत्वं, स च प्रत्यक्षविरोधः । एवं निश्चयव्यवहारव्याख्यानमुख्यतया समुदायेन सप्तमस्थले सूत्रदशकं गतं ॥ ३५६-३६५ ॥ अथ निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयालोचनापरिणतस्तपोधन एवाभेदेन निश्चयचारित्रं भवतीत्युपदिशति;—दर्शनज्ञानचारित्र किमपि नास्ति । केषु? शब्दादिपंचेंद्रियविषयेषु ज्ञानावरणादि द्रव्यक-

---

ज्ञान अज्ञानभावको दूर कर ज्ञानरूप होवे अर्थात् जिसकारण ज्ञानमें भाव अभाव ये दो अवस्थायें होती हैं वे तो मिट जांय और ज्ञान पूर्ण स्वभावको प्राप्त होजाय । यह प्रार्थना है ॥ ३५६ से ३६५ तक ॥

आगे कहते हैं कि रागद्वेष मोहसे दर्शन ज्ञान चारित्रका घात होता है सो दर्शनज्ञान चारित्र पुद्गलद्रव्यमें तो नहीं है आत्माहीमें दर्शन ज्ञान चारित्र है और आत्मामे ही अज्ञानसे रागद्वेष मोह हैं सो अज्ञानसे अपना ही घात होता है ऐसा निर्णय करते हैं;—[**दर्शनज्ञानचारित्रं**] दर्शन ज्ञान चारित्र है वे [**अचेतने विषये तु**] अचेतन विषयोंमें तो [**किंचिदपि नास्ति**] कुछ भी नहीं है [**तस्मात्**] इसलिये [**तेषु विषयेषु**] उन विषयोंमें [**चेतयिता**] आत्मा [**किं हंति**] क्या घात करे? घातनेको कुछ भी नहीं । [**दर्शनज्ञानचारित्रं**] दर्शन ज्ञान चारित्र [**अचेतने कर्मणि तु**] अचेतन कर्ममे [**किंचिदपि नास्ति**] कुछ भी नहीं हैं । [**तस्मात्**] इसलिये [**तत्र कर्मणि**] उस कर्ममे [**चेतयिता**] आत्मा [**किं हंति**] क्या घात करे? कुछ भी घातनेको नहीं [**दर्शनज्ञानचारित्रं**] दर्शन ज्ञान चारित्र [**अचेतने काये तु**] अचेतन कायमें [**किंचिदपि नास्ति**] कुछ भी नहीं है [**तस्मात्**] इसलिये [**तेषु कायेषु**] उन कायोंमें [**चेतयिता**] आत्मा [**किं हंति**] क्या घाते? कुछ भी घातनेको नहीं । [**घातः**] घात [**ज्ञानस्य दर्शनस्य तथा चारित्रस्य**] ज्ञानका दर्शनका तथा चारित्रका [**भणितः**]

---

१ सूत्रसप्तकं पाठोऽयं क. पुस्तके ।

णाणस्स दंसणस्स य भणिओ घाओ तहा चरित्तस्स ।
णवि तहिं पुग्गलदव्वस्स कोऽवि घाओ उ णिद्दिट्ठो ॥ ३६९ ॥
जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु ।
तह्मा सम्माइट्ठिस्स णत्थि रागो उ विसएसु ॥ ३७० ॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा ।
एएण कारणेण उ सद्दादिसु णत्थि रागादि ॥ ३७१ ॥

दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने विषये ।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तेषु कायेषु ॥ ३६६ ॥

येषु औदारिकादिपंचकायेषु । कथंभूतेषु तेषु ? अचेतनेषु । तस्मात्किं घातयते चेतयिता आत्मा तेषु जडस्वरूपविषयकर्मकायेषु ? न किमपि । किंच शब्दादिपंचेंद्रियाभिलापरूपो ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मबंधकारणभूतः कायममत्वरूपश्च योऽसौ मिथ्यात्वरागादिपरिणामो मनसि तिष्ठति तस्य घातः कर्तव्यः ते च शब्दादयो रागादीना बहिरंगकारणभूतास्त्याज्याः—इति भावार्थः । तस्यैव पूर्वोक्तगाथात्रयस्य विशेषविवरण करोति—तद्यथा—**णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स** शब्दादिपंचेंद्रियाभिलापरूपेण कायममत्वरूपेण वा ज्ञानावरणादिकर्मबंधनिमित्तमनंतानुबंध्यादिरागद्वेषरूपं यन्मनसि मिथ्याज्ञान तिष्ठति तस्य मिथ्याज्ञानस्य निर्विकल्पसमाधिप्रहरणेन सर्वज्ञैर्घातो भणितः न केवलं मिथ्याज्ञानस्य मिथ्यादर्शनस्य च । तथैव मिथ्यात्वचारित्रस्य च **णवि तह्मि कोवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो** नच

कहा है [**तत्र**] वहां [**पुद्गलद्रव्यस्य तु**] पुद्गल द्रव्यका तो [**कोपि घातः**] कुछ भी घात [**नापि निर्दिष्टः**] नहीं कहा । [**ये केचित्**] जो कुछ [**जीवस्य गुणाः**] जीवके गुण हैं [**ते**] वे [**खलु**] निश्चयकर [**परेषु द्रव्येषु**] परद्रव्योंमें [**न संति**] नहीं हैं [**तस्मात्**] इसलिये [**सम्यग्दृष्टेः**] सम्यग्दृष्टिके [**विषयेषु**] विषयोंमें [**रागस्तु**] राग ही [**नास्ति**] नहीं है । [**रागः द्वेषः मोहः**] राग द्वेष मोह ये सब [**जीवस्यैव च**] जीवके ही [**अनन्यपरिणामाः**] एक (अभेद) रूप परिणाम हैं [**एतेन कारणेन तु**] इसी कारण [**रागादयः**] रागादिक [**शब्दादिषु**] शब्दादिकोंमें [**न संति**] नहीं हैं ॥

टीका—निश्चयकर जो जिसमें होता है वह भी उसके घात होनेसे घाता जाता है । जैसे दीपकमें प्रकाश है सो दीपकके घात होनेसे प्रकाश भी हना जाता है । और जिसमें जो है उसके घात होनेसे उस आधारका भी घात होता है जैसे प्रकाशका घात होनेसे दीपक भी हना जाता है । जो जिसमें नहीं है वह उसके घात होनेसे नहीं हना जाता जैसे घटका घात होनेसे दीपक नहीं हना जाता । तथा जिसमें जो नहीं है वह उसके घात होनेसे नहीं हना जासकता । जैसे घड़ेमें दीपकका घात होनेसे घड़ा नहीं

दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने कर्मणि ।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तेषु कर्मसु ॥ ३६७ ॥
दर्शनज्ञानचरित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने कायेषु ।
तस्मात् किं हंति चेतयिता तेषु कायेषु ॥ ३६८ ॥
ज्ञानस्य दर्शनस्य भणितो घातस्तथा चरित्रस्य ।
नापि तत्र पुद्गलद्रव्यस्य कोऽपि घातस्तुनिर्दिष्टः ॥ ३६९ ॥
जीवस्य ये गुणाः केचिन्न संति खलु ते परेषु द्रव्येषु ।
तस्मात्सम्यग्दृष्टेर्नास्ति रागस्तु विषयेषु ॥ ३७० ॥
रागो द्वेषो मोहो जीवस्यैव चानन्यपरिणामाः ।
एतेन कारणेन तु शब्दादिषु न संति रागादयः ॥ ३७१ ॥

चेतने शब्दादिविषयकर्मकायरूपे पुद्गलद्रव्ये कोऽपि घातो निर्दिष्टः । किं च यथा घटाधारभूते हते सति घटो हतो न भवति तथा रागादिनिमित्तभूते शब्दादिपंचेंद्रियहतेऽपि सति मनसि गता रागादयो हता न भवंति नचान्यस्य घाते कृते सत्यन्यस्य घातो भवति । कस्मात् ? अतिप्रसंगादिति भावः। **जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु** यस्माज्जीवस्य ये केचन सम्यक्त्वादयो गुणास्ते परेषु परद्रव्येषु शब्दादिविषयेषु न सति खलु स्फुटं **तह्मा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसयेसु** तस्मात्कारणान्निर्विषयस्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखतृप्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विषयेषु रागो नास्तीति **रागो दोसो मोहो जीवस्स दु जे अणण्ण-**

घाता जाता । इस न्यायसे कहते हैं कि आत्माके धर्म दर्शन ज्ञान चारित्र है वे पुद्गलद्रव्यके घात होनेपर भी नहीं घाते जाते तथा दर्शन ज्ञान चारित्रका घात होनेपर भी पुद्गल द्रव्य भी नहीं घाता जाता । इसतरह दर्शन ज्ञान चारित्र है वे पुद्गलद्रव्यमें नहीं हैं । जो ऐसे न हो तो दर्शन ज्ञान चारित्रका घात होनेसे पुद्गलद्रव्यका घात अवश्य हो जावे और पुद्गलद्रव्यका घात होनेसे दर्शन ज्ञान चारित्रका घात अवश्य हो जावेगा । जिस लिये ऐसा है इसी लिये आचार्य कहते हैं कि जो कुछ जीवद्रव्यके गुण हैं वे सभी परद्रव्योंमें नहीं हैं। ऐसे पुद्गलको अच्छीतरह हम देखते हैं । यदि ऐसा न हो तो यहांपर भी जीवके गुणका घात होनेसे पुद्गलद्रव्यका घात अवश्य होना चाहिये और पुद्गलद्रव्यका घात होनेसे जीवगुणका घात अवश्य होना चाहिये । सो ऐसा होता नहीं । अब विचारते हैं कि ऐसा होनेपर सम्यग्दृष्टिके विषयोंमें राग किस हेतुसे होता है ? वहां कहते हैं कि किसी हेतुसे भी नहीं होता । तब पूछते हैं कि रागके उपजनेकी कौनसी खानि है ? वहां कहते हैं कि रागद्वेष मोह हैं वे जीवके ही अज्ञानमय परिणाम हैं । यह अज्ञान ही रागादिकके उपजनेकी खानि है । क्योंकि विषय है वे परद्रव्य हैं उनमे रागादिक अज्ञानमय परिणाम नहीं है । जब अज्ञानका अभाव

यद्धि यत्र भवति तत्तद्धाते हन्यत एव यथा प्रदीपघाते प्रकाशो हन्यते । यत्र च यद्भवति तत्तद्घाते हन्यते यथा प्रकाशघाते प्रदीपो हन्यते । यत्तु यत्र न भवति तत्तद्घाते न हन्यते यथा घटप्रदीपघाते घटो न हन्यते । तथात्मनो धर्मा ज्ञानदर्शनचारित्राणि पुद्गलद्रव्यघातेऽपि न हन्यते, नच दर्शनज्ञानचारित्राणां घातेऽपि पुद्गलद्रव्यं हन्यते, एवं दर्शनज्ञानचारित्राणि पुद्गलद्रव्ये न भवतीत्यायाति अन्यथा तद्घाते पुद्गलद्रव्यघातस्य, पुद्गलद्रव्यघाते तद्घातस्य दुर्निवारत्वात् । यत एवं ततो ये यावतः केचनापि जीवगुणास्ते सर्वेऽपि परद्रव्येषु न संतीति सम्यक् पश्यामः । अन्यथा अत्रापि जीवगुणघाते पुद्गलद्रव्यघातस्य पुद्गलद्रव्यघाते जीवगुणघातस्य च दुर्निवारत्वात् । यद्येवं तर्हि कुतः सम्यग्दृष्टेर्भवति रागो विषयेषु ? न कुतोऽपि । तर्हि रागस्य कतरा खानिः रागद्वेषमोहादि जीवस्यैवाज्ञानमयाः परिणामास्ततः परद्रव्यत्वादिविषयेषु न संति,

---

परिणामा रागद्वेषमोहा यस्मादज्ञानिजीवस्याशुद्धनिश्चयेनाभिन्नपरिणामाः । **एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी** तेन कारणेन शब्दादिमनोज्ञामनोज्ञपचेंद्रियविषयेष्वचेतनेषु यद्यप्यज्ञानी जीवो भ्रांतिज्ञानेन शब्दादिषु रागादीन् कल्पयत्यारोपयति तथापि शब्दादिषु

होवे तब आत्मा सम्यग्दृष्टि होवे तभी उसमें रागादिक भी नहीं होसकते । इसतरह वे रागादिक विषयोंमें न होते हुए सम्यग्दृष्टिके न होनेसे नहीं होते ॥ **भावार्थ**—दर्शन ज्ञान चारित्र आदि जितने जीवके गुण है वे अचेतन पुद्गलद्रव्यमे नहीं हैं । इसलिये आत्माके अज्ञानमय परिणामसे ही राग द्वेष मोह होते हैं उनसे अपने ही दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुण घाते जाते हैं और वे राग द्वेष मोह जीवके ही अस्तित्वमे अज्ञानसे उत्पन्न होते है । जब अज्ञानका अभाव हो तब सम्यग्दृष्टि हो तब वे नहीं उत्पन्न होते । ऐसा होनेपर शुद्ध द्रव्यकी दृष्टिमे पुद्गलमें भी रागद्वेष मोह नहीं है और सम्यग्दृष्टि जीवमे भी नहीं है । इसतरह दोनोंमें ही न होते ये नहीं ही है । तथा पर्याय दृष्टिमें जीवके अज्ञान अवस्थामें हैं ऐसा जानना ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २१८ वां काव्य कहते है—**रागद्वेषा** इत्यादि । **अर्थ**—इस आत्मामे ज्ञान है वही अज्ञान भावसे रागद्वेषरूप परिणमता है । और वे रागादिक वास्तवमें स्थायि दृष्टिकर देखे जांय तो कुछ भी नहीं है द्रव्यरूप जुदे पदार्थ नहीं हैं । इसलिये आचार्य प्रेरणा करते है कि जो सम्यग्दृष्टि है वह तत्वदृष्टिकर उनको प्रकट देख नाश करे जिससे कि पूर्ण प्रकाशरूप अचल दीप्तिवाली स्वाभाविक ज्ञानज्योति प्रकाशित हो ॥ **भावार्थ**—रागद्वेष जुदे द्रव्य नहीं है जीवके अज्ञानभावसे होते हैं । इसलिये सम्यग्दृष्टि होके तत्त्वदृष्टिकर देखो तो कुछ भी वस्तु नहीं । इसतरह देखनेसे घातिकर्मका नाश होके केवलज्ञान उत्पन्न होता है ॥

---

1 आत्मधर्मघाते ।

अज्ञानाभावात्सम्यग्दृष्टौ तु न भवंति । एवं ते विषयेष्वसंतः सम्यग्दृष्टेर्न भवंतो न भवंत्येव । "रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात् तौ वस्तुत्वं प्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित् । सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटंतो ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ॥ २१८ ॥ रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या नान्यद् द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि । सर्वद्रव्योत्पत्तिरंतश्चकास्ति व्यक्तात्यंतं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥ २१९ ॥" ॥ ३६६-३७१ ॥

अण्णदविएण अण्णदवियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ ।
तह्मा उ सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ॥ ३७२ ॥

अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यस्य न क्रियते गुणोत्पादः ।
तस्मात्तु सर्वद्रव्याण्युत्पद्यंते स्वभावेन ॥ ३७२ ॥

रागादयो न संति । कस्मात् ? शब्दादीनामचेतनत्वात् । ततःस्थितं तावदेव रागद्वेषद्वयमुदयते वहिरात्मनो यावन्मनसि त्रिगुप्तिरूपं स्वसंवेदनज्ञानं नास्ति । इति गाथाषट्कं गतं ॥३६६-३७१॥ एवमेतदायाति शब्दादींद्रियविषया अचेतनाश्चेतना रागाद्युत्पत्तौ निश्चयेन कारणं न भवति,—**अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो** अन्यद्रव्येण वहिरंगनिमित्तभूतेन कुंभकारादिनाऽन्यद्रव्यस्योपादानरूपस्य मृत्तिकादेर्न क्रियते । स कः ? चेतनस्याचेत-

---

आगे कहते हैं कि अन्यद्रव्यकर अन्यद्रव्यके गुण नहीं उपजाये जाते । उसकी सूचनाका २१९ वां काव्य है—**रागद्वेषो** इत्यादि । **अर्थ**—रागद्वेषका उपजानेवाला तत्त्वदृष्टिकर देखो तो अन्य द्रव्य कुछ भी नहीं दीखता, चेतनके ही परिणाम हैं । क्योंकि यह न्याय है कि जो सब द्रव्योंकी उत्पत्ति है सो अपने ही निजस्वभावमें अंतरंगमें अत्यंत प्रगटरूप शोभती है । अन्य द्रव्यमें अन्यके गुणपर्यायोंकी उत्पत्ति नहीं है ॥ ३६६ से ३७१ तक ॥

आगे इस अर्थको गाथामें कहते हैं,—[**अन्यद्रव्येण**] अन्यद्रव्यकर [**अन्यद्रव्यस्य**] अन्यद्रव्यके [**गुणोत्पादः**] गुणका उत्पाद [**न क्रियते**] नहीं किया जासकता [**तस्मात्तु**] इसलिये यह सिद्धांत है कि [**सर्वे द्रव्याणि**] सभी द्रव्य [**स्वभावेन**] अपने अपने स्वभावसे [**उत्पद्यंते**] उपजते हैं ॥ **टीका**—परद्रव्य जीवद्रव्यके रागादिक उपजाता है ऐसी आशंका नहीं करना । क्योंकि अन्य द्रव्यकर अन्यद्रव्यके गुणके उत्पाद करनेका अयोग है । सब द्रव्योंमें स्वभावसे ही उत्पाद है । यही दृष्टांतसे दिखलाते हैं—मृत्तिका है वह कुंभभावकर उपजती हुई क्या कुंभकारके स्वभावकर उपजती है या मृत्तिका स्वभावकर ? इसतरह दो पक्ष हैं । वहां जो कहो कि कुंभकारके स्वभावकर उपजती है तो कुंभके करनेके अहंकारसे भरे हुए पुरुषकर आ-

न च जीवस्य परद्रव्यं रागादीन्युत्पादयतीति शक्यं—अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यगुणोत्पादकरणस्यायोगात् । सर्वद्रव्याणां स्वभावेनैवोत्पादात् । तथाहि—मृत्तिका कुंभभावेनोत्पद्यमाना किं कुंभकारस्वभावेनोत्पद्यते किं मृत्तिकास्वभावेन ? यदि कुंभकारस्वभावेनोत्पद्यते तदा कुंभकरणाहंकारनिर्भरपुरुषाधिष्ठितव्यापृतकरपुरुषशरीराकारः कुंभः स्यात्, नच तथास्ति द्रव्यांतरस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्यादर्शनात् । यद्येवं तर्हि मृत्तिका कुंभकारस्वभावेन नोत्पद्यते किंतु मृत्तिकास्वभावेनैव, स्वस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्य

नरूपेण, अचेतनस्य चेतनरूपेण वा चेतनाचेतनगुणघातो विनाशो न क्रियते यस्मात् । **तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण** तस्मात्कारणान्मृत्तिकादिसर्वद्रव्याणि कर्तृणि घटादिरूपेण जायमानानि स्वकीयोपादानकारणेन मृत्तिकादिरूपेण जायते नच कुंभकारादिबहिरंगनिमित्तरूपेण ।

श्रयरूप तथा जिसमें हस्त व्यापाररूप है ऐसे पुरुषके शरीरके आकार घड़ा होना चाहिये अर्थात् कुंम्हारके शरीरके आकार घडा बनना चाहिये । सो ऐसा होता नहीं । क्योंकि अन्य द्रव्यके स्वभावकर अन्यद्रव्यके परिणामका उपजना नहीं देखते । यदि ऐसा है तो मृत्तिका कुंभकारके स्वभावकर तो नहीं उपजती । तो किसतरह उपजती है ? मृत्तिका स्वभावकर ही उपजती है क्योंकि अपने स्वभावकर ही द्रव्यके परिणामका उत्पाद देखा जाता है । ऐसा होनेपर मृत्तिकाको स्वभावके नहीं उल्लंघन करनेसे कुंभकार घड़ेको उत्पन्न करनेवाला नहीं है । मट्टी ही कुंभकारके स्वभावको नहीं स्पर्शती अपने ही स्वभावकर कुंभभावसे उत्पन्न होती है । इसीतरह सब द्रव्य अपने परिणामरूप पर्यायकर उपजते हैं । वे क्या निमित्तभूत अन्य द्रव्यके स्वभावकर उपजते हैं या अपने स्वभाव ही कर उपजते हैं ? ऐसी दो पक्ष पूछीं । उनमेंसे यदि कहो कि निमित्तभूत अन्यद्रव्यके स्वभावकर उपजते हैं तो निमित्तभूत परद्रव्यके आकार उसका परिणाम होना चाहिये । ऐसा होता नहीं, क्योंकि अन्यद्रव्यके स्वभावकर अन्यद्रव्यके परिणामके उपजनेका अदर्शन है नहीं देखा जाता । जो ऐसा है तो सभी द्रव्य निमित्तभूत परद्रव्यके स्वभावकर नहीं उपजते । तो किसतरह उपजते हैं ? अपने स्वभावकर ही उपजते है । क्योंकि अपने स्वभावकर ही सब द्रव्योंके परिणामका उत्पाद देखा जाता है । ऐसा होनेपर सभी द्रव्योंके निमित्तभूत जो अन्यद्रव्य वे अन्यद्रव्यके परिणामके उपजानेवाले नहीं हैं । सभी द्रव्य निमित्तभूत अन्यद्रव्योंके स्वभावको नहीं स्पर्शते अपने स्वभावकर अपने परिणामभावकर उपजते है । इसकारण आचार्य कहते हैं कि जो परद्रव्य है वह जीवके रागादिकके उपजानेवाला नहीं दीखता जिसपर हम कोप करें ॥ **भावार्थ**—आत्माके रागादिक उपजते हैं वे अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं । निश्चयनयकर विचारो तो इनके उपजानेवाला अन्यद्रव्य नहीं है । अन्यद्रव्य इनका निमित्त-

दर्शनात् । एवं च सति स्वस्वभावानतिक्रमान्न कुंभकारः कुंभस्योत्पादक एव मृत्तिकैव कुंभकारस्वभावमस्पृशंती स्वस्वभावेनोत्पद्यते । एवं सर्वाण्यपि द्रव्याणि स्वपरिणामपर्यायेणोत्पद्यमानानि किं निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावेनोत्पद्यंते किं स्वस्वभावेन ? यदि निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावेनोत्पद्यंते तदा निमित्तभूतपरद्रव्याकारस्तत्परिणामः स्यात्, नच तथास्ति द्रव्यांतरस्वभावेन द्रव्यपरिणामोत्पादस्यादर्शनात् । यद्येवं तर्हि न सर्वद्रव्याणि निमित्तभूतपरस्वभावेनोत्पद्यंते किंतु स्वस्वभावेनैव, द्रव्यपरिणामोत्पादस्य दर्शनात् । एवं च सति सर्वद्रव्याणां निमित्तभूतद्रव्यांतराणि स्वपरिणामस्योत्पादकान्येव सर्वद्रव्याण्येव निमित्तभूतद्रव्यांतरस्वभावमस्पृशंति स्वस्वभावेन स्वपरिणामभावेनोत्पद्यंते । अतो न परद्रव्यं जीवस्य रागादीनामुत्पादकमुत्पश्यामो यस्मै कुप्यामः । "यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः

कस्मात् इति चेत् । उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति यस्मात् । तेन किं सिद्धं ? यद्यपि पंचेंद्रियविषयरूपेण शब्दादीनां बहिरंगनिमित्तभूतेनाज्ञानिजीवस्य रागादयो जायंते तथापि जीवस्वरूपा एव चेतना न पुनः शब्दादिरूपा अचेतना भवंतीति भावार्थः । एवं कोऽपि प्राथ-

---

मात्र है । क्योंकि अन्य द्रव्यके अन्यद्रव्य गुणपर्याय उपजाते नहीं यह नियम है । इसलिये जो ऐसा मानते हैं कि मेरे रागादिक परद्रव्य ही उपजाता है ऐसा एकांत करते है वे नयविभागमें समझे नहीं मिथ्यादृष्टि है । ये रागादिक जीवके सत्त्वमें उपजते है परद्रव्य तो निमित्तमात्र है । ऐसा मानना सम्यग्ज्ञान है । इसकारण आचार्य ऐसा कहते हैं कि हम रागद्वेषकी उत्पत्तिमें अन्यद्रव्यपर क्यों कोप (गुस्सा) करें । रागद्वेषका उपजना अपना ही अपराध है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २२० वां काव्य कहते हैं—**यदिह** इत्यादि । **अर्थ**—जो इस आत्मामें रागद्वेषरूप दोषकी उत्पत्ति है वहां परद्रव्यका कुछ भी दोष नहीं है । उस आत्मामें यह आप अपराधी फैलता है । यह कथन प्रगट होवे और यह अज्ञान भी अस्त हो जाय । क्योंकि मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं । ऐसा मानना सम्यग्ज्ञान है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानी जीव रागद्वेषकी उत्पत्ति परद्रव्यसे मान परद्रव्यपर कोप करता है कि मेरे परद्रव्य रागद्वेष उपजाता है उसको दूर करूं । उसके समझानेको कहते हैं कि रागद्वेषकी उत्पत्ति अज्ञानसे अपनेमे ही होती है वे अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं । सो यह अज्ञान नाशको प्राप्त होवे और सम्यग्ज्ञान प्रगट हो । आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा अनुभव करो । रागद्वेषके उत्पन्न होनेमें परद्रव्यको उपजानेवाला मान उसपर कोप मत करो ऐसा उपदेश है ॥ अब इसी अर्थके दृढ करनेको अगले कथनकी सूचनिकारूप २२१ वां काव्य कहते है—**रागजन्मनि** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष रागकी उत्पत्तिमें परद्रव्यका ही निमित्तपना मानते है अपना कुछ भी हेतु नहीं मानते वे मोहरूप नदीके पार नहीं उतरे है,

---

१ एव च सति मृत्तिकाया. स्वस्वभावेन कुंभभावो नोपपद्यते इति ख. पुस्तके पाठोऽधिकः ।

कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र । स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥ २२० ॥ रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयंति ये तु ते । उत्तरंति न हि मोहवाहिनी शुद्धबोधविधुरांधबुद्धयः ॥ २२१ ॥" ॥ ३७२ ॥

णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुयाणि ।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ॥ ३७३ ॥

मिकशिष्यचित्तस्थानुरागादीन्न जानाति बहिरंगशब्दादिविषयाणां रागादिनिमित्तानां घात करोमीति निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानाभावाच्चिंतयति तस्य संबोधनार्थं पूर्वं गाथाषट्केन सह सूत्रसप्तकं गतं ॥३७२॥ अथ व्यवहारेण कर्तृकर्मणोर्भेदः, निश्चयेन पुनर्यदेव कर्तृ तदेव कर्मेत्युपदिशति,— **रूसदि तूसदि य** एकेंद्रियविकलेंद्रियादिदुर्लभपरंपराक्रमेणातीतानंतकाले दृष्टश्रुतानुभूतमिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामाधानतया अत्यंतदुर्लभेन कथंचित्कालादिलब्धिवशेन मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनां तथैव चरित्रमोहनीयस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति षड्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थादिश्रद्धानज्ञानरागद्वेषपरिहाररूपेण भेदरत्नत्रयात्मकव्यवहारमोक्षमार्गसंज्ञेन व्यवहारकारणसमयसारेण साध्येन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरू-

---

क्योंकि शुद्धनयका विषयभूत जो आत्माका स्वरूप उसके ज्ञानकर रहित अंध बुद्धिवाले हैं ॥ **भावार्थ**—शुद्धनयका विषय आत्मा अनंत शक्तिको लिये चैतन्य चमत्कारमात्र नित्य एक है । उसमें यह स्वच्छता है कि जैसा निमित्त मिले वैसे आप परिणमता है । ऐसा नहीं कि जो जैसा परिणमावे वैसे परिणमे अपना कुछ पुरुषार्थ नहीं हो । ऐसे आत्माके स्वरूपका जिनको ज्ञान नहीं है वे ऐसा मानते हैं कि आत्माको परद्रव्य जैसा परिणमावे वैसे परिणमता है । ऐसा माननेवाले मोहकी सेना अथवा नदी रागद्वेषादि परिणाम उनसे पार नहीं होते उनके रागद्वेष नहीं मिटता । जिसकारण अपना पुरुषार्थ उनके होनेमें होवे तो उनके मेटनेमें भी होना चाहिये । और परके ही करनेसे हो तो वह किया ही करे अपना मेटना किस कामका ? इसकारण अपना किया होता है अपना मेंटा मिटता है इसतरह कथंचित् मानना सम्यग्ज्ञान है ॥ ३७२ ॥

आगे इस कथनको प्रगट करते हैं कि जो स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दरूप पुद्गल परिणमें हैं वे इंद्रियोंकर आत्माके जाननेमें आते हैं तौ भी वे जड़ हैं आत्माको कुछ नहीं कहते कि हमको ग्रहण करो । आत्मा ही अज्ञानी होके उनको भले बुरे मान रागी द्वेषी होता है ऐसा गाथामें कहते हैं;—[**बहुकानि**] बहुत प्रकारके [**निंदितसंस्तुतवचनानि**] निंदा और स्तुतिके वचन हैं उनरूप [**पुद्गलाः परिणमंति**] पुद्गल परिणमते हैं [**तानि**] उनको [**श्रुत्वा**] सुनकर [**अहं भणितः**] यह

पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिओ किंचिवि किं रूससि अबुद्धो ॥ ३७४ ॥

पाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपेणानंतकेवलज्ञानादिचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसारेण विना खल्वज्ञानिजीवो रुष्यति तुष्यति च । किं कृत्वा ? **सुणिऊण** श्रुत्वा । पुनः पश्चात् केन रूपेण ? **अहं भणिदो** अनेनाहं भणित इति । कानि श्रुत्वा ? **णिंदिदसंथुदवयणाणि** निंदितसंस्तुतवचनानि **ताणि** तानि । किंविशिष्टानि ? **पोग्गला परिणमंति बहुगाणि** भाषावर्गणायोग्यपुद्गलाः कर्तारो यानि कर्मतापन्नानि बहुविधानि परिणमति । ज्ञानी पुनर्व्यवहारमोक्षमार्गं निश्चयमोक्षमार्गभूतं पूर्वोक्तद्विविधकारणसमयसारं ज्ञात्वा बहिरंगेष्टानिष्टविषये रागद्वेषौ न करोतीति भावार्थः । **पुग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं** भाषावर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यं कर्तृ त्रियस्वेति जीवस्त्वमिति रूपेण निंदितसंस्तुतशब्दरूपत्वपरिणत **तस्स जदि गुणो अण्णो** तस्य पुद्गलद्रव्यस्य शुद्धात्मस्वरूपाद्यदि गुणोऽन्यो भिन्नो जडरूपः, तर्हि जीवस्य किमायातं ? न किमपि । तस्यैवाज्ञानिजीवस्य पूर्वोक्तव्यवहारकारणसमयसारनिश्चयसमयसारकारणरहितस्य संबोधनं क्रियते । कथं ? इति चेत्, यस्मान्निंदित-

---

अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मुझको कहा है इसलिये [**रुष्यति**] ऐसा मान रोस (गुस्सा) करता है [**च पुनः**] और [**तुष्यति**] संतुष्ट होता है । [**शब्दत्वपरिणतं**] शब्दरूप परिणत हुआ [**पुद्गलद्रव्यं**] पुद्गलद्रव्य है [**तस्य गुणः**] सो यह पुद्गलद्रव्यका गुण है [**अन्यः**] अन्य है [**तस्मात्**] इसलिये हे अज्ञानी जीव [**त्वं किंचिदपि न भणितः**] तुझको तो कुछ भी नहीं कहा [**अबुद्धः**] तू अज्ञानी हुआ [**किं रुष्यसि**] क्यो रोस करता है ? । [**अशुभः वा शुभः**] अशुभ अथवा शुभ [**शब्दः**] शब्द [**त्वां न भणति इति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां शृणु**] मुझको सुन [**च**] और [**श्रोत्रविषयं आगतं**] श्रोत्र इंद्रियके विषयमें आये हुए [**शब्दं**] शब्दके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड़ [**न एति**] नहीं प्राप्त होता । [**अशुभं शुभं वा**] अशुभ अथवा शुभ [**रूपं**] रूप [**त्वां इति न भणति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां पश्य**] तू मुझको देख [**च**] और [**चक्षुर्विषयं आगतं रूपं**] चक्षु इंद्रियके विषयमे आये हुए रूपके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने प्रदेशोंको छोड़ [**न एति**] नहीं प्राप्त होता । [**अशुभः वा शुभः**] अशुभ अथवा शुभ [**गंधः**] गंध [**त्वां इति न भणति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां जिघ्र**] तू मुझको सूंघ [**च**] और [**घ्राणविषयं आगतं गंधं**] घ्राण इंद्रियके विषयमें आये हुए

असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥ ३७८ ॥
असुहं सुहं च रूवं ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव।
णय एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं ॥ ३७६ ॥

स्तुतवचनेन पुद्गलाः परिणमंति **तह्मा ण तुमं भणिदो किंचिवि** तस्मात्कारणात्त्वं न भणितः किंचिदपि **किं रूससे अबुहो** किं रुष्यसे अबुध ! बहिरात्मन्निति। स चैवाज्ञानिजीवो व्यवहारनिश्चयकारणसमयसाराभ्यां रहितः पुनरपि सत्रोध्यते। हे अज्ञानिन् ! शब्दरूपगंधरसस्पर्शरूपा मनोज्ञामनोज्ञपंचेंद्रियविषयाः कर्तारः, त्वा कर्मतापन्न किमपि न भणंति। किं न भणंति ? हे देवदत्त ! मा कर्मतापन्न शृणु, मा पश्य, मा जिघ्र, मा स्वादय, मा स्पृशेति। पुनरप्यज्ञानी ब्रूते एते शब्दादयः कर्तारो मा किमपि न भणंति, परं किंतु मदीयश्रोत्रादिविषयस्थानेषु समागच्छंति ? आचार्या उत्तरमाहुः—हे मूढ ! नचायाति विनिर्गृहीतु—एते शब्दादिपंचेंद्रियविषयाः। कथंभूताः सतः ? श्रोत्रेंद्रियादिस्वकीयस्वकीयविषयभावमागच्छतः। कस्मात् ? इति चेत् वस्तुस्वभावादिति। यस्तु परमतत्त्वज्ञानी जीवः स पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयकारणसमय-

---

गंधके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ [**न एति**] नहीं प्राप्त होता। [**अशुभः वा शुभः रसः**] अशुभ वा शुभ रस [**त्वां इति न भणति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां रसय**] मुझको तू आस्वाद कर [**च**] और [**रसनविषयं आगतं तु रसं**] रसना इंद्रियके विषयमे आये रसके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ [**न एति**] नहीं प्राप्त होता। [**अशुभः वा शुभः स्पर्शः**] अशुभ वा शुभ स्पर्श [**त्वां इति न भणति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां स्पृश**] तू मुझको स्पर्श (छूले) [**च**] और [**कायविषयं आगतं स्पर्शं**] स्पर्शन इंद्रियके विषयमे आये हुए स्पर्शके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ [**न एति**] नहीं प्राप्त होता। [**अशुभः वा शुभः**] अशुभ वा शुभ [**गुणः**] द्रव्यका गुण [**त्वां इति न भणति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां बुध्यस्व**] तू मुझको जान [**च**] और [**बुद्धिविषयं आगतं तु गुणं**] बुद्धिके विषयमें आये हुए गुणके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोडकर [**न एति**] नहीं प्राप्त होता। [**अशुभं वा शुभं द्रव्यं**] अशुभ वा शुभ द्रव्य [**त्वां इति न भणति**] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [**मां बुध्यस्व**] तू मुझे जान [**च**] और [**बुद्धिविषयं आगतं द्रव्यं**] बुद्धिके विषयमे आये हुए द्र-

असुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं गंधं ॥ ३७७ ॥
असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥ ३७८ ॥

साराभ्यां बाह्याभ्यतररत्नत्रयलक्षणाभ्या सहितः सन् मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयेषु समागतेषु रागद्वेषौ न करोति, किंतु स्वस्थभावेन शुद्धात्मस्वरूपमनुभवतीति भावार्थः । यथा पचेंद्रियविषये मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियसंकल्पवशेन रागद्वेषौ करोत्यज्ञानी जीवः, तथा परकीयगुणपरिच्छेदरूपे परद्रव्यपरिच्छेद्यरूपे च मनोविषयेऽपि रागद्वेषौ करोति तस्याज्ञानिजीवस्य पुनरपि संबोधनं क्रियते तद्यथा—परकीयगुणः शुभोऽशुभो वा चेतनोऽचेतनो वा । द्रव्यमपि परकीयकर्तृत्वं कर्मतापन्नं न भणति हे मनोबुद्धे हे अज्ञानिजनचित्त! मा कर्मतापन्नं बुध्यस्व जानीहि । अज्ञानी वदति—एवं न ब्रूते किंतु मदीयमनसि परकीयगुणो द्रव्यं वा परिच्छित्तिसंकल्परूपेण स्फुरति प्रतिभाति । तत्रोत्तरं दीयते—स चैव परकीयगुणः परकीयद्रव्य वा मनोबुद्धिविषयमागतं विनिर्गृहीतुं नायाति । कस्मात् ? ज्ञेयज्ञायकसंबंधस्य निषेधयितुमशक्यत्वात् इति हेतोः—यद्रागद्वे-

---

व्यके [**विनिर्ग्रहीतुं**] ग्रहण करनेको [**स एव**] वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ [**न एति**] नहीं प्राप्त होता । [**मूढः**] यह मूढ जीव [**एतत्तु ज्ञात्वा**] ऐसा जानकर भी [**उपशमं नैव गच्छति**] उपशम भावको नहीं प्राप्त होता [**च**] और [**परस्य विनिर्ग्रहमनाः**] परके ग्रहण करनेको मन करता है [**च**] क्योंकि [**स्वयं शिवां बुद्धिं अप्राप्तः**] आप कल्याणरूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान उसको नहीं प्राप्त हुआ है ॥ **टीका**—प्रथम दृष्टांत कहते हैं—जैसे कोई देवदत्त नामवाला पुरुष यज्ञदत्तनामा पुरुषको हाथ पकडकर बतलावे कि ये बाह्य पदार्थ घटपटादिक हैं इसीतरह दीपकको अपने प्रकाशनेमें प्रेरणा नहीं करता कि तू मुझको प्रकाश । और दीपक भी अपने स्थानको छोड़ चुंबकमें सूईकी तरह नहीं जा लगता अर्थात् जैसे चुंबक पाषाणको लोहेकी सूई अपना स्थान छोड़ जा लगती है उसतरह । तो क्या है ? वस्तुके स्वभावके उपजानेको दूसरेकर अशक्यपना है तथा परके उपजानेका भी असमर्थपना है । घटपटादिक समीप न होनेपर भी दीपक प्रकाशरूप है उसीतरह उनके समीप होनेपर अपने स्वरूपकर ही प्रकाशरूप है । अपने स्वरूपकर ही प्रकाशरूप हुए दीपकके वस्तुस्वभावसे ही विचित्र परिणतिको प्राप्त हुए मनोहर अमनोहर घटपटादि पदार्थ वे किंचिन्मात्र भी विकारके लिये नहीं कल्पना किये जाते । वैसा ही दार्ष्टांत है—जो बाह्य पदार्थ शब्द रूप गंध रस स्पर्श गुण द्रव्य हैं वे जैसे देवदत्त पुरुष यज्ञदत्त पुरुषको हाथ पकड़कर कहता है उसतरह नहीं कहते कि मुझको सुन मुझको देख मुझे सूंघ मुझे चाख मुझे स्पर्श कर मुझे जान । इसतरह अपने ज्ञानकर आत्माको नहीं

असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुससु मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥ ३७९ ॥
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं तु गुणं ॥ ३८० ॥
असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं दव्वं ॥ ३८१ ॥
एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छई मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो ॥ ३८२ ॥

निंदितसंस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमंति बहुकानि ।
तानि श्रुत्वा रुष्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः ॥ ३७३ ॥
पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गुणोऽन्यः ।
तस्मान्न त्वं भणितः किंचिदपि किं रुष्यस्यबुद्धः ॥ ३७४ ॥
अशुभः शुभो वा शब्दः न त्वां भणति शृणु मामिति स एव ।
नचैति विनिर्गृहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दं ॥ ३७५ ॥
अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामिति स एव ।
न चैति विनिर्गृहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपं ॥ ३७६ ॥

षकरणं तदज्ञानं । यस्तु ज्ञानी स पुनः पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयकारण समयसारं जानन् हर्षविषादौ न करोतीति भावार्थः **एवं तु** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिपंचेंद्रियविषयस्य परकीयगुणद्रव्यरूपस्य मनोविषयस्य वा, कथंभूतस्य ? **जाणिदव्वस्स** ज्ञातद्रव्यस्य पचेंद्रियमनोविषयभूतस्येत्यर्थः । तस्य पूर्वोक्तप्रकारेण स्वरूपं ज्ञात्वापि **उवसमेणैव गच्छदे मूढो** उपशमेनैव गच्छति मूढो बहिरात्मा स्वय । कथंभूतः ? **णिग्गहमणा** निग्रहमनाः निवारणबुद्धिः । कस्य सवधित्वेन ? **परस्स य** परस्य पंचेंद्रियमनोविषयस्य । कथंभूतस्य ? परकीयशब्दादिगुणरूपस्य । पुनरपि कथंभूतस्य ? स्वकीयविषयगागतस्य प्राप्तस्य । पुनरपि किं रूपश्चाज्ञानी जीवः । **सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो** स्वयं च शुद्धात्मसंवित्तिरूपां बुद्धिमप्राप्तः । वी-

---

प्रेरते । और आत्मा भी, जैसे चुंबक पाषाणकर खैंची लोहेकी सूई पाषाणमें लग जाती है उसतरह अपने स्थानके प्रदेशोंसे छूट उन पदार्थोंके जाननेको नहीं जाता । तो क्या है ? वस्तुके स्वभावके उपजानेको परकर अशक्यपना है तथा परके उपजानेका भी असमर्थपना है । जैसे शब्दादिकके समीप न होनेपर उनको आत्मा अपने स्वरूपकर ही जानता है उसीतरह उनको समीप होनेपर भी अपने स्वरूपकर उन्हे जानता है । तथा अपने स्वरूपकर ही शब्दादिको जाननेवाले आत्माके वे शब्दादिक वस्तु स्वभावसे

अशुभः शुभो वा गंधो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं घ्राणविषयमागतं गंधं ॥ ३७७ ॥
अशुभः शुभो वा रसो न त्वां भणति रसय मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु रसं ॥ ३७८ ॥
अशुभः शुभो वा स्पर्शो न त्वां भणति स्पृश मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं कायविषयमागतं तु स्पर्शं ॥ ३७९ ॥
अशुभः शुभो वा गुणो न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तु गुणं ॥ ३८० ॥
अशुभं शुभं वा द्रव्यं न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव ।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं द्रव्यं ॥ ३८१ ॥
एतत्तु ज्ञात्वा उपशमं नैव गच्छति मूढः ।
विनिर्ग्रहमनाः परस्य च स्वयं च बुद्धिं शिवामप्राप्तः ॥ ३८२ ॥

यथेह बहिरर्थो घटादिः, देवदत्तो यज्ञदत्तमिव हस्ते गृहीत्वा 'मां प्रकाशय' इति स्वप्रकाशने न प्रदीपं प्रयोजयति । नच प्रदीपोप्ययःकांतोपलकृष्टायःसूचीवत् स्वस्था-

---

तरागसहजपरमानंदरूपं शिवशब्दवाच्यं सुखं चाप्राप्त इति । किंच, यथायस्कांतोपलाकृष्टा सूची स्वस्थानात्प्रच्युत्यायस्कांतोपलपाषाणसमीपं गच्छति तथा शब्दादयश्चित्तक्षोभरूपविकृतिकरणार्थं जीवसमीपं न गच्छंति । जीवोऽपि तत्समीपं न गच्छति किं तु स्वस्थाने स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति । एवं वस्तुस्वभावे सत्यपि यदज्ञानी जीव उदासीनभाव मुक्त्वा रागद्वेषौ करोति तदज्ञानमिति । हे भगवन् पूर्वं बंधाधिकारे भणितं—"एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रायमादीहिं । राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादिएहिं भावेहिं ॥ १ ॥" इत्यादि रागादीनामकर्ता ज्ञानी, परद्रव्यजनिता रागादयः इत्युक्तं । अत्र तु स्वकीयबुद्धिदोषजनिता रागादयः परेषां दूषणं नास्तीति पूर्वापर-

---

ही विचित्र परिणतिको प्राप्त हुए हैं उनके विकारके लिये मनोहर तथा अमनोहर बाह्यपदार्थ किंचिन्मात्र भी नहीं कल्पना किये जाते । इसीप्रकार आत्मा दीपककी तरह परद्रव्यके प्रति नित्य ही उदासीन है । ऐसी ही वस्तुकी मर्यादा है । तौभी जो रागद्वेष उपजाता है वह अज्ञान है ॥ **भावार्थ**—आत्मा शब्दको सुनकर रूपको देखकर गंधको सूंघकर रसको आस्वादकर स्पर्शको स्पर्शकर गुणद्रव्यको जानकर भला बुरा मान रागद्वेष उपजाता है सो यह अज्ञान है । क्योंकि वे शब्दादिक तो जड़ पुद्गलद्रव्यके गुण हैं सो आत्माको कुछ कहते नहीं कि हमको ग्रहण करो । और आत्मा भी स्वयं अपने प्रदेशोंको छोड़ उनके ग्रहण करनेको उनमें जाता नहीं है । जैसे उनके समीप नहीं होनेपर जानता है वैसे ही समीप होनेपर भी जानता है । आत्माके वि-

नात्प्रच्युत्य तं प्रकाशयितुमायाति। किं तु वस्तुस्वभावस्य परेणोत्पादयितुमशक्यत्वात् परमुत्पादयितुमशक्यत्वाच्च यथा तदसन्निधाने तथा तत्संनिधानेऽपि स्वरूपेणैव प्रकाशते। स्वरूपेणैव प्रकाशमानस्य चास्य वस्तुस्वभावादेव विचित्रां परिणतिमासादयन् कमनीयोऽकमनीयो वा घटपटादिर्न मनागपि विक्रियायै कल्प्यते। तथा बहिरर्थः शब्दो रूपं गंधो रसः स्पर्शो गुणद्रव्ये च देवदत्तो यज्ञदत्तमिव हस्ते गृहीत्वा मां शृणु मां पश्य मां जिघ्र मां रसय मां स्पर्श मां बुध्यस्वेति स्वज्ञाने नात्मानं प्रयोजयति। नचात्माप्ययःकांतोपलकृष्टायःसूचीवत् स्वस्थानात्प्रच्युत्य तान् ज्ञातुमायाति। किंतु वस्तुस्वभावस्य परेणोत्पादयितुमशक्यत्वात् परमुत्पादयितुमशक्तत्वाच्च यथा तदसन्निधाने तथा तत्सन्निधानेऽपि स्वरूपेणैव जानीते। स्वरूपेण जानतश्चास्य वस्तुस्वभावादेव

विरोधः ? अत्रोत्तरमाह—तत्र बंधाधिकारव्याख्याने ज्ञानिजीवस्य मुख्यत्वात् ज्ञानी तु रागादिभिर्न परिणमति तेन कारणेन परद्रव्यजनिता भणिताः। अत्र चाज्ञानिजीवस्य मुख्यता स चाज्ञानी जीवः स्वकीयबुद्धिदोषेण परद्रव्यनिमित्तमात्रमाश्रित्य रागादिभिः परिणमति, तेन कारणेन परेषां शब्दादिपंचेंद्रियविषयाणां दूषणं नास्तीति भणितं। ततः कारणात् पूर्वापरविरोधो नास्ति इति

कारके लिये कुछ भी नहीं है। जैसे दीपक घटपटादिको प्रकाशता है उसीतरह आत्मा उनको जानता है ऐसा वस्तुका स्वभाव है। तो भी आत्मा रागद्वेष॰ उपजाता है यह अज्ञान ही है॥ अब इसी अर्थका कलशरूप २२२ वां काव्य कहते हैं—**पूर्णै** इत्यादि। **अर्थ**—यह ज्ञानी पूर्ण एक अच्युत शुद्ध (विकारसे रहित) ऐसे ज्ञानस्वरूप जिसकी महिमा है ऐसा है। ऐसा ज्ञानी ज्ञेय पदार्थोंसे कुछ भी विकारको नहीं प्राप्त होता। जैसे दीपक प्रकाशने योग्य घटपटादि पदार्थोंसे विकारको नहीं प्राप्त होता उसतरह। ऐसी वस्तुकी मर्यादाके ज्ञानकर रहित जिनकी बुद्धि है ऐसे अज्ञानी जीव अपनी स्वाभाविक उदासीनताको क्यों छोड़ते हैं और रागद्वेषमय क्यों होते हैं? ऐसा आचार्यने सोच किया है॥ **भावार्थ**—ज्ञानका स्वभाव ज्ञेयको जाननेका ही है। जैसे दीपकका स्वभाव घटपट आदिको प्रकाशनेका है। यह वस्तुस्वभाव है। ज्ञेयको जानने मात्रसे ज्ञानमें विकार नहीं होता। और जो ज्ञेयको जानकर भला बुरा मान आत्मा रागी द्वेषी विकारी होता है सो यह अज्ञान है। इसीसे आचार्यने सोच किया है कि वस्तुका स्वभाव तो ऐसा है पर यह आत्मा अज्ञानी होकर रागद्वेष रूप क्यों परिणमता है? अपनी स्वाभाविक उदासीनता अवस्थारूप क्यों नहीं रहता?। सो यह आचार्यका सोच करना युक्त (ठीक) है। क्योंकि जबतक शुभ राग है तबतक प्राणियोंको अज्ञानसे दुःखी देख करुणा उत्पन्न होती है तब सोच

विचित्रां परिणतिमासादयंतः कमनीया अकमनीया वा शब्दादयो बहिरर्था न मनागपि विक्रियायै कल्प्येरन्। एवमात्मा परं प्रति उदासीनो नित्यमेवेति वस्तुस्थितिः, तथापि यद्रागद्वेषौ तदज्ञानं। "पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयं। यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव। तद्वस्तुस्थितिबोधवंध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो रागद्वेषमयीं भवंति सहजां मुंचंत्युदासनितां ॥ २२२ ॥ रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्। दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चंचच्चिदर्चिर्मयीं विंदन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनां ॥ २२३ ॥" ॥ ३७३-३८२ ॥

एवं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गभूतं निश्चयकारणसमयसारव्यवहारकारणसमयसारद्वयमजानन् सन्नज्ञानी जीवः स्वकीयबुद्धिदोषेण रागादिभिः परिणमति। परेषां शब्दादीनां दूषणं नास्तीति व्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथादशकं गतं ॥ ३७३-३८२ ॥ अथ मिथ्यात्वरागादिपरिणतजीवस्याज्ञानचेतना केवलज्ञानादिगुणप्रच्छादकं कर्मबंधं जनयतीति प्रतिपादयति;—

भी होता है ॥ अब अगले कथनकी सूचनिकारूप २२३ वां काव्य कहते हैं— **रागद्वेष** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानी हैं वे रागद्वेषरूप विभाव उनकर रहित तेजवाले हैं। नित्य ही अपने चैतन्य चमत्कार मात्र स्वभावको स्पर्शनेवाले हैं। पूर्व किये जो समस्तकर्म और आगामी होंगे जो समस्त कर्म उनसे रहित हैं। तथा वर्तमान कालमें आया जो कर्मका उदय उससे भिन्न हैं। ऐसे ज्ञानी अतिशयकर अंगीकार किये चारित्रका जो विभव समस्त परद्रव्यका त्याग उसके बलसे ज्ञानकी सम्यक् प्रकार चेतनाको अनुभवते हैं। कैसी है ज्ञानचेतना? जो चमकती (जागती) चैतन्यरूप ज्योतिमयी है तथा अपने ज्ञानरूप रसकर जिसने तीन लोकको सींचा है ॥ **भावार्थ**—जिनका राग द्वेष गया और अपने चैतन्यस्वभावका अंगीकार हुआ तथा अतीत अनागत वर्तमान कर्मका ममत्व गया ऐसे ज्ञानी सब परद्रव्यसे जुदे होकर चारित्रको अंगीकार करते हैं। उसके बलसे कर्मचेतना और कर्मफल चेतनासे जुदी जो अपनी चैतन्यके परिणमन स्वरूप ज्ञानचेतना उसका अनुभव करते हैं। यहां तात्पर्य यह जानना कि पहले तो कर्मचेतना और कर्मफलचेतनासे भिन्न अपनी ज्ञानचेतनाका स्वरूप आगम अनुमान स्वसंवेदन प्रमाणसे जाने और उसका श्रद्धान (प्रतीति) दृढ करे। सो यह तो अविरत देशविरत प्रमत्त अवस्थामें भी होता है। जब अप्रमत्त अवस्था होती है तब अपने स्वरूपका ही ध्यान करता है उस समय ज्ञानचेतनाका जैसा श्रद्धान किया था उसमें लीन होता है। तब श्रेणी चढ केवलज्ञान उपजाय साक्षात् ज्ञानचेतनारूप होता है। ऐसा जानना ॥ ३७३ से ३८२ तक ॥

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥ ३८३ ॥
कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि वज्झइ भविस्सं ।
तत्तो णियत्तए जो सो पच्चक्खाणं हवइ चेया ॥ ३८४ ॥
जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया ॥ ३८५ ॥
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वइ णिच्चं य पडिक्कमदि जो ।
णिच्चं आलोचेयइ सो हु चरित्तं हवइ चेया ॥ ३८६ ॥

कर्म यत्पूर्वकृतं शुभाशुभमनेकविस्तरविशेषं ।
तस्मान्निवर्तयत्यात्मानं तु यः स प्रतिक्रमणं ॥ ३८३ ॥

णियत्तदे अप्पयं तु जो इहलोकपरलोकाकांक्षारूपख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षालक्षणनिदानबंधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनोत्पन्नशुभाशुभसकल्पविकल्परहिते शून्ये विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवनरूपाभेदरत्नत्रयात्मनिर्विकल्पपरमसमाधिसमुत्पन्नवीतरागसहजपरमानंदस्वभावसुखरसास्वादसमरसीभावपरिणामेन सालंबने भरितावस्थे केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादके कारणसमयसारे स्थित्वा यः कर्ता, आत्मानं कर्मतापन्नं निवर्तयति । कस्मात्सकाशात्[१] **कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं तत्तो** शुभाशुभमूलोत्तरप्रकृतिभेदेनानेकविस्तरविस्तीर्णं पूर्वकृतं यत्कर्म तस्मात् **सो प-**

अब इस अर्थको गाथामें कहते हैं, वहांपर अतीत कर्मसे ममत्व छोड़ना प्रतिक्रमण है, आगामी न करनेकी प्रतिज्ञा करे वह प्रत्याख्यान है, वर्तमान कर्म जो उदयमें आया है उसका ममत्व छोडे वह आलोचना है । ऐसा चारित्रका विधान है उसको कहते हैं;—[**पूर्वकृतं**] पहले अतीत कालमें किये [**यत्**] जो [**शुभाशुभं**] शुभ अशुभ [**अनेकविस्तरविशेषं**] ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार विशेषरूप [**कर्म**] कर्म हैं [**तस्मात्**] उनसे [**यः तु**] जो चेतयिता [**आत्मानं निवर्तयति**] अपने आत्माको छुड़ाता है [**सः**] वह आत्मा [**प्रतिक्रमणं**] प्रतिक्रमणस्वरूप है [**च**] और [**यत् भविष्यत्**] जो आगामी कालमें [**शुभं अशुभं**] शुभ तथा अशुभ [**कर्म**] कर्म [**यस्मिन् भावे**] जिस भावके होनेपर [**बध्यते**] बंधे [**तस्मात्**] उस अपने भावसे [**यः चेतयिता**] जो ज्ञानी [**निवर्तते**] छूटै [**सः**] वह आत्मा [**प्रत्याख्यानं भवति**] प्रत्याख्यानस्वरूप है । [**च**] और [**यत् संप्रति**] जो वर्तमान कालमें [**शुभं अशुभं**] शुभ अशुभ कर्म [**अनेकविस्तरविशेषं**] अनेक प्रकार ज्ञानावरणादि विस्ताररूप विशे-

कर्म यच्छुभमशुभं यस्मिंश्च भावे बध्यते भविष्यत् ।
तस्मान्निवर्तते यः स प्रत्याख्यानं भवति चेतयिता ॥ ३८४ ॥
यच्छुभमशुभमुदीर्णं संप्रति चानेकविस्तरविशेषं ।
तं दोषं यः चेतयते स खल्वालोचनं चेतयिता ॥ ३८५ ॥
नित्यं प्रत्याख्यानं करोति नित्यं प्रतिक्रामति यश्च ।
नित्यमालोचयति स खलु चरित्रं भवति चेतयिता ॥ ३८६ ॥

यः खलु पुद्गलकर्मविपाकभवेभ्यो भावेभ्यश्चेतयितात्मानं निवर्तयति स तत्कारणभूतं पूर्वकर्म प्रतिक्रामन् स्वयमेव प्रतिक्रमणं भवति । स एव तत्कार्यभूतमुत्तरं कर्म प्रत्या-

---

डिक्कमणं स पुरुष एवाभेदनयेन निश्चयप्रतिक्रमणं भवतीत्यर्थः । **णियत्तदे जो** अनंतज्ञानादिस्वरूपात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिस्वरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणे परमसामायिके स्थित्वा यः कर्ता आत्मानं निवर्तयति । कस्मात्सकाशात् ? **कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि वज्झदि भविस्सं तत्तो** शुभाशुभानेकविस्तरविस्तीर्णं भविष्यत्कर्म यस्मिन्मिथ्यात्वादिरागादिपरिणामे सति बध्यते तस्मात् **सो पच्चक्खाणं हवे चेदा** स एवंगुणविशिष्टस्तपोधन एवाभेदनयेन निश्चयप्रत्याख्यानं भवतीति विज्ञेयं । **जो वेददि** नित्यानंदैकस्वभावशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मके सुखदुःखजीवितमरणादिविषये सर्वोपेक्षासंयमे स्थित्वा यः

पोंको लिये हुए [**उदीर्णं**] उदय आया है [**तं दोषं**] उस दोषको [**यः चेतयिता**] जो ज्ञानी [**चेतयते**] अनुभवता है उसका स्वामिपना कर्तापना छोड़ता है [**सः खलु**] वह आत्मा निश्चयसे [**आलोचनं**] आलोचनास्वरूप है [**च यः**] इसतरह जो [**चेतयिता**] आत्मा [**नित्यं प्रत्याख्यानं करोति**] नित्य प्रत्याख्यान करता है [**नित्यं प्रतिक्रामति**] नित्य प्रतिक्रमण करता है [**नित्यं आलोचयति**] नित्य आलोचना करता है [**सः खलु**] वह चेतयिता निश्चयकर [**चारित्रं भवति**] चारित्र स्वरूप है ॥ **टीका**—जो आत्मा पुद्गल कर्मके उदयसे हुए भावोंसे अपने आत्माको छुड़ाये उस भावको कारणभूत पूर्व (अतीत) कालमें किये कर्मको प्रतिक्रमणरूप करता हुआ आप ही प्रतिक्रमणस्वरूप होता है । वही आत्मा पूर्वकर्मका कार्यभूत जो आगामी बंधनेवाला कर्म उसको प्रत्याख्यानरूप करता (त्यागता हुआ) आप ही प्रत्याख्यानस्वरूप होता है । तथा वही आत्मा वर्तमान कर्मके उदयसे अपनेको अत्यंत भेदकर अनुभव करता हुआ प्रवर्तता है वह आप ही आलोचनास्वरूप होता है । ऐसे यह आत्मा नित्य प्रतिक्रमण करता हुआ, नित्य प्रत्याख्यान करता हुआ, नित्य आलोचना करता हुआ पूर्वकर्मके कार्यरूप और आगामी कर्मके कारणरूप भा-

चक्षाणः प्रत्याख्यानं भवति । स एव वर्तमानकर्मविपाकमात्मनोऽत्यंतभेदेनोपलभमानः, आलोचना भवति । एवमयं नित्यं प्रतिक्रामन्, नित्यं प्रत्याचक्षाणो नित्यमालोचयंश्च पूर्वकर्मकार्येभ्य उत्तरकर्मकरणेभ्यो भावेभ्योत्यंतं निवृत्तः, वर्तमानं कर्मविपाकमात्मनो-ऽत्यंतभेदेनोपलभमानः स्वस्मिन्नेव खलु ज्ञानस्वभावे निरंतरचरणाच्चारित्रं भवति । चारित्रं तु भवन् स्वस्य ज्ञानमात्रस्य चेतनात् स्वयमेव ज्ञानचेतना भवतीति भावः ।

कर्ता वेदयत्यनुभवति जानाति । किं जानाति । **जं** यत्कर्म **तं** तत् । केन रूपेण ? **दोसं** दोषोयं मम स्वरूपं न भवति । कथंभूतं कर्म ? **उदिण्णं** उदयागतं । पुनरपि कथंभूत ? **सुहमसुहं** शुभाशुभं । पुनश्च किंरूपं ? **अणेयवित्थरविसेसं** मूलोत्तरप्रकृतिभेदेनानेकविस्तरविस्तीर्णं । **संपडिय** सम्प्रति काले खलु स्फुटं । **सो आलोयणं चेदा** स चेतयिता पुरुष एवाभेदेनयेन निश्चयालोचन भवतीति ज्ञातव्यं । **णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चंपि जो पडिक्कमदि णिच्चं अलोचेदिय** निश्चयरत्नत्रयलक्षणे शुद्धात्मस्वरूपे स्थित्वा यः कर्ता पूर्वोक्तनिश्चयप्रत्याख्यानप्रतिक्रमणालोचनानुष्ठानानि नित्यं सर्वकालं करोति

वोंसे अत्यंत निवृत्तिस्वरूप हुआ वर्तमान कर्मके उदयसे आपको अत्यंत भेदकर पाता हुआ अपने ज्ञानस्वभावमें ही निरंतर प्रवर्तनेसे आप ही चारित्रस्वरूप होता है । ऐसे चारित्ररूप होता अपनेको ज्ञानमात्र अनुभवनेसे आप ही ज्ञानचेतनास्वरूप होता है ऐसा तात्पर्य है ॥ **भावार्थ**—यहां निश्चय चारित्रका प्रधानतासे कथन है । वहां चारित्रमें प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचनाका विधान है । उनमेंसे लगे हुए दोषसे आत्माको निवर्तन करना वह प्रतिक्रमण है, आगामी दोष लगानेका त्याग करना वह प्रत्याख्यान है और वर्तमान दोषसे आत्माको जुदा करना वह आलोचना है । सो निश्चयकर विचारिये तब तीनों काल संबंधी कर्मोंसे आत्माको भिन्न जानना श्रद्धना अनुभवना । ऐसा करनेसे आत्मा ही प्रतिक्रमण है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही आलोचना है । इन तीनों स्वरूप निरंतर आत्माका अनुभवन वही चारित्र है । और निश्चय चारित्र ही ज्ञानचेतनाका अनुभवन है । इसी अनुभवसे साक्षात् ज्ञानचेतनास्वरूप केवलज्ञानमय आत्मा प्रकट होता है ॥ अब ज्ञान चेतना और अज्ञान चेतना जो कर्मचेतना कर्मफल चेतना इनका स्वरूप प्रगट करते हैं उसकी सूचनिकाका २२४ वां काव्य कहते हैं—**ज्ञानस्य** इत्यादि । **अर्थ**—ज्ञानकी चेतनाकर ही ज्ञान अत्यंत शुद्ध निरंतर प्रकाशता है और अज्ञानकी चेतनाकर बंध दौड़ता हुआ ज्ञानकी शुद्धताको रोकता है नहीं होने देता ॥ **भावार्थ**—संचेतन अर्थात् जो जहां जिससे एकाग्र हो उसीतरफ अनुभवरूप स्वाद लिया करे वह उस स्वरूप चेतना कहा जाता है । सो जब ज्ञानसे ही एकाग्र उपयुक्त हो उसीतरफ चेत रखे वह तो ज्ञानचेतना है । इससे तो

"ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं। अज्ञानसंचेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बंधः ॥ २२४ ॥" ॥ ३८३-३८६ ॥

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ३८७ ॥
वेदंतो कम्मफलं मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ३८८ ॥
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ३८९ ॥

सो दु चरित्तं हवदि चेदा स चेतयिता पुरुष एवाभेदनयेन निश्चयचारित्रं भवति। कस्मात्? इति चेत् शुद्धात्मस्वरूपे चरणं चारित्रमिति वचनात्। एवं निश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनाचारित्रव्याख्यानरूपेणाष्टमस्थले गाथाचतुष्टयं गतं ॥ ३८३।३८४।३८५।३८६॥ अर्थेंद्रियमनोविषयेषु रागद्वेषौ मिथ्याज्ञानपरिणत एव जीवः करोतीत्याख्याति;—ज्ञानाज्ञानभेदेन चेतना तावद् द्विविधा भवति। इयं तावदज्ञानचेतना गाथात्रयेण कथ्यते—उदयागतं शुभाशुभं कर्म वेदयन्ननुभवन् सन्नज्ञानिजीवः स्वस्थभावाद् भ्रष्टो भूत्वा मदीयं कर्मेति भणति। मया कृतं

ज्ञान अत्यंत शुद्ध हो प्रकाशता है—केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब संपूर्ण ज्ञान चेतना नाम पाता है। और अज्ञानरूप जो कर्म और कर्मफलरूप उपयोग उसको करना उसीतरफ एकाग्र हो अनुभव करना वह अज्ञान चेतना है। इससे कर्मका बंध होता है वह ज्ञानकी शुद्धताको रोकता है॥ ३८३ से ३८६ तक॥

अब इस कथनको गाथासे कहते हैं;—**[यः तु]** जो आत्मा **[कर्मफलं वेदयमानः]** कर्मके फलको अनुभवता हुआ **[कर्मफलं आत्मानं करोति]** कर्मफलको आपरूप ही करता है मानता है **[सः]** वह **[पुनरपि]** फिर भी **[दुःखस्य बीजं]** दुःखका बीज **[अष्टविधं तत्]** ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मको **[बध्नाति]** बांधता है। **[यस्तु]** जो **[कर्मफलं वेदयमानः]** कर्मके फलको वेदता हुआ आत्मा **[कर्मफलं मया कृतं जानाति]** उस कर्मफलको ऐसा जाने कि यह मैंने किया है **[स पुनरपि०]** वह फिर भी०....। **[यः चेतयिता]** जो आत्मा **[कर्मफलं वेदयमानः]** कर्मके फलको वेदता हुआ **[सुखितः च दुःखितः]** सुखी और दुःखी **[भवति]** होता है **[सः०]** वह चेतयिता०....॥

टीका—ज्ञानसे अन्य जो अन्य भाव उसमें ऐसा अनुभव करे माने कि यह मैं हूं वह अज्ञान चेतना है। वह दो प्रकारकी है—कर्मचेतना कर्मफलचेतना। उनमेंसे ज्ञानके सिवाय अन्य भावोंमें ऐसा अनुभवे (माने) कि इसको मैं करता हूं यह तो कर्म चेतना

वेदयमानः कर्मफलमात्मनं करोति यस्तु कर्मफलं।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥ ३८७ ॥
वेदयमानः कर्मफलं मया कृतं जानाति यस्तु कर्मफलं।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥ ३८८ ॥
वेदयमानः कर्मफलं सुखितो दुःखितश्च भवति चेतयिता।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधं ॥ ३८९ ॥

ज्ञानादन्यत्रेदमहमिति चेतनं अज्ञानचेतना। सा द्विधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च। तत्र ज्ञानादन्यत्रेदमहं करोमीति चेतनं कर्मचेतना। ज्ञानादन्यत्रेदं वेदयेऽहमिति चेतनं कर्मफलचेतना। सा तु समरसापि संसारबीजं। संसारबीजस्याष्टविधकर्मणो बीजत्वात्। ततो मोक्षार्थिना पुरुषेणाज्ञानचेतनाप्रलयाय सकलकर्मसंन्यासभावनां सकलकर्मफलसंन्यासभावनां च नाटयित्वा स्वभावभूता भगवती ज्ञानचेतनैवैका नित्यमेव नाटयितव्या। तत्र तावत्सकलकर्मफलसंन्यासभावनां नाटयति—"कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः। परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलंबे ॥ २२५ ॥"

कर्मेति च भणति। स जीवः पुनरपि तदष्टविधं कर्म बध्नाति। कथंभूतं? बीजं कारणं। कस्य? दुःखस्य। इति गाथाद्वयेनाज्ञानरूपा कर्मभावचेतना व्याख्याता। कर्मचेतना कोऽर्थः?

है और ज्ञानके सिवाय अन्य भावोंमें ऐसा अनुभवे कि इसको मैं भोगता हूं वह कर्मफल चेतना है। ये दोनों ही अज्ञान चेतना है वह संसारका बीज है। क्योंकि संसारका बीज आठ प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म है उसका यह अज्ञान चेतना बीज है। इससे कर्म बंधते हैं। इसलिये जो मोक्षको चाहनेवाला पुरुष है उसको अज्ञान चेतनाका नाश करनेके लिये सब कर्मोंके छोड़ देनेकी भावनाको नचाकर फिर समस्त कर्मोंके फलके त्यागकी भावनाको नचाकर अपना स्वभावभूत जो ज्ञानवती भगवती एक ज्ञानचेतना उसीको निरंतर नृत्य कराना चाहिये। वहां प्रथम ही सकल कर्मोंके संन्यासकी भावनाको नचाते हैं। उसका कलशरूप २२५ वां काव्य है—**कृत** इत्यादि। **अर्थ**—अतीत अनागत वर्तमानकाल संबंधी सभी कर्मोंको कृत कारित अनुमोदना और मन वचन कायसे छोड़कर उत्कृष्ट निष्कर्म अवस्थाको मैं अवलंबन करता हूं। इसप्रकार सब कर्मोंका त्याग करनेवाला ज्ञानी प्रतिज्ञा करता है। अब सब कर्मोंके त्याग करनेके कृत कारित अनुमोदना और मन वचन कायकर उनचास भंग (भेद) होते हैं। वहां अतीत काल संबंधी कर्मके त्याग करनेको प्रतिक्रमण कहा है उसको प्रथम उनचास भंग कर कहते हैं। टीकामें संस्कृत पाठ **यदहं** इत्यादि है—**अर्थ**—प्रतिक्रमण करनेवाला कहता है कि जो मैंने पापकर्म अतीत कालमें किया था और अन्यको प्रेरणाकर कराया था तथा

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति २ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४ यदहमकार्षं

इति चेत् मदीयं कर्म मया कृतं कर्मेत्याद्यज्ञानभावेन—ईहापूर्वकमिष्टानिष्टरूपेण निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिच्युतस्य मनोवचनकायव्यापारकरणं यत्, सा बंधकारणभूता कर्मचेतना भण्यते । उदयागतं कर्मफलं वेदयन् शुद्धात्मस्वरूपमचेतयन् मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयनिमित्तेन यः सुखितो दुःखितो वा भवति स जीवः पुनरपि तदष्टविधं कर्म बध्नाति । कथंभूतं? बीजं कारणं । कस्य? दुःखस्य । इत्येकगाथया कर्मफलचेतना व्याख्याता । कर्मफलचेतना कोऽर्थः? इति चेत् स्वस्थभावरहितेनाज्ञानभावेन यथा संभवं व्यक्ताव्यक्तस्वभावेनेहापूर्वकमिष्टानिष्टविकल्परूपेण

करते हुए दूसरेको भला जाना था मनसे वचनसे कायसे वह मेरा पापकर्म मिथ्या होवे ॥ **भावार्थ—**पापकर्मको संसारका वीज जान हेय बुद्धि आई तब ममत्व छोड़ा यही मिथ्या करना है। ऐसे यह एक भंग हुआ । सो इसकी समस्या ऐसी कि कृत कारित अनुमोदना इन तीनका तो तीनका अंक स्थापन करना और मन वचन काय ये भी तीन इसमें लगाये इसलिये इसका दूसरा तिया स्थापन किया तब तेतीसका अंक हुआ सो इस भंगको तेतीसका है ऐसा नाम कहना ।३३।१। इसीतरह टीकामें अन्य भंगोंका संस्कृत पाठ है उनकी वचनिक करके लिखते हैं—जो पापकर्म मैंने अतीत कालमें किया, अन्यको प्रेरणाकर कराया और अन्य करते हुएको भला जाना मनकर वचनकर सो पापकर्म मेरा मिथ्या होवे । ऐसा दूसरा भंग है ! यहां समस्या—कृत कारित अनुमोदनाका तो तिया ही है और मनवचन ये दो ही लगे काय नहीं लगा इसलिये दोका अंक स्थापन किया तब तिया दुवा ऐसे वत्तीसका भंग नाम हुआ । ३२ । २ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया अन्यको प्रेरणाकर कराया और करते हुए अन्यको भला जाना मनकर कायकर वह पाप कर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा तीसरा भंग है । यहा कृत कारित अनुमोदनाका तो तिया ही हुआ और मनकर कायकर ऐसे दो लगे इसलिये तिया दूवा ऐसे इसका नाम वत्तीसका भंग हुआ यहां वचन न लगा । ३२।३। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया अन्यको प्रेरणाकर कराया और करते हुए अन्यको भी भला जाना वचनकर कायकर । वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा चौथा भंग है । यहां कृत कारित अनुमोदनाका तो तिया ही है और वचन काय दो लगे मन नहीं

यदचीकरं यत्कुर्वतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ५ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति ६ यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ७ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ८ यदहमकार्षं यत्कुर्वतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ९ यदहमचीकरं यत्कुर्वतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च

हर्षविषादमयं सुखदुःखानुभवनं यत्, सा बंधकारणभूता कर्मफलचेतना भण्यते । इयं कर्मचेतना कर्मफलचेतना द्विरूपापि त्याज्या बधकारणत्वादिति । तत्र तयोर्द्वयोः कर्मचेतनाकर्मफलचेतनयोर्मध्ये पूर्वं तावन्निश्चयप्रतिक्रमण–निश्चयप्रत्याख्यान–निश्चयालोचनास्वरूपं यत्पूर्वं व्याख्यातं तत्र स्थित्वा शुद्धज्ञानचेतनाबलेन कर्मचेतनासन्यासभावना नाटयति ।. कर्मचेतनात्याग-

---

लगा इसलिये दूवा हुआ । इसकारण इसको भी बत्तीसका भंग कहना । यहां तक बत्तीसके तीन भंग हुए ।३२।४। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया, अन्यको प्रेरणाकर कराया और करते हुएको भला जाना मनकर ही वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा पांचवां भंग हुआ । यहा कृत कारित अनुमोदनाका तो तिया ही है और एक मन ही लगा उसका एका हुआ वचन काय न लगा इसलिये इसका नाम इकतीसका भंग कहा ।५।३१। जो मैंने अतीतकालमें पापकर्म किया, अन्यको प्रेरणा कर कराया और करते हुएको भला जाना वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा छठा भंग हुआ । यहां कृत कारित अनुमोदनाका तो तिया ही है और वचन ही एक लगा, मन काय न लगा इसलिये तिया एकाका इकतीसका भंग नाम हुआ ।६।३१। जो मैंने पापकर्म अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया तथा अन्य करते हुएको भला जाना कायकर, वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा यह सातवा भंग हुआ । यहां कृत कारित अनुमोदनाका तो तिया ही है और काय एक ही लगा मन वचन न लगा इसलिये तिया एका इसतरह इकतीसका भंग नाम हुआ । ७ । ३१ ।। इसप्रकार इकतीसके भी तीन ही भंग हुए । जो पापकर्म मैंने अतीनकालमें किया, अन्यको प्रेरकर कराया मन वचन कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा यह आठवां भंग हुआ । यहां कृत कारित ये दो ही लगाये और मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये दूवा तिया इसप्रकार समस्यामें तेईसका भंग नाम हुआ ।८।२३। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया अन्यको करते हुएको भला जाना मनवचनकायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा नवमां भंग है । यहां कृत अनुमोदना ये दो ही लिये मनवचनकाय तीनों ही लगे इसलिये दूवा तिया ऐसी तेईसकी समस्या हुई इसकारण तेईसका भंग नाम पाया । ९ । २३ ॥

कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १० यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ११ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १२ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मे मिथ्या दुष्कृतमिति १३ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १४ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिमिति १५ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्व-

---

भावनां कर्मबंधविनाशार्थं करोतीत्यर्थः । तद्यथा—यदमहमकार्षं यदहमचीकरं यदह कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समन्वज्ञासिषं । केन ? मनसा वाचा कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति षड्संयोगेनैकभंगः । यदहमकार्षं यदहमचीकरं यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुज्ञासिषं । केन? मनसा वाचा तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पंचसंयोगेन, एकैकापनयनेन भंगत्रयं भवति । संयोगेनेत्याद्यक्षसंचारेणैकोनपंचाशद्भंगा भवंतीति टीकाभिप्रायः । अथवा त एव सुखोपायेन कथ्यंते । कथं ?

जो पापकर्म मैंने अन्यको प्रेरकर कराया अन्य करते हुएको भला जाना मन वचन कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा यह दशवां भंग है । यहां कारित अनुमोदना दो ही लिये और मनवचनकाय तीनों ही लगे इसलिये तेईसकी समस्याका भंग हुआ । १०।२३। ऐसे तेईसके भी तीन ही भंग हुए । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया मनवचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा ग्यारहवां भंग हुआ । इसमें कृतकारित दो लिये और मनवचन दो लगे इसलिये दो दो ऐसी बाईसकी समस्यासे बाईसका भंग नाम कहा है । ११ । २२ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्यको करते हुएको भला जाना मनकर वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो, ऐसा बारवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना दो लिये मनवचन दो लगे इसलिये बाईसकी समस्यासे बाईसका भंग कहना । १२ । २२ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेर कराया तथा अन्य करते हुएको भला जाना मनकर वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । ऐसा तेरवां भंग है । इसमें कृतकारित दो लिये, मन वचन दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्यासे बाईसका भंग नाम पाया ।१३।२२। जो मैंने अतीतकालमे पापकर्म किया और अन्यको प्रेरकर कराया मनकर कायकर वह मेरा पापकर्म मिथ्या हो । यह चौदवां भंग हुआ । इसमें कृतकारित दो लिये, मनकाय दो लगे इसलिये बाईसकी समस्यासे बाईसका भंग कहना । १४ । २२ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और करते हुए अन्यको भला जाना मनकायकर । ऐसा पंद्रहवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना लिये और मन काय लगे इसलिये बाईसका भंग कहना । १५ । २२ । जो पापकर्म मैंने अन्यको प्रेरकर कराया

ज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १६ यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १७ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १८ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १९ यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २० यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २१ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं

इति चेत्, कृतं कारितमनुमितमिति प्रत्येकं भंगत्रयं भवति । कृतकारितद्वय कृतानुमतद्वयं कारितानुमतद्वयमिति द्विसयोगेन च भगत्रय जातं । कृतकारितानुमतत्रयमिति सयोगेनैको भग इति सप्तभंगी । तथैव मनसा वाचा कायेनेति प्रत्येकभगत्रयं भवति । मनोवचनद्वय मनःकायद्वयं

और अन्य करते हुएको भला जाना मनकर कायकर वह मेरा पापकर्म मिथ्या हो । ऐसा सोलवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना लिया, मन काय लगा इसलिये बाईसकी समस्यासे वाईसका भंग नाम है । १६ । २२ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया वचनकर कायकर वह मेरा पापकर्म मिथ्या हो । यह सत्रहवां भंग है । इसमें कृतकारित लिया वचनकाय लगा इसलिये बाईसकी समस्यासे वाईसका भंग कहना । १७ । २२ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्य करते हुएको भला जाना वचनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह अठारवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना लिया वचन काय लगे इसलिये बाईसकी समस्यासे वाईसका भंग कहना । १८ । २२ । जो पापकर्म अतीतकालमे अन्यको प्रेरकर मैंने कराया और अन्य करते हुएको भला जाना वचनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह उनईसवां भंग है । इसमे कारित अनुमोदना ये दो लिये और वचन काय लगा इसलिये वाईसकी समस्यासे वाईसका भंग कहा जाता है । १९ । २२ । इसतरह वाईसकी समस्याके नौ भग हुए । जो मैंने पापकर्म अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया एक मनसे ही वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह वीसवा भंग है । इसमे कृतकारित दो लिये और एक मन ही लगा इसलिये दूआ एकासे इकईसकी समस्यासे इकईसका भंग कहना । २० । २१ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमे किया और अन्य करते हुएको भला जाना मनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह इकईसवां भग है । इसमे कृत अनुमोदना ये दो लिये एक मन लगा इसलिये इकईसकी समस्यासे इकईसका भंग कहना । २१ । २१ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया तथा करते हुए अन्यको भला जाना मनकर वह मेरा पापकर्म मिथ्या

समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २२ यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २३ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २४ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २५ यदहमकार्षं यदचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २६ यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २७ यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २८ यदह-

---

वचनकायद्वयमिति द्विसंयोगेन भंगत्रयं जातं । मनोवचनकायत्रयमिति च त्रिसंयोगेनैको भंग इयमपि सप्तभंगी । कृतं मनसा सह, कृतं वाचा सह, कृतं कायेन सह, कृतं मनोवचनद्वयेन सह, कृतं मनःकायद्वयेन सह,कृत वचनकायद्वयेन सह,कृतं मनोवचनकायत्रयेण सहेति कृते निरुद्धे

हो । यह बाईसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना ये दो लिये और एक मन लगा इसलिये इकईसकी समस्यासे इकईसका भंग नाम है । २२ । २१ । जो मैंने पापकर्म अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया वचनकर, वह मेरा पापकर्म मिथ्या हो यह तेईसवां भंग है । इसमें कृत कारित ये दो लिये और वचन एक ही लगा उसका दूआ एका ऐसे इकईसकी समस्यासे इकईसका भंग कहना । २३ । २१ । जो मैंने पापकर्म अतीतकालमें किया और अन्य करते हुएको भला जाना वचनकर, वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह चौवीसवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना ये दो लिये और एक वचन ही लगाया इसलिये इकईसकी समस्यासे इकईसका भंग कहना । २४ । २१ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें अन्यको प्रेरकर कराया और करते हुए अन्यको भला जाना वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह पच्चीसवां भंग हुआ । इसमें कारित और अनुमोदना ये दो लिये और एक वचन ही लगा इसलिये इकईसकी समस्यासे इकई-सका भंग हुआ । २५ । २१ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया और अन्यको प्रेरकर कराया कायकर, वह मेरा पापकर्म मिथ्या हो । यह छवीसवां भंग है । इसमें कृतकारित दो लिये और एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्यासे इक-ईसका भंग कहना । २६ । २१ ॥ जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया और अन्य करतेको भला जाना कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह सत्ताईसवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना दो लिये और एक काय लगा इसलिये इक्कीसकी समस्यासे इक-ईसका भंग नाम कहा । २७ । २१ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें अन्यको प्रेरकर कराया और अन्य करते हुएको भला जाना कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह अठाईसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना ये दो लेकर एक काय लगाया इस-लिये इकईसकी समस्यासे इकईसका भंग नाम है । २८।२१ । ऐसे इकईसके नौ भंग

मकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २९ यदचीकरं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ३० यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३१ यदहमकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३२ यदमचीकरं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३३ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३४ यदहमकार्षं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३५ यद-

---

विवक्षिते सप्तभंगी जाता यथा। तथा कारितेऽपि, तथा अनुमतेऽपि, तथा कृतकारितद्वयेऽपि, तथा कृतानुमतद्वयेऽपि, तथा कारितानुमतद्वयेऽपि, तथा कृतकारितानुमतत्रये चेति प्रत्येकमनेन क्रमेण

हुए ॥ जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया मनकर वचनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह उनतीसवां भंग है। इसमें कृत एक ही लेकर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्यासे तेरहका भंग कहा। २९। १३। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्यको प्रेरकर कराया मनवचनकायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह तीसवां भंग है। इसमें कारित एक ले मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये एका तियासे तेरहकी समस्यासे तेरहका भंग कहना। ३०। १३। जो पापकर्म मैंने अतीत कालमें अन्य करते हुएको भला जाना, मनकर वचनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह इकतीसवां भंग है। इसमें अनुमोदना एक ले मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्यासे तेरहका भंग है। ३१। १३। ऐसे तेरहकी समस्याके तीन भंग हुए ॥ जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया मन वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह बत्तीसवां भंग है। इसमें कृत एक ले मनवचन ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहा जाता है। ३२। १२। जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें अन्यको प्रेरकर कराया मनकर वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह तेतीसवां भंग है। इसमें कारित एक ले मन वचन ये दो लगाये इसलिये एका दुआ ऐसी बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहा। ३३। १२। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्यको करते हुएको भला जाना मनकर वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह चौतीसवां भंग हुआ। इसमें अनुमोदना एक ले मन वचन ये दो लगाये इसलिये एका दुआ ऐसा बारहका भंग कहना। ३४। १२। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने किया मनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह पैंतीसवां भंग है। इसमें कृत एक ले मन और काय ये दो लगाये, इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहना। ३५। १२। जो पापकर्म अतीतकालमें अन्यको प्रेर-

हमचीकरं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३६ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३७ यदहमकार्षं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३८ यदहमचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३९ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४० यदहमकार्षं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ४१ यदहमचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं ४२ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृ-

---

सप्तभंगी योजनीया । एवं–एकोनपंचाशद्भंगा भवंतीति प्रतिक्रमणकल्पः समाप्तः । इदानीं प्रत्याख्यानकल्पः कथ्यते–तथाहि–यदहं करिष्यामि यदहं कारयिष्यामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणि-

---

कर कराया मनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह छत्तीसवां भंग है । इसमें कारित एक ले मन और काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहना । ३६ । १२ । जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्य करते हुएको भला जाना मनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह सैंतीसवां भंग है । इसमें अनुमोदना एक ले मन और काय लगाये । इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहना । ३७ । १२ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया वचनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह अड़तीसवां भंग है । इसमें कृत एक ले वचन और काय दो लगाये इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहना । ३८ । १२ । जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्यको प्रेरकर कराया वचन कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह उनतालीसवां भंग है । इसमें कारित एक ले वचन काय दो लगाये इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहना । ३९ । १२ । जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्य करते हुएको भला जाना वचनकर कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह चालीसवां भंग है । इसमे अनुमोदना एक ले वचन और काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्यासे बारहका भंग कहना । ४० । १२ । ऐसे बारहकी समस्याके नौ भंग हुए ॥ जो पापकर्म मैंने अतीतकालमे किया मनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो ॥ यह इकतालीसवां भंग है । इसमें एक कृत ले एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना । ४१ ।११। जो पापकर्म मैंने अतीतकालमे अन्यको प्रेरकर कराया मनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह ब्यालीसवां भंग है । इसमें एक कारित ले एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना । ४२ । ११ । जो पापकर्म अतीतकालमे मैंने अन्य करते हुएको भला जाना मनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो । यह तेतालीसवां भंग है । इसमे एक अनुमोदना ले एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग हुआ । ४३ । ११ । जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें किया व-

तमिति ४३ यदहमकार्षं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४४ यदहमचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४५ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४६ यदहमकार्षं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४७ यदहमचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४८ यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं कायेन च

नं समनुज्ञास्यामि। केन? मनसा वाचा कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववत् षट्संयोगेनैको भंगः। यथा यदहं करिष्यामि यदहं कारयिष्यामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिन समनुज्ञास्यामि। केन?

चनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह चवालीसवां भंग है। इसमें एक कृत ले एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना। ४४। ११। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्यको प्रेरकर कराया वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह पैंतालीसवां भंग है। इसमें कारित एक ले एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना। ४५। ११। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने अन्य करते हुएको भला जाना वचनकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह छयालीसवा भंग है। इसमें एक अनुमोदना ले एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना। ४६। ११। जो पापकर्म अतीतकालमे मैंने किया कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह सैंतालीसवां भंग है। इसमें एक कृत ले एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना। ४७। ११। जो पापकर्म मैंने अतीतकालमें अन्यको प्रेरकर कराया कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह अड़तालीसवां भंग है। इसमें एक कारित ले एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्यासे ग्यारहका भंग कहना। ४८। ११। जो पापकर्म अतीतकालमें मैंने करते हुए अन्यको भला जाना कायकर वह पापकर्म मेरा मिथ्या हो। यह उनचासवां भंग है। इसमे एक अनुमोदना ले एक काय लगाया इसलिये एका एकासे ग्यारहकी समस्या होनेसे ग्यारहका भंग कहा जाता है। ४९। ११। ऐसे ग्यारहके नौ भंग हुए। इस तरह उनचास भंग हैं। उनमें तेतीसकी समस्याका एक १। बत्तीसके तीन ३। इकतीसके तीन ३। तेईसके तीन ३। बाईसके नौ ९। इकईसके ९। तेरहके तीन ३। बारहके नौ ९। ग्यारहके नौ ९। इसप्रकार सब मिलकर उनचास हुए। इन उनचास भंगोंका संक्षेप पाठ ऐसा जानना—कृतकारित अनुमोदना मन वचन कायकर। ३३। यह एक तेतीसकी समस्याका भंग॥ १॥ कृतकारित अनुमोदना मन वचनकर ३२। कृतकारित अनुमोदना मन कायकर ३२। कृतकारित अनुमोदना वचन कायकर ३२। ये तीन बत्तीसकी समस्याके ३॥ कृतकारित अनुमोदना मनकर। ३१। कृतकारित अनुमोदना वचनकर। ३१। कृतकारित अनुमोदना कायकर। ३१। ये इक-

तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४९। "मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य। आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते॥ २२६॥" इति प्रतिक्रमणकल्पः समाप्तः। न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च

मनसा वाचा चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववदेकैकापनयनेन पंचसंयोगेन भंगत्रयं भवति एवं पूर्वोक्तक्रमेण—एकोनपंचाशद्भंगा ज्ञातव्याः। इति प्रत्याख्यानकल्पः समाप्तः। इदानीमालो-

---

तीसकी समस्याके तीन ३॥ कृतकारित मनवचन कायकर। २३। कृत अनुमोदना मन वचन कायकर। २३। कारित अनुमोदना मनवचन कायकर। २३। ये तेईसकी समस्याके तीन॥ ३॥ कृतकारित मन वचनकर। २२। कृत अनुमोदना मन वचनकर। २२। कारित अनुमोदना मनवचनकर। २२। कृतकारित मन कायकर। २२। कृत अनुमोदना मनकायकर। २२। कारित अनुमोदना मनकायकर। २२। कृतकारित वचन कायकर। २२। कृत अनुमोदना वचन कायकर। २२। कारित अनुमोदना वचन कायकर। २२। ये नौ बाईसकी समस्याके ९॥ कृतकारित मनकर। २१। कृत अनुमोदना मनकर। २१। कारित अनुमोदना मनकर। २१। कृतकारित वचनकर। २१। कृतअनुमोदना वचनकर। २१। कारित अनुमोदना वचनकर। २१। कृतकारित कायकर। २१। कृत अनुमोदना कायकर। २१। कारित अनुमोदना कायकर। २१। ये नौ इकईसकी समस्याके हैं॥ ९॥ कृत मन वचन कायकर। १३। कारित मनवचनकायकर। १३। अनुमोदना मनवचनकायकर। १३। ये तेरहकी समस्याके तीन ३॥ कृत मनवचनकर। १२। कारित मनवचनकर। १२। अनुमोदना मनवचनकर। १२। कृत मनकायकर। १२। कारित मनकायकर। १२। अनुमोदना मनकायकर। १२। कृत वचनकायकर। १२। कारित वचनकायकर। १२। अनुमोदना वचनकायकर। १२। ये नौ बारहकी समस्याके हैं। ९॥ कृत मनकर। ११। कारित मनकर। ११। अनुमोदना मनकर। ११। कृत वचनकर। ११। कारित वचनकर। ११। अनुमोदना वचनकर। ११। कृत कायकर। ११। कारित कायकर। ११। अनुमोदना कायकर। ११। ये नौ ग्यारहकी समस्याके हैं॥ ९॥ इसतरह तेतीसका १ बत्तीसके ३ इकतीसके ३ तेईसके ३ बाईसके ९ इकईसके ९ तेरहके ३ बारहके ९ ग्यारहके ९। सब मिल उनंचास हुए॥ अब इस कथनका कलशरूप २२६ वां काव्य कहते हैं—**मोहाद्य** इत्यादि। **अर्थ**—जो मैंने मोहसे (अज्ञानसे) अतीतकालमें कर्म किये उन सबको ही प्रतिक्रमणरूपकर सब कर्मोंसे रहित चैतन्यस्वरूप आत्मामें आपकर ही निरंतर वर्तता हूं। ऐसा ज्ञानी अनुभव करे॥ **भावार्थ**—अतीतकालमें किये कर्मका उनचास भंगरूप मिथ्याकार प्रतिक्रमणकर ज्ञानी ज्ञानस्वरूप आत्मामें लीन हो निरंतर अनुभव करे उसीका यह विधान है। मिथ्या कहनेका प्रयोजन यह है कि जैसे किसीने पहले धन

कायेन चेति १ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति २ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामिपि वाचा च कायेन चेति ३ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा कायेन चेति ४ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति ५ न करोमि

चनाकल्पः कथ्यते तद्यथा—यदहं करोमि यदहं कारयामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुजानामि। केन ? मनसा वाचा कायेनेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववत् षट्संयोगेनैकभंगः । तथा यदहं

कमाके घरमें रक्खा था पीछे उससे ममत्व छोड़ा तब उसका भोगनेका अभिप्राय नहीं रहा ॥ कमाया था जैसा न कमाया । उसीतरह कर्म बांधा था उसको अहित जान ममत्व छोड़ा उसके फलमें लीन न होगा तब बांधा तैसा न बांधा मिथ्या ही है ऐसा जानना । इसतरह **प्रतिक्रमण** कल्प है । अब आलोचना कल्प कहते हैं । वहां संस्कृत टीकाका पाठ ऐसा है—**न करोमि** इत्यादि । **अर्थ**—इसमें वर्तमान कर्तापनका निषेध है । जो मैं कर्मको न करता हूं न अन्यको प्रेर कराता हूं और न अन्य करते हुएको भी भला जानता हूं मनकर वचनकर कायकर । ऐसा प्रथम भंग है । इसमें कृत कारित अनुमोदना इन तीनोंपर मन वचनकाय लगाये इसलिये तीन तीनके अंककी समस्यासे तेतीसका भंग कहना । १ । ३३ । इसीतरह अन्य भंगोंके भी संस्कृत पाठ हैं उनकी वचनिका लिखते हैं—वर्तमान कर्मको मैं न करता हूं न अन्यको प्रेरकर कराता हूं न अन्य करते हुएको भला जानता हूं मनकर वचनकर । ऐसा दूसरा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना इन तीनोंपर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बत्तीसकी समस्याका भंग कहना । २ । ३२ । वर्तमान कर्मको मैं न करता हूं न अन्यकूं प्रेरकर कराता हूं और अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानता मनकर कायकर । ऐसा तीसरा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदनापर मन काय लगाये तब बत्तीसकी समस्याका भंग हुआ । ३ । ३२ । वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता अन्यको प्रेरकर कराता भी नहीं । और अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानता वचनकर कायकर । ऐसा चौथा भंग है । इसमें कृत कारित अनुमोदना इन तीनोंपर वचन काय ये दो लगाये तब बत्तीसकी समस्याका भंग हुआ । ४ । ३२ । ऐसे बत्तीसकी समस्याके तीन भंग हुए । वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता अन्यको प्रेरकर कराता नहीं अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानता मनकर । ऐसा पांचवा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना इन तीनोंपर एक मन लगा इसलिये इकतीसकी समस्याका भंग हुआ । ५ । ३१ । वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं अन्यको प्रेरकर कराता नहीं और अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानता वचनकर । ऐसा छठा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना इन तीनों-

न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति ६ न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति ७ न करोमि न कारयामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ८ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ९ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १० न करोमि न कारयामि मनसा च वाचा चेति ११ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति १२ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि

करोमि यदहं कारयामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुजानामि, केन ? मनसा वाचेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति—एकैकापनयनेन पंचसयोगेन भंगत्रयं भवति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एकोनपं-

---

पर एक वचन लगा इसलिये इकतीसकी समस्याका भंग कहना । ६ । ३१ । वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं, अन्यको प्रेरकर कराता नहीं, अन्य करते हुएको भला नहीं जानता कायकर। यह सातवां भंग है। इसमे कृतकारित अनुमोदना इन तीनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकतीसकी समस्याका भंग हुआ । ७ । ३१ । ऐसे इकतीसकी समस्याके तीन भंग हुए ॥ वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं हूं अन्यको प्रेरकर कराता नहीं हूं मनकर वचनकर कायकर । यह आठवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनों-पर मन वचनकाय तीनों लगाये इसलिये तेईसकी समस्याका भंग कहना । ८ । २३ । वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं हूं अन्य करते हुएको भला नहीं जानता मनकर वचनकर कायकर । यह नौवां भंग है । इसमे कृत अनुमोदना इन दोनों पर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेईसकी समस्याका भंग हुआ। ९ । २३ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता अन्य करते हुएको भला नहीं जानता मनकर वचनकर कायकर । यह दसवां भंग है। इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर मनवचन काय तीनों लगाये इसलिये तेईसकी समस्याका भंग हुआ । १० । २३ । ऐसे तेईसकी समस्याके तीन भंग हुए ॥ वर्तमान कर्मको मै करता नहीं, अन्यको प्रेरकर कराता नहीं मन कर वचनकर । यह ग्यारवां भंग है । इसमे कृतकारित इन दोनों पर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्याका भंग हुआ । ११ । २२ । वर्तमान कर्मको मै करता नहीं अन्य करते हुएको भला नहीं जानता मनकर वचनकर । यह बारवा भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर मनवचन ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्याका भंग हुआ । १२ । २२ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता अन्य करते हुएको भला नहीं जानता मनकर वचनकर। ऐसा तेरवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्याका भंग हुआ

मनसा च वाचा चेति १३ न करोमि न कारयामि मनसा च कायेन चेति १४ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति १५ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति १६ न करोमि न कारयामि वाचा च कायेन चेति १७ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति १८ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति १९ न करोमि न कारयामि मनसा चेति २० न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति २१ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति २२ न करोमि न कारयामि वाचा

चाशङ्कंगा ज्ञातव्याः । इत्यालोचनाकल्पः समाप्तः । कल्पः पर्वपरिच्छेदोऽधिकारोऽध्यायः प्रकरणमित्याद्येकार्था ज्ञातव्याः । एवं निश्चयप्रतिक्रमण–निश्चयप्रत्याख्यान–निश्चयालोचनाप्रकारेण शु-

---

। १३ । २२ । वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता, अन्यको प्रेरकर नहीं कराता मनकर कायकर । यह चौदवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर मन काय ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १४ । २२ । वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं, अन्य करते हुएको अनुमोदता नहीं मनकर कायकर । यह पंद्रहवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर मन काय ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १५ । २२ । वर्तमान कर्मको अन्यको प्रेरकर मैं कराता नहीं, अन्य करतेको अनुमोदता नहीं मनकर कायकर । यह सोलवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर मन काय ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १६ । २२ । वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं, अन्यको प्रेर कराता नहीं वचनकर कायकर । यह सत्रहवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १७ । २२ । वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता, अन्य करते हुएको भला नहीं जानता वचनकर कायकर । यह अठारवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर वचन-काय ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १८ । २२ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेर नहीं कराता, अन्य करते हुएको अनुमोदता नहीं वचनकर कायकर । यह उनईसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर वचनकाय ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १९ । २२ । ऐसे बाईसकी समस्याके नौ भंग हुए ॥ वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं, अन्यको प्रेर कराता नहीं मनकर । यह वीसवा भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर एक मन लगाया इसलिये इकीसकी समस्या हुई । २० । २१ । वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता, अन्य करतेको भला नहीं जानता मनकर । यह इकईसवा भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर एक मन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २१ । २१ । वर्तमान कर्मको अन्यको प्रेर मैं नहीं

चेति २३ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति २४ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति २५ न करोमि न कारयामि कायेन चेति २६ न करोमि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति २७ न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति २८ न करोमि मनसा च वाचा च कायेन चेति २९ न कारयामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३० न कुर्वंतमप्यन्यं

द्धज्ञानचेतनाभावनारूपेण गाथाद्वयव्याख्यानेन कर्मचेतनासंन्यासभावना समाप्ता । इदानीं शुद्ध-ज्ञानचेतनाभावनाबलेन कर्मफलचेतनासंन्यासभावनां नाटयति करोतीत्यर्थः । तद्यथा—नाहं

कराता, अन्य करते हुएको भला नहीं जानता मनकर । यह बाईसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर एक मन लगा इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२२।२१। वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता, अन्यको प्रेर नहीं कराता वचनकर । यह तेईसवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर एक वचन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २३ । २१ । वर्तमान कर्मको मैं करता नहीं हूं, अन्य करते हुएको अनुमोदता नहीं वचनकर । ऐसा चौवीसवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर एक वचन लगाया । ऐसे इकईसकी समस्या हुई । २४ । २१ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता, अन्य करतेको अनुमोदता नहीं वचनकर । ऐसा पच्चीसवां भंग है । इसमे कारित अनुमोदना इन दोनोंपर एक वचन लगाया इसलिये इकवीसकी समस्या हुई । २५ । २१ । वर्तमान कर्मको मै नहीं करता, अन्यको प्रेरकर नहीं कराता काय कर । ऐसा छव्वीसवां भंग है । इसमें कृत कारित इन दोनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २६ । २१ । वर्तमान कर्मको मै नहीं करता, अन्य करते हुएको भला नहीं जानता कायकर ऐसा सत्ताईसवा भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २७ । २१ । वर्तमान कर्मको मै अन्यको प्रेरकर नहीं कराता, अन्य करते हुएको अनुमोदता नहीं कायकर । ऐसा अट्ठाईसवां भंग है । इसमे कारित अनुमोदना इन दोनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २८ । २१ । ऐसे इकईसके नौ भंग हुए॥ वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता मनकर वचनकर कायकर । ऐसा उनतीसवां भंग है । इसमें एक कृतके ऊपर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्या हुई । २९ । १३ । वर्तमान कर्मको मै अन्यको प्रेरकर नहीं कराता मन वचन कायकर । ऐसा तीसवां भंग है । इसमे कारित एक पर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्या हुई । ३० । १३ । वर्तमान कर्मको मैं अन्य करते हुएको अनुमोदता नहीं मनकर वचनकर कायकर ऐसा इकतीसवां भंग है । इसमें एक अनुमोदनापर मन वचन काय तीनों ल-

समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति ३१ न करोमि मनसा च वाचा चेति ३२ न कारयामि मनसा च वाचा चेति ३३ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति ३४ न करोमि मनसा च कायेन चेति ३५ न कारयामि मनसा च कायेन चेति ३६ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च कायेन चेति ३७ न करोमि वाचा च कायेन चेति ३८ न कारयामि वाचा च कायेन चेति ३९ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा च कायेन चेति ४० न करोमि मनसा चेति ४१ न

मतिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे । तर्हि किं करोमि ? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये सम्यगनुभवे इत्यर्थः । नाहं श्रुतज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे । तर्हि किं करोमि ? शुद्धचैतन्यस्वभाव-

---

गाये इसलिये तेरहकी समस्या हुई । ३१ । १३ । ऐसे तेरहकी समस्याके तीन भंग हुए ॥ वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता मनकर वचनकर । ऐसा बत्तीसका भंग है । इसमें एक कृतपर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३२ । १२ । वर्तमान कर्मको अन्यको प्रेर मै नहीं कराता मनकर वचनकर । ऐसा तेतीसवां भंग है । इसमें एक कारित पर मन वचन दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३३ । १२ । वर्तमान कर्मको अन्य करते हुएको मैं भला नहीं जानता मनकर वचनकर ऐसा चौंतीसवां भंग है । इसमे एक अनुमोदनापर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३४ । १२ । वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता मनकर कायकर ऐसा पैंतीसवा भंग है । इसमें कृत एक पर मन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३५ । १२ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता मनकर कायकर ऐसा छत्तीसवां भंग है । इसमें कारित एकपर मन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३६ । १२ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको करते हुएको भला नहीं जानता मनकर कायकर, ऐसा सैतीसवां भंग है । इसमें अनुमोदना एक पर मन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३७ । १२ । वर्तमान कर्मको मै नहीं करता वचनकर कायकर ऐसा अड़तीसवां भंग है । इसमें एक कृत पर वचन काय लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३८ । १२ । वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता वचनकर कायकर, ऐसा उनतालीसवां भंग है । इसमे एक कारित पर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई । ३९ । १२ । वर्तमान कर्मको मैं अन्य करते हुएको भला नहीं जानता वचनकर कायकर, ऐसा चालीसवां भंग है । इसमें एक अनुमोदनापर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी ससस्या हुई । ४० । १२ । ऐसे बारहके नौ भंग हुए ॥ वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता मनकर, ऐसा इकतालीसवां

कारयामि मनसा चेति ४२ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा चेति ४३ न करोमि वाचा चेति ४४ न कारयामि वाचा चेति ४५ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि वाचा चेति ४६ न करोमि कायेन चेति ४७ न कारयामि कायेन चेति ४८ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि कायेन चेति ४९। "मोहविलासविजृंभितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य। आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते" ॥ २२७ ॥ इत्यालोचनाकल्पः समाप्तः ॥ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च

मात्मानमेव संचेतये। नाहमवधिज्ञानवरणीयकर्मफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। नाहं मनःपर्ययज्ञानावरणीयफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्ध-

---

भंग है। इसमें एक कृतपर एक मन लगा इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४१। ११। वर्तमान कर्मको अन्यको प्रेरकर मैं नहीं कराता मनकर, ऐसा ब्यालीसवां भंग है। इसमें कारित एक पर एक मन लगा इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४२। ११। वर्तमान कर्मको मैं अन्य करते हुएको भला नहीं जानता मनकर, ऐसा तेतालीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४३। ११। वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता वचनकर, ऐसा चवालीसवां भंग है। इसमें एक कृतपर वचन एक लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४४। ११। वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता वचनकर, ऐसा पैतालीसवां भंग है। इसमें एक कारित पर एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४५। ११। वर्तमान कर्मको मैं अन्य करते हुएको भला नहीं जानता वचनकर, ऐसा छयालीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४६। ११। वर्तमान कर्मको मैं नहीं करता कायकर, ऐसा सैतालीसवां भंग हुआ। इसमें एक कृतपर एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४७। ११। वर्तमान कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराता कायकर, ऐसा अड़तासवां भंग है। इसमें एक कारितपर एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४८। ११। वर्तमान कर्मको मैं अन्य करते हुएको भला नहीं जानता कायकर, ऐसा उनचासवां भंग है। इसमें एक अनुमोदना पर एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४९। ११। इसतरह ग्यारहकी समस्याके नौ भंग हुए। इसप्रकार आलोचनाके उनचास भंग हैं। इनमें तेतीसकी समस्याका एक १। बत्तीसके तीन ३ इकतीसके तीन ३ तेईसके तीन ३ बाईसके नौ ९ इकईसके नौ ९ तेरहके तीन ३ बारहके नौ ९ ग्यारहके नौ ९। इसतरह सब मिलकर उनचास हुए॥ अब इसके अर्थका कलशरूप २२७ वां काव्य कहते हैं—**मोहविलास** इत्यादि। **अर्थ**—निश्चय चारित्रको अंगीकार कर-

वाचा च कायेन चेति १ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति २ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्य समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति ४ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि

चैतन्यस्वभावमात्मानमेव सचेतये । नाहं केवलज्ञानावरणीयफलं भुंजे । किं तर्हि करोमि ? शुद्धचै-

---

नेवाला कहता है कि मोहके विलासकर फैला उदयको प्राप्त हुआ जो यह वर्तमान कर्म उस सबकी आलोचना करके सब कर्मोंसे चैतन्यस्वरूप आत्मामें मैं आप ही कर निरंतर वर्तता हूं ॥ **भावार्थ—**वर्तमान कालमें आये हुए कर्मके उदयको ज्ञानी ऐसे विचारता है कि जो पहले बांधा था उसका यह कार्य है मेरा तो यह कार्य नहीं । मैं इसका कर्ता नहीं मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा हूं । उसकी प्रवृत्ति दर्शन ज्ञानरूप है उसकर इस उदय हुए कर्मके देखने जाननेवाला हूं । अपने स्वरूपमें ही मैं वर्तता हूं । ऐसा अनुभव करना ही निश्चयचारित्र है । इसतरह **आलोचना** कल्प समाप्त किया ॥ आगे प्रत्याख्यान कल्प कहते हैं उसका टीकामें संस्कृत पाठ है—**न करिष्यामि** इत्यादि । **अर्थ—**प्रत्याख्यान करनेवाला कहता है कि आगामी कालमें कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर वचनकर कायकर । ऐसा प्रथम भंग है । इसमें कृत कारित अनुमोदना इन तीनोंपर मन वचन काय ये तीनों लगाये इसलिये तिया तिया मिल तेतीसकी समस्याका एक भंग हुआ । १ । ३३ । इसीतरह अन्य भंगोंका भी टीकामें संस्कृत पाठ है उनकी वचनिका लिखते हैं । आगामी कालके कर्मको मै नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानूंगा मनकर वचनकर । ऐसा दूसरा भंग है । इसमें कृत कारित अनुमोदना इन तीनोंपर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बत्तीसकी समस्या हुई । २ । ३२ । आगामी कालके कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानूंगा मनकर कायकर । ऐसा तीसरा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदनाका तो तिया ही हुआ और मन काय ये दो लगे इसलिये बत्तीसकी समस्या हुई । ३ । ३२ । आगामी कालके कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको नहीं अनुमोदूंगा वचनकर कायकर। ऐसा चौथा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना तीनोंपर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बत्तीसकी समस्या हुई । ४ । ३२ । ऐसे बत्तीसके तीन भंग हुए ॥ आगामी कालके कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करतेको भला नहीं जानूंगा मनकर । ऐसा पांचवां भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना इन ती-

मनसा चेति ५ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति ६ न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति ७ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा वाचा च कायेन चेति ८ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन च ९ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १० न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा च वाचा चेति ११ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति १२ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति

तन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये इति पंचप्रकारज्ञानावरणीयरूपेण कर्मफलसंज्ञाभावना व्याख्याता ।

नोंपर एक मन लगाया इसलिये इकतीसकी समस्या हुई । ५ । ३१ । आगामी कालके कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा वचनकर । ऐसा छठा भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना इन तीनोंपर एक वचन लगाया इसलिये इकतीसकी समस्या हुई । ६ । ३१ । आगामी कालके कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा कायकर । ऐसा सांतवां भंग है । इसमें कृतकारित अनुमोदना इन तीनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकतीसकी समस्या हुई । ७ । ३१ । ऐसे इकतीसकी समस्याके तीन भंग हुए ॥ आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर वचनकर कायकर । यह आठवां भंग है । इसमे कृतकारित इन दोनोंपर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेईसकी समस्या हुई । ८ । २३ । आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्य करतेको भला नहीं जानूंगा मनकर वचनकर कायकर । ऐसा नौमां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर मनवचन काय तीनों लगाये इसलिये तेईसकी समस्या हुई । ९ । २३ । आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नही कराऊंगा, अन्य करते हुए को भला नहीं जानूंगा मनकर वचनकर कायकर । ऐसा दसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर मनवचन काय तीनों लगाये इसलिये तेईसकी समस्या हुई । १० । २३ । ऐसे तेईसकी समस्याके तीन भंग हुए ॥ आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर वचनकर । ऐसा ग्यारवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । ११ । २२ । आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर वचनकर । ऐसा बारवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर मन वचन ये दो लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १२ । २२ । आगामी कर्मको अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर

१३ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा च कायेन चेति १४ न करिष्यामि न कुर्वतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १५ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १६ न करिष्यामि न कारयिष्यामि वाचा च कायेन चेति १७ न करिष्यामि न कुर्वतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति १८ न कारयिष्यामि न कुर्वतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति १९ न करिष्यामि न कारयिष्यामि मनसा चेति २० न करिष्यामि न कुर्वतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि

नाहं चक्षुर्दर्शनावरणीयफलं भुंजे । तर्हि किं करोमि ? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये ।

वचनकर । ऐसा तेरवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर मन वचन लगाये तब वाईसकी समस्या हुई । १३ । २२ । आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेर कर नहीं कराऊंगा मनकर कायकर । ऐसा चौदवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर मन और काय ये दो लगाये । इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १४ । २२ । आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर कायकर । ऐसा पंद्रहवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर मन काय ये दो लगाये इसलिये वाईसकी समस्या हुई । १५ । २२ । आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर कायकर । ऐसा सोलवा भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर मनकाय ये दो लगाये इसलिये वाईसकी समस्या हुई । १६ । २२ । आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा वचनकर कायकर । ऐसा सत्रहवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर वचनकाय लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १७ । २२ । आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा वचनकर कायकर । ऐसा अठारवां भंग हुआ । इसमे कृत अनुमोदना इन दोनोंपर वचन काय लगाये इसलिये बाईसकी समस्या हुई । १८ । २२ । आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानूंगा वचनकर कायकर । ऐसा उनईसवां भंग हुआ । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर वचनकाय ये दो लगाये इसलिये वाईसकी समस्या हुई । १९ । २२ । ऐसे बाईसकी समस्याके नौ भंग हुए ॥ आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर । ऐसा वीसवां भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर एक मन लगा इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २० । २१ । आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर । ऐसा इकईसवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर एक मन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई । २१ । २१ । आ-

मनसा चेति २१ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति २२ न करिष्यामि न कारयिष्यामि वाचा चेति २३ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति २४ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति २५ न करिष्यामि न कारयिष्यामि कायेन चेति २६ न करिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति २७ न कारयिष्यामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति २८ न करिष्यामि मनसा वाचा कायेन चेति २९ न कारयिष्यामि मनसा वाचा कायेन चेति ३० न कुर्वंतमप्यन्यं जनं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा कायेन

एवं टीकाकथितक्रमेण—"पण णव दु अट्ठत्तीसा चउ तिय णउदीय दुण्णि पंचेव । बावण्णहीण

गामी कर्मको मैं नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर । ऐसा बाईसवां भंग है । इसमे कारित अनुमोदना इन दोनोंपर एक मन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२२।२१। आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा वचनकर । ऐसा तेईसवा भंग है । इसमें कृतकारित इन दोनोंपर एक वचन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२३।२१। आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा वचनकर । ऐसा चौवीसवां भंग है । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर एक वचन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२४।२१ आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला भी नहीं जानूंगा वचनकर । ऐसा पच्चीसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोदना इन दोनोंपर एक वचन लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२५।२१। आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा कायकर । ऐसा छव्वीसवां भंग है । इसमें कृत कारित इन दोनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२६।२१। आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा कायकर । ऐसा सत्ताईसवां भंग हुआ । इसमें कृत अनुमोदना इन दोनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२७।२१। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा, अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा कायकर । ऐसा अट्ठाईसवां भंग है । इसमें कारित अनुमोमोदना इन दोनोंपर एक काय लगाया इसलिये इकईसकी समस्या हुई ।२८।२१ ऐसे ईकईसकी समस्याके नौ भंग हुए ॥ आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा मनकर वचनकर कायकर । ऐसा उनतीसवां भंग है । इसमें एक कृतपर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्या हुई ।२९।१३। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर वचनकर कायकर । ऐसा तीसवां भंग है । इसमें एक कारितपर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्या हुई ।३०।१३। आगामी कर्मको मैं

चेति ३१ न करिष्यामि मनसा वाचा चेति ३२ न कारयिष्यामि मनसा वाचा चेति ३३ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा वाचा चेति ३४ न करिष्यामि मनसा च कायेन चेति ३५ न कारयिष्यामि मनसा च कायेन चेति ३६ न कुर्वंतयप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३७ न करिष्यामि वाचा च कायेन चेति ३८ न कारयिष्यामि वाचा च कायेन चेति ३९ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा च कायेन चेति ४० न करिष्यामि मनसा चेति ४१ न कारयिष्यामि मनसा चेति ४२ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा चेति ४३ न करिष्यामि वाचा चेति ४४ न

वियसय पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा" ॥ १ ॥ इमा गाथामाश्रित्य अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्र-

---

अन्य करते हुएको भला नहीं जानूंगा मनकर वचनकर कायकर। ऐसा इकतीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर मन वचन काय तीनों लगाये इसलिये तेरहकी समस्या हुई।३१।१३। ऐसे तेरह समस्याके तीन भंग हुए॥ आगामी कर्मको मैं न करूंगा मनकर वचनकर। ऐसा बत्तीसवां भंग है। इसमें एक कृतपर मन वचन दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३२। १२। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर वचनकर। ऐसा तेतीसवां भंग है। इसमे एक कारितपर मन वचन दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३३। १२। आगामी कर्मको मैं अन्यके करनेको नहीं अनुमोदूंगा मनकर वचनकर। ऐसा चौतीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर मन वचन दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३४। १२। आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा मनकर कायकर। ऐसा पैंतीसवां भंग है। इसमे एक कृतपर मनकाय ये दो लगाये इस लिये बारहकी समस्या हुई। ३५। १२। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर कायकर। ऐसा छत्तीसवां भंग है। इसमें एक कारितपर मन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३६। १२। आगामी कर्मको मैं अन्यके करनेको भला नहीं जानूंगा मनकर कायकर। ऐसा सैतीसवां भंग है। इसमें एक अनु-मोदना पर मन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३७। १२। आगामी कर्मको मैं नहीं करूंगा वचनकर कायकर। ऐसा अडतीसवां भंग है। इसमें एक कृत-पर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३८। १२। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा वचनकर कायकर। ऐसा उनतालीसवां भंग है। इसमें एक कारितपर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ३९। १२। आगामी कर्मको मैं अन्यके करनेको भला नहीं जानूंगा वचनकर कायकर। ऐसा चालीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर वचन काय ये दो लगाये इसलिये बारहकी समस्या हुई। ४०। १२। ऐसे बारहकी समस्याके नौ भंग हुए॥ आगामी

कारयिष्यामि वाचा चेति ४५ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि वाचा चेति ४६ न करिष्यामि कायेन चेति ४७ न कारयिष्यामि कायेन चेति ४८ न कुर्वंतमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि कायेन चेति ४९ "प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः। आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते" ॥ २२८ ॥ इति प्रत्याख्यानकल्पः

मितोत्तरप्रकृतीनां कर्मफलसंन्यासभावना नाटयितव्या, कर्तव्येत्यर्थः। किंच जगत्त्रयकालत्र-

---

कर्मको मैं नहीं करूंगा मनकर। ऐसा इकतालीसवां भंग है। इसमें एक कृतपर एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४१। ११। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा मनकर। ऐसा ब्यालीसवां भंग है। इसमें एक कारितपर एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४२। ११। आगामी कर्मको मै अन्यके करनेको भला नहीं जानूंगा मनकर। ऐसा तेतालीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर एक मन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४३। ११। आगामी कर्मको मै नहीं करूंगा वचनकर। ऐसा चवालीसवां भंग है। इसमें एक कृतपर एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४४। ११। आगामी कर्मको मै अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा वचनकर। ऐसा पैंतालीसवां भंग है। इसमें एक कारितपर एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४५। ११। आगामी कर्मको मैं अन्यके करनेको भला नहीं जानूंगा वचनकर। ऐसा छयालीसवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर एक वचन लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४६। ११। आगामी कर्मको मै नहीं करूंगा कायकर ऐसा सैंतालीसवां भंग है। इसमें एक कृतपर एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४७। ११। आगामी कर्मको मैं अन्यको प्रेरकर नहीं कराऊंगा कायकर। ऐसा अडतालीसवां भंग है। इसमें कारितपर एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४८। ११। आगामी कर्मको अन्यके करनेको भला नहीं जानूंगा कायकर। ऐसा उनचासवां भंग है। इसमें एक अनुमोदनापर एक काय लगाया इसलिये ग्यारहकी समस्या हुई। ४९। ११। ऐसे ग्यारहकी समस्याके नौ भंग हुए। इसतरह उनचास भंग प्रत्याख्यानके हुए। उनमे तेतीसकी समस्याका एक १ बत्तीसके तीन ३ इकतीसके तीन ३ तेईसके तीन ३ बाईसके नौ ९ इक्कीसके ९ तेरहके ३ बारहके ९ ग्यारहके ९। इस प्रकार सब मिलकर उनचास हुए॥ अब इस अर्थका कलशरूप २२८ वां काव्य कहते हैं—**प्रत्याख्याय** इत्यादि। **अर्थ**—प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहता है कि आगामी सब कर्मोंको मैं प्रत्याख्यान (त्याग) कर नष्ट मोहवाला हुआ कर्मसे रहित चैतन्यस्वरूप आत्मामें आपकर ही वर्तता हूं॥ **भावार्थ**—निश्चय चारित्रमें प्रत्याख्यानका विधान ऐसा है कि समस्त आगामी कर्मोंसे

समाप्तः । "समस्तमित्येवमपास्य कर्म त्रैकालिकं शुद्धनयावलंबी । विलीनमोहो रहितो विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथावलंबे ॥ २२९ ॥" अथ सकलकर्मफलसंन्यासभावनां नाटयति । "विगलंतु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमंतरेणैव । संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानं" ॥२३०॥ नाहं मतिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये

यसंबंधिमनोवचनकायकृतकारितानुमतख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादि-

---

रहित अपने शुद्ध चैतन्यकी प्रवृत्तिरूप शुद्धोपयोगमें वर्तना है। इसलिये ज्ञानी आगामी समस्त कर्मोंका प्रत्याख्यानकर अपने चैतन्यस्वरूपमें वर्तता है । यहां तात्पर्य ऐसा जानना कि व्यवहार चारित्रमें तो जैसा प्रतिज्ञामें दोष लगे उसका प्रतिक्रमण आलोचना प्रत्याख्यान होता है। और यहां निश्चय चारित्रका प्रधानपनेसे कथन है इसलिये शुद्धोपयोगसे विपरीत सभी कर्म आत्माके दोषस्वरूप हैं । उन सभी कर्मचेतनास्वरूप परिणामोंका ज्ञानी तीनकालके कर्मोंका प्रतिक्रमण आलोचना प्रत्याख्यान कर सब कर्मचेतनासे जुदे अपने शुद्धोपयोगस्वरूप आत्माके ज्ञान श्रद्धानकर और उसमें स्थिर होनेका विधानकर निष्प्रमाद दशाको प्राप्त हो श्रेणी चढ केवलज्ञान उपजानेके सन्मुख होता है। यह ज्ञानीका कार्य है। ऐसा **प्रत्याख्यान** कल्प समाप्त किया ॥ आगे सकल कर्मके संन्यासकी (क्षेपणेकी) भावनाको नृत्य कराके कथन पूर्ण करनेका २२९ वां काव्य कहते हैं—**समस्त** इत्यादि । **अर्थ**—शुद्ध नयको आलंबन करनेवाला कहता है कि पूर्वोक्त प्रकार अतीत वर्तमान भविष्यत्‌रूप तीन काल संबंधी कर्मोंको छोड़कर शुद्धनयका अवलंबन करनेवाला ज्ञानी मैं मिथ्यात्वकर्मको नष्ट करता हुआ अब सब विकारोंसे रहित चैतन्यमात्र आत्माका अवलंबन करता हूं॥ अब सकल कर्मफलोंके संन्यासकी भावनाका नृत्य कराते है। उसका टीकामें संस्कृत पाठ है उसमें प्रथम समुच्चय अर्थका २३० वां काव्य कहते हैं—**विगलंतु** इत्यादि। **अर्थ**—सब कर्मफलोंकी संन्यासभावना करनेवाला कहता है कि कर्मरूपी विषवृक्षके फल हैं वे मेरे भोगनेविना ही खिर जाओ, मैं चैतन्यस्वरूप अपने आत्माको निश्चल अनुभवता हूं॥ **भावार्थ**—ज्ञानी कहता है कि कर्मका फल जो उदय आता है उसको मैं ज्ञाता द्रष्टा हुआ देखता हूं उसके फलका भोक्ता नहीं बनता। इसलिये मेरे भोगेविना ही वे कर्म खिर जावें मैं अपने चैतन्यस्वरूप आत्मामें लीन हुआ उनके देखने जाननेवाला ही होउं। यहां इतना विशेष दूसरा जानना कि अविरत दशामें तथा देशविरत प्रमत्तसंयत दशामें तो ऐसा ज्ञान श्रद्धान ही प्रधान है और जब अप्रमत्त दशा होकर श्रेणी चढता है तब यह अनुभव साक्षात् होता है॥ अब सकलकर्मफलोंकी संन्यासभावनाका पाठ संस्कृत टीकामें ऐसा है—**नाहं मतिज्ञाना** इत्यादि। **अर्थ**—मैं ज्ञानी हूं इसलिये मतिज्ञानावरणीयनामा कर्मके फलको

१ नाहं श्रुतज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २ नाहमवधिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३ नाहं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४ नाहं केवलज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५ नाहं चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६ नाहमचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७ नाहमवधिदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८ नाहं केवलदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ९ नाहं निंद्रादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १० नाहं निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ११ नाहं प्रचलादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १२ नाहं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १३ नाहं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १४ नाहं सातवेदनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १५ नाहमसातवेदनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १६

समस्तपरद्रव्यालंबनोत्पन्नशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितेन शून्येन चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वस-

---

नहीं भोगता हूं, चैतन्यस्वरूप आत्माको ही संचेतता (एकाग्र अनुभव करता) हूं। यहांपर चेतना अनुभव करना वेदना भोगना इनका एक ही अर्थ जानना । और सं उपसर्गसे एकाग्र अनुभवना जानना यह सब पाठोंमें समझना । १ । इसीतरह अन्य एकसौ सैंतालीस कर्म प्रकृतियोंके संस्कृत पाठ हैं उनकी वचनिका लिखते हैं—मैं श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके फलको नहीं भोगता, चैतन्यस्वरूप आत्माको ही अनुभवता हूं । २। मैं अवधिज्ञानावरणीय कर्मके फलको नहीं भोगता, चैतन्य० ।३। मै मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म०, चैतन्य० । ४ । मैं केवलज्ञानावरणीयकर्म०, चैतन्य० । ५ । मैं चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । ६ । मैं अचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । ७ । मैं अवधिदर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । ८ । मैं केवलदर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । ९ । मै निद्रादर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । १० । मैं निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्मके फलको नहीं० चैतन्य० ।११। मैं प्रचलादर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । १२ । मैं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । १३ । मै स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्म० चैतन्य० । १४ । मैं सातावेदनीय कर्म० चैतन्य० । १५ । मैं असाता वेदनीयकर्म०, चैतन्य० । १६ । मैं सम्यक्त्वमोह-

---

१ मदखेदक्लापविनोदार्थं स्वापो निद्रा । अस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा । या क्रिया आत्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकमदश्रमादसातस्यापि नेत्रमात्रविक्रियासूचिका सैव पुनरावर्त्यमाना प्रचलाप्रचला ।

नाहं सम्यक्त्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १७ नाहं मिथ्यात्वमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १८ नाहं सम्यक्त्वमिथ्यात्वमोहनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १९ नाह अनंतानुबंधिक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयफल भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २० नाहं अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २१ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २२ नाहं संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनोयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २३ नाहमनंतानुबंधिमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २४ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयफल भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २५ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २६ नाहं संज्वलनमानकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २७ नाहमनंतानुबंधिमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेयते २८ नाहमप्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २९ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३० नाहं संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव सचेतये ३१ नाहमनंतानुबंधिलोभकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३२

म्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजपरमानंदरूपसुख-

---

नीयकर्म० चैतन्य० । १७ । मैं मिथ्यात्वमोहनीयकर्म०, चैतन्य० । १८ । मैं सम्यग्मिथ्यात्त्वमोहनीयकर्म०, चैतन्य० । १९ । मै अनंतानुबंधी क्रोधकषायवेदनीयरूपमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २० । मैं अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २१ । मैं प्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।२२। मैं संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २३ । मैं अनंतानुबंधिमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २४ । मैं अप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।२५। मै प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।२६। मैं संज्वलनमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।२७। मै अनंतानुबंधीमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २८ । मै अप्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । २९ । मैं प्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३०। मैं संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३१ । मैं अनंतानुबंधी लोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३२ । मै अप्रत्याख्यानावरणीयलोभ-

नाहमप्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३३ नाहं प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३४ नाहं संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३५ नाहं हास्यनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३६ नाहं रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३७ नाहं अरतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३८ नाहं शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ३९ नाहं भयनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४० नाहं जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४१ नाहं स्त्रीवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४२ नाहं पुंवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४३ नाहं नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचतये ४४ नाहं नरकायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४५ नाहं तिर्यगायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव सचेतये ४६ नाहं मानुषायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव मंचेतये ४७ नाहं देवायुःफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४८ नाहं नरकगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४९ नाहं तिर्यग्गतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५० नाहं मनुष्यगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५१ नाहं देवगतिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये

रसास्वादपरमसमरसीभावानुभवसालंबेन भरितावस्थेन केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य सा-

---

कषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३३ । मैं प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३४ । मै संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३५ । मैं हास्यनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० । ३६ । मैं रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३७। मै अरतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३८। मैं शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।३९। मै भयनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैत० ।४०। मैं जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।४१। मैं स्त्रीवेदनोकषायेवदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।४२। मै पुरुषवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य० ।४३। मै नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्म० चैतन्य ।४४। मै नरकआयुकर्म० चैतन्य० ।४५। मै तिर्यंचआयुकर्म० चैतन्य० । ४६ । मै मनुष्यआयुकर्म० चैतन्य० । ४७ । मैं देवआयुकर्म० चैतन्य० । ४८ । मैं नरकगतिनामकर्म चैतन्य० । ४९ । मै तिर्यंचगतिनामकर्म० चैतन्य० । ५० । मै मनुष्यगतिनामकर्म० चैतन्य० । ५१ । मै देवगतिनामकर्म०

५२ नाहमेकेंद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५३ नाहं द्वींद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५४ नाहं त्रीद्रियजातिनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५५ नाहं चतुरिंद्रियजातिनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५६ नाह पंचेंद्रियजातिनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५७ नाहमौदारिकशरीरनामकर्मफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५८ नाहं वैक्रियिकशरीरनामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५९ नाहमाहारकशरीरनामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६० नाहं तैजसशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६१ नाहं कार्माणशरीरनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६२ नाहमौदारिकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६३ नाहं वैक्रियकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६४ नाहमाहारकशरीरांगोपांगनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६५ नाहमौदारिकशरीरबंधननामफलं भुजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६६ नाहं वैक्रियिकशरीरबंधननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६७ नाहमाहारकशरीरबंधननामकर्मफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६८ नाहं तैजसशरीरबंधननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ६९ नाहं कार्मणशरीरबंधननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७० नाहमौदारिकशरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७१ नाहं वैक्रियकशरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मान-

---

क्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसाररूपेण शुद्धज्ञानचेतनाभाव-

---

चैतन्य० । ५२ । मैं एकेंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५३ । मैं द्वींद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५४ । मैं त्रींद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५५ । मैं चतुरिंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५६ । मैं पचेंद्रियजातिनामकर्म० चैतन्य० । ५७ । मैं औदारिकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ५८ । मैं वैक्रियिकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ५९ । मै आहारकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६० । मै तैजसशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६१ । मैं कार्मणशरीरनामकर्म० चैतन्य० । ६२ । मैं औदारिकशरीरअंगोपांगनामकर्म० चैतन्य० । ६३ । मैं वैक्रियिकशरीरअंगोपांगनामकर्म० चैतन्य० । ६४ । मैं आहारकशरीरागोपांगनामकर्म० चैतन्य० । ६५ । मैं औदारिकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६६ । मैं वैक्रियिकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० ६७ । मैं आहारकशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६८ । मैं तैजसशरीरबंधननामकर्म० चैतन्य० । ६९ । मैं कार्मणशरीरबंधननामकर्म०- चैतन्य० । ७० । मैं औदारिकशरीरसंघातनामकर्म० चैतन्य० । ७१ । मैं वैक्रियिकश

मात्मानमेव संचेतये ७२ नाहमाहारकशरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७३ नाहं तैजसशरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७४ नाहं कार्माणशरीरसंघातनामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७५ नाहं समचतुरस्रसंस्थाननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७६ नाहं न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७७ नाहं सातिसंस्थाननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७८ नाहं कुब्जसंस्थाननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ७९ नाहं वामननामसंस्थाननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८० नाहं हुंडकसंस्थाननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८१ नाहं वज्रर्षभनाराचसंहनननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८२ नाहं वज्रनाराचसंहनननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८३ नाहं नाराचसंहनननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८४ नाहमर्धनाराचसंहनननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८५ नाहं कीलिकासंहनननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८६ नाहमसंप्राप्तसपाटिकासंहनननामफलं भुंजे चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ८७ नाहं स्निग्धस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ८८ नाहं सूक्ष्मस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ८९ नाहं शीतस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ९० नाहमुष्णस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ९१ नाहं गुरुस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ९२ नाहं लघुस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ९३ नाहं मृदुस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ९४ नाहं कर्कशस्पर्शनामफलं भुंजे चैतन्या० ९५ नाहं

नावष्टंभेन कृत्वा कर्मचेतनासन्यासभावना कर्मफलचेतनासंन्यासभावना च मोक्षार्थिना पुरुषेण

रीरसंघातनामकर्म० चैतन्य० । ७२ । मैं आहारकशरीरसंघातनामकर्म० चैतन्य० । ७३। मैं तैजसशरीरसंघातनामकर्म० चैतन्य० । ७४ । मैं कार्मणशरीरसंघातनामकर्म० चैतन्य० । ७५ । मैं समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म० चैतन्य० । ७६ । मैं न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननामकर्म० चैतन्य० । ७७ । मैं सातिकसंस्थाननामकर्म० चैतन्य० । ७८ । मैं कुब्जकसंस्थाननामकर्म० चैतन्य० । ७९ । मैं वामनसंस्थाननामकर्म० चैतन्य० । ८० । मैं हुंडकसंस्थाननामकर्म० चैतन्य० । ८१ । मैं वज्रर्षभनाराचसंहनननामकर्म० चैतन्य० । ८२ । मैं वज्रनाराचसंहनननामकर्म० चैतन्य० । ८३ । मैं नाराचसंहनननामकर्म० चैतन्य० । ८४ । मैं अर्धनाराचसंहनननामकर्म चैतन्य० । ८५ । मैं कीलिकासंहनननामकर्म० चैतन्य० । ८६ । मैं असंप्राप्तासृपाटिकासंहनननामकर्म० चैतन्य० । ८७ । मैं स्निग्धस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ८८ । मैं रूक्षस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ८९ । मैं शीतस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ९० । मैं उष्णस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ९१ । मैं गुरुस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ९२ । मैं लघुस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ९३ । मैं मृदुस्पर्शनाम-

मधुररसनामफलं भुंजे चैतन्या० ९६ नाहमाम्लरसनामफलं भुंजे चैतन्या० ९७ नाहं तिक्तरसनामफलं भुंजे चैतन्या० ९८ नाहं कटुकरसनामफलं भुंजे चैतन्या० ९९ नाहं कषायरसनामफलं भुंजे चैतन्या० १०० नाहं सुरभिगंधनामफलं भुंजे चैतन्या० १०१ नाहमसुरभिगंधनामफलं भुंजे चैतन्या० १०२ नाहं शुक्लवर्णनामफलं भुंजे चैतन्या० १०३ नाह रक्तवर्णनामफलं भुंजे चैतन्या० १०४ नाहं पीतवर्णनामफलं भुंजे चैतन्या० १०५ नाहं हरितवर्णनामफलं भुंजे चैतन्या० १०६ नाहं कृष्णवर्णनामफलं भुंजे चैतन्या० १०७ नाहं नरकगत्यानुपूर्वीनामफल भुंजे चैतन्या० १०८ नाहं तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनामफलं भुंजे चैतन्या० १०९ नाहं मनुष्यगत्यानुपूर्वीनामफलं भुंजे चैतन्या० ११० नाहं देवगत्यानुपूर्वीनामफलं भुंजे चैतन्या० १११ नाहं निर्माणनामफलं भुंजे चैतन्या० ११२ नाहमगुरुलघुनामफलं भुंजे चैतन्या० ११३ नाहमुपघातनामफलं भुंजे चैतन्या० ११४ नाहं परघातनामफलं भुंजे चैतन्या० ११५ नाहमातपनामफलं भुंजे चैतन्या० ११६ नाहमुद्योतनामफलं भुंजे चैतन्या० ११७ नाहमुच्छ्वासनामफलं भुंजे चैतन्या० ११८ नाहं प्रशस्तविहायोगतिनामफलं भुंजे चैतन्या० ११९ नाहमप्रशस्तविहायोगतिनामफलं भुंजे चैतन्या० १२० नाहं साधारणशरीरनामफलं भुंजे चैतन्या०

कर्तव्येति भावार्थः । एवं गाथाद्वय कर्मचेतनासंन्यासभावनामुख्यत्वेन, गाथैका कर्मफलचेत-

---

कर्म० चैतन्य० । ९४ । मैं कर्कशस्पर्शनामकर्म० चैतन्य० । ९५ । मैं मधुररसनामकर्म० चैतन्य० । ९६ । मै आम्लरसनामकर्म० चैतन्य० । ९७ । मै तिक्तरसनामकर्म० चैतन्य० । ९८ । मै कटुकरस नामकर्म० चैतन्य० । ९९ । मैं कषायरसनामकर्म० चैतन्य० । १०० । मैं सुरभिगंधनामकर्म० चैतन्य० । १०१ । मैं असुरभिगंधनामकर्म० चैतन्य० । १०२ । मैं शुक्लवर्णनामकर्म० चैतन्य० । १०३ । मैं रक्तवर्णनामकर्म० चैतन्य० । १०४ । मैं पीतवर्णनामकर्म० चैतन्य० । १०५ । मैं हरितवर्णनामकर्म० चैतन्य० । १०६ । मैं कृष्णवर्णनामकर्म० चैतन्य० । १०७ । मैं नरकगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैतन्य० । १०८ । मैं तिर्यंचगत्यानुपूर्वीनामकर्म० चैतन्य० । १०९ । मै मनुष्यगत्यानुपूर्वीनामकर्म० । ११० । मैं देवगत्यानुपूर्वी नामकर्म० चैतन्य० । १११ । मैं निर्माणनामकर्म० चैतन्य० ११२ । मैं अगुरुलघुनामकर्म० चैतन्य० । ११३ । मैं उपघातनामकर्म० चैतन्य० । ११४ । मैं परघातनामकर्म० चैतन्य० । ११५ । मैं आतपनामकर्म० चैतन्य० । ११६ । मैं उद्योतनामकर्म० चैतन्य० ।११७। मैं उच्छ्वासनामकर्म० चैतन्य० । ११८ ।मैं प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म० चैतन्य० ।११९।

१२१ नाहं प्रत्येकशरीरनामफलं भुंजे चैतन्या० १२२ नाहं स्थावरनामफलं भुंजे चैतन्या० १२३ नाहं त्रसनामफलं भुंजे चैतन्या० १२४ नाहं सुभगनामफलं भुंजे चैतन्या० १२५ नाहं दुर्भगनामफलं भुंजे चैतन्या० १२६ नाहं सुस्वरनामकर्मफलं भुंजे चैतन्या० १२७ नाहं दुःस्वरनामफलं भुंजे चैतन्या० १२८ नाह शुभनामफलं भुंजे चैतन्या० १२९ नाहमशुभनामफलं भुंजे चैतन्या० १३० नाहं सूक्ष्मशरीरनामफलं भुंजे चैतन्या० १३१ नाहं बादरशरीरनामफलं भुंजे चैतन्या० १३२ नाहं पर्याप्तनामफलं भुंजे चैतन्या० १३३ नाहमपर्याप्तनामफलं भुंजे चैतन्या० १३४ नाहं स्थिरनामफलं भुंजे चैतन्या० १३५ नाहमस्थिरनामफलं भुंजे चैतन्या० १३६ नाहमादेयनामफलं भुंजे चैतन्या० १३७ नाहमनादेयनामफलं भुंजे चैतन्या० १३८ नाहं यशःकीर्तिनामफलं भुंजे चैतन्या० १३९ नाहमयशःकीर्तिनामफलं भुंजे चैतन्या० १४० नाहं तीर्थकरत्वनामफलं भुंजे चैतन्या० १४१ नाहमुच्चैर्गोत्रनामफलं भुंजे चैतन्या० १४२ नाहं नीचैर्गोत्रनामफलं भुंजे चैतन्या० १४३ नाहं दानांतरायनामफलं भुंजे चैतन्या० १४४ नाहं लोभांतरायनाम-भुंजे चैतन्या० १४५ नाहं भोगांतरायनामफलं भुंजे चैतन्या० १४६ नाहमुपभोगांतरा-यनामफलं भुंजे चैतन्या० १४७ नाहं वीर्यांतरायनामफलं भुंजे चैतन्या० ॥ १४८ ॥

नासंन्यासभावनामुख्यत्वेनेति दशमस्थले गाथात्रयं गतं ॥३८७।३८८।३८९॥ अथेदानीं व्या-

---

मैं अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म० चैतन्य० ।१२०। मैं साधारणशरीरनामकर्म० चैतन्य० । १२१ । मैं प्रत्येकशरीरनामकर्म० चैतन्य० । १२२ । मै स्थावरनामकर्म० चैतन्य० । १२३ । मैं त्रसनामकर्म० चैतन्य० । १२४ । मैं सुभगनामकर्म० चैतन्य० । १२५ । मैं दुर्भगनामकर्म० चैत० । १२६ । मै सुस्वरनामकर्म० चैतन्य० । १२७ । मै दुःस्वरनाम-कर्म० चैत० ।१२८। मैं शुभनामकर्म० चैतन्य० । १२९ । मैं अशुभनामकर्म० चैतन्य० । १३० । मैं सूक्ष्मशरीरनामकर्म० चैत० ।१३१। मै बादरशरीरनामकर्म० चैत० ।१३२। मै पर्याप्तनामकर्म० चैत० । १३३ । मै अपर्याप्तनामकर्म० चैत० । १३४ । मैं स्थिर-नामकर्म० चैत० । १३५ । मैं अस्थिरनामकर्म० चैत० । १३६ । मै आदेयनामकर्म० चैत० । १३७ । मैं अनादेयनामकर्म० चैत० । १३८ । मै यशःकीर्ति नामकर्म० चैत० । १३९ । मैं अयशःकीर्तिनामकर्म० चैत० । १४० । मै तीर्थकरनामकर्म० चैत० । १४१ । मैं उच्चैर्गोत्रकर्म० चैत० । १४२ । मैं नीचैर्गोत्रकर्म० चैत० । १४३ । मैं दानांतरायकर्म० चैत० । १४४ । मैं लाभांतरायकर्म० चैत० । १४५ । मैं भोगांतराय-कर्म० चैत० । १४६ । मैं उपभोगांतरायकर्म० चैत० । १४७ । मैं वीर्यांतरायकर्म० चैतन्य० । १४८ ॥ इसतरहकी ज्ञानी सकल कर्मोंके फलके संन्यासकी भावना करे ।

"निश्शेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैव सर्वक्रियांतरविहारनिवृत्तवृत्तेः । चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं कालावलीयमचलस्य वहत्वनंतं ॥ २३१ ॥ यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां भुक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः । आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं निष्कर्मशर्ममयमेति दशांतरं सः ॥ २३२ ॥ अत्यंतं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च प्रस्पष्टं

व्यहारिकजीवादिनवपदार्थेभ्यो भिन्नमपि टंकोत्कीर्णज्ञायकैकपारमार्थिकपदार्थसंज्ञं गद्यपद्यादिविचि-

यहां भावना नाम वार वार चिंतवनकर उपयोगके अभ्यास करनेका है । सो जब सम्यग्दृष्टि हो ज्ञानी होता है तब ज्ञान श्रद्धान तो होही गया कि मैं शुद्ध नयकर समस्त कर्मोंसे और कर्मोंके फलसे रहित हू । परंतु पूर्व बांधे हुए कर्म उदय आवें उनमें उन भावोंका कर्तापना छोड तथा पूर्व तीन कालसंबंधी उनचास भंगोंकर कर्म चेतनाके त्यागकी भावनाकर और इन सब कर्मोंके फल भोगनेके त्यागकी भावनाकर एक चैतन्यस्वरूप आत्माको ही अनुभव करे । यही भोगना बाकी रहा है सो अविरत देशविरत प्रमत्तसंयत अवस्थामें तो ज्ञान श्रद्धानमें निरतर भावना है ही परंतु जब अप्रमत्तदशा हो एकाग्र चित्तकर ध्यान करे तब केवल चैतन्य मात्र आत्मामें उपयोग लगाये और शुद्धोपयोगरूप होय तब निश्चय चारित्ररूप शुद्धोपयोगभावसे श्रेणी चढ केवलज्ञान उपजाता है । उससमय इस भावनाका फल कर्मचेतना और कर्मफलचेतनासे रहित साक्षात् ज्ञानचेतनारूप होना है । फिर अनंतकालतक ज्ञान चेतनारूप ही हुआ वह आत्मा परमानंदमें मग्न रहता है ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप २३१ वां काव्य कहते हैं—**निःशेष** इत्यादि । सकल कर्मोंके फलका त्यागकर ज्ञान चेतनाकी भावना करनेवाला ज्ञानी कहता है कि पूर्वोक्त प्रकार सकल कर्मोंके फलका संन्यास (त्याग) करनेसे मैं चैतन्यलक्षणवाले आत्मतत्त्वको ही अतिशयकर भोगता हूं और इसके सिवाय अन्य जो उपयोगकी क्रिया तथा बाह्यकी क्रिया उसमें प्रवृत्तिसे रहित वर्तनेवाला अचल हूं । सो मेरे यह कालकी आवली प्रवाहरूप अनंत है वह इसीको भोगनेरूप जाओ, उपयोगकी प्रवृत्ति अन्यमें मत जाओ ॥ **भावार्थ**—ऐसी भावना करनेवाला ज्ञानी ऐसा तृप्त हुआ है कि भावना करते हुए मानो साक्षात् केवली ही हुआ । सो ऐसा ही रहना अनंतकालतक चाहता है । वह ठीक है क्योंकि इसी भावनासे केवली होता है । केवल ज्ञान उपजनेका परमार्थ उपाय यही है, बाह्य व्यवहार चारित्र है वह इसीका साधनरूप है । तथा इसके विना व्यवहार चारित्र शुभकर्मको बांधता है मोक्षका उपाय नहीं है ॥ फिर २३२ वां काव्य कहते हैं—**यः पूर्व** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष पूर्वकालमें अज्ञानभावसे किये कर्मरूप विषवृक्षके उदय आये फलको स्वामी होके नहीं भोगता और

१ सर्वं यत्क्रियांतरं शुद्धचेतनातिरिक्तविभावरूपं न तु विहरणं नाम शुद्धसंवित्ते सत्त्वेन भवन तस्मान्निवृत्ता वृत्तिर्ज्ञानचेतना यस्य तस्य तथाभूतस्येत्यर्थः । २ स्वर्गादिसुखं हि कर्मजन्यं मोक्षे तु तदभावात् अनाकुलत्वलक्षणशर्मसद्भावाच्च निष्कर्मशर्ममयत्वमिति ।

नाटयित्वा प्रलपनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः। पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां सानंदं नाटयंतः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबंतु ॥ २३३ ॥ इतः पदार्थप्रथनावगुंठिता विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत्। समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयात् विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥ २३४ ॥" ३८७ ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥

प्ररचनारचितशास्त्रैः शब्दादिपंचेंद्रियविषयप्रभृतिपरद्रव्यैश्च शून्यमपि रागादिविकल्पोपाधिरहितं

निश्चयकर अपने आत्मस्वरूपसे ही तृप्त है अन्य कुछ तृष्णा नहीं करता वह पुरुष वर्तमानकालमे सुंदर (रमण करने योग्य) तथा आगामी कालमें जिनका फल सुंदर (रमणे योग्य) ऐसे कर्मोंसे रहित स्वाधीन सुखमयी अन्यस्वरूप दशाको प्राप्त होता है। जो दशा संसार अवस्थामे पहले कभी नहीं हुई थी ॥ **भावार्थ**—इस ज्ञानचेतनाकी भावनाका यह फल है। इसकी भावनासे अत्यंत तृप्ति रहती है अन्य तृष्णा नहीं रहती। और आगामी कालमें केवल ज्ञान उपार्जनकर सब कर्मोंसे रहित मोक्ष अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ अब उपदेश करते है कि ऐसे कर्मचेतना और कर्मफलचेतनाके त्यागकी भावनाकर अज्ञान चेतनाके अभावको प्रगट नचाके ज्ञानचेतनाके स्वभावको पूर्णकर उसको नचाते हुए ज्ञानीजन सदाकाल आनंदरूप रहैं ॥ इसी अर्थका कलशरूप २३३ वां काव्य है—**अत्यंतं** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानीजन है वे कर्मसे तथा कर्मके फलसे अत्यंतविरक्त भावनाको निरंतर भायकर और समस्त अज्ञान चेतनाके नाशको अच्छी तरह नृत्य कराके अपने निजरससे प्राप्त स्वभावरूप जो ज्ञानचेतना उसको आनंदसहित जैसे हो उसतरह पूर्णकर नृत्य कराते हुए यहांसे आगे कर्मके अभावरूप आत्मीकरसरूप अमृतरस उसको सदाकाल पीवें। यह ज्ञानीजनोंको प्रेरणा है ॥ **भावार्थ**—पहले तो तीन कालसंबंधी कर्मका कर्तापनारूप कर्मचेतनाके उनचास भंगरूप त्यागकी भावना कराई पीछे एकसौ अड़तालीस कर्मप्रकृतियोंका उदयरूप कर्मफलके त्यागकी भावना कराई। ऐसे अज्ञानचेतनाका प्रलय कराके ज्ञानचेतनामें प्रवर्तनेका उपदेश किया है। यह ज्ञान चेतना सदा आनंदरूप अपने स्वभावका अनुभवरूप है। उसको ज्ञानीजन! सदा भोगो यह श्रीगुरुओंका उपदेश है ॥ यह सर्व विशुद्ध ज्ञानका अधिकार है इसलिये ज्ञानको कर्ताभोक्तापनेसे भिन्न दिखलाया अव अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्योंके भावोंसे ज्ञानको जुदा दिखलाते हैं, उसकी सूचनिकाका २३४ वां काव्य है—**इतः पदार्थ** इत्यादि। **अर्थ**—यहांसे आगे इस ज्ञानके अधिकारमे सब वस्तुओंसे भिन्नपनेके निश्चयसे जुदा किया जो ज्ञान वह निश्चल तिष्ठता है। कैसा हुआ तिष्ठता है? पदार्थके विस्तारको ज्ञेयज्ञानसंबंध करके एकसा दिखलानेसे हुई जो अनेकरूप कर्तृत्वभावरूप क्रिया उसके विना एक ज्ञानक्रियामात्र सब आकुलतासे रहित देदीप्यमान हुआ तिष्ठता है ॥ **भावार्थ**—सब वस्तुओंसे जुदा ज्ञानको प्रगट दिखलाते हैं ॥ ३८७ से ३८९ तक ॥

सत्थं णाणं ण हवइ जह्मा सत्थं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥ ३९० ॥
सद्दो णाणं ण हवइ जह्मा सद्दो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥ ३९१ ॥
रूवं णाणं ण हवइ जह्मा रूवं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥ ३९२ ॥
वण्णो णाणं ण हवइ जह्मा वण्णो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥ ३९३ ॥
गंधो णाणं ण हवइ जह्मा गंधो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥ ३९४ ॥
ण रसो दु हवदि णाणं जह्मा दु रसो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं रसं य अण्णं जिणा विंति ॥ ३९५ ॥

सदानंदैकलक्षणसुख तरसास्वादेन भरितावस्थपरमात्मतत्त्व प्रकाशयति,—न श्रुतं ज्ञान अचेतनत्वात् ततो ज्ञानश्रुतयोर्व्यतिरेकः । न शब्दो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानशब्दयोर्व्यतिरेकः । न रूप ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरूपयोर्व्यतिरेकः । न वर्णो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानवर्णयोर्व्यतिरेकः । न गंधो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानगंधयोर्व्यतिरेकः । न रसो ज्ञानमचे-

---

यही गाथाओंमें कहते हैं,—[**शास्त्रं**] शास्त्र [**ज्ञानं न भवति**] ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**शास्त्रं किंचित् न जानाति**] शास्त्र कुछ जानता नहीं है जड है [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**शास्त्रं अन्यत्**] शास्त्र अन्य है ऐसे [**जिना विदंति**] जिन भगवान जानते हैं कहते हैं । [**शब्दः ज्ञानं न भवति**] शब्द ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**शब्दः किंचित् न जानाति**] शब्द कुछ जानता नहीं है [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**शब्दं अन्यं**] शब्द अन्य है ऐसा [**जिना विदंति**] जिनदेव कहते हैं [**रूपं ज्ञानं न भवति**] रूप ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**रूपं किंचित् न जानाति**] रूप कुछ जानता नहीं है [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**रूपं अन्यत्**] रूप अन्य है ऐसा [**जिना विदंति**] जिनदेव कहते हैं । [**वर्णः ज्ञानं न भवति**] वर्ण ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**वर्णः किंचित् न जानाति**] वर्ण कुछ नहीं जानता [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**वर्णः अन्यः**] वर्ण अन्य है [**जिना विदंति**] ऐसा जिनदेव कहते हैं । [**गंधः ज्ञानं न भवति**] गंध ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**गंधः किंचित् न जानाति**] गध कुछ नहीं

फासो ण हवइ णाणं जह्मा फासो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥ ३९६ ॥
कम्मं णाणं ण हवइ जह्मा कम्मं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥ ३९७ ॥
धम्मो णाणं ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥ ३९८ ॥
णाणमधम्मो ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥ ३९९ ॥
कालो णाणं ण हवइ जह्मा कालो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा विंति ॥ ४०० ॥

तनत्वात् ततो ज्ञानरसयोर्व्यतिरेक. । न स्पर्शो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानस्पर्शयोर्व्यतिरेकः । न कर्म ज्ञान अचेतनत्वात् ततो ज्ञानकर्मणोर्व्यतिरेकः । न धर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानधर्मयोर्व्यतिरेकः । नाधर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाधर्मयोर्व्यतिरेकः । न कालो ज्ञानमचेतन-

---

जानता [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं अन्यत्] ज्ञान अन्य है [गंधं अन्यं] गंध अन्य है ऐसा [जिना विदंति] जिनदेव कहते हैं । [रसः तु ज्ञानं न भवति] और रस ज्ञान नहीं है [यस्मात्तु] क्योंकि [रसः किंचित् न जानाति] रस कुछ जानता नहीं है [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं अन्यत्] ज्ञान अन्य है [रसं च अन्यं] रस अन्य है ऐसा [जिना विदंति] जिनदेव कहते हैं। [स्पर्शः ज्ञानं न भवति] स्पर्श ज्ञान नहीं है [यस्मात्] क्योंकि [स्पर्शः] स्पर्श [किंचित् न जानाति] कुछ नहीं जानता [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं अन्यत्] ज्ञान अन्य है [स्पर्शं अन्यं] स्पर्श अन्य है ऐसा [जिना विदंति] जिनदेव कहते हैं। [कर्म ज्ञानं न भवति] कर्म ज्ञान नहीं है [यस्मात्] क्योंकि [कर्म किंचित् न जानाति] कर्म कुछ नहीं जानता [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं अन्यत्] ज्ञान अन्य है [कर्म अन्यत्] कर्म अन्य है [जिना विदंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं। [धर्मः ज्ञानं न भवति] धर्म ज्ञान नहीं है [यस्मात्] क्योंकि [धर्मः किंचित् न जानाति] धर्म कुछ नहीं जानता [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं अन्यत्] ज्ञान अन्य है [धर्मं अन्यं] धर्म अन्य है ऐसा [जिना विदंति] जिनदेव कहते है। [अधर्मः ज्ञानं न भवति] अधर्म ज्ञान नहीं है [यस्मात्] क्योंकि [अधर्मः किंचित् न जानाति] अधर्म कुछ नहीं जानता [तस्मात्] इसलिये [ज्ञानं अन्यत्] ज्ञान अन्य है [अधर्मं अन्यं] अधर्म

---

१ धम्मच्छिओ ण णाणं पाठ तात्पर्यवृत्तौ । २ ण हवदि णाणमधम्मच्छिओ, तात्पर्यवृत्तौ ।

आयासंपि ण णाणं जह्मा यासं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं यासं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥ ४०१ ॥
[1]णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा ।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥ ४०२ ॥
जह्मा जाणइ णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणओ णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥ ४०३ ॥
णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥ ४०४ ॥

त्वात् ततो ज्ञानकालयोर्व्यतिरेकः । नाकाश ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाकाशयोर्व्यतिरेकः । नाध्यवसान ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाध्यवसानयोर्व्यतिरेकः । इत्येवं ज्ञानस्य सर्वैरेव परद्रव्यैः सह व्यतिरेकः निश्चयसाधितो द्रष्टव्यः । अथ जीव एवैको ज्ञानं चेतनत्वात् ततो ज्ञानजीवयोरेवाव्यतिरेकः । न च जीवस्य स्वय ज्ञानत्वात् ततो व्यतिरेकः कश्चनापि शकनीयः । एवं सति ज्ञानमेव सम्यग्दृष्टिः, ज्ञानमेव सयमः, ज्ञानमेवागपूर्वरूप सूत्र, ज्ञानमेव धर्माधर्मौ, ज्ञानमेव प्रव्रज्येति ज्ञानस्य

अन्य है ऐसा [**जिना विदंति**] जिनदेव कहते हैं [**कालः ज्ञानं न भवति**] काल ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**कालः किंचित् न जानाति**] काल कुछ नहीं जानता [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**कालं अन्यं**] काल अन्य है ऐसा [**जिना विदंति**] जिनदेव कहते हैं । [**आकाशं अपि ज्ञानं न**] आकाश भी ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**आकाशं किंचित् न जानाति**] आकाश कुछ नहीं जानता [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**आकाशं अन्यत्**] आकाश अन्य है ऐसा [**जिना विदंति**] जिनदेवने कहा है । [**तथा**] उसी प्रकार [**अध्यवसानं ज्ञानं न**] अध्यवसान ज्ञान नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**अध्यवसानं**] अध्यवसान [**अचेतनं**] अचेतन है [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं अन्यत्**] ज्ञान अन्य है [**अध्यवसानं अन्यत्**] अध्यवसान अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं । [**तस्मात् तु**] इसलिये [**जीवः**] जीव [**ज्ञायकः ज्ञानी**] ज्ञायक है वही ज्ञान है [**यस्मात्**] क्योंकि [**नित्यं जानाति**] निरंतर जानता है [**च**] और [**ज्ञानं**] ज्ञान [**ज्ञायकात् अव्यतिरिक्तं ज्ञातव्यं**] ज्ञायकसे अभिन्न है जुदा नहीं है ऐसा जानना चाहिये [**तु**] और [**ज्ञानं सम्यग्दृष्टि**] ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है [**संयमं**] संयम है [**अंगपूर्वगतं सूत्रं**] अंगपूर्वगत सूत्र है [**च धर्माधर्मं**] और धर्म अधर्म है [**तथा**] तथा [**प्रव्रज्यां**] दीक्षा भी ज्ञान है [**बुधाः अभ्युपयांति**] ऐसा ज्ञानीजन अंगीकार करते (मानते) हैं । **टीका**—वचनात्मक द्रव्य श्रुत ज्ञान नहीं है

---

1 अज्झवसाणं णाणं ण हवदि जम्हा अचेदणं णिच्च इति तात्पर्यवृत्तौ पाठः ।

शास्त्रं ज्ञानं न भवति यस्माच्छास्त्रं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यच्छास्त्रं जिना विदंति ॥ ३९० ॥
शब्दो ज्ञानं न भवति यस्माच्छब्दो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं शब्दं जिना विदंति ॥ ३९१ ॥
रूपं ज्ञानं न भवति यस्माद्रूपं न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यद्रूपं जिना विदंति ॥ ३९२ ॥
वर्णो ज्ञानं न भवति यस्माद्वर्णो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं वर्णं जिना विदंति ॥ ३९३ ॥
गंधो ज्ञानं न भवति यस्माद्गंधो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं गंधं जिना विदंति ॥ ३९४ ॥
न रसस्तु भवति ज्ञानं यस्मात्तु रसो न जानाति किंचित् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानं रसं चान्यं जिना विदंति ॥ ३९५ ॥

जीवपर्यायैरपि सहाव्यतिरेको निश्चयसाधितो द्रष्टव्यः । अथैवं सर्वपरद्रव्यव्यतिरेकेण सर्वदर्शनादिजीवस्वभावाव्यतिरेकेण चातिव्याप्तिमव्याप्तिं च परिहरमाणमनादिविभ्रममूलं धर्माधर्मरूपं परसमयमुद्वम्य स्वयमेव प्रव्रज्यारूपमापाद्य दर्शनज्ञानचारित्रस्थितिस्वरूपं स्वसमयमवाप्य मोक्षमार्गमात्मन्येव परिणतं कृत्वा समवाप्तसंपूर्णविज्ञानघनभावं हानोपादानशून्यं साक्षात्समयसारभूतं परमार्थरूपं शुद्धज्ञानमेकमेवावस्थितं द्रष्टव्यं । "अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं विभ्रत्पृथग्वस्तुता-

---

क्योंकि वचन अचेतन है इसलिये ज्ञानका और श्रुतका भेद है । शब्द है वह ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द पुद्गलद्रव्यका पर्याय है अचेतन है इसलिये ज्ञानका और शब्दका भेद है । रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप पुद्गलका गुण है अचेतन है इसलिये रूपका और ज्ञानका भेद है । वर्ण है वह ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण पुद्गलद्रव्यका गुण है अचेतन है इसलिये वर्णका और ज्ञानका भेद है । गध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध पुद्गलद्रव्यका गुण है अचेतन है इसलिये गंधका और ज्ञानका भेद है । रस ज्ञान नहीं है क्योंकि रस पुद्गल द्रव्यका गुण है अचेतन है इसलिये रसका ज्ञानका परस्पर भेद है । स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श पुद्गलद्रव्यका गुण है अचेतन है इसलिये स्पर्शका और ज्ञानका भेद है । कर्म है वह ज्ञान नहीं है क्योंकि कर्म अचेतन है इसलिये कर्मका और ज्ञानका भेद है । धर्मद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्म अचेतन है इसलिये धर्मद्रव्यका और ज्ञानका भेद है । अधर्मद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्मद्रव्य अचेतन है इसलिये अधर्मद्रव्यका और ज्ञानका भेद है । कालद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि काल अचेतन है इसलिये कालका और ज्ञानका भेद है । आकाशद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश अचेतन है इसलिये ज्ञानका और आकाशका भेद है । अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि

स्पर्शो न भवति ज्ञानं यस्मात्स्पर्शो न जानाति किंचित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं स्पर्शं जिना विदंति ॥ ३९६ ॥
कर्म ज्ञानं न भवति यस्मात्कर्म न जानाति किंचित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यत्कर्म जिना विदंति ॥ ३९७ ॥
धर्मो ज्ञानं न भवति यस्माद्धर्मो न जानाति किंचित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं धर्मं जिना विदंति ॥ ३९८ ॥
ज्ञानमधर्मो न भवति यस्मादधर्मो न जानाति किंचित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यमधर्मं जिना विदंति ॥ ३९९ ॥
कालो ज्ञानं न भवति यस्मात्कालो न जानाति किंचित्।
तस्मादन्यद् ज्ञानमन्यं कालं जिना विदंति ॥ ४०० ॥

मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितं। मध्याद्यंतविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभास्वरः शुद्ध-ज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥ १ ॥ उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयम-शेषतस्तत्। यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सधारणमात्मनीह ॥२॥ तपश्चरणं नयन् केन नयेन एतत्सर्वं ज्ञानं मन्यते? इति चेत् मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायपर्यंतस्वकीयस्वकीयगुणस्थानयोग्य-शुभाशुभशुद्धोपयोगाविनाभूतविवक्षिताशुद्धनिश्चयनयेनाशुद्धोपादानरूपेणेति। ततः स्थित शुद्ध-

---

अध्यवसान अचेतन है इसलिये ज्ञानका और कर्मके उदयकी प्रवृत्तिरूप अध्यवसानका भेद है। इसप्रकार तो ज्ञानका सब परद्रव्योंके साथ साथ भिन्न होनेका निश्चय साधा हुआ जानना। अब कहते हैं कि जीव ही एक ज्ञान है क्योंकि जीव चेतन है इसलिये ज्ञानका और जीवका अभेद है। जीवके अपने आप ज्ञानपना है ज्ञान जीवका भेद कुछभी शंकारूप नहीं करना। ऐसा होनेपर ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान ही संयम है, ज्ञान ही अंगपूर्वगत सूत्र है। तथा धर्म अधर्म भी ज्ञान ही है और ज्ञान ही दीक्षा है निश्चय चारित्र है। इसतरह जीवका पर्यायोंके साथ भी अभेदका निश्चय साधा हुआ देखना। अब कहते हैं कि इसप्रकार सब परद्रव्योंके साथ तो व्यतिरेक (भेद) कर तथा सब दर्शनको आदि लेकर जीवके स्वभावोंके साथ अभेदकर अतिव्याप्ति अव्याप्ति दोषको दूर करता हुआ, अनादिकालसे जिसका अविद्या मूलकारण है ऐसे पुण्य पाप जो शुभ अशुभरूप परसमय उसको दूरकर, आप निश्चय चारित्ररूप दीक्षाको पाकर, दर्शन ज्ञान चारित्रमें स्थितिरूप जो स्वसमय उसको व्यापकर आत्मामें ही मोक्षमार्गके परि-णामकर जिसने संपूर्ण विज्ञानघन स्वभाव पालिया है ऐसा, त्याग ग्रहणकर रहित साक्षात् समयसारभूत परमार्थरूप शुद्ध एक ज्ञान ही अवस्थित हुआ देखना अर्थात् प्रत्यक्ष स्व-संवेदनकर अनुभव करना ॥ **भावार्थ**—सब परद्रव्योंसे तो जुदा और अपने पर्या-योंसे अभेदरूप ऐसा ज्ञान एक दिखलाया। इसलिये अतिव्याप्ति और अव्याप्ति नाम-

आकाशमपि न ज्ञानं यस्मादाकाशं न जानाति किंचित् ।
तस्मादाकाशमन्यदन्यज्ज्ञानं जिना विदंति ॥ ४०१ ॥
नाध्यवसानं ज्ञानमध्यवसानमचेतनं यस्मात् ।
तस्मादन्यज्ज्ञानमध्यवसानं तथान्यत् ॥ ४०२ ॥
यस्माज्जानाति नित्यं तस्माज्जीवस्तु ज्ञायको ज्ञानी ।
ज्ञानं च ज्ञायकादव्यतिरिक्तं ज्ञातव्यं ॥ ४०३ ॥
ज्ञानं सम्यग्दृष्टिं तु संयमं सूत्रमंगपूर्वगतं ।
धर्माधर्मं च तथा प्रव्रज्यामभ्युपयांति बुधाः ॥ ४०४ ॥

पारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धोपादानरूपेण जीवादिव्यावहारिकनवपदार्थेभ्यो भिन्नमादिमध्यातमुक्तमेकमखंडप्रतिभासमयं निजनिरंजनसहजशुद्धपरमसमयसाराभिधानं सर्वप्रकारोपादेयभूतं शुद्धज्ञानस्वभावं शुद्धात्मतत्त्वमेव श्रद्धेयं ज्ञेयं ध्यातव्यमिति । एवं व्यावहारिकनवपदार्थमध्ये भूतार्थनयेन शुद्धजीव एक एव वास्तवः स्थित इति व्याख्यानमुख्यत्वेन एकादशमस्थले पंचदश गाथा गताः । किंच—मत्यादिसंज्ञानपंचकं पर्यायरूपं तिष्ठति शुद्धपा-

---

वाले लक्षणके दोष दूर होगये । क्योंकि आत्माका लक्षण उपयोग है उपयोगमें ज्ञान प्रधान है वह अन्य अचेतन द्रव्योंमें नहीं है इसकारण तो अतिव्याप्ति स्वरूप नहीं । और अपनी सब अवस्थाओंमें है इसलिये अव्याप्ति स्वरूप नहीं है । यहांपर ज्ञान कहनेसे आत्मा ही जानना क्योंकि अभेदविवक्षामें गुण और गुणीका आपसमें अभेद है इसलिये विरोध नहीं । यहां ज्ञानको ही प्रधानकर आत्माका अधिकार है इसी लक्षणसे सब परद्रव्योंसे भिन्न अनुभवगोचर होता है । यद्यपि आत्मामें अनंत धर्म हैं तौभी उनमें कोई तो छद्मस्थके अनुभवगोचर ही नहीं कि उनको कहे । छद्मस्थ ज्ञानी आत्माको कैसे पहचाने ? नहीं पहचान सकता । कोई धर्म अनुभव गोचर हैं उनमें कोई अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्वादिक हैं वे अन्यद्रव्योंसे साधारण (समान) हैं उनके कहनेसे जुदा आत्मा जाना नहीं जाता । कोई परद्रव्यके निमित्तसे हुए हैं उनको कहनेसे परमार्थ आत्माका शुद्ध स्वरूप कैसे जाना जाय ? इसलिये ज्ञान ही कहनेसे छद्मस्थ ज्ञानी आत्माको पहिचान सकता है । इसलिये ज्ञानको ही आत्मा कहकर इस ज्ञानमें अनादि अज्ञानसे शुभाशुभ उपयोगरूप परसमयकी प्रवृत्तिको दूरकर, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें प्रवृत्तिरूप स्वसमयरूप परिणमनस्वरूप मोक्षमार्गमें आत्माको परिणमाके संपूर्ण ज्ञानको जब प्राप्त होता है तब फिर त्याग ग्रहणकेलिये कुछ नहीं रहता । ऐसा साक्षात् समयसारस्वरूप पूर्ण ज्ञान परमार्थभूत शुद्ध ठहरे उसको देखना । वहांपर देखना भी तीन प्रकार जानना । एक तो शुद्धनयके ज्ञानकर इसका श्रद्धान करना । यह तो अविरत आदि अवस्थामें भी मिथ्यात्वके अभावसे होता है । दूसरा ज्ञान श्रद्धान हुए बाद बाह्य सब परिग्रहका

न श्रुतं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानश्रुतयोर्व्यतिरेकः । न शब्दो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानशब्दयोर्व्यतिरेकः । न रूपं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरूपयोर्व्यतिरेकः । न वर्णो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानवर्णयोर्व्यतिरेकः । न गंधो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानगंधयोर्व्यतिरेकः । न रसो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरसयोर्व्यतिरेकः । न स्पर्शो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानस्पर्शयोर्व्यतिरेकः । न कर्म ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकर्मणोर्व्यतिरेकः । न धर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानधर्मयोर्व्यतिरेकः । नाधर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाधर्मयोर्व्यतिरेकः । न कालो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकालयोर्व्यतिरेकः । नाकाशं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाकाशयोर्व्यतिरेकः । नाध्यवसानं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाध्यवसानयोर्व्यतिरेकः । इत्येवं ज्ञानस्य सर्वैरेव परद्रव्यैः सह व्यतिरेको निश्चयसाधितो भवति । अथ जीव एवैको ज्ञानं चेतनत्वात् ततो ज्ञानजीवयोरेवाव्यतिरेकः, नच जीवस्य स्वयं ज्ञानत्वात्ततो व्यतिरेकः कश्चनापि

रिणामिकभावस्तु द्रव्यरूपः । जीवपदार्थो हि न च केवलं द्रव्यं, न च पर्यायः, किंतु परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायधर्माधर्मभूतो धर्मी । तत्रेदानीं केन धर्मेण मोक्षो भवतीति विचार्यते—केवलज्ञान तावत्फलभूतमग्रे भविष्यति । अवधिमनःपर्ययज्ञानद्वयं च **रूपिष्ववधेः । तदनंतभागे मनःपर्ययस्य** इति वचनात् मूर्तविषयत्वादेव मूर्तः मोक्षकारणं न भवति । ततः सामर्थ्यादेव वहिर्विषयमतिज्ञानश्रुतज्ञानविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्माभिमुखपरिच्छित्तिलक्षणं निश्चय-

---

त्यागकर इसका अभ्यास करना । उपयोगको ज्ञानमें ही ठहराना । सो जैसा शुद्धनयकर अपने स्वरूपको सिद्धसमान जाना श्रद्धान किया वैसा ही ध्यानमें लेके एकाग्र चित्तको ठहराना वार वार इसीका अभ्यास करना । सो यह देखना अप्रमत्त दशामें होता है । सो जहांतक ऐसे अभ्याससे केवलज्ञान उपजे वहांतक यह अभ्यास निरंतर रहे । यह देखना दूसरा प्रकार है । यहांतक तो पूर्णज्ञानका शुद्ध नयके आश्रय परोक्ष देखना है । और तीसरा यह है कि केवल ज्ञान उपजे तब साक्षात् देखना होता है । उससमय सब विभावोंसे रहित हुआ सबको देखने जाननेवाला ज्ञान होता है । यह पूर्ण ज्ञानका प्रत्यक्ष देखना है । यह ज्ञान है वही आत्मा है । अभेदविवक्षामे ज्ञान कहो या आत्मा कहो कुछ विरोध नहीं जानना ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २३५ वां काव्य कहते हैं— **अन्येभ्यो** इत्यादि । **अर्थ**—यह ज्ञान उसतरह अवस्थित हुआ है जैसे इसकी महिमा निरंतर उदयरूप तिष्ठे, प्रतिपक्षी कर्म न रहे । कैसा है ? अन्य परद्रव्योंसे जुदा अवस्थित हुआ है, अपनेमें ही निश्चित है जुदे ही वस्तुपनेको धारता हुआ है अर्थात् वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषात्मक है सो ज्ञानने भी सामान्य विशेषात्मकपनेको धारण-

शंकनीयः । एवं तु सति ज्ञानमेव सम्यग्दृष्टिः, ज्ञानमेव संयमः, ज्ञानमेवांगपूर्वरूपं सूत्रं, ज्ञानमेव धर्माधर्मौ, ज्ञानमेव प्रव्रज्येति ज्ञानस्य जीवपर्यायैरपि सहाव्यतिरेको निश्चयसाधितो द्रष्टव्यः । अथैवं सर्वद्रव्यव्यतिरेकेण सर्वदर्शनादिजीवस्वभावाव्यतिरेकेण वा अतिव्याप्तिमव्याप्तिं च परिहरमाणमनादिविभ्रममूलं धर्माधर्मरूपं परसमयमुद्वम्य स्वयमेव प्रव्रज्यारूपमापाद्य दर्शनज्ञानचारित्रस्थितिरूपं स्वसमयमवाप्य मोक्षमार्गमात्मन्येव परिणतं कृत्वा समवाप्तसंपूर्णविज्ञानघनभावं हानोपादानशून्यं साक्षात्समयसारभूतं शुद्धज्ञानमेकमेव स्थितं द्रष्टव्यं । "अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं विभ्रत्पृथग्वस्तुतामादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितं । मध्याद्यंतविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥ २३५ ॥ उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत् । यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ॥ २३६ ॥ व्यतिरिक्तं

निर्विकल्पभावरूपमानसमतिज्ञानश्रुतज्ञानसंज्ञं पंचेद्रियाविषयत्वेनातीद्रियं शुद्धपारिणामिकभावविषये तु या भावना तद्रूपं निर्विकारस्वसंवेदनशब्दवाच्यं संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावात् क्षायोपशमिकमपि । विशिष्टभेदज्ञानं मुक्तिकारणं न भवति । कस्मात्? इति चेत् समस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पोपाधिरहितस्वशुद्धात्मभावनोत्थपरमाल्हादैकलक्षणसुखामृतरसास्वादैकाकारपरमसमरसीभावपरिणामेन कार्यभूतस्यानंतज्ञानसुखादिरूपस्य मोक्षफलस्य विवक्षितैकशुद्धनिश्चयनयेन शुद्धोपादानकारणत्वादिति । तथा चोक्तं "भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन । तस्यैवाभा-

---

कर रक्खा है, ग्रहण त्यागकर रहित है ज्ञानमें कुछ त्याग ग्रहण नहीं है, रागादिक मलसे रहित है ऐसा है । और इसकी महिमा नित्य उदयरूप ठहर रही है । कैसी है महिमा? मध्य आदि अंत जो भेद उनसे रहित स्वाभाविक विस्ताररूप हुए प्रकाशकर दैदीप्यमान है और शुद्ध ज्ञानका समूह है । ऐसी जिसकी महिमा सदा उदयमान है उसतरह ठहरा हुआ है ॥ **भावार्थ**—ज्ञानका पूर्णरूप सबको जानना है सो जब यह प्रकट होता है तब उन विशेषणोंके साथ प्रकट होता है । कि इसकी महिमा कोई विगाड़ नहीं सकता सदा उदयमान रहती है ॥ अब २३६ वें काव्यसे कहते हैं कि ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्माका धारण करना वही कृतकृत्यपना है—**उन्मुक्त** इत्यादि । **अर्थ**—जिसने सब शक्तियां समेट ली हैं ऐसे पूर्ण स्वरूप आत्माका आत्मामें ही धारण करना वही तो छोड़ने योग्य छोड़ा और जो लेने योग्य था सो सब लिया ॥ **भावार्थ**—पूर्ण ज्ञान स्वरूप सब शक्तियोंका समूह स्वरूप आत्माको धारण करना वही त्यागने योग्य सभी त्यागा और ग्रहण करने योग्य था वह ग्रहण किया । यही कृतकृत्यपना है ॥ आगे कहते हैं कि ऐसे ज्ञानके देह भी नहीं है उसकी सूचनाका २३७ वां श्लोक है—**व्यतिरिक्तं** इत्यादि । **अर्थ**—पूर्वोक्तप्रकार परद्रव्यसे जुदा ज्ञान ठहरा ।

परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितं । कथमाहारकं तत्स्याद्येतदेवास्य शंक्यते ॥ २३७ ॥ ३९०–४०४ ॥

अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारओ हवइ एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पुग्गलमओ उ ॥ ४०५ ॥
णवि सक्कइ घित्तुं जं णं विमोत्तुं जं य जं परद्दव्वं ।
सो कोवि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वावि ॥ ४०६ ॥
तह्मा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिण्हए किंचि ।
णेव विमुंचइ किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥ ४०७ ॥

आत्मा यस्यामूर्तो न खलु स आहारको भवत्येवं ।
आहारः खलु मूर्तो यस्मात्स पुद्गलमयस्तु ॥ ४०५ ॥
नापि शक्यते ग्रहीतुं यत् न विमोक्तुं यच्च यत्परं द्रव्यं ।
स कोऽपि च तस्य गुणो प्रायोगिको वैस्रसो वापि ॥ ४०६ ॥
तस्मात्तु यो विशुद्धश्चेतयिता स नैव गृह्णाति किंचित् ।
नैव विमुंचति किंचिदपि जीवाजीवयोर्द्रव्ययोः ॥ ४०७ ॥

वतो बद्धा बद्धा ये किल केचन" ॥ ३९०—४०४ ॥ अतः परमेवं सति शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मतत्त्वस्य देह एव नास्ति कथमाहारो भविष्यतीत्युपदिशति,—**अत्ता जस्स अमुत्तो** आत्मा यस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेण मूर्तो न भवति **ण हु सो आहारगो हवदि एवं** स एवममूर्तत्वे सति हु स्फुटं तस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेणाहारको न भवति । **आहारो खलु मुत्तो** आहारः । कथंभूतः[१] खलु स्फुटं मूर्तः । **जह्मा सो पुग्गलमओ दु** यस्मात् स नोकर्माहारः पुद्गलमयः । **सो कोवि य तस्स गुणो** स कोपि तस्य गुणोऽस्यात्मनः ।

ऐसा ज्ञान कर्म नोकर्मरूप आहार करनेवाला आहारक कैसे हो सकता है? और जब आहारक नहीं है तो इसके देहकी शंका कैसे करना? नहीं करना ३९० से ४०४ तक ॥

अब इस अर्थको गाथामें कहते हैं,—[**एवं**] इस प्रकार [**यस्य आत्मा अमूर्तः**] जिसका आत्मा अमूर्तीक है [**स खलु**] वह निश्चयकर [**आहारकः न भवति**] आहारक नहीं है [**यस्मात्**] क्योंकि [**आहारः खलु मूर्तः**] आहार मूर्तीक है [**स तु पुद्गलमयः**] वह आहार तो पुद्गलमय है । [**यत् परद्रव्यं**] जो परद्रव्य है [**यत् ग्रहीतुं च विमोक्तुं नापि शक्यते**] वह ग्रहण भी नहीं किया जा सकता और छोड़ाभी नहीं जासकता [**स कोपि च तस्य गुणः**] वह कोई

---

१ ण मुचदे चेव जं पर दव्वं पाठोय तात्पर्यवृत्तौ ।

ज्ञानं हि परद्रव्यं किंचिदपि न गृह्णाति न मुंचति प्रायोगिकगुणसामर्थ्यात् वैस्रसिकगुणसामर्थ्याद्वा ज्ञानेन परद्रव्यस्य गृहीतुं मोक्तुं चाशक्यत्वात् । न ज्ञानस्यामूर्तात्मद्रव्यस्य मूर्तपुद्गलद्रव्यमाहारः ततो ज्ञानं नाहारकं भवत्यतो ज्ञानस्य देहो ना-

---

कथ? **पाउग्गिय विस्ससो वापि** प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति । प्रायोगिकः कर्मसंयोगजनितः । वैस्रसिकः स्वभावजः । येन गुणेन किं करोति? **णवि सक्कदि घित्तुं जे ण मुंचिदुं चेव जं परं दव्वं** परद्रव्यमाहारादिकं गृहीतुं मोक्तुं च न शक्नोति । अहो भगवन्? कर्मजनितप्रायोगिकगुणेन आहारं गृह्णंतस्ते कथमनाहारका भवंति इति । हे शिष्य! भद्रमुक्तं त्वया परं किंतु निश्चयेन तन्मयो न भवति स व्यवहारनयः । इदं तु निश्चयव्याख्यानमिति । **तह्मा दु जो विसुद्धो चेदा** यस्मान्निश्चयनयेनानाहारकः तस्मात्कारणात् यस्तु विशेषेण शुद्धो रागादिरहितश्चेतयितात्मा **सो णेव गिह्णदे किंचि णेव विमुंचदि किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं** कर्माहार-नोकर्माहार-लेप्याहार-ओजआहार-मानसाहाररूपेण जीवाजीवद्रव्याणां मध्ये सचित्ताचित्ताहारं नैव किंचिद् गृह्णाति न मुंचति । ततः कारणान्नोकर्माहारमयशरीरं जीवस्वरूपं न भवति । शरीराभावे शरीरमयद्रव्यलिंगमपि जीवस्वरूपं

ऐसाही आत्माका गुण [**प्रायोगिकः वापि वैस्रसः**] प्रायोगिक तथा वैस्रसिक है । [**तस्मात्तु**] इसलिये [**यः विशुद्धः चेतयिता**] जो विशुद्ध आत्मा है [**सः**] वह [**जीवाजीवयोः द्रव्ययोः**] जीव अजीव परद्रव्यमेंसे [**किंचित् नैव गृह्णाति**] किसीको भी न तो ग्रहणही करता है [**अपि किंचित् नैव विमुंचति**] और न किसीको छोड़ता है ॥ **टीका**—यहां आत्मा कहनेसे ज्ञानका ग्रहण है, क्योंकि अभेद विवक्षासे लक्षणमें ही लक्ष्यका व्यवहार है । इस न्यायसे आत्माको ज्ञान ही कहना आता है । इसलिये टीकाकार कहते हैं कि ज्ञान परद्रव्यको कुछभी नहीं ग्रहण करता और कुछभी न छोड़ता है क्योंकि प्रायोगिक अर्थात् पर निमित्तसे उत्पन्न हुआ जो गुण उसकी सामर्थ्यसे तथा वैस्रसिक (स्वाभाविक) गुणकी सामर्थ्यसे दोनों तरहसे ज्ञानकर परद्रव्यके ग्रहण करनेका और छोड़नेका असमर्थपना है । अमूर्तीक आत्मद्रव्य जो ज्ञान उसके मूर्तीक पुद्गलद्रव्य आहार नहीं है क्योंकि अमूर्तीकके मूर्तीक आहार नहीं होता । इसलिये ज्ञान आहारक नहीं है । इस कारण ज्ञानमें देहकी शंका न करना ॥ **भावार्थः**—ज्ञानस्वरूप आत्मा अमूर्तीक है और कर्मनोकर्मरूप पुद्गलमय आहार मूर्तीक है इसलिये परमार्थसे आत्माके पुद्गलमय आहार नहीं है । आत्माका ऐसा ही स्वभाव है इस कारण परद्रव्यको तो ग्रहण ही नहीं करता स्वभावरूप परिणमो तथा विभावरूप परिणमो अपनेही परिणामका ग्रहण त्याग है परद्रव्यका तो ग्रहण त्याग कुछभी नहीं है । इसलिये आत्माके पुद्गलमय देहस्वरूप लिंग (वेष—बाह्यचिन्ह) हैं वे मोक्षके कारण नहीं हैं ॥ उसकी सूचनाका २३८

शंकनीयः । "एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते । ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिंगं मोक्षकारणं ॥" २३८ ॥ ४०५।४०६।४०७ ॥

पासंडीलिंगाणि व गिहलिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥ ४०८ ॥
ण उ होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेयंति ॥ ४०९ ॥

पाषंडिलिंगानि वा गृहलिंगानि वा बहुप्रकाराणि ।
गृहीत्वा वदंति मूढा लिंगमिदं मोक्षमार्ग इति ॥ ४०८ ॥
न तु भवति मोक्षमार्गो लिंगं यद्देहनिर्ममा अर्हंतः ।
लिंगं मुक्त्वा दर्शनज्ञानचरित्राणि सेवंते ॥ ४०९ ॥

केचिद्द्रव्यलिंगमज्ञानेन मोक्षमार्गं मन्यमानाः संतो मोहेन द्रव्यलिंगमेवोपाददते । तदप्यनुपपन्नं सर्वेषामेव भगवतामर्हद्देवानां शुद्धज्ञानमयत्वे सति द्रव्यलिंगाश्रयभूतशरी-

---

न भवति इति । एव निश्चयेन जीवस्याहारो नास्ति, इति व्याख्यानमुख्यत्वेन द्वादशस्थले गाथात्रय गतं ॥ ४०५।४०६।४०७ ॥ अथैवं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्य परमात्मनो नोकर्माहाराद्यभावे सत्याहारमयदेहो नास्ति । देहाभावे देहमयद्रव्यलिंगं निश्चयेन मुक्तिकारण न भवतीति प्रतिपादयति;—पाखंडिलिंगानि गृहस्थलिंगानि बहुप्रकाराणि गृहीत्वा वदति मूढाः । किं वदंति? इद द्रव्यमयलिंगमेव मुक्तिकारणं । कथंभूताः सतः? रागादिविकल्पोपाधिरहितं परमसमाधिरूप भावलिंगमजानंतः **ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगं** भावलिंगरहितं द्रव्यलिंगं केवलं मोक्षमार्गो न भवति । कस्मात्? इति चेत्—**जं** यस्मात्कारणात् **देहणिम्ममा अरिहा** अर्हंतो भगवंतो देहनिर्ममाः सतः । किं कुर्वंति? **लिंगं मुइत्तु** लिंगाधारं यच्छ-

---

वा श्लोक कहते हैं—**एवं ज्ञानस्य** इत्यादि **अर्थ**—पूर्वोक्त प्रकारकर शुद्धज्ञानके देह ही विद्यमान नहीं है इसलिये ज्ञाताके देहमय चिन्ह (भेप) मोक्षका कारण नहीं है ॥ ४०५ से ४०७ तक ॥

अब इस अर्थको गाथाओंसे कहते हैं,–[**पाखंडिलिंगानि**] पाखंडिलिंग [**वा**] अथवा [**गृहिलिंगानि**] गृहिलिंग ऐसे [**बहुप्रकाराणि**] बहुत प्रकारके बाह्य लिंग हैं उनको [**ग्रहीत्वा**] धारण कर [**मूढा इति वदंति**] अज्ञानी जन ऐसा कहते हैं कि [**इदं लिंगं**] यह लिंग ही [**मोक्षमार्गः**] मोक्षका मार्ग है । आचार्य कहते हैं कि [**लिंगं मोक्षमार्गः न तु भवति**] लिंगं मोक्षका मार्ग नहीं है [**यत्**] क्योंकि [**अर्हंतः**] अर्हंत देव भी [**देहनिर्ममाः**] देहसे निर्ममत्व हुए [**लिंगं मुक्त्वा**] लिंगको छोड़कर [**दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवंते**] दर्शनज्ञानचारित्रको ही सेवते हैं ॥ **टीका**-कितने ही जन अज्ञानसे द्रव्यलिंगको ही

रममकारत्यागात् । तदाश्रितद्रव्यलिंगत्यागेन दर्शनज्ञानचरित्राणां मोक्षमार्गत्वेनोपासनस्य दर्शनात् ॥ ४०८।४०९ ॥

अथैतदेव साधयति;—

ण वि एस मोक्खमग्गो पाखंडीगिहिमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥ ४१० ॥

नाप्येष मोक्षमार्गः पाखंडिगृहिमयानि लिंगानि ।
दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गं जिना वदंति ॥ ४१० ॥

रीरं तस्य शरीरस्य यन्ममत्वं तन्मनोवचनकायैर्मुक्त्वा । पश्चात् **दंसणणाण चरित्ताणि सेवंते** सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि तानि सेवंते भावयंतीत्यर्थः ॥ ४०८।४०९ ॥ अथैतदेव व्याख्यानं विशेषेण दृढयति,—**ण वि एस मोक्खमग्गो** न वैष मोक्षमार्गः । एष कः ? **पाखंडिगिहमयाणि लिंगाणि** निर्विकल्पसमाधिरूपभावलिंगान्निरपेक्षाणि रहितानि यानि पाखंडिगृहिमयानि द्रव्यलिंगानि । कथंभूतानि ? निर्ग्रंथकौपीनग्रहणरूपाणि बहिरंगाकारचिह्नानि । तर्हि को मोक्षमार्गः ? इति चेत् **दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा**

मोक्षमार्ग मानते हुए मोहकर द्रव्यलिंगको ही अंगीकार करते हैं । सो इस द्रव्यलिंगको मोक्षमार्ग मानना अयुक्त है क्योंकि सभी अरहंत देव भगवानोंके शुद्ध ज्ञानमयपना होनेसे, द्रव्यलिंगका आश्रयभूत शरीरके ममकारका त्याग होनेसे, उस शरीरके आश्रित द्रव्यलिंगका त्यागकर और दर्शन ज्ञानचारित्रोंको मोक्षमार्गपनेकर सेवन देखा जाता है ॥ **भावार्थ**—जो देहमय द्रव्यलिंग ही मोक्षका कारण होता तो अरहंतादिक देहका ममत्व छोड़ दर्शनज्ञानचारित्रको क्यों सेवते ? द्रव्यलिंगसे ही मोक्षको प्राप्त हो जाते । इसलिये यह निश्चय हुआ कि देहमय लिंगमोक्षमार्ग नहीं है । परमार्थसे दर्शन ज्ञानचारित्रस्वरूप आत्मा ही मोक्षका मार्ग है ॥ ४०८ ॥ ४०९ ॥

आगे यह साधते है कि दर्शनज्ञानचारित्र ही मोक्षमार्ग है,—**[पाखंडिगृहिमयानि लिंगानि]** पाखंडी लिंग और गृहस्थलिंग **[एषः]** यह **[मोक्षमार्गः]** मोक्षमार्ग **[नापि]** नहीं है **[दर्शनज्ञानचारित्राणि]** दर्शनज्ञानचारित्र हैं वे **[मोक्षमार्गं]** मोक्षमार्ग हैं **[जिना विदंति]** ऐसा जिनदेव कहते हैं ॥ **टीका**—निश्चयकर द्रव्यलिंग मोक्षका मार्ग नहीं है क्योंकि इसको शरीरके आश्रित होनेसे यह परद्रव्य है । तथा दर्शनज्ञानचारित्र ही मोक्षमार्ग हैं क्योंकि इनको आत्माके आश्रितपना होनेसे निज (आत्म) द्रव्यपना है ॥ **भावार्थ**—मोक्ष है वह सब कर्मोंके अभावरूप आत्माका परिणाम है इसलिये इसका कारण भी आत्माका परिणाम ही होना चाहिये । दर्शनज्ञानचारित्र आत्माके परिणाम हैं इसलिये वेही मोक्षके मार्ग हैं यह निश्चयसे कहा है । तथा लिंग है वह देहमय है देह है वह पुद्गलद्रव्यमय

न खलु द्रव्यलिंगं मोक्षमार्गः शरीराश्रितत्वे सति परद्रव्यत्वात् । तस्माद्दर्शनज्ञानचारित्राण्येव मोक्षमार्गः, आत्माश्रितत्वे सति स्वद्रव्यत्वात् ॥ ४१० ॥

यत एवं—

तह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४११ ॥

तस्मात् हित्वा लिंगानि सागारैरनगारैर्वा गृहीतानि ।
दर्शनज्ञानचारित्रे आत्मानं युंक्ष्व मोक्षपथे ॥ ४११ ॥

यतो द्रव्यलिंगं न मोक्षमार्गः, ततः समस्तमपि द्रव्यलिंगं त्यक्त्वा दर्शनज्ञानचारित्रे

विंति शुद्धबुद्धैकस्वभाव एव परमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपाणि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं जिना वदंति कथयंति ॥ ४१० ॥ यत एवं,—**तह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारिएहिं वा गहिदे** यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं जिनाः प्रतिपादयंति तस्मात्त्यक्त्वा । कानि? निर्विकारस्वसंवेदनरूपभावलिंगरहितानि सागारानगारवर्गैः समूहैः-गृहीतानि बहिरंगाकारद्रव्यलिंगानि । पश्चात् किं कुरु? **दंसणणाणचरित्ते**

है इसलिये आत्माके देह मोक्षका मार्ग नहीं है । परमार्थसे अन्यद्रव्यका अन्यद्रव्य कुछ नहीं करता यह नियम है ॥ ४१० ॥

आगे कहते हैं यदि ऐसा है कि द्रव्यलिंगमोक्षमार्ग नहीं तो इसकारण ऐसा करना यह उपदेश है,-जिसकारण द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नहीं है **[तस्मात्]** इस कारण **[सागारैः]** गृहस्थोंकर **[वा]** अथवा **[अनगारैः]** गृहत्यागी मुनियोंकर **[गृहीतानि लिंगानि]** ग्रहण किये गये लिंगोंको **[जहित्वा]** छोड़कर **[आत्मानं]** अपने आत्माको **[दर्शनज्ञानचारित्रे]** दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप **[मोक्षपथे]** मोक्षमार्गमें **[युंक्ष्व]** युक्त करो । यह श्रीगुरुओंका उपदेश है ॥ **टीका**—जिस कारण द्रव्यलिंग मोक्षका मार्ग नहीं है इसकारण सभी द्रव्यलिंगोंको छोड़ दर्शन ज्ञानचारित्रमें ही आत्माको युक्त करना । क्योंकि यही मोक्षका मार्ग है ऐसा सूत्रका उपदेश है ॥ **भावार्थ**—यहां द्रव्यलिंगको छुड़ाके दर्शन ज्ञानचारित्रमें लगानेका वचन है सो यह सामान्य परमार्थ वचन है । कोई समझेगा कि मुनि श्रावकके व्रत छुड़ानेका उपदेश है । ऐसा नहीं है । जो केवल द्रव्यलिंगको ही मोक्षमार्ग जान भेष रक्खे उसको पक्ष छुड़ाया है कि वेपमात्रसे मोक्ष नहीं है, परमार्थरूप मोक्षमार्ग आत्माके दर्शन ज्ञानचारित्ररूप परिणाम हैं वे ही हैं । व्यवहार आचारसूत्रमें कहे अनुसार जो मुनि श्रावकके बाह्यव्रत हैं वे व्यवहारकर निश्चयमोक्षमार्गके साधक हैं । उनको छुड़ाते नहीं परंतु ऐसा कहते हैं कि उनका भी ममत्व छोड़ परमार्थ मोक्षमार्गमें लगनेसे ही मोक्ष होता है केवल भेषमात्रसे मोक्ष नहीं है ऐसा जानना ॥ आगे इसी अर्थको दृढ

चैव मोक्षमार्गत्वात् आत्मा योक्तव्य इति सूत्रानुमतिः । "दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्व-मात्मनः । एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥ २३९ ॥" ४११ ॥

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥ ४१२ ॥

मोक्षपथे आत्मान स्थापय तं चैव ध्यायस्व तं चेतयस्व ।
तत्रैव विहर नित्यं मा विहार्षीरन्यद्रव्येषु ॥ ४१२ ॥

आ संसारात्परद्रव्ये रागद्वेषादौ नित्यमेव स्वप्रज्ञादोषेणावतिष्ठमानमपि स्वप्रज्ञागुणेनैव ततो व्यावर्त्य दर्शनज्ञानचारित्रेषु नित्यमेवावस्थापय निश्चितमात्मानं । तथा चित्तांतर-निरोधेनात्यंतमेकाग्रो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्राण्येव ध्यायस्व । तथा सकलकर्मकर्मफलचे-तनासंन्यासेन शुद्धज्ञानचेतनामयो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्राण्येव चेतयस्व । तथा द्रव्यस्व-भाववशतः प्रतिक्षणविजृंभमाणपरिणामतया तन्मयपरिणामो भूत्वा दर्शनज्ञानचारित्रेष्वेव

अप्पाणं जुंज मोक्खपहे हे भव्य! आत्मानं योजय संबंधं कुरुष्व केवलज्ञानाद्यनंतच-तुष्टयस्वरूपशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणे मोक्षपथे मोक्षमार्गे ॥ ४११ ॥ अथ निश्चयरत्नत्रयात्मकः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणो मोक्षमार्गो मोक्षार्थिना पुरुषेण सेवितव्य इत्यु-पदिशति;—**मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि** हे भव्य! आत्मानं स्थापय क्व? शुद्धज्ञानद-र्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयस्वरूपे मोक्षपथे । **चेदयहि** तमेव

करनेकी सूचनाका २३९ वां श्लोक कहते हैं—**दर्शन** इत्यादि । **अर्थ**—जिस कारण आत्माका यथार्थरूप दर्शन ज्ञानचारित्रका त्रिकस्वरूप है इस कारण मोक्षके इच्छक पुरुषोंकर एक यही मोक्षमार्ग सदा सेवने योग्य है ॥ ४११ ॥

अब यही उपदेश गाथासे कहते हैं;—हे भव्य तू [**मोक्षपथे**] मोक्षमार्गमे [**आ-त्मानं**] अपने आत्माको [**स्थापय**] स्थापनकर [**च तं एव**] उसीका [**ध्या-यस्व**] ध्यानकर [**तं चेतयस्व**] उसीको अनुभवगोचर कर [**तत्रैव नित्यं विहर**] और उस आत्मामे ही निरंतर विहार कर **अन्यद्रव्येषु मा विहार्षीः**] अन्यद्रव्योंमें मत विहारकर ॥ **टीका**—आचार्य उपदेश करते हैं कि हे भव्य! अनादि संसारसे लेकर यह आत्मा अपनी बुद्धिके दोषसे परद्रव्यमे रागद्वेषादि करनेमें नित्य ही तिष्ठता हुआ प्रवर्त रहा है तौभी तू उसको अपनी बुद्धिके ही गुणसे उन पर द्रव्योंमे रागद्वेषसे छुड़ाके दर्शन ज्ञानचारित्रमें निरंतर तिष्ठता अति निश्चल स्थापनकर । उसीतरह समस्त अन्य चिंताओंका निरोध कर अत्यंत एकाग्रचित्त होके दर्शनज्ञान-चारित्रका ही ध्यान कर । उसी तरह समस्त कर्म और कर्मफलरूप चेतनाका त्यागकर शुद्धज्ञान चेतनामय होके दर्शन-ज्ञानचारित्रका ही अनुभवकर । उसी तरह द्रव्यके स्वभावके वश क्षणक्षणमें उदय होते जो परिणाम उसपनेसे अर्थात् तन्मय परिणाम करके

विहर । तथा ज्ञानरूपमेकमेवाचलितमवलंबमानो ज्ञेयरूपेणोपाधितया सर्वत एव प्रधावत्स्वपि परद्रव्येषु सर्वेष्वपि मनागपि मा विहार्षीः । "एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकस्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति । तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यांतराण्यस्पृशन् सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विंदति ॥ २४० ॥ ये त्वेनं परिहृत्य संवृत्तिपथप्रस्थापितेनात्मना लिंगे द्रव्यमये च हंति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः ।

मोक्षपथं चेतयस्व परमसमरसीभावेन अनुभवस्व **झायहि तं चेव** तमेव ध्याय निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावय । **तत्थेव विहर णिच्चं** तत्रैव विहर वर्तनापरिणतिं कुरु । नित्यं सर्वकालं । **मा विहरसु अण्णदव्वेसु** दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिपरद्रव्या-

---

दर्शन ज्ञानचारित्रमें ही विहार कर । उसीतरह तू एक ज्ञानरूपको ही निश्चलरूप अवलंबन करता ज्ञेयरूपकर ज्ञानमें उपाधिपनेसे सब तरफ आ पड़े जो सभी द्रव्य उनमें किंचितमात्र भी विहार मतकर ॥ **भावार्थ**—परमार्थरूप आत्माका परिणाम दर्शन ज्ञानचारित्र हैं वे ही मोक्षमार्ग हैं उनमें ही आत्माको स्थापन करना, उनका ही ध्यान करना, उन्हींका अनुभव करना, और उन्हींमें प्रवर्तना अन्यद्रव्योंमें नहीं प्रवर्तना यही परमार्थकर उपदेश है, केवल व्यवहारमें ही मूढ न रहना ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप २४० वां काव्य कहते हैं—**एको मोक्ष** इत्यादि । **अर्थ**—दर्शन ज्ञानचारित्रस्वरूप यही एक मोक्षका मार्ग है । जो पुरुष उसीमें तिष्ठता है, उसीको निरंतर ध्याता है, उसीका अनुभव करता है और अन्यद्रव्योंको नहीं स्पर्शता उसीमें निरंतर प्रवर्तता है वह पुरुष थोड़े ही कालमें अवश्य समयसार अर्थात् जिसका नित्य उदय रहे ऐसे परमात्माके रूपको अनुभवता (पाता) है ॥ **भावार्थ**—निश्चय मोक्षमार्गके सेवनसे थोड़े कालमें ही मोक्षकी प्राप्ति होती है यह नियम है ॥ आगे कहते हैं कि जो द्रव्यलिंगको ही मोक्षमार्ग मानकर उसमें ममत्व रखते हैं वे मोक्षको नहीं पाते उसकी सूचनाका २४१ वां काव्य है—**ये त्वेनं** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष इस पूर्वोक्त परमार्थस्वरूप मोक्षमार्गको छोड़कर व्यवहारमार्गमें स्थापन किये आत्माकर ही बाह्यभेषमें ममता करते हैं अर्थात् यह जानते हैं कि यही हमको मोक्ष प्राप्त करेगा वे पुरुष तत्त्वके यथार्थ ज्ञानसे रहित हुए मुनिपद लेनेसे भी इस समयसारको नहीं पाते । कैसा है समयसार? जिसका नित्य उदय है कोईभी विरोधी होके उसके उदयका नाश नहीं कर सकता, अखंड है जिसमें अन्यज्ञेय आदिके निमित्तसे खंड नहीं होता, एक है अर्थात् पर्यायोंकर अनेक अवस्थाये होती हैं तौभी एकरूपपनेको नहीं छोड़ता, जिसके समान अन्य नहीं ऐसा जिसका प्रकाश है सूर्यादिकके प्रकाशकी ज्ञानके प्रकाशको उपमा नहीं लग सकती । अपने स्वभावकी प्रभाका प्राग्भार

---

१ तत्त्वज्ञानबहिर्भूता इत्यर्थः ।

नित्योद्योतमखंडमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभाप्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यंति ते ॥ २४१ ॥" ४१२ ॥

पाखंडीलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहिं ण णायं समयसारं ॥ ४१३ ॥

पाखंडिलिंगेषु वा गृहिलिंगेषु वा बहुप्रकारेषु ।
कुर्वंति ये ममत्वं तैर्न ज्ञातः समयसारः ॥ ४१३ ॥

ये खलु श्रमणोऽहं श्रमणोपासकोऽहमिति द्रव्यलिंगममकारेण मिथ्याहंकारं कुर्वंति तेऽनादिरूढव्यवहारविमूढाः प्रौढविवेकं निश्चयमनारूढाः परमार्थसत्यं भगवंतं समयसारं

लंबनोत्पन्नशुभाशुभसंकल्पविकल्पेषु मा विहार्षीः, मा गच्छ मा परिणतिं कुर्विति ॥ ४१२ ॥ अथ सहजशुद्धपरमात्मानुभूतिलक्षणभावलिंगरहिता ये द्रव्यलिंगे ममतां कुर्वंति तेऽद्यापि समयसारं न जानंतीति प्रकाशयति;—**पाखंडियलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु कुव्वंति जे ममत्तिं** वीतरागस्वसंवेदनज्ञानलक्षणभावलिंगरहितेषु निर्ग्रंथरूपपाखंडिद्रव्यलिंगेषु कौपीनचिह्नादिगृहस्थलिंगेषु बहुप्रकारेषु ये ममतां कुर्वंति **तेहिं ण णादं समयसारं** जगत्त्रयकालत्रयवर्तिख्यातिपूजालाभमिथ्यात्वकामक्रोधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनसमुत्पन्नशु-

---

है अर्थात् जिसका भार अन्य नहीं सह सकता तथा अमल है अर्थात् रागादि विकाररूप मलसे रहित है । ऐसे परमात्माके स्वरूपको द्रव्यलिंगी नहीं पा सकता ॥ ४१२ ॥

अब इसी अर्थकी गाथा कहते हैं;—[**ये**] जो पुरुष [**पाखंडिलिंगेषु**] पाखंडीलिंगोंमें [**वा**] अथवा [**बहुप्रकारेषु गृहिलिंगेषु वा**] बहुत भेदवाले गृहस्थलिंगोंमें [**ममत्वं**] ममता [**कुर्वंति**] करते हैं अर्थात् हमको ये ही मोक्षके देनेवाले हैं ऐसी, [**तैः**] उन पुरुषोंने [**समयसारः**] समयसारको [**न ज्ञातः**] नहीं जाना ॥ **टीका**—जो पुरुष निश्चयकर ऐसा मानते हैं कि मैं श्रमण हूं मुनि हूं अथवा श्रमणका उपासक हूं सेवक हूं श्रावक हूं इस तरह द्रव्यलिंगमें ममकार कर मिथ्या अहंकार करते हैं वे अनादिके चले आये व्यवहारमें मोही हुए बढे भेदज्ञानवाले निश्चयनयको नहीं पाते हुए परमार्थसे सत्यार्थ भगवान ज्ञानरूप समयसारको नहीं देखते—पाते ॥ **भावार्थ**—अनादिकालका परद्रव्यके संयोगसे हुआ जो व्यवहार उसीमें जो मोही हैं वे ऐसा जानते हैं कि यह बाह्य महाव्रतादिरूप भेद है वही हमको मोक्ष प्राप्त करेगा परंतु जिससे भेदज्ञानका जानना होता है ऐसे निश्चयनयको नहीं जानते उनके सत्यार्थ परमात्मरूप शुद्धज्ञानमय समयसारकी प्राप्ति नहीं होती ॥ अब इसी अर्थका कलशरूप २४२ वां काव्य कहते हैं—**व्यवहार** इत्यादि । **अर्थ**—जो लोक व्यवहारमें ही मोहित बुद्धिवाले हैं वे परमार्थको नहीं जानते । जैसे लोकमें

न पश्यंति । "व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयंति नो जनाः । तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयंतीह तुषं न तंडुलं ॥ २४२ ॥ द्रव्यलिंगममकारमीलितैः दृश्यते समयसार एव न । द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥ २४३ ॥" ४१३ ॥

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे ।
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥ ४१४ ॥

व्यावहारिकः पुनर्नयो द्वे अपि लिंगे भणति मोक्षपथे ।
निश्चयनयो नेच्छति मोक्षपथे सर्वलिंगानि ॥ ४१४ ॥

यः खलु श्रमणश्रमणोपासकभेदेन द्विविधं द्रव्यलिंगं भवति मोक्षमार्ग इति प्ररूपणप्रकारः स केवलं व्यवहार एव न परमार्थस्तस्य स्वयमशुद्धद्रव्यानुभवनात्मकत्वे सति

भाशुभसंकल्पविकल्परहितः शून्यः चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजापूर्वपरमाह्लादरूपसुखरसानुभवपरमसमरसीभावपरिणामेन सालंबनः पूर्णकलशवद्भरितावस्थः केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य साक्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादको योऽसौ निश्चयकारणसमयसारः स खलु तैर्न ज्ञात इति ॥ ॥ ४१३ ॥ अथ निर्विकारशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणभावलिंगसहितं निर्ग्रंथयतिलिंगं कौपीनकरणादिबहुभेदसहित गृहिलिंगं चेति द्वयमपि मोक्षमार्गो व्यवहारनयो मन्यते । निश्चयनयस्तु सर्वंद्रव्यलिंगानि न मन्यत इत्याख्याति;—**ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे** व्यावहारिकनयो द्वे लिंगे मोक्षपथे मन्यते । केन कृत्वा? निर्विकारस्व-

---

जो तुष (भूसा) के ही ज्ञानमें विमुग्ध बुद्धिवाले हैं वे तुषको चावल जानते हैं चावलको चावल (तंदुल) नहीं जानते ॥ **भावार्थ**—जो परमार्थ आत्माका स्वरूप नहीं जानते और व्यवहारमें ही मूढ हो रहे हैं अर्थात् शरीरादि परद्रव्यको ही आत्मा जानते हैं वे परमार्थ आत्माको नहीं जानते । जैसे तुष तंडुलका भेद तो जाना नहीं परतु पराल (छिलके) को कूटें उनको तंदुलकी प्राप्ति नहीं होती, तुषतंडुलका भेदज्ञान होनेपर ही तंडुल पा सकता है ॥ आगे इसी अर्थके दृढ करनेको २४३ वा काव्य कहते हैं—**द्रव्यलिंग** इत्यादि । **अर्थ**—जो द्रव्यलिंगके मोहसे अंधे हैं उनसे समयसार नहीं देखा जा सकता क्योंकि इस लोकमें द्रव्यलिंग तो अन्य द्रव्यसे होता है और यह ज्ञान अपने आत्मद्रव्यसे ही होता है । **भावार्थ**—जो द्रव्यलिंगको ही अपना मानते हैं वे अंधे है उनको आप परसे कुछ नहीं ॥ ४१३ ॥

आगे कहते है कि व्यवहारनय तो मुनिश्रावकके भेदसे दो प्रकारके लिंगोंको मोक्षमार्ग कहता है और निश्चयनय किसी लिंगको मोक्षमार्ग नहीं कहता;—[**व्यावहारिकः नयः पुनः**] व्यवहारनय तो [**द्वे लिंगे अपि**] मुनि श्रावकके भेदसे दोनोंही प्रकारके लिंगोंको [**मोक्षपथे भणति**] मोक्षके मार्ग कहता है और

परमार्थत्वाभावात् । यदेव श्रमणश्रमणोपासकविकल्पातिक्रांतं दृशिज्ञप्तिप्रवृत्तिमात्रं शुद्धज्ञानमेवैकमिति निस्तुषसंचेतनं परमार्थः, तस्यैव स्वयं शुद्धद्रव्यानुभवात्मकत्वे सति परमार्थकत्वात् । ततो ये व्यवहारमेव परमार्थबुद्ध्या चेतयंते ते समयसारमेव न संचेतयंते ।

संवित्तिलक्षणभावलिंगस्य बहिरंगसहकारिकारणत्वेनेति । **णिच्छयणओ दु णेच्छदि मुक्खपहे सव्वलिंगाणि** निश्चयनयस्तु निर्विकल्पसमाधिरूपत्रिगुप्तिगुप्तबलेन अहं निर्ग्रंथलिंगी, कौपीनधारकोऽहमित्यादि मनसि सर्वद्रव्यविकल्पं रागादिविकल्पवन्नेच्छति । कस्मात्? स्वयमेव निर्विकल्पसमाधिस्वभावत्वात् इति । किंच—अहो शिष्य! **पाखंडीलिंगाणि य** इत्यादि गाथासप्तकेन द्रव्यलिंगं निषिद्धमेवेति त्वं मा जानाहि किं तु निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपं भावलिंगरहितानां यतीनां संबोधनं कृतं । कथं? इति चेत्, अहो तपोधनाः! द्रव्यलिंगमात्रेण संतोषं मा कुरुत किंतु द्रव्यलिंगाधारेण निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपभावनां कुरुत । ननु भवदीयकल्पनेयं, द्रव्यलिंगनिषेधो न कृत इति ग्रंथे लिखितमास्ते **ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगमित्यादि**? नैव **ण य होदि मोक्खमग्गो लिंग**मित्यादिवचनेन भवालिंगरहितं द्रव्यलिंगं निषिद्धं न च भावलिंगसहितं । कथं? इति चेत् द्रव्यलिंगाधारभूतो योऽसौ देहस्तस्य ममत्वं निषिद्धं । न च द्रव्यलिंगं निषिद्धं । केन रूपेण? इति चेत्, पूर्वं दीक्षाकाले सर्वसंगपरित्याग एव कृतो न च देहत्यागः । कस्मात्? देहधारणं ध्यानज्ञानानुष्ठानं भवति इति हेतोः । नच देहस्य पृथक्त्वं कर्तुमायाति शेषपरिग्रहवदिति । वीतरागध्यानकाले पुनर्मदीयो देहोऽहं लिंगीत्यादिविकल्पो व्यवहारेणापि न कर्तव्यः । देहनिर्ममत्वं कृतं कथं ज्ञायते? इति चेत् **जं देहणिम्ममा अरिहा दंसणणाणचरि-**

[निश्चयनयः] निश्चयनय **[सर्वलिंगानि]** सभी लिंगोंको **[मोक्षपथे न इच्छति]** मोक्षमार्गमें इष्ट नहीं करता ॥ **टीका**—निश्चयकर मुनि और उनके उपासक–श्रावक ऐसे दो भेदोंसे लिंग दो प्रकार है वे दोनों ही लिंगमोक्षमार्ग हैं ऐसा कहना है वह केवल व्यवहार ही है परमार्थ नहीं है, क्योंकि इस व्यवहारनयके स्वयं अशुद्ध द्रव्यका अनुभवस्वरूपपना होनेसे परमार्थपनेका अभाव है । तथा जो मुनि श्रावकके भेदसे जुदा दर्शनज्ञानचारित्रकी प्रवृत्तिमात्र निर्मलज्ञान ही एक है ऐसा निर्मल अनुभवन वह परमार्थ है वही मोक्षमार्ग है । क्योंकि ऐसे ज्ञानके ही स्वयं शुद्धद्रव्यरूप होनेका स्वरूपपना होनेसे परमार्थपना है । इसलिये जो पुरुष केवल व्यवहारको ही परमार्थ बुद्धिसे अनुभवते हैं वे समयसारको नहीं अनुभवते और जो परमार्थको ही परमार्थकी बुद्धिकर अनुभवते हैं वे ही इस समयसारको अनुभवते हैं ॥ **भावार्थ**—व्यवहारनयका तो विषय भेदरूप अशुद्ध द्रव्य है वह परमार्थ नहीं है । और निश्चयनयका विषय अभेदरूप शुद्ध द्रव्य है वह परमार्थ है । जो व्यवहारको ही निश्चय मान प्रवर्ते रहे हैं उनको समयसारकी प्राप्ति नहीं है और जो परमार्थको परमार्थ जानते हैं उनको सम-

ये एव परमार्थं परमार्थबुद्ध्या चेतयंते ते एव समयसारं चेतयंते । "अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चित्यतां नित्यमेकः । स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रान्न

त्ताणि सेवंते इत्यादि वचनेनेति । न हि शालितंदुलस्य बहिरंगतुपे विद्यमाने सत्यभ्यंतरतुपस्य त्यागः कर्तुमायाति । अभ्यंतरतुषत्यागे सति बहिरंगतुषत्यागो नियमेन भवत्येव । अनेन न्यायेन सर्वसंगपरित्यागरूपे बहिरंगद्रव्यलिंगे सति भावलिंग भवति न भवति वा नियमो नास्ति, अभ्यंतरे तु भावलिंगे सति सर्वसंगपरित्यागरूपं द्रव्यलिंग भवत्येवेति । हे भगवन् भावलिंगे सति बहिरंग द्रव्यलिंगं भवतीति नियमो नास्ति **साहारणासाहारणे**त्यादि वचनादिति ? परिहारमाह-कोऽपि तपोधनो ध्यानारूढस्तिष्ठति तस्य केनापि दुष्टभावेन वस्त्रवेष्टनं कृतं । आभरणादिकं वा कृतं तथाप्यसौ निर्ग्रंथ एव । कस्मात्? इति चेत्, बुद्धिपूर्वकममत्वाभावात् पांडवादिवत् । येऽपि घटिकाद्वयेन मोक्ष गता भरतचक्रवर्त्यादयस्तेऽपि निर्ग्रंथरूपेणैव । परं किंतु तेषां परिग्रहत्याग लोका न जानंति स्तोककालत्वादिति भावार्थः । एवं भावलिंगरहितानां द्रव्यलिंगमात्रं मोक्षकारणं न भवति । भावलिंगसहितानां पुनः सहकारिकारणं भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन त्रयोदशस्थले गाथासप्तकं गतं । अत्राह शिष्यः—केवलज्ञानं शुद्धं छद्मस्थज्ञानं पुनरशुद्धं शुद्धस्य केवलज्ञानस्य कारणं न भवति । कस्मात्? इति चेत्—**सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो** इति वचनात् इति? नैवं, छद्मस्थज्ञानस्य कथंचिच्छुद्धाशुद्धत्वं । तद्यथा—यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया शुद्धं न भवति तथापि मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन वीतरागसम्यक्त्वचारित्रसहितत्वेन च शुद्धं । अभेदनयेन पुनः छद्मस्थानां संबंधि भेदज्ञानमात्मस्वरूपमेव ततः कारणात्तेनैकदेशव्यक्तिरूपेणापि सकलव्यक्तिरूपं केवलज्ञानं जायते नास्ति दोषः । अथ मतं सावरणत्वात्क्षायोपशमिकत्वाद्वा शुद्धं न भवति तर्हि मोक्षोऽपि नास्ति । कस्मात्? छद्मस्थानां ज्ञानं यद्यप्येकदेशेन निरावरणं तथापि केवलज्ञानापेक्षया नियमेन सावरणमेव क्षायोपशमिकमेवेति । अथाभिप्रायः पारिणामिकभावशुद्धः तेन मोक्षो भविष्यति तदपि न घटते । कस्मात्? इति चेत् केवलज्ञानात्पूर्वं पारिणामिकभावस्य शक्तिमात्रेण शुद्धत्वं न व्यक्तिरूपेणेति । तथाहि—जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वरूपेण त्रिविधो हि पारिणा-

यसारकी प्राप्ति होती है वे ही मोक्ष पाते हैं ॥ आगे कहते हैं कि बहुत कहनेसे पूरा पड़े एक परमार्थका ही चिंतवन करना उसका २४४ वां काव्य है—**अलमल** इत्यादि । **अर्थ**—आचार्य कहते हैं कि बहुत कहनेसे और बहुतसे दुर्विकल्पोंसे तो पूरा पड़े पूरा पड़े कुछ लाभ नहीं । इस अध्यात्मग्रंथमें इस एक परमार्थको ही निरंतर अनुभवन करना चाहिये । क्योंकि निश्चयकर अपने रसके फैलावकर पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होने मात्र जो समयसार परमात्मा उसके सिवाय अन्य कुछ भी सार नहीं है ॥ **भावार्थ**—पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव निश्चयसे करना । इसके सिवाय कुछ भी सार नहीं है ॥ आगे इस समयसार ग्रंथको पूर्ण करते हैं उसकी सूचनाका २४५

खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति ॥ २४४ ॥ "इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णतां । विज्ञानघनमानंदमयमध्यक्षतां नयत् ॥ २४५ ॥" ४१४ ॥

जो समयपाहुडमिणं पडिहूणं अत्थतच्चदो णादुं ।
अत्थे ठाही चेया सो होही उत्तमं सोक्खं ॥ ४१५ ॥

यः समयप्राभृतमिदं पठित्वा अर्थतत्त्वतो ज्ञात्वा ।
अर्थे स्थास्यति चेतयिता स भविष्यत्युत्तमं सौख्यं ॥ ४१५ ॥

यः खलु समयसारभूतस्य भगवतः परमात्मनोऽस्य विश्वप्रकाशकत्वेन विश्वसमयस्य

मिकः । तत्र तावदभव्यत्वं मुक्तिकारणं न भवति यत्पुनर्जीवत्वभव्यत्वद्वयं तस्य द्वयस्य तु यदायं जीवो दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमक्षयलाभेन वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयेण परिणमति तदा शुद्धत्वं । तच्च शुद्धत्वं—औपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकभावत्रयस्य संबंधि मुख्यवृत्त्या, पारिणामिकस्य पुनर्गौणत्वेनेति । तत्र शुद्धपारिणामिकस्य बंधमोक्षस्य कारणरहितत्वं पंचास्तिकायेऽनेन श्लोकेन भणितमास्ते—मोक्षं कुर्वंति मिश्रौपशमिकक्षायिकाभिधाः । बंधमौदयिको भावो निष्क्रियः पारिणामिकः ॥ १ ॥ तत एव स्थितं निर्विकल्पशुद्धात्मपरिच्छित्तिलक्षणं वीतरागसम्यक्त्वचारित्राविनाभूतमभेदनयेन तदेव शुद्धात्मशब्दवाच्यक्षायोपशमिकमपि भावश्रुतज्ञानं मोक्षकारणं भवतीति । शुद्धपारिणामिकभावः पुनरेकदेशव्यक्तिलक्षणायां कथंचिद्भेदाभेदरूपस्य द्रव्यपर्यायात्मकस्य जीवपदार्थस्य शुद्धभावनावस्थाया ध्येयभूतद्रव्यरूपेण तिष्ठति नच ध्यानपर्यायरूपेण, कस्मात्? ध्यानस्य विनश्वरत्वात् इति ॥ ४१४ ॥ अथेदं शुद्धात्मतत्त्वं निर्विकारस्वसंवेदनप्रत्यक्षेण भावयन्नात्मा परमाक्षयसुखं प्राप्नोतीत्युपदिशति;—**श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवा समयसार**ग्रंथसमाप्तिं कुर्वंतः फलं दर्शयंति—तद्यथा—**जो समयपाहुणमिणं पठिदूणय** यः कर्ता समयप्राभृताख्यमिदं शास्त्रं पूर्वं पठित्वा न केवलं पठित्वा **अत्थतच्चदो णादुं** ज्ञात्वा च । कस्मात्? ग्रंथार्थतः न केवलं ग्रंथार्थतः? तत्त्वतो भावपूर्वेण

वां श्लोक है—**इदमेकं** इत्यादि । **अर्थ**—यह समयप्राभृत पूर्णताको प्राप्त होता है । कैसा है? जिसका विनाश न होसके ऐसा जगतके अद्वितीय नेत्रके समान है, क्योंकि वह शुद्ध परमात्मा समयसार आनंदमय है उसको प्रत्यक्ष प्राप्त करता है । **भावार्थ**—यह समयप्राभृतग्रंथ वचनरूप तथा ज्ञानरूप दोनों ही तरहसे नेत्रके समान है, क्योंकि जैसे नेत्र घटपटादिको प्रत्यक्ष दिखलाता है वैसे यह भी शुद्ध आत्माके स्वरूपको प्रत्यक्ष अनुभवगोचर दिखलाता है ॥ ४१४ ॥

अब इसको आचार्य पूर्ण करते हैं सो इसकी महिमारूप पढनेके फलकी गाथा कहते हैं;—**[यः चेतयिता]** जो चेतयिता पुरुष—भव्यजीव **[इदं समयप्राभृतं पठित्वा]** इस समय प्राभृतको पढकर **[अर्थतत्त्वतः ज्ञात्वा]** अर्थसे और तत्त्वसे जानकर **[अर्थे स्थास्यति]** इसके अर्थमें ठहरेगा **[सः]** वह **[उत्तमं सौख्यं भवि-**

प्रतिपादनात् स्वयं शब्दब्रह्मायमाणं शास्त्रमिदमधीत्य विश्वप्रकाशनसमर्थपरमार्थभूतचित्प्रकाशरूपपरमात्मानं निश्चिन्वन् अर्थतस्तत्त्वतश्च परिच्छिद्य अस्यैवार्थभूतं भगवति एक-

---

अत्थे ठाहिदि पश्चादुपादेयरूपे शुद्धात्मलक्षणेऽर्थे निर्विकल्पसमाधौ स्थास्यति **चेदा सो पावदि उत्तमं सोक्खं** स चेतयितात्मा भाविकाले प्राप्नोति लभते । किं लभते? वीतरागसहजापूर्वपरमाह्लादरूपं आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाध विशालवृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहित निःप्रतिद्वद्वभावं अन्यद्रव्यानपेक्ष निरुपमं, अमित, शाश्वत सर्वकालमुत्कृष्टानतसारं परमसुखं सिद्धस्य जातमिति । अत्राह शिष्यः—हे भगवन्! अतींद्रियसुखं निरंतरं व्याख्यात भवद्भिस्तच्च जनैर्न ज्ञायते? भगवानाह—कोऽपि देवदत्तः स्त्रीसेवनाप्रभृतिपंचेंद्रियविषयव्यापाररहितप्रस्तावे निर्व्याकुलचित्तः तिष्ठति, स केनापि पृष्टः भो देवदत्त! सुखेन तिष्ठसि त्वमिति? तेनोक्तं सुखमस्तीति तत्सुखमतींद्रियं । कस्मात्? इति चेत् ससारिकसुखं पचेंद्रियप्रभवं । यत्पुनरतींद्रियसुख तत्पंचेद्रियविषयव्यापाराभावेऽपि दृष्ट यत इदं तावत्सामान्येनातींद्रियसुखमुपलभ्यते । यत्पुनः पचेद्रियमनोभवसमस्तविकल्पजालरहिताना समाधिस्थपरमयोगिना स्वसवेदनगम्यमतीन्द्रियसुख तद्विशेपेणेति । यच्च मुक्तात्मनामतींद्रियसुख तदनुमानगम्यमगम्य च । तथाहि—मुक्तानामिंद्रियविषयव्यापाराभावेऽपि अतींद्रियसुखमस्तीति पक्षः । कस्मात्? इति चेत् इदानीं तेन विपयव्यापारातीतनिर्विकल्पसमाधिरतपरममुनींद्राणा स्वसवेद्यात्मसुखोपलब्धिरिति हेतुः । एवं पक्षहेतुरूपेण द्व्यंगमनुमान ज्ञातव्य । आगमे तु प्रसिद्धमेवात्मोपादानसिद्धमित्यादि-

---

ष्यति] उत्तम सुख स्वरूप होगा ॥ **टीका**—जो भव्य पुरुप आत्मा निश्चयकर इस शास्त्रको पढके, सब पदार्थोंके प्रकाशनेमें समर्थ ऐसे परमार्थभूत चैतन्य प्रकाशरूप आत्माका निश्चय करता हुआ अर्थसे तथा यथार्थ तत्त्वसे जान, इसीके अर्थभूत जो भगवान् एक पूर्णविज्ञानघनस्वरूप परब्रह्म उसमें सब तरहसे उद्यम आरंभ करके ठहरेगा वह पुरुष उत्तम अनाकुलता लक्षणवाले सुखरूप आप ही हो जायगा । कैसा है यह शास्त्र? समयसारभूत भगवान् परमात्मा सबके प्रकाशनेवाला होनेसे जिसको विश्वसमय कहते हैं उसके प्रकाशनेसे आप स्वयं शब्दब्रह्मसरीखा है । और वह सुख कैसा है कि जिसको प्राप्त होगा? तत्काल उदयरूप प्रगट होता एक चैतन्यरसकर भरे अपने स्वभावमें अच्छीतरह ठहरा निराकुल आत्मस्वरूपपनेसे परमानंद शब्दकर कहने योग्य है ॥ **भावार्थ**—इस शास्त्रका नाम समयप्राभृत है । समय नाम पदार्थका है उसके कहनेवाला है अथवा समय नाम आत्माका है उसका कहनेवाला है । वह आत्मा सब पदार्थोंके प्रकाशनेवाला है उसको यह कहता है । जो सब पदार्थोंका कहनेवाला हो उसको शब्दब्रह्म कहते हैं । ऐसे आत्माको कहनेसे इस शास्त्रको भी शब्दब्रह्म सरीखा कहना चाहिये । शब्दब्रह्म तो द्वादशाग शास्त्र है उसकी उपमा इसको भी है । यह

स्मिन् पूर्णविज्ञानघने परमब्रह्मणि सर्वारंभेण स्थास्यति चेतयिता, स साक्षात्तत्क्षणविजृं-भमाणचिदेकरसनिर्भरस्वभावसुस्थितनिराकुलात्मरूपतया परमानंदशब्दवाच्यमुत्तममना-

---

वचनेन । अतः कारणात् अतींद्रियसुखे संदेहो न कर्तव्य इति । उक्तं च—यद्देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसंभवं । निर्विशंति निराबाधं सर्वाक्षप्रीणनक्षमं ॥ १ ॥ सर्वेणातीतकालेन यच्च भुक्तं महर्द्धिकं । भाविनो ये च भोक्ष्यंति स्वादिष्टं स्वांतरंजकं ॥ २ ॥ अनंतगुणिनं तस्माद-त्यक्षं स्वस्वभावजं । एकस्मिन् समये भुंक्ते तत्सुखं परमेश्वरः ॥ ३ ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण वि-ष्णुकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन गाथासप्तकं । तदनंतरमन्यः करोति अन्यो भुंक्ते—इति बौद्धमतै-कांतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं । ततः परमात्मा रागादिभावकर्म न करोति इति सां-ख्यमतनिराकरणरूपेण सूत्रपंचकं । ततः परं कर्मैव सुखादिकं करोति न चात्मेति पुनरपि सांख्यमतैकांतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथात्रयोदश । तदनंतरं चित्तस्थरागस्य घातः कर्तव्य-इत्य-जानन्बहिरंगशब्दादिविषयाणां घातं करोमीति योऽसौ चिंतयति तत्संबोधनार्थं गाथासप्तकं । तदनंतरं द्रव्यकर्म व्यवहारेण करोति भावकर्म निश्चयेन करोतीति मुख्यत्वेन गाथासप्तकं । ततः परं ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमति इति कथनरूपेण सूत्रदशकं । तदनंतरं शुद्धात्मोपलब्धिरू-पनिश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनाचारित्रव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं । तदनंतरं पंचेंद्रिय-विषयनिरोधकथनरूपेण सूत्रदशकं । तदनंतरं कर्मचेतनाकर्मफलचेतनाविनाशरूपेण मुख्यत्वेन

शब्दब्रह्म परब्रह्मको (शुद्ध परमात्माको) साक्षात् दिखलाता है। जो इस शास्त्रको पढकर इसके यथार्थ अर्थमें ठहरेगा वह परब्रह्मको पायेगा । इसीसे परमानंदरूप स्वात्मीक स्वाधीन बाधारहित (अविनाश) उत्तम सुखको पायेगा। इसलिये हे भव्य जीवो ! तुम अपने कल्याणकेलिये इसको पढो सुनो निरंतर इसीका ध्यान रखो जिससे कि अविनाशी सुखकी प्राप्ति हो। यह श्रीगुरुओंका उपदेश है ॥ अब इस सर्व विशुद्ध ज्ञानके अधिकारकी पूर्णताका कलशरूप २४६ वां श्लोक कहते हैं—**इतीद** इत्यादि । **अर्थ**—इसप्रकार यह आत्माका परमार्थभूत स्वरूप ज्ञानमात्र ही निश्चित ठहरा । कैसा है ज्ञानमात्रतत्त्व ? अखंड है अर्थात् अनेक ज्ञेयाकारोंकर तथा प्रतिपक्षी कर्मोंकर यद्यपि खंड दीखता है तौभी ज्ञानमात्रमें खंड नहीं है इसीसे एकरूप है, अचल है ज्ञानरूपसे चल नहीं होता ज्ञेयरूप नहीं होता, अपने आपकर ही आप जानने योग्य है और किसी खोटी युक्तिकर बाधा नहीं जाता ॥ **भावार्थ**—यहां आत्माका निजस्वरूप ज्ञान ही कहा है। आत्मामें अनंत धर्म हैं उनमें कोई तो साधारण हैं वे अतिव्याप्तिस्वरूप हैं उनसे आत्मा पहचाना नहीं जाता। कोई पर्यायाश्रित हैं किसी अवस्थामें है किसीमे नहीं हैं वे अव्याप्तिस्वरूप हैं उनसे भी आत्मा नहीं पहचाना जाता। तथा चेतनता यद्यपि लक्षण है तौ भी शक्तिमात्र है वह अदृष्ट है इसलिये उसकी व्यक्ति दर्शनज्ञान है । उनमेंसे

कुलत्वलक्षणं सौख्यं स्वयमेव भविष्यतीति । "इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रं व्यवस्थितं । अखंडमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितं ॥ २४६ ॥" ४१५ ॥

इति श्रीअमृतचंद्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ **सर्वविशुद्धज्ञानप्ररूपको नवमोऽङ्कः ॥ ९ ॥**

गाथात्रय । ततः पर शास्त्रेंद्रियविषयादिकं ज्ञानं न भवतीति प्रतिपादनरूपेण गाथापंचदश । ततः परं शुद्धात्मा कर्मनोकर्माहारादिकं निश्चयेन न गृह्णाति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं । तदनंतरं शुद्धात्मभावनारूपं भावलिंगनिरपेक्षं द्रव्यलिंगं मुक्तिकारणं न भवतीति प्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथासप्तकं । तदनंतरं मुख्यरूपफलदर्शनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं ॥ ४१५ ॥

इति श्री**जयसेनाचार्य**कृताया समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां **तात्पर्यवृत्तौ** समुदायेन षडधिकनवतिगाथाभिस्त्रयोदशाधिकारैः समयसारचूलिकाभिधानो **सर्वविशुद्धज्ञान**नामा दशमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ९ ॥

ज्ञान साकार है प्रगट अनुभवगोचर है इसलिये इसीके द्वारा आत्मा पहचाना जाता है। इसकारण इस ज्ञानको ही प्रधानकर आत्मतत्त्व कहा गया है । ऐसा नहीं समझना कि आत्माको ज्ञानमात्र तत्व कहा है सो इतना ही परमार्थ है अन्य धर्म झूठे हैं आत्मामें नहीं हैं। ऐसा सर्वथा एकांत करनेसे मिथ्यादृष्टि होता है विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धका तथा वेदांतका मत आता है । सो ऐसा एकांत बाधासहित है। ऐसे एकांत अभिप्रायकर मुनिव्रत भी पालन करे तथा आत्माके ज्ञानमात्रका ध्यान करे तौभी मिथ्यात्व नहीं छूटता । मंद कषायके निमित्तसे स्वर्ग पावे तो पाओ परंतु मोक्षका साधन तो नहीं होता । इसलिये स्याद्वादकर यथार्थ समझना ॥ ४१५ ॥ इस प्रकार यहांतक ४१५ गाथाओंका व्याख्यान और उस व्याख्यानके कलशरूप तथा सूचनिका रूप २४६ काव्य टीकाकारने किये ।

इसप्रकार श्री **पंडित जयचंद्रजी** कृत समयसारग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी भाषावचनिकामें **नौवां सर्वविशुद्धज्ञान**का अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

अथ परिशिष्टम् ।

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाक् भूयोऽपि चिंत्यते ॥ २४७ ॥

स्याद्वादो हि समस्तवस्तुतत्त्वसाधकमेवमेकमस्खलितं शासनमर्हत्सर्वज्ञस्य । स तु सर्वमनेकांतात्मकमित्यनुशास्ति सर्वस्यापि वस्तुनोऽनेकांतस्वभावत्वात् । अत्र त्वात्मवस्तुनो ज्ञानमात्रतया अनुशास्यमानेऽपि न तत्परिदोषः ज्ञानमात्रस्यात्मवस्तुनः स्वयमेवानेकांतत्वात् । तत्र यदेव तत्तदेवातत् यदेवैकं तदेवानेकं यदेव सत्तदेवासत् यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुत्वनिष्पादकं परस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकांतः । तत्स्वात्मकव-

---

अथ परिशिष्टम् ।

अत्र स्याद्वादसिद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिंत्यते ॥

चिंत्यते विचार्यते कथ्यते मनाक् संक्षेपेण भूयः पुनरपि । काऽसौ ? वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ? वस्तुतत्त्वस्य वस्तुतत्त्वस्वरूपस्य व्यवस्थितिर्व्याख्या । किमर्थं ? स्याद्वादशुद्ध्यर्थं स्याद्वादनिश्चयार्थं । अत्र समयसारव्याख्याने समाप्तिप्रस्तावेन केवलं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिश्चिन्त्यते । उपायोपेयभावश्च । उपायो मोक्षमार्गः उपेयो मोक्ष इति । अतः परं स्याद्वादशब्दार्थः कः ?—इति प्रश्ने सत्याचार्या उत्तरमाहुः—**स्यात्कथंचित् विवक्षितप्रकारेणानेकांतरूपेण वदनं वादो जल्पः कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वादः** स च स्याद्वादो भगवतोऽर्हतः शासनमित्यर्थः । तच्च भगवतः शासनं किं करोति ? सर्वं वस्तु, अनेकांतात्मकमित्यनुशास्ति ।

अथ परिशिष्ट ।

अब यहां टीकाकार विचारते हैं कि, इस ग्रंथमें ज्ञानको प्रधानकर ज्ञानमात्र आत्मा कहते आये हैं । वहां कोई ऐसा तर्क करे कि जैनमतमें तो स्याद्वाद है ज्ञानमात्र कहनेसे तो एकांत आगया, स्याद्वादसे विरोध आया । तथा एक ही ज्ञानमें उपायतत्त्व और उपेयतत्त्व ये दो किसतरह बन सकते हैं ? ऐसे तर्कके दूर करनेके लिये कुछ कहते हैं उसका २४७ वां श्लोक यह है—**अत्र स्याद्वाद** इत्यादि । **अर्थ**—इस अधिकारमें स्याद्वादकी शुद्धिके लिये वस्तुतत्त्व विचारते हैं तथा एक ही ज्ञानमें उपायभाव और उपेयभाव कुछ एक विचारते है ॥ **भावार्थ**—यद्यपि यहां ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व कहा है तौभी वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषात्मक अनेक धर्मस्वरूप है वह स्याद्वादसे सधता है । ज्ञानमात्र आत्मा भी वस्तु है उसकी व्यवस्था स्याद्वादसे साधते हैं और इस ज्ञानमें ही उपायउपेयभाव अर्थात् साध्यसाधकभाव विचारते हैं । अब

स्तुनो ज्ञानमात्रत्वेऽप्यंतश्चकचकायमानज्ञानस्वरूपेण तत्त्वात्, बहिरुन्मिषदनंतज्ञेयतापन्नस्वरूपातिरिक्तपररूपेणातत्त्वात्, सहक्रमप्रवृत्तानंतचिदंशसमुदयरूपाविभागद्रव्येणैकत्वात्, अविभागैकद्रव्यव्याप्तसहक्रमप्रवृत्तानंतचिदंशरूपपर्यायैरनेकत्वात् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभवभवनशक्तिस्वभाववत्त्वेन सत्त्वात् परद्रव्यक्षेत्रकालभवभवनशक्तिस्वभाववत्त्वेनाऽसत्त्वात् अनादिनिधनाविभागैकवृत्तिपरिणतत्वेन नित्यत्वात्, क्रमप्रवृत्तैकसमयावच्छिन्नानेकवृत्त्यंशपरिणतत्वेनानित्यत्वात्तदतत्त्वमेकानेकत्वं सदसत्त्वं नित्यानित्यत्वं च प्रकाशत एव। ननु यदि ज्ञानमात्रत्वेऽपि आत्मवस्तुनः स्वयमेवानेकांतः प्रकाशते तर्हि किमर्थमर्हद्भिस्तत्साधनत्वेनाऽनुशास्यतेऽनेकांतः? । अज्ञानिनां ज्ञानमात्रात्मवस्तुप्रसिद्ध्यर्थमिति ब्रूमः ।

अनेकांत इति कोऽर्थः? इति चेत् एकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादकं—अस्तित्वनास्तित्वद्वयादिस्वरूपं परस्परविरूद्धसापेक्षशक्तिद्वयं यत्तस्य प्रतिपादने स्यादनेकांतो भण्यते। सचानेकांतः किं करोति?

इसकी व्यवस्था कहते हैं—स्याद्वाद है वह सब वस्तुके साधनेवाला एक निर्बाध अर्हत्सर्वज्ञका शासन (मत) है वह स्याद्वाद सब वस्तुओंको अनेकात्मक कहता है क्योंकि सभी पदार्थोंका अनेक धर्मरूप स्वभाव है । असत्यार्थ कल्पना कर नहीं कहता जैसा वस्तुका स्वभाव है वैसा ही कहता है । यहां आत्मानामक वस्तुको ज्ञानमात्रपनेकर कहनेसे स्याद्वादका कोप नहीं है ज्ञानमात्र आत्मवस्तुके भी स्वयमेव अनेकांतात्मकपना है वह कैसा है? यही कहते हैं। अनेकांतका ऐसा स्वरूप है कि जो वस्तु सत्स्वरूप है, वही वस्तु असत्स्वरूप है, जो वस्तु नित्यस्वरूप है वही वस्तु अनित्यस्वरूप है । इस तरह एक वस्तुमें वस्तुपनेकी उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियां अपने आत्मवस्तुके ज्ञानमात्रपने होनेपर भी पाई जाती हैं। यही कहते हैं—आत्माका ज्ञानमात्रपना होनेसे भी अंतरंगमें प्रकाशमान ज्ञानस्वरूपकर तो तत्स्वरूपपना है और बाह्य उघड़ते अनंत ज्ञेयभावको प्राप्त ज्ञानस्वरूपसे भिन्न जो परद्रव्योंके रूप उनकर अतत्स्वरूपपना है उन स्वरूप ज्ञान नहीं है। सहभूत प्रवर्तते और क्रमरूप प्रवर्तते जो अनंत चैतन्यके अंश उनके समुदायरूप अविभागरूप जो द्रव्यपना उसकर तो एकपना है तथा अविभाग एक द्रव्यमें व्याप्त जो सहभूत प्रवर्तते वा क्रमरूप प्रवर्तते चैतन्यके अनंत अंशोंस्वरूप पर्यायोंकर अनेकपना है। अपने द्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप होनेकी शक्तिके स्वभावपनेकर सत्त्वस्वरूप है और परके द्रव्य क्षेत्र काल भाव होनेकी शक्तिके स्वभावपनेके अभावसे असत्त्वस्वरूप है। अनादि निधन अविभाग एक वृत्तिरूप परिणमनपनेकर नित्यपने स्वरूप है और क्रमकर प्रवर्तते एक समयमें अनेक वृत्तियोंके अंश उनकर परिणमनपनेसे अनित्यपना स्वरूप है। इसतरह तत्पना अतत्पना एकपना अनेकपना सत्पना असत्पना नित्यपना अनित्यपना प्रकट प्रकाशता ही है। यहां तर्क, यदि आत्मवस्तुके ज्ञानमात्रपना होनेपर भी स्वयमेव अनेकांत प्रकाशता है तो अर्हंत भगवान्

न खल्वनेकांतमंतरेण ज्ञानमात्रमात्मवस्त्वेव प्रसिद्ध्यति । तथाहि—इह हि स्वभावत एव बहुभावनिर्भरविश्वे सर्वभावानां स्वभावेनाद्वैतेऽपि द्वैतस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् समस्तमेव वस्तु स्वपररूपप्रवृत्तिव्यावृत्तिभ्यामुभयभावाध्यासितमेव । तत्र यदायं ज्ञानमात्रो भावः शेषभावैः सह स्वरसभरप्रवृत्तज्ञातृज्ञेयसंबंधतयाऽनादिज्ञेयपरिणमनात् ज्ञानतत्त्वं पररूपेण प्रतिपद्याज्ञानी भूत्वा तमुपैति, तदा स्वरूपेण तत्त्वं द्योतयित्वा ज्ञातृत्वेन परिणमनाज्ज्ञानी कुर्वन्ननेकांत एव तमुद्गमयति १ । यदा तु सर्वं वै खल्विदमात्मेति अज्ञानतत्त्वं ज्ञानस्वरूपेण प्रतिपद्य विश्वोपादानेनात्मानं नाशयति तदा पररूपेणातत्त्वं द्योतयित्वा विश्वाद्भिन्नं ज्ञानं दर्शयन् अनेकांत एव नाशयितुं न ददाति २ । यदानेकज्ञेयाकारैः खंडितसकलैकज्ञानाकारो नाशमुपैति तदा द्रव्येणैकत्वं द्योतयन् अनेकांत एव तमुज्जीवयतीति ३ । यदा त्वेकज्ञानाकारोपादानायानेकज्ञेयाकारत्यागेनात्मानं नाशयति तदा

ज्ञानमात्रो योऽसौ भावो जीवपदार्थः शुद्धात्मा स तदतद्रूप एकानेकात्मकः सदसदात्मको नि-

---

उसके साधनपनेकर अनेकांतको किसलिये उपदेश करते हैं ? । उसका समाधान—जो अज्ञानी जन हैं उनके ज्ञानमात्र आत्मवस्तुके प्रसिद्ध करनेके लिये कहते हैं । निश्चयकर अनेकांतके विना ज्ञानमात्र आत्मवस्तु ही प्रसिद्ध नहीं होती । यही कहते हैं—स्वभावसे ही वहुत भावोंकर भरे हुए इस लोकमें सब भावोंके अपने अपने स्वभावकर अद्वैतपना है तौभी द्वैतपनेके निषेध करनेका असमर्थपना है । इसलिये सभी वस्तु स्वरूपमें प्रवृत्ति और पररूपसे व्यावृत्ति इन दोनों रीतियोंसे दोनों भावोंकर युक्त है यह नियम है । यही ज्ञानमात्र भावमें लगाना । वहां ज्ञानभाव है वह अन्य (बाकीके) ज्ञेयभावोंकर सहित अपने निज ज्ञानरसके भरकर प्रवर्ता जो ज्ञाता ज्ञेयका संबंध उसपनेकर अनादिसे ही ज्ञेयाकार परिणमता ही दीखता है । इसलिये जो अज्ञानीजन हैं वे ज्ञानतत्त्वको ज्ञेयरूप अंगीकारकर अज्ञानी हुए आप नाशको प्राप्त होते हैं उससमय यह अनेकांत है वह अपने ज्ञानस्वरूपकर ज्ञेयसे भिन्न ज्ञानतत्त्वको प्रगट कर इस आत्माको ज्ञातापनेकर परिणमनसे ज्ञानी करता हुआ इस आत्माको उदयरूप करता है नाश नहीं होने देता । १ । अज्ञानी जन जिस समय ऐसा मानते हैं कि यह सब जगत् निश्चयकर एक आत्मा है इसतरह अज्ञानतत्त्वको अपने ज्ञानस्वरूपसे अंगीकार कर सब जगत्को अपना मान ग्रहण कर अपने भिन्न आत्माका नाश करते हैं उस समय परभावस्वरूपकर अतत् अर्थात् सब जगत् एक ही आत्मा नहीं है ऐसें भिन्न आत्मस्वरूपपना प्रगट कर यह अनेकांत सब जगतसे भिन्न ज्ञानको दिखाता हुआ आत्माका नाश नहीं करने देता । २ । जिस समय अनेक ज्ञेयोंके आकारोंकर खंड खंडरूप किया जो एक ज्ञानका आकार उसको देख एकांतवादी ज्ञान तत्त्वको नाशको प्राप्त करते हैं उस समय यह अनेकांत ज्ञानतत्त्वके द्रव्यकर एकपनेको प्रगट करता हुआ उसको जीवित करता है नाश नहीं होने देता । ३ । जिस

पर्यायैरनेकत्वं द्योतयन् अनेकांत एव नाशयितुं न ददाति ४ । यदा ज्ञायमानपरद्रव्यपरिणमनाद् ज्ञातृद्रव्यं परद्रव्यत्वेन प्रतिपद्य नाशमुपैति तदा स्वद्रव्येण सत्त्वं द्योतयन् अनेकांत एव तमुज्जीवयति ५ । यदा तु सर्वद्रव्याणि अहमेवेति परद्रव्यं ज्ञातृद्रव्यत्वेन प्रतिपाद्यात्मान नाशयति तदा परद्रव्येणासत्त्वं द्योतयन् अनेकांत एव नाशयितुं न ददाति ६ । यदा परक्षेत्रगतज्ञेयार्थपरिणमनात् परक्षेत्रेण ज्ञानं सत् प्रतिपद्य नाशमुपैति तदा स्वक्षेत्रेणास्तित्वं द्योतयन्ननेकांत एव तमुज्जीवयति ७ । यदा तु स्वक्षेत्रे भवनाय परक्षेत्रे ज्ञेयाकारत्यागेन ज्ञानं तुच्छीकुर्वन्नात्मानं नाशयति तदा स्वक्षेत्र एव ज्ञानस्य परक्षेत्रगतज्ञेयाकारपरिणमनस्वभावत्वात्परक्षेत्रेण नास्तित्वं द्योतयन् अनेकांत एव नाशयितुं न ददाति ।८। यदा पूर्वालंबितार्थविनाशकाले ज्ञानस्यासत्त्वं प्रतिपद्य नाशमुपैति यदा स्वकालेन सत्त्वं द्योतयन्ननेकांत एव तमुज्जीवयति ।९। यदा त्वर्थालम्बनकाल एव ज्ञानस्य सत्त्वं

त्यानित्यादिस्वभावात्मको भवतीति कथयति । तथाहि–ज्ञानरूपेण तद्रूपो भवति । ज्ञेयरूपेणातद्रूपो भवति । द्रव्यार्थिकनयेनैकः । पर्यायार्थिकनयेनानेकः । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन

समय एकांती ज्ञानका एक आकार ग्रहण करनेके लिये अनेक ज्ञेयोंके आकार ज्ञानमें आते हैं उनका त्यागकर ज्ञानस्वरूप आत्माका नाश करता है उससमय यह अनेकांत ज्ञानके पर्यायोंकर अनेकपनेको प्रगट करता हुआ आत्माका नाश नहीं करने देता । ४ । जिस समय एकांती ज्ञानमे आये जो परद्रव्य उनके परिणमनसे ज्ञाता द्रव्यको परद्रव्यपनेसे अंगीकार कर आत्माका नाश करता है उस समय अपने स्वद्रव्यकर अपने सत्त्वको प्रगट करता हुआ अनेकात ही आत्माको जीवित रखता है नाश नहीं होने देता । ५ । जिस समय एकांती, सब द्रव्य हैं वे मैं ही हूं इसतरह परद्रव्योंको ज्ञाता द्रव्यकर अंगीकार करता आत्माका नाश करता है उस समय पर द्रव्यरूप आत्मा नहीं है ऐसें परद्रव्य कर आत्माके असत्त्वको प्रगट करता हुआ अनेकांत ही नाश नहीं करने देता । ६ । पर क्षेत्रमें प्राप्त ज्ञेय पदार्थोंके आकार सरीखा परिणमनेसे परक्षेत्रकर ही ज्ञानको सद्रूप अंगीकार कर एकांती नाशको प्राप्त करता है उस समय अपने क्षेत्रकर अस्तित्वको प्रगट करता हुआ अनेकांत ही जिवाता है नाश नहीं होने देता । ७ । अपने क्षेत्रमें होनेके लिये पर क्षेत्रमें प्राप्त जो ज्ञेय उनके आकार ज्ञानका होना उसका त्यागकर ज्ञानको ज्ञेयाकार रहित तुच्छ करता हुआ एकांती आत्माका नाश करता है उस समय अनेकात, ज्ञानका अपने क्षेत्रमेंही परक्षेत्रमें प्राप्त ज्ञेयोंके आकाररूप परिणमनेका स्वभावपना है, ऐसें परक्षेत्रकर नास्तिपनेको प्रगट करता हुआ नाश नहीं करने देता ।८। जिस समय पूर्व आलंबन किये ज्ञेय पदार्थोंके विनाशके समय ज्ञानके असत्त्वको अंगीकार कर एकांती ज्ञानको नाशको प्राप्त करता है उस समय अनेकांत ही अपने ज्ञानके ही कालकर अज्ञानके सत्त्वको प्रगट करता ज्ञानको जिवाता है नाश नहीं होने देता । ९ । जिस समय

प्रतिपद्यात्मानं नाशयति तदा परकालेनासत्त्वं द्योतन्ननेकांत एव नाशयितुं न ददाति १०। यदा ज्ञायमानपरभावपरिणमनात् ज्ञायकभावं परभावत्वेन प्रतिपद्य नाशमुपैति तदा स्वभावेन सत्त्वं द्योतयन् अनेकांत एव तमुज्जीवयति ११ यदा तु सर्वे भावा अहमेवेति परभावं ज्ञायकभावत्वेन प्रतिपाद्यात्मानं नाशयति तदा परभावं द्योतयन्ननेकांत एव नाशयितुं न ददाति १२ यदाऽनित्यज्ञानविशेषैः खंडितनित्यज्ञानसामान्यो नाशमुपैति तदा ज्ञानसामान्यरूपेण नित्यत्वं द्योतयन्ननेकांत एव नाशयितुं न ददाति १३ यदा तु नित्यज्ञान सामान्योपादानायानित्यज्ञानविशेषत्यागेनात्मानं नाशयति तदा ज्ञानविशेषरूपेणानित्यत्वं द्योतयन्ननेकांत एव तं नाशयितुं न ददाति १४। भवंति चात्र श्लोकाः—"बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्विश्रांतं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति। यत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुनर्दूरान्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णः समुन्मज्जति॥ २४८॥ विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया भूत्वा विश्वमयः

सद्रूपः। परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेनासद्रूपः। द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः। पर्यायार्थिकनयेना-

---

अर्थके आलंवनके कालमें ही ज्ञानके सत्त्वको ग्रहणकर एकांती आत्माका नाश करता है उस समय परके कालकर असत्त्वको प्रगट करता हुआ अनेकांत ही नाश नहीं होने देता। १०। जिस समय जाननेमें आता जो परभाव उसके परिणमनके आकार दीखता जो ज्ञायकभाव उसको परभावसे ग्रहण कर एकांती ज्ञान भावको नाशको प्राप्त करता है उस समय स्वभावकर ज्ञानके सत्त्वको प्रगट करता अनेकांत ही ज्ञानको जिवाता है नाश नहीं होने देता। ११। जिससमय एकांती ऐसा मानता है 'जो सब भाव हैं वे मैं हूं' ऐसें परभावको ज्ञायकपनेसे अंगीकारकर आत्माका नाश करता है उससमय पर भावोंकर ज्ञानके असत्त्वको प्रगट करता हुआ अनेकांत ही आत्माका नाश नहीं होने देता। १२। जिस समय अनित्य ज्ञानके विशेषोंकर खंडित हुआ जो नित्य ज्ञानसामान्य वह नाशको प्राप्त होता है ऐसा एकांत स्थापन करता है उस समय ज्ञानके सामान्यरूपकर नित्यपनेको प्रगट करता अनेकांत ही नाश नहीं करने देता। १३। जिस समय नित्य जो ज्ञानसामान्य उसके ग्रहण करनेके लिये अनित्य जो ज्ञानके विशेष उनके त्यागकर एकांती आत्माको नाशको प्राप्त करता है उससमय ज्ञानके विशेषरूपकर अनित्यपनेको प्रगट करता अनेकांत ही उस आत्माको जिवाता है नाश नहीं होने देता। १४। इसतरह चौदह भंगोंकर ज्ञानमात्र आत्माको एकांतकर तो आत्माका अभाव होना और अनेकांतकर आत्माका ठहरना दिखलाया। वहां तत् अतत्, एक अनेक, नित्य अनित्य इसतरह छह भंग तो ये हुए और सत्त्व असत्त्वके द्रव्य क्षेत्र काल भावकर आठ भंग किये। इसप्रकार चौदह भंग जानने॥ अब इनके कलशरूप १४ काव्य कहते हैं उनमेंसे २४८ वां यह

पशुः पशुरिव स्वच्छंदमाचेष्टते । तत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुनर्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥ २४९ ॥ बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विश्वग्विचित्रोल्लसज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन् पशुर्नश्यति । एकं द्रव्यतया सदाप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकांतवित् ॥ २५० ॥ ज्ञेयाकारकलंकमेचकचितिप्रक्षालनं कल्पयन्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति । वैचित्र्ये-

---

ऽनित्यः । पर्यायार्थिकनयेन भेदात्मकः द्रव्यार्थिकनयेनाभेदात्मको भवतीत्याद्यनेकधर्मात्मक इति । तदेव स्याद्वादस्वरूपं तु समंतभद्राचार्यदेवैरपि भाणितमास्ते—सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विप-

---

है—**बाह्यार्थैः** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी तिर्यंच समान सर्वथा एकांतीका ज्ञान है वह बाह्य ज्ञेय पदार्थोंकर समस्तपने पिया गया, छोड़ी जो अपनी व्यक्तियां उनकर रीता हुआ समस्तपनेकर पररूपमें ही विश्रांत हुआ–रह गया, अपनारूप कुछ भी न रहनेसे नष्ट हुआ । और स्याद्वादीका ज्ञान है वह अपने स्वरूपसे तत्स्वरूप ही है ज्ञानस्वरूप ही है ऐसें तत्स्वरूप हुआ अतिशयकर प्रगट हुए ज्ञानके समूहरूप स्वभावके भारसे संपूर्ण उदयरूप प्रगट होता है ॥ **भावार्थ**—कोई सर्वथा एकांती तो ज्ञानको ज्ञेयाकारमात्र ही मानता है उसके ज्ञानको तो ज्ञेय पीगये आप कुछ न रहा । और स्याद्वादी ऐसा मानते हैं कि ज्ञान अपने स्वरूपकर ज्ञान ही है, ज्ञेयाकार हुआ है तौभी ज्ञानपनेको नहीं छोड़ता । इसलिये तत्स्वरूप ज्ञान प्रकट प्रकाशमान है ॥ फिर २४९ वा काव्य—**विश्वं** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी, समस्त ज्ञेय पदार्थ ज्ञानमय हैं ऐसा विचारकर सकल जगतको निजतत्त्वकी आशाकर देख आप समस्त वस्तुमयी होके तिर्यंचकी तरह स्वच्छंद चेष्टा करता है । और स्याद्वादको देखनेवाला है वह उस ज्ञानके निजस्वरूपको ऐसा देखता है कि अपने ज्ञानस्वरूपसे तत्स्वरूप है, पर ज्ञेयस्वरूपोंसे तत्स्वरूप नहीं है । इस प्रकार सब वस्तुसे भिन्न, सब ज्ञेय वस्तुओंसे घटित होनेपर भी समस्त ज्ञेयस्वरूप नहीं, और ज्ञेयाकाररूप हुआ है तौभी उससे भिन्न ऐसा ज्ञानका स्वरूप अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—जो वस्तु अपने स्वरूपसे तत्स्वरूप है वही वस्तु परके स्वरूपसे अतत्स्वरूप है ऐसें स्याद्वादी देखता है । ज्ञान अपने स्वरूपसे तत्स्वरूप है उसीतरह पर ज्ञेयोंके आकार होनेपर उनसे भिन्न है इसलिये अतत्स्वरूप है। एकांतवादी समस्त वस्तु स्वरूप ज्ञानको मान आत्माको उन ज्ञेयमय मान अज्ञानी हो पशुकी तरह स्वच्छंद प्रवर्तता है । ऐसा अतत्स्वरूपका भंग है । अब २५० वा काव्य है—**बाह्यार्थ** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी, बाह्य ज्ञेय पदार्थोंके ग्रहणरूप ज्ञानके स्वभावके भारसे समस्त अनेक प्रगट ज्ञानमें आये ज्ञेयके आकारोंकर जिसकी शक्ति बिगड़गई (खंड खंड हुई) है ऐसा हुआ समस्तपनेसे खंड खंड होता आप नाशको प्राप्त होता है और अनेकांतका जाननेवाला सदा उदयरूप

प्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं पर्यायस्तदनेकतां परिमृशन् पश्यत्यनेकांतवित् ॥ २५१ ॥ प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावंचितः स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति । स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ॥ २५२ ॥ सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति । स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥ २५३ ॥ भिन्नक्षेत्र-

---

क्षाश्च ये नयाः । सर्वथेति प्रदुष्यंति पुष्यंति स्यादितीह ते ॥ १ ॥ सर्वथा नियमत्यागी यदा-

---

ज्ञानके एक द्रव्यपनेकर ज्ञेयोंके आकार होनेसे हुए सर्वथा भेदके भ्रमको दूर करता निर्बाध अनुभवनस्वरूप ज्ञानको एक देखता है ॥ **भावार्थ**—ज्ञान है वह ज्ञेयोंके आकार परिणमनेसे अनेक दीखता है उसको सर्वथा एकांतवादी अनेक खंड खंड रूप देखता हुआ ज्ञानमय आत्माका नाश करता है और स्याद्वादी ज्ञानको ज्ञेयाकार होनेपर भी सदा उदयरूप द्रव्यपनेकर एक देखता है । यह एकस्वरूप भंग है । अब २५१ वां काव्य है—**ज्ञेयाकार** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी सर्वथा एकांतवादी, ज्ञेयोंके आकारोंसे कलंकित अनेकाकार रूप मलिन चैतन्यमें एक चैतन्यमात्रके आकार करनेकी इच्छा करनेसे धोवना कल्पता हुआ ज्ञान अनेकाकार प्रगट है तो भी उसको नहीं मानता, एकाकार ही मान ज्ञानका अभाव करता है । और अनेकांतका जाननेवाला, ज्ञेयाकारसे ज्ञानका विचित्रपना होनेपर भी एकपनेको प्राप्त ज्ञान है वह आप स्वयमेव प्रक्षाला हुआ शुद्ध है एकाकार है ऐसे उस ज्ञानकी पर्यायोंकर अनेकताको अनुभवता है ॥ **भावार्थ**—एकांतवादी तो ज्ञानमे ज्ञेयाकारको मैल समझ एकाकार करनेके लिये ज्ञेयाकारको धोकर ज्ञानका नाश करता है । और अनेकांती ज्ञानको स्वरूपकर अनेकाकारपना मानता है । ऐसा वस्तुका स्वभाव है वह सत्यार्थ है । ऐसा अनेक स्वरूप भंग है ॥ अब २५२ वां काव्य है—**प्रत्यक्षा** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, प्रत्यक्ष प्रमाणसे चित्रित हुआ दीखता प्रगट स्थूल निश्चल ऐसे परद्रव्यको देख उसके अस्तित्वसे ठगा हुआ अपने निज आत्म द्रव्यके अस्तित्वको नहीं देखनेसे समस्तपने सर्वथा शून्य हुआ आत्माका नाश करता है । और स्याद्वादी, अपने निज द्रव्यके अस्तिपनेकर निपुण रीतिसे निज आत्म द्रव्यका निरूपणकर तत्काल प्रगट हुए विशुद्ध ज्ञान रूप तेजकर पूर्ण हुआ जीता है, नष्ट नहीं होता ॥ **भावार्थ**—एकांती बाह्य पर द्रव्यको प्रत्यक्ष देख उसीका अस्तित्व मानने लगता है और अपना आत्म द्रव्य इंद्रियप्रत्यक्ष कर दीखा नहीं इसलिये उसको शून्य मान आत्माका नाश करता है । परंतु स्याद्वादी, ज्ञानरूप तेजकर अपने आत्मद्रव्यके अस्तित्वको अवलोकनकर आप जीता है आत्माका नाश नहीं करता । यह स्वद्रव्य अपेक्षा अस्तित्वका भंग है ॥ पुनः २५३

निषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा सीदत्येव बहिः पतंतमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः । स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुनस्तिष्ठत्यात्मनि खातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ॥ २५४ ॥ स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झना तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान्महार्थैर्वमन् । स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥ २५५ ॥ पूर्वालंबितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन् सीदत्येव न किंचनापि कलयन्नत्यंततुच्छः पशुः । अस्तित्वं निज-

---

ष्टमपेक्षकः । स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषां ॥ २ ॥ अनेकांतोप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः । अनेकांतः प्रमाणात्ते तदेकांतोऽर्पितान्नयात् ॥ ३ ॥ धर्मिणोऽनंतरूपत्वं

वां काव्य—**सर्वद्रव्य** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, आत्माको सब द्रव्यमयी एक कल्पकर कुनयकी वासनासे वासित हुआ प्रगट परद्रव्यमें स्वद्रव्यका भ्रम करके विश्राम करता है । और स्याद्वादी, समस्त ही वस्तुमें परद्रव्य स्वरूपकर नास्तिताको जानता हुआ जिसके शुद्ध ज्ञानकी महिमा निर्मल है ऐसा हुआ स्वद्रव्यको ही आश्रय करता है ॥ **भावार्थ**—एकांतवादी तो सब द्रव्यमय एक आत्माको मान परद्रव्य अपेक्षा नास्तिताका लोप करता है । और स्याद्वादी सबमें परद्रव्यकी अपेक्षा नास्तिता मान अपने निजद्रव्यमें रमता है । यह परद्रव्यकी अपेक्षा नास्तिताका भंग है ॥ पुनः २५४ वां काव्य—**भिन्न** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, भिन्न क्षेत्रमें तिष्ठे ज्ञेय पदार्थोंमें ज्ञेयज्ञायक संबंधरूप निश्चित व्यापारमें तिष्ठे पुरुषको समस्तपनेसे बाह्य ज्ञेयोंमें ही पड़ते हुएको देखता कष्टको ही प्राप्त होता है । और स्याद्वादका जाननेवाला अपने क्षेत्रमें अपने अस्तिपनेकर जिसने अपना वेग रोक लिया है ऐसा हुआ अपने क्षेत्रमें ही अस्तित्वरूप ठहरता है ॥ **भावार्थ**—एकांतवादी तो भिन्न क्षेत्रमें तिष्ठे ज्ञेय पदार्थोंके जाननेके व्यापाररूप हुए पुरुषको बाह्य पड़ता ही मान नष्ट करता है । और स्याद्वादी, अपने क्षेत्रमें ही तिष्ठा पुरुष अन्य क्षेत्रमें तिष्ठे ज्ञेयोंको जानता हुआ अपने क्षेत्रमें ही अस्तित्वको धारता है—ऐसा मानता आत्मामें ही तिष्ठता है । यह स्वक्षेत्रमें अस्तित्वका भंग है ॥ पुनः २५५ वां काव्य—**स्वक्षेत्र** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, अपने क्षेत्रमें ठहरनेके लिये जुदे जुदे पर क्षेत्रमें तिष्ठते ज्ञेय पदार्थोंके छोड़नेसे तुच्छ होकर अपने चैतन्यके ज्ञेयरूप आकारोंको पर ज्ञेय अर्थके साथ वमताहुआ जैसें अर्थोंको छोड़ता है वैसे ही चैतन्यके आकारोंको भी छोड़ता है तब आप तुच्छ रहा । ऐसे अपना नाश करता है । और स्याद्वादी अपने क्षेत्रमें वसता हुआ परक्षेत्रमें अपनी नास्तिताको जानता यद्यपि पर क्षेत्रके ज्ञेय पदार्थोंको छोड़ता है तौ भी अपने चैतन्यके जो ज्ञेयरूप आकार हुए उनको परसे खेंचता हुआ तुच्छताको नहीं अनुभवता, नष्ट नहीं होता ॥ **भावार्थ**—एकांती तो परक्षेत्रमें तिष्ठते ज्ञेयपदार्थोंके आकार चैतन्यके आकार हुए उनको जैसे

कालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥ २५६ ॥ अर्थालंबनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहिर्ज्ञेयालंबनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति । नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनस्तिष्ठत्यात्मनि खातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन् ॥ २५७ ॥ विश्रांतः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकांतनिश्चेतनः । सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनाज्ज्ञानाद्विभक्तोभवन् स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥ २५८ ॥ अध्या-

---

धर्माणां न कथचन । अनेकांतोप्यनेकांत इति जैनमतं ततः ॥ ४ ॥ एवं कथंचिच्छब्देन वाचकस्यानेकांतात्मकवस्तुप्रतिपादकस्य स्याच्छब्दस्यार्थः संक्षेपेण ज्ञातव्यः । तत्रैवमनेकांतव्याख्यानेन ज्ञानमात्रभावो जीवपदार्थः एकानेकात्मको जातः । तस्मिन्नेकानेकात्मके जाते सति

अर्थोंको छोड़ता है वैसे चैतन्यके आकारें भी छोड़ता है। ऐसा जानता है कि चैतन्यके आकारोंको अपना करूंगा तो अपना क्षेत्र छूट जायगा इसलिये आप चैतन्यके आकार रहित हुआ तुच्छ (नष्ट) होता है। और स्याद्वादी ज्ञेयपदार्थोंको छोड़ देता है तौभी अपने चैतन्यके आकारोंको नहीं छोड़ता, अपने क्षेत्रमें वसता हुआ परक्षेत्रमें अपनी नास्तिताको जानता नष्ट नहीं होता। यह परक्षेत्रकी अपेक्षा नास्तिताका भंग है ॥ पुनः २५६ वां काव्य—**पूर्वा** इत्यादि। **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, पूर्वकालमें आलंवे ज्ञेयपदार्थोंके नाश होनेके समयमें ज्ञानका भी नाश जानता हुआ कुछ भी नहीं जानता तुच्छ हुआ नाशको प्राप्त होता है। और स्याद्वादका जाननेवाला, इस आत्माके अपने कालसे अस्तित्वको जानता हुआ बाह्य वस्तुको वार वार होके नष्ट होजानेपर भी आप पूर्ण ही तिष्ठता है ॥ **भावार्थ**—पहले जो ज्ञेय जाने थे वे उत्तरकालमें नष्ट होगये, उनको देख एकांती अपने ज्ञानका भी नाश मान अज्ञानी हुआ आत्माका नाश करता है। और स्याद्वादी ज्ञेयपदार्थोंके नष्ट होनेपर भी अपना अस्तित्व अपने कालसे ही मानता नष्ट नहीं होता। यह स्वकाल अपेक्षा अस्तित्वका भंग है ॥ पुनः २५७ वां काव्य—**अर्थालंबन** इत्यादि। **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, ज्ञेयपदार्थके आलंबन कालसे ही ज्ञानका अस्तित्व जानता हुआ बाह्यज्ञेयके आलंबनमें चित्तको अनुरागसहित कर बाह्य भ्रमता हुआ नाशको प्राप्त होता है। और स्याद्वादका जाननेवाला, परकालसे अपने आत्माका नास्तित्व जानता हुआ आत्मामें खुदा जो नित्य स्वाभाविक ज्ञान पुंज उस स्वरूप हुआ तिष्ठता है नष्ट नहीं होता ॥ **भावार्थ**—एकांती तो ज्ञेयके अलंबनके कालमें ही ज्ञानका सत्त्व जानता है इसलिये ज्ञेयके आलंबनमें मन लगाके बाह्य भ्रमता हुआ नष्ट होता है और स्याद्वादी, ज्ञेयके कालसे अपना अस्तित्व नहीं जानता अपने ही कालसे अपना अस्तित्व जानता है इसलिये ज्ञेयसे जुदा ही अपने ज्ञानका पुंज रूप हुआ नष्ट नहीं होता। यह परकाल अपेक्षा नास्तित्वका भंग है ॥ २५८ वां काव्य—

स्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः सर्वत्रापनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति । स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरादारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ॥ २५९ ॥ प्रादुर्भावविराममुद्रितवहन् ज्ञानांशनानात्मतानिर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति । स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥ २६० ॥ टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया वांछत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नः पशुः किंचन । ज्ञानं नित्यमनित्यता परि-

---

ज्ञानमात्रभावस्य जीवपदार्थस्य नयविभागेन भेदाभेदरत्नत्रयात्मक निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गद्वयरू-

---

विश्रांतः इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, परभावको ही अपना भाव जाननेसे बाह्य वस्तुओंमें विश्राम करता अपने स्वभावकी महिमामें एकांतकर निश्चेतन हुआ (जड़ हुआ) आप नाशको प्राप्त होता है। और स्याद्वादी, सभी वस्तुओंमें अपना नियमरूप स्वभावभावके भवनस्वरूप ज्ञानसे जुदा हुआ, सहज स्वभावका प्रत्यक्ष अनुभवरूप किया है प्रतीतिरूप जानपना जिसने ऐसा हुआ नाशको नहीं प्राप्त होता **भावार्थ**—एकांती तो परभावको निजभाव जान बाह्य वस्तुमें ही विश्राम करता हुआ आत्माका नाश करता है। और स्याद्वादी, अपने ज्ञानभावको ज्ञेयाकार होनेपर भी ज्ञानको ही अपना भाव जानता हुआ अपना नाश नहीं करता । यह अपने भावकी अपेक्षा अस्तित्वका भंग है ॥ पुनः २५९ वा काव्य—**अध्यास्य** इत्यादि । अज्ञानी एकांतवादी, अपने आत्मामें सब ज्ञेय पदार्थोंका होना निश्चयकर शुद्धज्ञानस्वभावसे च्युत हुआ सब पदार्थोंमें स्वेच्छाचारी हुआ क्रीडा करता है अपने भावका लोप करता है। और स्याद्वादी, अपने भावमें ही सर्वथा आरूढ हुआ परभावका अपने भावमें अभाव प्रगट है ऐसा समझ निश्चित हुआ शुद्ध ही शोभायमान है ॥ **भावार्थ**—एकांती तो पर भावोंको अपना जान अपने शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ सब जगह निःशंक (स्वेच्छासे) प्रवर्तता है। और स्याद्वादी परभावोंको जानता है तौ भी उनसे जुदा अपने आत्माको शुद्ध ज्ञानस्वभाव अनुभवता हुआ शोभता है। यह परभाव अपेक्षा नास्तित्वका भंग है ॥ पुनः २६० वां काव्य—**प्रादुर्भाव** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, उत्पाद व्ययकर प्राप्त हुए ज्ञानके अंशोंकर नाना स्वरूपके निर्णयके ज्ञानसे क्षणभंगके संगमें पड़ा बहुधा अपना नाश करता है। और स्याद्वादी, चैतन्यस्वरूपकर चैतन्य वस्तुको नित्य उदयरूप अनुभवता टंकोत्कीर्ण घनस्वभाव महिमावाले ज्ञानरूपसे जीता है अपना नाश नहीं करता ॥ **भावार्थ**—एकांती तो ज्ञेयके आकारवत् ज्ञानको उपजता विनाश होता देख क्षणभंगकी संगतिवत् अपना नाश करता है और स्याद्वादी, ज्ञेयके साथ ज्ञानके उपजने विनाश होनेपर भी चैतन्यभावका नित्य उदय अनुभवता हुआ ज्ञानी

गमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ॥ २६१ ॥ इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन् । आत्मतत्त्वमनेकांतः स्वयमेवानुभूयते ॥ २६२ ॥ एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयं । आलंब्य शासनं जैनमनेकांतो व्यवस्थितः ॥ २६३ ॥ नन्वनेकांतमयस्यापि किमर्थमत्रात्मनो ज्ञानमात्रतया व्यपदेशः? लक्षणप्रसिद्ध्या लक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थं । आत्मनो हि ज्ञानं लक्षणं तदसाधारणगुणत्वात्तेन ज्ञान-

---

पेणोपायभूतं साधकरूपं घटते । मोक्षरूपेण पुनरुपेयभूतं साध्यरूपं च घटत इति ज्ञातव्यं ।

होता जीता है अपना नाश नहीं करता । यह नित्यपनेका भंग है ॥ पुनः २६१ वां काव्य—**टंकोत्कीर्ण** इत्यादि । **अर्थ**—अज्ञानी एकांतवादी, टंकोत्कीर्ण निर्मल ज्ञानका फैलावरूप एक आकार जो आत्मतत्त्व उसकी आशाकर अपनेमें उछलती निर्मल चैतन्यकी परिणतिसे जुदा कुछ आत्माको चाहता है सो कुछ है नहीं । और स्याद्वादी, नित्यज्ञानको अनित्यताको प्राप्त होनेपर भी उज्वल देदीप्यमान चैतन्य वस्तुकी प्रवृत्तिके क्रमसे ज्ञानकी अनित्यताको अनुभवता ज्ञानको अंगीकार करता है ॥ **भावार्थ**—एकांती तो ज्ञानको एकाकार नित्य ग्रहणकरनेकी इच्छासे ज्ञानचैतन्यकी परिणति उपजती विनसती है उससे भिन्न कुछ मानता है सो परिणामके सिवाय परिणामी कुछ जुदा तो है नहीं । और स्याद्वादी, यद्यपि ज्ञान नित्य है तौ भी चैतन्यकी परिणति क्रमसे उपजती विनसती है उसके क्रमसे ज्ञानकी अनित्यता मानता है वस्तुस्वभाव ऐसा ही है । यह अनित्यपनेका भंग है ॥ अब २६२ वें श्लोकसे कहते हैं कि ऐसा अनेकांत अज्ञानकर मोही जीवोंको आत्मतत्त्वको ज्ञानमात्र साधता हुआ स्वयमेव अनुभवमें आता है—**इत्यज्ञान** इत्यादि । **अर्थ**—इस पूर्वोक्त प्रकार अनेकांत, अज्ञानसे मूढ प्राणियोंको समझानेकेलिये आत्मतत्त्वको ज्ञानमात्र साधता हुआ अपने अनुभवगोचर होता है ॥ **भावार्थ**—अनादिकालसे प्राणी स्वयमेव तथा एकांतवादका उपदेशकर आत्मतत्त्वका ज्ञानके अनुभवसे अनेक प्रकार पक्षपातकर आत्माका नाश करते हैं उनको समझानेके लिये आत्माका स्वरूप ज्ञानमात्र ही कहकर उसको अनेकातस्वरूप प्रकटकर स्याद्वादसे दिखलाया है सो यह असत्कल्पना नहीं है । ज्ञानमात्र वस्तु अनेकधर्मसहित अपने आप अनुभवगोचर प्रत्यक्ष प्रतिभासमें आती है सो हे प्रवीण पुरुषो ! तुम अपने आत्माकी तरफ देख अनुभव कर देखो । ज्ञानको तत्स्वरूप अतत् स्वरूप एक स्वरूप अनेकस्वरूप, अपने द्रव्यक्षेत्रकाल भावसे सत्स्वरूप, परके द्रव्य क्षेत्रकाल भावसे असत्स्वरूप नित्यस्वरूप अनित्यस्वरूप इत्यादि प्रत्यक्ष अनुभव गोचरकर अनेकधर्म स्वरूप प्रतीतिमें लाओ । यही सम्यग्ज्ञान है । सर्वथा एकांत माननेसे मिथ्या ज्ञान है ऐसा जानना ॥ अब अनेकातकी महिमा २६३ वें श्लोकसे करते हैं—**अर्थ**—इसप्रकार वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी व्यवस्थिति कर अपने स्वरूपको आप ही स्थापन करता हुआ अनेकांत है वह

प्रसिद्ध्या तल्लक्ष्यस्यात्मनः प्रसिद्धिः । ननु किमनया लक्षणप्रसिद्ध्या लक्ष्यमेव प्रसाधनीयं नाप्रसिद्धलक्षणस्य लक्ष्यप्रसिद्धिः ? प्रसिद्धलक्षणस्यैव तत्प्रसिद्धेः । ननु किं तल्लक्ष्यं यज्ज्ञानप्रसिद्ध्या ततो भिन्नं प्रसिद्ध्यति न ज्ञानाद्भिन्नं लक्ष्यं ज्ञानात्मनोर्द्रव्यत्वेनाप्रसिद्धत्वात् । तर्हि किं कृतो लक्षणविभागः ? प्रसिद्धप्रसाध्यमानत्वात् कृतः । प्रसिद्ध हि ज्ञानं ज्ञानमात्रस्य स्वसंवेदनसिद्धत्वात् तेन प्रसिद्धेन प्रसाध्यमानस्तदविनाभूतानंतधर्मसमुदयमूर्तिरात्मा ततो ज्ञानमात्राचलितनिखातया दृष्ट्या क्रमाक्रमप्रवृत्तं तदविनाभूतं

अथ प्राभृताध्यात्मशब्दयोरर्थः कथ्यते । तद्यथा—यथा कोऽपि देवदत्तो राजदर्शनार्थं किंचि-

---

निश्चित ठहरा । कैसा है यह ? किसीसे जीता न जाय ऐसा जिनदेवका मत (आज्ञा) है ॥ **भावार्थ**—यह अनेकांत ही निर्बाध जिनमत है सो जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसा स्थापन करता हुआ अपने आप सिद्ध हुआ है । असत्कल्पनाकर वचनमात्र प्रलाप किसीने नहीं कहा । सो हे निपुण पुरुषो ! अच्छीतरह विचारकर प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणसे अनुभव कर देखो । यहां कोई तर्क करता है कि आत्मा अनेकांतमयी है अनन्तधर्मा है तो भी उसका ज्ञानमात्रपनेसे नाम किसलिये किया ? ज्ञानमात्र कहनेमें तो अन्य धर्मोंका निषेध जाना जाता है । उसका समाधान—यहां लक्षणकी प्रसिद्धिसे लक्ष्यकी प्रसिद्धिकेलिये आत्माका ज्ञानमात्रपनेकर नाम किया है कि आत्मा ज्ञानमात्र है । यही कहते हैं—आत्माका ज्ञान लक्षण है क्योंकि वह ज्ञान आत्माका असाधारण गुण है । यह ज्ञान किसी अन्य द्रव्यमें नहीं पाया जाता इसलिये इस ज्ञानलक्षणकी प्रसिद्धिकर उससे लखने योग्य आत्माकी प्रसिद्धि होती है । लक्षण वही है जिसको बहुतकर सब जानें और लक्ष्य वह है कि जिसको प्रसिद्धपने न जान सकें । इसकारण लक्षण कहनेसे लक्ष्य प्रसिद्ध होता है । यहां फिर तर्क करता है कि इस लक्षणकी प्रसिद्धिसे क्या प्रयोजन ? लक्ष्य ही साधने योग्य है आत्माको ही साधना चाहिये । उसका समाधान—जिसके लक्षण अप्रसिद्ध है ऐसे अज्ञानी पुरुषके लक्ष्यकी प्रसिद्धि नहीं होती । अज्ञानीको तो पहले लक्षण दिखाया जाय तब लक्ष्यको ग्रहण करता है क्योंकि जिसके लक्षण प्रसिद्ध हो उसीके उस लक्षण स्वरूप लक्ष्यकी प्रसिद्धि होती है । फिर पूछते हैं कि वह लक्ष्य जुदा ही क्या है जो ज्ञानकी प्रसिद्धिसे उससे जुदा ही सिद्ध होता है ? उसका उत्तर—ज्ञानसे जुदा ही लक्ष्य आत्मा नहीं है क्योंकि द्रव्यपनेकर ज्ञान और आत्मामें भेद नहीं है अभेद ही है । यहां फिर पूछते हैं कि ज्ञान आत्मा अभेदरूप है तो लक्ष्य लक्षणका भेद किसकर किया गया होता है ? उसका उत्तर प्रसिद्धिकर प्रसाध्यमानपना है उसकर किया भेद है । ज्ञान प्रसिद्ध है क्योंकि ज्ञानमात्रका स्वसंवेदनकर सिद्धपना है सब प्राणियोंके स्वसंवेदनरूप अनुभवमें आता है । उस प्रसिद्धिकर साधे हुए उस ज्ञानसे अविनाभावी जो अनंतधर्म उनका समुदायरूप अभिन्न देशरूप मूर्ति आत्मा है । इसलिये ज्ञानमात्रमें अच-

अनंतधर्मज्ञानं, यद्यावल्लक्ष्यते तत्तावत्समस्तमेवैकः खल्वात्मा एतदर्थमेवात्रास्य ज्ञानमात्रतया व्यपदेशः । ननु क्रमाक्रमप्रवृत्तानंतधर्ममयस्यात्मनः कथं ज्ञानमात्रत्वं परस्परव्यतिरिक्तानंतधर्मसमुदायपरिणतैकज्ञप्तिमात्रभावरूपेण स्वयमेव भवनात् । अत एवास्य ज्ञानमात्रैकभावांतःपातिन्योऽनंताः शक्तयः उत्प्लवंते । आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः । अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः । अनाकारोपयोगमयी दृष्टिशक्तिः । साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः । अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः । स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः । अखंडितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः । सर्वभावव्यापकै-

---

त्सारभूतं वस्तु राज्ञे ददाति तत्प्राभृतं भण्यते । तथा परमात्माराधकपुरुषस्य निर्दोषिपरमात्म-

---

लित निश्चल लगाई दृष्टिकर क्रमरूप और अक्रमरूप युगपद्रूप प्रवर्तता जो उस ज्ञानसे अविनाभूत अनंतधर्मका समूह जितना कुछ देखा जाता है उतना कुछ समस्त ही एक निश्चयकर आत्मा है । इसी प्रयोजनके लिये इस अध्यात्म प्रकरणमें इस आत्माका ज्ञानमात्रपनेसे नाम कहा है । फिर पूछते हैं कि क्रमरूप व अक्रमरूप अनंत धर्म जिसमे प्रवर्तते हैं ऐसे आत्माके ज्ञानमात्रपना कैसा है ? उसका समाधान—परस्पर जुदे जुदे स्वरूपको धारनेवाले अनंत धर्मोंका समुदायरूप परिणत हुई जो एक ज्ञान क्रिया उसमात्र भावरूपकर अपने आप (स्वयमेव) होनेसे आत्माके ज्ञानमात्रपना है । आत्माके जितने धर्म हैं वे सभी ज्ञानके परिणमनस्वरूप है । यद्यपि उनमे लक्षण भेदसे भेद है तौ भी प्रदेशभेद नहीं है इसलिये एक असाधारण ज्ञानके कहनेसे सभी इसमें आगये । इसीसे इस आत्माका ज्ञानमात्र जो एक भाव उसके अंतःपातिनी (इसीमें आकर पड़नेवालीं) अनंत शक्तियां उदय होतीं (उघड़तीं) हैं । उनमेंसे कितनी एक शक्तियोंको कहते हैं । उनका टीकामें संस्कृतपाठ है उनकी वचनिका लिखते हैं—**आत्म** इत्यादि । **अर्थ**—प्रथम तो जीवत्वनामा शक्ति है । वह कैसी है ? आत्मद्रव्यको कारणभूत जो चैतन्यमात्रभाव वही हुआ भावप्राण उसका धारणा जिसका लक्षण है ऐसी है । **अजड** इत्यादि । **अर्थ**—यह दूसरी चितिशक्ति है । वह कैसी है ? जिसका स्वरूप जड़ रहित चेतना है ऐसी है । **अनाका** इत्यादि । **अर्थ**—यह तीसरी दर्शनक्रियारूप शक्ति है । कैसी है ? जिसमें ज्ञेयरूप आकारका विशेप नहीं ऐसे दर्शनोपयोगमयी (सत्तामात्र पदार्थसे उपयुक्त होने स्वरूप) है । **साकारो** इत्यादि । **अर्थ**—यह चौथी ज्ञानशक्ति है । वह कैसी है ? ज्ञेयपदार्थके आकाररूप विशेषसे उपयुक्त होनेवाले ज्ञानमयी है । **अना** इत्यादि । **अर्थ**—यह पांचसी सुखशक्ति है । कैसी है ? आकुलतासे रहितपना जिसका लक्षण है ऐसी है । **स्वरूप** इत्यादि । **अर्थ**—यह छठी वीर्यशक्ति है । कैसी है ? अपने आत्मस्वरूपकी रचनाकी सामर्थ्यरूप है । **अखंडित** इत्यादि । **अर्थ**—यह सातमी प्रभुत्वशक्ति है । कैसी है ? जिसका प्रताप किसीकर खंडित न

करूपा विभुत्वशक्तिः । विश्वविश्वसामान्यभावपरिणामात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः । विश्वविश्वविशेषभावपरिणामात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः । नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः । स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः । क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिकाऽसंकुचितविकाशत्वशक्तिः । अन्याक्रियमाणाऽन्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणशक्तिः । परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्राहणग्रहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः । अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः । षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका—

राजदर्शनार्थमिदमपि शास्त्रं प्राभृत । कस्मात्? सारभूतत्वात् इति प्राभृतशब्दस्यार्थः । रागादिपरद्रव्यनिरालंबनत्वेन निजशुद्धात्मनि विशुद्धाधारभूतेऽनुष्ठानमध्यात्मं । इदं प्राभृतशास्त्रं ज्ञात्वा

किया जाय ऐसा जो स्वाधीनपना उसकर शोभायमानपना जिसका लक्षण है ऐसी है । **सर्व** इत्यादि । **अर्थ**—यह आठवीं विभुत्वनामा शक्ति है । कैसी है ? सब भावोंमें व्यापक जो एक भाव उसरूप है, जिसका ज्ञान एक भाव सब भावोंमें व्यापता है । **विश्व** इत्यादि । **अर्थ**—यह नौमी सर्वदर्शित्व नामा शक्ति है । कैसी है ? समस्त पदार्थोंका समूहरूप जो लोकालोक उसका सामान्य भाव सत्तामात्र उसके देखनेरूप जिसका स्वरूप परिणया है ऐसे देखनेमयी है । **विश्व** इत्यादि । **अर्थ**—समस्त पदार्थोंका समूहरूप लोकालोक उनके समस्त जो आकार सहित भाव उनके जाननेरूप जिसका स्वरूप परिणत हुआ है ऐसी ज्ञानमयी दशमीं सर्वज्ञत्व नामा शक्ति है । **नीरूपा** इत्यादि । **अर्थ**—अमूर्तीक आत्माका प्रदेशोंमें प्रकाशमान जो लोकालोकके आकारसे अनेक आकाररूप दीखता उपयोग वह जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्व नामा ग्यारमी शक्ति है । जैसी दर्पणकी स्वच्छता है कि जिसमें घटपटादि प्रकाशें ऐसी स्वच्छता है । **स्वय** इत्यादि । **अर्थ**—अपने आप प्रकाशमान स्पष्ट अपने अनुभवमयी प्रकाश नामा शक्ति बारमी है । **क्षेत्र** इत्यादि । **अर्थ**—क्षेत्र कालकर अमर्यादरूप जो चैतन्यका विलास उस स्वरूप असंकुचित विकासत्व नामा तेरमी शक्ति है । **अन्या** इत्यादि । **अर्थ**—अन्यकर न करने योग्य और अन्यका कारण नहीं ऐसा एकद्रव्य उस स्वरूप अकार्यकारणत्वनामा चौदमीं शक्ति है । **परात्म** इत्यादि । **अर्थ**—पर और आप जिनका निमित्त है ऐसे ज्ञेयाकार ज्ञानाकार उनका ग्रहण करना व ग्रहण कराना ऐसा स्वभाव जिसका रूप है ऐसी परिणम्य परिणात्मक नामा पंद्रहवीं शक्ति है, यह शक्ति ज्ञेयाकार और ज्ञानाकार आप ही परिणमती है । **अन्यूना** इत्यादि । **अर्थ**—न घटे न वढे ऐसे स्वरूपमें नियमरूप जैसेका तैसा रहना उसरूप त्यागोपादान शून्यत्व नामा सोलवीं शक्ति है । **षट्** इत्यादि । **अर्थ**—षट् स्थान पतित वृद्धि हानिरूप परिणत हुआ जो वस्तुके नि-

अगुरुलघुत्वशक्तिः। क्रमाक्रमवृत्तित्वलक्षणोत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः। द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिंगितसदृशविसदृशरूपैकाऽस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः। कर्मबंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्तिः। सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः। सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका अभोक्तृत्वशक्तिः। सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पंद्यरूपा निष्क्रियत्वशक्तिः। आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीरपरिणामावस्थित-

---

किं कर्तव्यं? सहजशुद्धज्ञानानदैकस्वभावोऽहं निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं निजनिरंजनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानंदरूपसु-

---

जस्वरूपकी प्रतिष्ठाका कारण विशेष अगुरु लघुत्वनामा गुण उस स्वरूप अगुरुलघुत्वनामा सत्रहवीं शक्ति है। इस षट्स्थान पतित हानि वृद्धिका स्वरूप गोंमटसार ग्रंथसे जानना, यह अविभाग प्रतिच्छेदकी संख्यारूप षट्स्थानोंकर वस्तुस्वभावका घटना बढना वस्तुके स्वरूपको ठहरानेका कारण ऐसा ही कोई गुण है उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं सो यह भी शक्ति आत्मामे है॥ **क्रमा** इत्यादि। **अर्थ**—क्रमवृत्तिरूप पर्याय अक्रमवृत्तिरूप गुण उनका वर्तना जिसका लक्षण है ऐसी उत्पादव्यय–ध्रुवत्वनामा अठारवीं शक्ति है, क्रमवर्ती पर्याय तो उत्पादव्ययरूप होते हैं और सहवर्ती गुण ध्रुवरूप रहते हैं। **द्रव्य** इत्यादि। **अर्थ**—द्रव्यके स्वभावभूत ऐसे ध्रौव्य व्यय उत्पादोंकर स्पर्शित जो समानरूप व असमानरूप परिणाम उनस्वरूप एक अस्तित्वमात्रमयी परिणाम शक्ति उन्नीसवीं है। कर्मबंधके अभावकर व्यक्त हुआ जो स्वभावसे ही स्पर्शरस गंध–वर्णकर रहित आत्माका प्रदेश उस स्वरूप अमूर्तत्व नामा शक्ति वीसमीं है। **सकल** इत्यादि। **अर्थ**—सब कर्मोंकर किये गये ज्ञातापनेमात्रसे भिन्न परिणाम उनके करनेका अभावस्वरूप अकर्तृत्वशक्ति इक्कीसवीं हैं, आत्मा ज्ञातापने सिवाय कर्मकर किये परिणामोंका कर्ता नहीं है यह भी इसमे शक्ति है। **सकल** इत्यादि। **अर्थ**—सकल कर्मोंकर किये ज्ञातापने मात्रसे जुदे जो परिणाम उनके नहीं भोगनेरूप अभोक्तृत्व नामा बाईसमी शक्ति है। आत्मा ज्ञातापनेके सिवाय कर्मके किये अन्य परिणामोंका भोक्ता नहीं है यह भी इसमें शक्ति है। **सकल** इत्यादि। **अर्थ**—सब कर्मोंके अभावसे प्रवृत्त हुआ जो आत्माके प्रदेशोंका निश्चलपना उसस्वरूप तेईसवीं निष्क्रियत्वशक्ति है। सब कर्मोंका जब अभाव होता है तब प्रदेशोंका कंप मिट जाता है इसलिये यह शक्ति भी इसमें है॥ **आसंसार** इत्यादि। **अर्थ**—अनादि संसारसे लेके संकोचविस्तारसे चिह्नित और किंचित् ऊन चरम शरीर प्रमाणकर अवस्थित ऐसे दोनों भावोंको लिये हुए लोकाकाश परिमाणस्वरूप अवयवपना जिसका लक्षण है ऐसी नियत प्रदेशत्वशक्ति चौवीसवीं है। आत्माके लोकपरिमाण असंख्यात प्रदेश नियत हैं वे संसार अवस्थामें चरम

लोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः। सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः। विलक्षणानंतस्वभावभावितैकभावलक्षणानंतधर्मत्वशक्तिः। तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मशक्तिः। तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः। अतद्रूपाऽभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः। अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः। एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः। भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः। शून्यावस्थत्वरूपाऽभावशक्तिः। भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः। अभवत्पर्यायोदयरूपाऽभावभावशक्तिः। भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः। अभवत्पर्यायाऽभवनरूपाऽभावाभावशक्तिः। कारकानुगतक्रियाभिनिष्क्रांतभवनमात्रमयी भावशक्तिः। कारकानुगतभव-

---

स्वानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनेन संवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं। राग-द्वेष-मोह-क्रोध-

---

शरीरसे कुछ कम अवस्थित हैं ऐसी शक्ति है॥ **सर्व** इत्यादि। **अर्थ**—सब ही शरीरोंमें एक स्वरूप रहना यह स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति पचीसवीं है। शरीरके धर्मरूप न होना और अपने धर्मोंमें व्यापना यह शक्ति है॥ **स्वपर** इत्यादि। **अर्थ**—अपने परके समानधर्म व असमान धर्म व समानासमान धर्म ऐसे तीन प्रकारके भाव धारण स्वरूप साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्व नामा छव्वीसवीं शक्ति है। **विलक्ष** इत्यादि। **अर्थ**—परस्पर भिन्न लक्षणस्वरूप जो अनंत स्वभाव उनकर मिला हुआ जो एक भाव वह जिसका लक्षण है ऐसी अनंतधर्मत्व शक्ति सत्ताईसवीं है। **तद्** इत्यादि। **अर्थ**—तत्स्वरूप और अतत्स्वरूप उनमयपना जिसका लक्षण है ऐसी विरुद्ध धर्मत्वशक्ति अट्ठाईसवीं है। **तद्रूप** इत्यादि। **अर्थ**—तत्स्वरूप होना जिसका स्वरूप है ऐसी तत्त्वशक्ति उनतीसमी है, जो वस्तुका स्वभाव है उसे तत्त्व कहते हैं वही तत्त्वशक्ति है। **अत** इत्यादि। **अर्थ**—तत्स्वरूप न होनेरूप अतत्त्वशक्ति तीसवीं है, जैसे चेतन जडरूप नहीं होता यह शक्ति है। **अनेक** इत्यादि। **अर्थ**—अनेक पर्यायोंमें व्यापक जो एक द्रव्य उसमयीस्वरूप एकत्वशक्ति इकतीसवीं है। **एक** इत्यादि। **अर्थ**—एक द्रव्यमें व्यापने योग्य अनेक पर्यायमयस्वरूप अनेकत्वशक्ति बत्तीसवीं है। **भूता** इत्यादि। **अर्थ**—होगये विद्यमान परिणामोंसे अवस्थितस्वरूप भावशक्ति है, यह तेतीसवीं है। **शून्या** इत्यादि। **अर्थ**—जिस परिणामका अभाव है उसके शून्यपनेसे अवस्थित स्वरूप अभावशक्ति है। यह चौतीसवीं है। **भवत्** इत्यादि। **अर्थ**—वर्तमान होनेवाली पर्यायके व्यय होनेरूप भावाभावशक्ति पैंतीसवी है। **अभव** इत्यादि। **अर्थ**—वर्तमान न होनेवाले पर्यायके उदय होनेरूप अभावभावशक्ति है। **भवत्** इत्यादि। **अर्थ**—वर्तमान पर्यायके होनेरूप (रहनेरूप) भावभावशक्ति है। **अभ** इत्यादि। **अर्थ**—न होनेवाले पर्यायके नहीं होनेरूप अभावाभावशक्ति है, यह अड़तीसवीं है। **कारका** इत्यादि। **अर्थ**— कर्ता कर्म आदि कारकोंमें अनुगत क्रियासे रहित जो

त्तारूपभावगतक्रियामयी क्रियाशक्तिः । प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः । भवत्तारूपसिद्धरूपभावभविकत्वमयी कर्तृशक्तिः । भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः । स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी संप्रदानशक्तिः । उत्पादव्ययालिंगितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः । भाव्यमानभावाधारत्वमयी संबंधशक्तिः । "इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः । एकं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥ २६४ ॥ नैकांतसंगतदृशा स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिरिति प्रविलोकयंतः । स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो ज्ञानी-

---

मान-माया-लोभ-पचेंद्रियविषयव्यापार-मनोवचनकायव्यापार—भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-ख्याति-पूजा—लाभ—दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदान—माया—मिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहि-

---

होनेमात्रमयी वह भावशक्ति उनतालीसवीं है । **कारका** इत्यादि । **अर्थ**—कारकके अनुसार होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति चालीसमी है । **प्राप्य** इत्यादि । **अर्थ**—पानेमें आता ऐसा बनावनाया जो भाव उसमयी कर्मशक्ति इकतालीसवीं है । **भवत** इत्यादि । **अर्थ**—होनेरूप जो सिद्ध रूपभाव उसके होनेवालेपनामयी कर्तृत्वशक्ति ब्यालीसवीं है । **भव** इत्यादि । **अर्थ**—होते हुए भावके होनेमें अतिशयवान् साधकपनेमयी करणशक्ति तेतालीसवीं है । **स्वयं** इत्यादि । **अर्थ**—अपने ही कर देनेमें आवता जो भाव उसके प्राप्त होने योग्यपना पाने योग्यपनेमयी संप्रदानशक्ति चवालीसमीं है । **उत्पाद** इत्यादि । **अर्थ**—उत्पादव्ययकर स्पर्शित जो भाव उसके अपायके होनेसे नष्ट न होता ऐसा ध्रुवपना उसमयी अपादानशक्ति पैंतालीसवी है । **भाव्यमान** इत्यादि । **अर्थ**—भावनेमें आता जो भाव उसके आधारपनेमयी छयालीसवीं अधिकरण शक्ति है । **स्वभाव** इत्यादि । **अर्थ**—अपने भावमात्र स्वस्वामिपनेमयी संबंध शक्ति सैंतालीसवीं है, अपने भावोंका स्वामी आप है यह संबंध है ॥ ऐसे सैंतालीस शक्तियोंके नाम कहे । इनको आदि लेकर अनेक शक्तियोंकर युक्त आत्मा है तौ भी ज्ञानमात्रपनेको नहीं छोड़ता ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २६४ वां काव्य है—**इत्याद्य** इत्यादि । **अर्थ**—ऐसें ये सैंतालीस शक्तियां कह इनको आदि लेकर अनेक अपनी शक्तियोंकर अच्छीतरह भरा हुआ है तौ भी जो भाव ज्ञानमात्रमयीपनेको नहीं छोड़ता वह चैतन्य आत्मा द्रव्यपर्यायमयी इस लोकमें वस्तु है । कैसा है ? क्रमरूप अक्रमरूप विशेष वर्तनेवाले जो विवर्त (परिणमनकी विकाररूप अवस्था) उनकर अनेक प्रकार होके प्रवर्तता है ॥ **भावार्थ**—कोई जानेगा कि ज्ञानमात्र कहा हुआ वह आत्मा एक स्वरूप ही है इसतरह नहीं है । वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायमयी है । चैतन्यभी वस्तु है वह अनंतशक्तिकर भरा है सो क्रमरूप व अक्रमरूप अनेक परिणामोंके विकारोंका समूहरूप अनेकाकार होता है परंतु ज्ञान असाधारण भावको नहीं छोड़ता सब अवस्थायें परिणाम पर्यायी हैं वे ज्ञानमय हैं ॥ अब इस अनेक स्वरूप

भवंति जिननीतिमलंघयंतः ॥ २६५ ॥ अथास्योपायोपेयभावश्चिंत्यते । आत्मवस्तुनो हि ज्ञानमात्रत्वेऽप्युपायोपेयभावो विद्यत एव । तस्यैकस्यापि स्वयं साधकसिद्धरूपोभयपरिणामित्वात् । तत्र यत्साधकं रूपं स उपायः । यत्सिद्धं रूपं स उपेयः । अतोऽस्यात्मनोऽनादिमिथ्यादर्शनज्ञानचरित्रैः स्वरूपप्रच्यवनात्संसरतः सुनिश्चलपरिगृहीतव्यवहारसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपाकप्रकर्षपरंपरया क्रमेण स्वरूपमारोप्यमाणस्यांतर्मग्ननिश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रविशेषतया साधकरूपेण तथा परमप्रकर्षमकरिकाधिरूढरत्नत्रयातिशयप्रवृत्तसकलकर्मक्षयप्रज्वलितास्खलितविमलस्वभावभावतया सिद्धरूपेण च स्वयं परिणममानज्ञानमात्रमेकमेवोपायोपेयभावं साधयति । एवमुभयत्रापि ज्ञानमात्रस्यानन्यतया नित्यमस्खलितैकवस्तुनो निष्कंपपरिग्रहणात् तत्क्षण एव मुमुक्षूणामासंसारालब्धभूमिकानामपि भवति भूमिकालाभः । ततस्तत्र नित्यदुर्ललितास्ते स्वत एव क्रमाक्रमवृत्तानेकांतमूर्तयः साधकभावसंभवपरमप्रकर्षकोटिसिद्धिभावभाजनं भवंति । ये तु नेमामंतर्नीतानेकांतज्ञानमात्रैकभावरूपां भूमिमुपलभते ते नित्यमज्ञानिनो भवंतो ज्ञानमात्रभावस्य स्वरूपेणाभवनं पररूपेण भवनं पश्यंतो जानंतोऽनुचरंतश्च मिथ्यादृष्टयो मिथ्या-

---

वस्तुको जो जानते हैं श्रद्धान करते हैं अनुभवते हैं उनकी प्रशंसाके लिये कलशरूप २६५ वां काव्य कहते हैं—**नैकांत** इत्यादि । **अर्थ**—वस्तु है वह अपने आप अनेकांतात्मक है ऐसें वस्तुतत्त्वकी व्यवस्थाको अनेकांतमें प्राप्त कीगई दृष्टिसे देखते हुए सत्पुरुष हैं वे स्याद्वादकी अधिक शुद्धिको अंगीकार करके ज्ञानी होते हैं । कैसे हुए ? जिनेश्वरदेवके स्याद्वादन्यायको उल्लंघन नहीं करते हुए ॥ **भावार्थ**—जो सत्पुरुष अनेकांतमें लगायी हुई दृष्टिसे ऐसे अनेकांतरूप वस्तुतत्त्वकी मर्यादाको देखते हैं वे स्याद्वादकी शुद्धिको पाकर ज्ञानी होवे हैं और जिनदेवके स्याद्वाद न्यायको नहीं उलंघते । स्याद्वादन्याय, जैसी वस्तु है वैसा कहता है असत्कल्पना नहीं करता । इस प्रकार **स्याद्वादका अधिकार** पूर्ण हुआ ॥

अब ज्ञानमात्र भावके उपाय उपेय दो भावोंका विचार करते हैं । उपाय वह है कि जिससे पाने योग्य भाव पाये जांय उसको मोक्षमार्ग भी कहते हैं, और उपेय भाव पाने योग्य (आदरने योग्य) भावको कहते हैं । वह आत्माका शुद्ध–सब कर्मोंसे रहित भाव है उसको मोक्ष भी कहते हैं । सो यद्यपि ज्ञानमात्र भाव एक है तो भी अनेकांत स्वरूप है उसमें स्याद्वादसे साधा हुआ उपायभाव व उपेयभाव ये दोनों भाव एकमें ही वनते हैं । उन्हीका विचार करते हैं—आत्मवस्तुके ज्ञानमात्रपना होने पर भी उपाय उपेय भाव विद्यमान ही हैं क्योंकि उस एकके भी अपने आप साधक और सिद्ध इन दोनोंरूप परिणामीपना है । आत्मा तो परिणामी है और साधकपना व सिद्धपना ये दोनों परिणाम हैं । उनमें जो साधकरूप है वह तो उपाय है और जो सिद्ध है वह उपेय है ।

---

१ मकरा एव मकरिका मर्यादा–इत्यर्थः ।

ज्ञानिनो मिथ्याचरित्राश्च भवंतोऽत्यंतमुपायोपेयभ्रष्टा विभ्रमंत्येव । "ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकंपां भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः । ते साधकत्वमधिगम्य भवंति सिद्धा मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ॥ २६६ ॥ स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः । ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स

क्योंकि इस आत्माके अनादिसे लेकर मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्या चारित्रोंकर अपने स्वरूपसे च्युत होनेसे संसारमें भ्रमते हुएके अच्छीतरह निश्चल ग्रहण किया जो व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उसके परिपाक (पचना) के बढनेकी परंपराकर अनुक्रमसे अपने स्वरूपमे अपनेको आरोपण करनेवालेके अंतर्मग्न निश्चय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रके विशेषपनेकर साधकरूप है । उसीतरह बढनेकी हद्को प्राप्त हुआ जो रत्नत्रय उसके अतिशयकर प्रवर्ता जो सब कर्मोंका नाश उसकर प्रज्वलित (दैदीप्यमान) और फिर नहीं चिगै ऐसे निर्मल स्वभावपनेकर सिद्धरूप है । इन साधक सिद्ध दोनों भावोंकर स्वयमेव आप परिणमता जो एक ज्ञानमात्र भाव वही उपाय उपेयभावको साधता है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा अनादि कालसे मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रसे संसारमें भ्रमता है । जब व्यवहार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रको निश्चल अंगीकार करे तब अनुक्रमसे अपने स्वरूपके अनुभवकी वृद्धि करता निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्णताको प्राप्त होय तब तक तो साधक रूप है । और निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्णताकर सब कर्मोंका नाश हो तब साक्षात् मोक्ष होता है वही सिद्धरूप भाव है । सो इन दोनों भावरूप ज्ञानका ही परिणाम है वही उपायोपेय भाव है । इसतरह दोनों ही भावोंमे ज्ञानमात्रका अनन्यपना है अन्यपना नहीं है । उसकर निरंतर नहीं चिगता जो एक वस्तु उसके निष्कंप परिग्रहणसे उसीकाल मोक्षके चाहनेवाले पुरुषोंके अनादि संसारसे लेकर कभी जिन्होंने नहीं पायी ऐसी भूमिका लाभ इसप्रकार होता है इसलिये वे सत्पुरुष वहां सदा काल निश्चल हुए, आपसे ही क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्ते अनेक धर्मोंकी मूर्ति हुए, साधक भावसे जिसकी उत्पत्ति है ऐसे परमप्रकर्षकी हद्रूप सिद्ध भावके पात्र होते हैं । और अनेक धर्म जिसमें गर्भित हैं ऐसे ज्ञानमात्र एक भावस्वरूप ऐसी भूमिको जो नहीं पाते वे नित्य अज्ञानी हुए ज्ञानमात्रभावको अपने स्वरूपकर नहीं होना और पररूपकर होना देखते श्रद्धान करते जानते हुए आचरते हुए मिथ्यादृष्टि हुए मिथ्याज्ञानी हुए मिथ्या चारित्री हुए अत्यंत उपायोपेय भावसे भ्रष्ट हुए संसारमे भ्रमते ही रहते है ॥ अब इस अर्थका कलशरूप २६६ वां काव्य कहते है—ये ज्ञान इत्यादि । **अर्थ**—जिनका किसीतरह अज्ञान (मिथ्यात्व) दूर होगया है ऐसे जो भव्यपुरुष ज्ञानमात्र निजभावमयी निश्चल भूमिकाको आश्रय करते है वे पुरुष साधकपनेको अंगीकारकर सिद्ध होते हैं । और जो मोही (अज्ञानी–मिथ्यादृष्टि) हैं वे इस भूमिकाको न पाकर संसारमें भ्रमते है । **भावार्थ**—जो पुरुष गुरुके उपदेशसे तथा स्वयमेव काल लब्धिको पाकर मिथ्यात्वसे रहित होते हैं वे

एकः ॥ २६७ ॥ चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासशुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः । आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूपस्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥ २६८ ॥ स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशशुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति । किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावनि-

---

ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको पाके साधक हुए सिद्ध होते हैं। और जो ज्ञानमात्र अपनेको नहीं पाते वे संसारमें भ्रमते है॥ अब २६७ वें काव्यसे कहते हैं कि वे भूमिका इसतरह पाते हैं—**स्याद्वाद** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष स्याद्वादन्यायका प्रवीणपना और निश्चल व्रतसमितिगुप्तिरूप संयम इन दोनोंकर अपने ज्ञानस्वरूप आत्मामें उपयोग लगाता हुआ आत्माको निरंतर भावता है वही पुरुष ज्ञाननय और क्रियानयकर उन दोनोंमें परस्पर हुआ जो तीव्र मैत्रीभाव उसका पात्रभूत हुआ इस निज भावमयी भूमिकाको पाता है ॥ **भावार्थ**—जो ज्ञाननयको ही ग्रहण कर क्रियानयको छोड़ता है वह प्रमादी स्वच्छंद हुआ इस भूमिको नहीं पाता । और जो क्रियानयको ही ग्रहणकर ज्ञाननयको नहीं जानता वह भी शुभ कर्मसे संतुष्ट हुआ इस निष्कर्म भूमिकाको नहीं पाता । तथा जो ज्ञान पाकर निश्चल संयमको अंगीकार करते हैं उनके ज्ञाननयके और क्रियानयके परस्पर अत्यंत मित्रता होती है वे ही इस भूमिकाको पाते हैं । इन दोनों नयोंके ग्रहण त्यागका स्वरूप व फल **पंचास्तिकाय** ग्रंथके अंतमें कहा है वहांसे जानना ॥ अब २६८ वे काव्यसे कहते हैं कि जो इस भूमिकाको पाता है वही आत्माको पाता है—**चित्पिंड** इत्यादि । **अर्थ**—जो पुरुष पूर्वोक्तप्रकार भूमिकाको पाता है उसी पुरुषके यह आत्मा उदय होता है। कैसा है आत्मा? चैतन्यपिंडका निरर्गल विलास करनेवाला जो प्रफुल्लित होना उसरूप जिसका फूलना है, शुद्ध प्रकाशके समूहकर उत्तम प्रभातके समान उदयरूप है, आनंदकर अच्छी तरह ठहरा सदा नहीं चिगता है एकरूप जिसका, जिसकी ज्ञानरूप दीप्ति अचल है । ऐसा है ॥ **भावार्थ**—यहां चित्पिंड इत्यादि विशेषणसे तो अनंत दर्शनका प्रगट होना बतलाया है, अचल शुद्धप्रकाश इत्यादि विशेषणसे अनंत ज्ञानका प्रगट होना जताया है, आनंदसुस्थित इत्यादि विशेषणसे अनंत सुखका प्रगट होना जताया है और अचलार्चि इस विशेषणसे अनंत वीर्यका प्रगट होना जतलाया है । पूर्वोक्त भूमिके आश्रयसे ऐसा आत्माका उदय होता है ॥ अब २६९ वें काव्यसे कहते हैं कि ऐसा ही आत्मस्वभाव हमारे भी प्रगट होवे—**स्याद्वाद** इत्यादि । **अर्थ**—स्याद्वादकर प्रकाशरूप हुआ है लहलहाट करता तेजःपुंज जिसमें, और जिसमें शुद्ध स्वभावकी महिमा है ऐसा ज्ञानप्रकाश मुझमें उदय होनेसे बंध मोक्षके मार्गसे पटकनेवाले अन्य भावोंकर क्या साध्य है? मेरे तो केवल अनंत चतुष्टयरूप यह अपना स्वभाव ही निरंतर उदयरूप हुआ स्फुरायमान होवे ॥ **भावार्थ**—स्याद्वादकर यथार्थ आत्मज्ञान होने बाद इसका फल पूर्ण आत्माका प्रगट होना है । सो मोक्षका इच्छक पुरुष यही प्रार्थना करता है कि मेरा पूर्ण स्वभाव आत्मा उदय हो ।

---

१ शुद्धप्रकाशभरेण निर्भरमत्यंतं शुद्धो भात सुष्ठो उद्दीप्तः ।

त्योदयं परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥ २६९ ॥ चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंड्यमानः। तस्मादखंडमनिराकृतखंडमेकमेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥ २७० ॥ न द्रव्येण खंडयामि। न क्षेत्रेण खंडयामि। न भावेन खंडयामि। सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रभावोस्मि। "योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयः ज्ञानमात्रः स नैव। ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवेलान् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रं ॥२७१॥ क्वचिल्लसति मेचकं

अन्य भाव बंधमोक्षमार्गकी कथारूप हैं उनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ अब २७० वें काव्यसे कहते हैं कि नयोंकर आत्मा साधा जाता है यदि नयोंपर ही दृष्टि रहे तो नयोंमें परस्पर विरोध भी है इसलिये मै नयोंको अविरोधकर आत्माको अनुभवता हूं— **चित्रात्म** इत्यादि। **अर्थ**—यह आत्मा अनेक प्रकारकी अपनी शक्तियोंके समुदायमय है सो नयोंकी दृष्टिकर भेदरूप किया हुआ तत्काल खंड खंडरूप होके नाशको प्राप्त होता है। इसलिये मैं अपने आत्माको ऐसा अनुभवता हूं कि मैं चैतन्यमात्र तेजरूप वस्तु हूं। कैसा हूं? जिसमें खंड दूर नहीं किये गये है तौ भी खंड (भेद) रहित अखंड हूं एक हूं। जिसमें कर्मके उदका लेश नहीं ऐसा शांतभावमय हूं और अचल हूं अर्थात् कर्मके उदयकर चलाया चलता नहीं॥ **भावार्थ**—आत्मामें अनेक शक्तियां हैं और एक एक शक्तिका ग्राहक एक एक नय है। सो नयोंकी एकांत दृष्टिकर देखो तो आत्माका खंड खंड हो नाश हो जाय। इसलिये स्याद्वादी, नयोंका विरोध मेट चैतन्यमात्र वस्तु अनेक शक्तिसमूहरूप सामान्य विशेष स्वरूप सर्वशक्तिमय एक ज्ञानमात्रको अनुभव करता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप है उसमें विरोध नहीं है॥ अब अखंड आत्माका ऐसा अनुभव करना उसे कहते हैं—**न द्रव्येण** इत्यादि। **अर्थ**—ज्ञानी शुद्धनयका आलंबन लेकर ऐसे अनुभवे कि मै अपने शुद्धात्म स्वरूपको द्रव्यकर नहीं खंडता हूं—भेद नहीं देखता हूं, क्षेत्रकर नहीं खंडता, कालकर नहीं खंडता और भावकर नहीं खंडता। अत्यंत विशुद्ध (निर्मल) एक ज्ञानमय भाव हूं ॥ **भावार्थ**— शुद्धनयकर देखा जाय तब द्रव्य क्षेत्रकालभावकर शुद्ध चैतन्यमात्र भावमें कुछ भी भेद नहीं दीखता। इसलिये ज्ञानी अभेद ज्ञानस्वरूप अनुभवमे भेद नहीं करता ॥ अब कहते हैं २७१ वें काव्यसे कि ज्ञान तो मैं हूं और ज्ञेय ज्ञेय है—**अर्थ**—जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूं सो ज्ञेयका ज्ञानमात्र ही नहीं जानना। तो यह ज्ञानमात्रभाव कैसा जानना ? ज्ञेयोंके आकार जो ज्ञानके कल्लोल उनको विलगता ऐसा ज्ञान वही ज्ञान, वही ज्ञेय, वही ज्ञाता इसतरह ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता इन तीन भावोंसहित वस्तुमात्र जानना ॥ **भावार्थ**—अनुभव करते ज्ञानमात्र अनुभवै तब बाह्य ज्ञेय तो जुदे ही हैं ज्ञानमे वैठे नहीं और ज्ञेयोंके आकारकी झलक ज्ञानमें है सो वह ज्ञान भी ज्ञेयाकाररूप दीखता है ये ज्ञानके कल्लोल हैं सो ऐसा भी ज्ञानका स्वरूप है। आपकर आप जानने योग्य है इसलिये ज्ञेयरूप भी है। आप ही अपनेको जाननेवाला है इसलिये ज्ञाता भी है। ऐसें तीनों भावस्वरूप ज्ञान एक है। इसीसे सामान्य विशेषस्वरूप वस्तु

क्वचिन्मेचकाऽमेचकं क्वचित् पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम । तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥ २७२ ॥ इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकतामितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् । इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजैरहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवं ॥ २७३ ॥ कषायकलिरेकतः स्खलति शांतिरस्त्येकतो भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः । जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति

कहा जाता है उस मात्र ही ज्ञान मात्र कहा जाता है । सो अनुभव करनवाला इसीतरह अनुभव करे कि ऐसा ज्ञानभाव यह मैं हूं ॥ अब २७२ वें काव्यसे कहते हैं कि अनुभवकी दशामें अनेकरूप दीखते हैं तौ भी यथार्थ ज्ञाता निर्मल ज्ञानको नहीं भूलता **क्वचिन्न** इत्यादि । **अर्थ**—अनुभव करनेवाला कहता है कि मेरा आत्मतत्त्व कभी तो अनेकाकार दीखता है, कभी अनेकाकार रहित शुद्ध एकाकार दीखता है, कभी दोनोंरूप दीखता है । तौ भी जो निर्मल बुद्धि हैं उनके मनको भ्रमरूप नहीं करता, क्योंकि वह परस्पर अच्छीतरह मिलीं जो प्रगट अनेक शक्तिया उनके समूहस्वरूप स्फुरायमान होता है ॥ **भावार्थ**—आत्मतत्त्व अनेक शक्तियोंको लिये हुए है इसलिये किसी अवस्थामें कर्मके उदयके निमित्तसे अनेक आकार अनुभवमें आते हैं, किसी अवस्थामें शुद्ध एकाकार अनुभवमें आता है, और किसी अवस्थामें शुद्धाशुद्धरूप अनुभवमें आता है तौभी यथार्थ ज्ञानी स्याद्वादके बलकर भ्रमरूप नहीं होता जैसा है वैसाही मानता है ज्ञानमात्रसे च्युत नहीं होता ॥ अब २७३ वें काव्यसे कहते हैं कि अनेकरूपको धारता यह आत्माका अद्भुत-आश्चर्यकारी विभव है—**इतो** इत्यादि । **अर्थ**—अहो ! बड़ा आश्चर्यकारी यह आत्माका स्वाभाविक अद्भुत विभव है कि एकतरफ देखो तो अनेकताको धारण करता है, यह पर्यायदृष्टि है । एक तरफ देखिये तो सदा ही एकता हो धारता है, यह द्रव्यदृष्टि है । एकतरफ देखाजाय तो क्षणभंगुर है, यह क्रमभावी पर्यायदृष्टि है । एकतरफ देखाजाय तो ध्रुव दीखता है, यह सहभावी गुणदृष्टि है क्योंकि सदा उदयरूप दीखती है । एकतरफ देखिये तो परमविस्तार स्वरूप दीखता है, यह ज्ञान अपेक्षा सर्वगत दृष्टि है । और एकतरफ देखिये तो अपने प्रदेशों कर ही धारण किया जाता है, यह प्रदेशोंकी अपेक्षा दृष्टि है । ऐसे आश्चर्यरूप विभवको आत्मा धारण करता है ॥ **भावार्थ**—यह द्रव्यपर्यायात्मक अनंतधर्मा वस्तुका स्वभाव है सो जो पूर्व अज्ञानी हैं उनके ज्ञानमें आश्चर्य उपजाता है कि असंभवसी बात है । और ज्ञानियोंके वस्तुस्वभावमें आश्चर्य नहीं है तौभी अद्भुत परम आनंद ऐसा होता है कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ, यह आश्चर्य भी उपजता है ॥ फिर इसी अर्थरूप २७४ वा काव्य है—**कषाय**—इत्यादि । आत्माके स्वभावकी महिमा अद्भुतसे अद्भुत विजयरूप प्रवर्तती है किसीकर बाधी नहीं जाती । कैसी है ? एकतरफ देखिये तो कषायोंका क्लेश दीखता है, एकतरफ देखिये तो कषायोंका उपशमरूप शांतभाव है, एकतरफ देखिये तो संसारसंबंधी पीडा दीखती है, एकतरफ देखिये तो संसारका

चित्त्वकास्त्येकतः स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ॥ २७४ ॥ जयति सहजपुंजः पुंजमज्जत्रिलोकी स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः। स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥ २७५ ॥ अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्मन्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहं। मुदितममृतचंद्रज्योतिरेतत्समंताज्वलतु विमल-

---

अभावरूप मुक्ति भी स्पर्शती है, और एकतरफ देखिये तो केवल (एक) चैतन्यमात्र ही शोभता है, इसप्रकार अद्भुतसे अद्भुत महिमा है ॥ **भावार्थ**—यहांभी पहले काव्यके भावार्थरूप ही जानना। यह अन्यवादी सुनके बडा आश्चर्य करते हैं। उनके चित्तमें विरोध भास रहे है सो यह बात समा नहीं सकती। यदि उनके कभी श्रद्धा भी होजाय तो प्रथम अवस्थामें बडा अद्भुत दीखे कि हमने अनादिकाल यों ही खोया, ये जिनवचन बडे उपकारी हैं वस्तुका स्वरूप यथार्थ जताते हैं ऐसा आश्चर्य कर श्रद्धान करता है ॥ आगे टीकाकार इस सर्वविशुद्धज्ञानके परिशिष्ट अधिकारको पूर्ण करते हैं उसके अंतके मंगलकेलिये इस चिच्चमत्कारको ही सर्वोत्कृष्ट २७५ वें काव्यसे कहते हैं—**जयति** इत्यादि। **अर्थ**—यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यचमत्कार है वह जयवंत प्रवर्तता है किसीकर बाधा न जाय इसतरह सर्वोत्कृष्ट हो प्रवर्तता है। कैसा है? अपने स्वभावस्वरूप प्रकाशके पुंजमें मग्न हुए जो तीन लोकके पदार्थ उनकर जिसमें अनेक भेद हुए दीखते हैं ऐसा है तौभी एक स्वरूप ही है, अर्थात् केवलज्ञानमें सब पदार्थ झलकते हैं वे अनेकज्ञेयाकाररूप दीखते हैं तौभी चैतन्यरूप ज्ञानाकारकी दृष्टिमें एक ही स्वरूप है। अपने निजरसकर पूर्ण ऐसा तत्त्वस्वरूपका पाना जिसका छिदा नहीं है अर्थात् प्रतिपक्षी कर्मका अभाव होनेसे जिसके स्वभावका अभाव नहीं पाया जाता ऐसा है। प्रगट बलात्कारसे जिसकी दीप्ति नियमरूप है अपने अनंतवीर्यसे निष्कंप ठहर रहा है। ऐसा चिच्चमत्कार जयवंत है। यहा जयवंत कहनेसे सर्वोत्कृष्टपनेकर रहना कहा सो यही मंगल है ॥ आगे टीकाकार अपने नामको प्रगट करते पूर्वोक्त आत्माको ही आशीर्वाद २७६ वें काव्यसे करते हैं—**अविचलित** इत्यादि। **अर्थ**—यह अमृतचंद्रज्योति अर्थात् जिसका मरण नहीं तथा जिसकर अन्यका भी मरण नहीं वह अमृत और अत्यंत स्वादुरूप मिष्ट हो उसे लोक रूढिसे अमृत कहते है ऐसी अमृतमयी चंद्रमाके समान ज्योति अर्थात् प्रकाशस्वरूप ज्ञान वा प्रकाशस्वरूप आत्मा वह उदयको प्राप्त हुआ सब क्षेत्रकालमें दैदीप्यमान प्रकाशरूप रहो। कैसी है? निश्चलचेतना जिसका स्वरूप है ऐसे आत्मामें आप ही कर अपने आत्माको निरंतर मग्न करती हुई धारती है, पाये-स्वभावको कभी नहीं छोडती। जिसका मोह नाशको प्राप्त हुआ है अर्थात् जिसने अज्ञान अंधकारको दूर किया है। जिसका स्वभाव प्रतिपक्षी कर्मकर रहित है। निर्मल है और पूर्ण है ॥ **भावार्थ**—यहां आत्माको अमृतचंद्रज्योति कहा सो यह लुप्तोपमा अलंकारकर कहा जानना, क्योंकि अमृतचंद्रवत् ज्योति ऐसा समास करनेसे वत् शब्दका लोप हो जाता है तब अमृतचंद्रज्योति कहा जाता है और वत्शब्द न करो तो अमृत-

पूर्णं निःसपत्नस्वभावं ॥ २७६ ॥ मुक्तामुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादितः । अक्षयं परमात्मानं ज्ञानमूर्तिं नमाम्यहं ॥ १" ॥

अथ द्रव्यास्यादेशवशेनोक्तां सप्तभंगीमवतारयामः—स्यादस्ति द्रव्यं १ स्यान्नास्ति द्रव्यं २ स्यादस्ति नास्ति च द्रव्यं ३ स्यादवक्तव्यं द्रव्यं ४ स्यादस्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं ५ स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्य ६ स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य च द्रव्यं ७ इति । अत्र सर्वथात्वनिषेधको नैकांतद्योतकः कथंचिदर्थः स्याच्छब्दो निपातः । तत्र स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्यं परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यं । स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति च नास्ति च द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टमवक्तव्यं स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यं द्रव्यं । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैः युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टं नास्ति चावक्तव्यं द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति । इति सप्तभगी समाप्ता ॥

इति परिशिष्टं ।

तशून्योऽहं । जगत्त्रयेऽपि कालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन तथा सर्वजीवाः । इति निरन्तरं भावना कर्तव्या । इति **परिशिष्टम् ।**

चंद्ररूपज्योति ऐसा कहना तब भेदरूपक अलंकार है । तथा अमृतचंद्रज्योति ऐसा ही आत्माका नाम कहो तब अभेदरूपक अलंकार होता है । इसके विशेषणोंकर चंद्रमासे व्यतिरेक भी है क्योंकि ध्वस्तमोह विशेषण तो अज्ञान अंधकार दूर होना जताता है और निर्मल पूर्ण विशेषण लांछनरहितपना पूर्णपना जताता है । निस्सपत्नस्वभावविशेषण राहुबिंबसे व बादल आदिसे आच्छादित न होना बतलाता है । समंतात् ज्वलन है वह सब क्षेत्र सब कालमें प्रतापरूप प्रकाश करना बतलाता है । ऐसा चंद्रमा नहीं है । अमृतचंद्र ऐसा टीकाकारने अपना नाम भी सूचित किया है और इसका समास बदलकर अर्थ किया जाय तब अनेक अर्थ होते हैं सो यथासंभव जानने ॥ यहांतक गाथा तो ४१५ हुई और कलशकाव्य २७६ हुए । श्लोकसंख्या १२००० है ।

सवैया इकतीसा ।

सुखविशुद्धज्ञानरूप सदा चिदानंद करता न भोगता न परद्रव्यभावको,
मूरत अमूरत जे आनद्रव्य लोकमांहि तेभी ज्ञानरूप नहीं न्यारे न अभावको ।
यहै जानि ज्ञानी जीव आपकूं भजै सदीव ज्ञानरूप सुखतूप आन न लगावको,
कर्म कर्मफलरूप चेतनाकूं दूरि टारि ज्ञानचेतना अभ्यास करे शुद्ध भावको ॥ १ ॥

इसप्रकार समयसारग्रंथकी आत्मख्याति नाम टीकाकी वचनिकामें सर्वविशुद्धज्ञानका **परिशिष्टरूप** अधिकार पूर्ण हुआ ॥ **इति परिशिष्ट ।**

यस्माद्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रांतरं रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाका-

---

अत्र ग्रंथे प्रचुरेण पदाना सधिर्न कृता वाक्यानि च भिन्नभिन्नानि कृतानि सुखबोधार्थं । तेन कारणेन लिंग-वचन-क्रिया-कारक-सन्धि-समास-विशेष्य-विशेषण-वाक्यसमाप्त्यादिकं दूषणं न ग्राह्यं विवेकिभिः । शुद्धात्मादितत्त्वप्रतिपादनविषये यदज्ञानात् किंचिद्विस्मृतं तदपि क्षमित-

---

संस्कृतटीकाकारका वक्तव्य—अत्र संस्कृत टीका पूर्णकर अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं कि आत्मामें परसंयोगसे अनेक भाव होते हैं उनका वर्णन ग्रंथोंमें है सो सभी वर्णन इस विज्ञानघनमें मग्न हुए कुछ भी नहीं दीखते—**यस्मात्** इत्यादि । **अर्थ**—जिस परसंयोगरूप बंधपर्याय जनित अज्ञानसे प्रथम तो अपना और परका द्वैतरूप एकभाव हुआ, फिर उस द्वैतपनेसे अपने स्वरूपमें अंतर हुआ अर्थात् बंधपर्यायको ही आप जाना, उस अंतरके पड़नेसे रागद्वेषका परिग्रहण हुआ, उसके होनेसे क्रिया और कर्ता कर्म आदि कारकोंसे भेद पड़ा, उस क्रिया कारकके भेदकर आत्माकी अनुभूति है वह क्रियाके सब फलको भोगती खेद खिन्न हुई । ऐसा अज्ञान है । सो अब ज्ञान हुआ तब उस विज्ञानघनके समूहमें मग्न होगया । अब इसको देखा जाय तो कुछ भी नहीं है यह प्रगट अनुभवमें आता है ॥ **भावार्थ**—अज्ञान है वह परसंयोगसे ज्ञान ही अज्ञानरूप परिणमा था कुछ दूसरा तो वस्तु था नहीं । सो अब ज्ञानरूप परिणमा तब कुछ भी न रहा । उस समय इस अज्ञानके निमित्तसे राग द्वेष कर्ता कर्म सुख दुःख आदि भाव होते थे वे भी विलय गये एक ज्ञान ही रहगया । तीनकालवर्ती अपने परके सब भावोंको आत्मा ज्ञाता द्रष्टा हुआ देखा करे ॥ आगे अमृतचंद्र आचार्य इस ग्रंथ करनेके अभिमानरूप कषायको दूर करते हुए यथार्थ कहते हैं—**स्वशक्ति** इत्यादि **अर्थ**—यह समय अर्थात् आत्मवस्तु तथा समयप्राभृत नाम शास्त्र उसका व्याख्यान वा यह आत्मख्याति नाम टीका शब्दोंकर कीगई है । कैसे हैं शब्द ? अपनी शक्तिकर ही अच्छीतरह कहा है वस्तुका यथार्थ स्वरूप जिन्होंने । निज आत्मस्वरूप अमूर्तीक ज्ञानमात्र उसमें गुप्त होनेवाले (प्रवेश करनेवाले) मुझ अमृतचंद्रसूरिका कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥ **भावार्थ**—शब्द है वह तो पुद्गल है सो पुरुषके निमित्तसे वर्णपद वाक्यरूप परिणमता है । सो इनमें वस्तुके स्वरूपके कहनेकी शक्ति स्वयमेव है क्योंकि शब्द और अर्थका वाच्यवाचकसंबंध है सो द्रव्यश्रुतकी रचना शब्दको ही करना संभवती है । आत्मा है सो अमूर्तीक व ज्ञानस्वरूप है इसलिये मूर्तीक पुद्गलकी रचना कैसे करे इसलिये आचार्यने ऐसा कहा है कि यह समयप्राभृतकी टीका शब्दोंकर कीगई है, मैं तो अपने स्वरूपमें लीन हूं मेरा कर्तव्य इसमें नहीं है । ऐसा कहनेसे उद्धतपनेका त्याग भी आता है । तथा निमित्त नैमित्तिक व्यवहारकर ऐसा ही कहते हैं कि विवक्षित कार्य उस पुरुषने किया, इस न्यायकर अमृतचंद्र आचार्यकृत यह टीका है ही ।

रकैः । भुंजाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्नाक्रियायाः फलं तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना

व्यमिति । जयउ रिसि पउमणंदी जेण महातच्चपाहुणस्सेलो । बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्वलोयस्स ॥ १ ॥ जं से लीणा जीवा तरंति ससारसायरमणंत । तं सव्वजीवसरणं णंदउ जिणसासणं सुइरं ॥ २ ॥ यश्चाभ्यस्यति संशृणोति पठति प्रख्यापयत्यादरात् । तात्पर्याख्य-

इसी न्यायसे पढने सुनने वालोंको उनका उपकार भी मानना योग्य है । क्योंकि इसके पढने सुननेसे परमार्थ आत्माका स्वरूप जाना जाता है । उसका श्रद्धान आचरण होनेपर मिथ्या ज्ञान श्रद्धान आचरण दूर हो जाते हैं और परंपराय मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिये इसका निरंतर अभ्यास करना योग्य है ॥ इस प्रकार समयसार ग्रंथकी आत्मख्याति नामा टीका समाप्त हुई ॥

भाषाकारका वक्तव्य ।

(सवैया इकतीसा)

कुंदकुंद मुनि कियो गाथाबंध प्राकृत है प्राभृतसमय शुद्ध आतम दिखावनूं,
सुधाचंद्रसूरि करी संस्कृत टीकावर आत्मख्याति नाम यथातथ्य भावनूं ।
देशकी वचनिकामें लिखि जयचंद्र पढै संक्षेप अर्थ अल्पबुद्धिकूं पावनूं,
पढो सुनो मन लाय शुद्ध आतमा लखाय ज्ञानरूप गहौ चिदानंद दरसावनूं ॥ १ ॥

दोहा—समयसार अविकारका वर्णन कर्ण सुनंत ।
द्रव्य भाव नोकर्म तजि आतम तत्त्व लखंत ॥ २ ॥

इसप्रकार इस समयप्राभृतनामा ग्रंथकी आत्मख्याति नामा संस्कृतटीकाकी देश-भाषामय वचनिका लिखी है । सो यह उसका संक्षेप भावार्थरूपसा अर्थ लिखा है । संस्कृत टीकामें न्यायसे सिद्ध हुए प्रयोग हैं, उनका विस्तार करो तब अनुमानप्रमाणके प्रयोग प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय निगमनरूप हैं उनका स्पष्टकर व्याख्यान लिखाजाय तो ग्रंथ बहुत बढजाय इसलिये आयु बुद्धि बल स्थिरता अल्प होनेसे जितना बनसका उतना संक्षेपसे प्रयोजनमात्र लिखा है उसको वाचकर भव्यजीवो! पदार्थ समझना, और कुछ अर्थमें हीनाधिकता हो तो हे बुद्धिमानो! मूलग्रंथसे जिसतरह हो उसतरह समझना । कालदोषसे इनग्रंथोंकी गुरुसंप्रदायका व्युच्छेद होगया है इससे जितना बनता है उतना अभ्यास होता है । जैनमत स्याद्वादरूप है सो जो जिनमतकी आज्ञा मानते हैं उनके विपरीत श्रद्धान नहीं होता । कहीं अर्थका अन्यथा समझना भी हो जाता है तो विशेष बुद्धिमानका निमित्त मिलनेसे यथार्थ हो जाता है । जिनमतके श्रद्धानी हठग्राही नहीं होते ऐसा जानना ॥ अब अंतमंगलके लिये पंचपरमेष्ठीको नमस्कारकर ग्रंथ समाप्त करते हैं—

१ किल तत्किंचित्क्रियायाः फलं अधुना विज्ञानघनौघमग्नं न किंचित् ।

किंचिन्न किंचित्खलु ॥ १ ॥ स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः । स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचंद्रसूरेः ॥ २ ॥

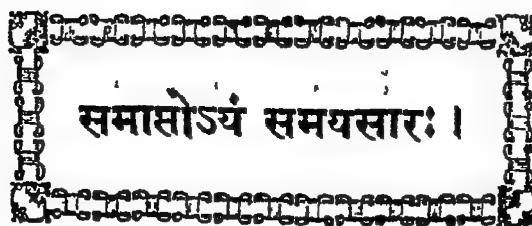
इतिश्री अमृतचंद्राचार्यकृता समयसारव्याख्या आत्मख्यातिः समाप्ता ॥

मिद स्वरूपरसिकैः निर्वर्णितं प्राभृतं । शश्वद्रूपमलं विचित्रसकलं ज्ञानात्मकं केवलं । संप्राप्याग्रपदेऽपि मुक्तिललनारक्तः सदा वर्तते ॥

इति श्रीकुंदकुंददेवाचार्यविरचितसमयसारप्राभृताभिधानग्रंथस्य संबंधिनी श्रीजयसेनाचार्यकृता दशाधिकारैरेकोनचत्वारिंशदधिकगाथाशतचतुष्टयेन तात्पर्यवृत्तिः समाप्ता ॥

मंगल श्री अरहंत घातिया कर्म निवारे, मंगल सिद्ध महंत कर्म आठों परजारे ।
आचारज उवज्झाय मुनी मंगलमयसारे, दीक्षाशिक्षा देय भव्यजीवनिकूं तारे ।
अठवीस मूलगुण धार जे सर्वसाधु अनगार हैं,
मैं नमूं पंचगुरुचरणकूं मंगल हेतु करार है ॥ १ ॥
जैपुर नगरमांहि तेरापंथ शैली वडी वड़े वड़े गुनी जहां पढैं ग्रंथ सार हैं,
जयचंद्र नाम मैं हूं तिनिमें अभ्यास किछू कियो बुद्धिसारू धर्मरागतें विचारे हैं ।
समयसार ग्रंथ ताकी देशके वचनरूप भाषाकरी पढो सुनूं करो निरधार है,
आपा परभेद जानि हेय त्यागि उपादेय गहो शुद्ध आतमकूं यहै बात सार है ॥ २ ॥
दोहा—संवत्सर विक्रम तणूं अष्टादश शत और ।
चौसठि कातिकवदि दशै पूरणग्रंथ सुठौर ॥ ३ ॥

इसप्रकार श्रीमत्कुंदकुंदाचार्यकृत समयप्राभृत नामा प्राकृतगाथाबद्ध ग्रंथकी अमृतचंद्राचार्यकृत आत्मख्याति नामा संस्कृत टीकाके अनुसार **पं० जयचंद्र** कृत यह संक्षेप भावार्थ मात्र **भाषाटीका** संपूर्ण हुई ॥



अथ समयसारस्य अकारादिक्रमेण गाथासूची

॥ इति गाथासूची ॥